श्रीश्री भावना सार संग्रहः

॥ सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम् ॥

श्रीश्री भावना सार संग्रहः

श्री गोवर्द्धन निवासिना

श्रीश्री सिद्ध कृष्णदास - तातपाद - संकलित :

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय) नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता से प्रकाशित।

सम्पादक :

श्री पुरुषोत्तम साहू

सह सम्पादक :

डॉ० रिपुसूदन मिश्र

श्री विभु शर्मा

श्री श्री नरहरि सेवा संस्थान

वृन्दावन (मथुरा) उत्तर प्रदेश

॥ सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम् ॥

प्रकाशक	:	**श्री श्री नरहरि सेवा संस्थान** गुरुकुल रोड, वृन्दावन, मथुरा उत्तर प्रदेश-281121 भारत
प्रथम संस्करण	:	एक हजार प्रति
ग्रंथ प्राप्ति स्थान	: 1.	**श्री हरि कृपा साधन कुटीर**, रामानुज नगर गुरुकुल के पीछे, वृन्दावन, उ॰प्र॰ 281121
	2.	**श्री सिद्ध बाबा आश्रम** मानसी गंगा तट, चकलेश्वर महादेव गोवर्द्धन - उ॰प्र॰ - 281502
	3.	**के.के. पब्लिकेशन्स** 109, 4855/24, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
विक्रमाब्द	:	2063
खिस्ताब्द	:	2007
लेज़र टाईपसैटिंग	:	आरती कम्प्यूटर्स, दिल्ली
मुद्रक	:	बालाजी ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली



आत्मकीय

श्री श्री नरहरि सेवा संस्थान व्रज साहित्य व संस्कृति के संरक्षण में प्रारम्भ से ही प्रयत्न शील है, इस दिशा में निरन्तर कार्य संपादित करता रहा है, व्रजलोक संपदा का नियमित प्रकाशन प्रति त्रैमास में हो रहा है। आप सभी का आशीर्वाद उसको नवीन ऊर्जा प्रदान करता रहा है।

संस्थान के विशेष प्रकल्प व्रजलोक संग्रहालय के अन्तर्गत व्यावहारिक व्रज, व्यावसायिक व्रज, लोक कला, वानस्पतिक व्रज, धार्मिक व अन्य समस्त व्रज जीवन को संजोया गया है। व्रज साहित्य से सम्बन्धित ग्रंथागार में जिज्ञासुओं व अन्वेषकों हेतु महत्वपूर्ण ग्रंथों का संकलन बड़े प्रयास से किया गया है।

प्रकाशन क्रम में विगत वर्ष 'संस्कृत नाट्य में करुणरस' शोध प्रबन्ध का प्रकाशन किया गया था, आप सभी सुधी-जनों ने संस्थान को जो आर्शीवचन प्रदान किये, उसी का सुफल 'श्री श्री भावना सार संग्रह' का प्रकाशन आपके कर-कमलों में प्रस्तुत करते हुये मुझे सुखद अनुभव हो रहा है।

गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय के उपास्य राधा-कृष्ण है। ये उपास्य-युगल मधुर रस के सागर हैं। रसिक साधक समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर युगल सरकार की रूप-छवि को अनवरत निहारते रहने के प्रबल आकांक्षी रहते हैं, यह अपूर्व सुखानुभूति अवर्णनीय है। संप्रदाय के अन्तर्गत आचार्यों द्वारा विविध ग्रंथों में मधुर रस से ओत-प्रोत श्लोकों की रचना की गई है अथवा यह कहा जा सकता है कि साधना की उन दिव्य तरंगों में आकण्ठ डूबकर भावना सागर से रत्न स्वतः श्लोक रूप में स्फुरित हुये हैं। ये ही समस्त श्लोक सिद्ध श्री कृष्णदास बाबाजी महाराज के हृदय पटल पर सदैव उपास्य युगल की अष्ट प्रहर लीलाओं के साथ उद्भूत होते रहते थे, उन्हीं अष्टकालीन लीलाओं का सांगोपांग वर्णन ग्रंथ का कलेवर है।

डॉ. उमेश चन्द्र शर्मा
अध्यक्ष
श्री श्री नरहरि सेवा संस्थान
गुरुकुल मार्ग, वृन्दावन 281121 (मथुरा)
फोन : 0565-2455821

।। श्री श्री गौर गदाधरौ विजयेताम्।।

पुरोवाक्

श्रीधाम वृन्दावन इस जगत में चिन्मय भूमि के रूप में जाना जाता है। इस धाम में भगवान श्रीकृष्ण अपने परिकरों के साथ नित्य प्रतिदिन अष्टयाम लीला करते हैं। अखिल रसामृत मूर्त्ति ब्रजेन्द्र नन्दन श्रीकृष्ण की स्वरूपा शक्ति ब्रज देवियों के मुकुटमणि महाभाव स्वरूपा श्रीराधिका के संग नित्य लीला करते हैं। श्रीराधाजी के साथ लीला रस विनोदी श्रीकृष्ण प्रेम सेवा ही सर्व साध्य सार (अर्थात् परम पुरुषार्थ) है।

पाँच सौ तेरह वर्ष पूर्व भगवान श्रीकृष्णचन्द्र श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुजी के रूप में जो कि श्रीराधाजी के भाव और कांति से संवलित श्रीधाम नवद्वीप में अवतीर्ण हुए थे। करूणावतार श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने इस परम दुर्लभ प्रेम सेवा का जीवों को अधिकार प्रदान करने के लिए रागानुगा ब्रजभक्ति का इस जगत में प्रचार–प्रसार करने के निमित्त, स्वचयनित परिकर वृन्दों में शक्ति संचार कर परम दुर्लभ ग्रन्थों का उनके द्वारा प्रणयन कराया था।

श्रीमन् महाप्रभु ने अपने परिकरों को द्वापर की ब्रज लीला स्थलियों को प्रकट कराने के लिए ब्रज में भेजा, और ब्रजभक्ति तथा भागवत धर्म के वितरण के निमित्त आदेश दिया, जिनमें श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी, श्रीभूगर्भ गोस्वामी, श्रीलोकनाथ गोस्वामी, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती आदि प्रमुख हैं। इन्होंने ही दिव्य नेत्रों से नित्य लीलाओं का अवलोकन कर विभिन्न ग्रन्थों की रचना की है।

अष्टयामं लीला शब्द से श्रीगौर गोविन्द को अवलम्बन कर निशान्त, प्रातः, पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, सायाह्न प्रदोष और नक्त भेद दैनन्दिन लीलाओं को ही जानना है। श्रीधाम ब्रजमण्डल में चार सिद्ध बाबा प्रसिद्ध हैं; जिनमें सिद्ध श्री जयकृष्णदास बाबा (काम्यवन) सिद्ध श्री मधुसूदनदास बाबा (सूर्यकुण्ड) सिद्ध श्री कृष्णदास बाबा (रणवारी) प्रस्तुत ग्रंथ के संकलनकर्ता सिद्ध श्री कृष्णदास (तातपाद) बाबा (गोवर्द्धन) हैं; आप लीला स्मरण में अहर्निश अवगाहन करते रहते थे। लीला–स्मरण आपको सिद्ध थी।

ग्रन्थकार :–

दामोदरपुर (मयूर भंज, उड़ीसा) के श्री सनातन कानूनगो की द्वितीय पत्नी के गर्भ से जन्मे वट कृष्ण अपनी माँ के आदेश से सोलह वर्ष की उम्र में गृह त्याग कर ब्रज में चले आये। वहाँ श्री वैष्णव चरणदास बाबा (पद कल्पतरू–संकलन कर्त्ता) और श्रीपाद जयकृष्ण दास बाबा (काम्यवन) से भजन शिक्षा ग्रहण की। घोर त्याग वैराग्य के फलस्वरूप देह क्षीण और नेत्र–ज्योति

नष्ट हो गई। ब्रज की अधिष्ठात्री देवी श्रीराधारानी ने कृपा कर दृष्टि प्रदान की और आदेश दिया, गोवर्द्धन जाओ। मुझ में भक्ति रखने वाले वैष्णवों को मेरी प्राप्ति का सहज साधन सिखाओ। कालान्तर में वट कृष्ण ही सिद्ध कृष्णदास नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने ईश्वरीय कृपा से श्रीराधाकृष्ण की नित्य लीलाओं का जिस ग्रन्थ में वर्णन किया है, वह यही भावना सार संग्रह है।

ग्रन्थ परिचय :–

'भावना सार संग्रह' संवत १८७८ में पूरा हुआ। इसमें श्रीकृष्णदास कविराज, कवि कर्णपूर, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती आदि परम विद्वानों के चौंतीस ग्रन्थों से लगभग इकत्तीस सौ श्लोक संकलित हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में युगपत् मंत्रमयी एवं स्वारसिकी उपासना इंगित है। इनके माध्यम से ग्रन्थकार ने महाप्रभु चैतन्य देव और उनके परिकरों द्वारा निर्देशित व्रज की रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत श्री राधा कृष्ण की अष्टकालीन लीला–स्मरण की पद्धति को साधकों के लिये संरक्षित किया है।

सिद्ध उपासना की परिपक्वा अवस्था में निमग्न अनवरत लीला स्मरण से विविध ग्रंथों के अन्तर्गत अष्टयाम लीला में वर्णित श्लोकों का स्फुरण स्वतः होने लगा। आपका मन रूपी भंवरा उद्यान के उन समस्त प्रसूनों के परागों को संचित कर लाया जिसने समय पाकर बाबाजी महाराज के हृदय कमल से निसृत होकर चारों दिशाओं को सुरभित कर दिया। उस विराट अनुभूति का रस बोध और रसास्वादन हम श्री श्री भावना सार संग्रह में करते रहेगें।

ग्रन्थ की विषय वस्तु –

ग्रन्थ आठ संग्रहों में विभक्त है, जिनमें श्रीराधाकृष्ण की अष्ट प्रहर लीलाओं का वर्णन है। प्रत्येक संग्रह की लीला का नाम, उसकी अवधि, श्लोक–संख्या और संक्षिप्त परिचय नीचे दिये गये हैं। ज्ञात हो कि ग्रन्थकार ने प्रत्येक संग्रह में पहले नवद्वीप–लीला के सन्दर्भ में गौरांग देव का स्मरण कियां है, फिर ब्रज लीला का वर्णन किया है। यह भी ज्ञात हो कि एक दण्ड में चौबीस मिनट होते हैं, एक प्रहर में तीन घण्टे। ग्रन्थ के उपसंहार में ग्रन्थकार ने अपना नाम, स्रोतग्रन्थ, ग्रन्थसमापन–तिथि आदि का उल्लेख किया है।

१. प्रथम संग्रह – निशान्त लीला : –

इस लीला के १८५ श्लोक हैं। निशान्त लीला की अवधि ६ दण्ड मानी गई है। (रात्रि ३.३६ से प्रातः ६ बजे तक)। (नवद्वीप में) श्रीवास–भवन में महाप्रभु की निद्रा भंग होती है; भक्तजनों

के साथ वे अपने घर आते हैं। (ब्रज में) पक्षियों के कलरव से श्रीराधा श्यामसुन्दर की निद्रा भंग होती है। युगल निकुंज त्यागकर अपने–अपने घर जाकर शैय्या पर लेट जाते हैं।

२. द्वितीय संग्रह – प्रातः लीला : –

इस लीला के ४६६ श्लोक हैं। इस लीला की अवधि ६ दण्ड है (प्रातः ६ बजे से ८.२४ बजे तक)। (नवद्वीप) संकीर्तन में विक्षत महाप्रभु का श्रीअंग देखकर माँ शची का वात्सल्य उमड़ता है। महाप्रभु स्नानकर श्रीकृष्ण अधरामृत लेते हैं (ब्रज में)। श्रीकृष्ण गोदोहन करते हैं। माँ यशोदा के आदेश से कुन्दलता जावट आती हैं, और श्रीकृष्ण के लिए रसोई के निमित्त राधारानी को नन्दालय ले जाती हैं।

३. तृतीय संग्रह – पूर्वाह्न लीला :–

इस लीला के ३६६ श्लोक हैं। पूर्वाह्न लीला की अवधि ६ दण्ड है (प्रातः ८.२४ से १०. ४८ बजे तक) – (नवद्वीप) महाप्रभु श्रीकृष्ण की वन गमन लीला का स्मरण कर अष्ट सात्विक भावों से विभूषित हो उठते हैं। (ब्रज में) सखाओं के साथ कृष्ण–बलराम वन–गमन करते हैं। कुन्दलता आदि सखियाँ राधाजी को लेकर जावट लौटती हैं। जटिला के आदेश से राधाजी सूर्य पूजा करने सूर्य कुण्ड जाती हैं। श्रीकृष्ण वन भ्रमण के बहाने राधाकुण्ड पहुँच कर राधाजी की प्रतीक्षा करते हैं।

४. चतुर्थ संग्रह – मध्याह्न लीला :–

इस लीला के १३१७ श्लोक हैं। मध्याह्न लीला की अवधि १२ दण्ड है (प्रातः १०.४८ से अपराह्न ३.३६ बजे तक)। (नवद्वीप में) महाप्रभु युगल की मध्याह्न लीलाओं का स्मरण कर भक्तों के आगे उनका वर्णन करते हैं; स्वयं अनुकरण करने लगते हैं। (ब्रज में) युगल मिलन, विभिन्न लीलायें और हास–परिहास। जटिला की उपस्थिति में ब्रह्मचारी वेशधारी कृष्ण का पुरोहित बनकर राधारानी से सूर्य पूजा कराना। श्रीकृष्ण सखाओं के बीच वन में लौटते हैं, राधारानी स्वगृह लौटती हैं।

५. पंचम संग्रह – अपराह्न लीला :–

इस संग्रह में ११० श्लोक हैं। इस लीला की अवधि ६ दण्ड है (अपराह्न ३.३६ से सायं ६ बजे तक)। (नवद्वीप में) श्रीवास के पुष्प उद्यान में महाप्रभु श्रीकृष्णलीला की स्मृति में भाव विभोर हो जाते हैं। (ब्रज में) धूल धूसरित कृष्ण वेणु वादन करते बलरामजी और सखाओं के साथ गायों को लेकर घर लौटते हैं। मार्ग में जावट में राधारानी के उद्यान के पास एक बार पुनः युगल–मिलन।

६. षष्टम संग्रह – सायाह्न लीला :–

इस संग्रह में ७७ श्लोक हैं। इस लीला की अवधि ६ दण्ड है (सायं ६ से रात्रि ८.२४ बजे तक)। (नवद्वीप में) गौरांग देव ब्रज लीला की स्मृति में प्रेम विभोर हो उठते हैं। (ब्रज में) नन्दीश्वर से तुलसी सखी आती हैं, और विरह व्याकुल राधा को कृष्ण का वृतान्त सुनाती हैं। वे गोदोहन के लिये गौशाला आये हैं, यह सुनकर राधाजी स्नान के बहाने पावन सरोवर–तट स्थित उद्यान में आती हैं। युगल परस्पर दर्शन करते हैं।

७. सप्तम संग्रह – प्रदोष लीला :–

इस संग्रह की लीलाओं के २१४ श्लोक हैं। प्रदोष लीला की अवधि भी ६ दण्ड है (रात्रि ८.२४ से १०.४८)। (नवद्वीप में) श्रीगौरचन्द्र ब्रजलीला का स्मरण कर (ब्रज में) श्रीकृष्ण बलराम भोजनादि के पश्चात् राजभवन जाते हैं। शीघ्र ही माँ यशोदा उन्हें बुलवाकर, दूध पिलाकर शैय्या पर सुला देती हैं। यथा समय इधर कृष्ण, उधर राधा अलक्षित रूप से कुंज में पहुँचते हैं।

८. अष्टम संग्रह – नक्त लीला :–

इस संग्रह में २६८ श्लोक हैं। रात्रि लीला की अवधि १२ दण्ड है (रात्रि में १०.४८ से रात्रि ३.३६ तक)। (नवद्वीप में) सपरिकर गौरांगदेव श्रीवास आँगन में नृत्य–कीर्तन करते हैं, भोजनकर पुष्पोद्यान में शयन करते हैं। (ब्रज में) सखियों सहित युगल का वन–विहार, वंशीवट–गमन, यमुना पुलिन पर रास आदि, अन्त में निकुंज में शयन।

६. उपसंहार :–

ग्रन्थ के उपसंहार में २५ श्लोक हैं। इसमें ग्रन्थकार ने सपरिकर गौरांगदेव की वन्दना की है। उन ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जिनसे स्वान्तः सुखाय श्लोक उद्धृत किये हैं। "रचितः कृष्णदासेन श्रीगोवर्द्धन वासिना" कहकर ग्रन्थकार ने अपना नाम परिचय दिया है।

यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध था। यह सन् १६५० में स्व० श्रीहरीदासदास, "श्रीहरि बोल कुटीर" श्रीधाम नवद्वीप, पश्चिम बंगाल द्वारा सर्वप्रथम संस्कृत भाषा से बंगला लिपि में प्रकाशन हुआ था। इसके आधार पर (बंगाली व्याख्या से) हिन्दी में व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। यह दुर्लभ ग्रन्थ अब बंगला लिपि में भी विलुप्त प्रायः है। इस ग्रन्थ की विषय वस्तु हिन्दी भाषियों के लिए अगोचर है।

हिन्दी भाषा प्रेमियों के हितार्थ इस अनुपम दुर्लभ ग्रन्थ का, हिन्दी भाषा में प्रकाशन किया गया है।

पुरुषोत्तम साहू
वृन्दावन

सूची पत्रम्

अष्टयाम लीला

सांकेतिक चिह्नानि

अ०	— अलंकार कौस्तुभ	प०	— पद्यावली
आ०	— आनन्द वृन्दावन चम्पूः	भर०	— भक्ति रसामृत सिन्धुः
उ०	— उज्ज्वल नीलमणिः	भा०	— श्रीमद्भागवतम्
कर्णा०	— श्रीकृष्ण कर्णामृतम्	भाग०	— वृहद् भागवतामृतम्
कृभा०	— श्रीकृष्ण भावनामृतम्	मधु०	— मधु केलिवल्ली
कृष्णगणो०	— श्रीराधाकृष्ण गणोधेश दीपिका	रति०	— श्रीगोविन्द रतिमंजरी
कृष्णा०	— श्रीकृष्णाह्निक कौमुदी	रा०	— श्रीराधासुधानिधिः
क्र०	— क्रम दीपिका	ल०	— ललित माधव नाटकम्
गी०	— गीत गोविन्दम्	लह०	— स्तवामृत लहरी
गोपा०	— श्रीगोपाल चम्पूः	वि०	— विदग्ध माधवनाटकम्
गो वि०	— श्रीगोविन्द लीलामृतम्	वृन्दा०	— वृन्दावन महिमामृतम्
चन्द्रा०	— श्रीचैतन्य चन्द्रामृतम्	ब्रज०	— ब्रजरीति चिन्तामणिः
चन्द्रो०	— श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटकम्	शेष०	— भक्ति रसामृत शेषः
चिन्ता०	— दानकेलि चिन्तामणिः	सं०	— संगीत माधवम्
चै०	— श्रीचैतन्य चरित महाकाव्यम्	साच०	— साधनामृत चन्द्रिका
ज०	— श्रीजगन्नाथ वल्लभ नाटकम्	स्त०	— स्तवमाला
दा०	— दानकेलि कौमुदी	स्तवा०	— स्तवावलिः

❖ श्री श्री गौरांग विधुर्जयति ❖

श्रीश्री भावना सार संग्रह:

प्रथम

निशान्त लीला

अज्ञान–तिमिरान्धस्य ज्ञानांजन–शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।१।।

सिंह–स्कन्धं मधुरमधुर स्मेर–गण्डस्थलान्तं, दुर्विज्ञेयोज्ज्वल रसमयाश्चर्य नाना विकारम्।
विभ्रत् कान्तिं विकच–कनकाम्भोजगर्भाभिरामा–मेकीभूतं वपुरवतु वो राधया माधवस्य।।२।।
(चन्द्रा० १३)

शोणस्निग्धांगुलिदल कुलं जातरागं परागैः, श्रीराधायाः स्तनमुकुलयोः कुंकुमक्षोदरूपैः।
भक्तश्रद्धामधु–नखमहः–पुंज–किंजल्कजालं, जंघानालं चरणकमलं पातु नः पूतनारेः।।३।।
(आ० १/२)

अनुवाद

(१) (संकलन कर्ता के स्वरचित ग्रन्थ 'पद्धति' से उद्धृत बंगला पद्य) मैं अज्ञान के कारण अंधा था, अच्छे–बुरे का ज्ञान न था। अपनी कृपारूपी शलाका से कृष्ण–ज्ञान रूपी अंजन लगाकर मुझे ज्योति प्रदान की– मैं ऐसे गुरूदेव को कोटि–कोटि नमस्कार करता हूँ। ऐसे करूणा सिन्धु प्रभु और नहीं।

(२) (पद्धति से) सिंह को लजाने वाला जिनका कण्ठ प्रदेश है, मनोहर गण्डस्थल है, मृदु–मन्द हँसी छिटकी है, जो अति गूढ़ रसमय है; जिनके श्रीअंग पर अश्रु–कम्प–पुलकादि अद्भुत सात्विक भाव–भूषण सुशोभित हैं, जिनके खिले स्वर्णकमल से श्रीअंग की मनोरम कांति को देख जगत् पागल हो रहा है– वे ही राधा–माधव के मिलित मूर्ति श्रीगौरांगदेव तुम सबका मंगल करें।

(३) पूतना–अरि श्रीकृष्ण के चरणकमल अपनी संवाहन आदि सेवाओं में नियुक्त कर हमारी रक्षा करें। आहा! चरण कमलों की माधुरी का क्या वर्णन करें ? स्निग्ध और रक्तवर्ण अंगुलियाँ इस कमल के पत्ते हैं। श्रीराधा के स्तन–मुकुलों से लगी कुंकुमचूर्ण रूपी पराग–राशि ने इसे अरूणिमा दी है। भक्तों की श्रद्धा ही इसका मधु है, नखों का प्रभा–पुंज ही केशरजाल है, और जंघायें नाल स्वरूप हैं।

भक्तिरसामृतसिन्धौ, चरतः परिभूत–कालजालभियः।
भक्तमकरानशीलित, मुक्तिनदीकान्नमस्यामि।।४।। (र० १/१/४)

प्रगे श्रीवासस्य द्विजकुलरवैर्निष्कुटवरे, प्रतिध्वान–प्रखैः सपदि गतनिद्रं पुलकितम्।
हरेः पार्श्वे राधास्थितिमनुभवन्तं नयनजैर्जलैः संसिक्तागं वरकनक गौरं भज मनः।।५।।

रात्रयन्ते त्रस्तवृन्देरितबहुविरवैर्बोधितौ कीरशारी–
पद्यैर्हृदैरहृद्यरपि सुखशयनादुत्थितौ तौ सखीभिः।
दृष्टौ हृष्टौ तदात्वोदित–रतिललितौ कक्खटीगीः सशंकौ,
राधाकृष्णौ सतृष्णावपि निज–निज जधाम्न्याप्ततल्पौ स्मरामि।।६।। (गोवि० १/१०)

(४) ('पद्धति' से) जो भक्तिरसामृत सिन्धु में विहार करते हैं, महाकाल रूपी जाल के भय को भी भगाते हैं; जो पंचविद्या मुक्तिरूपी नदियों को तुच्छ समझते हैं; जिनके हृदयों में अन्य अभिलाषा नहीं, उन्हीं मकररूपी गौरभक्तों के चरणों में मेरा कोटि–कोटि प्रणाम्।

(१) श्रीगौरचन्द्र

(५) ('पद्धति' से) श्रीवास–उद्यान में, मणि मन्दिर में रत्नपर्यंक पर कुसुमशय्या पर गौरांगदेव सो रहे हैं। भौरों और कोयलों की आवाज से निद्रा भंग होती है। अपने भाव में डूबे, हर्ष–विषाद–शंका आदि से युक्त, नेत्रों से प्रेमानन्द के अश्रु टपक रहे हैं, श्रीअंग पुलक–सुभोभित है। निकुंज में श्रीराधा–कृष्ण की विलास–लीला स्मरण कर लम्बी–लम्बी साँसें निकाल रहे हैं। अनुराग युक्त अरुणिम नेत्र कमलों की माधुरी देख भक्तजन प्रेम से भर उठते हैं। दोनों हाथों की अंगुलियाँ एक–दूसरे के बीच कसी हुई हैं और उस स्थिति में उन्हें सिर पर रखे अलसाये प्रभु ने अंगड़ाई ली। चुटकी बजाकर जम्हाई ली, तो प्रभु के दाँत झिलमिलाये और नासिका खिल गई। इसी समय स्वरूप आदि भक्तों ने महाप्रभु की आरती की। कोई मधुर स्वर में गा रहा है, कोई मृदंग–करताल बजा रहा है और कोई प्रभु का श्रीमुख देख–देखकर प्रेमोन्मत्ता होकर नाच रहा है। इस प्रकार भक्तजन परम आनन्द में डूबे हैं। उस आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता। तत्पश्चात् महाप्रभु भक्तों के साथ अपने घर जाते हैं। द्वार पर पहुँचकर भक्तों को विदा करते हैं और शैय्या पर जाकर लेट जाते हैं। अरे मन! निशान्त का यह गौरांग–चरित्र आनन्दपूर्वक स्मरण कर।

सखियों का जगना, परिहासोक्ति एवं विविध सेवा

(६) मूल सूत्र : दिन निकलने को है, इस बात से डरी वृन्दा देवी ने श्रीराधाकृष्ण को जगाने के लिये शुक–सारिका आदि पक्षियों को आदेश दिया था। उनके कलरव तथा प्रिय–अप्रिय कविता पाठ से जागे– उस समय के रति विषयक उतावलेपन से परम सुन्दर–दूर से सखियों द्वारा देखे– कक्खटी नामक वानरी के चीत्कार से शंकित श्रीराधा–कृष्ण एक दूसरे को सतृष्ण नेत्रों से देखते हुए अपने–अपने घरों को चल पड़े और जाकर शय्या पर लेट गये।

प्रतिस्तसेवावसर–प्रबोधिता सदातनाभ्यास जुऽसोदथ किंकरीः।
निद्रैव रात्रयन्तमवेत्य ता जहौ, सैव स्वयं जागरयाञ्चकार किम् ?।।७।।

(कृ० भा० १/४)

उत्थाय तल्पाच्चकितेक्षणाः क्षणान्, दुहानयोर्नागर चक्रवर्तिनोः ।
स्वापं रहः स्वापमभंगमंगना, आलक्ष्य तूष्णीमधिशय्यमासत।।८।।

(कृ० भा० १/५)

पप्रच्छुरन्योन्यमिमा मिमानया, रसं परीहासभृतं सजृम्भया।
गिरा चिराज्जागर मूढ़घूर्णन–स्वस्वाक्षि–भृंगी–ततिलीढ़वक्षसः।।६।।

(कृ० भा० १/६)

निशान्त–सेवोचित–माल्यवीटिका, कृत्यात्तचित्ता अथ काचिदाह ताः।
अनंगबद्धांग–युवद्वयोच्छलत्–सौरभ्य–सौलभ्यवती रसोच्चला।।१०।।

(कृ० भा० १/७)

---

(७) जिन सखियों ने अपनी–अपनी सेवा के समय जगने का अभ्यास किया है, उन सेवा परायणाओं को क्या स्वयं निद्रा ने निशान्त काल जान क्षणभर बाद जगा दिया ?

(८) वे निद्रा भंग के पश्चात् यह सोचकर कि सेवाकाल निकल गया चकित नेत्रों से चारों ओर देखने लगीं। यह देखकर कि आनन्द–महोत्सव पूर्ण करने वाले नागर–चक्रवर्ती श्रीकृष्ण और श्रीराधा नागरी मणि की नींद नहीं टूटी, वे शय्या पर ही नीरव बैठी रहीं।

(६) लगता है उन्होंने परिहास गर्भ रस का परिमाण (रस यहीं तक है, अथवा इसके परे भी कुछ है– इसका भान) करते ही उबासी लेते हुए एक–दूसरे से पूछा–"अरी सखियों ! ब्रज–नवयुवराज के साथ अतिशय विहार से थकी और निद्रित तुम लोगों की निद्रा टूटी कि नहीं?" तब वे दीर्घ जागरण से चलायमान नेत्र भृंगों को अपने–अपने वक्ष स्थलों की कमल कलियों से लगे श्रीहरि के नख–चिन्हों रूपी मकरन्द का आस्वादन कराने लगीं।

(१०) तत्पश्चात् कुछ किंकरियाँ श्रीराधाकृष्ण की निशान्त कालोचित सेवा के लिये मालायें गूँथने और ताम्बूल (पान) के बीड़े तैयार करने लगीं। उसी समय अनंगवाण से सुदृढ़ भाव से आबद्ध हृदय श्रीराधाकृष्ण का तत्कालीन अंग–सौरभ प्राप्तकर और उन दोनों को दृढ़ आबद्ध देखकर डरकर भागी एक रसमयी चंचल किंकरी ने शय्या पर बैठीं सखियों के पास आकर कहा– "अरे, तुम लोग जिनके लिये ये मालायें बना रही हो और पान लगा रही हो, वह देखो, वे दोनों एक–दूसरे से कैसे बँधे पड़े हैं।

जानीत जालाध्व–गतास्यपद्माः, सद्मान्तराल्यः स्वदृशः प्रहित्य।
कान्तौ नितान्तातनुलास्यचुंचु, धिनोति सुप्तिः परिरभ्य कीदृक् ?।११।।
(कृ० भा० १/८)

इतस्ततो न्यस्तमणि–प्रदीपा, नफुल्ल–नीलोत्पल चम्पकाभान्।
विधत्त एतौ स्वमयूखवृन्दै, रनावृतैर्मण्डन–माल्य–चेलैः।।१२।। (कृ० भा० १/६)

स कृष्णमेघः स्थिरचंचलाली, वृतोऽति माधुर्यरसैरमुः किम् ?
आस्नापयत् स्वार्हण–कृत्यवृत्ताः, प्रत्यर्हणेनादित एव धिन्वन्।।१३।।
(कृ० भा० १/१५)

ताम्बूल – माला – विविधानुलेपै – रंगारधान्यागुरुवैश्वधूपैः।
कालोचितैस्तैः प्रतिपाद्यमानैः, कतिक्षणांस्ता गमयाम्बभूवुः।।१४।।
(कृ० भा० १/१६)

प्रभञ्जनो रंजयितुं निकुञ्ज–राजौ व्यराजिष्ट मुदा तदानीम्।
मन्ये प्रबुध्य श्लथ–दुर्बलांगो, द्रुतं प्रयातुं नतरां शशाक।।१५।। (कृ० भा० १/१७)

---

(११) अरी सखियों ! जाली पर अपने वदन कमल रखकर क्रीड़ागृह में अपने नेत्रों को भेज, जान लो कि निद्रारूपी संचालिका कन्दर्पनृत्य में महापटु कान्त युगल को आलिंगन में कैसा सुखी कर रही है।

(१२) सखियों ने देखा– श्रीराधाकृष्ण सुदृढ़ आलिंगन–पाश में बद्ध सो रहे हैं; वस्त्र–आभूषण माल्यादि किसी के अंग पर नहीं; श्रीराधा की पीठ–पीछे रखे मणि प्रदीप उनकी अंग–कान्ति से चम्पक–कलिकाओं–जैसे दीख रहे हैं और श्रीकृष्ण की पीठ–पीछे की मणि प्रदीपावलि नीलकमल–कलियों–सी लग रही है।

(१३) युगल माधुरी देख परम आनन्दित सखियों की वह दशा देख कोई दासी अपनी संगिनी से कहती है– "अरी देख, देख ! स्थिर विद्युत–माला से घिरा यह कृष्ण–मेघ, लगता है, अपनी माधुर्यरसधार बरसाकर इन लोगों को स्नान करा रहा है। आश्चर्य की बात यह है कि ये सेविकायें प्रभु की सेवा करती हैं, तब वे सन्तुष्ट होकर इन्हे पारितोषिक देकर सुखी किया करते हैं, पर अब उल्टा हो रहा है– सेवा से पहले ही पारितोषिक दे रहे हैं।

(१४) दूसरी ओर कुछ दासियाँ पान–बीड़ा तैयार करने लगीं, मालायें बनाने लगीं और विविध अंगराग प्रस्तुत करने लगीं; कोई धूपदानी में धूप–अगुरू डालने लगी– इस प्रकार उन लोगों ने कुछ समय बिताया।

(१५) उस समय निकुंजराज–युवयुगल को आनन्दित करने की इच्छा से मलय पवन प्रवाहित हो रहा था। लगता है इस मलय–समीर ने भी इस निशान्त काल में ही निद्रा–त्याग किया है, तभी अपने श्लथ–दुर्बल शरीर को लेकर चल नहीं पा रहा और मृदुमन्द गति से प्रवाहित हो रहा है।

या वृक्षवल्ल्यो व्यकसंस्तदैव ता–श्चुम्बंस्तदामोद–भरैर्दिशो दश।
प्रसारितैः श्वासपथ–प्रवेशितै–र्भृंगावली जागरयाञ्चकार सः।।१६।।

(कृ० भा० १/१८)

तद्गुंजितै रंजित–सुस्वरैर्भृशं, प्रबुध्य वृन्दाऽथ विलोक्य सर्वतः।
स्वनाथयोर्जागरणे पतत्रिणो, न्ययुंक्त कालज्ञतया रयादियम्।।१७।।

(कृ० भा० १/१६)

आसन् यदर्थं प्रथमं द्विजेन्द्राः, सेवा–समुत्कण्ठधियोऽपि मूकाः।
वृन्दा–निदेशं तमवाप्य हर्षात्, क्रीड़ा–निकुञ्जं परितश्चुकूजुः।।१८।।

(गोवि० १/१२)

अथालिवृन्दं मकरन्दलुब्धं, रतीशितुर्मंगल–कम्बुतुल्यम्।
प्रफुल्ल–वल्लीचय–मंजुकुंजे, जुगुञ्ज तल्पीकृत–कंजपुंजे।।१६।।

(गोवि० १/१४)

झंकृतिमंगीकुरुते, रतिमंगल–झल्लरीव गोविन्दम्।
बोधयितुं मधुमत्ता, मधुपी–ततिरुद्भटानन्दा।।२०।।

(गोवि० १/१५)

पिकश्रेणी मनोजस्य वीणेव व्यक्तपंचमम्।
आललाप स्वरं तारं कुहूरिति मुहुर्मूहुः।।२१।। (गोवि० १/१६)

---

(१६) मलय पवन उस समय विकसित वृक्षलताओं का चुम्बन कर उनका परिमल लेकर दशादिक आमोदित करता हुआ दौड़ने लगा और उसने पुष्पों की गोद में अत्यधिक मधुपान कर सोये भृंगों के श्वासपथ पर प्रविष्ट होकर उन्हें भी जगा दिया।

(१७) भृंग–गुंजन से जगीं कालज्ञा वृन्दा देवी ने चकित नेत्रों से चारों ओर निरीक्षण कर अपने नाथ–युगल को जगाने के लिये शीघ्र ही पक्षियों को नियुक्त किया।

(१८) वृन्दा के आज्ञाकारी पक्षी कुंज में पहले ही आकर मूक की तरह बैठे थे, अब उनके आदेश से कुँज में चारों ओर आनन्द–कलरव करने लगे।

(पक्षी कलरव से युगल का निद्रा भंग)

(१६) उसी समय मधुलोभी भ्रमर कमल दलों वाली शय्या से सुशोभित एवं प्रस्फुटित लताओं से भूषित कुंज में रतिपति की मंगल शंखध्वनि की तरह गुंजन करने लगे।

(२०) मधुपान–उन्मत्त प्रचुरतर आनन्द–उत्फुल्ल भ्रमरियाँ भी गोविन्द को जगाने के लिये झंकार के बहाने रति मंगल–सूचक झाँझ की तरह गुनगुन शब्द करनी लगीं।

(२१) कोयलें भी कामदेव की वीणा की तरह उच्च पंचम तान में रह–रहकर कुहू–कुहू करने लगीं।

रति–मधुर–विपंची–नादभंगी दधाना, मदन–मद–विकूजत्कान्त पार्श्वे निषण्णा ।
मृदुलमुकुलजालास्वादविस्पष्ट कण्ठी, कलयति सहकारे काकलीं कोकिलाली।।२२।।
(गोवि० १/१७)

विद्राव्य गोपी–धृतिधर्मचर्या, लज्जामृगीर्मानवृकेष्वमर्षी।
कपोतघूत्कारमिषेण शंके, गर्जत्ययं कामतरक्षुराजः।।२३।।
(गोवि० १/१८)

राधाधैर्यधराधरोद्धृतिविधौ केऽन्ये समर्था बिना,
कृष्णं कृष्ण सुमत्त कुंजरवशीकारेऽप्यलं श्रृंखलाः।
अन्याः का वृषभानुजामिह बिना धन्यामतीवादृताः,
केकाः किं समुदीरयन्ति शिखिनस्तौ बोधयन्तः प्रगे।।२४।। (गोवि० १/१६)

ह्रस्व–दीर्घ–प्लुतैर्युक्तं कू–कूकू–कू इति स्वरम्।
कुक्कटोऽप्यपठत् प्रातर्वेदाभ्यासी वटुर्यथा।।२५।।
(गोवि० १/२०)

अथ पक्षिणां कलकलैः प्रबोधिता–वपि तौ मिथोऽविदित–जागरौ तदा।
निविड़ोपगूहन–विभंग–कातरौ, कपटेन मीलित दृशावतिष्ठताम्।।२६।।
(गोवि० १/२१)

---

(२२) रसालवृक्ष पर कोकिलायें मदनमद मत्त कान्तों के पास बैठकर कोमल मुकुल का रसास्वादन कर सुस्पष्ट कण्ठ से रतिवीणा की तरह अस्पुष्ट मधुर निनाद करने लगीं।

(२३) इसी समय कामदेवरूपी तरक्षुराज (बाघविशेष) गोपियों की धृति (धैर्य), लज्जा और धर्माचार रूपी मृगी को डराकर और मानरूपी क्षुद्र बाघ के प्रति क्रोधान्वित होकर कपोत–घूत्कार (कबूतर की गुटर गूँ) के छल से गर्जन करने लगा।

(२४) श्रीराधा के धैर्य पर्वत का गर्व खर्व करने में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कौन समर्थ है? और श्रीकृष्णरूपी मत्त हाथी को वश में करने के लिये श्रृंखला के रूप में श्रीराधा के अतिरिक्त अन्य किसे आदर या धन्यवाद दिया जा सकता है ? – लगता है यह बताने के लिये ही मयूर प्रातः काल 'केका' रव से युगल को जगाने में लग गये।

(२५) जैसे प्रातःकाल ब्राह्मण बालक ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वर में वेदपाठ करते हैं, वैसे ही कुक्कुट (मुर्गे) 'कू कू कू कू' करने लगे।

(२६) तब श्रीराधाकृष्ण पक्षियों की काकली से जग जाने पर भी कुछ समय तक एक–दूसरे के निद्राभंग की बात नहीं जान पाये, पीछे जब जान गये, तो अपने गाढ़ आलिंगन के सुख–भंग के भय से कातर होकर कपट निद्रावेश में आँखें मूँदे रहे।

वृन्देंगिंतज्ञः सविचक्षणः 'शुकः', शुको यथा भागवतार्थ कोविदः।
'दक्षः' प्रबोधे जगतां प्रभोरति—प्रेमास्पदत्वानुपमः समभ्यधात्।।२७।।

(कृ० भा० १/२८)

जय स्मराशेष—विलास—वैदुषी— निष्णात—गोपीजनलोचनामृत !
प्राणप्रिया—प्रेमधुनी—मतंगज ! स्वमाधुरी—प्लावित—लोक संहते।।२८।।

(कृ० भा० १/२९)

प्रियाधरास्वाद—सुखे निमज्जसि, प्रबुध्यसे नेत्युचितं रसाम्बुधे !
रिरंसुतायां विरिरंसुरेवते, किञ्चाधुनेयं क्षणदा क्षणं द्यति।।२९।।

(कृ० भा० १/३०)

जहीहि निद्रां श्लथयोपगूहनं, व्रजं प्रतिष्ठासुररं प्रभो ! भव।
प्रातर्वभूवानुसर स्वचातुरीं, प्रच्छन्नकामत्वमथोररीकुरु।।३०।। (कृ० भा० १/३१)

जय व्रजानन्दन ! नन्दचेतः— पयोधि—पीयूषमयूख ! देव !
गोष्ठेश्वरी—पुण्यलता—प्रसून ! प्रयाहि गेहाय धिनु स्वबन्धुन।।३१।। (कृ० भा० १/३२)

शुक—सारिका का प्रबोधन—प्रकार

(२७) जैसे भगवत्प्रेमास्पद के रूप में निरुपम और भागवतार्थ विशारद श्रीशुकदेव ने जगद्वासियों में ज्ञान उत्पन्न करने में समर्थ पद्यावलि कीर्तन किया है, वैसे ही वृन्दा देवी का इंगित पाकर 'दक्ष' और 'विचक्षण' नामक शुक जगत् के स्वामी को जगाने के लिये पद्यमाला कीर्तन करने लगे।

(२८) 'दक्ष' कहते हैं— "हे अखिल कन्दर्प—विलास—पंडित ! हे गोपीजन—लोचनामृत ! हे प्राण—प्रिया—प्रेमतरंगिनी—मत्तमातंग (हाथी) ! अपनी मधुरिमाओं से समस्त लोकों को भरने वाले !

(२९) हे रस सागर ! तुम प्रिया के अधरास्वादन—सुख में निमग्न हुए सो रहे हो, यह अनुचित नहीं, किन्तु तुम्हारी रमण की इच्छा पूरी करने के कारण जिस रात्रि ने 'क्षणदा' (उत्सवदायिनी) नाम से प्रार्थना प्राप्त की थी, वही अब विगत होकर तुम्हारा रमणोत्सव भंग करने के कारण फिर 'क्षणदा' (उत्सवनाशिनी) नाम ग्रहण कर रही है !"

(३०) अब 'विचक्षण' कहते हैं— "हे प्रभो ! निद्रा त्यागो, निविड़ आलिंगन से प्रेयसी को शिथिल करो; शीघ्र ही व्रज जाओ। देखो न, प्रभात हो गया, चतुराई से प्रच्छन्न कामुकता अंगीकार करो, अन्यथा तुम्हारी व्यक्त कामुकता ही उद्घोषित हो उठेगी।

(३१) हे व्रजजन—आनन्द ! हे नन्दचित्त—दुग्धसिन्धु—सुधाकर ! हे देव ! हे व्रजेश्वरीपुण्यलता—कुसुम! घर जाकर अपने बंधुओं को सुखी करो। (तुममें आसक्त चित्त नन्द महाराज यदि दैवयोग से यहाँ आ गये, तो महा विपद होगी !)

गोकुलबन्धो ! जय रससिन्धो ! जागृहि तल्पं त्यज शशिकल्पम्।
प्रीत्यनुकूलां श्रितभुजमूलां, बोधय कान्तां रतिभर–तान्ताम्।।३२।।

(गोवि० १/२३)

उदयं प्रजवादयमेत्यरुण–स्तरुणीनिचये सहजाकरुणः।
निभृतं निलयं व्रजनाथ ! तत–स्तवरितोऽट कलिन्दसुता–तटतः।।३३।।

(गोवि० १/२४)

शारी 'शुभा' साऽथ जगाद 'सूक्ष्मधीः' शारी यथा देवन–सम्मत–स्थितिः।
जयेश्वरि ! स्वीय–विलास–सौभग–श्री–तर्षितश्रीमुख–मुख्ययौवते।।३४।।

(कृ० भा० १/३३)

कमलमुखिः ! विलासायासगाढ़ालसांगी, स्वपिषि सखि ! निशान्ते यत्तवायं न दोषः।
दिगियमरुणि तैन्द्री किन्तु पश्याविरासीत्तव सुखमसहिष्णुः साध्वि ! चन्द्रासखी व।।३५।।

(गोवि० १/२५)

शेषेऽधुना यद्रतिवल्लभास्य–राजीव–राजन्मधुपान मत्ता।
असाम्प्रतं तत् खलु साम्प्रतं ते, प्रातस्ततो जागरयाम्यहं त्वाम्।।३६।।

(कृ० भा० १/३४)

---

(३२) अब 'मंजुभाषिणी' सारिका कहती है– हे गोकुल बंधो ! हे रससिन्धो ! तुम्हारी जय हो। अब जगकर चन्द्रमा जैसी शुभ्र शय्या त्यागो और परम प्रीतिमयी, भुजमूलाश्रित (कंधे पर सोयीं) एवं रतिरभस से क्लान्त कान्ता को भी जगाओ।

(३३) हे व्रजनाथ ! तरुणियों के प्रति स्वभाव से अति निर्दय यह सूर्य, वह देखो, तेजी से उदयाचल जा रहा है, तुम भी यमुना–तट त्यागकर तुरन्त अपने घर जाओ।

(३४) जैसे पासे की गोटियाँ पासे के साथ रहती हैं, वैसे ही युगल की रसक्रीड़ा तक (उनके पास रहने के कारण) जानकारी रखने वाली 'शुभ्रा' और 'सूक्ष्मधी' नामक सारिकायें श्रीराधा से कहती हैं– "हे वृषभानुनन्दिनि ! तुम सौभाग्य की भेरी (ढोल) बजाकर त्रिलोकी की नारियों को चमत्कृत कर रही हो, तुम्हारी जय हो !

(३५) हे कमलमुखि ! विलास के श्रम से उत्पन्न गाढ़ आलस्य के कारण तुम निशान्त काल में भी निद्रासुख भोग रही हो, हे सखि! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं, किन्तु हे साध्वी ! वह देखो, पूर्व दिग्बधु चन्द्रावली सखी की तरह तुम्हारे सुख के प्रति असहिष्णु होकर क्रोध से आरक्तिम हो उठी है !

(३६) तुम रतिवल्लभ श्रीकृष्ण के वदन कमल–मधुपान में मत्त होकर सो रही हो, यह प्रभात के समय तो उचित नहीं, अतः अब तुम्हें जगा रही है।

कृष्णोऽप्यनिद्रः प्रिययोपगूढ़ः, कान्ताऽप्यनिद्राऽप्यमुनोपगूढ़ा।
तल्पात् प्रभाताकुलमप्यनल्पा– न्नोत्थातुमेतन्मिथुनं शशाक।।३७।।

(गोवि० १/३८)

कृष्णस्य जानूपरियंत्रित–सन्नितम्बा, वक्षःस्थले धृतकुचा वदनेऽर्पितास्या।
कण्ठे निवेशितभुजाऽस्य भुजोपधाना, कान्ता न हींगति मनागपि लब्धबोधा।।३८।।

(गोवि० १/३६)

श्रीकृष्णलीला–रचनासु दक्ष– स्तत् प्रेमजानन्द–विफुल्लपक्षः।
दक्षाप्व्य आह श्रितकुञ्जकक्षः, शुकः समध्यापित–कीरलक्ष्यः।।३६।।

(गोवि० १/४१)

एकं प्राच्यामरुण–किरणापाटलायां विधत्ते, चक्षुः कान्ते त्वरित मपरं दूरगे चक्रवाकी।
शंकाक्रान्तास्तरुकुहरगा मूकता यान्ति घूकाः, शंके भास्वानुदयमुदगात् कृष्ण! निद्रां जहीहि।।४०।।

(गोवि० १/३२)

जय जय गुण सिन्धो ! प्रेयसी–प्राणबन्धो ! ब्रजसरसिजभानो ! सत्कला रत्नसानो!
इह हि रजनि–शेषे किंमना नाथ ! शेषे समयमवकलय्यापीष्यते कुंज–शय्या ?।४१।।

(कृष्णा० १/१६)

---

(३७) श्रीराधाकृष्ण जगकर भी एक–दूसरे के प्रगाढ़ालिंगन में आबद्ध हुए लेटे हुए हैं। रात्रि–अवसान से वे अति चंचल हो उठे हैं, किन्तु क्रीड़ा सुखमय मनमोहन शय्या से उठ नहीं पाते।

(३८) श्रीराधा श्रीकृष्ण के जानु के नीचे नितम्ब, वक्षस्थल पर उरोजद्वय, वदन पर वदन रखकर, भुजा द्वारा कण्ठ आलिंगन कर और बाहुओं को उपधान (तकिया) बनाये। (रसालस एवं निद्रावेश में) हैं, इसलिये चैतन्य प्राप्त करके भी वे किंचित् भी अंग–संचालन नहीं कर पा रहीं।

(३६) लाख–लाख शुकों के अध्यापक, श्रीकृष्ण–लीला–रचना में सुदक्ष, कृष्ण प्रेमानन्द में पुलक–उत्फुल्ल पंखों वाले 'दक्ष' नामक शुक कुंज कक्ष में रहते हुए कहने लगे।

(४०) हे कृष्ण ! वह देखो सूर्य उदयाचल जा रहा है। चक्रवाकी (चकवी) एक आँख से दिनकर के किरणजाल से लाल हुई पूर्व दिशा की ओर देख रही है और दूसरी से अति दूरवर्ती प्रिय पति को ! दिवान्ध पेचक (उल्लू) भी काक आदि के भय से वृक्ष कोटरों (खोखरों) में नीरव प्रवेश कर रहे हैं, अतएव तुम शीघ्र ही निद्रा त्यागो।

(४१) हे गुणसिन्धो ! हे प्रेयसी प्राण बन्धो! ब्रज–कमलों को प्रकाशित करने वाले हे दिनकर ! हे सत्कला–समूह के सुमेरु (चौंसठ कलाओं से पूर्ण) ! तुम्हारी जय हो। तुम सर्वोत्कर्ष आविष्कार करते हो। हे नाथ ! तुम इस निशान्त काल में भी क्या सोचकर लेटे हुए हो ! उठने का समय देखकर भी क्या तुम्हें कुंज शय्या अच्छी लग रही है ?

अयमपि च शिखण्डी जागरित्वैव खण्डी, कृत–सुललित–केकः कालनिष्ठा–विवेकः।
प्रमिलति तव निद्राहानयेऽधीदरिद्राः, शिव शिव निजसेवा–कालमुज्झन्ति के वा? ४२।।

(कृष्णा० १/२४)

वृन्दा–वक्त्रादधिगतविद्या, सारी हारीकृत–बहुपद्या।
राधास्नेहोच्चय–मधुमत्ता, तस्या निद्रापनयन–यत्ता।।४३

(गोवि० १/३३)

निद्रां जहीहि विजहीहि निकुंज–शय्यां, वासं प्रजाहि सखि! नालसतां प्रयाहि।
कान्तञ्च बोधय न बोधय लोकलज्जां, कालोचितां हि कृतिनः कृतिमुन्नयन्ति।।४४।।

(गोवि० १/३७)

व्रजपतितनयांका संगतो वीतशंका, विधुमुखि ! किमु शेषे निर्भरं रात्रिशेषे ?
प्रमद–मधुप पुंजे मा परं तिष्ठ कुंजे, न गणयसि विगर्हां किं गुरुणामनर्हाम् ?४५।।

(कृष्णा० १/३)

सुदति ! कुमुदिनी नामंकमासाद्य लीना, मद–मधुकर माला कालमासाद्य लोला।
सरति कमलिनीनां राजिमेतामदीनां, भवति समय एव ग्लानि–हर्षादिदेवः।।४६।।

(कृष्णा० १/७)

---

(४२) काल मर्यादा का विवेक रखने वाला यह मयूर भी जगकर मयूरी से अलग होकर सुललित 'केका' ध्वनि कर रहा है। अरे, यह मयूरी भी तुम्हारी निद्रा भंग करने के लिए इसी ओर आ रही है ! अपना सेवा–काल क्या कोई बुद्धिमान व्यक्ति त्याग कर सकता है ?

(४३) जिस सारिका ने वृन्दा देवी से सीखी विद्याओं को हार की तरह कण्ठस्थ कर लिया था, श्रीराधा प्रेम–माध्वीक (सुरा) पान में उन्मत्त 'सूक्ष्मधी' नाम वह सारिका श्री राधा की निद्रा दूर करने की चेष्टा में बोली–

(४४) हे सखि! अब आलस्य छोड़ो, जगो, कान्त को भी जगाओ। निकुंज त्यागकर अपने घर जाओ, लोकलज्जा का अवसर न दो। समझदार व्यक्ति समयोचित कार्य ही करते हैं।

(४५) हे चन्द्र वदने! व्रजेन्द्रनन्दन के क्रोड़देश (वक्षस्थल) का सुसंग पाकर निःशंक चित्त से निशान्त मे भी प्रगाढ़ निद्रा में क्यों पड़ी हो? प्रमत्त मधुकर–पुंज से मण्डित इस कुंज में अब और मत रहो। तुम क्या गुरुजनों की व्यर्थ भर्त्सना, निन्दा आदि की बात नहीं सोच रहीं ?

(४६) हे सुदित (सुन्दर दांतोवाली) ! कुमुदिनियों के क्रोड़ देश में क्रीड़ामत्त मधुकर भी इस समय चंचल होकर प्रस्फुटित कमलिनियों के बीच अभिसार कर रहे हैं। इस ग्लानि (कुमुदिनी विषयक) और हर्ष आदि (कमलिनी विषयक) के प्रवर्तक (कारण) रूप में एकमात्र समय को ही तो मानना पड़ेगा ?

वियदतिलघुतारं त्वद्वपुः क्षुन्नहारं, विगलित—कुसुमानां वर्ष्म शेफालिकानाम्।
त्रितयमिद मिदानीमेकरूपं तदानीमपि यदपि तथापि त्वद्वपुः श्रीभिरापि।।४७।।
(कृष्णा० १/१०)

त्रुटित—पतित—मुक्ताहारवत्ते वियुक्ता, भवदुडू, ततिरेषा स्वल्पमात्रा व शेषा।
चिरशयनमवेक्ष्यारुन्धती ते विलक्ष्या, भवदिव परिवव्रे पश्य सप्तर्षिचक्रे।।४८।।
(कृष्णा० १/११)

इति कल—वचनानां शारिकाणां शुकानां, रुतमतिशयरम्यं श्रोत्रपेयं निशम्य।
विहित—शयनबाधा सा जजागार राधा, प्रथम स कृष्णः स्वापलीला—वितृष्णः।।४६।।
(कृष्णा० १/२८)

युगपदुभयनिद्रा—भंग—विध्वस्तमुद्रा, युगपदुभयनेत्रापांगभंगी विचित्रा।
युगपदुभय घूर्णा—जात—संक्लेश—पूर्णा, भवदुभय—विलोकाभावतः प्राप्तशोका।।५०।।
(कृष्णा० १/२६)

---

(४७) आकाश में यत्र—तत्र दिखाई दे रहे थोड़े—से तारे; तुम्हारी देह और यह गिरा हुआ हार; फिर ये शेफालिका वृक्ष और झड़े हुए पुष्प—अहा! उस रात में और इस प्रभात में ये तीनों वस्तुऐं एक—जैसी थीं (रात में आकाश तारों भरा, तुम्हारी देह पर सुशोभित हार और शेफालिका वृक्ष पुष्पों से लदे), किन्तु इस समय तुम्हारे अंग में ही परम सुषमा विराज रही है।

(४८) तुम्हारे टूटे—गिरे मुक्ताहार की तरह यह नक्षत्रमाला भी आकाश से अलग हो गई है, मात्र एक—दो नक्षत्र दीख रहे हैं। वह देखो! अरुंधती, तुम्हें बहुत देर तक कान्त—क्रोड़ में निद्रित देखकर विस्यम के साथ परिवक्र सप्तर्षिमण्डल में मुंह छिपा रही है (वशिष्ठ पत्नी अरुन्धती इस मण्डल की एक तारा है)।

(४६) इंस प्रकार कलवचन शुक—सारिका की श्रवण रसायन अति रमणीय बातें सुनकर सुखशयन में बाधा देखकर पहले श्रीराधा जगीं, फिर स्वापलीला (निद्रा—आलस्य) से झुंझलाकर श्रीकृष्ण भी जगे।

रसालस

(५०) एक ही समय दोनों की निद्रा भंग हुई, आँखें खुलीं; एक साथ दोनों की विचित्र कटाक्ष—भंगिमायें चलने लगीं। ये भंगिमायें एक साथ घूर्णारण्य भाव विशेष से उत्पन्न संक्लेश से भरी और एक ही साथ दर्शन में बाधा पड़ने से दोनों के दुःख का कारण ही बनी है।

कल–क्वणत् कंकण–नूपुरंजवा, दत्युच्छलद्गात्रयुगच्छविच्छटम्।
व्यस्तालकाग्रावलि–वेष्टनोन्नम, त्ताटंकहार–द्युतिदीपिताननम्।।५१।।

(कृष्णा० १/३६)

स्रस्तां शुकान्वेषण–संभ्रमोदया,दितस्ततो न्यस्तकराब्ज–मंजुलम्।
शय्योत्थितं केलिविलासिनोस्तयो, स्त्रैलोक्यलक्ष्मीमिव संचिकाय तत्।।५२।।

(कृ० भा० १/३७)

घूर्णालसाक्षं श्लथसर्वगात्रं, विश्रस्तकेशं रसिकद्वयं तत्।
भुग्नोपवेशं स्खलने कथञ्चिदन्योन्यमालम्बनतां प्रपेदे।।५३।।

(कृ० भा० १/३८)

अन्योन्य–ग्रथितां गुलीकिसलयामुन्नीय बाहुद्वयीं, जृम्भारम्भपुरः सर विदधती गात्रस्य संमोटनम्।
मीलन्नेत्रमुरोजयोर्नखपदव्यादानदीनानना, नानानेति पुनर्नखक्षतधिया सा कृष्णपाणी दधे।।५४।।

(आ० ५/५५)

---

(५१) अहा! उस समय की युगल–माधुरी वर्णनातीत है। नूपुर–कंकण आदि अलंकारों की मधुर ध्वनि होने लगी, दोनों अंगों से सुषमा छटा उच्छलित हुई, अस्तव्यस्त केशराशि से वेष्टित वक्षस्थल के हार और कानों की बालियाँ ऊपर उठ जाने से उनकी कांति से दोनों के बदन जगमगा उठे।

(५२) फिर वे दोनों ही तितर–बितर हुए वस्त्रों को खोजने के लिये आवेश पूर्वक बन्द आंखों से शय्या पर बैठकर इधर–उधर कर–कमल चलाने लगे। आहा! उस समय की उनकी माधुरी दर्शन कर लगता है जैसे विधाता ने त्रिभुवन की शोभा समृद्धि संचयकर शय्या पर बैठे क्रीड़ा–विलासी युगल के अंग–प्रत्यंग में भर दी है।

(५३) कुछ समय पश्चात् घूर्णायमान, शिथिल–अंग और ढीले–केश इस रसिक युगल ने हिलते–ढुलकते कुछ टेढ़े होकर एक दूसरे के अंग का सहारा लिया।

(५४) दोनों के हाथ एक–दूसरे की अंगुलियों में बँधे हैं, उसे स्थिति में दोनों ने बद्ध हाथों को ऊपर उठाकर बंद आंखों से जमुहाई लेते हुए अंगड़ाई ली तो श्रीराधिका अपने स्तनों पर नखों की खरोंच के कारण किंचित् कातर हो उठीं और पुनः नखक्षत की आशंका से प्रियतम के (स्तन स्पर्श लुब्ध) हाथों को 'ना–ना–ना' कहकर रोकने लगीं।

संगोपाय्य पटाञ्चलेन तनुना निःसारि–दन्तावलि,
ज्योत्स्नाभिः स्नपितेन दक्षिणकराकृष्टेन वक्त्राम्बुजम्।
लीलोल्लासित–कंधरं मृदुकर्लर्वामांगुलि–च्छोटिका,
निःस्वानैश्चल–कंकणस्वनसखैः श्रीराधिकाऽजृम्भत।।५५।।

(आ० ५/५५)

अलस–वलितमूर्धीकृत्य मूर्धोपकण्ठे, वलयित मिदमन्योन्येन संसक्तपाणि।
त्रिक–विचलन–भंगिसंगि मोट्टायितायाः, परिधिरिव मुखेन्दोर्भाति दोर्द्वन्द्वमस्याः।।५६।।

(अ० ५/५५)

उत्थायेशः सन्निविष्टोऽथ तल्पे, व्याजान्निद्राशालिनीं मीलिताक्षीम्।
दोर्भ्यां कान्तां स्वान्कमानीय तान्तां , पश्यत्यस्या माधुरीति।।५७।।

(गोवि० १/५१)

घूर्णायमानेक्षण–खंजरीटं, ललाट–लोलालक–भृंगजालम्।
मुखं प्रभाताब्जनिभं प्रियायाः, पपौ दृशेषत्स्मितमच्युतोऽसौ।।५८।।

(गोवि० १/५२)

संश्लिष्ट सर्वांगुलि–बाहुयुग्म, मुन्मथ्य देहं परिमोटयन्तीम्।
उद्बुद्ध–जृम्भा–स्फुटदन्तकान्ति, मालोक्य कान्तां मुमुदे मुकुन्दः।।५९।।

(गोवि० १/५३)

---

(५५) चमकती दन्तावलि के ज्योत्स्नाजाल में उज्ज्वल हुए सूक्ष्म वस्त्रांचल को दायें हाथ से खींचकर उससे मुख–कमल ढककर, बायें हाथ की कंकण ध्वनि युक्त चुटकी बजाते हुए और मृदुमधुर स्वकण्ठध्वनि करते हुए, गर्दन को किंचित् उठाकर श्रीराधिका ने जमुहाई ली।

(५६) त्रिक (रीढ़ की हड्डी का निम्न भाग) की विचलन–भंगिमा के साथ अंगड़ाई लेते समय श्रीराधा के दोनों हाथ परस्पर जुड़कर रसालस में सिर के ऊपर उठ गये और मंडलाकार हो जाने से उनके मुखचन्द्र की परिधि की तरह शोभा पाने लगे।

(५७) शय्या पर उठ–बैठकर श्रीकृष्ण सोयी होने का स्वांगकर आँखें बन्द किये निढाल पड़ीं श्रीराधा को भुजाओं में भरकर वक्ष से लगाकर साग्रह उनकी माधुरी देखने लगे।

(५८) तब श्रीकृष्ण मृदुमधुर हास्य के साथ नेत्र–चषकों से श्रीराधा के खंजनवत् घूर्णायमान नयनों और भ्रमरमाला की तरह अलकावलि से सुशोभित ललाटयुक्त–प्रभातकालीन कमल की तरह कमनीय वदनमाधुरी का पान करने लगे।

(५९) दोनों हाथों की अंगुलियों को जोड़कर हाथों को ऊपर कर सर्वांग से अंगड़ाई लेते समय और जमुहाई लेते समय श्रीमती के थोड़े–से दिखाई दांतों की कांति देखकर श्रीकृष्ण परम आनन्दित हुए।

तदैव जृम्भोत्थ–रदांशुजाल, माणिक्यदीपैर्निरराजयत् किम ?
सनिद्र मुन्मुद्र, दृगन्तलक्ष्मी, रसज्ञयान्योन्य–विलिहय मानम्।।६०।।

(कृ० भा० १/४०)

स्वीयांकोत्तानसुप्तामुषसि मृदुमृषा रोदनेषत्स्मितास्या,
मर्द्धोन्मुक्ताग्रकेशां विमृदित–कुसुमश्रग्धरां छिन्नहाराम्।
उन्मील्योन्मील्य घूर्णालस–नयनयुग स्वाननालोकनोत्कां,
कान्तां तां केलितान्तां मुदमतुलतमामाप पश्यन् ब्रजेन्दुः।।६१।। (गोवि० १/५४)

हेमाब्जांग्याः प्रबल–सुरतायास–जातालसायाः, कान्तस्यांके निहित–वपुषः स्निग्ध–तापिञ्छकान्तेः।
शम्पाकम्पा नवजलधरे स्थास्नुतां चेदधास्यत्, श्रीराधायाः स्फुटमिह तदा साम्यकक्षामवाप्सयत्।।६२।।

(गोवि० १/५५)

स्फुरन्मकर–कुण्डलं मधुरमन्दहासोदयं, मदालस–विलोचनं कमलगन्धि लोलालकम्।
मुखं स्वदशनक्षतां जन–मलीमसौष्ठं हरेः, समीक्ष्य कमलेक्षणा पुनरभूद् विलासोत्सुका।।६३।।

(गोवि० १/५६)

---

(६०) तब आलस्य त्यागने के लिए अंगड़ाई लेने के कारण दोनों के उबासी भरे मुख ऊपर की ओर उठे, इससे लगता है जैसे जमुहाई के समय प्रकाशित दन्त–किरण रूपी माणिक्यदीपों से दोनों ने एक–दूसरे का नीराजन (आरती) किया। किंचित् विकसित नयन प्रान्त (कटाक्ष) लक्ष्मी रूपी रसनाओं से एक–दूसरे की माधुरी का आस्वादन भी करने लगे।

युगल का रसालस–माधुरी–आस्वादन और विलास

(६१) प्रभातकाल में अपनी गोद में चित होकर लेटी; कपट मृदु–रोदन करती, साथ ही मधुर हास्य से युक्त मुख लिये; आधी खुली वेणी–मसली हुई पुष्पमाल–टूटा रत्नहार धारण किये; बाहर अवसादग्रस्त किन्तु भीतर प्रफुल्लित; कान्तमुख देखने के लिए उत्सुकता से भरी; बार–बार खुलने को उद्यत–विघूर्णित–अलसाये नेत्रों वाली कान्ता को देखकर ब्रजचन्द्रमा ने अतुलनीय महानन्द प्राप्त किया।

(६२) प्रचण्ड रति–रण के श्रम से क्लान्त श्रीराधा ने अलस (सुस्ती) से भरकर तमाल श्यामल श्रीकृष्ण–अंग को अपना गौरांग समर्पित किया। अचंचल (स्थिर, शान्त) विद्युत–लता का नवजलधर में सुस्थिरभाव से अवस्थान यदि सम्भव होता, तो उस समय श्याम की गोद में स्वर्ण–कमल–सी श्रीराधा का उपमान बनता।

(६३) सुन्दर मकर कुंडल–मंडित, मृदुमधुर हास्य से युक्त, मदालस लोचन, पद्मगंध बिखेरने वाले, चंचल अलकामाला से शोभित, दंतक्षतादि और काजल के चिन्हों से चिन्हित श्रीकृष्ण का वदन देखकर पद्मपलाश–लोचन श्रीराधा पुनः विलासरस के लिये उत्सुक हुईं।

परस्परालोकन–जातलज्जा–निवृत्त–चंचद्दर–कुंचिताक्षम्।
ईषत्स्मितं वीक्ष्य मुखं प्रियाया, उद्दीप्ततृष्णः पुनरास कृष्णः।।६४।।

(गोवि० १/५७)

वामेन चाधः शिर उन्नमय्य, करेण तस्याश्चिबुकं परेण।
विभुग्नकण्ठः स्मितशोभिगण्डं, मुखं प्रियायाः स मुहुश्चुचुम्ब।।६५।।

(गोवि० १/५८)

कान्ताधरस्पर्शसुखाब्धिमग्ना, करं धुनाना दर–कुंचिताक्षी।
मा मेति मन्दाक्षर–सन्नकण्ठी सखीदृशां सा मुदमाततान।।६६।।

(गोवि० १/५६)

रूपामृतं मेत्रिजगद्विलक्षणं, निःसीम–माधुर्यमिदंच यौवनम्।
अद्यैव साफल्यमवाप सर्वथा, प्रेयानुपाभुञ्क्ततमां मुदा यतः।।६७।।

(कृ० भा० २/२०)

सैवं विचित्त्य क्षणमाह कान्तं, तदक्षि–पीताखिल–माधुरीका।
स्वान्तर्मुदात्यर्थलसद्दृगन्त, लक्ष्मी–विहारायतनास्यपद्मम्।।६८।।

(कृ० भा० २/२१)

---

(६४) परस्पर दृष्टिपात जनित लज्जा से प्रियतमा के नयन थोड़े संकुचित हो गये थे, उस समय उनका मृदुमधुर हास्य–सुशोभित वदनदेखकर श्रीकृष्ण में भी पुनः विलास–वासना जाग्रत हो गई।

(६५) तब वे बायें हाथ से प्रिया के लज्जावनत सिर को उठाकर दायें हाथ से चिबुक उठाकर नतकण्ठ हो श्रीराधा का हास्य–सुशोभित गण्डयुक्त मुखकमल बार–बार चुम्बन करने लगे।

(६६) श्रीराधा ने श्रीकृष्ण के अधर–स्पर्श जनित सुख–सागर में निमग्न होकर किंचित बंद नेत्रों से कांपते करपल्लवों से मंद स्वर से 'ना ना' कहकर सखियों के नयनों को महानन्द प्रदान किया।

(६७) "त्रिजगत् में विलक्षण मेरा यह रूपामृत और असीम माधुर्य से परिपूर्ण यह नवयौवन आज ही प्रियतम द्वारा प्रेमपूर्वक उपभोग किये जाने के कारण सम्यकरूप से सफल हुआ है।"

(६८) श्रीराधा जब इस प्रकार सोच रही थीं, तो श्रीकृष्ण अपने नेत्रों से उनकी अखिल माधुरी पान करने में लगे थे। इससे श्रीराधा ने असीम आनन्द का अनुभव किया तो श्रीकृष्ण का मुखकमल उनकी कटाक्ष–रूपी लक्ष्मी की विहारभूमि हो उठा।

भो भो विलासिन्नवधेहि यत्त्वया, विस्रस्तवेशाभरणास्म्यहं कृता
यावन्मदाल्योऽनुसरन्ति नोषसि, द्रुतं समाधित्सिसि तन्न किं पुनः ।।६६।।

(कृ० भा० २/२२)

स्वचातुरीं साधय मां प्रसाधय, प्रसादयानंगमभीष्ट–दैवतम्।
योऽस्मन्मनोमन्दिर–वर्त्ययं त्वया, बहिष्कृतो लक्ष्मभिरे भिरेव यत्।।७०।।

(कृ० भा० २/२३)

सत्यं व्रवीष्यंगजमिष्ट देवं, त्वदंगपीठे प्रकटीभवन्तम्।
यजामि भूषाम्बर गंध पुष्पं, स्रक्चन्दनाद्यैरिति तां स उचे।।७१।।

(कृ० भा० २/२४)

इत्थमीश्वर्या वाक्यं हि श्रुत्वा सेवन–पेशला।
तदुपयोगिवस्तूनि समर्पयितुमुत्सुका।।७२।।

(कृ० भा० २/२५)

---

(६६) तब श्रीराधा कटाक्ष द्वारा बार–बार श्रीकृष्ण–माधुरी का आस्वादन करते–करते मद की अधिकता से स्वाधीनभर्तृका होकर बोलीं– हे विलासी ! तुमने विलासयुक्त होकर आज मेरी वेशभूषादि अस्तव्यस्त कर दी है, सखियों के आने से पूर्व इसी समय उसे पहले–जैसी करने में उदासीनता क्यों दिखा रहे हो!

(७०) अपनी कुशलता दिखाते हुए मेरा प्रसाधन करो और तुमने मेरे मन–मन्दिर में स्थित अभीष्ट देवता अनंग देव को बाहर निकालकर जो अपराध किया है, उसके लिए उनसे क्षमायाचना करो। (साधक सेवा के समय अपने इष्ट देवता को मनोमन्दिर से बाहर निकालकर सेवा करते हैं, तत् पश्चात् सेवा के चिन्हादि दूरकर यथास्थान स्थापित करते हैं। यदि कोई साधक सेवा–समाप्ति पर भी अपने अभीष्ट देव को बाहर सेवा–चिन्हादियुक्त कर रखता है, तो देवता के चरणों में अपराध होता है। उसी प्रकार) तुमने भी ये सेवा–चिन्ह नखों की खरौंच आदि दूर नहीं किये, देवता को भी बाहर व्यक्त कर रखा है, अतएव कुंकुम–मृगमद आदि का लेपनकर इन चिन्हों को मिटाकर अनंगदेव को पुनः यथास्थान स्थापित करो।

(७१) इस पर रसिक चूड़ामणि बोले– "प्रियतमे ! तुमने ठीक ही कहा है, तुम्हारे अंग पीठ पर इष्टदेव अनंग प्रकट हुए हैं, अतएव मैं वस्त्र–भूषण, गंध–पुष्प, माला–चन्दन आदि से अभीष्ट देवता की सेवा में लगता हूँ।"

(७२) यह सुनकर प्राणेश्वरी की सेवा निपुण दासियों अनंगपूजा की उपयोगी सामग्री श्रीकृष्ण के आगे लाकर रखने लगीं।

द्वारं समुन्मुच्य मनागनारवं, शनैः पदन्यास–विशेष–मंजुला।
निर्णित तज्जागरणाथ किंकरी, ततिर्विशंका प्रविवेश वेश्म सा।।७३।।

(कृ० भा० २/२६)

इतस्ततो न्यस्तमणि–प्रदीपा–नफुल्ल–नीलोत्पल–चंपकाभान्।
विधत्त एतौ स्वमयुखवृन्दै, रनावृतैर्मण्डन–माल्य–चेलैः।।७४।।

(कृ० भा० १/६)

मिथो दशनविक्षताधर पुटौ विलासालसौ, नखांकित–कलेवरौ गलित–पत्रलेखाश्रियौ।
श्लथाम्बर–सुकुंतलौ त्रुटित हारपुष्पस्रजौ, मुहुर्मुमुदिरे पुरः समभिलक्ष्य ताः स्वप्रियौ।।७५।।

(गोवि० १/६३)

अथामुना कंकतिकां शनैः शनै–र्विकर्षता भानुमती–करार्पिताम्।
कचावली संस्रयते स्म मालती, मालोत–वेणीरचना–पटीयसा।।७६।।

(कृ० भा० २/२५)

(किंकरियों का सेवा–सामग्री के साथ प्रवेश और श्रीराधा की वेश–रचना में नियुक्त श्रीकृष्ण को मदनावेश)

(७३) श्रीराधाकृष्ण जग गये हैं, इस बात का निश्चय कर किंकरियों ने निःशंकचित्त से धीर निःशब्द पद–विन्यास में अपनी निपुणता प्रकट करते हुए द्वार खोलकर शयन–मन्दिर में प्रवेश किया।

(७४) देखा कि दोनों के अंगों से वस्त्र–भूषण माल्यादि स्खलित हो जाने से अनावृत श्रीअंगद्वय से पीत–श्याम किरण माला छिटक रही है, जिसने शयन मन्दिर में इधर–उधर रखे मणि–प्रदीपों की पंक्तियों को भी चम्पक नीलकमल–कलिका की तरह बना दिया है। (श्रीराधा की पीठ पीछे रखे प्रदीप चम्पक कली की आभा वाले और श्रीकृष्ण के पीठ पीछे रखी प्रदीप माला नीलकमल–कलिका की आभा से मुक्त हो गई हो!)

(७५) उन दासियों ने युगल के आगे आकर अधरों पर दांतों के चिन्ह, स्थान–स्थान पर नख–चिन्ह, विलास जनित अलसता, वेशविन्यास–रहित सर्वांग, शिथिल वस्त्र, खुले केश, छिन्न–भिन्न मणि मुक्ताहार और वनमालाओं से रहित कण्ठ देश देखकर रह–रहकर आनन्द प्राप्त किया।

(७६) भानुमती मंजरी ने श्रीकृष्ण के हाथ में कंघी दी। केशों में खिंचने से और कंघी के आघात से सिर में व्यथा पहुँचेगी, यह सोचकर नागरेन्द्र ने धीरे–धीरे श्रीराधा के अति उज्ज्वल केश संवारे और मालती पुष्पों की माला से वेणी बनाई।

कस्तूरिका–चंदन कुंकमद्रवैः, संभावितैस्तामनुराग लेखया।
चकार मालांचित–चारुचित्रकां, स चित्रचुंचुर्धृत–नव्यवर्तिकः।।७७।।

(कृ० भा० २/२६)

ताटंयुग्मेन लवंग मंजरी, संपादिता पूर्वरुचा स चारुणी।
आनर्च तस्याः श्रवणे नवांजने, नानंज कंजप्रतिमे तदक्षिणी।।७८।।

(कृ० भा० २/२७)

दधार हारं रुचि मंजरीलितं, यदा तदोचे प्रियया मदोद्धुरम्।
या खण्डिता चन्दन–कंचुली त्वया, वक्षोजयोस्तां न कुतश्चिकीर्षसि ? ७६।।

(कृ० भा० २/२८)

आलेख्य–कर्मण्यतिगर्व–धारिणी–स्तास्ता विशाखा–प्रभृतीर्भवत् सखीः।
विस्मापयाम्यद्य कुचद्वये कृतै–श्चित्रैर्विचित्रैरिति तां जगाद् सः।।८०।।

(कृ० भा० २/२६)

प्रसाधनार्थ–प्रतिपादनोन्मुख, श्रीरूप–लीला–रतिमंजरीमुखः।
स्तनद्वयं तूलिकयांकयन् हरि, पंचेषु–पंचेषु–शरव्यतामगात्।।८१।।

(कृ० भा० २/३०)

---

(७७) तत्पश्चात् रागलेखा मंजरी द्वारा तैयार किये मृगमद, चंदन और कुंकुमद्रव से चित्रकार्य में निपुण श्रीकृष्ण ने नयी तूलिका लेकर श्रीमती के ललाट पर सुन्दर चित्र रचना की।

(७८) फिर लवंग मंजरी द्वारा बनायो अपरूप शोभा से युक्त बालियों से उनके कर्णद्वय भूषित कर नये अंजन से उनके नयन–कमलों को रंजित किया।

(७६) रूचि मंजरी नामक दासी के हाथ से कांति मंजरी युक्त हार लेकर श्रीराधा के वक्षस्थल पर धारण कराया तो श्रीराधा गर्वातिरेक से बोलीं– "तुमने मेरे स्तनों की चंदन कंचुली खंडित कर दी है, उसे बनाये बिना ही हार क्यों पहना दिया ? हार पहनने के पश्चात् तो उसकी रचना नहीं होगी। (अर्थात् तुम वेश–रचना के कार्य में पटु नहीं हो।)"

(८०) यह सुनकर वे भी बोले– "राधे ! देखों, मैं तुम्हारे कुचों पर विचित्र चित्र–रचना का इस कार्य में अति गर्व करने वाली तुम्हारी सखियों विशाखा आदि को भी विस्मय में डालता हूँ।"

(८१) यह कहकर उन्होंने जैसे ही श्रीरूपमंजरी, श्रीरतिमंजरी, श्रीलीलामंजरी आदि दासियों की ओर दृष्टि निक्षेप किया, वे सब चित्र–रचना की सामग्री हाथों में लेकर (उस लीला की दर्शनार्थिनी बनकर) खड़ी हो गईं। श्रीकृष्ण तूलिका लेकर श्रीराधा के स्तनों पर अंकन करने लगे, कार्य आरम्भ करते ही वे पंचवाण (काम) के पंचवाणों (सम्मोहन, स्तम्भन, शोषण आदि) के लक्ष्य बन गये, अर्थात् काम–शरों से जर्जरित हो गये।

पाणिश्चकम्पे यदि वक्ररेखं, चित्रं विलुम्पन्नुरसा मुहुः सः।
मन्ये स्मराग्निं धमति स्म तस्या, धृतीन्धनं दग्धुमना विदग्धः।।८२।।

(कृ० भा० २/३१)

कामस्तमवकल्पमनल्प–वैभवैः, सद्यो विधायानियतस्थलस्थितम्।
निमृज्य संसृज्य विखण्ड्य खंडश, स्तेनैव सोल्लासमुभावभूषयत्।।८३।।

(कृ० भा० २/३२)

दास्यश्च ताः फुलदृशां कृतार्थतां , मूर्तां चिरायाभिलषन्त्य एव ताम्।
पुनारिरंसू समवेत्य तौ ततो, मिषेण सर्वा निरगूहि केनिचित्।।८४।।

(कृ० भा० २/३३)

पुनरपि घनघूर्ण श्रीमुखद्वन्द्वयोगा–दचटुल–भुजवल्ली–वेष्टनेनेष्टभासौ।
क्षणमपि दरसुप्त्या शं भजावेत्यतस्ता–वनृजु–कुसुमतल्पे स्रस्तगात्रावभूताम्।।८५।।

(कृ० भा० २/४१)

---

(८२) नागरेन्द्र के हाथ कन्दर्प–आवेश के वशीभूत होकर) रह–रहकर कांपने लगे, चित्र रेखायें भी वक्र होने लगीं। स्तनों पर उन वक्र रेखाओ को अपने वक्षस्थल से बार–बार मिटाने को प्रवृत्त हुए, तो लगा जैसे उन्हें मिटाने के बहाने वे श्रीराधा के धैर्यरूपी ईंधन को दग्ध करने के लिये ही कामाग्नि प्रज्ज्वलित कर रहे हैं।

(८३) तत्पश्चात् कामदेव ने यह सोचकर कि श्रीकृष्ण द्वारा किया गया। वेशविन्यास ठीक नहीं हुआ अपना महाप्रभाव विस्तार कर विन्यास से सम्बद्ध कुछ बातें स्थान भ्रष्ट कर दीं, कुछ को मिटाकर उनकी अन्यत्र सृष्टि कर दी, कुछ को खण्ड–खण्ड कर विभक्त कर दिया। इस प्रकार (संमर्दन–अतिरेक से) श्रीराधा के अंग पर स्थित उस आकल्प (वेश विन्यास) के द्वारा कामदेव ने परमानन्द पूर्वक दोनों को ही सुसज्जित कर दिया।

(८४) दासियाँ बहुत देर तक विस्फारित नेत्रों से यह सब देखती रहीं और युगल की पुनः रमण–इच्छा समझकर अपने नेत्रों की मूर्तिमती कृतार्थता–इस लीला विनोद की अभिलाषा करते हुए किसी बहाने से निकुंज से बाहर चली आईं।

(८५) पुनः तीव्रभाव से लपट–झपट के कारण श्रीमुखों के परस्पर संयोग से और भुजलताओं में परस्पर वेष्टित रहने से दोनों की ही अनिर्वचनीय शोभा छिटकने लगी। थोड़ी देर निद्रा–सुख भोग लें– ऐसा स्थिर कर दोनों ही विलासपूर्ण होकर उस अनृजु (ढीली–ऊबड़खाबड़) शय्या पर शिथिलगात्र हो लुढक गये।

विरह–विकलया तच्छय्यया दूनया किं, कथमपि दर–लब्धाश्लेषया निद्रया वा।
उषसि न च विहातुं हन्त शक्तौ खगास्तौ, तदपि विदधुराभ्यां विप्रयुक्तौ स्वनन्तः।।८६।।
(कृ० भा० १/४२)

अगणित–कुलनिष्ठा मा निकुंजे शयिष्ठाः, परिहर सुरतघ्नं स्वापमुद्गच्छ शीघ्रम्।
समजनि सविशेषः पश्य दोषावशेषः, कुरु न गत–समाधां बन्धुवर्गस्य बाधाम्।।८७।।
(कृ० भा० १/४)

इयमजनि दिगैन्द्री दृश्यतां देवि ! सान्द्री–भवदरुणिमधारा त्वत्पादाब्जानुकारा।
इयमपि च वराकी सत्वरा चक्रवाकी, परिमिलति रथांगे जातविच्छेदभंगे।।८८।।
(कृष्णा १/५)

अपि तव मुखशोभामाप्तु, कामोऽतिलोभादपरिकलितकामः स्वं वपुस्त्यक्तुकामः।
चरम–शिखरिश्रृंगं प्राप्य पश्यैव तुंगं, व्रजति शशधरोऽस्तं वारयेदद्य कस्तम्।।८९।।
(कृष्णा० १/६)

सुमुखि ! नयनमुद्रां मुंच निर्धूय निद्रां, कलय वदनमासां विद्युदुद्योतभासाम्।
रति–विगलित–भूषां व्यस्तपर्य्यस्तवेषां, विलुलित–तनुमेतास्त्वां भजन्तां समेताः।।९०।।
(कृष्णा० १/६)

---

(८६) उस प्रभातकाल में भावी विरह से व्याकुल होकर शय्या और निद्रा अति क्लेश से अल्पमात्र आलिंगन लाभ कर क्या किसी प्रकार भी श्रीराधा–कृष्ण को त्यागने में समर्थ नहीं हुईं? हाय ! किन्तु (समय को समझने वाले) शुक आदि पक्षियों ने नाना पद्य उच्चारण कर शय्या और निद्रा दोनों को युगलकिशोर की विरहिणी बना ही दिया।

श्रीराधा के प्रति सारिकाओं की उक्ति

(८७) अपनी कुल–मर्यादा भूलकर अब और कुंज में लेटे रहना उचित नहीं ! हे राधे ! देखो, रात बीत गई, सुरतनाशन निद्रा त्यागकर शीघ्र ही उठो। अपने घर जाने की तैयारी करो, यहाँ रहकर अब और स्वजनों की पीड़ा न बढ़ाओ।

(८८) हे विलासिनि ! देखो, पूर्व दिशा ने तुम्हारे पादपद्मों का अनुकरण कर निविड़ लालिमा धारण कर ली हैं, चकवी भी विरह के अवसान पर बड़ी शीघ्रता से अपने प्रियतम से सुन्दरभाव से मिल रही है !

(८९) वह देखो, चन्द्रमा बड़े लोभ से तुम्हारे श्रीमुख की शोभा प्राप्त करने की कामना करके भी असफल होकर अपना देह त्यागने को सोच रहा है। इस समय वह अति उच्च अस्ताचल श्रृंग पर चढ़कर भृगुपात कर रहा है, उसे ऐसा करने से कौन रोके ?

(९०) हे सुमुखि ! निद्रात्याग कर आँखें खोलो– इन विद्युतवर्णा सखियों के वदन देखो! सुरत–समर में तुम्हारी भूषा आदि विच्युत हो गई है; तुम्हारा प्रसाधन आदि भी नष्ट और स्थान भ्रष्ट हो गया है। तुम्हारी देह भी तो बड़ी विमर्दित दीख रही है। देखो, तुम्हारी ऐसी अवस्था में उपयुक्त सेवा करने की इच्छा से ही ये सखियाँ एकत्रित हुई हैं।

निजकर–परिपुष्टा पश्य सेयं प्रविष्टा, शशिमुखि ! ललितां गी सन्निधौ ते कुरंगी।
कुरु सकृपमपांगे किंचिदंत्तरंगे, भवतु वत कृतार्था प्रीतये ते समर्था।।६१।।

(कृष्णा० १/१२)

नव–किशलय–बुद्धया जातितोऽन्तर्विशुद्धया–रुनपदकमलन्ते स्वादितुं कृष्णकान्ते!
त्वरितमुपसरन्ती त्वत्सखीनां वहन्ती, कर–सरसिज–घातं या विधत्ते प्रयातम्।।६२।।

(कृष्णा० १/१३)

शशिमुखि ! तव फेलामात्रभोगे सखेला, तव पदजलपानामोदमात्रावधाना।
अपि भवदवलोकाभाव–संजात–शोका, तव मुखशशिबिम्बालोकमात्रावलम्बा।।६३।।

(कृष्णा० १/१४)

हरिरतिकुतुकी ते नेत्रयुग्मं मिमीते, नयनयुगममायप्रेम यस्याः प्रमाय।
किमपि विमलमुक्तामालया चारुवक्ता, नियतमुपमिमानः संशयं निर्धुनानः।।६४।।

(कृष्णा० १/१५)

इति निगदितवत्यः शारिकाः प्रेमवत्यः, सुखद–पद–पदार्थां वाचमुत्थापनार्थाम्।
यदि किमपि विरेमुः पत्रिणस्तं प्रणेमुः, समुपसृत–निकुंजाः प्राप्त–संमोद पुंजाः।।६५।।

(कृष्णा० १/१६)

---

(६१) हे चन्द्रमुखि ! वह देखो, तुम्हारे हाथों पाली गई ललितांगी रंगिनी हरिणी तुम्हारे ही पास आ रही है, उस पर दया कर कुटिल कटाक्ष पात करो, जिससे वह कृतार्थ होकर तुम्हारी प्रीति उत्पादन में समर्थ हो।

(६२) हे कृष्णकान्ते ! हरिण–जाति का मन बड़ा शुद्ध होता है, देखो न, यह हरिणी तुम्हारे अरुण पदकमलों को ही नवीन किशलय (कोंपल) समझकर उसका आस्वादन करने के लिये द्रुतगति से चली आ रही थी, पर तुम्हारी सखियों के करकमलों का आघात पाकर लौटकर जा रही है।

(६३) हे शशिमुखि ! यह हरिणी तुम्हारे 'फेला' (उच्छिष्ट) मात्र से ही कौतूहल से भर उठी है– तुम्हारे चरणोदक पान करके ही आनन्दित है, पर तुम उसे देख ही नहीं रहीं, इससे वह शोकातुर हुई तुंम्हारे मुखचन्द्र की ओर ही निहार रही है। (अतएव अपनी पालित इस मृतप्राय हरिणी की आँखें खोलकर एक बार देखकर अपने दर्शनामृत से संजीवित करो)।

(६४) हे राधे ! वह देखो अति कौतुकी हरि हरिणी की निष्कपट प्रेममय आँखें नापकर तुम्हारे नेत्रों का ही नाप ले रहे हैं। (तुम्हारे नेत्र भी वैसे ही आकर्ण विस्तृत हैं या नहीं, परीक्षा कर रहे हैं)। संशय दूर करने के लिये रोज विमल मुक्तामाला को उपमान बनाकर बहुत सुन्दर कहकर हरिणी की इन आँखों की प्रशंसा कर रहे हैं।

(६५) इस प्रकार प्रेमवती सारिकाओं ने श्रीमती को जगाने के लिए सुखद पद पदार्थ युक्त वाक्यावली सुनाई। वे जब थोड़ी शान्त हुईं, तब शुक पक्षियों ने आनन्दपूर्वक निकुंज की ओर अग्रसर होकर कृष्णचन्द्र को प्रणाम किया।

अथ शयन—सतृष्णं बोधयामास कृष्णं, विततिरपि शुकानां कृष्णहर्षोत्सुकानाम्।
श्रवण—सुखद—सौम्यैः स्निग्धशब्दार्थ रम्यैः, सरसतरमनल्पैः कूजितैः सीधुकल्पैः।।६६।।
(कृष्णा० १/१७)

प्रणय—रसगभीराश्चारुशब्दार्थ—धीराः, कल—सुमधुर कण्ठाः प्रेम जल्पेष्वकुण्ठाः।
सति समय—विवेके बोधयांचक्रुरेके, न खलु वत विदग्धाः कार्यकाले विमुग्धाः।।६७।।
(कृष्णा० १/१८)

सुभग ! रजनि—शेषे स्वापगेहे सुशेषे, त्वमिति हि जननी ते संशयं स्वं धुनीते।
समयमथ विदित्वा जागरार्थं त्वरित्वा, स्वयमियमुपगन्त्री स्नेह एवात्र मन्त्री।।६८।।
(कृष्णा० १/२३)

त्वमसि समयेवत्ता सर्वदुःखैकभेत्ता, भवसि भुवनबन्धुः सद् गुणग्रामसिन्धुः।
व्रतति—भवनतल्पं मूर्तिमन्मोदकल्प, यदपि तदपि मुञ्च स्वस्ति तेऽस्मादुदञ्च।।६६।।
(कृष्णा० १/२२)

मद—मधुप—युवानः प्राप्तदोषावसानः, च्युत—कुसुमवनान्तः स्वापमुद्यातवन्तः।
दधति कतिपयथ्यां केलिमम्भोजवीथ्यां, सति समय विवेके के विमुह्यन्ति लोके ?।१००।।
(कृष्णा० १/२०)

श्रीकृष्ण के प्रति शुकों की उक्ति

(६६) तत्पश्चात् श्रीकृष्ण—सुख के लिये उत्सुक शुकों ने भी निद्रालु कृष्ण को जगाने के लिये श्रवण—सुखद, सौम्य (सुन्दर), स्निग्ध, रमणीय, सुरसाल, अमृतमय वाक्योच्चारण आरम्भ किया।

(६७) वे सभी प्रणय—रसभरे, मनोहर शब्दार्थ—विन्यास में पंडित, कलनाद में सुमधुर कण्ठ, प्रेम—जल्पना में भी अकुण्ठ (अबाध) और समय का ध्यान रखने वाले हैं। श्रीकृष्ण को जगा रहे हैं। अहा, सुचतुर व्यक्ति कभी भी कार्यकाल में चूकते नहीं।

(६८) हे सुन्दर ! तुम निशान्त में अपने शयनकक्ष में सुख—निद्रा में मग्न हो, यह जानकर माँ यशोदा का संशय दूर हो गया है। अब जगने का समय जानकर वे स्वयं ही तुम्हारे निकट आयेंगी। अहा ! लगता है वात्सल्यस्नेह ने ही परामर्श देकर उन्हें इस कार्य में नियुक्त किया है।

(६६) तुम तो समय को जानने वाले हो, दुःख नाशन, व्रजभूमि के बन्धु और सद्गुण—सिन्धु हो। यद्यपि यह निकुंज शय्या मूर्तिमान् आनन्दस्वरूप ही है, तथापि उसे अब त्यागो, तुम्हारा मंगल हो— अब उठो!

(१००) वह देखो, मत्त मधुकर युवक भी निशान्त होने पर निद्रा त्यागकर विगलित कुसुमों से युक्त वन—परिसर में कुछ एक पद्मश्रेणियों में क्रीड़ा कर रहे हैं। इस पृथ्वी पर ऐसा कौन है, जो समयोपयुक्त कार्य न कर दुःखी हो ?

क्वचन मुख–विषादः क्वापि हास–प्रसादः, क्व च दयित–वियोगः क्वापि कान्तस्य योगः
कुमुद–कमल–वीथ्योर्वैसदृश्येऽतितथ्ये, भवति किमु न कालः क्षोभ–शोभा–विशालः।।१०१।।
(कृष्णा० १/२१)

जय सुभग ! नमस्ते श्रूयतां सत्वरस्ते, चिर–शयन–सपीडः कौत्ययं ताम्रचूड़ः।
उपनत–निजसेवा–कालसंमोद–पीवा, नहि समय–विदग्धः कार्यकाले विमुग्धः।।१०२।।
(कृष्णा० १/२७)

अथ प्रबुध्यैव विधूय पक्षान्, ग्रीवाः समुन्नीय चुकूजुरुच्चैः।
यत् कुक्कुटाः पंचषबारमादौ, राधा जजागार तदाप्तवाधा।।१०३।।
(कृ० भा० १/२०)

कृष्णांग–संश्लेष–विशेषवाधिन–स्तानेव मत्वेति शशाप सा रुषा।
अरे ! परेताशु परेतराट्पुरं, तत्रैव किं कूजत नो पदायुधाः?।।१०४।।
(कृ० भा० १/२१)

विश्लिष्य किंचित् प्रियवक्षसः सा, तूष्णीं स्थितां स्तनुपलभ्य सद्यः।
संश्लिष्य कान्तं दरनिद्र यैव, निषेव्यमाणा पुनरप्यराजीत्।।१०५।। (कृ० भा० १/२२)

---

(१०१) वह देखो, कुमुद और कमल की वीथियों में एक ओर (कुमुद का) मुखविषाद और अन्यत्र (कमल का) हास–प्रसाद; एक ओर प्रियतम का विरह, दूसरी ओर कान्त–मिलन। अब देखो, कुमुद और कमलिनी का यह असमान व्यापार जब अति सत्य है, तो इस परम क्षोभ और परम शोभा का एकमात्र कारण क्या काल ही नहीं ?

(१०२) हे सुभग ! तुम्हारी जय हो, तुम्हें नमस्कार है, वह सुनो–ताम्रचूड़ (मुर्गा) बहुत देर से तुम्हारा शयन देखकर व्यथितचित्त से द्रुतगति से उच्च शब्द कर रहा है; वह अपनी सेवा का समय जानकर आनन्द–उत्फुल्ल हो गया है। अहा, समय को पहचानने वाला अपने कार्यकाल में कभी चूकता नहीं।

कुक्कुट–रव सुनकर श्रीराधा का जगना और शाप देना

(१०३) मुर्गे ने श्रीराधा को जगाने के लिये ग्रीवा ऊँचीकर पंख फड़फड़ाकर पाँच–छह बार आवाज की, तो वे प्रभात हुआ जान अत्यन्त कातर होकर जगीं।

(१०४) श्रीकृष्ण का आलिंगन कर परम सुख से सोने में इन मुर्गों को विशेष बाधक मानकर उन्होंने क्रोध में शाप दिया– अरे, मुर्गो ! तुम लोग शीघ्र ही यमपुर जाकर रव करो। (सुखमय वृन्दावन में परम दुःखद रव कर तुम लोगों का रहना उचित नहीं)।

(१०५) श्रीराधा यह शाप देकर प्रभात होने की आशंका से प्रियतम के वक्षस्थल से थोड़ी अलग हुई; कुछ देर तक कुक्कुटों की ध्वनि सुनकर सोचा कि वे शापग्रस्त होकर यमपुरी चले गये; प्रभात होने की और आशंका नहीं, ऐसा स्थिर कर वे श्रीकृष्ण को दृढ़ आलिंगन कर सो गईं।

जालादथो दृक्–सफरी तदालयो, लावण्यवन्या भृशमन्वशीलयन्।
क्रीणन्ति याः प्राण–परार्द्धकोटिभि–स्तयोः प्रमोदोत्थ–रुचिच्छटाकणम्।।१०६।।
(कृ० भा० २/१)

ऊचे विशाखा कलयालि ! कान्तौ, निरंशुकावंशुक–पुंजमंजु।
विहारिणावप्यतिहारिणौ स्वै, रंगैरनंगैरलसौ लसन्तौ।।१०७।। (कृ० भा० २/२)

अनंगदौ केलिवशादनंगदौ, निरंजनौ हन्त मिथो निरंजनौ।
विस्रस्तरागाधरताभिलक्षितौ, विप्रस्तरागाधरताभिलक्षितौ।।१०८।। (कृ० भा० २/३)

अथावभाषे ललिताऽवधार्यतां, जयः स्मराजौ कतराश्रितो द्वयोः।
वभूव दष्टाधरयोः कचग्रह–व्याक्षिप्तमूर्ध्नोर्नखरक्षतोरसोः।।१०६।। (कृ० भा० २/४)

हृदोऽनुरागं कुच–कुंकुमच्छलान्–न्यधत्त राधाच्युत–पादपद्मयोः।
यावद्रवारक्ततरालको दधौ, मूर्घ्नैव सोऽस्याः पदयोस्तमुज्जवलम्।।११०।।
(कृ० भा० २/५)

लतारन्ध्रों से सखियों का तात्कालिक शोभादर्शन और वर्णन

(१०६) जो परार्धकोटि प्राणों को देकर भी युगलकिशोर की प्रमोदोत्थ (आनंदजनित) शोभा का एक कण भी खरीद लेती हैं, उन्हीं ललितादि सखियों की दृष्टि रूपी मछलियाँ लता–जाल से निकलकर युवयुगल की लावण्य–वन्या में विहरने लगीं।

(१०७) विशाखा ललिता से बोलीं– "देखो सखि ! जो निरंशुक (वस्त्रहीन) होकर भी अंशुक (कान्ति) पुंज से मंजु (मनोज्ञ) और विहारी (हार–रहित) होकर भी अतिहारी (महा मनोहर) हैं, उन्हीं राधाकृष्ण की (नखक्षतादि) अनंगचिन्हों से कैसी अपूर्व शोभा सम्पादित हुई है!

(१०८) ये अनंगद (बाजूबन्द–विहीन) होकर भी केलिवश अनंगद (परस्पर के कामवर्धक) और निरंजन (नयन–अंजन रहित) होकर भी निरंजन (परस्पर के अति रंजक) बने हैं; इनके अधरराग मिट गये हैं, किन्तु अस्तव्यस्त शैय्या प्रचण्ड सूरत–समर की ही द्योतक है।

(१०६) ललिता बोलीं– "हे सखियों ! तुम लोग अवधारण (निश्चय) करो तो, गत रात्रि के कन्दर्प–युद्ध में दोनों में से विजयी कौन हुआ है ? मैं तो युद्ध साम्य देखकर कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रही! देखो न, चूड़ा और वेणी दोनों परस्पर संसक्त होकर तुमुल अनंग–रण में शिथिल पड़ गये हैं; अधरों पर दशनाघात और वक्षस्थलों पर नखघात भी समान दीख रहे है।

(११०) (नैशलीला में श्रीराधा ने श्रीकृष्ण के चरण अपने वक्ष पर रखे थे, अतः उनके चरणतलों पर कुच–कुंकुम चिन्ह विराजमान थे। इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी श्रीराधा के जावकरंजित चरण अपने मस्तक पर रखे, अतः मस्तक लाल रंग का दीख रहा है।) इस पर विशाखा बोलीं– हे सखि ! वह देखो, हमारी राधा ने कुच–कुंकम लेपने के बहाने अपने हृदय का अनुराग श्रीकृष्ण–पादपद्मों में रख दिया है, और श्रीकृष्ण भी वह जावक–चिन्ह धारण करने के बहाने श्रीराधा चरणों का अनुराग मस्तक पर वहन कर रहे हैं।"

इत्थं क्षणं तावदलक्षितां ग्यो, नीचैः स्वरं तावनुवर्णयन्त्यः।
भाग्यं स्वमेवातिसभाजयन्त्यो, ममज्जुरानन्द–महोदधौताः।।१११।।

(कृ० भा० २/६)

ततः पुनस्तानथ टिट्टिभादी–नुत्कूजतः प्राह विधूत–तन्द्रा।
हं हो ! क्षमध्वं शयितुं क्षणं मे, दत्तेति सा मोटयदंगमीषत्।।११२।।

(कृ० भा० १/२३)

कादम्ब–कारण्डव–हंस–सारसाः, कपोत–शारी–शुक–केकि–कोकिलाः।
जगुःकलं केलिवनी–जलस्थल–प्रचारिणः कृष्णकथामृतोपमम्।।११३।।

(कृ० भा० १/२४)

प्रबुध्य कान्तौ युगपद्यथा रुजं, विश्लेषजामूहतुरंगमोटनात्।
चाम्पेय–नीलाब्ज–धनुस्त्विषौ तथा सान्द्रोपगूहेन मुदञ्च वक्षसोः।।११४।।

(कृ० भा० १/२५)

अथास्या वयस्याः प्रमोदात् स्मितास्याः, सखीं तां हसन्त्यो मिथः प्रेरयन्त्यः।
सशंकाः समन्तात् प्रभाताद् दुरन्तात्, प्रविष्टा निकुंजं सशब्दालिपुञ्जम्।।११५।।

(गोवि० १/६०)

---

(१११) इस प्रकार सखियाँ अलक्षित रहकर धीरे–धीरे श्रीराधाकृष्ण का विलास–महत्व वर्णन करने लगीं और अपने भाग्य की प्रशंसा करते हुए आनन्द महासमुद्र में डूब गईं।

पक्षी–कलरव से निद्रा–भंग और तात्कालिक अवस्था–वर्णन

(११२) मुर्गे–टिटहिरी आदि पक्षी उच्चस्वर से कलरव करने लगे। श्रीराधा ने जगकर स्वगत यह कहकर कि अरे पक्षियो ! मुझे क्षमा करो, कुछ देर सोने दो, अंगड़ाई ली।

(११३) तब कादम्ब (कलहंस), कारण्डव (बत्तख), हंस, सारस आदि (विलासनिकुंज के) जलचर पक्षी एवं शुक, सारिका, कपोत, कोयल, मयूर आदि थलचर पक्षी एक साथ समस्वर से कृष्ण कथामृत की तरह कलध्वनि करने लगे।

(११४) इससे युगलकिशोर ने एक साथ जागकर अंगड़ाई ली। तब एक ओर परस्पर का दृढ़ आलिंगन विच्छिन्न होने से उन्हें विच्छेद–पीड़ा हुई, दूसरी ओर अंगड़ाई लेने के समय चम्पक कुसुम के धनुष जैसे श्रीराधा–अंग और नीलकमल के धनुष जैसे श्रीकृष्ण–अंग को एक–दूसरे के वक्षस्थल का निविड़ आलिंगन प्राप्त होने से उन्हें कहीं अधिक आनन्द हुआ।

(११५) तब सखियाँ आनन्द से भरकर मृदुमधुर हास्य करतीं, आगे चलने के लिए एक–दूसरी को प्रेरित करते हुए, दुरन्त प्रभात् के आगमन से शंकित मन होकर, भ्रमर–गुंजित निकुंज में प्रविष्ट हुईं।

अभिलक्ष्य सखीर्विहसद्वदनाः, सविधोपगता विचलन्नयनाः।
दयिताय मुदं द्विगुणं ददती, दयितोरुयुगादुदतिष्ठदियम्।।११६।। (गोवि० १/६१)

त्वरोत्थिता सम्भ्रम–संगृहीत–पीतोत्तरीयेण वपुः पिधाय।
पार्श्वे प्रियस्योपविवेश राधा, सलज्जमासां मुखमीक्षमाणा।।११७।। (गोवि० १/६२)

अथानुरक्ताल्यनुमोदनाञ्चिता, मुदा तयोरैधत रूपमञ्जरी।
सैव स्वयं केलिविलासिनोर्द्वयो–स्तदात्व–रम्यापचितौ पटीयसी।११८।।
(कृ० भा० २/७)

पृष्ठोपधानं निदधे कयाचन, प्यधादथान्या मृदुलांशुकेन तौ।
पीयूषवट्यार्पितयास्ययोः परा, निरस्य घूर्णां विकसद्दृशौ व्यधात्।।११९।।
(कृ० भा० २/९)

काचित् प्रसूनाम्बु–दारार्द्रवाससा, व्यत्यस्तरागाञ्जनयावकादिकम्।
मृष्ट्वा प्रतिस्वेक्षण–सिद्धये तयो–र्मुखद्वयं दर्पणतां निनाय किम् ?।।१२०।।
(कृ० भा० २/१६)

---

(११६) सखियों को हास्यवदन–चंचल नयन अपने निकट आते देखकर श्रीमती प्राणनाथ को दुगुना आनन्दित कर उनके उरुदेश से अलग हुईं।

(११७) वे तत्क्षण शीघ्रतापूर्वक उठकर श्रीकृष्ण के पीले उत्तरीय से अपनी देह ढककर लाज से भरकर सखियों के मुखों की ओर दृष्टि निबद्ध कर श्रीकृष्ण के पास ही बैठी रहीं।

(११८) उस समय अनुराग से परिपूर्ण ललिता आदि सखियों के अनुमोदन (आस्वादन) से श्रीराधा कृष्ण की रूपमंजरी (कान्ति–कन्दली) आनन्द से बढ़ रही थी। वह रूपमंजरी ही तब युगलसेवा–पटीयसी (निपुणा) हो गई, अर्थात् वस्त्र–भूषणादि के बिना भी उस समय की युगल की शोभा देखकर सखियों को परमानन्द हुआ। (अन्य अर्थ : भानुमती आदि सखियों की सम्मति से 'रूपमंजरी' नाम की किंकरी प्रफुल्लित हुई, कारण–वही उस समय की केलि प्रिय युवयुगल की रमणीय वेशविन्यासादि–सेवा में पटु थी।

(११९) (श्रीरूपमंजरी के निर्देश से) किसी किंकरी ने शय्या पर (सहारे के लिये) तकिया रख दिया; किसी अन्य ने निरावरण युवयुगल को मृदुल वस्त्र से ढक दिया; अन्य किसी ने निद्रावेशनाशक अति मृदु और सरस पीयूषवटी औषध उनके मुखों में रखकर उनकी घूर्णा दूर की, तो दोनों ने आँखे खोलीं।

(१२०) एक अन्य किंकरी ने गुलाब–जल में अतिमृदु बहुमूल्य वस्त्रखण्ड थोड़ा–सा भिगोकर उससे युगल के विहारकाल में इधर–उधर लगे उल्टे–पुल्टे अंजन, ताम्बूल राग और जावक आदि का मार्जन कर इस प्रकार उज्ज्वल कर दिया कि वह परस्पर के मुख–दर्शन के लिये दर्पण का कार्य करे।

ताम्बुवीटीर्निदधे परास्मिन्नेका पर्टिम्ना मणिदीप–पाल्या।
तन्मंगलारात्रिकमाशु चक्रे, नीराजयन्त्येव निजासु–लक्षैः।।१२१।।

(कृ० भा० २/१७)

मध्येऽच्युतां गघनकुंकुमपंकदिग्धं, राधान्घ्रि–यावक–विचित्रित–पार्श्वयुग्मम्।
सिन्दूर–चन्दनकणाञ्जन–विन्दुचित्रं, तल्पं तयोर्दिशति केलिविशेषमाभ्यः।।१२२।।

(गोवि० १/६४)

प्रम्लिष्ट–पुष्पोच्चय–सन्निवेशां, ताम्बुल–रागांजन–चित्रितां गीम्।
व्यक्तीभवत्कान्त–विलासचिन्हां, शय्यामपश्यन् स्वसखीमिवाल्यः।।१२३।।

(गोवि० १/६५)

क्वचन घुसृण–पंकः क्वापि सिन्दूरजोंऽकः, क्षतविरह–विपक्ष–प्रस्नुतासृक्सपक्षः।
क्वचन कुसुमदामच्छिन्न–कोदण्डधाम, क्वच विलुलितहारश्छिन्नमौर्वीप्रकारः।।१२४।।

(कृष्णा० १/३८)

क्वचन मृगमदान्काः कुत्रचित् कज्जलान्काः, स्मरनरपति–दन्तिच्छेदकल्पाः स्फुरन्ति।
स हि रतिरणरंगः कौतुकोद्यत्तरंगः, समजनि सुमुखीनामागतानां सखीनाम्।।१२५।।

(कृष्णा० १/३६)

---

(१२१) एक किंकरी ने दोनों के वदन कमलों में ताम्बूल वीटी समर्पित की; एक अन्य ने मणि दीपावली द्वारा दोनों की मंगल आरती इस पटुता के साथ की कि लगा जैसे वह अपने कोटि प्राणों के साथ उन दोनों के लिये मंगल–कामना करते हुए उनकी सारी अला–बला स्वयं ले रही है।

सुरतशय्या और श्रीराधांग–दर्शन से सखियों को परमानन्द

(१२२) उस शय्या के मध्य में श्रीकृष्ण के अंग से अलग हुए घन कुंकुमपंक के चिन्ह हैं उनके दोनों ओर (अगल–बगल) श्रीराधा–चरणों की महावर के चिन्ह हैं। इस प्रकार जगह–जगह सिन्दूर, चन्दन एवं काजल से चित्रित हुई। वह सुरतशय्या सखियों के नेत्रों को युव–युगल की केलि विशेष (विपरीत विलास) का ही परिचय दे रही थी।

(१२३) सखियों ने म्लान पुष्पों से सुशोभित, ताम्बूलराग और अंजन से चित्रित एवं स्फुटतर कमनीय (कांत के) विलास–चिन्हों से चिन्हित अपनी सखी की तरह उस सुरत शय्या को देखा।

(१२४) उस पर कहीं कुंकुम का विलेपन है, कहीं सिन्दूर के चिन्ह शोभा विस्तार कर रहे हैं। लगता है जैस विरह–शत्रु का नाश हो जाने से उसी के अंग से रुधिर निकला है। कहीं टूटे धनुष की तरह ज्योतिर्मय कुसुमहार, कहीं विभक्त धनुष–डोर की तरह दलित हार पड़े हुए हैं।

(१२५) देखकर लगता है मानो स्मर–नरपति (रति–सम्राट) रूपी मत्त हाथी द्वारा खण्ड–खण्ड हुए कहीं मृगमद–चिन्ह हैं, कहीं काजल के चिन्ह हैं। इस प्रकार वह रतिरण–रंगस्थली (शय्या) वहाँ जुड़े सखी समाज के लिये परम कौतूहल का विषय बन गया था।

वक्षः स्वं दर्शयंस्ताभ्यो दृग्भंग्योवाच ता हरिः।
दिदृक्षुः स्वप्रिया–वक्त्र–भावशावल्य–माधुरीम्।।१२६।। (गोवि० १/६७)

विधुं प्रयास्यन्तमवेक्ष्य कान्तं, विश्लेषभीतोशसि पश्यताल्यः।
दिदृक्षयेवाम्बर–चित्रपाट्यां, राधेन्दुलेखाशतमालिलेख।।१२७।।
(गोवि० १/६८)

इति निगदति कृष्णे वीक्ष्य साग्रेवयस्याः, प्रहसित–वदनास्ताः संकुचल्लोलनेत्रा।
विकसदमलगण्डं दोलितारेचितभ्रूः, प्रियमनृजुकटाक्षैः पश्यति स्म घ्नतीव।।१२८।।
(गोवि० १/६९)

हेलोल्लासादरमुकुलिता वाष्पसान्द्रारुणान्ता, लज्जा–शंका–चपलचकिता भंगुरेर्स्याभरेण।
स्मेरस्मेरा दयितवदनालोकनोत् फुल्लतारा, राधादृष्टिर्दयिति–नयनानन्दमुच्चैर्व्यर्यतानीत्।।१२९।।
(गोवि० १/७०)

इत्थं मिथः प्रेमसुखाब्धिमग्नयोः, प्रगेतनीं विभ्रम–माधुरीं तयोः।
निपीय सख्यः प्रमोदोन्मदास्तदा, तदात्वयोग्याचारणं विसस्मरुः।।१३०।।
(गोवि० १/७१)

श्रीकृष्णमुख से रसोद्गार और श्रीराधा का भावशावल्य

(१२६) तब श्रीकृष्ण ने श्रीराधा–वदन की भावशावल्य–जनित माधुरी देखने की आशा से नयन–भंगिमा द्वारा अपना वक्षस्थल दिखाकर सखियों से कहा–

(१२७) "हे सखियों, देखो, देखो– प्रातःकाल अपने प्राणनाथ चन्द्रमा को जाते देखकर वियोग से आतुर राधा (विशाखा) नक्षत्र ने प्रियतम के दर्शन की इच्छा से आकाशरूपी चित्रपट पर शत–शत इन्दुलेखायें चित्रित कर दी हैं। (तात्पर्य – प्रातःकाल अपने कान्त मुझे अपने घर जाता देखकर राधा ने विरह–विधुरा होकर मेरे नीले आकाश जैसे विशाल वक्षस्थल पर शत–शत चन्द्र रेखायें अर्थात् नख–चिन्ह अंकित कर दिये हैं।)

(१२८) श्रीकृष्ण का यह श्लेषवाक्य सुनकर सखियाँ हँस रही हैं, यह देखकर लज्जाकुंचित चंचलनयना श्रीराधाा तो मानो विस्फारित विमल गण्डस्थलों से चंचल भ्रू–भंगिमा के साथ कुटिल कटाक्ष–जाल निक्षेप कर प्रियतम को बेधने ही लगीं।

(१२९) श्रृंगार भाव से उल्लासमय, थोड़े–से बंद, अश्रुपूर्ण, अरुणराग से रंजित प्रान्त, लज्जा–भय से चंचल–चकित, ईर्ष्या से वक्र, कान्त–मुख देखने से उत्फुल्ल तारकायुक्त एवं मृदुमंद हास्य–सुशोभित श्रीराधा–नयन उस समय प्रियतम के नेत्रों की परमानन्द–वृद्धि करने लगे।

(१३०) ऐसे प्रेमसुख–समुद्र में निमग्न श्रीराधाकृष्ण की प्रभातकालीन विलास–माधुरी पान कर आनन्द में उन्मत्त हुईं सखियाँ (अपने–अपने घर का गमन आदि) उस समय के क्रियाकलाप भूल गईं।

विलोक्य लीलामृतसिन्धुमग्नौ, तौ ताः सखीश्च प्रणयोन्मदान्धाः।
वृन्दा प्रभातोदय–जातशंका, निजेंगितज्ञा।निदिदेश सारीम्।।१३१।।

(गोवि० १/७२)

गुरुलज्जा–भर्तृभीति–लोकहास–निवारिका।
'शुभाख्या' सारिका प्राहराधिका–बोधसाधिका।।१३२।। (गोवि० १/७३)

आगन्ता ग्राहयित्वा तव पतिरधुना गोष्ठतः क्षीरभारा–
नुत्तिष्ठोत्तिष्ठ राधे तदिह कुरु गृहे मंगलां वास्तुपूजाम।
इत्थं यावद्धावाम्बा तव नहि शयनादुत्थिता वावदीति,
तावच्छय्यानिकेतं व्रज सखि निभृतं कुञ्जतः कंजनेत्रे !।१३३।। (गोवि० १/७४)

शंकापंकाकलित–हृदया शंकतेऽस्या धवाम्बा, छिद्रान्वेषी पतिरतिकटुः सार्थनामाभिमन्युः।
रुष्टाभीक्ष्णं परिवदति सा हा ननन्दापि मन्दा, प्रातर्जातं तदपि सरलां कृष्ण नैनां जहासि।।१३४।।

(गोवि० १/७७)

सारीवचो–मन्दरशैलपात, संक्षुब्धहृद् दुग्धपयोधिरेषा।
अथोद्भ्रमन्नेत्र–नवीनमीना, वियोगदीना शयनादुदस्थात्।।१३५।। (गोवि० १/७८)

निकुंजभवन–त्याग और गृहगमन प्रकार

(१३१) लीलामृत–सागर में मग्न श्रीश्रीराधाकृष्ण को और प्रेमोन्माद में अंध सखियों को देखकर वृन्दा ने निशा–वसान में अपने संकेत को समझने वाली सारिका को निर्देश किया।

(१३२) तब गुरु–लज्जा, भर्तृभीति (पति का भय) और लोकहास का निवारण करने वाली 'शुभा' नामक सारिका श्रीराधा–प्रबोधन में कुशलता प्रकट करती कहती है–

(१३३) हे पद्म नेत्रे सखि ! तुम्हारी सास उठकर 'श्रीराधे ! तुम्हारे पति भृत्य के हाथों दूध वहन करा गोष्ठ से बस आने ही वाले हैं, अतएव तुम शीघ्र उठकर वास्तु पूजा करो' यह वाक्य बोलें, उससे तुम कुञ्ज छोड़कर अलक्षित भाव से शयन–मन्दिर चली जाओ।"

(१३४) तत्पश्चात् उस सारिका ने श्रीकृष्ण से कहा– "हे कृष्ण ! इनकी सास का हृदय शंका–पंक से भरा है, वे इनके चरित्र को लेकर सतत् संदिग्ध रहती हैं। इनके पति अभिमन्यु भी सार्थकनाम (सभी प्रकार से क्रोधी) हैं, अतएव कटुभाषी और छिद्रान्वेषी हैं। फिर मन्दबुद्धि ननद भी सदा रोष में भरी वृथा कलंक लगाती रहती है। इधर रात्रि भी बीत गई। फिर तुम इस सरला को छोड़ क्यों नहीं रहे ?"

(१३५) सारिका के वाक्य रूपी मन्दराचल के गिरने से श्रीराधा का हृदयरूपी क्षीर सागर संक्षुब्ध हो गया और उनके नेत्र नवीन मीनों की तरह चंचल हो उठे। तब वे श्रीकृष्ण का संग छोड़ने के कारण दुःखी होकर शय्या से उठीं।

कृष्णोऽपि कान्तं वृषभानुजायाः, पश्यन् मुखं भीति–विलोलनेत्रम्।
नीलं सुचीनं दयिता–निचोलं, गृह्णन् स्वतल्पात् त्वरयोदतिष्ठत्।।१३६।।

(गोवि० १/७६)

परिवर्तित–संव्यानौ मिथ स्तावथ शंकितौ।
परस्पर–करालम्बौ निरगातां निकुंजतः।।१३७।।

(गोवि० १/८०)

राधा–पाणिं सव्येऽसव्ये पाणौ विभ्रद् वेणुं कृष्णः।
रेजे कुञ्जान्निर्यन् यद्वद् विद्युन्मालाश्लिष्टाम्भोदः।।१३८।।

(गोवि० १/८१)

हैमं भृंगारमेका व्यजनमथ परा स्वर्णदण्डं दधाना,
काप्यादर्शं सुदर्शं घुसृण–मलयजाऽमत्रमन्या विचित्रम्।
काचित्ताम्बूलपात्रं पात्रं मणिचितमपरा सारिकां पञ्चरस्था–
मित्थं सख्यः कियत्यः प्रमुदितहृदया निर्यस्युः कुंञ्जगेहात्।।१३९।।

(गोवि० १/८२)

महेन्द्रकान्तच्छदनं सकाञ्चनं, दान्तं ससिन्दूर–समुद्गकं परा।
आपन्नसत्ता–कुचकुट्नलोपमं, कुञ्जाद् गृहीत्वा निर्गान्मृदुस्मिता।।१४०।।

(गोवि० १/८३)

---

(१३६) भय से व्याकुल श्रीराधा के चंचल नेत्रों और मुख की कमनीय कांति को देखते–देखते श्रीकृष्ण भी श्रीमती का सूक्ष्म नीला उत्तरीय (ओढ़ना) लेकर शय्या से तुरन्त उठ पड़े।

(१३७) तत्पश्चात् परिवर्तित उत्तरीय–वस्त्रों में श्रीराधाकृष्ण एक–दूसरे का हाथ पकड़े शंकितचित्त होकर निकुंज से बाहर आये।

(१३८) श्रीकृष्ण बायें हाथ से प्रिया का हाथ पकड़े और दायें हाथ में वंशी लिये कुंज से जाते विद्युत्माला–विजड़ित (बिजली से जगमगाते) जलधर की तरह शोभा पा रहे थे।

(१३९) तत्पश्चात् सेवा–परायण सखियों में से कोई स्वर्ण भृंगार (झारी, कलश), कोई स्वर्णदण्ड–व्यजन (पंखा), कोई परिष्कृत दर्पण, कोई विचित्र कुंकुम–चंदनपात्र, कोई मणिखचित ताम्बूल पात्र, कोई पिञ्जराबद्ध सारिका लिये आनन्दित चित्त हो कुंजभवन से निकली।

(१४०) कोई सखी इन्द्रनीलमणि–खचित, स्वर्ण–जड़ित और गजदन्त–निर्मित सिन्दूर परिपूर्ण (सम्पुट, पेटिका) जो देखने में आसन्नगर्भा रमणी के शुक्लगौर वर्ण किन्तु ऊपरी भाग में कुछ अधिक नीलिमा युक्त कुचों–जैसी है। उस पेटिका को लेकर मृदुहास के साथ कुंज से निकली।

आश्लेष–संछिन्नगुणात् परिच्युतं, हाराल्लस–मौक्तिक–संचयं मुदा।
विचित्य काचित् स्वपटाञ्चले दृढ़ं, निवध्नती कुंञ्जगृहाद् विनिर्ययौ।।१४१।।
(गोवि० १/८४)

ताटंकं केलि–विभ्रष्टं तल्पादादाय सत्वरा।
निर्गत्य स्वेश्वरी–कर्णे युयोज रतिमञ्जरी।।१४२।। (गोवि० १/८५)

तल्पप्रान्ता दुपादाय कञ्चुलीं रूपमञ्जरी।
प्रियनर्मसखी सख्यै निर्गत्य निभृतं ददौ।।१४३।। (गोवि० १/८६)

पतद्ग्राहमुपादाय दासिका गुणमञ्जरी।
ताम्बूलं चर्वितं ताभ्यो विभजन्ती बहिर्ययौ।।१४४।। (गोवि० १/८७)

मञ्जुलाली तयोरंगाच्च्युत–माल्यानुलेपनम्।
तल्पादादाय सर्वाभ्यः प्रयच्छन्ती विनिर्गता।।१४५।। (गोवि० १/८८)

विलोक्याग्रे मेघाम्बर–वृतशरीरं प्रियतम्,
वयस्यां तां पीताम्बर–परिवृतां गीं प्रमुदिताम्।
हसन्त्यस्ताः सख्यः करपिहित–मुख्यः प्रतिदिशं,
दिशन्त्यश्चान्योन्यं कुटिलचलदृग्भिर्मुमुदिरे।।१४६।। (गोवि० १/८९)

---

(१४१) परस्पर के आलिंगन से टूटे हारों से गिरे मुक्ताओं को किसी सखी ने आनन्द के साथ खोज लिया। वह उन्हें खोज–खोज कर अपने अंचल में दृढ़ता के साथ बांधकर कुंज से निकली।

(१४२) रतिक्रीड़ा के समय ताड़न्क (कर्णफूल) शय्या पर गिर गया था। रतिमंजरी ने उसे वहाँ से उठाकर शीघ्रतापूर्वक कुंज से निकलकर प्राणेश्वरी के कान में पहना दिया।

(१४३) प्रियनर्म सखी रूपमंजरी ने शय्या के प्रान्तभाग से कंचुकी उठाकर कुंज से निकलकर श्रीराधा को गुप्त रूप से दे दी।

(१४४) गुणमंजरी दासी पीकदानी हाथ में लिये अन्य सखियों को चर्वित ताम्बूल देते हुए कुंज से बाहर जा रही है।

(१४५) मंजुलाली दासी श्रीराधाकृष्ण के अंगभ्रष्ट (अंगों से अलग हुए) माला–चंदन लेकर सभी को वितरण करते हुए कुंज से बाहर आई।

(१४६) इसी समय श्रीकृष्ण को श्रीराधा के नीलवस्त्र से आवृत्त और हर्षभरी सहेली को श्रीकृष्ण के पीताम्बर से आच्छादित देखकर सखियों ने अपने–अपने हाथों से मुंह ढककर हंसते–हंसते चंचल नयन–भंगिमा द्वारा एक–दूसरे को इस वस्त्र–परिवर्तन की बात बताकर परमानन्द प्राप्त किया।

समीक्ष्य तासां परिहासभंगी, मन्योन्यवक्त्रार्पित–फुल्लनेत्रौ।
समुच्छलत् प्रेमसुखाब्धि–मग्नौ, चित्रार्पितां गाविव तावभूताम्।।१४७।।
(गोवि० १/६०)

घनश्यामं चीनं वसनमभिलीनं प्रियतनौ, क्षमा नासीत् कान्ता स्वमपि परिचेतुं घनरुचौ।
स्वमज्ञासीत् स्फीतं हरिरपि न पीतं प्रियतमा–तनौलीनं चीनं कनकरुचि कम्बाविव पयः।।१४८।।
(गोवि० १/६१)

तयोर्लीलासुधापान–प्रत्यूहामर्षसंकुला।
निन्दन्त्यरुणमुद्यन्तमथाह ललिता सखीम्।।१४९।।
(गोवि० १/६२)

ऊषसि वरवधूनां पश्य राधेऽरुणोऽयं, रमण–सहित–लीलाभंगतः पापऋग्भिः।
गलितपदयुगोऽप्यद्यापि तन्नो जहाति, ध्रुवमिति वचनं यद्दुस्त्यजः स्वस्वभावः।।१५०।।
(गोवि० १/६३)

अरुणारुणे निदधती ततोऽम्बरे, रतिकेलिभंगज–रुषाऽरुणां दृशम्।
ललितोपहासजनित–स्मितानना, वृषभानुजाह मृदुमञ्जुभाषिणी।।१५१।।
(गोवि० १/६४)

---

(१४७) सखियों की उस परिहास–भंगिमा को देखकर युगल किशोर उत्फुल्ल नेत्रों से परस्पर का मुख देखकर उच्छलित प्रेम सुख–सागर में निमग्न होकर चित्रार्पित (चित्रित, चित्र में उतारे) से रह गये।

(१४८) जैसे शंख के भीतर दूध का, परस्पर के वर्ण साजात्य (समान वर्ण) के कारण, सहसा अनुमान नहीं होता, वैसे ही श्रीराधा श्याम–अंग में विलीन अपने सूक्ष्म नीलाम्बर को और श्रीकृष्ण कनककांति प्रेयसी के अंग में लीन अपने सूक्ष्म पीताम्बर को पहचान नहीं पाये।

ललिता द्वारा अरुण–निन्दा और श्रीकृष्ण–मुख से प्रभात वर्णन

(१४९) तब श्रीराधाकृष्ण–लीलामृत–पान करने में सूर्य को बाधक मानकर क्रोधान्वित ललिता उदीयमान सूर्य की निन्दा करते हुए सखी श्रीराधा से बोलीं–

(१५०) "राधे ! वह देखो, यह अरुण (सूर्य) प्रातःकाल रमण के साथ वरांगनाओं की लीला भंग करता है, इस पाप के लिये कुष्ठ रोग से इसके पैरों के विगलित होने पर भी यह लीला–भंग–रूपी अपना स्वभाव नहीं छोड़ पा रहा। 'स्व–स्वभाव दुस्तज्य' यह ऋषि–वाक्य सत्य ही है।"

(१५१) ललिता के इस उपहास–वाक्य को सुनने से उत्पन्न हुए मृदुमधुर हास्य के साथ मृदुमन्दभाषिणी श्रीराधा ने रतिक्रीड़ा भंग हो जाने से उत्पन्न रोष से अरुण (लाल) नेत्रों से अरुण किरण–रंजित अरुण वर्ण नभमण्डल की ओर देखकर कहा–

अनूरुरप्यस्तमयन् क्षणार्द्धा–न्नभो विलंघ्योदयमेति सोऽयम्।
चेत् सोरुमेनं स विधिर्व्यधास्य–द्वार्तापि रात्रेर्न तदाभविष्यत्।।१५२।।

(गोवि० १/६५)

मनोरमां वीक्ष्य विभात्–लक्ष्मीं, निपीय तस्या वचनासवञ्च।
मुदोन्मना विस्मृत–गोष्ठयानः प्राणेश्वरीं तामवदन्मुकुन्दः।।१५३।।

(गोवि० १/६६)

इनं प्रभातोपगतं समीक्ष्य, कान्तेव कान्तान्तर–भुक्तकान्तम्।
पश्यान्यदिक्संग–कषायितांग, प्राचीयमीर्ष्यारुणितेव जाता।।१५४।।

(गोवि० १/६७)

पश्योन्मत्ते द्विजेशोऽप्यखिलजनतमस्तोमहन्तापि शान्तः,
कान्तोऽयं ते समन्तात् सपदि निपतितो वारुणीं संनिषेव्य।
इत्थं स्वीयेन–संगप्रमुदित–नलिनीहास–सञ्जातलज्जा,
शन्के वक्तृं पिधते ह्युषसि कुमुदिनीं संकुचद्भिर्दलैः स्वैः।।१५५।।

(गोवि० १/६८)

---

(१५२) "यह अरूण (सूर्य) ऊरु (घुटना, यहाँ पैर)– विहीन होकर भी अस्त होने के पश्चात् क्षणार्द्ध में ही (अति शीघ्र) पुनः गगन मण्डल लांघकर उदित हो जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि यदि विधाता इसके दोनों पैर बना देते तो रात्रि होना तो दूर, रात्रि की बात भी न रहती।"

(१५३) श्रीकृष्ण प्रभातकाल की रमणीय शोभा देखकर और श्रीराधा की ऐसी वचन–सुधा पानकर हर्षोन्मत्त हो गये, वे गोष्ठ–गमन की बात भूलकर प्राणेश्वरी से बोले–

(१५४) "हे प्रिय ! वह देखो– जैसे नायिका सुबह आये नायक को अन्य कान्ता के सम्भोग–चिन्हों से अंकित देखकर ईर्ष्या से लाल हो जाती है, वैसे ही यह प्राचीदिक् (सूर्यपत्नी) इस समय अपने कान्त सूर्य को भी अन्यदिक् (रूपकान्ता) के साथ कषायित वर्ण देखकर ईर्ष्या से रक्तवर्ण हो गई है।

(१५५) वह देखो– नलिनी कुमुदिनी से कह रही है 'हे कुमुदिनि ! तुम्हारा कान्त चन्द्रमा द्विजश्रेष्ठ, समस्त लोकों की अंधकाररूपी पापराशि का हन्ता और शान्तिगुणयुक्त होते हुए भी प्रतीची (पश्चिमी) दिग् रूपी वारुणी (मदिरा) सेवन कर पतित् (जातिभ्रष्ट) हो गया है। अपने स्वामी सूर्य के साथ प्रमुदित नलिनी का यह श्लेष सुनकर लज्जित होकर ही लगता है, कुमुदिनी ने प्रातःकाल अपने संकुचित दलों से मुंह ढक लिया है।

दृष्ट्वा तमः क्षयममी विधुनान्यपुष्टा, नक्तं तमश्चय निभाश्चकिताः प्रभाते।
मित्रं तदाश्रयतया तमसा चरन्तीं, ग्रस्तं कुहूरिति कुहूं स्वगिराह्वयन्ति।।१५६।।

(गोवि० १/९९)

वसन्तकान्त–संसर्ग–जातानन्दभराटवी।
कपोती–घूत्कृतिमिषात् शीत्करोतीव सोन्मदा।।१५७।।

(गोवि० १/१००)

पश्यानुसरति चंचलभृंगः, कैरविणीकुल–केलि–पिशंगः।
नलिनी कोषे निशिकृत–संगां, भृंगी शशिमुखि ! कृतनतिभंगाम्।।१५८।।

(गोवि० १/१०१)

कान्तमायान्तमाशन्क्यारुणां शुद्विगुणारुणम्।
कोकी कोकनदं चन्च्वा चुम्बत्यानन्द विह्वला।।१५९।।

(गोवि० १/१०२)

कलस्वनाख्यः कलकण्ठी ! हंसः, समीक्ष्य नौ सस्मद्–फुल्लपक्षः।
रिरंसुमप्येष विसृज हंसीं, तटं तटिन्याः पुरतः समेति।।१६०।।

(गोवि० १/१०३)

---

(१५६) रात्रि में ये कृष्णवर्ण कोकिलायें यह देखकर कि चन्द्रमा द्वारा अंधकार का नाश हो रहा है और यह सोचकर कि अंधकार जैसे हम सबका भी नाश होगा भय से व्याकुल हो गई हैं और कुहू–कुहू रव से कुहू (अमावस्या) का आह्वान कर रही हैं (कारण–अमावस्या को चन्द्र–सूर्य के एक स्थान पर होने से राहू द्वारा उन्हें ग्रसते ही अधंकार, फिर उनकी आशंका का कोई कारण न रहेगा।)

(१५७) जैसे नायिका नायक के साथ विहार करते समय आनन्दातिरेक से शीत्कार करती है, वैसे ही वसन्त रूपी कान्त के संगम से आनन्द अतिशय के कारण उन्मत्त होकर यह अटवी (जंगल) भी मानो कपोत के घूत्कार के बहाने शीत्कार कर रही है।

(१५८) हे चन्द्रानने ! वह देखो– कुमुदिनियों के साथ केलि–विलास करने के फलस्वरूप पीतवर्ण हुआ यह चंचल भ्रमर अब उस भृंगी (भौंरी) का अनुसरण कर रहा है, जो रात्रि के समय कमल के भीतर अवरुद्ध थी और जिसने इसकी विनती को भंग (अस्वीकार) कर दिया था।

(१५९) और यह चक्रवाकी कान्त के आगमन की आकांक्षा से अरुण–किरणों से दुगने लाल हुए रक्तकमल को आनन्द–विह्वल होकर अपनी चंचु से चूम रही है।

(१६०) हे कलकण्ठि ! वह 'कलस्वन' हंस हम दोनों को देखकर रमण–इच्छावती हंसी को भी त्यागकर आनन्द से भरकर पंख फैलाये यमुना तट के आगे आ रहा है।

स्वसहचर–विसृष्टं सामिभुक्तं मृणालं, मदकल–कलकण्ठी विभ्रती पश्च चन्चवा।
रमणमनु समेति त्वन्मुखाब्जार्पिताक्षी, सरसिज मुखि नाम्नां 'तुण्डिकेरी' मराली।।१६१।।
(गोवि० १/१०४)

मलयशिखरचारी पंकजामोदधारी, व्रतति–नट कुमारी–लास्यशिक्षाधिकारी।
वहति जलविहारी वायुरायासदारी, स रमणवरनारी–स्वेदजालापहारी।।१६२।।
(गोवि० १/१०५)

इतीशयोः सुमधुर–वाग्विलासयोः, समीक्ष्य तां स्वभवन यान–विस्मृतम्।
सखीश्च ताः स्मितरुचिरा मुदोन्मदा, वनेश्वरी दिवसभियाऽऽस सोन्मनाः।।१६३।।
(गोवि० १/१०६)

कान्ता उदीयुर्विक सन्मुखेन्दवो, रात्रिर्गता चास्तमपास्त–चन्द्रिका।
विलासभंगः कथमस्तु नास्तु वा, क्षणं हृदैवेति परामर्शसा।।१६४।।
(कृ० भा० २/५६)

तमांस्यनश्यन्नभितो यथा यथा, तदा प्रकाशश्च यथा यथैधत।
तथा तथा हृद्रुजमेव सान्वभूद्–व्रजस्य रीतिं श्रुतयोऽपि नो विदुः।।१६५।।
(कृ० भा० २/५७)

---

(१६१) हे पद्ममुखि ! वह देखो– 'तुण्डिकेरी' नामक राजहंसिनी अपने सहचर हंस की दी हुई आधी खाई हुई मृणाल अपने चंचुपुट में रखे तुम्हारे मुखपद्म की ओर देखते–देखते मधुर–अस्फुट शब्द करती अपने स्वामी के साथ आ रही है।

(१६२) और यह सुशीतल मलयशिखर–संचारी समीर पद्मों की गंध वहन करता, लतारूपी नटी को नृत्य की शिक्षा देता, लोगों की थकान को मिटाता और प्राणप्रियतम के साथ रमणियों के स्वेदवारि (पसीने) को सुखाता मृदुमंद गति से बह रहा है।"

गृह गमन–विस्मृति और कक्खटी का पद्यपाठ

(१६३) इस प्रकार परस्पर सुमधुर वाग् विलास में रत युगल को अपने–अपने घर जाने की बात भूलता देख और सखियों को भी मृदुमंद हास्य–शोभित आनन्द–उन्मत्त देख दिन निकलने के भय से वृन्दा देवी उत्कण्ठित हो गईं।

(१६४) इधर पूर्णचन्द्र वदना राधादि कान्तायें उदित हैं, उधर चन्द्र ज्योत्सना शून्य (अंधेरी) रात भी बीत गई (विलास भंग के विरुद्ध हैं, पूर्ण चन्द्र वदना नारियों का उदय और पक्ष में है। अंधकार रात्रि का गमन) पर युगल विलास भंग हुआ कि नहीं–इस विषय में वृन्दा क्षणभर सोचने लगीं।

(१६५) वेदादि शास्त्रों में आया है कि जिस परिमाण में तम (अज्ञान) क्षय होता है, उसी परिमाण में प्रकाश (ज्ञान) होता है एवं प्रकाश के तारतम्य से हृद्रोग (दुर्वासना) दूर होता है। वृन्दा के लिये विपरीत बात हुई (जिस मात्रा में अंधकार नाश से सूर्य का आलोक फैलने लगा, उसी मात्रा में वृन्दा के चित्त में विविध आशंका और राधाकृष्ण की विरह–व्यथादि बढ़ने लगी।) आश्चर्य नहीं, व्रज–रीति श्रुतियों के भी अगोचर है।

अथ वृन्देंगिताभिज्ञा समयज्ञा तरुस्थिता।
पद्यमुद्योतयामास कक्खटी वृद्धमर्कटी।।१६६।।

(गोवि० १/१०७)

रक्ताम्बरा सतां वन्द्या प्रातः सन्ध्या तपस्विनी।
ऊर्ध्वप्रसर्पदकांशुर्जटिलेयमुपस्थिता।।१६७।।

(गोवि० १/१०८)

आकर्ण्य ताभिर्जटिलेति वर्ण, त्रयीं विबर्णत्वमधारि सद्यः।
विलास–रत्नाकरमुद्भवन्ती, शंकैव तासां चुलुकीचकार।।१६८।।

(कृ० भा० २/६०)

पथि पिशूनमतिभ्यः शंकमानौ गुरुभ्यः, चलचकित–तरंगौ निक्षिपन्तावपांगौ।
परमगुण गभीरौ काम–संग्रामधीरौ, ययतुरतिवितन्द्रौ राधिका–कृष्णचन्द्रौ।।१६९।।

(कृष्णा० १/४२)

न पथि न भवने वा लक्षितौ तो वने वा, सहजसदनुरक्त्या स्वीययानन्दशक्त्या।
परिजन–नयनानामुत् सवानादधाना–वथ पथि विहरन्तौ रेजतुलोककान्तौ।।१७०।।

(कृष्णा० १/४६)

---

(१६६) तत्पश्चात् समय को और वृन्दादेवी के इंगित को समझने वाली 'कक्खटी' नामक एक वृद्धा मर्कटी (वानरी) ने वृक्ष पर बैठकर यह कविता–पाठ किया।

(१६७) सज्जनों द्वारा पूज्य प्रातः सन्ध्या रूपी तपस्विनी रक्त–वस्त्र धारण कर ऊपर फैली किरणमाला से जटिला (जटायुक्त) होकर आई है।

(१६८) 'ज–टि–ला' इन तीन अक्षरों को सुनते ही श्रीराधिका आदि ब्रजरमणियाँ निष्प्रभ (फीकी) पड़ गई, और दारुण शंका ने जन्म लेकर उनके विलास–रत्नाकर (समुद्र) को भी (अगस्त्य की तरह) चुल्लू में भर लिया (सुखा दिया)।

युगल के स्वगृहयात्रा–प्रकार

(१६९) परम गुणगम्भीर, काम–रणवीर और अत्यन्त सतर्क श्रीराधाकृष्ण मार्ग में खलबुद्धि गुरुजनों की आशंका कर इधर–उधर चंचल–चकित अपांग–निक्षेप करते हुए (तिरछी नजरों से देखते हुए) जा रहे हैं।

(१७०) वे मार्ग में, वन या भवन में किसी के देखने में न आये। सहज सदनुरागमयी अपनी ह्लादिनी शक्ति के प्रभाव से परिजनों के नेत्रों को आनन्द देते हुए वे मार्ग में भी विहार–परायण हुए।

भ्रश्यद् दुकूल–चिकुर–स्रजमुन्नयन्तौ, भीतौ पृथग्गहनवर्त्मनि चापयान्तौ।
तौ वीक्ष्य भीति–तरलौ जटिलेति नाम्ना, सख्यस्ततस्तत इतश्चकिता निरीयुः।।१७१।।
(गोवि० १/११०)

वामे चन्द्रावलि–परिजनान् घोषवृद्धान पुरस्तात्,
कृष्णः पश्चात् कुटिलजटिलामागतां मन्यमानः।
यान्तीं कान्तां सभयचटुलां दक्षिणे द्रष्टुमुत्क–
श्चञ्चद्ग्रीवं दिशि दिशि दृशौ प्रेरयन् गोष्ठमायात्।।१७२।। (गोवि० १/१११)

म्लानामुत्क्षिप्य मालां त्रुटित–मणिसरः कज्जलं विभ्रदोष्ठे,
संकीर्णांगो नखान्कैर्दिशि दिशि विकिरन् घूर्णिते नेत्रपद्मे।
पश्य म्लानांगव्येष्टिः स्फुटमपरिचितो गोप–गोष्ठी भिरग्रे,
गोष्ठे गोष्ठेन्द्रसूनुः प्रविशति रजनौ ध्वंसमासादयन्त्याम्।।१७३।। (स्त० कुंजभंग० २)

अनुगता जटिलेत्यभिशंकिनी, गुरुनितम्ब–कुचोद्वहनाकुला।
द्रुतविलम्बित–वल्गु ययौ व्रजं, करधृताम्बर केशचयेश्वरी।।१७४।। (गोवि० १/११२)

---

(१७१) जटिला का नाम सुनकर अति भीत श्रीराधाकृष्ण को प्रस्खलित (गिरे हुए) वस्त्रों, केशों और मालाओं को ऊपर करते–करते अलग–अलग वन–पथों से पलायन करते देखकर सखियों ने भी चौंककर इधर–उधर गमन किया।

(१७२) बायीं ओर चन्द्रावली के परिजनों, सामने घोषपल्ली (ग्वाल बस्ती) के प्रवीण लोगों, पीछे कुटिलमति जटिला के आगमन की आशंका कर और दायीं ओर भय–व्याकुल हो घर की ओर जा रही कान्ता को देखने के लिये उत्कण्ठित–उद्ग्रीव होकर (गर्दन उठाये) इधर–उधर दृष्टिपात करते–करते श्रीकृष्ण भी गोष्ठ–गमन कर रहे हैं।

(१७३) (एक सखी दूसरे को श्रीकृष्ण की गमन–भंगिमा दिखाकर) "हे सखि ! वह देखो– ब्रजेन्द्रनन्दन रात्रि बीतने पर ब्रजवासियों के जगने से पहले अपने घर जा रहे हैं। श्रीराधा के कठोर कुच–मर्दन से वैजयन्ती माला के म्लान पड़ जाने पर भी उसका त्याग न कर उसे वक्ष से उठाकर कण्ठ में डाल रहे हैं– कन्दर्प युद्ध में इनका रत्नहार छिन्नभिन्न है, श्रीराधा के कज्जलभूषित नयन–प्रान्तों के चुम्बन से इनके अधर काले हैं, प्रेयसी के नख–चिन्हों से सर्वांग भरा है, कोई देख न ले इस भय से अलस नेत्रों से इधर–उधर दृष्टिपात कर ब्रजवासियों से बचकर द्रुतगति से जा रहे हैं।"

(१७४) उधर श्रीराधा पीछे से जटिला के आने की आशंका से गुरुतर नितम्बों और स्तनों को वहन करने से व्याकुल होकर हाथों से गिरे वस्त्रों और केशों को संभालती द्रुत किन्तु मंदमधुर गति से व्रज की ओर जा रही हैं।

न व्यालादपि सम्बिभेति पुरतः स्थाणोर्यथा दूरतो,
नोद्विग्ना करिगर्जितादपि यथा काकावली–निःस्वनात्।
नैवेयं तिमिरेऽपि मुह्यतितरां कामं प्रकाशे यथा,
तन्मन्ये विरहेऽपि नैव विधुरा कान्तस्य योगे यथा।।१७५।।

(ज० ५/३४)

भयानुरागोच्चय–धूम्रलोलदृक्–तिरस्करिण्या पिहिते मनोरथे।
निजे निवेश्यैव हि रूपमञ्जरी, गृहं निनीषुः पथि ता तदन्वयात्।।१७६।।

(गोवि० १/११३)

इतस्ततः क्षिप्तचलेक्षणाशुगै–र्भीदुस्थहृद्वृत्तिचयैर्भटेरिव।
अग्रेसरैस्तां रतिमञ्जरी च सा, निवारयन्त्यन्यजनांस्तदान्वयात्।।१७७।।

(गोवि० १/११४)

ताभिर्वृता व्रजजनैरविलोकितैव, वेश्म प्रविश्य निजतल्पमथाध्यतिष्ठत्।
प्रेयोवियोगविधुरा हि सखीमथासौ, हृद्वेदनां प्रकटमाह सगद्गदाश्रु।।१७८।।

(कृ० भा० २/८०)

---

(१७५) वे विषधर सर्प देखकर उतनी नहीं डरती, अब दूरवर्ती शाखा शून्य वृक्ष को देखकर उससे अधिक डर रही हैं। कौवे के शब्द से जितनी उद्विग्न हो रही हैं, उतनी हाथी–गर्जन से भी नहीं होतीं। दिन के प्रकाश में जितनी शंकित हो रही है, उतना मोह उन्हें निविड़ अंधकार में भी नहीं होता। अतएव लगता है कि वे कान्त के विरह में भी इतनी दुःखी नहीं होतीं, जितनी व्यथित अब कान्त–संयोग में हो रही हैं।

(१७६) श्रीराधा को घर ले जाने की अभिलाषिणी रूपमंजरी मानो अपने मनोरथ पर ही उन्हें बिठाकर अतिभय और अनुराग के कारण धूम्रयणी चंचल नयन रूपी पर्दे से ढके पथ पर (उनके मार्ग के दोनों ओर सतर्क दृष्टि रखते हुए) पीछे–पीछे चलने लगीं।

(१७७) जैसे राजा का अग्रगामी सैनिक इधर–उधर फेंके चंचल वाणों के आघात से सामने की जनता को हटाता जाता है, वैसे ही रतिमंजरी विरुद्ध भावापन्न लोगों के आने की आशंका से भयाकुल अस्थिर हृद्वृतियों द्वारा इधर–उधर दृष्टि निक्षेप करते हुए श्रीराधा के पीछे चलने लगीं।

(१७८) इस प्रकार (अनुरागी) श्रीराधा सखियों द्वारा वेष्टित होकर गृह–प्रवेश कर अपनी शय्या पर लेट गईं। आते हुए उन लोगों को किसी भी व्रजवासी ने नहीं देखा। प्रिय विरह में कातर श्रीराधा गद्गद कण्ठ और अश्रुपूर्ण नेत्रों से ललिता सखी से अपनी हृदय–वेदना कहने लगीं।

निःसार्य गेहाल्ललितेऽधुनैव मां, प्रवेशयस्यप्यधुनैव तत् पुनः।
कृष्णांगसंगामृत सिन्धुमज्जन–प्रलोभनैवाद्य वृथा कृता त्वया।।१७६।।

(कृ० भा० २/७६)

अस्ताचलं यन्नधुना व्यलोकि यः, स तिग्मरश्मिः सखि ! पूर्वपर्वतम्।
आरोढुमांकाक्षति किं विभावरी, खपुष्पतामद्यतनी जगाम किम् ?।१८०।।

(कृ० भा० २/७७)

धिङ् मे श्रुतिं धिग्रसनां दृशं च धिक्, सदा तनौत्कन्ठयभर–ज्वरातुरम्।
प्रापूर्ण पातुं लवमप्यमुष्य याः, सौस्वर्य–सौरस्य–सुरूपतामृतम्।।१८१।।

(कृ० भा० २/७८)

निर्वेद–पद्धतिमपीपठदेव पूर्वं, योगोऽधुना तु सरले भवतीं वियोगः।
आद्योऽच्युतामृतमदर्शयदर्थमस्या, आन्योऽनुभावयति हा कटुकालकूटम्।।१८२।।

(कृ० भा० २/७९)

इत्थं सखी गिरमपि प्रतिबोद्धुमेषा, नैवानुराग–परभागवती शशाक।
स्वप्ने पुनः कलयितुं हृदयाधिनाथं, सुष्वाप साऽथ शयने वृषभानुपुत्री।।१८३।।

(कृ० भा० २/८० श्लोकार्द्धः)

श्रीराधा का आक्षेपादि और शयन

(१७९) "हे ललिते ! तुमने मुझे अभिसार के समय श्रीकृष्ण–अंग संग रूपी अमृत–सागर में डुबाने का आश्वासन दिया था। हाय, इस प्रलोभन में मुझे अभी तो घर से बाहर निकाला, फिर अभी घर वापस क्यों ले आईं ? हे सखि ! मुझे किस दोष के कारण उस सुधा–सागर में नहीं डुबाया ?

(१८०) हे सखि ! जिसे अभी अस्ताचल जाते देखा, वह सूर्य इसी समय पुनः पूर्व पर्वत तट पर चढ़ने को उद्यत हैं, आज रात क्या आकाश कुसुम की तरह मिथ्या ही हुई (आज रात नहीं हुई)?

(१८१) सखि ! मेरे कान, रसना और दृष्टि सदैव उत्कण्ठा–अतिशयरूपी ज्वर से पीड़ित हैं, किन्तु इन्हें शत धिक् कारण–ये सब श्यामसुन्दर के सौस्वर्य (सुन्दर वचन), सौरस्य (सुन्दर अधर–सुधा) और सुन्दर रूपामृत का विन्दु–विसर्ग भी पान नहीं कर पाये।"

(१८२) इस पर ललिता ने कहा– "हे राधे ! आज रजनी योग में श्रीकृष्ण–संयोग ने तुम्हें निर्वेद–पद्धति (धर्म के उल्लंघन के निमित्त वेदरहित पद्धति) का पाठ कराया है; अब वियोग भी निर्वेद–पद्धति (आत्म–धिक्कार पद्धति) का अध्ययन करा रहा है।" रात्रि में योग ने तुम्हें श्रीकृष्ण के वचनामृत, रूपामृत और अधरामृत की मधुरता का आस्वादन कराया था, अब वियोग निर्वेद पद्धति (कालकूट) अनुभव करा रहा है।

(१८३) परम अनुरागवती वार्षभानवी (वृषभानुनन्दिनी) ललितासखी की बात ही नहीं समझीं। वे स्वप्न में प्राणनाथ के दर्शन की आशा कर शय्या पर लेट गईं और (किसी अनभिसारिका सखी के प्रश्न के उत्तर में श्रीराधा के वस्त्र–परिवर्तन से अनभिज्ञ सखी कहती है–

स्रस्तं श्रस्त मुदंचयत्यधिसिरः श्यामं निचोलांचलं हस्तेन
श्लक्ष–दुर्वेलेन लुलिता कल्पां बहन्ति तनुं।
मुक्तार्द्धाभवरुध्य वेणिमल सश्यन्दे क्षिपन्ती दृश्यौ कुंजात पश्य गृहं
पृविश्य निभृतं शेते सखी राधिका।।१८४।।

(स्त० कुंज० भंग० १)

निर्वत्त्य विभ्रमभरं समये स्वधाम्नि सुप्तोऽच्युते प्रतिलयं सुतवो यथेरी।
लीलावितान्–निपुणाः सगुणाः शमीयुः सत्योपलक्ष्य गतयः सदनं यथास्वंभ्।।१८५।।

इति भी भावना सार संग्रहे निशान्त लीला संग्रहो नाम प्रथम संग्रह।।

---

(१८४) हे सखी! यह देख–श्री राध निकुंज से आकर घर के प्रकोष्ठ में निभृत भाव से शयन कर रही है। उसका नीले रंग का उत्तरीय वार–वार सिर से सरक जाता है अतः शिथिल हाथ से पुनः पुनः उत्तरीय को सिर पर रखती है। कन्दर्प–विलास के कारण पहने हुये वस्त्र अव्यवस्थित जैसे हो गये हैं। अध खुली वेणी को दुर्बल हाथों से बांध्कर, अलसाये नेत्रों से चारों ओ देख रही है।

(१८५) जिस प्रकार से कि सृष्टि के रचयिता आदि पुरुष प्रत्येक युग में लीला–विलास सम्पन्न करने के पश्चात् प्रलय होने पर शेष शैया पर शयण करते हैं। उसी प्रकार सृष्टि के लीला–विस्तार के अन्तर्गत विचक्षणा त्रिगुणात्यिका श्रुतिगण भी अलक्षित मार्ग से उनमें से ही प्रवेश करते हैं श्री कृष्ण भी कुछ वैसे ही कुंज–विलास संपादन करने के बाद प्रभात काल में गुरुजनों के भय से अपने घर में सो रहे हैं; कुज लीला में निपुण एवं सौन्दर्य वैदग्धदि गुणों से मण्डिता सखी गण भी अलक्षित पथ से अपने–अपने घरों में प्रवेश कर विश्राम कर रही हैं।

श्री श्री भावना सार संग्रहे निशान्त लीला संग्रहो नाम प्रथम संग्रह।।

स्रस्तं स्रस्त मुदंचयत्यध्सिरः श्यामं निचोलांचलं।

श्रीश्री भावना सार संग्रहः

द्वितीय संग्रहः

अथ प्रातः लीला

पश्यन्तीं स्वसुतं शची भगवती संकीर्तने विक्षतं,
प्रातर्हा कथमेव ते वपुरिदं सूनो वभूव क्षतम्।
इथं लापनतः स्वपुत्र वपुषि व्यग्रा स्पृशन्ती मुहु–
स्तल्पाज् जागरयाल्चकार यमहं तं गौरचन्द्रं भजे।।१।।

भक्तैः सार्द्धमुपागतैर्भुर्वि नतैः श्रीवास–गुप्तादिभिः,
पृच्छद्भिः कुशलं प्रगे परिमिलन् प्रक्षाल्य वक्त्रं जलैः।
पुष्पादि – प्रतिवासितैः सुकथयन् स्वप्नानुभूतां कथा,
स्नात्वाझाद्धरिशेषमोदनवरं यस्तं हि गौरं भजे।।२।।

राधां स्नात–विभूषितां बृजपयाहूतां सखीभिः प्रगे, तद्गेहे विहितान्नपाकरचनां कृष्णा वशेषाशनाम्।
कृष्णं बुद्धमवाप्तधेनु–सदनं निर्वूढ़–गोदोहनं, सुस्नातं कृतभोजनं सहचरैस्तान्चथ तल्चश्रये।।३।।
(गोवि० २/१)

(१) **श्रीगौरचन्द्रः** – प्रातःकाल भगवती शचीमाता अपने पुत्र विश्वम्भर को संकीर्तन के कारण विक्षत (घायल अथवा क्लान्त) देखकर "हाय ! हाय पुत्र ! तुम्हारा शरीर क्षत विक्षत कैसे हो गया?" इस प्रकार कहती हुई अत्यन्त व्याकुलतापूर्वक उनके श्रीअंग पर हाथ फिराते हुए लालन करते हुए उनको जगाने लगीं। ऐसे प्रभु गौरचन्द्र का हम भजन करते हैं।

(२) प्रभात काल में श्रीवास पण्डित, मुरारि गुप्त आदि भक्तवृन्द श्रीगौरसुन्दर के निकट आकर उनको भूमि पर लेटकर दण्डवत प्रणाम कर उनसे कुशल वार्ता पूछने लगे। श्रीगौरांग प्रभु उनके साथ मिले और फिर भाव–विभोर होकर उन्हें स्वप्नानुभूत वार्ता सुनाकर, स्नान करके, अत्युत्तम श्रीकृष्ण का अधरामृत भोजन करते हैं। उन श्रीगौरप्रभु का हम भजन करते हैं। अधरामृत भोजन करते हैं। उन श्रीगौरप्रभु का हम भजन करते हैं।

मंजरी वर्ग का अपना प्रातःकृत्य एवं यावट का वर्णन :

(३) **मूलसूत्र** : जो प्रातःकाल स्नान करके विविध अलंकारों से विभूषित होकर माता यशोदा द्वारा बुलाये जाने पर उनके घर सखीवृन्द के साथ जाकर समस्त रन्धन कार्य समाधान करके श्रीकृष्ण का अधरामृत पान करती हैं; उन श्रीमती राधिका को हम प्रणाम करते हैं और जो प्रातःकाल जागकर, गौशाला को गमन करते हैं, नियमपूर्वक गोदोहन, स्नान एवं सखाओं के साथ भोजन करते हैं, उन श्रीकृष्ण की हम वन्दना करते हैं।

स्नातानुलिप्त–वपुषः पुपुषुः स्वभास्त–न्निर्माल्य–माल्य–वसनाभरणेन दास्यः।
प्रास्य स्वकाममनु वृत्तिरतास्तयोर्याः, श्रीरूपमञ्जरि–समान–गुणाभिधानाः।।४।।
(कृ० भा ३/१)

ता विद्युद्युद्द्युतिजयि प्रपदैकरेखा, वैदग्ध्य एव किल मूर्त्तिभृतस्तथापि।
यूथेश्वरीत्वमपि सम्यगरोचयित्वा, दास्यामृताब्धिमनु सस्नुरजस्रमस्याः।।५।।
(कृ० भा ३/२)

श्वश्रु–पुरान्तर गतोत्तर पार्श्ववर्त्ति, भ्राजिष्णु धाम वरशिल्पकलैकधाम।
तातेन वत्सलतया वृषभानुनैव, निर्मापितं तदुपमापि तदेव नान्यत्।।६।।
(कृ० भा ३/३)

स्थूणा–प्रघाण पटलांगणतोरणाली–गोपानसी–विविधकोष्ठ–कपाटवेद्यः।
राजन्ति यत्र मणि दीपतति–प्रदीप्त–वैचित्र्य–निर्मित–जनेक्षण–चित्रभावाः।।७।।
(कृ० भा ३/४)

---

(४) श्रीमती राधारानी अपने भवन में आकर शयन करतीं है। श्रीरूपमंजरी आदि उनकी किंकरीगण स्नान कर चन्दनादि द्वारा अनुलेपन कर अपनी प्राणेश्वरि श्रीराधा के प्रसादी माला, वस्त्र, अलंकार धारण कर अत्यधिक शोभा को प्राप्त हुईं। ये सब अपनी समस्त इच्छाओं को परित्याग करके युगलकिशोर की प्रेममय सेवा में लगी रहती हैं। जैसी उनकी अतुलनीय सुन्दरता है वैसे ही उनके नाम और गुण भी हैं।

(५) उनके चरणों के अग्रभाग की एक रेखा (किरण) विद्युत की उत्तम कान्ति को परास्त कर रही है, वे मूर्तीमती विदग्धता (रसचतुरता) स्वरूपा हैं, उनमें से प्रत्येक यूथेश्वरी होने के योग्य होते हुए भी वे उस पद के प्रति अपनी रूचि नहीं रखतीं। वे तो नित्य निरन्तर श्रीराधा के दास्यामृतसागर में ही अवगाहन करती रहती हैं।

(६) श्रीमती राधारानी के निवास के लिये श्रीवृषभानु महाराज ने जटिला के अंतःपुर के उत्तर में नाना प्रकार शिल्पकलाओं से अत्यंत सुसज्जित बहुमूल्य मणियों की कांति से प्रकाशित एक परम सुन्दर अनुपम अट्टालिका का निर्माण करा दिया था।

(७) यह अट्टालिका नाना प्रकार के स्तम्भ, बरामदे, छत, छज्जे, आंगन, नाना प्रकार के प्रकोष्ठ (कमरे) दरवाजे, वेदी आदि से सुशोभित तथा मणि दीपकों से प्रकाशमान है। इसकी विविध चित्रकला का दर्शन करके दर्शक जनों का मन विस्मित हो जाता है।

यत्रेन्दुनीलमणिर्भूवलभी घनाभा, हंसालिरप्युपरि राजति राजती सा।
ये वीक्ष्य बन्धुरिपुभानमृतो वितत्य, संकोचयन्ति शिखिनः स्वशिखण्ड–पंक्तीः।।८।।

(कृ० भा ३/५)

तत्रोपवेश–शयनाशन–भूषणादि–वेदीर्विमृज्य परिलिप्य विशोध्य तास्ताः।
आस्तीर्य्य रांकवमुर्पय्यपयुक्त–मुक्त–मुल्लोचमुन्नतमुदो मिलिता बबन्धुः।।६।।

(कृ० भा ३/६)

एका ममार्ज मणि काञ्चन भाजनानि, काचित् पयः समययोग्यमुपानिनाय।
चित्रांशुकापिहित–रत्न–चतुष्किकाया–मालम्बनीय मदधादपरोपवर्हम्।।१०।।

(कृ० भा ३/७)

पूर्वेद्युरंशुक–मणीमय–भूषणानि, मृष्टानि यत्र निहितान्यथ संपुटं तत्।
उच्चैझर्नद्वलयराजि समुद्घटय्य, काचिज्जघर्ष विधु–कुंकुम–चन्दनानि।।११।।

(कृ० भा ३/८)

---

(८) इस अट्टालिका के ऊपर बने हुए इन्द्रनीलमणि निर्मित मेघ के समान छज्जों के ऊपर चांदी के बने हुए हंसों की श्रेणी परम रमणीय शोभा का विस्तार कर रही है। मयूरगण इन्द्रनीलमणि के छज्जों को देख अपने प्रिय मेघ समझ कर पंख फैलाकर और फिर उस पर रजत निर्मित हंस श्रेणी को देखकर अपना शत्रु समझ कर अपने पंखों को समेट लेते हैं।

श्रीमती राधारानी की सेवा का आयोजन

(६) इस प्रकार की अट्टालिका में स्थान–२ पर निर्मित शयन, भोजन एवं बैठने के लिए जो वेदी हैं उन सबको किंकरीगण ने स्वच्छ जल से धोकर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों से लेपन कर दिया और पुनः उनको सुखाकर (रंगू नामक मृग के लोम से बना) अत्यन्त कोमल आसन बिछा दिया और ऊपर की ओर सबने मिलकर मोतियों की झालर से सुशोभित चंदोवा बांध दिया।

(१०) एक दासी ने मणिकंचनमय पात्रों को धोकर स्वच्छ किया और किसी दूसरी ने समय योग्य (ग्रीष्म में सुशीतल एवं शीतकाल में उष्ण) जल लाकर प्रस्तुत किया। अन्य किसी दासी ने विचित्र वसन से आच्छादित रत्न चौकी पर तकिया रख दिया।

(११) पूर्व दिवस ही किसी दासी ने जिस पेटी में दिव्यवस्त्र एवं मणिमय आभूषणादि रखे थे, उनको इस समय अपनी चूड़ियों की कणत्कार करते हुये खोलकर देखा और फिर कर्पूर, कुंकुम, चन्दन धिसने लग गयी।

अन्या व्यधत्त सुमनाः सुमनोभिरेव, चित्रैः किरीट–कटकांगद–हार काञ्चीः।
जाती–लवंग–खदिरादिभि रज्यमानाः, काचिद् ववन्ध सुरसाः फणिवल्ली–वीटीः।।१२।।
(कृ० भा ३/९)

अत्रान्तरे प्रतिदिशं दधिमन्थनोत्थ–रावैरवारित–महीसुर–वेदघोषैः।
हम्वाध्वनि–व्यतिविधान–मिथोऽवधायि–धेन्वालि–तर्णकघटा बलदन्तरायैः।।१३।।
(कृ० भा ३/१०)

वृन्दिष्ठवन्दिजनवृन्द–वितायमान–श्रीकृष्णा कीर्त्ति–विरुदालिसुधा–तरंगैः।
शारीशुक ब्रजकलैः कलविंककेकि–कोलाहलैः क्रमत एव समेधमानैः।।१४।।
(कृ० भा ३/११)

जाग्रत्सु लोकनिचयेष्वथ वासरेति, कर्त्तव्यभावन परेष्वधिशय्यमेव।
कृष्णेक्षण–क्षण सतृष्णतया पुरन्ध्री–वृन्देषु नन्दगृह–सन्दित–मानसेषुः।।१५।।
(कृ० भा ३/१२)

---

(१२) अन्य एक प्रशस्त हृदया (उदार चरित्रा अथवा सुचतुरा) दासी विचित्र कुसुमों द्वारा किरीट (चन्द्रिका) बाजूबन्द, हार, करधनी, नूपुर आदि आभूषण बनाने लगी तथा अन्य कोई दासिका जायफल, लौंग, कत्था आदि सुगन्धित द्रव्यों द्वारा अनुराग से भरकर सुरसाल पान की बीरी बनाकर तैय्यार करने लगी।

प्रभात समय का वर्णन, श्रीराधा के शयनकक्ष में मुखराजी का प्रवेश

(१३) प्रातःकाल चारों दिशाओं में दधिमन्थन की ध्वनि होने लगी। ब्राह्मणगण वेदध्वनि करने लगे। उनकी उच्च स्वर से वेदपाठ की ध्वनि और इधर दुही जाती हुई गायों की अपने बछड़ों को हम्बा–२ कर पुकारने की ध्वनि मानों एक दूसरे से स्पर्धा करने लगी और क्रमशः एक दूसरे से ऊँचा शब्द करती हुई प्रतीत हो रहीं थीं।

(१४) श्रेष्ठ–२ वन्दिजन श्रीकृष्ण के यश विरुदावलि रूप अमृत की तरंगों का विस्तार करने लगे। सारी शुक की मधुर ध्वनि एवं चटक तथा मोरों आदि पक्षियों का कोलाहल क्रमशः बढ़ने लगा।

(१५) क्रमशः ब्रजवासीगण जागते हुए अपनी शैय्या पर बैठकर दिन में किये जाने वाले कार्यों का विचार करने लगे। श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा से उत्कण्ठित गोपिकागण नन्दभवन जाने के लिए व्यग्र हो उठीं।

नप्त्री–मुखाम्बुज–विलोकन–जीवितायां, तत्रोपसृत्य सहसा मुखराभिधायाम्।
वात्सल्यरत्न पटली–मृतपेटिकायां, राधे ! क्व पुत्रि ! भवसीति समाह्वयन्त्याम्।।१६।।
(कृ० भा ३/१३)

स्वभाव–कुटिलाप्यात्म–सुतसम्पत्ति–कांक्षया।
व्याकुला जटिला गत्वा निकटं तामथाब्रवीत्।।१७।। (गोवि० २/४३)

सूनोः प्रजायुर्धनवृद्धयेऽसौ, त्वया स्नुषाज्ञे ! नियतं नियोज्या।
सुमंगल–स्नान विभूषणादौ, गोकोटिहेतोस्तपनार्चनाय।।१८।। (गोवि० २/४४)

आज्ञानवज्ञा निजगोष्ठराज्ञाः, कार्यानभिज्ञोक्तिषु तेऽप्यवज्ञा।
इत्यादिशत्यन्वहमर्थविज्ञा, विज्ञापिता मे किल पौर्णमासी।।१६।।
(गोवि० २/४५)

तस्मात्वमार्य्ये स्वां नप्त्रीं सर्वमंगल–मण्डिताम्।
विधेहि सर्वसम्पत्तिर्यथा सूनोर्भवेन्मम।।२०।। (गोवि० २/४६)

वधूमथाभाषत पुत्रि ! तल्पा–दुतिष्ठ तूर्णं कुरु वास्तुपूजाम्।
त्वं मंगलस्नानविधिं विधाय, पूजोपहारं सवितुर्विधेहि।।२१।। (गोवि० २/४७)

---

(१६) ऐसे समय दौहित्रि श्रीराधा के मुखचन्द्र का दर्शन ही जिसका जीवन है और जो वात्सल्य रत्नों से युक्त मानो मंजूषा स्वरूपिणि हैं ऐसी मुखराजी (नानीजी) ने श्रीराधारानी के भवन में आकर 'हे राधे' 'हे पुत्रि' तुम कहाँ हो, इस प्रकार पुकारने लगीं।

(१७) स्वभाव से कुटिल होकर भी जटिला उस समय अपने पुत्र की सुख–समृद्धि की लालसा से व्याकुल होकर, मुखरा के निकट जाकर कहने लगी।

(१८) हे पण्डिते ! अपने पुत्र की सन्तान, आयु, धन–सम्पत्ति एवं कोटि–२ गउओं की प्राप्ति के लिये आप इस पुत्रवधू को मंगलस्नान, समस्त अलंकारों से सुसज्जित कराके सूर्य पूजार्थ भेजने के लिये नियुक्त करो।

(१६) सर्वज्ञा (आगम निगम जानने वाली) पौर्णमासी देवी मुझे प्रतिदिन आकर यही आदेश देती है कि तुम अपनी गोष्ठेश्वरि श्रीयशोदा रानी के आदेश का कभी लंघन नहीं करना (अर्थात् सदा उनका आदेश पालन करना) और अन्य मूर्ख जनों के वचनों का आदर नहीं करना।

(२०) अतएव हे आर्ये मुखरे ! मेरे पुत्र की सब प्रकार की सुख–सम्पत्ति लाभार्थ अपनी दौहित्रि को समस्त मांगलिक वस्त्रालंकार आदि से सुसज्जित करवा दो।

(२१) तदनन्तर जटिला अपनी पुत्रवधू को कहने लगी– शीघ्र ही शैय्या का त्याग कर वास्तु पूजा करो और फिर मंगल स्नानादि विधिपूर्वक कर सूर्य पूजा की तैय्यारी करो।

प्रभातमायातमहो तथापि, निद्राति नप्त्रीति मुहुर्वदन्ती।
स्नेहद्रतांगी मुखरा प्रविश्य, शय्यालयं तामवदत्तदेदम्।।२२।।

(गोवि० २/४८)

उत्तिष्ठ वत्से शयनात् प्रमुग्धे, व्यस्मारि वारोऽद्य रवेस्त्वया किम् ?
स्नात्वा प्रभातार्घ्य विधानमस्मै, पूजोपहारं रचयास्य चाशु।।२३।।

(गोवि० २/४६)

तद्वचः प्रतिबुद्धाथ विशाखोत्थाय सालसा।
सखि ! तूर्णं समुत्तिष्ठोत्तिष्ठेति प्राह सत्वरा।।२४।।

(गोवि० २/५०)

तासां वचोभिः शयनेऽथ मुग्धा मुहुः प्रजागर्य्य पुनर्निदद्रौ।
विचालिता वीचिचयैस्तड़ागे, सा राजहंसीव रतालसांगी।।२५।।

(गोवि० २/५१)

तदैवावसराभिज्ञा जग्राह रतिमञ्जरी।
सखी वृन्दवनेश्वर्य्या श्रीमच्चरण–पंकजम्।।२६।।

(गोवि० २/५२)

---

(२२) "बड़े आश्चर्य की बात है ! प्रभात हो गयी है फिर भी नातिनि राधा अभी तक निद्रा का त्याग नहीं कर रही हो।" इन वचनों को बारम्बार बोलते हुए वात्सल्य स्नेह से भरी, श्रीराधा के शयन मन्दिर में प्रवेश कर, मुखराजी कहने लगीं।

(२३) वत्से ! शैय्या से उठो। हे प्रमुग्धे (भोली–भाली) आज रविवार है। यह भी क्या तुम भूल गयी हो। स्नान कर सूर्य देव को प्रभातकालीन अर्घा प्रदान करो। फिर उनकी पूजा के उपहारों को शीघ्र ही तैय्यार करो।

(२४) वृद्धा मुखरा के यह वचन सुनकर विशाखाजी जाग गयीं। अभी उनके अंगों में आलस्य था फिर भी शीघ्रतापूर्वक उठकर श्रीराधा से कहने लगीं– 'सखि ! शीघ्र उठो, शीघ्र उठो।

श्रीराधा का जगना एवं पीतवसन की चर्चा :–

(२५) उन सब के वचनों से श्रीराधा शैय्या पर बारम्बार जागकर, सुरतश्रम से आलस्य युक्ता होने के कारण पुनः निद्रित हो गयी, मानो किसी तरंगायित सरोवर में कोई राजहंसिनि को विचालित कर दिया गया हो।

(२६) तब समय को जानने वाली रतिमंजरी सखी वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा के चरण कमल स्पर्श करने लगी (जगाने लगी)।

इत्थमियं बहुभिः कृतबोधा, स्वाच्छयनादुद्तिष्ठदनल्पात्।
तामथ वीक्ष्य सुपीत–परांगी, शंकितहृन्मुखरेदमुवाच।।२७।।

(गोवि० २/५३)

द्रुतकनक–सवर्णं सायमेत–मुरारेर्वसनमुरसि दृष्टं यत् सखी ते विभर्त्ति।
किमिदमयि विशाखे! हा प्रमादः प्रमादो, व्यवसितमिदमस्याः पश्य शुद्धान्वयायाः।।२८।।

(गोवि० २/५४)

तद्वचश्चकितधीर्हृदि सख्या, वीक्ष्य पीतवसनं चलदृष्ट्या।
हा किमेतदिति ताञ्च दिशन्ती, द्रागुवाच जरतीञ्च विशाखा।।२६।।

(गोवि० २/५५)

स्वभावान्धे! जालान्तरगत–विभातोदित–रविच्छटाजाल–स्पर्शोच्छलित–कनकांगद्युतिभरैः।
वयस्यायाः श्यामं वसनमपि पीतीकृतमिदं, कुतो मुग्धे शंकां कुरुषे शुद्धमतिषु।।३०।।

(गोवि० २/५६)

ललिता प्रमुखास्तावत् सख्यस्ताः स्वस्वगेहतः।
आजग्मुस्त्वरिताः सख्याः प्रस्खलद्गतयोऽन्तिकम्।।३१।।

(गोवि० २/५७)

---

(२७) इस प्रकार सखियों द्वारा जगाये जाने पर श्रीराधारानी ने अपनी बहुमूल्य शैय्या का त्याग किया। मुखरा उनको पीताम्बर ओढ़े हुए देखकर शंकित हृदय से कहने लगी।

(२८) अरी विशाखे! विगत संध्या के समय श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर जो स्वर्ण वर्ण पीतवसन देखा था, वही तो तुम्हारी सखी ने इस समय धारण कर रक्खा है! हाय कितने खेद की बात है शुद्ध (पवित्र) कुल में उत्पन्न इसका यह कैसा आचरण है!

(२६) मुखरा के इन वचनों से चकित होती हुई विशाखा ने शीघ्रता से दृष्टि घुमाकर श्रीराधा के वक्षःस्थल पर पीताम्बर को देखा और 'हाय यह क्या' कहते हुए शीघ्र ही (बहाना बनाकर) मुखरा को कहने लगी।

(३०) हे मुग्धे! स्वभावान्धे! आप क्या कह रही हो। खिड़की के छिद्रों से प्रभातकालीन सूर्य की किरणों के कारण, उज्ज्वल सोने की कांति जैसे अंगों वाली श्रीराधा का नीलवसन ही पीताम्बर जैसा प्रतीत हो रहा है, अतएव हे वृद्धे! विशुद्धमति श्रीराधा के प्रति अकारण इस प्रकार की शंका क्यों कर रही हो।

(३१) इतने समय में ललिता आदि प्रमुख सखीगण अपने–अपने भवन से (आलस्यवश) स्खलित गति (लड़खड़ाते हुए) शीघ्रतापूर्वक श्रीराधा के पास आ गयीं।

तासां वाक्यैर्गतायान्तु कृतवञ्चन–सञ्चयैः।
मुखरायां ततोन्यासु दृष्टुकामासु तत्र ताम्।।३२।।

एकैकशोऽथ मिलितासु सखीषु सर्वा, स्वन्योन्यहास–परिहास–परासु तासु।
सुश्लिष्टमण्डलतयैव कृतोपवेशा–स्वारूढ़–रत्नमणिहेम–चतुष्किकासु।।३३।।
(युग्मकम्) (कृ० भा० ३/१७)

श्रीराधिका–मिलनमेव समस्त हर्ष–शस्यैकवर्षमिति यद्धृदि निश्चिकाय।
तत् श्यामलैत्य समया समयाभिविज्ञा, श्लिष्टा तया सुषमयेव तदास तत्र।।३४।।
(कृ० भा० ३/१८)

श्यामे ! त्वमेवमधुनैव विचिन्त्यमाना, मन्नेत्रवर्त्मगमिता विधिना यथैव।
तद्वत् स तर्ष विटपी फलयिष्यते चे– दद्यैव तर्हि गणयान्यपि सुप्रभातम्।।३५।।
(कृ० भा० ३/१९)

हन्तैष सन्ततमतीव समेधमानः, शश्वत् सखीभिरपि सुन्दरि ! सिच्यमानः।
नाद्यापि यत् फलमधादयि ! कोऽत्र हेतु– र्हा तत् कदातिरभसादवलोकयिष्ये।।३६।।
(कृ० भा० ३/२०)

(३२–३३) **श्यामला सखी का आगमन एवं रसोद्गार :–** विशाखा आदि सखियों के इस प्रकार वञ्चनामय वाक्यों को सुनकर मुखरा चली गयी। इसके पश्चात् श्रीराधा के दर्शन की आशा से वहाँ एक–एक कर समस्त सखीगण आकर हास–परिहास में निमग्न हो गयीं एवं जिस रत्नमणिजड़ित स्वर्ण वेदी पर श्रीराधा बैठी थी उसके चारों ओर मण्डली बनाकर बैठ गयीं।

(३४) इसी समय, समय का ज्ञान रखने वाली श्यामला सखी आ पहुँची। श्रीराधारानी ने उनका आलिंगन किया और अपने पास बैठाया। मानो साक्षात् सुन्दरता ने ही श्यामला को चारों ओर वेष्टन कर लिया हो। श्यामला स्वयं यूथेश्वरि होते हुए भी स्वयं श्रीराधा के समीप आती है, क्योंकि श्रीकृष्ण के साथ जो श्रीराधा का विलास प्रसंग है उसको सुनकर वह श्रीकृष्ण के साथ अपने मिलनसुख से भी अधिक आनन्द प्राप्त करती है और इसी को अपने जीवन का एकमात्र सुख उन्होंने समझ कर निश्चय कर लिया है।

(३५) इधर श्रीराधा महानुरागवती हैं जिससे वे श्रीकृष्ण के साथ रात्रि को मिलन हुआ यह भी मानो भूलकर कहने लगीं। श्यामले ! अभी–अभी मैं तुम्हारा ही विचार कर रही थी। सखि ! जैसे विधाता की अनुकूलता से तुम आकर मिल गयी हो ऐसे ही यदि (श्रीकृष्ण मिलन रूप) मेरा तृष्णा–फलित हो जाय तब मैं आज अपना सुप्रभात ही मानूंगी।

(३६) हे सुन्दरी श्यामे ! मेरा यह तृष्णा–तरू निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है और सखिगण भी इसे निरन्तर सींच रही हैं, तब भी यह फलित नहीं हो रहा। इसका क्या कारण है ? कब मैं अत्यन्त आनन्दित होकर इससे फल का दर्शन करूंगी ? (अर्थात् मुझे श्रीकृष्ण के दर्शन एवं मिलन का सुख कब प्राप्त होगा ?)

राधे ! स ते न फलितो यदि तत् फलिष्य–त्याश्चर्यमस्य फलमप्यलसांगि ! बुद्धये।
आस्वाद्यमानमपि सौरभ–मादितालि, प्रत्याययत्यननुभूतमिव स्वमुच्चैः।।३७।।

(कृ० भा० ३/२१)

पक्ष्मावली वत यदीयरसेन शोणे–नारञ्जि कञ्जमुखि ! तन्न तदप्यपश्यः।
यत्स्वादन–व्यतिकरादधरो व्रणित्व–मागात्तथापि तदहो ! न कदाप्यभुङ्क्थाः।।३८।।

(कृ० भा० ३/२२)

श्यामे ! त्वमप्यलमलक्षित–मन्नितान्त–स्वान्तव्रणा हससि मां यदतो ब्रवीमि।
विद्युद्विहन्ति तिमिरं निशि यद् दशोस्तत्, सद्यः पुनर्द्विगुणयेदिति भोः प्रतीहि।।३९।।

(कृ० भा० ३/२३)

राधे ! कलानिधिरयं विधिनोपनीत–स्त्वां सन्ततामृतमयैरधिनोत् कराग्रैः।
यत्तत्कलाः स्वयमहो कुचयोर्विभर्षि, विद्युन्निभत्व–परिवादमथापि दत्से।।४०।।

(कृ० भा० ३/२४)

---

(३७) श्यामला इन वचनों का मर्म (वास्तविक रहस्य) समझकर श्रीराधा का जो विगत रात्रि श्रीकृष्ण के साथ मिलन हुआ है उसकी सूचना देती हुई कहने लगी– हे राधे तुम्हारी तृष्णाविटप यदि फलित नहीं हुई तो अवश्य ही होगी, किन्तु हे अलसांगि ! इस तृष्णातरु के फल तो अत्यन्त आश्चर्यमय है यह तो मैं भलीभांति समझ गयी हूँ जिसकी सुगंध से अलि (भ्रमर) अथवा सखिगण सब उन्मत्त हो रहे हैं और जिसका आस्वादन करती हुई भी तुम यही मानती हो कि मुझे उसका दर्शन ही नहीं हुआ।

(३८) जिसके अरूणवर्ण रस से तुम्हारी पलकें लाल हो रही हैं, वो फल तुम्हारे नयनगोचर नहीं हुआ यह आश्चर्य की बात है। हे कमलवदने ! जिस फल का पुनः–२ आस्वादन कर तुम्हारे अधरों में व्रण हो गया है, अहो उस फल का तुमने कभी आस्वादन नहीं किया। यह और भी अधिक आश्चर्य है।

(३९) इन वचनों को सुनकर श्रीराधा कहने लगीं– सखि श्यामे ! तुम मेरे हृदय की वेदना को न समझकर ही मेरा परिहास कर रही हो, अतएव अब तुमको मैं बताती हूँ जैसे मेघाच्छन्न अन्धकार रात्रि में एक बार मात्र विद्युत चमक कर शीघ्र ही उसके अन्धकार को दुगुना कर देती है, उसी प्रकार इस मेरे जन्म में मात्र आधे क्षण के लिए श्रीकृष्ण ने मुझे मिलन सुख प्रदान कर पुनः अदर्शन देकर मेरी विरह वेदना को दुगुना बढ़ा दिया।

(४०) श्यामला कहने लगी– सखि ! तुम जिसे विद्युत सदृश कहकर कर व्यर्थ ही दोष लगा रही हो वह कलानिधि (श्रीकृष्ण, चन्द्र) तो विधाता द्वारा तुम्हारे समक्ष उपस्थित होकर निरन्तर अपनी किरणों से (दूसरे पक्ष में नख चन्द्र की छटा से) तुमको सुखी कर रहा है, अहो उसकी कला (किरणें अथवा नख चिन्ह) तुम्हारे वक्षस्थल पर अभी भी विद्यमान हैं।

श्यामे ! स मे सखि ! ददौ न कलंकमेव, सत्यं कलानिधि रसाविति वः प्रतीतः।
दत्ते कदापि मम दृष्टि–चकोरिका यै–ज्योत्सना–कणं यदपि तन्न पुनर्निकामम्।।४१।।
(कृ० भा० ३/२५)

राधे ! स्फुटं वद भवन्मुख–पंकजोत्थ–नक्तन्तनेहित–सुधा–द्युधुनी विधूय।
तापं निमज्जयतु मां स्वमनु प्रभाते, कृत्यान्तरं मम कथं तदृते सुसिध्येत्।।४२।।
(कृ० भा० ३/२६)

श्यामेऽधिकुञ्जनिलयं नवनीलकान्ति–धारा यदा स्नपयितुं निशि मां प्रवृत्ता।
तर्ह्येव पञ्चशर–सञ्चय–नाट्यरंग–भूमिञ्च केन च काञ्चन यापिताऽऽसम्।।४३।।
(कृ० भा० ३/२७)

वदन्तीत्थं मूर्च्छां परमपरमानन्द–जनिकां, गता सेयं सद्यः स्मृति–विधुरता–पद्धतिमगात्।
कदायाता श्यामे पुनरिति हि पृष्टाहमधुना–गतेत्युक्त्वापृच्छत् परिकलितवोधां सपदि ताम्।।४४।।

अलस–वलितमंग स्वावसादं व्यनक्ति, ग्लपितमिव मृणाली–कन्दलं दोर्द्वयं ते।
दशनवसनमेतन्नीरसं गण्डपाली, लुलित–ललितपत्रा प्रक्रमः कस्तवैषः।।४५।।
(आ० ११/२१७)

---

(४१) श्रीराधा कहने लगीं– सखि श्यामे ! तुम्हें भले ही वे कलानिधि (चन्द्र के समान शीतलरसमय) प्रतीत होते हो मुझे तो वे अपनी कला से कलंक ही दान करते हैं और यदि कदाचित वे मेरी नयन चकोरिकाओं को अपनी चन्द्रिका की एक कण भी दान करें तो भी उससे मेरी सर्वेन्द्रियों की तृप्ति तो दूर रही, मेरे नयनों को भी पर्याप्त सुख नहीं मिल पाता।

(४२) श्यामला कहने लगी– सखि! अब अधिक मत छिपाओ, स्पष्ट करके कहो। तुम्हारे मुखकमल से निकलने वाली 'निशविलासरूपी सुधामयी गंगा' में स्नान किये बिना मुझे कोई कार्य करना अच्छा नहीं लगता। तुम तो जानती हो, प्रातः स्नान बिना कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता अतएव तुम्हारे मुख से रजनीविलास का प्रसंग सुने बिना मेरा कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होगा।

(४३) इस प्रकार श्यामला को विलास वार्ता सुनने की अत्यन्त उत्कंठिता जानकर श्रीराधा कुछ स्पष्ट करती हुई कहने लगीं– हे श्यामले ! निकुंज मन्दिर में नवनीलकान्ति धारा जब मुझे स्नान कराने लगी तब न जाने कौन मुझे शतसहस्त्र कामदेव की अनिर्वचनीय नाट्यरंग–भूमि पर ले गया और वहाँ नख से शिखा पर्यन्त कन्दर्प वाणों से मुझे घायल कर दिया, मैं वहाँ अत्यन्त व्याकुल हो गयी।

(४४) इस प्रकार कहते हुए श्रीराधा परमानन्द से मूर्च्छित हो गयीं और आगे सब कुछ कहना भूल गयीं। कुछ क्षण बाद वे चेतनता को प्राप्त कर श्यामला से पुनः पूछने लगीं– श्यामे ! तुम कब आयी हो ? श्यामला– मैं तो अभी आयी हूँ। कहकर श्रीराधा से पुनः पूछने लगी।

(४५) सखि ! तुम्हारा थका हुआ अंग कुछ व्यथित हो रहा है। बाहुद्वय नवमृणाल के अंकुर के समान प्रतीत हो रहीं हैं, ओष्ठ लालिमा रहित एवं कपोल सुन्दर पत्रावली से रहित हैं इसका कारण क्या है ?

अभिनव लतिकेव वातरुग्ना, नवनलिनीव मतंगजेन भुग्ना।
मृदुतर–नवमालिकेव धूता, मद–मधुपेन विलक्ष्यसे त्वमद्य।।४६।। (आ० ११/२१८)

अपि चिरमभिलष्यमाण एवं, प्रणयिनि कोऽपि सुदुर्लभो हि लब्धः।
अथ कथमियमन्यथाऽस्मदादेः, फलितवती सखि ! भाग्यकल्पवल्ली।।४७।।
(आ० ११/२१६)

इति सप्रणयवाचा सादरं पृच्छमाना, पटवृत–मुखचन्द्रा स्वच्छचित्ता वतासौ।
मुदमथ जनयन्ती पार्श्वगानां सखीना–मवनि–निहित–दृष्टिः सस्मितं प्रत्युवाच।।४८।।

क्वाहं स्थिता क्व चलिता क्व च वा स पन्था, नीतास्मि केन नलिनाक्षि तदीय पार्श्वम्।
किंवा वभूव मयि तत्र समेतवत्यां, जानाम्यहं यदि तदा भवती न वेत्ति।।४६।।
(आ० ११/२२१)

व्यापारो मनसश्च यत्र न गतः सम्भावनाभावतो,
यत्स्वप्नः किमथेन्द्रजालमथवा भ्रान्तिः सुदीर्घैव मे।
तत् किं ह्लादि किमार्न्तिदं किमुभयं किंवा न तन्नापि–
तच्चेतोविद्रुति–कारकं च मनसो मूर्च्छाकरञ्चाभवत्।।५०।। (आ० ११/२२२)

---

(४६) आज तुमको झंझावात से पीड़ित नवलतिका, मदमत्तगजेन्द्र से मर्दित नवनलिनि एवं मदमत्त मधुकर से विमर्दित नवमालिका की भांति हम देख रहीं हैं। (अर्थात् तुम्हारे अंगों में समस्त सम्भेग चिन्ह स्पष्ट दिखायी दे रहे हैं।)

(४७) हे सुन्दरि ! तुमने अपने चिरअभिलषित प्रियतम से निश्चय ही कोई सुदुर्लभ वस्तु प्राप्त की है। हे प्रणयिनि! यदि ऐसा नहीं है तो फिर कैसे हमारी यह भाग्यलतिका फलित हुई है (अर्थात् तुम्हारे इस रूप के दर्शन प्राप्त कर हमको सुख प्राप्त हो रहा है।)

(४८) श्यामला के इस प्रकार आदरपूर्वक स्नेह से भरे वचनों को सुनकर सरल चित्ता श्रीराधा ने सनांचल से अपने मुखचन्द्र को ढक लिया और भूमितल की ओर अपनी दृष्टि को करके पास में बैठी हुई सखी मण्डली को आनन्दित करती हुई मृदुमन्द हास्यपूर्वक कहने लगीं–

(४६) हे पद्मनयने ! मैं कहाँ थी ? कहाँ चल कर गयी ? किस पथ से उनके पास पहुँची? वह पथ किधर है? और वहाँ पहुंच कर क्या हुआ ? यह सब घटना यदि मैं जानती हूँ तो क्या तुम सब नहीं जानती हो ? (अर्थात् तुम सबकी मण्त्रणा के बिना तो मैं कोई भी कार्य नहीं करती।)

(५०) जहाँ मन की गति नहीं है, न विचार करने की सम्भावना है, वह क्या कोई स्वप्न है या इन्द्रजाल है या मेरी कोई सुदीर्घ भ्रान्ति, वह कोई आनन्द जनक है या पीड़ादायक अथवा दोनों ही, किंवा दोनों ही नहीं है (न आनन्द है न पीड़ा) यह सब मैं कुछ भी नहीं बता सकती। वह तो कोई चित्त को द्रवित करने वाला और मन को मोहित करने वाला है। बस मैंने तो इतना ही अनुभव किया है।

अथ श्यामाह :—केलीकलाध्ययन—कौशलमेकदैव, न स्यादतः किमपि नो भवती विवेद।
भूयस्ततः सखि ! विलासगुरोः सकाशाद्—यत्नादधीष्व यदि विज्ञतमासि भूष्णुः।।५१।।
(आ० ११/२२४)

ततः श्रीराधिका प्राहः—मातः परं सुमुखि ! यामि तदीय—पार्श्वं, दूरादसौ नयनवर्त्म—निवर्त्तनीयः।
अध्येतु नाम भवती तत एव तत्ते, पाण्डित्यमेव मनसो रसदं मम स्यात्।।५२।।
(आ० ११/२२६)

भ्राजन्ते वरदन्ति ! मौक्तिकगणा यस्योल्लिखद्भिर्नखैः,
क्षिप्ताः पुष्करमालयावृतरुचः कुञ्जेषु कुञ्जेष्वमी।
शौर्टीर्याब्धिरुरोजपञ्जरतटै संवेशयन्त्या कथं,
स श्रीमान हरिणेक्षणे ! हरिरभून्नेत्रेण वद्धस्त्वया ?। ५३।। (उ० उद्दी० २०)

कोऽयं कृष्ण इति व्युदस्यति धृतिं यस्तन्वि कर्णं विशन्,
रागान्धे ! किमिदं सदैव भवती तस्योरसि क्रीड़ति।
हास्यं मा कुरु मोहिते ! त्वमधुना न्यस्तास्य हस्ते मया,
सत्यं सत्यमसौ दृगंगनमगादद्यैव विद्युन्निभः।।५४।। (उ० स्थायी० १४८)

(५१) यह वचन सुनकर श्यामला कहने लगी— 'एक ही साथ केलिकला और अध्ययन कौशल दो काम नहीं हो सकते। इसीलिए तुम कुछ समझ नहीं पा रही हो। हे सखि! तुम यदि इस विषय में पारंगता विदुषी होना चाहती हो तो पुनः जाकर उस विलासगुरु से ध्यानपूर्वक केलिकला का अध्ययन करो।

(५२) यह सुनकर श्रीराधिका कहने लगीं— हे सुमुखि ! बस अब इसके बाद मैं उस पाण्डित्यगुरु के पास नहीं जाऊँगी, उसे अपनी दृष्टि के पथ से दूर ही रक्खूंगी। तुम बहुत अधिक बुद्धिमती हो अतः तुम ही उसके पास जाकर विलास कला की पुनः पुनः आवृत्ति कर, अभ्यास करो और इस विषय में तुम्हांरा पाण्डित्य मेरे लिए सुखप्रद ही होगा।

(५३) अनन्तर श्रीश्यामला कहने लगी— हे शोभन दशने (सुन्दर दतपंक्ति वाली) जिसके नखलेखन से कामिनिगण की प्रशस्तमुक्ता माला बिखर जाती है और जिसकी पद्ममाला द्वारा उनकी कांति आवृत होकर कुंज वनों में शोभा का विस्तार करती रहती है उस श्रृंगार रस के समुद्र सदृश श्रीहरि को हे हरिणेक्षणे तुमने अपने स्तन मण्डल के प्रान्तभाग में शयन कराया हो, उन श्रीमान हरि को तुमने अपने नयन कोण द्वारा किस प्रकार आबद्ध कर लिया।

(५४) श्रीराधा कहने लगीं— हे कृशांगि ! जिसके 'कृष्ण' यह दो अक्षरों का नाम, कानों में प्रवेश कर धैर्य का नाश कर देता है, वह कौन है ? श्यामला कहने लगीं— हे रागान्धे (प्रेमपागलिनि) क्या कह रही हो ? तुम तो निरन्तर उनके वक्षस्थल पर क्रीड़ा करती रहती हो। श्रीराधा 'सखि' परिहास मत करो। श्यामला— हे मोहिते कुछ समय पूर्व ही तो हमने तुम्हें उनके हाथों में सौंपा था। श्रीराधा— 'सत्य कह रही हो। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इस जन्म में आज ही वो क्षणमात्र विद्युत की तरह मेरे नयन गोचर हुए है।"

लज्जाभरक्रान्ततयातितूष्णीं, स्थिता वयस्या प्रियकेलिवार्त्ताम्।
श्रोतुं गृहीत्वा चिबुकं तदा सा, हयत्याग्रहीदालीमथ प्रवक्तुम्।।५५।।

प्रिय सखि ! मम वृत्तं पृच्छ मा भाग्यमीदृक्, क्व नु मम कथयेयं त्वयहं तान् विलासान्।
धृतवति करमेव श्यामले क्वास काहं, किमिव चकर कोऽसौ किं व्यधान्न स्मरामि।।५६।।

(वृन्दा० ५/६८)

वेणीं गुम्फति दिव्यपुष्प–निचयैः सीमन्त–सीमन्यहो,
सिन्दूरं निदधाति कज्जलमयीं निर्माति रेखां दृशोः।
दिव्यं वासयते द्युकूलमसकृत्ताम्बूलमप्ययाशये–
दित्त्थम्भूतरतिः सखा तव न मां तल्पे निधत्तेऽकंतः।।५७।।

(वृन्दा० ५/६६)

नित्यं मन्मुख–सम्मुखं मुखविधुं धत्तेऽनमिषेक्षणो,
नित्यं मन्मुखमेव पश्यति मयैवाजस्तगोष्ठीपरः।
आधायैव शयीत मां ह्रदि मयैवावर्त्तयेत् पार्श्वकं,
सख्युस्ते सखिः सर्वनागरमणेः प्रीतिः कथं वर्ण्यताम्? ।५८।।

(वृन्दा० ५/६७)

---

(५५) श्रीराधा तब प्रियतम के संग का स्मरण कर लज्जावश मौन होकर रह गयीं। श्यामला तब श्रीराधा के चिबुक (ठोड़ी) का स्पर्श कर प्रिय केलिवार्ता श्रवण की लालसा से कुछ कहने का आग्रह करने लगी।

(५६) श्रीराधा कहने लगीं– हे प्रिय सखि ! इस विषय में अब कुछ मत पूछो। मेरा इतना भाग्या कहाँ है जो कि मैं तुम्हें प्राणबल्लभ के उन अनन्त विलासादि प्रसंग को सुना सकूं। जब वे मेरा केवल हस्त मात्र स्पर्श करते हैं तो मैं कहाँ हूँ, कौन हूँ, किसने मेरे हाथ को पकड़ा और क्या किया, क्या हुआ मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है।

(५७) अहो तुम्हारे सखा दिव्य पुष्पों की माला द्वारा मेरी वेणी को गूंथते है, सीमन्त में सिन्दूर से मांग भरते हैं, नेत्रों में काजल की रेखा सुशोभित करते हैं, दिव्य वस्त्र पहनाते हैं, पुनः पुनः ताम्बूल खिलाते हैं इस प्रकार प्रेम में विभोर होकर वे मुझे अपनी गोद से शैय्या पर उतारना नहीं चाहते।

(५८) नित्य निरन्तर मेरे मुख के सामने ही अपने मुखचन्द्र को रखते हैं और अपलक नेत्रों के सामने से मेरे मुख का ही दर्शन करते रहते हैं। नित्य मेरे साथ ही नाना प्रकार की रसकथा (इष्टगोष्ठी) कहते रहते हैं, और मुझे अपने ह्रदय पर स्थापित करके ही वे शयन करते है। हाय सखि ! नागरचूड़ामणि तुम्हारे सखा की प्रीति का मैं किस प्रकार वर्णन कर पार पा सकती हूँ।

विलासचेष्टा सखि ! केशिनाशिनो, हलाहलाभा प्रदहन्ति मे मनः।
कृन्तन्ति मर्माणि गुणा घुणा इव, प्रेमा विकारी हृदि हृद्व्रणो यथा।।५६।।
(अ० ३/२१)

नो विद्मः किमु गौरवं गुरुकुले कौलीन्यरक्षाविधौ,
न श्रद्धा किमु दुर्जनोक्तिगरलज्वालासु किं नो भयम्।
उद्वेगादनवस्थितं मम मनः कस्यापि मेघत्विषोः,
यूनः श्रोत्रगतैर्घुणैरिव गुणैरन्तः कृतं जर्जरम्।।६०।। (अ० ५/२०)

राधे ! यदास्य सरसीरुह गन्ध एव—मन्धीकरोति कुलजाकुलमालि ! दूरात्।
तन्मध्वतीव सुरसं सरसं पिवन्त्या, श्चित्तभ्रमस्तव मदादिति नैव चित्रम्।।६१।।
(कृ० भा० ३/३१)

अत्रान्तरे मधुरिका मिलिताथ पृष्टा, ताभिर्जगाद मधुरं श्रृणुतैतदाल्यः।
कस्यैचिदेव कृतये वृजराज—वेश्म, प्राप्ताद्य कौतुकमहो यदुषस्यपश्यम्।।६२।।
(कृ० भा० ३/३२)

---

(५६) हे सखि ! केशिनिहन्ता श्रीकृष्ण की विलास चेष्टाएं हलाहल विष की तरह मेरे चित्त को दग्ध कर रही हैं और उनके गुणों की राशि घुन (जो कीड़ा काष्ठ को खा जाता है) की तरह मेरे मर्मस्थानों को क्षत कर रही है और क्या कहूँ उनका प्रबल प्रेम हृदय में व्रण (घाव) बनकर मुझे पीड़ित कर रहा है।

(६०) हे सखि ! गुरुकुल का कितना गौरव है यह क्या मुझे ज्ञात नहीं है ? और कुल मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए इसमें क्या मेरी श्रद्धा नहीं है ? दुर्जनों की कालकूटमय कटुवाक्य (निन्दा) का क्या मुझे भय नहीं है ? (अर्थात् मैं अपने गुरुजनों की आज्ञापालन कर कुल की मर्यादा का पालन करने की सम्पूर्ण चेष्टा करती हूँ) किन्तु क्या करूं, मेरा (श्रीकृष्ण चिन्ता विषयक) उद्वेग से इतना अस्थिर हो जाता है कि उस नवमेघ के समान श्यामकान्ति नवयुवक की गुणराशि मेरे कानों में प्रवेश कर मेरे मन को घुन की भांति जर्जर कर रही है।

(६१) श्रीराधा के इन वचनों को सुनकर श्यामला कहने लगी— सखि ! जिसके मुख कमल की सुगन्ध दूर से ही कुल ललनाओं को अन्धकार देती है, तुमने उस मधु को जो अत्यन्त रसमय है, अनुराग से भरकर पर्याप्त रूप से पान किया है इसलिये तुम्हारा चित्त उस मद से भ्रमित हो रहा है इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

(६२) इतने में ही मधुरिका नामकी सखि वहाँ आ पहुँची, उसे देखकर सब पूछने लगी कहाँ से आयी हो ? वे कहने लगी— 'हे सखीगण आज प्रातःकाल मैं किसी कार्यवश नन्दालय गयी थी वहाँ पर जो कौतुक देखकर आयी हूँ वह सुनो'।

पौर्णमासी भगवती सर्वसिद्धि–विधायिनी, काषायवसना गौरी काशकेशी दरायता।
कृष्णं दृष्टुमनास्तल्पादुदतिष्ठद्द्विजध्वनैः।।६३।।

(कृष्णा गणो० ६६)

अथ प्रभाते कृत नित्यकृत्या, प्रीत्याच्युतस्यातिविहस्तचित्ता।
प्रेमेन्दुपूर्णा किल पौर्णमासी, तूर्णं बृजेन्द्रालयमाससाद।।६४।।

(गोवि० २/२)

क्षौमं वासः पृथुकटितटे विभ्रती सूत्रनद्धं, पुत्र स्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पञ्च सुभ्रुः।
रज्ज्वाकर्ष–श्रमभुजचलत् कंकणौ कुण्डले च, स्वलं वक्त्रम् कवरविगलमालती निर्ममन्थ।।६५।।

(भा० १०/९/३)

रजनि विपरिणामे गर्गरीतो गरीयान्, दधिमथन–विनोदादुद्भवन्नेष नादः।
अमर नगर–कक्षा चक्रमाक्रम्य सद्यः, स्मरयति सुरवृन्दान्यब्धिमन्थोत्सवस्य।।६६।।

(ल० २/२)

मधुरिका द्वारा श्रीकृष्ण के जागने एवं गोदोहन लीला का श्रवण

(६३) सर्वसिद्धि विधानकारिनि, लालवस्त्र धारण करने बाली, गौरवर्णा, काश (सफेद) पुण्य के समान शुभ केशों वाली, कुछ लम्बे शरीर वाली, भगवती पौर्णमाशी ने श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा से पक्षीगण का कलरव सुन अपनी शैय्या का त्याग किया।

(६४) जिनके ह्रदय रूपी आकाश में प्रेमरूप पूर्णचन्द्र सदा विराजमान वह पौर्णमाशी देवी प्रभातकाल में अपना नित्य नियम समाप्त कर श्रीकृष्ण के प्रति प्रीति से अत्यन्त व्याकुल होकर शीघ्र ही नन्दालय को प्रस्थान करती हैं।

(६५) सुन्दर भौंह वाली श्रीयशोदा रानी, अपने विशाल कटि देश को करघनी से बांध, अत्यन्त सूक्ष्म रेशमी वस्त्र धारण किये, श्रीकृष्ण के वात्सल्य स्नेह से जिनके स्तनयुगल से दुग्ध धारा स्खलित हो रही है, दधि मन्थन की रस्सी को चलाते हुए परिश्रम से जिनके हाथों के कंकण हिल रहे हैं और कुण्डल इधर–उधर डोल रहे हैं, मुखारविन्द पर स्वेदबिन्दु आ गये हैं तथा केशों में बंधी मालती की माला भी खुलकर गिरने लगी, इस प्रकार दधिमन्थन करती हुई शोभा पा रही थी।

(६६) प्रभातकाल नन्दालय में चारों ओर दही का मन्थन रूपी विनोद हो रहा है, उसके महान गर–गर निनाद स्वर्ग मण्डल तक पहुँचाता हुआ देवताओं को अमृतमन्थन रूप उत्सव का स्मरण करा रहा था।

मन्थानोधृत गव्यबिन्दुनिकर–व्याकीर्ण रम्यांगनं,
प्रेमस्निग्धजनान्वितं बहुविधै रत्नैर्विचित्रान्तरम्।
क्षीरोर्म्युच्छलितं मुदा हि विलसच्छय्याप्रसुप्ताच्युतं,
श्वेतद्वीपमिवालयं बृजपतेर्वीक्ष्यास सानन्दिता।।६७।। (गोवि० २/३)

तामगतामभिप्रेक्ष्य साक्षादिव तपश्रियम्।
बृजराज्ञी पराभिज्ञा स्थितिज्ञाभ्युद्ययौ मुदा।।६८।। (गोवि० २/४)

ऐहि भो भगवतीति बृजबन्धे, स्वागतासि भवतीं प्रणमामि।
इत्युदीर्य्य सविधे प्रणमन्तीं, सा मुकुन्द–जननीं परिरेभे।।६९।।
(गोवि० २/५)

आशीर्भिरभिनन्द्यामुं गोविन्द–दर्शनोत्सुका।
पप्रच्छ कुशलं चास्याः सधवात्मज–गोततेः।।७०।। (गोवि० २/६)

निवेद्य कुशलं चास्यै तयोत्कण्ठितया सह।
उत्का शय्यागृहं सूनोः प्रविवेश वृजेश्वरी।।७१।। (गोवि० २/७)

---

(६७) पौर्णमासी देवी ने नन्दालय को ठीक श्वेतद्वीप के सामन देखा। जिस प्रकार श्वेतद्वीप प्रेमस्निग्ध जनों से युक्त, समुद्र से निकलने वाले विविध रत्नों से विचित्र शोभा धारण किये हुए, मथे जाते हुए दूध के वेग से मानो उछलता हुआ, अनन्त देव की सुख शैय्या पर सोये हुए अच्युत भगवान से सुशोभित, इसी प्रकार नन्दालय भी प्रेम से स्निग्ध जनों से युक्त, अनेक रत्न खचित शोभा से विलसित, दूध की तरंगों से उच्छलित होता हुआ, और सुख शैय्या पर श्रीकृष्ण के शयन की शोभा को धारण किये हुए था जिसे देखकर पौर्णमाशी अत्यन्त आनन्दित हुई।

(६८) अत्यन्त बुद्धिमती, समय को जानने वाली श्रीयशोदा रानी उन पौर्णमाशी देवी को मूर्तीमती तपश्री के समान आते हुए देखकर हर्ष के साथ उनके सम्मानार्थ उठ कर खड़ी हो गयीं।

(६९) 'हे भगवति ! आइये, आप कुशल तो हैं, आपका स्वागत है। हे बृजवन्धे ! आपके चरणों में मैं प्रणाम करती हूँ।' इस प्रकार कहती हुई, मुकुन्दजननी यशोदाजी ने उनको प्रणाम किया और देवी पौर्णमाशी ने भी उनका आलिंगन किया।

(७०) गोविन्द दर्शनार्थ उत्सुका श्रीपौर्णमाशी देवी ने यशोदाजी को आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया और फिर उनके पति, पुत्र, गोधन तथा उनकी कुशल जिज्ञासा की।

(७१) ब्रजेश्वरि यशोदा रानी ने उनको अपनी कुशलता का निवेदन किया और उद्विग्नचित्त से उत्कण्ठा के साथ पौर्णमाशी देवी के साथ अपने पुत्र के शयनकक्ष में प्रवेश किया।

डोरी–जूटित–वक्रकेशपटला सिन्दूर बिन्दुल्लसत्–
सीमन्तद्युतिरंगभूषण–विधिं नातिप्रभूतं श्रिता।
गोविन्दास्य–निसृष्ट–साश्रुनयनद्वन्द्वा नवेन्दीवर–
श्याम श्यामरुचिर्विचित्रसिचया 'गोष्ठेश्वरी पातु–वः।।७२।। (भ० र० ३/४/१३)

पर्य्यंके न्यस्य सव्यं तदुपरि–निहित स्वांगभाराथ पाणिं,
कृष्णस्यागं स्पृशन्तीतर–करकमलेनेषदाभुग्नमध्या।
सिञ्चन्त्यानन्दवाष्पैः स्नुतकुचपयसां धारया चास्या तल्पं,
वत्सोत्तिष्ठाशु निद्रां त्यज मुखकमलं दर्शयेत्याह माता।।७३।। (गोवि० २/१३)

मधुरिकोवाच–गान्धर्वीके ! श्रुणु यदन्यदभूद्विचित्रं, नीलांशुकं स्वतनयोरसि वीक्ष्यमाणाम्।
तामाह सैव भगवत्यै गोष्ठराज्ञि ! रामाम्बरेण परिवर्त्तितमस्य वास।।७४।।
(कृ० भा० ३/३८)

ताटंकगारुणमणि–प्रतिबिम्व एव, गण्डे विभाति तव माधव ! शोणशोचिः।
इत्युक्त एव स तया निजपाणिना तं, सद्यो जघर्ष भवदाधर–रागभागम्।।७५।।
(कृ० भा० ३/३६)

---

(७२) श्रीयशोदा रानी का रूप वर्णन करते हुए कहते है– जिन्होंने डोरी द्वारा अपने घुंघराले केशों को बांधा हुआ है, जिनके सीमन्त में सिन्दूर सुशोभित हो रहा है, जिन्होंने कुछ थोड़े से आभूषण धारण कर रखे हैं, गोविन्द के मुखारविन्द को देखकर ही जिनके दोनों नेत्रों से अश्रुधारा बह निकलती है, नवीन नील कमल के समान जिनके अंग की कांति श्यामवर्ण, विचित्र (रंग–बिरंगे) वस्त्र धारण किये हुए हैं– इस प्रकार की श्रीगोष्ठेश्वरि यशोदा रानी आपकी रक्षा करें।

(७३) वे श्रीकृष्ण के पलंग पर बांया हाथ रखकर उस पर अपनी देह का भार अर्पण कर दांये हाथ से अपने शरीर को झुकाकर श्रीकृष्ण के शरीर को स्पर्श करते–करते नेत्रों से निकलते हुए आनन्दाश्रु एवं स्तनों से क्षरित दुग्धधारा से शैय्या को भिगोते हुए कहने लगी, 'वत्स ! शीघ्र उठो, निद्रा का त्याग करो, अपने मुखकमल का दर्शन कराओ।'

(७४) मधुरिका कहने लगी– 'हे गान्धर्विके ! आज वहाँ पर जो विचित्र घटना हुई वह भी श्रवण करो। माता यशोदा अपने पुत्र के वक्षस्थल पर तुम्हारा नीलाम्बर देखकर कहने लगी 'पीताम्बर का त्याग कर गोपाल ने नीलाम्बर क्यों धारण कर लिया' तब भगवती पौर्णमासी देवी कहने लगी– 'गोष्ठरानी ! बलराम के वस्त्र (दूसरे अर्थ में सुन्दरवस्त्र) के साथ तुम्हारे पुत्र का वस्त्र परिवर्तित हो गया है।

(७५) हे राधे ! तुम्हारे अधर का ताम्बूलराग श्रीकृष्ण के कपोल पर देखकर पौर्णमासी कहने लगी– 'हे माधव ! तुम्हारे मरकत मणि सदृश नील कपोल पर कुण्डल की अरुण मणि की लालिमा सी प्रतीत हो रही है। हे सखि ! यह बात सुनकर श्रीकृष्ण अपने हाथ से तुम्हारे अधर से लगी लालिमा को घिस कर दूर करने लगे।

उत्तिष्ठ तात रजनीयमगाद् विरामं, पश्यांशुमन्तमुदयोद्यमनाभिरामम्।
प्रत्यूष–सेवनविधौ विलसद् विलासाः, शय्यालयं तव विशन्ति कुमारदासाः।।७६।।

(कृष्णा० २/२)

संकीर्त्तयन् जय जयेति गिरा सुवृत्त–स्तवां तात जागरयितुं प्रणयात् प्रवृत्तः।
कीरस्तवैष निजपाणितलेन पुष्टः, सन्मुञ्जुवाक् कनक–पञ्जर–वासहृष्टः।।७७।।

(कृष्णा० २/३)

खेदस्तवैष शयनालसभारमूलः, स्वापं जहीहि भव जागरणानुकूलः।
इत्त्थं करेण मृदुना मुहुरंगमंग–मास्पृश्य बाहुयुगलेन तमालिलिंग।।७८।।

(कृष्णा० २/४)

मातुः कलाः गिरमतिप्रणयोपगूहं, श्रुत्वानुभूय च तदैव स सम्यगूहम्।
गात्रावमोटन–पुरःसर–जृम्भणेन, जाग्रद्दशामभिनिनाय कुतूहलेन।।७९।।

(कृष्णा० २/५)

कालोचितेषु परिचारण–कौशलेषु, गाढ़ानुराग–परभाग–निराकुलेषु।
दक्षं सवक्षमनुशास्य कुमारदासी–दासं बृजेन्द्रगृहिणी स्वगृहानयासीत्।।८०।।

(कृ० २/६)

---

(७६) इसके पश्चात् श्रीयशोदा रानी श्रीकृष्ण को पुकार कर कहने लगी – 'हे वत्स, उठो, देखो रात्रि समाप्त हो चुकी है। देखो सूर्य उदय होते हुए कितने सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं और प्रभातकाल में तुम्हारी सेवा पारायण सेवा कुशल कुमारदासगण तुम्हारे शयनकक्ष में आकर प्रस्तुत हो गये हैं।

(७७) हे तात ! तुम्हारा अपने हाथों से पाला हुआ सुमधुरभाषी यह शुक स्वर्ण पिंजरे में आनन्द के साथ बैठा हुआ तुमको अत्यन्त स्नेहपूर्वक जगाता हुआ 'जय जय' शब्दों का उच्चारण कर रहा है।

(७८) तुमको जो खेद प्राप्त हो रहा है इसका मूल कारण निद्रा का आलस्यभार है अतएव निद्रात्याग करो, जाग जाओ माता यशोदा यह कहते–कहते कोमल हाथों से गोपाल के प्रति अंग को सहलाने लगी और फिर दोनों बांहों को फैलाकर उनका आलिंगन कर लिया।

(७९) अत्यन्त प्रेम से भरे माता के इन मधुर वचनों को सुनकर एवं अनुभव करके उसी समय श्रीकृष्ण उस पर विचार करते हुए, जम्हाई लेते–२ कौतूहल पूर्वक जागकर बैठ गये।

(८०) समयोचित परिचर्याकुशल, प्रगाढ़ अनुराग से युक्त, समस्त भृत्यगणों में जो अतिनिपुण कुमारदास, दासीगण है उनको अनुशासनपूर्वक (सेवा सम्बन्धी कार्य अच्छी प्रकार समझाकर) यशोदा रानी अपने कक्ष में चलीं गयीं।

तावद्गोभट–भद्रसेन–सुबल–श्रीस्तोककृष्णार्जुन–
श्रीदामोज्जवलदामकिंकिणि–सुदामाद्याः सखायो गृहात्।
आगत्य त्वरिता मुदाभिमिलिताः श्रीसीरिणा प्रांगणे,
कृष्णोत्तिष्ठ निजेष्टगोष्ठमय भो इत्याह्वन्तः स्थिताः।।८१।।

(गोवि० २/८)

ही ही प्रभातं किमु भो वयस्या, अद्यापि निद्राति कथं सखा नः।
तद्बोधयाम्येनमितीरयन् स्व, तल्पादुदस्थान्मधुमंगलोऽपि।।८२।।

(गोवि० २/६)

समुत्तिष्ठ वयस्येति जल्पं तल्पालयं हरेः।
निद्रालस–स्खलद्यानः प्राविशन्मधुमंगलः।।८३।।

(गोवि० २/१०)

तद्वाग् विगतनिद्रोऽयमुत्तिष्ठासुरपीश्वरः।
उत्त्थातुमीश्वरो नासीद् घूर्णापूर्णेक्षणः क्षणम्।।८४।। (गोवि० २/११)

उत्तिष्ठ कुर्य्यां मुखमार्जनन्ते, वलस्य वासः किमिह त्वदंगे।
इति ब्रुवाणापनिनाय नीलं, वासस्तदंगादवदच्च सार्याम्।।८५।। (गोवि० २/१५)

---

(८१) इधर गोभट, भद्रसेन, सुबल, स्तोककृष्ण, अर्जुन, श्रीदाम, उज्ज्वल, दाम, किंकिणि, एवं सुदामादि सखागण अपने–२ घरों से शीघ्र आकर बलरामजी के साथ अत्यन्त हर्ष के साथ प्रांगण में आ मिले और हे कृष्ण ! उठो, अपनी प्रिय गौशाला को चलो' इस प्रकार पुकारने लगे।

(८२) तब मधुमंगल ही ही करके हँसते हुए कहने लगा– 'अरे मित्रो ! क्या प्रभात हो गयी है ? हमारा सखा श्रीकृष्ण तो अभी तक सो रहा है, अच्छा मैं अभी उसकी निद्राभंग करता हूँ। इस प्रकार कहते–२ मधुमंगल भी अपनी शैय्या से उठकर बैठ गया।

(८३) 'अरे सखा कृष्ण उठो उठो' इस प्रकार कहते हुए मधुमंगल ने निद्राके आलस्य से लड़खड़ाते हुए श्रीकृष्ण के शयनकक्ष में प्रवेश किया।

(८४) मधुमंगल के वचन सुनकर श्रीकृष्ण जाग तो गये किन्तु निद्रा के आवेश के कारण उनके नेत्र आलस्य से अच्छी प्रकार खुल नहीं पा रहे थे। उठने की इच्छा होते हुए भी वे कुछ देर उठ नहीं सके।

(८५) पुनः माता यशोदा आकर कहने लगी, 'हे वत्स, उठो, तुम्हारा मुख धुला दूँ, इस समय तुम्हारे शरीर पर बलदेव का नीलवस्त्र क्यों है ? इस प्रकार कहते हुए माता ने श्रीकृष्ण के अंग से नील वस्त्र दूर कर दिया।

अयि भगवति ! पश्याचोटितं मेऽस्य सूनोः, कमलमृदुलमंगं मल्ल लीलासु लोलैः।
खरनखरशिखाभिर्घातुरागाति चित्रं, चपलशिशु समूहैहा हता किं करोमि ?।।८६।।

(गोवि० २/१६)

स्नेहभरैः स्वजनन्याश्चित्रपदामपि वाणीम्।
तामवधार्य मुरारिर्ह्रीचकेतक्षण आसीत्।।८७।।

(गोवि० २/१७)

कृष्ण सशंकमाशंक्य परिहास–पटुर्वटुः।
स्नेहक्लिन्नान्तराम्बामवदन्मधुमंगलः।।८८।।

(गोवि० २/१८)

सत्यमम्ब ! वयस्याली वारितापि मयानिशम्।
रेमेऽनेनातिलुब्धेन कुञ्जेषु केलिचञ्चला।।८६।।

(गोवि० २/१६)

अथ प्रकाशीकृत वाल्यविभ्रमो, यत्नात् समुन्मील्य विलोचनं मुहुः।
पश्यन् पुरः स्वां जननीं हरिः पुन–र्न्यमीलयत् स स्मितावक्त्रपंकजः।।६०।।

(गोवि० २/२०)

---

(८६) अब वे आर्या पौर्णमाशी जी से कहने लगी–हे भगवति ! यह देखो मेरे बालगोपाल का कोमल मृदुल अंग गेरु आदि धातुओं से रंजित और कुश्ती खेलने वाले चंचल बालकों के तीखे नखों के आघात से क्षतविक्षत हो रहा है। हाय! मैं इसका क्या उपाय करूँ।

(८७) स्नेहमयी जननी के इन आश्चर्यजनक वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण उस समय लज्जा के कारण चकित होकर देखने लगे।

(८८) तब परिहास में सुचतुर मधुमंगल, श्रीकृष्ण को शंकितचित्त (कहीं माता कुछ अन्यथा विचार न कर बैठे) देखकर, स्नेह से द्रवितचित्त माँ यशोदा के प्रति कहने लगा।

(८६) हे जननि ! आप सत्य ही कह रही हो। क्रीड़ाचंचल वयस्य मण्डली (सखा एवं सखी दोनों अर्थ) मेरे मना करते रहने पर भी इस अत्युत्छुक श्रीकृष्ण के साथ कुंजों–२ दिनरात खेलते रहते हैं।

(६०) मधुमंगल के मुख से बाल लीला को प्रकट क्ररने वाली (इस श्लेष उक्ति, दो प्रकार का अर्थ प्रकट करने वाले वचन) सुनकर श्रीकृष्ण प्रयत्नपूर्वक अपने दोनों नेत्रों को कुछ–२ खोलते हुए अपनी जननी को सामने देखकर कुछ हास्य से सुशोभित मुखारविन्द से पुनः नेत्र बंद क्रर लिये।

आकर्ण्य वाचं ब्रजराजपत्न्याः समीक्ष्य कृष्णस्य च बाल्यचेष्टाम्।
भावान्तराच्छादकरीं जनन्या, स्तं पौर्णमासी स्मितपूर्वमाह।।६१।।

(गोवि० २/२१)

सखीनां सन्दौहेर्निरवधि महाकेलि ततिभिः, परिश्रान्तस्त्वं यत् स्वपिषि सुमते योग्यमिह तत्।
अनोलोक्य त्वां भोस्तृषितमपि नो तर्णककुलं, धयत्यूधः किन्तु बृजकुलपते जागृहि ततः।।६२।।

(गोवि० २/२२)

उत्तिष्ठ गोष्ठेश्वर नन्द नारात्, पश्याग्रजोऽयं सह ते वयस्यैः।
गोष्ठं प्रतिष्ठासुरपि प्रतीक्ष्य, त्वामंगने तिष्ठति तर्णकैश्च।।६३।।

(गोवि० २/२३)

समुष्टि पाणिद्वयमुन्नमय्य, विमोटयन् सोऽथ रसालसांगम्।
जृम्भाविसर्पद्दशनांशुजाल, स्तमालनीलः शयनादुदस्थात्।।६४।।

(गोवि० २/२४)

उन्मीलन प्रतिनिमीलनयोर्बहुत्वे, जाग्रच्छयान–दशयोरिव मिश्रितत्वे।
सा निद्रया विरहकातरया धृतेव, तस्योत्त्थतस्य नयन–द्वितयी दिदेव।।६५।।

(कृष्णा० २/७)

---

(६१) पौर्णमाशी देवी यशोदाजी के वात्सल्य भाव को प्रकट करने बाले वचनों को सुनकर एवं श्रीकृष्ण की बाल्य सुलभ चेष्टाओं का दर्शन कर, मृदुमधुर हास्य के साथ, माँ यशोदा के अन्तर में वात्सल्य के अतिरिक्त और कोई भाव उदय न हो, इस प्रकार के वचन श्रीकृष्ण के प्रति कहने लगीं।

(६२) हे सुमति श्रीकृष्ण ! तुम सखाओं के (श्लेष में सखियों के) साथ महाविभोर होकर क्रीड़ा परायण रहते हो, उससे श्रमित होकर तुम निद्रासुख का अनुभव कर रहे हो, यह तो ठीक है किन्तु उधर गौवत्सगण भूखे प्यासे होते हुए भी दूध नहीं पी रहे है। वे तुम्हारे दर्शन के लिए प्यासे हैं अतएव तुम अब जाग जावो।

(६३) हे गोष्ठराजनन्दन ! शीघ्र उठो, देखो तुम्हारे बड़े भाई बलराम तुम्हारे मित्रों एवं वत्सगणों के साथ, गोष्ठ में जाने के लिये तुम्हारी प्रतीक्षा में बाहर प्रांगण में आकर खड़े हैं।

(६४) यह सुनकर श्रीकृष्ण जागकर मुट्ठी बांधे दोनों हाथों को ऊपर उठाकर रसाल अंगों को मोढ़ते हुए, जम्हाई लेते हुए दंतश्रेणी की प्रभा से तमालश्यामल अंग को सुशोभित करते हुए शैय्या से उठ बैठे।

(६५) सोकर उठते हुए श्रीकृष्ण के दोनों नेत्र उस समय जागृत एवं निद्रित दोनों अवस्थाओं को दर्शाते हुए कभी बंद करते तथा कभी खोलते शोभा पा रहे थे, मानो विरहकातरा निद्रा देवी दोनों नेत्रों को त्याग करना नहीं चाहती थी।

खट्वैकदेशे त्वथ सन्निविष्टो, विन्यस्त पादाब्जयुगः पृथिव्याम्।
नमाम्यहं त्वां भगवत्ययीति, जगाद जृम्भोद्गम गद्गदं सः।।९६।। (गोवि० २/२५)

आपादशीर्षमथ पाणितलाभिमर्शे–नाव्यादजोङ्घ्रि मिति मन्त्रमुदाहरन्ती।
संरक्ष्य तूर्णमखिलांगमथोर्धवदृष्ट्या, किञ्चित् सकाकुभरमर्थयते स्म राज्ञी।।९७।।
(कृ० भा० ३/३५)

देवाधिदेव ! भवतैव चिरात् सुतोऽयं, दत्तः स्वबन्धुजन–जीवनतामुपेतः।
पाल्योऽपि नाथ ! भवतैव कृपाभरेण, स्वेनैव कामपचितिं तव वेद्मि कर्त्तुम्?।।९८।।
(कृ० भा० ३/३६)

आरात्रिकेण मणिमंगलदीपभाजा, विभ्राजितेन जितसौभगवत् समाजाः।
आधाय पाणि–सरसीरुर्होमुदास्य–नीराजनं विदधिरेऽस्य कुमारदास्यः।।९९।।
(कृष्णा २/८)

उष्णीषवन्ध–सुमनोज्ञतमोत्तमांगाः, पाथोज–केशर–सुसौरभ–सुन्दरांगः।
श्यामाः सिताश्च हरिता अरुणाश्च पीता, ये केऽपि केऽपि महनीय गुणैः परीताः।।१००।।
(कृष्णा २/९)

तैरेव केवलसुखानुभव–स्वरूपेर्नैसर्गिकानुदिन–दिव्यकुमाररूपैः।
दासीगणैरपि च दासगणैरुदारैः, सेवा व्यधायि विविधास्य विलोल हारैः।।१०१।।
(कृष्णा २/१०)

---

(९६) तदनन्तर पलंग के एक ओर बैठकर दोनों चरण कमल पृथ्वी पर रखते हुए, जम्हाई लेते–२ गद्गद् वचनों से श्रीकृष्ण ने भगवती पौर्णमाशी देवी को प्रणाम निवेदन किया।

(९७) **श्रीकृष्ण की प्रभातकालीन लीला :–** बृजराज–महिषि अपने पुत्र के, चरण से मस्तक तक हाथ से स्पर्श करती हुई 'अव्यादजोऽघ्रिम्' इत्यादि मंत्र उच्चारण करती हुई सब अंगों का रक्षाबन्धन करने लगीं और पुनः ऊपर को दृष्टि करके विनयपूर्वक श्रीभगवान से प्रार्थना करने लगीं।

(९८) हे देवाधिदेव ! बहुत दिनों की प्रतीक्षा के उपरान्त आपने ही करुणा कर हम सबके जीवन स्वरूप इस पुत्र को दिया है। हे नाथ ! मैं तो कोई पूजा पद्धति नहीं जानती, जिससे आपको सन्तुष्ट कर सकूं। अतएव हे प्रभो ! अपनी अहेतुकी कृपा दान करते हुए इस बालक की आप रक्षा करना।

(९९) तब अत्यन्त सौभाग्यवती कुमारदासीगण सुशोभित मणि के मंगल प्रदीप से सुसज्जित आरती हाथ में लेकर श्रीकृष्ण के मुखारविन्द का विधिपूर्वक नीराजन (आरती उतारना) करने लगीं।

(१००–१०१) तदनन्तर जिनके मस्तक पर सुमनोहर पाग बंधी है, जिनके सुन्दर अंग से कमल एवं केशर की सुगन्ध आ रही है जो श्याम, श्वेत, हरे, लाल एवं पीले रंग के वस्त्रादि पहने हुए हैं और जो कुछ महान गुणों से युक्त हैं, वे केवल आनन्द स्वरूप हैं, नित्य स्वभाव से ही परम सुन्दर हैं, कुमार आकृति विशिष्ट धारण किये हैं, जिनके अंगों पर हारों की लड़ियाँ झूल रहीं हैं, इस प्रकार के गुण रूपयुक्त उदार दास दासीगण ने श्रीकृष्ण की सेवा में अपने मन को एकाग्र कर नियुक्त किया।

पर्य्यंकतः समधिरुह्य मणीचतुष्कं, श्रीपादपीठ–महसा विलसद्वपुष्कम्।
चारुपविष्टमतिहृष्टहृदो गृहीत्वा, चारुपचारमथ भेजुरमी मिलित्वा।।१०२।।

(कृष्णा २/११)

तैराहितां करतले विनिधाय धारां, कर्पूर–सौरभवतामतिचारुवाराम्।
गण्डूषपूरमुपक्लिप्तसुखोपजोषं, कृष्णः शनैरभिषिषेच मुखाब्जकोषम्।।१०३।।

(कृष्णा २/१२)

आमृज्य चारुमृदुसूक्ष्मवलक्ष–वासः–खण्डेन पाणिवदनं निरुपाधिहासः।
तैराहितं करतले मृदु दन्तकाष्ठम्, प्रत्यग्रहीन्म्रदिमनिष्ठमथो लघिष्ठम्।।१०४।।

(कृष्णा २/१३)

कल्पद्रुमस्य मृदुना विटपेन तेन, रत्नांगुलीयकमहोभिरलंकृतेन।
दन्तावलिं विहित–वीक्षक–नेत्रहर्ष–मालोल–कुण्डलयुगं शनकैर्जघर्ष।।१०५।।

(कृष्णा २/१४)

अंगुष्ठ–तर्जनिकयोर्धतया वितस्त्या, जिह्वा–विलेखनिकया मणिहेममय्या।
राजन्मणीन्द्रवलयं व्यलिखन्मनोज्ञां, ताम्बूलराग–परभागवतीं रसज्ञाम्।।१०६।।

(कृष्णा २/१५)

---

(१०२) पलंग से उतरकर श्रीहरि तब सुन्दर पादपीठ की ज्योति से उद्भासित मणिमय चौकी (सिंहासन) के ऊपर सुन्दर रूप से विराज गये। तब दास–दासीगण सब मिलकर महाआनन्द से भरकर समस्त सेवा सामग्री लेकर सेवा करने के लिए प्रस्तुत हो गये।

(१०३) दासगण कर्पूर सुवासित जल की सुन्दर धारा धीरे–धीरे डालने लगे। श्रीकृष्ण उन्हें अपने हाथों में लेकर धीरे–धीरे सुख से अपने मुखकमल के भीतरी भाग को अच्छी प्रकार धोने लगे।

(१०४) अब सुन्दर, कोमल, पतले, श्वेतवर्ण के वस्त्र से अपने हाथ और मुखकमल को पौंछ लिया। विमल हास्य सुशोभित श्रीहरि ने तब सेवकगणों द्वारा दी गयी अत्यन्त कोमल, सुन्दरतम दातौन को ग्रहण किया।

(१०५) रत्नमय अंगूठियों के तेज से शोभा पाने बाली कल्पवृक्ष की कोमल शाखा द्वारा वे धीरे–२ अपनी दंतावली को घिसकर स्वच्छ करने लगे, उस समय उनके कुण्डल हिल रहे थे जिसे देखकर, दर्शन करने वालों के नेत्रों को सुख प्राप्त हो रहा था।

(१०६) अब श्रीकृष्ण ने अपने अंगूठे एवं तर्जन उंगली से मणिहेम से निर्मित एक बालिश्त की जिह्वाशोधनी से, अपने हाथों में सुशोभित मणिमय वलयों की शोभा को बढ़ाते हुए, ताम्बूलराग से अत्यन्त लालिमा को प्राप्त अपनी सुन्दर जिह्वा को साफ किया।

भूयः पयोभिरमलैवर्दनं निनेज, भूयो ममार्ज च कदापि न चोद्विवेज।
श्रीदर्पणं कृतसमर्पण–चल्चलाक्षिलक्ष्म्या चकार मुखधावन–शुद्धिसाक्षि।।१०७

(कृष्णा २/१६)

माणिक्य–कंकतिकया करपद्मकोषं, संप्राप्तया वलय–कंकति–चारुघोषम्।
केश–प्रसाधनमथा नभिसन्धिहासीभूतानना व्यधित कापि कुमारदासी।।१०८।।

(कृष्णा २/१७)

नक्तन्तरं वसनमस्य निरास्य कश्चिद्वासोऽन्तरं सुपरिधाप्य कलाविपश्चित्।
उष्णीषबन्धमथ मूर्द्धिम बवन्ध पादौ, प्रक्षाल्य वार्भिरभिमृज्य च वासरादौ।।१०६।।

(कृष्णा २/१८)

गा दोग्धुमुद्धुरधियोऽपि वृथोद्यमासते, गोपा बभूवुरथ तर्णक–मण्डलाश्च।
चूषन्त एव न पयः कणमात्रमासामापीनतोऽद्य यदवापुरतो विषेदुः।।११०।।

(कृ० भा० ३/४४)

गावस्तवाध्वनि धृताश्रुमृताक्षियुग्मा, न प्रस्रवन्त्यपगतान्न लिहन्ति वत्सान्।
हम्वाध्वनि ध्वनितदिग् वलया विलम्वं, सोढूं दरापि न हि सम्प्रति शक्नुवन्ति।।१११।।

(कृ० भा० ३/४५)

---

(१०७) पुनः विमल जलधारा से अपना मुख धोया, पुनः मुख को स्वच्छ किया जिससे कोई उद्वेग नहीं रहा। फिर सुन्दर दर्पण में अपने चंचल नेत्रों की सुषमा का दर्शन किया। मानो वह दर्पण श्रीहरि की मुख धोकर स्वच्छ होने की साक्षी दे रहा था।

(१०८) तत्पश्चात् किसी रस (श्रृंगार रस) के अनुभव को अभी तक नहीं प्राप्त कर सकी, ऐसी कुमारदासिका ने हास्यवदन से अपने वलय एवं कंघी को झंकार करते हुए, अपने हाथ में मणि जणित कंघी लेकर श्रीहरि के केशों को संवारना प्रारम्भ किया।

(१०६) तब किसी कलाविज्ञ (वस्त्रादि धारण कराने की कला में सुनिपुण) दास ने श्रीकृष्ण के अंग से रात्रि के पहने हुए वस्त्र उतार दिये और दूसरे नवीन पहना दिये, फिर उनके चरण युगल पर जल डालकर उन्हें धोकर अच्छी प्रकार स्वच्छ करके उनके माथे पर पगड़ी बांध दी।

(११०) इसी समय किसी गोप ने आकर कहा– 'हे युवराज ! बड़े–बड़े कुशल गोपगण भी गोदोहन करने में विफल प्रयत्न हो रहे हैं और बछड़े भी गउओं के आधीन (दूध से भरे चौड़े हुए) थनों से बिन्दुमात्र भी दूध न पाकर दुःखी हो गये हैं।

(१११) अतएव हे ब्रजराजकुमार ! गोगण तुम्हारे आगमन की अश्रुपूर्ण नेत्रों से प्रतीक्षा कर रहीं हैं। वे न तो दूध दे रही हैं और न ही अपने पास में खड़े बछड़ों को ही चाट रही हैं। उनकी हम्बा–२ ध्वनि से चारों दिशाएं गूंज रहीं हैं। अब वे गउए आपका विलम्ब भी सहन करने में असमर्थ हो रहीं हैं।

ईत्येव केनचिदुपेत्य स गोदुहोक्तो, मातॄर्निजास्यदरहास्य–सुधाभिषेकैः।
स्वानन्द शंसिभिरसौ सुखयन् मुखाब्जं, ताम्बूल–रञ्जितमलं कलयन्नुदस्थात्।।११२ ''।
(सन्दानितकम्) (कृ० भा० ३/४६)

दोहं समाप्य बलभद्र ! सहानुजस्त्वं, मल्लाजिरं ब्रजसि चेत् कुरु मा विलम्बम्।
निर्मञ्छनं तव भजे क्षणमात्रमेव, सार्द्धं विहृत्य सखिभिर्द्रुतमेहि भोक्तुम्।।११३।।
(कृ० भा० ३/४७)

श्रुत्वेति मातृगिरमाह हरिर्न मातः, प्रत्येषि मां यदमुमेव वदस्यथैवम्।
शिष्टोऽग्रणीः पुनरमीष्वहमेक एव, नोचेदमुष्य वशतां किमुरिकरिष्ये ?।।११४।।
(कृ० भा० ३/४८)

शिष्टो यथा त्वमसि वत्स ! निजातिबाल्य–मारभ्यतत् खलु विदन्त्यखिलाः पुरन्ध्रयः।
याः स्वालयापचय वेदनया पुरासां, फूत्कर्त्तुमापुरिह नो कतिधेति सोचे।।११५।।
(कृ० भा० ३/४६)

सौदामिनीतति–विभा–जयि–दामिनीद्यु–द्विभ्राजि–सव्यकर–कोरकितारविन्दः।
स ग्राहित–प्रमित–कानक–दोहनीको, मात्रा तया सखि ! रयादधिकं विरेजे।।११६।।
(कृ० भा० ३/५०)

---

(११२) इस प्रकार किसी गोपबालक द्वारा कहे जाने पर श्रीकृष्ण, अपनी माताओं को आनन्दित करने वाली अपनी हास्यसुधा को वर्षाकर, ताम्बूल चर्वण करते–करते गोदोहन के लिए जाने को प्रस्तुत हो गये।

(११३) तब श्रीकृष्णजननी ने बलराम से कहा– "हे बलराम ! गोदाहन समापन कर यदि अनुज कृष्ण के साथ मल्लक्रीड़ास्थल (कुश्ती का अखाड़ा) पर जाओ तो वहाँ देरी मत करना, मैं तुम्हारी बलिहार जाऊँ, तुम थोड़ी देर मित्रों के साथ खेलकर शीघ्र ही भोजन करने आ जाना।

(११४) श्रीकृष्ण कहने लगे– 'मा तुमतो मेरा विश्वास नहीं करती हो जोकि मुझे कुछ न कहकर बड़े भैय्या को ही सब समझा रही हो, देखो, मैं सब सखाओं में शिष्ट एवं अग्रगण्य हूँ यदि ऐसा नहीं होता तो मैं क्यों दादा बलराम की बात मानकर सदा ही चलता (अर्थात् मैं तो स्वयं ही बहुत समझदार हूँ तथा सबकी बात मानकर चलता हूँ फिर आप अकेले बलराम को ही क्यों समझा रही हो।)

(११५) यह सुनकर माता कहने लगी– वत्स ! तुम जितने शिष्ट हो, इस बात को बाल्यकाल से ही सब ब्रजगोपिकाएं जानतीं हैं। जो कि वे कुछ दिन पूर्व कितनी बार अपने घरों में जो तुम्हारे उपद्रवों (दधि दूध चुराना, नष्ट करना आदि) की चर्चा मुझसे कर उलाहना देने आतीं थीं।

(११६) (अपने पुत्र का गोदोहन में आनन्द प्राप्त होता है ऐसा समझकर माता स्वयं ही उन्हें गोदोहनार्थ भेज रहीं हैं) एक छोटी सी सोने की दोहनी उनके दाहिने हाथ में यशोदाजी देते हुए, बांये हाथ में विद्युत प्रभा को फीकी करने वाली दामनी (बांधने वाली रस्सी) दे दी। जिससे हे सखि राधे ! श्रीकृष्ण की अधिकाधिक शोभा होने लगी।

स्तत्मेरम बृजविडम्बि–विलम्बिपाद–विन्यास झञ्झणझणत्कृत–किंकिणीकः।
लोलालकालि–मणि–कुण्डल–कान्तिवेणी–वीचीभर–स्नपितवक्त्र–सुधांशुबिम्बः।।११७।।
(कृ० भा० ३/५१)

पीतोत्तरीय–चपलेलित–केलिनृत्य–राजद्घनांग–किरणोच्छलनोच्छ्रितश्रीः।
प्रेङ्खोलहार–परिधिश्रित–कौस्तुभोद्यद्भानुः स्वनच्चरण–भूषण–चुम्बिदामा।।११८।।
(कृ० भा० ३/५२)

निष्क्रम्य रम्यपुरतः पुरतोऽभिगच्छन, यच्छन् मुदं स्वजजनी–जनलोचनेभ्यः।
दासैः प्रधारितमवारितरोचिरश्नं–ताम्बूल–पुलकमवाप स गोपुराग्रम्।।११९।।
(कृ० भा० ३/५३)

तद्बाह्यकुटिम्–तटीमवलम्बमानः, का कुत्र किं कुरुत इत्यनुसन्दधानः।
व्यापारयन्नयनमट्टघटासु नर्म–प्रेष्ठैर्मिलद्भिरभितः स रराज मित्रैः।।१२०।।
(कृ० भा० ३/५४)

श्रीकृष्ण की गोदोहन लीला एवं रहस्यालाप

(११७) तदनन्तर मदमत्तगजराज की गति को परास्त करने वाले, मन्द–२ चरण रखते हुए श्रीकृष्ण गोदोहनार्थ चलने लगे। चंचल अलकावलि की श्याम कान्ति रूपा यमुना, और हीरे के कुण्डलों की शुभ्र उज्ज्वल कान्ति रूपी गंगा का मिलन, अपूर्व त्रिवेणी का उद्गम कर रहा था जिसकी तरंगों से श्रीकृष्ण का वदनचन्द्र अभिषिक्त होने लगा।

(११८) श्याम अंग रूप नवजलधर के ऊपर पीताम्बर रूपी चपला ने सुन्दर नृत्य प्रारम्भ कर दिया जिससे उसकी शोभा ऊपर की ओर उच्छलित होने लगी, वक्षस्थल पर स्थित कौस्तुभि मणिरूप भानुमण्डल को चंचल मोतियों के हार ने मानो चारों ओर से घेर लिया। कण्ठ में स्थित वनमाला बारम्बार शब्द करते हुए चरणों के नूपूरों का चुम्बन करने लगी।

(११९) इस प्रकार श्रीकृष्ण अपने रमणीय भवन से निकलते हुए अपनी माता तथा अन्य जनों को आनंद प्रदान करते हुए दासगणों द्वारा दी जाने वाली परम सुन्दर पान की बीरी को चबाते हुए भवन के द्वार पर आ पहुँचे।

(१२०) भवन के द्वार के बाहर बने हुए चबूतरों के ऊपर आकर खड़े हो गये, जहाँ पर सुबल आदि सब नर्मसखागणों (सब समाचार लाकर देने वाले) के साथ मिलकर अतिशय शोभा पाने लगे। इस समय वे कौन गोपी कहाँ है, क्या कर रही है इसकी खोज लेते हुए अट्टालिका के ऊपर चारों ओर अपने नेत्र घुमाने लगे।

तन्निर्मेतानुपद–कर्णकथा–रसज्ञ–स्यास्याम्बुजे किमपि यत् स्मितमुद्बभूव।
तस्यार्थजातमपि किं विवरीतुमीशे, चेतोऽलिरेव तव सख्यनुसन्दधातु।।१२१।।
(कृ० भा० ३/५५)

उष्णीष–वक्रिम–महामधुरिम्णि तस्य, तात्कालिके किल न कस्य मनो न्यमाङ्क्षीत्।
तत्रैव–शेखरित–कानक–सूत्रजाल–राजन्मणि–द्युतिभराः किमु वर्णनीयाः।।१२२।।
(कृ० भा० ३/५६)

तैः सौरभैः प्रसृमरैरनु नूपुरादि–ध्वानैर्वलेन वलभीमधिरोहिताभिः।
गोशाल–वर्त्मनि चलल्ललनावलीभिः–र्नेत्राम्बुजैः स कतिधा नहि पूज्यते स्म।।१२३।।
(कृ० भा० ३/५७)

तत्तद्विलास–वलिता–सुषमारसाला, प्रेष्ठस्य सा मधुरिका–परिवेश्यमाना।
वैश्लेषिक–ज्वरमशीशमदप्यथास्या–स्तेने च तं शतगुणं तृषमेधयन्ती।।१२४।।
(कृ० भा० ३/५८)

---

(१२१) उस समय वे प्रतिक्षण आ–आ आकर वयस्यगण उनको कुछ रहस्यवार्ता बता रहे थे, जिनका भावार्थ समझकर रसिक चूड़ामणि श्रीकृष्ण के मुखकमल पर मृदु हास्य शोभित हो रहा था, जिसका मैं वर्णन कर, नहीं बता सकती। मधुरिका कहने लगी, हे सखि राधे ! इन बातों के रहस्य को तुम्हारा चित्तभ्रमर ही समझ सकता है। (अर्थात् तुम्हारे साथ मिलन प्रसंग की ही वे चर्चा कर रहे थे।)

(१२२) श्रीकृष्ण चलते–चलते ताम्बूल चर्वण करते हुए उन सब बातों को सुनकर अत्यन्त हर्षित होते हुए अपनी पगड़ी को कुछ टेढ़ा करने लगे। उनकी उस समय की रूप माधुरी के सागर में बृजगोपियों के मन मोहित होकर डूब गये एवं अन्य सब विषयों को भूल गये। हे सखि! उस पगड़ी पर बंधी सोने की लड़ियों में गूंथी हुई मणियों की शोभा (झिलमिलाहट) का तो वर्णन नहीं किया जा सकता।

(१२३) इसके पश्चात् जब वे गौशाला की ओर चलने लगे, तब उनके चरणों में नूपूरों की ध्वनि एवं श्रीअंग की सौरभ इधर–उधर फैलती हुई, कुलकामिनिगणों के गृहकार्य छुड़ाकर बलपूर्वक उनको ऊपर अट्टालिका पर आरोहण करा दिया, वे अब बार–बार अपने नेत्रकमलों द्वारा उनकी पूजा करने लगीं।

(१२४) इस प्रकार श्रीकृष्ण का अपने मित्रों के साथ प्रातःकालीन विहार और उनकी रूपमाधुरी युक्त रसाला (अमृतवत् सुरस पेय) परिवेशन कर (पिलाकर) मधुरिका ने श्रीराधा की विरह ज्वर की यातना को कुछ शांत तो अवश्य किया लेकिन कुछ क्षण उपरान्त ही वह श्रीकृष्ण मिलन रूपी तृष्णा शतगुनी बढ़ गयी।

हर्षोन्नतिः स्तिमिततां श्रवसोर्व्यतानीत्तर्षोत्त्थ–संज्वरभरस्तु दृशोर्विवेश।
आकस्मिकी निरुपमा प्रतिवेशि–सम्पन्तापं तनोति सहवासभृतां सदैव।।१२५।।
(कृ० भा० ३/५६)

प्राहानुराग–परभागवती ततः सा, ता एव चारुमुखि ! धन्यतमा रमण्यः।
याः खेलयन्ति सततं सुदृशस्तदीय–लावण्यकेलि–जलधौ कलधौतगात्र्यः।।१२६।।
(कृ० भा० ३/६०)

जन्मैव हन्त किमभून्मम गोकुलेऽस्मिं–स्तन्माधुरीं न यदुरीकुरुते कदापि।
तत् श्यामलेऽतिचपले हृदि लेशमात्री, नो सम्भवेदिह भवे धृतिरित्यवेहि।।१२७।।
(कृ० भा० ३/६१)

श्यामाह यामि ! ललिते ! श्रृणु यामि गेहं, सम्प्रत्यमुं प्रति ममास्तु गिरां विरामः।
त्वं पद्मिनीं बृजपुरन्दर सद्मनीमां, कृष्णोक्षणालिनि समर्पय बद्धतृष्णे।।१२८।।
(कृ० भा० ३/६२)

श्रीराधारानी की तत्कालीन अवस्था एवं श्यामला का गृहगमन :

(१२५) श्रीराधा के दोनों कर्णयुगलों में अत्यन्त आनंद की स्निग्धता प्रदान करने पर भी (कानों को सुख देने वाली श्रीकृष्ण कथा सुनाकर) तृष्णा से उत्पन्न ज्वर तीव्रता के साथ नयनयुगल में प्रवेश कर गया (कानों को अतिशय सुख मिला तो नेत्र क्यों जल उठे इसका कारण बताते हुए कहते है कि) पड़ोसी को एकदम अपार सम्पदा मिल जाय तो साथ वाला पड़ोसी अवश्य जलने लगता है।

(१२६) तत्पश्चात् परमानुरागमयी श्रीमती राधा मधुरिका को कहने लगीं– हे सुमुखि ! जो गौरांगि रमणीगण श्रीश्यामसुन्दर के लावण्यकेलि–समुद्र में अपनी नयन–शफरी को (मछली) प्रेरणा कर क्रीड़ा कराती रहती हैं वे ही इस जगत् में धन्यतमा है।

(१२७) इसके पश्चात् श्रीराधा व्याकुल होकर श्यामला से कहने लगीं– "हे श्यामले ! इस गोकुल में ही मेरा क्यों जन्म हुआ ? मैं तो गोकुलनाथ की माधुरी के लेश का भी, कभी आस्वादन नहीं कर सकी, अतएव हे सखि ! इस जन्म में मेरा यह अतिचंचल हृदय लेशमात्र भी धैर्य धारण करने में समर्थ नहीं है यह तुम जान लो।"

(१२८) श्रीराधा के परमानुराग युक्त वचन सुनकर श्रीश्यामला श्रीललिताजी से कहने लगी– हे बहिन ! मैं तो अब घर को जा रही हूँ। अब श्रीराधा के साथ मैं यहीं श्रीकृष्णचर्चा को विराम देती हूँ। तुम इस पद्मिनि को ब्रजराजपुरन्दर श्रीनन्दमहाराज के भवन में लाकर, इनके प्रति तृष्णापरायण (मिलने को उत्कण्ठित) श्रीकृष्ण रूप भ्रमर को समर्पित करना।

प्रिय—विरह विहस्ता स्रस्तधीः सा तदानीं, क्षणमपि युगकल्पं कल्पयन्ती वभूव।
यदखिलमपि कृत्यं कारिता किंकरीभिः, समयविहितमेकोऽभ्यास एवात्र हेतुः।।१२६।।
(कृ० भा० ३/६३)

अथ निखिल सखीनां स्वालिभिः स्नापितानां, धृत समुचित—वस्त्रालंकृतीनां ततिः सा।
मथित—शरदुदञ्चच्चन्द्रिका—सिन्धुजातां, श्रियमपि निजपादाम्भोजभासा विजिग्ये।।१३०।।
(कृ० भा० ३/६४)

काचिन्मणीन्द्रमय मासन माजहार, श्रीपादपीठमपरा तदधो दधार।
काप्यानयद्वदन—धावन—भाजनानि, काप्यादधे दशनशोधन—साधनानि।।१३१।।
(कृष्णा० २/४८)

उत्थाय तल्पतलतः कनकासनस्था, निद्रावसान—विगलन्नियतव्यवस्था।
सा पादपीठमधि दत्त पदारविन्दा, वभ्राज सत्परिजनैर्विहिताभिनन्दा।।१३२।।
(कृष्णा० २/४६)

भृंगार—नालशिखरेण समर्पिताभिः, सन्धाय वक्त्रविवरे चुलुकीकृताभिः।
तत्सौरभस्य रभसाधिकसौरभाभिः, श्रीपाणिपद्मतल—संगम—लोहिताभिः।।१३३।।
(कृष्णा० २/५०)

---

(१२६) श्रीकृष्ण विरह—व्याकुला श्रीमति राधा उस समय विलुप्तमति (क्या करना है, कुछ भी ज्ञान नहीं है) होकर एक—एक क्षण को युग के समान समझने लगी। किंकरीगण द्वारा दन्तधावन, स्नानादि नित्यकर्म कराये जाने पर भी वे अज्ञानवस्था में अभ्यासवश समस्त कार्य करने लगीं।

(१३०) तब ललितादि सखीगण को भी उनकी परिचारिका सखीगण ने स्नानादि करा वस्त्रालंकार धारण करा दिये। (उन सब की तत्कालीन शोभा का शब्दों से वर्णन नहीं किया जा सकता) यदि शरत्कालीन निर्मल चन्द्र की ज्योत्सना का सिन्धु हो, उसे मथकर लक्ष्मी प्रकट हो तो वह लक्ष्मी भी इनमें से प्रत्येक के चरणकमल के सौन्दर्यलेश के सामने परास्त ही हो जावेगी।

श्रीराधिका दन्तधावनादि लीला :—

(१३१) कोई सखी महामणि जटित आसन लायी, किसी अन्य ने उसके नीचे सुन्दर चरणचौकी रख दी, अन्य एक सखी मुख धुलाने के पात्र, और एक सखी ने दातुनि का सब सामान लाकर प्रस्तुत कर दिया।

(१३२) श्रीराधिका शैय्या से उठीं और उस स्वर्णासन पर विराज गयीं। निद्रा से जागकर उठने की दशा में उनकी समस्त वेशभूषा अस्तव्यस्त हो रही थी, उन्होंने चरण चौकी पर चरणकमल रखे तो समस्त प्रिय सखीगण उनका अभिनन्दन (किंचिद् अलकें वसनादि सम्हारना) करने लगीं।

(१३३) तब सखिगण श्रीराधा के हाथ में झारी की टूटि नालिका के अग्रभाग से निकलता हुआ जल डालने लगीं और वह इस जल को मुख में डालकर आचमन करने लगीं। अहा ! वदनकमल की सुगन्धि से यह जल अधिकतर सुगन्ध युक्त हो गया एवं हस्तकमल का स्पर्श पाकर कुछ लालरंग का प्रतीत हो रहा था।

निक्षेपणे प्रियसखी–करयोः कृताभिः, कर्पूर–पूर–रजसाऽभिसुवासिताभिः।
व्याप्तालिभिः सकलकेलिकलासुहृद्भिः, सा साधु शोधितवती मुखपद्ममद्भिः।।१३४।।

(कृष्णा० २/५१)

करतलादसकृच्चुलुकीकृतं, सलिलमारद–ताल्वनु चालितम्।
चलकपोलयुगोन्नति–मञ्जुल, ध्वनिभृतं निभृतं क्षिपति स्म सा।।१३५।।

(कृ० भा० ५/२)

विसृमरानलकान् किरती शिर–स्युपरि सव्य करांगुलि–घट्टनैः।
अलिक गण्डदृगाद्यथ सामित, द्युतिमितं तिमितं त्रिरदीधवत्।।१३६।।

(कृ० भा० ४/३)

विटपिकां द्युतरोस्ततरोचिषं, रदहितां निहितां स्ववयस्यया।
मुकुलिताम्बुजतांभजताञ्जसा, मृदुतरेण करेण सुदृग् दधे।।१३७।।

(कृ० भा० ४/४)

प्रतिसरोदित–दोलनमस्वन–द्वलयमुच्चल–कुण्डलमेतया।
व्याधित सा मृजती रदनांश्छविं, कणवदुच्छलितां ललितां श्रितान्।।१३८।।

(कृ० भा० ४/५)

---

(१३४) यह जल कर्पूर बिंद से सुवासित था, समस्त केलिकला में सुनिपुण हितकारिणि सखीगण ने उनको चारों ओर से घेर रखा था और श्रीराधा सखियों द्वारा डाले जाने वाले जल से अच्छी प्रकार मुखकमल का शोधन करने लगीं।

(१३५) हाथ में लेकर जल को बार–२ कुल्ला करते हुए दांतों से तालू तक उसे चलाते हुए उनके दोनों गण्डस्थल कुछ ऊँचे हो रहे थे और मृदुमधुर ध्वनि करते हुए कुल्लोल का जल स्वर्णपतद्गृह (डाबर) द्वापनपात्र में डालने लगीं।

(१३६) तत्पश्चात् राधारानी अपने मुखारविन्द को (बाहर से) धोने लगीं। मुख के ऊपर गिरने वाली छोटी–२ अलकों को अपने बांये कर की उंगली से मस्तक के ऊपर उठाकर, स्वतः स्निग्ध ललाट, कपोल, नयन आदि को तीन बार धोकर उन्हें अमित (अपार) कान्ति से युक्त बना दिया।

(१३७) एक सखी ने अतिसुन्दर कान्तिमती दन्तहितकारी कल्पवृक्ष की दातुनि पकड़ा दी, श्रीराधारानी ने अपने अधखिली कमल कलिका के समान हाथ में ले लिया और दांत मांजने लगीं।

(१३८) उस समय उनकी कलाई में पहुंची नामक आभूषण हिलती हुई शोभा पाने लगी। कानों के कुण्डल अत्यधिक चंचल हो उठे इस प्रकार जब श्रीराधा अपनी दंतावलि मार्जन कर रहीं थी तो उच्छलित जलादि कणिका की भांति उनकी दंतावलि की शोभा हो रही थी।

अथ दधे सुदती धनुराकृतिं, मणिमयीं रसनापरिणेजिनीम्।
मृदुल पाणियुगंगुलियुग्मगां, सहचरी करतोऽदरतोषतः।।१३६।।

(कृ० भा० ४/६)

नवदलोपमितां रसनां मृज, त्यय तया नत–कम्पित–मस्तकम्।
मुखमियं स्खलितैरलकैर्वृतं, विदधती दधती स्मितमाावभौ।।१४०।।

(कृ० भा० ४/७)

निरणिजद्वहिरन्तरमप्यरं, मुखविधोरथ धौतकरद्वया।
परिजनार्पित–मञ्जुलवाससा, जलकणापनयं सनयं व्यधात्।।१४१।।

(कृ० भा० ४/८)

सहचरी–विधृते मणिदर्पणे, तदभिनन्दन–साक्षिणि वीक्ष्य सा।
स्मित–सुधाभिरधावय दाननं, प्रियतम–क्षणलक्षण–लक्षकम्।।१४२।।

(कृ० भा० ४/६)

तस्य दोहादिकां क्रियां दृष्टागता कलावती।
जगादाथ तदभ्यर्णे परमोल्लाससंयुता।।१४३।। (संग्रहकर्त्तुः)

---

(१३६) कोई अन्य सखी ने मणिमयी धनुष के सदृश आकृति वाली जिह्वामार्जनी अर्पण की, उन्होंने अपने कोमल अंगूठे तथा तर्जनी उंगली द्वारा, प्रसन्नतापूर्वक उसे सहचरी के हाथ से ग्रहण किया।

(१४०) और अब श्रीराधा उसके द्वारा अपनी नवीन पल्लव के सदृश जिह्वा का मार्जन करने लगीं। उस समय उनका मस्तक नीचे तथा कुछ हिल रहा था। अलकावलि कुछ–२ नीचे की ओर मुख पर पड़ने लगीं। (जिसे देखकर किसी परम रसमय अवस्थाविशेष का स्मरण कर) सखीगणों के मुख पर मृदुमंद हास्य दिखायी पड़ने लगा। श्रीराधिका भी उन्हें देखकर मृदु–२ हंसने लगीं।

(१४१) मुखचन्द्र को बाहर भीतर से पुनः–पुनः धोकर श्रीराधा पुनः दोनों करकमल धोने लगीं, एक सखी ने मृदु सूक्ष्मवस्त्र प्रदान किया जिसके द्वारा उन्होंने अपने मुखकमल के जल कणों को अच्छी तरह पोंछ लिया।

(१४२) मुखमार्जन करते समय दंतावलि में लगे पान के रंग के अच्छी प्रकार दूर हो जाने की साक्षी देने वाले मणि दर्पण को किसी सहचरी ने सामने रख दिया। उसमें अपने प्रियतम के मिलन चिन्हों की सूचना देने वाले अपने मुख को देखकर श्रीराधा उसे पुनः स्मित सुधा द्वारा धोने लगीं।

कलावती सखी का आगमन एवं श्रीकृष्ण की गौदोहन लीला का वर्णन :–

(१४३) श्रीकृष्ण के गौदोहन आदि कार्य को देखकर कलावती नामक सखी ने श्रीराधा के पास आकर परम उल्लास पूर्वक कहना प्रारम्भ किया।

गोपालोऽपि स्वगोशालं सराम–मधुमंगलः।
सकाव्यगीष्पतिः सायं शशीवाम्बरमाविशत्।।१४४।। (गोवि० २/३७)

दधार द्युषदां रामो धवलावलि–वेष्टितः।
कैलासगण्डशैलालीमध्यस्थैरावत–भ्रमम्।।१४५।। (गोवि० २/३८)

मध्येऽच्युतोऽञ्चन् धवलावलीना, मुदाननानां परितः स्थितानाम्।
दधौ जनानां स्फुट–पुण्डरीक, श्रेण्यन्तरञ्चद्भ्रमर–भ्रमं सः।।१४६।। (गोवि० २/३९)

हिही गंगे! गोदावरि! शवलि! कालिन्दि! धवले! हिही धूम्रे! तुंगि! भ्रमरि! यमुने! हंसिः! कमले!
हिही रम्भे! चम्पे! करिणि! हरिणीति बृजविधुर्मुर्हुनामग्राहं निखिलसुरभीराह्वयदसौ।।१४७।।
(गोवि० २/४०)

न्यस्तांगः प्रपदोपरि प्रघटयन् जानुद्वये दोहनीं, काश्चिद्दोग्धि पयः स्वयन्त्वथ पराः स्वैर्दोहयत्युन्मुखीः।
अन्याः पाययति स्वतर्णकगणान् कण्डूयनैः प्रीणयन्नित्त्थं ननदसुतः प्रगे स्वसुरमीरानन्दयन्नन्दति।।१४८।।
(गोवि० २/४१)

---

(१४४) सायंकाल शुक्र एवं बृहस्पति के साथ चन्द्रमा जैसे गगन मण्डल में उदय होते हैं, उसी प्रकार बलराम एवं मधुमंगल के साथ श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी गौशाला में प्रवेश किया।

(१४५) धवला आदि श्वेतवर्ण की गउओं के मध्य स्थित श्रीबलराम को देखकर देवताओं को कैलाश पर्वत के किसी बड़े पर्वतखण्ड के बीच मानो कोई ऐरावत हस्ती खड़ा हो इस प्रकार का भ्रम होने लगा।

(१४६) श्रीकृष्ण जब धवला गउओं के मध्य ऊपर की ओर मुखकर विराज रहे थे, तो खिले हुए श्वेत कमलों के मध्य मानों कोई भ्रमर क्रीड़ा कर रहा हो। इस प्रकार का भ्रम दर्शकों को हो रहा था।

(१४७) और वे गउओं को हे गंगे ! गोदावरि ! हे शबलि ! हे कालिन्दि ! हे धवले ! हे घूम्ने! हे तुंगी ! हे भ्रमरि ! हे यमुने ! हे हंसि ! हे कमले ! हे रम्भे ! हे चम्बे ! हे करिणि ! आदि नाम लेकर प्रत्येक को बारम्बार पुकारने लगे।

(१४८) श्रीकृष्ण अपने चरणों के अग्रभाग में अपनी देह का भार रख और दोनों घुटनों के मध्य दोहनी को दबाकर रखते हुए स्वयं कुछ गउओं का दोहन करने लगे। अन्यान्य उन्मुख कुछ गउओं का दोहन करने लगे। अन्यान्य उन्मुख कुछ गउओं को अपने अन्य गोपगणों द्वारा दोहन कराया। वे स्वयं किसी गाय को कण्डूयन (खुजलाना) करते हुए प्यार करने लगे और फिर उनके बछड़ों को दूध पान कराने लगे। इस प्रकार श्रीहरि गायों से प्रीति करते हुये स्वयं भी आनंदित होने लगे।

पादाग्रे–कृतपादुकं त्रिक–समुल्लासोल्लसत्पार्ष्णिकं,
मध्ये न्यस्य घटीं पटोन्नमनतः प्रोद्यत्त्वियोर्जानुनोः।
गोतुन्द–व्यतिषंग–सुन्दर–दरक्षोभ–श्लथोष्णीषकं,
पाणिभ्यां क्रम–कुट्मलांगुलिपुटं गां दोग्धि दुग्ध हरिः।।१४६।। (आ० ११/८८)

वत्सादप्यधिक प्रियो भगवतः पाण्यम्बुज–र्स्पशन,
स्नेहस्राविपयः–पयोधरपुटा गोर्दुह्यमाना स्वयम्।
धाराभिः सुगभीरघोषगहनामापूर्य्य सा दोहनीं,
दोहन्यन्तरमेति यावदवनीं तावत् समापुप्लुवत्।।१५०।। (आ० ११/९०)

अंगुष्ठाग्रिम–यन्त्रितांगुलिरसौ पादार्द्धनीरुद्धभू–
'रापीनाञ्चलमर्दयन्निह पुरो' द्वित्रैः पयोविन्धुभिः।
न्यग्जानुद्वयमध्ययन्त्रितघटी–वक्त्रान्तरे प्रस्खल–
द्वाराध्वान–मनोहरं सखि ! पयो गां दोग्धि दामोदरः।।१५१।। (प० २/६२)

श्रृण्वन्तीं भाव–वैवश्याद्विस्मृत–स्नापनक्रियाम्।
लवंगमञ्जरी सद्यो जुहाव व्यग्रमानसा।।१५२।।

---

(१४६) चरणों के अग्रभाग में पादुका धारण किये, पीठ के आधे भाग को ऊँचा उठाये हुए एढ़ियों को ऊपर उठाते हुए, दोनों घुटनों के बीच दोहनी रखे हुए, कमल कली की भाँति हाथों की उंगलियों से श्रीहरि दूध दुहने लगे। उस समय पीताम्बर को ऊँचा उठायें रखने से उनके श्याम घुटनों की कान्ति अतिशय प्रकाश पा रही थी।

(१५०) गाय के पेट के साथ उनके सिर की पगड़ी का मिलन होने से वह कुछ ऊपर को उठकर शिथिल हो गयी थी।

(१५१) भगवान श्रीकृष्ण के करकमल का स्पर्श एवं उनकी प्रीति को पाकर गायें अपने बछड़ों से भी अधिक प्रसन्नता का अनुभव कर रही थीं। उनके थनों से आप ही दूध बहने लगा और दोहन क्रिया स्वतः सम्पन्न हो रही थी। उनके दूध की धारा से सुगम्भीर शब्द हो रहा था दोहनी के भर जाने पर अन्य दोहनी लाने के अंतर में ही पृथ्वी दूध से भीग जाती थी।

(१५२) हे सखि ! अपने अंगूठे एवं बड़ी उंगली के अग्रभाग से अन्य उंगलियों को संयत कर, श्रीकृष्ण आधे चरणों (चरणों के अग्रभागों) से भूमि को दबाकर, शीघ्र ही प्रथम दो तीन दूध के बिन्दुओं से गाय के पयोधर को अच्छी प्रकार भिगोकर, दोनों जानु के बीच दूध की छोटी सी गागर रखकर, जिसमें दूध की धारा मनोहर ध्वनि करती हुई गिर रही है, इस प्रकार की शोभा का विस्तार करते हुए दामोदर गोदोहन कर रहे हैं। इस प्रकार गोदोहन लीला को सुनते–सुनते श्रीमती राध ारानी इतनी भावविवश हो गयीं कि स्नानादि करना है यह भी सर्वथा भूल गयीं। तब व्यग्रचित्त होकर लवंगमंजरी उन्हें पुकार कर कहने लगी।

तत्र काञ्चनमये मृदुपीठे, चीनचेलपिहिते विनिविष्टाम्।
सेवने परिजना निपुणा द्राक्, तामुपायनकराः परिवव्रुः।।१५३।।

(गोवि० २/६५)

सावातारयदाभरण–निचयं, ललिता स्वसखी तनुतः सदयम्।
कनकव्रततेरिव सप्रणयं, पल्लव–कुसुमस्तवक प्रचयम्।।१५४।।

(गोवि० २/६०)

आमृज्य चेल–शकलेन तनूत्तमेन, सर्वांगमंकितमनंग–रणांककेन।
अभ्यंगसंगिवसनं परिधाप्य नक्तं, वासोऽभ्यमुमुचदनुत्तम–गन्धयुक्तम्।।१५५।।

(कृष्णा २/५५)

आकृष्य मुग्धमवगुण्ठनमुत्तमांगा–दुन्मोच्य कुन्तलततीः सुघनोन्तमांगाः।
रत्नप्रसाधनिकया चल कंकणालिः, सप्रेम सादरमशूशुधदुत्तमालिः।।१५६।।

(कृष्णा० २/५४)

प्रक्षाल्य पादयुगलं मुकुरं पुरस्ता–दादर्श्य काचन कला–कुशलत्वशस्ता।
तैलेन सत्सुरभिणा लसतारुणिम्ना–भ्यानञ्ज कञ्जवदनां प्रणयेन भूम्ना।।१५७।।

(कृष्णा० २/५६)

श्रीराधिका का स्नान एवं वेषभूषा सम्पादन :–

(१५३) अब श्रीराधारानी एक सूक्ष्मवस्त्र (स्नानोचित) से आवृत होकर सुन्दर स्वर्ण चौकी पर विराजमान हुईं। सेवा में निपुण सखीगण हाथों में तेल के पात्र (शीशी) आदि लेकर चारों ओर घेर कर खड़ी हो गयीं।

(१५४) श्रीललिताजी प्रीतिपूर्वक श्रीअंग से आभूषण उतारने लगीं, उस समय प्रतीत हो रहा था मानों स्वर्णलता से कोई पल्लव, कुसुम, गुच्छे आदि उतार रहा है।

(१५५) अनंगरण से क्षत हुए चिन्हों से युक्त श्रीअंग को अतिसूक्ष्मवस्त्र द्वारा मार्जित कर, स्नानोचित लघु वस्त्र पहनाकर, अत्युत्कृष्टगन्धयुक्त रात्रि के वसन को उतार दिया।

(१५६) किसी श्रेष्ठ सखी ने प्रथम उनके मस्तक से मनोहर अवगुण्ठन (घूंघट का वस्त्र, ओढ़नी) उतारकर मेघ के समान श्यामल लम्बे–२ केशों को बन्धन मुक्त किया, अपने कंकणों को बजाते हुए रत्नमय कंघी लेकर प्रेम तथा दुलार के साथ केशों को सँवारा।

(१५७) फिर किसी कलानिपुणा सखी ने उनके चरणों को धुलाया और सामने दर्पण में रख दिया और लाल रंग के अत्युत्तम सुगन्धित नारायण तेल द्वारा कमल वदना श्रीमती राधारानी के अंगों की अच्छी प्रकार से मालिश की।

अंगादयतो यत उदस्यति चारुचेलं, तत्तन्निरीक्ष्य ह्रियमृच्छति सानुवेलम्।
तेनाक्तमक्तमवधाय सखीयमंग, तस्याः प्यधात्तदखिलं कृतह्री विभंगम्।।१५८।।
(कृष्णा० २/५७)

अभ्यज्य रज्यदतिशुद्धहृदो वयस्या आपादमूर्द्धकृतमर्दनमंगलमस्याः।
उद्वर्तनं विदधिरे घनसार–पूर्णैः, कस्तूरिका–घुसृण–चन्दनचारुचूर्णै।।१५६।।
(कृष्णा० २/५८)

गन्धानुबन्धि–विमलामलकीकषायैः, केशान् विघृष्य कतमा विविधैरुपायैः।
भृंगार–नालगलितैललितैः कबन्धै, रुक्षाञ्चकार सहज प्रणयानुबन्धैः।।१६०।।
(कृष्णा० २/५६)

कालोचितेन घनसार–सुवासितेन, नानामणीश्वर–घटीघटया भृतेन।
द्वाभ्यां शनैरुभयतः प्रतिपादितेन, द्वे पार्श्योः सिषिचतुः सुमुखीं जलेन।।१६१।।
(कृष्णा० २/६०)

सम्वेष्ट्य चारुचिकुरान् सिचयेन वाढं निष्पीड्य भूरिगलदम्बु निगाल्य गाढ़म्।
भूयः प्रसार्य चलदंगुलिभिर्विकीर्य्य, भूयो ववन्ध कतमा सिचयं वितीर्य्य।।१६२।।
(कृष्णा० २/६१)

---

(१५८) वह सखी जिस–जिस अंग से सुन्दर वस्त्र को हटाती उस–उस अंग को देखकर श्रीराधा लज्जित हो जाती जिसे रंजित देखकर वह सखी उनकी लज्जा को दूर करते हुए पुनः उसे आच्छादित कर देती।

(१५६) अनुरागमयी अतिशुद्धचित्त सखीगण ने श्रीराधा के अंगों में तेल लगाकर चरणों से मस्तक तक मालिश कर दी, फिर कर्पूरयुक्त मृगमद, कुंकुम एवं चन्दन के सुन्दर लेप से उनके अंगों का उबटन किया।

(१६०) किसी सखी ने महासुगन्धित, सुन्दर आँवलों के रस से केशपाश को विविध उपायों से (दधि नवनीत आदि) मार्जित किया घिसा और फिर किसी अन्य सखी ने झारी के द्वारा सहज प्रीतिपूर्वक जल डालकर उनको स्नान कराया।

(१६१) समयोचित (ग्रीष्मकाल में शीतल एवं शीतकाल में हल्का गर्म) कर्पूर आदि द्वारा सुवासित, मणि जड़ित घड़ों में रखे हुए जल द्वारा ललिता एवं विशाखा सखी दोनों ओर खड़ी होकर धीरे–धीरे श्रीराधा को स्नान कराने लगीं।

(१६२) किसी सखी ने सुन्दर केशकलाप को वस्त्र द्वारा उत्तम रूप से लपेटकर जल को निचोड़ दिया जिससे अधिकांश जल बिन्दु–२ कर निकल गया, पुनः बालों को फैलाकर उंगली से उन्हें अलग–२ बिखेर कर सूखे वस्त्र से बांध दिया।

काचिन्मुखेन्दुमपरा गलमूलमन्या, कर्णौ ममार्ज मृदुना वसनेन धन्या।
वक्षो विसारि कतया च पृष्ठं, बाहुद्वयं च कतमा सुषमा वरिष्ठम्।।१६३।।

(कृष्णा० २/६२)

सम्वेष्ट्य शुष्कवसनेन निरासनीयं, श्रोण्या जहार विगलज्जलमन्तरीयम्।
आमृज्य पाणियुगलेन शनैरुदार–मर्द्धोरुकं कटितटे घटयाञ्चकार।।१६४।।

(कृष्णा० २/६३)

आमृष्टयोर्वरपयोधरयोरलोलं, काचित् कलासु कुशलाथ वबन्ध चोलम्।
पट्टांशुकेन रचितं स्वसखीजनेन, नाना विधातिशयशिल्प–विशारदेन।।१६५।।

(कृष्णा० २/६४)

तस्योपरि प्रतनु–शोणतरं सुवीचि–चण्डातकाद्युदयदुच्चल–सन्मरीचि।
श्रीपाद पद्मनखचन्द्रचयाग्रचुम्बि चेलं बबन्ध तपनीय–गुणानुबन्धि।।१६६।।

(कृष्णा० २/६५)

लम्ब प्रलम्बयुगलेन सुपट्टदाम्ना मुक्तामणीन्द्रमहसा विलसद्गरिमणा।
आकुञ्चनक्रमवशात् कमलानुकारां जग्रन्थ नीविमभिनाभि सुशिल्पसाराम्।।१६७।।

(कृष्णा० २/६६)

---

(१६३) किसी अन्य धन्य (भाग्यशालिनी) सखी ने उनके मुखचन्द्र, किसी ने गर्दन, किसी ने दोनों कानों को मृदु वस्त्र द्वारा मार्जित किया, किसी ने विशाल वक्षस्थल को, किसी ने सुन्दरता से सुशोभित पीठ को, किसी ने बाहुयुगल को पौंछ दिया।

(१६४) किसी सखी (श्रीचित्राजी) ने ऊपर से सूखे वस्त्र को लपेटकर (आवरण देकर) श्रोणीदेश से नीचे के भीगे वस्त्र को धीरे से दूर कर दिया, फिर धीरे–२ हाथों से मार्जन करके कटितट पर अतिसुन्दर घाघरा (कम घेर का अन्तवास) पहना दिया।

(१६५) किसी कलाकुशल सखी ने सुन्दर स्तनमण्डल को पौंछ कर धीरे–२ काँचुली पहना दी जिसको कि पट्टवस्त्र द्वारा विविध शिल्पकला में निपुण सखियों ने स्वयं बनाया था।

(१६६–६७) इसके पश्चात् अर्न्तवास के ऊपर अत्यन्त सूक्ष्म, अत्यन्त सुन्दर लाल रंग का, नीचे के वस्त्र से जिस पर किरणों की तरंगें झिलमिल कर रही है, चरण कमलों के नखों तक लम्बा स्वर्णजरी के शिल्प से मनोहर घेरदार, सुन्दर रेशमी वस्त्र द्वारा निर्मित लम्बे, दोनों किनारों पर महामणियों एवं मुक्ताओं के गुच्छों की किरणों से शोभित, ऊपर से नीचे कमलाकृति (चुन्नटदार घेरवाला) अत्यन्त सूक्ष्म शिल्प कला का परिचायक लहंगा नाभि के ऊपर बाँध दिया।

कनकबिन्दुमती नवशाटिका, घनरुचिस्तदुपर्य्यतिदिद्युते।
यदभिवेष्टनमेव मुकुन्द दृङ, निरनुरोधन–रोधनमुच्यते।।१६८।। (कृ० भा० ४/३५)

आरुह्य तामथ महामणि–पीठपृष्ठे विस्तारितातिमृदुचेल–कृतप्रतिष्ठे।
प्रक्षाल्य पादकमलद्वितयं सतोषाः, सख्यो व्यधुर्विविध–मंगलवेषभूषाः।।१६९।।
(कृष्णा० २/६७)

भूयः प्रसार्य्य बहुशो बहुशः प्रसाध्य रत्न–प्रसाधनिकयांगुलिभिर्विशोध्य।
कालागुरु–प्रभवधूपधुरा–प्रचार मालीजनः कचभरं सुरभीचकार।।१७०।।
(कृष्णा० २/६८)

स्नानादृजुं सदलकालिमरालयित्वा कस्तूरिकाभिरलिके तिलकं लिखित्वा।
सिन्दूरबिन्दुरुचिरेऽकृत वालपाश्य्यां सीमन्तसीमनि मणीन्द्र–मयूखरस्याम्।।१७१।।
(कृष्णा० २/६९)

कस्तूरी–पत्रवल्ली समुदय–खचितं पार्श्वयोराकपोलम्
भाले श्रीखण्डबिन्दुत्करवृतमभितः कामयन्त्राभिधानम्।
अन्तः कस्तूरिकोद्यन्मलयज–शशभृल्लेखयाधश्चितं सा
चक्रे सीमन्तरेखान्वितमथ तिलकं सान्द्रसिन्दूर–पंकैः।।१७२।। (गोवि० २/७७)

---

(१६८) इसके ऊपर (बृजमंडल में फड़िया या ओढ़ना नाम से प्रसिद्ध) मेघ के समान श्याम रंग का, स्वर्ण बिन्दु के समान मध्य–२ में शोभायुक्त साड़ी पहना दी जिसके दर्शन मात्र से मुकुन्द के नेत्र एकटक देखते ही रह जाते हैं।

(१६९) तदुपरान्त किसी सखी ने महामणिमय आसन पर अतिकोमल वस्त्र बिछा कर, राधारानी को विराजमान कराया पुनः प्रसन्नचित्त से उनके चरण कमलों को धोकर, अन्यान्य सखियाँ सब मिलकर उनकी मंगलवेषभूषा करने लगीं।

(१७०) पुनः सखियों ने मिलकर राधारानी के केशकलाप को फैलाकर अनेक प्रकार के प्रसाधनों द्वारा, रत्नकंघी एवं उँगलियों से उन्हें अलग–अलग फैलाते हुए, काले अगरु के धुँए से उनको सुगन्धित किया।

(१७१) राधारानी की स्वभावतः सुन्दर घुँघराली अलकें स्नानोपरांत कुछ सरल (सीधी) हो गयीं अतएव सखी गण ने उन्हें बलदार (कुटिल) बना दिया। तदुपरांत कस्तूरी द्वारा ललाट पर तिलक बिन्दु रचना की एवं सिन्दूर के बिन्दुओं से इन्द्रनीलमणि की किरणों से सुशोभित माँग को अत्यन्त मनोहर रीति से सजाया।

(१७२) विशाखा सखि ने श्रीराधा के ललाट देश पर घने सिंदूर के बिन्दुओं से 'कामयन्त्र' नामक तिलक की रचना की फिर उसके दोनों ओर से कपोलों तक कस्तूरी द्वारा पत्रावली की रचना की जिसको बीच–२ चन्दन के बिन्दुओं से सजा दिया। नीचे के भाग में उज्ज्वल कस्तूरिका युक्त चन्दन बिंदुओं से चन्द्ररेखा चित्रित कर दी।

मौलौ बबन्ध कतमा सुमणि–प्रवेकं सन्मालती–कुसुमगर्भक–कान्तिसेकम्।
धम्मिल्लमुल्लसित–लोहित–पट्टदाम्ना लम्बप्रलम्ब–युगलेन मणीन्द्रधाम्ना।।१७३।।
(कृष्णा० २/७०)

सूक्ष्मोर्द्धरन्ध्रगत–हेमशलाकिकाया मूलाप्रसंग–ललिते विदधे सुकाया।
श्रीचक्रिका–बकुलिके श्रुति मध्यदेशे रत्नप्रभाभरधुरा विहितोपदेशे।।१७४।।
(कृष्णा० २/७२)

मुक्ताकलाप–कलया ललित–प्रकाश्यां काचितद्व्यधादलकसीमनि पत्रपाश्याम्।
काचिन्मणीन्द्रमय कुण्डलमत्युदार–मेकैकशः श्रुतियुगे घटयाञ्चकार।।१७५।।
(कृष्णा० २/७१)

काचिद्विभूष्य नयने दलिताञ्जनेन स्मारौ शराविव निघृष्ट–रसाञ्जनेन।
नासापसव्यपुटके विततार मुक्तां नेत्राञ्जनाधर विभान्भिर नीलरक्ताम्।।१७६।।
(कृष्णा० २/७३)

---

(१७३) किसी सखी ने उनके मस्तक पर सुन्दर मणि जटित उत्तम मालती के पुष्पों से निर्मित हार की कान्ति से पुष्ट (बोरला) मणिराज बांध दिया। और दोनों ओर जिसकी लड़ियाँ लम्बी लटक रही हैं इस प्रकार की मणियों की कांति से उद्भासित लाल रंग के सुन्दर पट्टवस्त्र द्वारा उनका वेणी मूलभाग (धम्मिल) बाँध दिया।

(१७४) इसके उपरांत किसी सखी ने उनके कानों में चक्रशलाका (चक्राकार बकुलाकृति) जिसके ऊपरी भाग में सूक्ष्म छेद था जिससे ग्रथित होकर हेमशलाका (स्वर्ण जंजीर) अति शोभा को प्राप्त हो रही थी और समीपवर्ती स्थान को भी रत्नों की किरणों द्वारा उद्भासित (झिलमिलाहट) कर रही थी।

(१७५) किसी सखी ने उनकी अलकों के ऊपर मोतियों की झालर निर्मित मनोरम शिल्पकला द्वारा बनायी गयी और अत्यन्त ज्योतिर्मयी, इस प्रकार की ललाटिका धारण करा दी और किसी सखी ने कानों में महामणि (उत्तम मणि) निर्मित उत्कृष्ट कुण्डल धारण कर दिये।

(१७६) फिर किसी सखी ने उत्तम रूप से घिसे हुए रसाञ्जन में मिले हुए कज्जल से, श्रीमती राधारानी के नेत्रों को इस प्रकार विभूषित कर दिया मानों वे दो कामदेव के बाण हों। और उनकी दायीं नासिका में एक मुक्ता पहनाया जिसमें उनके नेत्रों की कालिमा एवं अधरों की लालिमा, दोनों रंगों की आभा झलक रही थी।

मकरिके लिखति मृदुगण्डयो, र्मकरकेतनमाह्वयदेव सा।
यमधरारुण–पल्लवमर्पयन, रसमये समये हरिवर्चयेत्।।१७७।।

(कृ० भा० ४/६८)

रुचिर–चिबुकमध्ये रत्नराजच्छलाका–कलितकरविशाखार्निमितोऽस्याश्चकास्ति।
नवमृगमदबिन्दुः शोभयन् श्रीमुखन्दुः भ्रमर इव दलाग्रे सन्निविष्टः सरोजम्।।१७८।।

(गोवि० २/८३)

कर्पूरागुरु–काश्मीरपंकमिश्रितचन्दनैः।
समालिप्य विशाखाऽस्याः पृष्ठ बाहुकुचावुरः।।१७६।। (गोवि० २/७६)

पुष्पगुच्छेन्दुलेखाब्जमकरी–चूतपल्लवम्।
लिलेख चित्रं कस्तूर्य्या चित्रा तत्कुचयोस्तटे।।१८०।। (गोवि० २/७८)

मीनी–प्रसून–नवपल्लव–चन्द्रलेखा–व्याजात् स्वचिह्नशर–कुन्त–धनुंषि कामः।
तद्भ्रूधर्नुधुवनमात्र–निरस्तकर्मा, मन्ये न्यधत्त निजतत्कुचकोषगेहे।।१८१।।

(गोवि० २/७६)

---

(१७७) तत्पश्चात् श्रीललिता सखी ने राधारानी के कोमलगण्डयुगल (कपोल का ऊपरी भाग) पर मकरी का चित्र बनाते हुए मकर के तन (कामदेव) का आह्वान किया, मानो कहने लगी–'हे कन्दर्प ! तुम इस पीठ (सिंहासन) पर बैठ जाओ, श्रीहरि किसी रसमय समय में अपने अरुण अधार पल्लव समर्पण कर तुम्हारी अर्चना करेंगें।

(१७८) श्रीमती राधारानी के सुन्दर चिबुक के मध्य, विशाखा सखी ने रत्नशलाका द्वारा मृगमदबिंदु बना दिया जोकि मुखचन्द्र पर इस प्रकार शोभा पाने लगा मानो स्वर्णकमल के दलाग्र पर कोई भ्रमर बैठा हुआ है।

(१७६) तत्पश्चात् उन्होंने कर्पूर, अगरू, कुंकुममिश्रित चन्दन द्वारा राधारानी की पीठ, बाहें, वक्षस्थल आदि पर लेप कर दिया।

(१८०) तदनन्तर चित्रा सखी ने राधारानी के स्तनों पर कस्तूरी द्वारा पुष्पगुच्छ चन्द्रलेखा, कमल, मकरी, चित्रित किया, उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो श्रीराधारानी के भ्रू रूप धनुष के कँपाने से निरस्त होकर कामदेव ने अपने चिन्ह मकर, वाण, कुम्भ एवं धनुष आदि को उनके कुचकोषागार में रख दिया हो।

(१८१) संध्या कालीन गगनमण्डल की शोभा जैसे नक्षत्र माला एवं इन्द्रधनुष द्वारा चित्र विचित्र पर्वतद्वय को आच्छादन कर रही हो उसी प्रकार चित्रा सखी द्वारा पहनायी गयी विविध रत्न एवं मोतियों से खचित लाल रंग की चोली ने श्रीराधा के वक्षस्थल को सुसज्जित कर दिया।

चित्रार्पितानेकविचित्ररत्न, मुक्ताचिता रक्तदुकूलचोली।
कुचौ भजालेन्द्रधनुर्विचित्रा, तस्तार शैलाविव सान्ध्यकान्तिः।।१८२।।

(गोवि० २/८०)

उपरिखचित–नानारत्नजालैः स्फुरन्त्या विमल पुरटपत्र्या कण्ठमस्या विशाखा।
हरिकर–दरचिह्नश्रीहरं पुष्कराक्ष्याः सपदि हरिभियेव छादयामास मध्ये।।१८३।।

(गोवि० २/८६)

बज्राचिताखण्डलरत्न चित्र सुरथूलमध्यो गुणबद्धचञ्चुः।
ललास तस्या उपकण्ठकूपं, दत्तस्तया हाटकचित्रहंसः।।१८४।।

(गोवि० २/८७)

सुवर्णगोलीयुगमध्यगोल्लसन्मसार गोली गिलितोऽन्तरान्तरा।
सुसूक्ष्ममुक्तावलि–गुम्फितस्तया न्ययोजि हारो हृदि गोस्तनाभिधः।।१८५।।

(गोवि० २/८८)

मसारचन्द्रोपल–पद्मराग–सुवर्ण गोली ग्रथितान्तरालैः।
मुक्ताप्रवालैः परिगुम्फितां सा, रत्नस्रजं तधृदये युयोज।।१८६।।

(गोवि० २/८६)

---

(१८२) तब विशाखा सखी ने मानो श्रीहरि के भय से ही, जिसका ऊपरी भाग विविध रत्नों के खचित ऐसा उज्ज्वल कण्ठाभरण, कमलनयना श्रीराधा के कण्ठ में पहना दिया जो कण्ठ (शंख के समान उत्तम) श्रीहरि के हाथ में स्थित शंख की शोभा को परास्त कर रहा था (अतः हरि के भय से उसे कण्ठाभरण द्वारा छिपा दिया।)

(१८३) तत्पश्चात् विशाखा सखी ने राधारानी के कण्ठ के नीचे के भाग में (जहाँ कुछ कूप सदृश गहरा होता है) एक स्वर्ण निर्मित चन्द्रहंस जोकि हीरे तथा इन्द्रनीलमणियों से जटित था उसे ऊपरी भाग में स्वर्णसूत्र में पिरोकर पहना दिया।

(१८५) तदुपरांत विशाखाजी ने राधारानी के हृदय देश पर 'गोस्तनाख्य' हार पहनाया जिसके मध्य–२ में दो दो सुवर्ण की गुटिका (मणियां) के बीच अत्युत्तम इन्द्रनीलमणि खचित थी तथा जो छोटे–२ मोतियों की लड़ियों में पिरोकर तैय्यार किया गया था।

(१८६) फिर उन्होंने राधारानी को उसके नीचे एवं रत्नमाला पहनायी जोकि इन्द्रनील मणि, चन्द्रकान्तमणि, पद्मरागमणि, सोने के गुटिका सदृश (मणियां) दानों से जटित थी तथा बीच–२ में मोती एवं मूँगों की लड़ियों में बाधकर बनायी गयी थी।

वैदूर्य्ययुग्माचित–हेम धात्रिका, बीजाभगोली–गिलितोऽन्तरान्तरा।
विचित्रमुक्तावलिचित्रगुच्छको, रराज तस्या हृदयेऽर्पितस्तया।।१८७।।
(गोवि० २/६०)

रासे निशीथे सहनृत्यगान, तुष्टेन दत्तां हरिणा स्वकण्ठात्।
तस्यैव साक्षादिव राजलक्ष्मीं, गुञ्जावलीं तद्धीदि सा युयोज।।१८८।।
(गोवि० २/६१)

स्थूलतारावलीरम्या सन्नायक–विभूषिता।
तस्या एकावलीजोत्स्नी हृदम्बरममण्डयत्।।१८६।। (गोवि० २/६२)

कनकखचित बज्रैर्वेष्टितैः पद्मरागैश्चितहरिमणिपूर्णाभ्यन्तरा शातकौम्भी।
प्रतनुपुरटराजच्छृङ्खलालम्बमाना लसति हृदि विशाखा योजितास्याश्चतुष्की।।१६०।।
(गोवि० २/६३)

आलीजनैर्मण्डनकेलिकाले, विभूष्यमाणावृषभानुपुत्री।
उरोगते नीलमणीन्द्रहारे स्विन्ना सकम्पा पुलकाकुलासीत्।।१६१।। (अ० ५/७३)

---

(१८७) इसके नीचे पुनः विशाखाजी ने विचित्र मुक्ताओं के द्वारा सजाया गया 'गुच्छाहार' पहनाया जिसके बीच–२ में दो–२ वैदूर्य्यमणियों के बीच आँवले के बीज के समान सोने के दाने सुशोभित थे। यह हार श्रीराधारानी के हृदयमण्डल में अत्यन्त शोभा का विस्तार कर रहा था।

(१८८) रास रजनी में युगल किशोर जब मिलकर नृत्यगान कर रहे थे, उस समय श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर अपने कण्ठ से जो 'गुञ्जावली' हार श्रीराधा के गले में पारितोषिक स्वरूप प्रदान किया था, उसी को विशाखाजी ने इस समय श्रीकृष्ण की 'राज्यलक्ष्मी' तुल्य श्रीराधा के वक्षस्थल पर पहना दिया।

(१८६) स्थूल ताराओं से सुशोभित, पूर्णचन्द्र एवं उसकी ज्योत्सना से जिस प्रकार गगन मण्डल की शोभा होती है, उसी प्रकार विशुद्ध मुक्तावली से ग्रथित 'एकावली' मध्य में सुन्दर रत्न दोलक (पैन्डल) से विभूषित होकर श्रीराधारानी के हृदय की शोभा बढ़ाने लगा।

(१६०) इसके नीचे विशाखा जी ने एक 'चतुष्की' हार पहनाया जोकि कनकजड़ित ही एकमणि (हीरे), पद्मरागमणि में खचित इन्द्रनीलमणि के जड़ाउ शिल्प से निर्मित था बीच–२ स्वर्ण की श्रृंखला (जंजीरों) से झूल रहा था, यह चतुष्की हार श्रीराधा के वक्षस्थल पर शोभा पाने लगा।

(१६१) जिस समय सखीगण श्रीवृषभानु नन्दिनि को आभूषण पहना रही थी उस समय वे जब उनको इन्द्रनीलमणि का उत्तम हार पहनाने लगीं तो वे (श्रीकृष्ण स्मृति से) पुलक, कम्प और स्वेद के कारण व्याकुल हो उठीं।

पृष्ठान्तःक्रमलम्बमानममलं ग्रीवान्तहारावलीवीटीबन्धन–
पट्टसूत्रचमरीजालं तदास्या वभौ।
मन्ये चारुनितम्ब शैलकटकान्मूर्द्धाधिरोहार्थकं सोपानं
विधिना कृतं करुणया वेणीभुजंगय्या : स्फुटम्।।१६२।। (गोवि० २/६४)

मध्यप्रगण्डमतुलांगदमुन्मणीनि मध्येप्रकोष्ठमतुलानि च कंकनानि।
तत्सीम्नि काप्यकृत मंगल–पट्टसूत्रं, रत्नप्रकाशि मणि बन्धरुचातिचित्रम्।।१६३।।
(कृष्णा० २/७५)

मुक्तावली–खचित हाटक–कंकणाभ्यां संवेष्टितः स वलयावलि–सन्निवेशः।
ब्रिम्वैर्विधोर्मिलित–भास्करमण्डलाभ्यां तस्याश्चकास्ति नितरामिव सैंहिकेयः।।१६४।।
(गोवि० २/६७)

निजनामांकिता नानारत्नद्युति–करम्विता।
वभावंगुलिमुद्रास्या विपक्षमद–मर्दनी।।१६५।। (गोवि० २/६६)

तुन्दान्तिके मणि–विनिर्मित–तुन्दबन्धं काञ्चीगुणं च तदधो मणिवृन्द–बन्धम।
पादांगुलीषु वररत्नमयोर्मिकाली–मागुल्फमाधृत सुहंसकयुग्ममाली।।१६६।।
(कृष्णा २/७७)

---

(१६२) इन हारों को बाँधने की पट्टडोरी जिसके छोर पर गुच्छा बना हुआ था, इस प्रकार सभी हारों की डोरी ग्रीवा से लेकर पीठ के नीचे के भाग तक लटकती हुई एक पर एक आती हुई इस प्रकार शोभा पाने लगी मानों विधाता ने करुणा कर वेणी रूपा सर्पिणि को नितम्ब रूप पर्वत से मस्तक तक चढ़ने के लिये सीढ़ी का निर्माण कर दिया हो!

(१६३) अब किसी सखी ने उनको कोहनी से ऊपर मणिखचित अंगद एवं कोहनी के नीचे अनुपम मणियों के कंकड़ (कडूले) पहना दिये। उनके पास रत्नों से जगमगाते हुए एवं कलाइ की कांति से अतिविचित्र मंगल पट्ट सूत्र को बाँध दिया।

(१६४) मोतियों के जड़ित स्वर्ण के कंकड़ों से वेष्टित होकर इन्द्रनीलमणि की चूड़ियों की सजावट इस प्रकार शोभा पा रही थी मानो चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब से मिलकर सूर्य मण्डल के मध्य राहु बैठा हो।

(१६५) अन्यान्य भूषणों के गर्व को परास्त करने बाली, नाना प्रकार के रत्नों की प्रभा से जगमगाती 'राधा' नाम से अंकित अंगूठी उँगली में शोभा पाने लगी।

(१६६) एक सखी ने राधारानी के पेट के पास मणिखचित कमरपेटी एवं उसके नीचे मणियों की लड़ियों से युक्त काञ्ची (करधनी) पहना दी चरणों की उँगलियों में उत्तमरत्नों से जटित बिछिये तथा पिंडलियों के नीचे एड़ियों के ऊपर दो हंसक (पायजेब) धारण करा दिये।

नखीशखांघ्रितलाद्युरुशोणिमाप्यहह यावक रञ्जितताम‌गात्।
भवति किं दरदीपज–रोचिषा दिनकृतो न कृतो मनुजैर्महः।।१६७।।

(कृ० भा० ४/६६)

अन्याकाचिदाह–वृथाऽकृथा यावकमंघ्रिपंकजे स्व एव रागोऽस्य दृशां रसायनः।
किन्त्वेक एवास्ति गुणोऽस्य राधिके यः केशवस्यापि च केशरञ्जनः।।१६८।।

(अ० ५/६३)

मञ्जीरयुग्ममतिमञ्जुलरत्नसिद्धं पादाम्बुजोपरि चकार च कापि बद्धम्।
तत्तत् स्वशिल्प – कुशलत्व – निदर्शनाय काचिन्मणीन्द्रमुकुरं पुरतो निनाय।।१६६।।

(कृष्णा० २/७८)

अस्या न्यधादुषसि नर्मदया स्वसख्या मालाकृतस्तनुजयोपहृतं विशाखा।
स्मेरारविन्दवदनाथ करारविन्दे लीलारविन्दमरविन्द–विलोचनायाः।।२००।।

(गोवि० २/१०३)

सा कृष्णनेत्र–कुतुकोचित–रूपवेशं वर्ष्मावलोक्य मुकुरे प्रतिबिम्बितं स्वम्।
कृष्णोपसत्ति–तरलास वरांगनानां कान्तावलकोनफलो हि विशेषवेषः।।२०१।।

(गोवि० २/१०५)

---

(१६७) अहो ! चरणों के नखों का अग्रभाग एवं चरणों के तले अतिशय रूप से लाल रंग के होने पर भी सखियों ने उस पर यावक का रंग लगाया, तो क्या हुआ ! सामान्य ज्योति वाले दीपक की बत्ती से क्या कोई महातेज पुञ्ज सूर्य की पूजा नहीं करता ?

(१६८) उस समय कोई सखी इस प्रकार कहने लगी– हे राधे ! तुमने चरणों पर वृथा ही आलता का रंग लगाया है, यह तो अपनी स्वाभाविक लालिमा से ही सबके नेत्रों को सुख दे रहे हैं, तो इसका एक गुण अवश्य दिखाइ दे रहा है यह केशव के केशों का रञ्जन करेंगें।

(१६६) किसी सखी ने चरण कमलो के ऊपरी भाग में अत्यन्त सुन्दर रत्नजटित नूपूर बाँध दिये, फिर किसी सखी ने किस प्रकार कलाकौशल द्वारा राधारानी की वेषभूषा की है, यह सब दिखाने के लिये उनके सामने एक मणिदर्पण लाकर उन्हें अपना रूप दिखाया।

(२००) तदनन्तर विशाखाजी ने 'नर्मदा' नामक माली की कन्या द्वारा (जो प्रतिदिन प्रातःकाल राधारानी के लिए पुष्प लेकर आती है) लाया गया 'लीला कमल' कमलनयना श्रीराधारानी के हस्तकमल में हँसते–२ प्रदान किया।

(२०१) अब श्रीमती राधारानी दर्पण में प्रतिबिम्बित वेषभूषा से सुसज्जित अपने स्वरूप को जोकि श्रीकृष्ण के नेत्रयुगलों में कौतूहल का उद्दीपन करने वाला था, देखकर श्रीकृष्ण की प्राप्ति निमित्त अत्यन्त चंचल हो उठी, सत्य ही है, श्रेष्ठ नारियों की उत्कृष्ट वेषभूषा अपने प्रियतम को दर्शन कराने एवं उनको प्रसन्न करने के लिए ही होती है। इसी से वे अपने रूप की सफलता मानती हैं।

मल्ललीलादिकं तस्य तन्मध्ये सखिभिः सह।
विलोक्यैव हिरण्यांगी तामायातावदद्द्रुतम्।।२०२।।

गोदोहनादथ विरम्य स रम्यलीलैः सार्द्धं निज प्रियसखैः स्वसमानशीलैः।
अभ्याययौ कुतुकमल्लविलासनित्याभ्यासालयं मणिमयं सकलैकमत्या।।२०३।।
(कृष्णा० २/२०)

प्रत्येकमेव सखिभिः सवयोभिरेतैर्मल्लक्रियामथ भुजाभुजि वीतभीतैः।
स्वस्वौजसः प्रकटनेन सरोषदर्पैश्चक्रेऽपसर्प–परिसर्प–विसर्प–सर्पैः।।२०४।।
(कृष्णा० २/२१)

विश्रम्य किञ्चिदथ सञ्चित–पुण्यवृन्दै, स्तैरेव कैश्चन महागुणवृक्षकन्दैः।
अभ्यञ्जनार्थमनुरञ्जनमञ्जुहासै, रभ्यगंमंगलगृहं प्रविवेश दासैः।।२०५।।
(कृष्णा० २/२२)

नानाप्रबन्ध–बहुबन्धविधौ विदग्धै रभ्यगं मंगलविशेषकलासु मुग्धैः।
तैलेन साधु शुभगन्ध–सुबान्धवेन प्रारम्भि यतदुररीकृतमप्यनेनेन।।२०६।।
(कृष्णा० २/२३)

हिरण्यांगी सखी का आगमन एवं उसके मुख से श्रीकृष्ण की मल्लक्रीड़ा, स्नानादि का वर्णन–श्रवण :

(२०२) गोदोहनोपरांत सखागणों के साथ श्रीकृष्ण मल्लक्रीड़ा करते हैं, जिसका दर्शन कर हिरण्यांगी सखी शीघ्रतापूर्वक राधारानी के पास आकर, उसका वर्णन करती हुई कहने लगी–

(२०३) गौदोहन समाप्त कर श्रीकृष्ण सबकी सम्मतिपूर्वक, सुन्दर रूप से खेलने वाले, अपने जैसे स्वभाव चरित्र वाले, प्रिय सखाओं के साथ, विनोदार्थ किये जाने वाली मल्लक्रीड़ा के नित्याभ्यासार्थ मणिमय मन्दिर (अखाड़ा) में गमन किया।

(२०४) समान उम्र वाले, निर्भीक चित्त सखाओं के साथ, हाथ से हाथ मिलाकर मल्लक्रीड़ा करने लगे। सभी अपने बलवीर्य का प्रदर्शन करते हुए रोष एवं दर्प के साथ, कभी पीछे जाकर, कभी सामने आकर, कभी दोनों पार्श्व में जाकर, हटकर, इस प्रकार का मल्ल लीला कौशल प्रकट करने लगे।

(२०५) इसके पश्चात् कुछ देर विश्राम कर महागुणशाली एवं महाभाग्यवान कुछ सखाओं के साथ तैलमालिश कराने के लिये, प्रेमपूर्वक मधुर–२ हास्य परायण दासगणों के साथ श्रीकृष्ण ने 'अभ्यंगमंगल' गृह में प्रवेश किया।

(२०६) नाना प्रकार के कथोपकथन, एवं रसिकतापूर्ण सुन्दर काव्य रचना में निपुण, पद्य आदि सुनाकर मनोरंजन करते हुए तैलमालिश की कला में कुशल दासगण ने महासुगन्धित तेल द्वारा जो उत्तम रूप से मर्दन करना प्रारम्भ किया– वह भी उन्होंने स्वीकार किया। (अर्थात् प्रेम से मालिश करवाई)

आपादमस्तकमनस्त–समस्त भाग्यैस्तैलेन तैः प्रियसमाज–समाजयोग्यैः।
नातिश्लथं च न दृढ़ं च सुमंगलानि प्रीत्या चिरं ममृदिरेऽथ तदंगकानि।।२०७।।
(कृष्णा० २/२४)

ते कौंकुमेन रजसा घनसारचूर्णैः पूर्णेन चारुमृदुना परिपेष शीर्णैः।
विम्लानभावमथ तैलकृतं हरन्तः कृष्णस्य तानवयवानुदवर्त्तयन्त।।२०८।।
(कृष्णा० २/२५)

केनोचितेन घनसार–सुवासितेन नानाविध–स्फटिक–हेमघटीभृतेन।
केशान् कषाय–कषितान् कलयन् कुमार–दासीगणोऽम्बुजदृशं स्नापयाञ्चकार।।२०६।।
(कृष्णा० २/२६)

काचित् कषायित–कचान् बहुशः कषन्ती काचिन्मृदूनवयवान् मृदु मार्जयन्ती।
भृंगारकेण कतमा सलिलं किरन्ती लेभेतरामतितरामनुरागकान्ती।।२१०।।
(कृष्णा० २/२७)

ज्योत्स्नाभिर्नवनीरदः किमथवा शुक्लेन नीलो गुणः शुद्धस्फटिकरत्नकान्तिसलिलैः किम्वेन्द्रनीलांकुरः।
मुक्ताभिः किमु वा तमालतरुणः स्नातः समुद्भ्राजते किंवा श्यामसरोजमुज्जवलविधुक्षोदैर्मुरारेर्वपुः।।२११।।

(२०७) महाभाग्यशाली एवं प्रियतम श्रीकृष्ण के परिकर में सर्वाधिक योग्य उन भृत्यगणों ने उनकी आपादमस्तक समस्त मंगलमय अंगों को न तो अधिक शिथिल (धीरे या कम शक्ति लगाकर) और न अधिक शक्ति लगाकर (मृदु मधुर भाव से) बहुत समय तक प्रेम पूर्वक मालिश की।

(२०८) तदनन्तर श्रीकृष्ण के समस्त अंगों से तेल की चिकनाइ (चिपचपाहट) दूर करने के लिए अतिसूक्ष्म (बारीकी से पिसा हुआ) कर्पूर चूर्ण एवं मृदुकुंकुम रज से उनका उबटन किया।

(२०६) तदनन्तर कुछ कुमारावस्था की दासीगणों ने श्रीकृष्ण के केशों को आँवला, दधि आदि से मार्जित करके धोया, एवं नाना प्रकार के स्फटिकमणि एवं स्वर्ण निर्मित कलशों में रखे हुए चन्दन, कर्पूर आदि से सुवासित, समयोचित (गर्म या शीतल) जल से कमलदल लोचन श्रीकृष्ण को स्नान कराया।

(२१०) कोई दासी उनके केशों के आमलकी कषाय रस घिस कर बार–२ मलने लगी और कोई उनके सुकोमल अंगों को मृदु–२ मार्जित करने लगी तथा अन्य कोई झारी से जल डालने लगी– इस प्रकार की सेवा करते हुए ये सभी अतिशय रूप से (श्रीकृष्ण के अंगों का दर्शन एवं स्पर्श पाकर) अनुरागकान्ति को प्राप्त हुईं।

(२११) ज्योत्सनापुञ्ज द्वारा नवजलधर, शुक्लता द्वारा नीलिमा, स्फटिकरत्न की कांतिधारा द्वारा इन्द्रनीलमणि का अंकुर, मुक्तामाला द्वारा तरुण तमाल तरु, उज्ज्वल कर्पूर चूर्ण द्वारा नीलकमल स्नान होने पर जिस प्रकार वह सम्यक उद्दीपित (जगमगाने) हो उठता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण की देह कांति स्नान के समय अपूर्व शोभा को प्राप्त हुई।

एवं समाप्य कतमे स्नपनं शुभेन शंखोदकेन शिरसि प्रतिपादितेन।
अंगोच्छनांशुकमनेकमथोपनीय संमार्जनं विदधूरस्य भृशं विनीय।।२१२।।
(कृष्णा० २/२८)

आदौ सुचेल–शकलैर्मृदुलैरशुष्कैः पश्चात् क्रमेण ममृजुः सितसूक्ष्मशुष्कैः।
आपाद–कुन्तलभरं प्रतिसन्धिसन्धि ते मार्जनं विदधिरे प्रणयानुबन्धि।।२१३।।
(कृष्णा० २/२६)

कश्चित् कचान् गतजलान् द्विविधेन वासः खण्डेन साधु विदधे मृदुमन्दहासः।
कश्चित् पटुः कटितटाद्गलदम्बुचेलं चेलान्तरेण विनिनाय कृतावहेलम्।।२१४।।
(कृष्णा० २/३०)

केनापि नूतनमतित्वरयोपनीतं कौषेय–चेलयुगलं द्रुतहेमपीतम्।
केनापि पाणिकमले क्रमतः प्रदत्त–मुत्सार्य्य पूर्वपटमाशु स पर्य्यधत्त।।२१५।।
(कृष्णा० २/३१)

तस्यास्थितस्य रमणीय–मणिचतुष्कं प्रक्षालिताङ्घ्रिकमलस्य लसद्वपुष्कम्।
पश्चाद्गतेन कतमेन कुमार–भृत्ये–नासेवि कुन्तलभरः कुशलेन कृत्ये।।२१६।।
(कृष्णा० २/३२)

---

(२१२) किसी दास ने शुभशंख के जल से उनको अभिषेक कराया। इस प्रकार स्नान समाप्त कर कुछ कोमल अंगोछों द्वारा अत्यन्त विनीत भाव से श्रीकृष्ण के श्रीअंगों को पौंछ दिया।

(२१३) उन दासों ने प्रथम मृदुल, गीले, उत्तम अंगोछे से अंगमार्जन किया, तत्पश्चात् श्वेत, सूक्ष्म, सूखे वस्त्र से चरणों से लेकर मस्तक पर्यन्त प्रत्येक सन्धि स्थान (जोड़ों के भीतर) प्रीतिपूर्वक मार्जित करने लगे।

(२१४) किसी दास ने मृदु–मन्द–हास्य बदन से प्रथम गीले फिर सूखे (दो प्रकार के अंगोछों से) उनके केश कलाप से अच्छी प्रकार जल निकाल कर सुखा दिया, तब किसी निपुण सेवक ने कटि तट के गीले वस्त्र को, सूखे वस्त्र का आवरण देकर, नीचे से हटा दिया, मानो सूखे वस्त्र ने गीले वस्त्र की अवहेलना करते हुए उसे दूर फैंक दिया।

(२१५) तत्पश्चात् अन्य कोई दास अतिशीघ्रपूर्वक गलित स्वर्ण के समान पीले रंग के दो नूतन रेशमी वस्त्र ले आया। दूसरे किसी सेवक ने पहने हुए वस्त्र को हटाकर ये दोनों वस्त्र पहना दिये।

श्रीकृष्ण की वेषभूषा का वर्णन :–

(२१६) श्रीचरण कमलों को धोकर जब श्रीकृष्ण अत्युज्ज्वल रमणीय मणि चौकी पर विराजे, तब किसी केशसेवा निपुण कुमार भृत्य ने पीछे की ओर जाकर केशों को संवारना प्रारम्भ किया।

भूयः प्रसार्य्य परिमृज मुहुः प्रसाध्य, रत्नप्रसाधनिकया बहुशो विशोध्य।
आवृत्य चेल–शकलेन सता द्विफाल बद्धः स कुन्तलभरः प्रभया पफाल।।२१७।।
(कृष्णा० २/३३)

अन्योन्यपालनकृता कतमे चकिम्ना सूक्ष्मातिसूक्ष्मवसनस्य पाण्डरिम्णा।
निर्मोकमोक–परभोगिनिभस्य केशविन्यास एष न हि कस्य दृशोर्विवेश।।२१८।।
(कृष्णा० २/३४)

स्नानाद्रजून् सदलकानथ कुञ्चयित्वा चारुस्वभाव–कुटिलानपि रञ्जयित्वा।
भाले लिलेख तिलकं शशिमण्डलाभं श्रीखण्डकुंकुमरसेन सुजातशोभम्।।२१९।।
(कृष्णा० २/३५)

गारुत्मतेन्द्रमणि–हीरक–पद्मराग–प्रद्योतनं विधूरयन्तमिवाप्यनागः।
अन्यप्रभावरणकारि–मयूरवसान्द्रं श्रीकौस्तुभाभिधमधत्त महामणीन्द्रम्।।२२०।।
(कृष्णा० २/३६)

स्थूलेन मौक्तिकफल–प्रकरेण कृल्प्तान् हारान् दधार गिरगोचरतामवाप्तान्।
कञ्चिद्विशालतर–वक्षसि नाभिकूले कञ्चित् प्रलम्बमथ कञ्चन जानुमूले।।२२१।।
(कृष्णा० २/३७)

---

(२१७) पुनः–२ फैलाकर बार–बार रत्न कंघी से परिमार्जन एवं प्रसाधन पूर्वक उत्तम वस्त्र खण्ड में लपेटकर (सुखाने के लिये) फिर दोनों ओर विभक्त कर फैले हुए केशकलाप से ज्योति की किरणें निकलने लगीं।

(२१८) केशव के श्याम वर्ण के केश एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म श्वेत रंग का वस्त्र, एक दूसरे के परिपोषक (शोभा बढ़ाने वाले) बन गये। केशकलाप देखकर प्रतीत होता था मानो किसी काले सर्प का छोड़ा हुआ खोल ही हो।

(२१९) उनकी अत्यन्त मनोहारिणी अलकें स्वभाव से ही कुटिल होते हुए भी स्नानोपरांत कुछ सीधी हो गयीं। किसी दास ने उनको (कलात्मक रीति से) मोढ़कर घुँघराली बना कर सजा दिया, फिर ललाट पर चन्दन, कुंकुम रस चन्द्रमण्डलाकार सुन्दर तिलक बना दिया।

(२२०) तत्पश्चात् स्वभाव सुन्दर श्रीकृष्ण ने 'कौस्तुभ' नामक महामणि राज को धारण किया, जोकि मरकत, इन्द्रनील, हीरा, पद्मराग आदि की प्रकृष्ट ज्योतिराशि को फीका कर प्रकाश पाने लगी एवं उसकी मनोहारिणि किरण मालाऐं अन्यान्य मणियों की प्रभा को आवृत करने लगीं।

(२२१) उन्होंने स्थूल (बड़े–२) मोतियों से बने अनेक प्रकार हार पहने जिनका वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता। कोई हार विशाल वक्ष पर्यन्त, कोई नाभिकूप और कोई जानुमूल (घुटने के ऊपर) तक लम्बा था।

श्रीकुण्डले मणिमये मकरानुकारे कान्तिप्रभाकृत–कपोलमहः प्रचारे।
श्रीकर्णयोरुपनिनाय जलोपरुद्धे स्नानोत्सवेन विरहस्य स पूर्वसिद्धे।।२२२।।

(कृष्णा० २/३८)

सत्पट्टसूत्र–कृतमञ्जुतर–प्रलम्बौ, सहरत्नपट्टमयमंगलसूत्रचुम्बौ।
गारुत्मतादि–नवरत्नज–बाहुबन्धौ, कश्चिद्वबन्ध वलयौ मणिबन्धसन्धौ।।२२३।।

(कृष्णा० २/३९)

दिव्यांगुरीयकमुदारमनामिकायां तत्पद्मरागमहसां परिणामिकायाम्।
पृष्ठोपसन्न–मणिमुद्रमवर्जनीयं दत्ते स्म कश्चिदधितर्जनि रञ्जनीयम्।।२२४।।

(कृष्णा० २/४०)

नाना मणीन्द्रघटया घटितानुबन्धं पीतांशुकोदर–तटीमनु तुन्दबन्धम्।
माणिक्य–किंकिणिगुणं च कटीरमूले कश्चिद्वबन्ध परिधत्त–लसद्दूकूले।।२२५।।

(कृष्णा० २/४१)

पादाम्बुजोपरि मणीन्द्रघटानुकल्प्तं मञ्जीर–युग्मकमथो नखचन्द्रदीप्तम्।
आधाय कोऽपि मणिदर्पणमत्युदारमास्येन्दुबिम्बमधि सस्पृहमादधार।।२२६।।

(कृष्णा० २/४२)

---

(२२२) किसी दास ने उनको मणिमय मकराकृति कुण्डल दोनों कानों में पहनाये जिनकी कान्ति से कपोल–युगल और अधिक उज्ज्वल (जगमगाने) हो उठे। यह कुण्डल स्नान के समय भीग जाने से उन्हें उतारकर पौंछ कर पुनः धारण कराया (अभिप्राय यह कि कुण्डल पहले से ही पहने हुए थे।)

(२२३) किसी सेवक ने उत्कृष्ट रत्नजटित रेशम से निर्मित मंगलसूत्र, अत्युत्तम रेशम से बनी डोरी जिसमें प्रलम्ब (फुँदना) लगे हैं तथा महामूल्य मणि खचित बाजूबन्द और कलाइ पर वलय (कडूले) धारण करा दिये।

(२२४) तदुपरांत किसी सेवक ने अनामिका उँगली में अत्युत्तम दिव्य अँगूठी पहना दी, किन्तु उँगली की प्रभा से इस अँगूठी में लगी पद्मराग मणि की कान्ति (रंग बदल गया) ही परिवर्तित हो गयी। फिर जिसके पीछे की ओर मणिमुद्रा, जो कि अत्याज्य अर्थात् सर्वथा धारण योग्य है, जटित है ऐसी अंगूठी तर्जनी उँगली में पहना दी।

(२२५) किसी दास ने श्रीकृष्ण के उदर तट पर विविध मणिजटित तुन्दबन्ध (अथवा कमरपेटी) बाँध दी। पहने हुए उज्ज्वल से सुशोभित कटि पर मणिमयी किंकिणि धारण करा दी।

(२२६) किसी भृत्य ने चरणकमलों के ऊपरी भाग में मणियों की पंक्ति से जटित नूपुर धारण कराये जोकि नख–चन्द्र की प्रभा से और अधिक जगमगाने लगे, तत्पश्चात् किसी सेवक ने अत्युत्कृष्ट मणि दर्पण लाकर कौतुक पूर्वक सामने रख दिया।

अत्रान्तरे ब्रजपुरन्दर–सन्निदेश–मादाय कश्चन तदस्य गृहं विवेश।
उचे च कृष्ण ! जनकस्य गिरा बहुभ्यन्त्वं दातुमहस्त्रि गवामयुतं द्विजेभ्यः।।२२७।।
(कृष्णा० २/४३)

श्रुत्वा पितुर्गिरमसौ चिकुरं निबध्य पीतोत्तरीयमपि सम्यगथो विशोध्य।
आचम्य रम्यवदनो गुणरत्नसानू–रामानुजः स्वमनसा विततार धेनूः।।२२८।।
(कृष्णा० २/४४)

गोष्ठेश्वरीप्सिततमो रसवत्प्रपाकः सम्पादितो भवति यावदनेकपाकः।
तावन्न सोढुमभिशक्तवती विलम्बं सा प्राहिणोत् किमपि भोक्तुमथाविलम्बम्।।२२९।।
(कृष्णा० २/४५)

हैयंगवीन–दधि दुग्ध–सरादिभक्ष्यमेतत् समेत–घनसार–रजोऽभिभक्ष्य।
आचम्य च प्रियसखासकृतावलम्ब–स्ताम्बूलमाद मधुराननन–चन्द्रबिम्ब।।२३०।।
(कृष्णा० २/४६)

निशम्येमां वार्त्तां प्रमुदितवती सीधुसदृशीं स्वयं पक्त्वा यन्नो तदशनमसौ कारितवती।
विषन्ना वाष्पाणां हिममिहिकाबिन्दुनिकरं मुमोचेवाक्षिभ्यां जलजयुगतः श्रीकरकणम्।।२३१।।
(संग्रह कर्त्तुः)

---

(२२७) इसी समय किसी दास ने ब्रजराज नन्दमहाराज के आदेशानुसार वहाँ पर आकर कहा– हे कृष्ण ! पिताजी के आदेशानुसार आप ब्राह्मणों के लिए अयुत गायें दान करो।

(२२८) पिता का आदेश पाकर श्रीकृष्ण ने अपने केशों को बाँधा और पीताम्बर धारण कर, आचमन किया और विशुद्ध भाव से, सुन्दर वदन, गुणनिधान श्रीकृष्ण चन्द्र ने मन ही मन धेनुसमूह दान किया।

(२२९) तदनन्तर माता यशोदा अपनी रसोइ में अभीष्टतम (जो–२ अत्यन्त उत्तम पदार्थ बनाना चाहतीं है) एवं रसाल भोज्य वस्तुएं जब तक बन कर तैय्यार हो रहीं हैं, तब तक की देरी को सहन न कर शीघ्र ही अपने पुत्र के भोजन के लिये कुछ स्वल्पाहारार्थ भेज दिया।

(२३०) कर्पूर बिन्दु युक्त माखन, दधि, दुग्ध, और मलाई आदि का भोजन करके प्रसन्न वदन श्रीकृष्ण चन्द्र ने आचमन किया और प्रिय सखा के कंधे पर हाथ रखकर ताम्बूल चबाने लगे।

(२३१) प्रियतम श्रीकृष्ण की इस प्रकार अमृत तुल्य सुमधुर वार्ता सुनकर श्रीराधा परमानन्दिता हुई, किन्तु वे शीघ्र जाकर (नन्दालय) रसोइ बनाकर श्रीकृष्ण को भोजन कराने में समर्थ नहीं हो पा रही हैं, इस कारण से दुःखी होकर नयन कमलों से शिशिर बिन्दुओं की भाँति (ओस के कण) अश्रु बिन्दु गिराने लगीं।

अत्रान्तरे ब्रजपुराधिपयाऽनपाय–वात्सल्य–कल्पलतयाऽतिरयान्निदिष्टा।
आगत्य कुन्दलतिकान्तिकमेतदक्षि–भृंगप्रमोदकृतये कृतिनी व्यराजीत्।।२३२।।

(कृ० भा० ४/१०६)

अन्योन्यदर्शन–समुदगमनस्मिताढ्य–शस्तानुयोग–रभसोन्नति–शीधुवृष्टिः।
सद्यो वभूव यत एव तदा तदालिवृन्दं ननन्द समसौहृद–हृद्यरोचिः।।२३३।।

(कृ० भा० ४/११०)

बृजपुर–परमेश्वरी–प्रसादं, मयि सखि ! वक्ति तवोदयो ह्यकस्मात्।
न शिशिररुचिना विनैव पूर्वा, दिशमधिरात्रि समेति कापि लक्ष्मीः।।२३४।।

(कृ० भा० ५/१)

तदहमनुमिमे निदेश–दम्भात, किमपि कृपामृतमेव सा व्यतारीत्।
यदिद मनुपलभ्य यन्ममात्मा, स्वमपि सखेदमवैत्यनात्मनीनम्।।२३५।।

(कृ० भा० ५/२)

अजनि रसवती–विधापनार्था रसवति ! ते गतिरित्यवैमि नूनम्।
अथ किमितरथा जवादयासीः प्रथमितोऽनुनयन्त्यमुं मदार्याम्।।२३६।।

(कृ० भा० ५/३)

कुन्दलता का आगमन एवं श्रीराधा के साथ नन्दालय को जाना :–

(२३२) इसी समय अक्षय–वात्सल्य कल्पलता बृजेश्वरि माता यशोदा के आदेशानुसार अतिशीघ्र श्रीराधा को नन्दालय लाने के लिये, पुण्यवती–कुन्दलता श्रीराधा के नेत्र भ्रमरों को सुख देने के लिए उनके पास आ गयीं।

(२३३) श्रीराधा एवं कुन्दलता का परस्पर एक–दूसरे को देखकर, उठकर खड़े होकर, हँसते–२ कुशल प्रश्न करना, इससे जो आनंद रूप अमृत वर्षा हुइ उससे वे सब श्रीराधा के सुख से सुख का अनुभव करती हैं एवं उनके हृदगत भावों कों समान रूप से जानने वाली हैं।

(२३४–३५) तब श्रीराधा ने कुन्दलता से कहा– हे सखि ! तुम्हारे अकस्मात आगमन से बृजेश्वरि माता की मेरे प्रति कृपा अभिव्यक्त होती है। देखो रात्रि के समय चन्द्रमा के बिना पूर्व दिशा की शोभा नहीं होती, अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि बृजेश्वरि ने आज्ञा के छल से मुझे करुणा रूपी अमृत दान किया है, जिसके बिना मेरा दुःखित मन, स्वयं को ही अपनी अहितैषी मान बैठा था।

(२३६) हे रसवति ! तुम रसवती (रसोइ) के कार्य के लिये ही मुझे लेने आयी हो, ऐसा मैं समझ रही हूँ, तभी तो तुम पहले मेरी सास के समीप न जाकर, शीघ्रतापूर्वक मेरे ही पास आयी हो।

इति सुदृगुदितामृतं पिवन्ती स्मितसुभगं निजगाद् कुन्दबल्ली।
तदयि सखि ! विधेहि तत्र यात्रा मकृतविलम्बमितः सहालिवृन्दा।।२३७।।
(कृ० भा० ५/४)

किमिह गुरुजनावलेरनुज्ञा–ग्रहण–विधावणुमात्रमस्ति कष्टम्।
यदतुलधनधेनुधान्यवर्षै–रकृत वशां स्वयमेव तां बृजेशा।।२३८।।
(कृ० भा० ५/५)

निरुपधि–परमप्रियोऽसुकोटेरपि निखिलस्य जनस्य गोष्ठभाजः।
ब्रजपति–तनयः समीहते यत् परमिह विप्रतिपत्तिरस्ति कस्य।।२३९।।
(कृ० भा० ५/६)

सखि ! किमपि न वेद तत्सवित्री तदतुलरोचक–वस्तु संजिघृक्षुः।
उचितमनुचितं स्वलाभहानी–निजपरभावभिदा यशोऽयशोवा।।२४०।।
(कृ० भा० ५/७)

पचसि यदपि यश्च तस्य भोक्ता स च तिरयत्यमृतं सदैव दिव्यम्।
इति निखिलपुरेष्वतिप्रसिद्धिस्तव सखि ! कं न चमत्करोति वाढ़म्।।२४१।।
(कृ० भा० ५/८)

---

(२३७) कुन्दलता, सुलोचना श्रीराधा के इन वचनामृत का पान कर हँसते–२ कहने लगीं– अयि सखि ! तुम जब सब कुछ समझ ही गयी हो तो शीघ्र सखीगण के साथ नन्दालय को चलो।

(२३८) तुम्हारे गुरुजनों (सास आदि) से अनुमति लेने में थोड़ा सा भी कष्ट नहीं होगा, क्योंकि अतुल धन, धेनु, धान्य आदि की वर्षा कर ब्रजेश्वरि ने तुम्हारे गुरुजनों को वशीभूत कर रखा है।

(२३९) विशेषतः श्रीकृष्ण के विषय में तो सब बृजवासी उनके अनुकूल हैं और तुम्हारे गुरुजन भी तो उनके अनुकूल ही हैं। समस्त बृजवासियों के तो वे कोटि प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं इसलिये श्रीकृष्ण जिस–२ वस्तु की इच्छा करते हैं उसके लिये कोई भी व्यक्ति आपत्ति नहीं कर सकता।

(२४०) हे सखि ! इस समय माता यशोदा अपने पुत्र की नितान्त रुचिकर वस्तुओं का संग्रह करने के लिए इतनी व्यग्र हो उठी हैं, कि वह उचित, अनुचित, लाभ, हानि अपने एवं पराये का भेदभाव, यश अथवा अपयश किसी बात पर विचार करने में समर्थ नहीं हो पा रही।

(२४१) हे सखि ! तुम जो कुछ सामग्री रसोइ में बनाती हो वह सब स्वर्ग में अमृत को भी तुच्छ करने वाली होती है एवं जो उसका भोजन करता है वह भी अजर–अमर हो जाता है, इस प्रकार का आपका यश समस्त बृजमण्डल में सभी जानते है और सभी सुनकर आश्चर्य करते हैं।

यदवधि कलयाम्बभूव सा त्वां मुनिवर–दत्तवरां वराम्बुजाक्षि !
तदवधि तव पाणिसंस्कृतान्नाशनविरतिं क्वचनाह्नि नास्य चक्रे।।२४२।।

(कृ० भा० ५/६)

जयति यदतिघोरदैत्ययूथं, मृदुलतनुः स्वपरावुभूशुमेषः।
त्वदमल–करपक्वभक्तभुक्ते, रपरमियं मनुते न हेतुमत्र।।२४३।। (कृ० भा० ५/१०)

श्रृणु परमयि तत्त्वमत्र राधे ! यदवगतं सहसान्तरं मयास्याः।
प्रतिदिनमवलोकनं विना ते, शशिमुखि ! खिद्यति सा यथा स्वसूनोः।।२४४।।

(कृ० भा० ५/११)

सुतनुरभिदधेऽवधेहि विज्ञे, सखि ! तदिदं न वदस्ययुक्तमित्त्थम्।
अपितु कुलवतीति वादभाजां, स्फुटमपरांगनगामितेत्युयुक्तम्।।२४५।।

(कृ० भा० ५/१२)

यदपि बत सखीयं रीतिरेवेह लोके तदपि तव वचो नो लंघनीयं कदापि।
अनुनय प्रथमं तां किन्तु युक्त्या हि वृद्धां परिवदति तु या मामाशु लब्ध्वापि रायम्।।२४६।।

(२४२) हे सत्पद्मनयने ! जिस दिन से बृजेश्वरि ने यह सुना है कि तुम्हारे हाथ से निर्मित अन्नव्यञ्जनादि अमृत से भी अधिक सुस्वादु होंगें एवं उनको भोजन करने वाला चिरायु, बलवान एवं शत्रु विजयी होगा। इस प्रकार का वरदान तुमको दुर्वासा ऋषि ने दिया है, उस दिन से वह प्रत्येक दिन ही तुम्हारे हाथ से निर्मित भोजन अपने पुत्र को कराने का प्रयास करती रहती हैं।

(२४३) और उनके मन में यह भी दृढ़ विश्वास है कि अत्यन्त घोर दुर्दमनीय दैत्य समूह को यह कोमल अंग का बालक श्रीकृष्ण जो अनायास ही परास्त कर देता है इसका एकमात्र कारण तुम्हारे विमल हाथों से पकाये गये अन्नादि भोजन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

(२४४) हे राधे ! और भी एक गूढ़ रहस्य की बात सुनो, मैं बृजेश्वरि के हृदय के भाव को जानकर ही इस प्रकार कह रही हूँ वे अपने पुत्र के विरह में (गौचारण आदि जाने पर) जिस प्रकार अत्यन्त दुःखी हो जाती है। हे शशि वदने ! तुमको भी प्रतिदिन न देखकर उनकी वही दशा होती है।

(२४५) कुन्दलता के इस प्रकार के वचन सुनकर अन्तर में आनन्दिता होती हुई भी बाहर से कुछ अस्वीकार का भाव प्रकट करती हुई राधारानी कहने लगी– 'हे सखि ! तुमने जो कहा है वह अनुचित तो नहीं है, परन्तु हे विज्ञे (बुद्धिमती) तुम ही विचार करो जिनकी कुलवती इस प्रकार की ख्याति (उत्तम कुल की बहुए) हैं, उनका दूसरे लोगों के घर जाना (वा जाकर रसोइ बनाना) क्या उचित है ?

(२४६) सखि ! कुन्दलते यद्यपि जगत में कुलवती ललनाओं की यह रीति (पराये घर जाना) अनुचित है तो भी मैं तुम्हारी बात अस्वीकार नहीं कर सकती, मेरी वृद्धा सास पहले तो अर्थलाभ की आशा से मान जावेगी परन्तु पीछे मुझ पर दोष लगाएगी इसलिए प्रथम तुम उसके पास जाकर युक्ति का प्रयोग कर अनुनय करो।

तत सासाद्य जटिलां स्नुषायां कुटिलामपि।
श्रावयामास सन्देशं बृजेश्वर्या विचक्षण।।२४७।। (गोवि० ३/१८)

आकर्ण्य साज्ञां ब्रजराज–राज्ञाः कृष्णात् स्नुषायामपि शंकमाना।
विचिन्त्य शिक्षामथ पौर्णमास्या स्तां कुन्दवल्लीं प्रणयादवादीत्।।२४८।।
(गोवि० ३/१६)

स्नुषेयं मे साध्वी गुणगरिम–माध्वीक मधुरा जनश्छिद्रान्वेषी स खलु चपलो नन्दतनयः।
न चाज्ञावज्ञेया ब्रजपतिगृहिण्या भगवतीवचः पाल्यं वत्से! नटति हृदयं किं नु करवै।।२४६।।
(गोवि० ३/२०)

मातः! सत्यं वदति भवति किञ्च गोपेन्द्रसूनुर्नायं ज्ञेयः खल समुदयैर्यादृशः श्रावितोऽस्ति।
किन्तु प्रोद्यद्द्युमणिरिव सद्धर्मपद्मे खलालीघूके चायं वृजिनतिमिरे घोषसन्तोषकोके।।२५०।।
(गोवि० ३/२१)

माधुर्य्यं तून्मदयति जगद्यौवतं तस्य तस्माद् भीतिनीतिस्तव नववधू–पालनञ्चापि युक्तम्।
मा शंकिष्ठास्तदयति यथा दृक्पथं नास्य साध्व्या–
श्च्छायाप्यस्याः स्वयमहमिमां द्राक तथा तेऽर्पयामि।।२५१।। (गोवि० ३/२२)

---

(२४७) तब कुन्दलता, जटिला के (जोकि अपनी पुत्रवधु के प्रति कुटिला थी) पास जाकर बृजेश्वरि माता का आदेश सुनाया।

(२४८) जटिला कुन्दलता के मुख से बृजेश्वरि की आज्ञा सुन, कृष्ण से अपनी पुत्रवधू के विषय में शंकाकुलचित्त होते हुए भी, पौर्णमाशी देवी के उपदेश का स्मरण कर प्रेमपूर्वक कुन्दलता से कहने लगी।

(२४६) हे वत्से कुन्दलते! मेरी यह पुत्रवधू बड़ी सतीसाध्वी है, गुण–गौरव मधुमयी है (अर्थात् गुण शालिनि अत्यन्त मधुरा है) लेकिन लोग तो सब छिद्रान्वेषी है और उधर नन्दनन्दन अत्यन्त चंचल हैं, अब बृजेश्वरि की आज्ञा का कभी अनादर मत करना भगवती पौर्णमाशी के इन वचनों का पालन भी मुझे करना है अतः इस समय मुझे क्या करना चाहिए तुम ही बताओ ?

(२५०) तब कुन्दलता कहने लगी– हे माता! तुमने जो कहा वह सत्य है किन्तु दुष्ट लोगों के मुख से जैसा आपने सुना है, नन्दनन्दन उस प्रकार चंचल नहीं हैं। सूर्य जिस प्रकार कमलों को प्रकाशित करता है और पेचक (उल्लू) अंधे हो जाते हैं, एवं चक्रवाक (चकवा चकवी) आनन्दित हो उठते हैं; उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी धार्मिक जनों के प्रिय एवं दुष्ट लोगों को अंध बनाने वाले (अप्रिय) एवं बृजवासियों को तो आनंददान करने वाले एवं दुःखहारी हैं।

(२५१) देखो– श्रीकृष्ण का माधुर्य तो जगत की नारियों को उन्मत्त करने वाला है यह तो उसका स्वाभाविक गुण ही है इसलिए उनसे तुमको भय या शंका होनी भी उचित है और वधू के धर्म की रक्षा भी तुम्हारे लिए युक्तियुक्त ही है, किन्तु तुम निश्चिन्त रहो, तुम्हारी बहू की छाया भी श्रीकृष्ण के नेत्रों के सामने नहीं जावेगी, इस प्रकार की व्यवस्था कर मैं उसे अपने साथ लेकर जाऊँगी और पुनः अतिशीघ्र तुम्हारे पास पहुंचा जाऊंगी।

त्वं पुत्रि ! साध्वी प्रथितासि गोष्ठे, त्व्य्यार्पितेयं सरला वधूस्ततः।
स लोलदृष्टिः किल नन्दसुनु नैंनां यथा पश्यति तद्विधेयम्।।२५२।।
(गोवि० ३/२३)

वधूमथाहूय जगाद वत्से, ब्रजानया नन्दवधू समीपम्।
निष्पाद्य तस्याः प्रियमेहि तूर्णं, सहानयेवाद्य रविस्त्व्यार्च्यः।।२५३।।
(गोवि० ३/२४)

(राधेति) तयेति दिष्टा हृदि साभिनन्दिता प्यनिच्छुवद्गन्तुमुवाच तां सखीम्।
अस्तीह कृत्यं न च मे यियासुता गृहं गृहं नेंगति यत् कुलांगना।।२५४।।
(गोवि० ३/२५)

बृजपति–गृहिणी–गिरं चिराभ्य, र्थन–विनयानुनयानुबद्धमूलाम्।
कति निरसितुमत्र शक्नुमस्त–त्तव भगवान् हरिरेव रक्षितास्तु।।२५५।।
(कृ० भा० ५/२१)

अवति जगदिदं स्वधर्मपालीः किमिह सतीः स जहाति लोकनाथः ?
इति किल भवतीं तदीयपाणौ सुमुखि ! समर्प्य निराकुला भवेयम्।।२५६।।
(कृ० भा० ५/२२)

(२५२) तब जटिला कहने लगी– हे पुत्रि कुन्दलते ! इस बृजमण्डल में तुमको सती साध्वी रूप से सभी सन्मान देते हैं, अतएव इस सरला वधू को मैं तुम्हारे हाथों में देती हूँ, देखना वह चपलनन्दकुमार इस्को देखने न पाये।

(२५३) तत्पश्चात् राधारानी को बुलाकर जटिला कहने लगी– वत्से ! इस कुन्दलता के साथ बृजेश्वरि के पास जाओ और उनका प्रिय कार्य (रन्धन) समाधान करके कुन्दलता के साथ शीघ्र ही घर को आ जाना और इसके साथ ही फिर तुमको सूर्य पूजा करने जाना है।

(२५४) श्रीराधा, जटिला के इस आदेश को सुनकर, मन में आनंदित होने पर भी बाहर से अनिच्छा प्रकट करती हुई कुन्दलता से कहने लगीं– 'मुझे घर में बहुत काम है, मेरी वहाँ जाने की इच्छा नहीं है, सत्कुल की वधुएं घर–घर नहीं घूमती रहतीं।

(२५५) तब जटिला कहने लगी–हे पुत्रि ! राधे ! बृजपति–गृहिणि के अनुनयविनय से की गयी याचना को भला मैं कहाँ तक अस्वीकार कर सकती हूँ। तुम कोई चिंता मत करो। भगवान श्रीहरि ही तुम्हारी रक्षा करेंगें।

(२५६) हे सुमुखि ! जो जगत के पालक हरि इस जगत की रक्षा करते हैं, वे क्या तुम्हारे जैसी स्वधर्म का पालन करने वाली अबला की उपेक्षा करेंगें ? इस प्रकार विचार कर ही मैं तुमको इस कुन्दलता के हाथों सौंपकर निश्चिन्त हो रही हूँ।

इति गुरुजरतीगिरा समुद्यत्स्मित–लवसंवृतिपेशलाः सखीः स्वाः।
विकसिदसित–नेत्रकोणभङ्ग्या किमपि निगद्य वभूव सापि तूष्णीम्।।२५७।।
(कृ० भा० ५/२३)

कृताग्रहोच्चैः पुनरार्ययासौ, कौन्द्या वभाषे कृतहस्तकर्षम्।
भीतासि किं साध्व्यहमस्म्यवित्री, त्युच्चालिता फुल्लतनुः प्रतस्थे।।२५८।।
(गोवि० ३/२६)

कृष्णस्य प्रातराशाय संस्कृत लड्डुकादिकम्।
आदाय ललितामुख्याः सख्योऽप्यनुययुः सखीम्।।२५९।।
(गोवि० ३/२७)

अथ निजभवनाद्विनिर्यती सा तनु–वसनाभरण–च्छविच्छटाभिः।
व्यधित मणिविचित्र–शातकौम्भीं पुर–विशिखां सुरभीकृताखिलाशा।।२६०।।
(कृ० भा० ५/२७)

जननिवह–गतागति–प्रवृत्तौ, दरविमुखी सरणेः श्रितैकपार्श्वा।
अवनतदृगवाचकास्यपदम, परि परिगुण्ठन–माधुरी प्रपेदे।।२६१।।
(कृ० भा० ५/२६)

---

(२५७) जटिला के इस प्रकार के वचनों का कुछ अन्य अर्थ विचार करने वाली सखीगणों के मुख पर जो मृदुमंद हास्यरेखा दिखायी देने लगी मानो उनको छिपाने के लिए चतुरा श्रीराधा अपनी सखियों के प्रति श्यामनेत्रों के कोण से कुछ कहती हुई (तुम्हारा मनोरथ पूरा हुआ) चुप हो गयीं।

(२५८) तब जटिला अतिशय आग्रह करती हुई राधारानी को नन्दालय जाने की अनुमति देने लगी। कुन्दलता राधा रानी का हाथ पकड़ कर कहने लगी– 'हे साध्वी तुमको भय क्यों हो रहा है, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी'। यह सुनकर श्रीराधा पुलकितांगी होकर नन्दालय जाने को प्रस्तुत हो गयीं।

(२५९) ललितादि सखीगण श्रीकृष्ण को प्रातः भोजन के लिये बनाये हुए लड्डू आदि लेकर श्रीराधारानी का अनुगमन करने लगीं।

मार्ग में कुन्दलता के साथ हास–परिहासादि वर्णन :

(२६०) श्रीमती राधारानी जब अपने घर से बाहर आयी, तो अपनी देह की कांति, वस्त्रों की झलक एवं आभूषणों की छटा से संकीर्ण (कम चौड़ा, सकरा) मार्ग को मणियों की रंग बिरंगी कांति एवं सुवर्णमय बना दिया एवं अपने अंग की सौरभ से समस्त दिशाओं को सुगन्धित कर दिया।

(२६१) रास्ते में जिधर अन्यान्य जनगण गमनागमन कर रहे थे उधर से कुछ हटकर, मुख फिराकर, नेत्र नीचे कर, अवगुण्ठन से मुखकमल को ढककर, धीरे–२ चलती हुई श्रीराधा अत्यन्त मधुर प्रतीत हो रहीं थीं।

वीक्ष्याध्वनि परानन्द–चलद्वक्षःपटाञ्चलाम्।
सवयस्यां कुन्दवल्ली प्रेम्णा परिजहास ताम्।।२६२।। (गोवि० ३/२८)

मूल्यानीतोपसार्यास्त्रिचतुरादिवसान् प्रोष्य सन्ध्यागतस्ते
भर्त्ता गोभिः स्वगोष्ठे घटयितुमखिलां रात्रिमेव न्यवात्सीत्।
वक्षः प्रोद्यन्नखांकावलिचितमधर स्पष्टदन्तक्षतो यत् तत्
साध्व्यास्ते सतीत्वं समुचितमधुना व्यक्तमुल्लालसीति।।२६३।। (गोवि० ३/२९)

अन्तर्गूढस्मितोत्फुल्ल–किञ्चित् कुञ्चित लोचनाम्।
स्वसखीं ललितालोक्य कुन्दवल्लीमथाब्रवीत्।।२६४।। (गोवि० ३/३०)

करकफलधियास्याः कानने धृष्टकीरः स्तनमनु विनिविष्टः पक्वबिम्ब–भ्रमेण।
अदशदधरमुच्चैस्तन्नखाचोटितं त–द्धृदयमिदममुष्याः किं वृथा शंकसे त्वम्।।२६५।।
(गोवि० ३/३१)

सखीवचः स्मारित्–कृष्णसंग, लीलोच्छलत्कम्पतरंगितांगीम्।
तां वीक्ष्य पद्माकरमीक्षमाणा, जगौ पुनः कुन्दलता सहासम्।।२६६।।
(गोवि० ३/३२)

---

(२६२) मार्ग में सखीगण से घिरी हुई श्रीराधा का परमानन्द–वश वक्षस्थल का वस्त्राञ्चल कुछ सरक गया जिसे देखकर प्रेम से परिपूर्ण कुन्दलता उनके प्रति कुछ परिहास करने लगी।

(२६३) हे राधे ! तुम्हारा पति अभिमन्यु मूल्य से क्रय करके लायी हुई ऋतुमती धेनु समूह को प्रथम गर्भ धारण कराने के लिए (वृषवृन्द का संग कराने के लिये) तीन चार दिन से प्रवास कर कल रात्रि को ही आकर अपने गोष्ठ में ही समस्त रात्रि रहे हैं (अर्थात् तुम्हारे पास वो आये नहीं) फिर भी तुम्हारे वक्षस्थल पर स्पष्ट नख चिन्ह समूह एवं अधरों पर दन्तक्षत दिखाई दे रहा है अतः हे साध्वी ! यह सब तुम्हारे सतीत्व का सम्यक रूप से परिचय दे रहा है।

(२६४–६५) यह सुनकर ललिता, अपनी सखी राधा को अन्तर में गूढ़हास्य से युक्त उत्फुल्लता एवं बाहर कुछ नेत्रों को बांका कर (मानो रोष प्रकट कर रही हो) देखते हुए, कहने लगीं–विगत कल वन में एक धृष्ट शुक पक्षी दाड़िम का फल समझ कर इनके स्तनयुगल पर बैठ गया और उसने ही बिम्वाफल के भ्रम से अधरों का दंशन (चोंच से काट लिया) कर दिया वहीं चिन्ह देखकर वृथा तुम किसी अन्य प्रकार की आशंका क्यों कर रही हो?

(२६६) ललिता के वचनों से श्रीकृष्ण के साथ विगत रात्रि जो विलासादि हुआ उसका स्मरण कर श्रीराधा के अंगों में कम्प तथा पुलक से मानो आनंद की तरंगें उठने लगीं जिसे देख सरोवर की ओर दृष्टि करके मानो पद्मिनि को कह रही हो, कुन्दलता पुनः हास्य करती हुई कहने लगीं।

आनन्दकम्पोत्तरलासि मुग्धे ! किं भो वृथा पद्मिनि ! कुन्दवल्ल्याः।
न देवरस्त्वां मधुसूदनोऽसौ भ्राम्यन् पुनः पास्यति भुक्तमुक्ताम्।।२६७।।

(गोवि० ३/३३)

कर्ण–शर्मद–सन्नर्म–भर्मकुण्डलनिर्मितौ।
कर्मठां कुन्दबल्लीं तां विशाखाह विचक्षणा।।२६८।।

(गोवि० ३/३४)

स्वेनेऽनुरागं परमुद्वहन्ती, फुल्लापि मृद्वी भ्रमरात् सुलोलात्।
सत्पदमीनयं सखि ! कुन्दवल्ली, भृंगानुजाद्भी–तरला चकम्पे।।२६९।।

(गोवि० ३/३५)

अथानन्तरम्–क्वचन च पथि निर्जने कदाचित् स्फुटमितरेतर वाग्विलास–रंगैः।
यदि चलति तदा कुतः क्व यामी–त्यपि न हि वेदनगोचरीकरोति।।२७०।।

(कृ० भा० ५/२७)

---

(२६७) हे पद्मिनि ! हे मुग्धे (दूसरे अर्थ में राधे) तुम अब अधिक आनंद से कम्पित होकर वृथा चंचल मत होओ। मधुसूदन (भ्रमर दूसरे अर्थ में कृष्ण) जो कुन्दलता के देवर (दूसरे अर्थ में आनंद प्रदान करने वाले) अपना चाञ्चल्य प्रकाश कर तुम्हारा उपभोग कर चुके हैं, अब पुनः तुम्हारा रसपान नहीं करेंगें।

(२६८–२६९) तत्पश्चात् परम चतुरा विशाखा जो कर्ण रसायन, सुन्दर परिहास रूप कुण्डल निर्माण में सुनिपुणा है, कुन्दलता से कहने लगीं–हे सखि! कोमला एवं सुभोमना पद्मिनि जैसे अपने पति के प्रति परम उत्फुल्ला एवं अनुरागयुक्ता होते हुए भी चंचल भ्रमर से भयभीत हो जाती है, उसी प्रकार यह हमारी सखि भी सत्पद्मिनि की भाँति कुन्दलता के साथ विलासकारी सुमद्र (कुन्दलता के पति, दूसरे अर्थ में भ्रमर) के छोटे भाई (कृष्ण) के भय से कम्पित हो उठी हैं।

(२७०) इस प्रकार जब श्रीराधा निर्जन पथ में परस्पर वाग् विलास (हास परिहासमय कथोपकथन) करतीं हुई चल रहीं थीं, उस समय वे कहाँ से कहाँ जा रहीं हैं, आनन्दातिरेक से यह भी भूल गयीं। पथ में चलते–२ जब श्रीराधा, श्रीकृष्ण के अनुराग से व्याकुलचित्त होने लगीं तब तुंगविद्या सखी उनको परमानंद प्रदान करने वाला नंदीश्वर पुर दिखाकर कहने लगी–

कृष्णानुरागेण विहस्तचित्ता, मानंदराशिं जनयन्तमेव।
सन्दर्शयामास पथि व्रजन्तीं, नन्दीश्वरं तां किल तुंगविद्या।।२७१।। (संग्रहकर्त्तुः)

रसालपनसार्जुन–क्रमुक नारिकेलासनैः, पलाश–वट–पर्कटी–खदिर–बिल्व–जम्वादिभिः।
मधूकगिरिमल्लिकाबकुलनागपुन्नागकै, रशोकबक, पाटली कनकचम्पकैश्चम्पकै।।२७२।।
(आ० १/१६१)

तमालनवमालिका–कनकयूथिका–यूथिका–कुरुण्टक–लवंगिका–दमनकाति मुक्तादिभिः।
अपि स्थल सरोजिनिविचिकिलादिभिः कन्दलीप्रियंगुतुलसी मुखैरपि विचित्रवीरुद्गणैः।।२७३।।
(आ० १/१६३)

सितासितविलोहितोत्पलसरोज–कह्लारकै रथांग–बक–सारसैः कुरर–हंस–कारण्डवैः।
विराजित–तरंगकैर्विमलवारिभिर्वापिका–तड़ागसरसीमुखैः परिवृतानि तोयाशयैः।।२७४।।
(आ० १/१६४)

हम्बारवैरिह गवामपि बल्लवानां, कोलाहलैर्विविध वन्दिकलावतां तैः।
संभ्राजते प्रियतया बृजराजसूनो–गोवर्धनादपि गुरुर्बृजवन्दितो यः।।२७५।।
(स्तवा० विलाप० ६०)

सखि ! निजपुरतो विदूरमागा, वृजपतिसदम समीपवर्ती वृत्तम्।
तदयि नयनचातकाभिलाषः, फलति तवाश्विति संप्रति प्रतीहि।।२७६।।
(कृ० भा० ५/२८)

तुंगविद्या के मुख से नन्दीश्वर का वर्णन :–

(२७१–७४) रसाल, कटहल, अर्जुन सुपारी, नारियल, असन, पलाश, बट, पर्कटि, खदिर, बेल, जामुन, मंधूक, गिरिमल्लिका, बकुल, नाग, पुन्नाग, अशोक, बक, गुलाब, स्वर्णचम्पक, चम्पक, तमाल, नवमल्लिका, स्वर्णयूथिका, जूही, कुरुन्टक (भिण्डी), लवंग, दमनक, अतिमुक्ता, स्थलकमल, मल्लिका, कन्दली, प्रियंग, तुलसी, आदि विचित्र लताओं से चारों ओर से घिरा हुआ, श्वेत, नील, लाल कमल, कल्हार आदि से सुशोभित चकवा, बगुला, सारस, कुररी, हंस, कारण्डव आदि नाना प्रकार के पक्षियों से निनादित, विमल तरंगों से सुशोभित सरोवर, कुण्ड, तड़ाग आदि से वेष्टित, नन्दीश्वर पुर के वनप्रदेश का दर्शन करो।

(२७५) यहाँ की गऊओं का हम्बारव, गोपगणों का कोलाहल वन्दीजन एवं विविध कला का प्रदर्शन करने वालों का शोरगुल से मुखरित यह नन्दीश्वर पुर वृजराज नन्दन का अत्यंत प्रिय, समस्त बृज द्वारा वन्दित श्रीगिरि गोवर्धन से भी महिमा में गुरु होकर विराज रहा है।

(२७६) हे राधे ! तुम अपने घर से दूर आ गयी हो, देखो बृजपति महाराज का भवन निकटवर्ती है तुम्हारे नयन चातक की अभिलाषा शीघ्र ही फलित (पूरी) होगी यह विश्वास करो।

इति निगदित—मात्रतः स्वसख्या, सपदि सवेपथु—जाड्यविप्लुतांगीम्।
प्रसभमभिदधार चेतयन्ती, किमपि जगाद् च तां तदैव कौन्दी।।२७७।।

(कृ० भा० ५/२९)

सुमुखि ! किमधुनैव विक्लवाभू, र्नयनपथामिलितेऽपि कृष्णचन्द्रे।
अवगममखिलं सतीत्वमाप्तं, तव सवयः सद एव यत् प्रमाणम्।।२७८।।

(कृ० भा० ५/३०)

धृतिमिह हृदि धर्त्तुमीशिषे नो यदपि तदप्यवले ! क्षणं दधीथाः।
गिरिवर युगभर—धारणाय यत्ते, गिरिधर एव मयाद्य योजनीयः।।२७९।।

(कृ० भा० ५/३१)

गिरिधरदिश एव शंकया या, जनि विधुराद्य सखी महासतीयम्।
परिवदसि बलादिमामविज्ञे ! तदपि नियोक्ष्यसि हा पुनस्तमस्याम्।।२८०।।

(कृ० भा० ५/३२)

त्वयि मुहुरियमर्पितायिया यत् तदुचिमेव विधत्ससेऽद्य भद्रम्।
स्वमिव सखि ! परं जनं न विद्धि—त्युदितवती ललिता पुनस्तयोचे।।२८१।।

(कृ० भा० ५/३३)

---

(२७७) यह सुनते ही श्रीकृष्ण की स्फुर्ति (मानो सामने खड़े हो) से श्रीराधा के श्रीअंग में अकस्मात कम्प एवं जड़ता (जड़ के समान हो गयीं) के कारण वे भाव से भरकर अचेतन सी हो गयीं। उनकी इस प्रकार की दशा देखकर कुन्दलता उनको सम्हालती हुई सचेत करते हुए कहने लगी।

(२७८) नन्दालयपुर के नीचे द्वारस्थ कुहिम (द्वार के दोनों ओर बनी तिवारी) में श्रीकृष्ण के दर्शन :— हे सुमुखि! श्रीकृष्णचन्द्र के नयन गोचर न होने पर ही तुम इतनी व्याकुल हो गयी हो, तुम्हारे सतीत्व के विषय में सबकुछ मैं समझ गयी हूँ, अब इस विषय में तुम्हारी सब सखियाँ भी साक्षी हैं।

(२७९) हे अबले ! यद्यपि तुम हृदय में धैर्य धारण करने में असमर्थ हो रही हो तथापि मेरी बात मानकर कुछ क्षण तो धैर्य धारण करो। यदि कहो कि वक्षोजद्वय रूपी पर्वत का भार वहन कर ही मैं व्याकुल हो रही हूँ, इसके ऊपर और अधिक धैर्य का भार वहन करने को कह रही हो तो सुनो, गिरिद्विय का भार धारण करने के लिये मैं गिरधारी को ही आज नियुक्त कर दूँगी।

(२८०) यह सुनकर ललिता कहने लगी— हे अविज्ञे (बुद्धिहीन) कुन्दलते ! हमारी यह महासती सखी गिरधारी जिस दिशा में हों उधर देखने से ही भय से कातर हो जाती है, तथापि तुम इनको दुःसह निन्दाजनक दोष लगा रही हो तथा इनका दुःख दूर करने के लिए श्रीकृष्ण को ही नियुक्त करना चाहती हो।

(२८१) आर्या (पूज्या) जटिला ने तुम पर विश्वास कर बार—बार समझाकर तुम्हारे हाथों में इसे सौंपा है, तुम तो बहुत अच्छी तरह उस दायित्व को निभा रही हो। हे सखि ! तुम अपने जैसा अन्य नारियों को मत समझना। ललिता की बात सुन कुन्दलता कहने लगी।

अलमलमनया गिरा विदूरे, कलय पुरः पुरतोरणोपकण्ठे।
स्फटिक–घटितरत्न–चित्रितास्था, न्यभिनव–कुट्टिमगं हृदेककाम्यम्।।२८२।।
(कृ० भा० ५/३४)

सरसमुषसि दुग्धनैचिकीकः, सह–सवयाः कृतमलरंगकेलिः।
अवगत–भवदालि–यानवार्त्ता, क्षुभितहृदागत एष भाति पश्य।।२८३।।
(कृ० भा० ५/३५)

बृजपुर–ललना–कुलोन्मदिष्णु, करणपटुच्छविमण्डलोपगूढः।
मधुरिम–धुरयैव किं त्रिभंगि, कृततनुरुच्चलदाम–मादितालीः।।२८४।।
(कृ० भा० ५/३६)

श्रित–मृदुतर–गण्ड–कुण्डलाध्या, पनपर–ताण्डव–पण्डिताक्षियुग्मः।
पवनधुत–पटांग गौरनील, द्युतिलहरी–स्तिमितीकृताखिलाशः।।२८५।।
(कृ० भा० ५/३७)

---

(२८२) ललिते ! बस, बस अब ज्यादा वागाडम्बर (बनावटी बातें) की आवश्यकता नहीं है, देखो सामने पुरतोरण के निकट स्फटिकनिर्मित अभिनव कुहिम (चबूतरा) में तुम्हारे हृदय के अभिलषित देवता के दर्शन करो।

(२८३) तुम्हारे प्रिय नागर शिरोमणि, प्रातःकाल आनन्दपूर्वक गायों को दुहाकर और सखागण के साथ मल्लक्रीड़ा आदि समापन कर, तुम्हारी सखी इसी मार्ग से आवेंगीं, अतः उनके दर्शन की उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

(२८४) हे राधे ! देखो तुम्हारे प्रियतम श्रीकृष्ण की बृजपुरललनाओं को उन्मत्त करने वाली श्रीअंग की कांति मानो उनका आलिंगन कर रही है। अंगों के माधुर्य के अति उत्कृष्ट प्रवाह ने ही मानो उनको त्रिभंग (तीन स्थानों से टेढ़ा) बना दिया है। अहो ! इनकी चंचलायमान (हिलती हुई) वनमाला की सौरभ ने भ्रमर कुल को उन्मत्त बना दिया है।

(२८५) इनके सुकोमल कपोलों पर झूलने वाले कुण्डलों को मानों ताण्डव (नृत्यकला में पण्डित अथवा अति सुचंचल) कला में कुशल नेत्र युगल अद्भुत नृत्य की शिक्षा दे रहे हैं और देखो – मृदुमन्द वायु से हिलते वाले पीतवसन की गौरकांति और श्रीअंग की स्वाभाविक नीलकांति की किरणें मिलकर दशों दिशाओं को स्निगध कर रही हैं अर्थात् गंगा यमुना की (गौर नील) दोनों धाराऐं मिलकर प्रयाग की सृष्टि करती हुई, स्नान करने वालों की समस्त अभिलाषए पूर्ण कर रही हैं।

प्रियसख भुजशीर्ष्णि राजदुद्यत्, करिकर–निन्दकधाम–वामबाहुः।
निजरुचि–विजिताव्जघूर्णनैक, व्यसनवशेतर पाणिरेष ऐष्टै।।२८६।।
(कृ० भा० ५/३८)

इति गिरमथ रूपमाधुरीं तां, यदि चषकीकृत–कर्णनेत्रयुग्मा।
अपिवददरमोहतस्तदा तत् प्रसृमर सौरभमाश्ववोधयत्ताम्।।२८७।। (कृ० भा० ५/३६)

पुलकनिवह–कम्पसम्पदश्रु, स्तुति–कलिलापि धृतिं दधत्यवादीत्।
सखि ! किमपरमस्ति वर्त्म पादौ, न मम पुरश्चलतोऽस्य किं करोमि।।२८८।।
(कृ० भा० ५/४०)

गुरुपरवशतैव दोषदूरी, करणपटुस्तव किं भिया ह्रिया वा।
सपदि सवयसेति बोध्यमाना, लघु लघु गन्तुमियेष सा तदग्रे।।२८६।।
(कृ० भा० ५/४१)

किमिदिमिति परस्परावलोको, च्छलित–महामधुरिम्णि यत्तयोस्ताः।
स्वमतुलतरसि न्यमज्जयन्ना, लय इति वर्णयितुं न गीरपीष्टे।।२६०।।
(कृ० भा० ५/४२)

---

(२८६) और देखो तो, तुम्हारे मोहन नागर अपने प्रिय सखा सुबल के कंधे पर करि कर (हाथी की सूंढ़) बिनिन्दि, सुन्दर बामभुजा स्थापित कर और बांये हाथ में अपनी कान्ति को विजय करने वाला लीलाकमल अनवरत घुमाते हुए, कामिनिगण को वश में करने के लिए ऐश्वर्य को प्रकाशित कर रहे हैं।

(२८७) कुन्दलता के इस वचनामृत को कर्णचषक (प्याले) तथा श्रीकृष्ण के महामधुर रूपामृत को नयन चषक द्वारा पान कर श्रीराधा महामुग्ध हो गयीं तब श्रीकृष्ण के श्रीअंग से निकलने वाली सुगन्ध जब उनकी नासिका में प्रविष्ट हुई तब उनको कुछ बाहर की सुध आयी।

(२८८) उस समय राधारानी का श्रीअंग पुलक, कम्प एवं नेत्र अश्रुपूर्ण हो उठे फिर भी धैर्य धारण कर कहने लगी, 'हे सखि ! बृजराज के महलों में प्रवेश करने का क्या कोई अन्य पथ नहीं है ? इनके सामने होकर इस मार्ग से मैं नहीं जा पाऊँगी।

(२८६) यह सुनकर ललिता सखी कहने लगी-- हे राधे गुरुजनों की परवशता ही तुम्हारा सब दोष दूर करेगी अतएव भय अथवा लज्जा की कोई बात नहीं है (अभिप्राय – कि तुम गुरुजनों का आदेश पालन करने यहाँ आयी हो अतः इस मार्ग से जाने पर कोई तुम्हें दोष नहीं देगा) इस प्रकार समझाये जाने पर श्रीराधा धीरे–धीरे श्रीकृष्ण के सम्मुखवर्ती पथ से ही चलने लगीं।

(२६०) उस समय परमानुरागी युगल एक–दूसरे के दर्शन कर इस प्रकार चमत्कृत हो उठे जैसे कभी किसी को पहले देखा न हो, उससे दोनों के श्रीअंगों से एक अतुलवेगवती महामाधुर्य तरंगिणि समुच्छलित होकर बहने लगी, जिसमें सब सखीगण डूब गयीं। अहो ! इस दृश्य का वर्णन करने में तो स्वयं सरस्वती भी असमर्थ हो जावेंगी।

अधदमन–चकोर–चन्द्रिकास्ताः, शशिवदनापि पपौ मुहुः पिपासुः।
गिरिधर–मुदिरोपरीह चात–क्यतनुरसं प्रववर्ष सेति चित्रम्।।२६१।।
(कृ० भा० ५/४३)

अथ निज निज मूर्ध्नि सव्यहस्तो, न्नमन–कलाकलितावगुण्ठनास्ताः।
अपनतनयनाञ्चली–विलीढ, प्रियचरणाब्जसुधा ययुस्तदग्रात्।।२६२।।
(कृ० भा० ५/४४)

हरिरपि परिवृत्य तन्नितम्ब, द्युतिनिहितेक्षणपंकजोऽवतस्थे।
वरतनुततिरप्यतीत्य तदेगा, पुरमवगुण्ठनमीयदस्खति स्म।।२६३।।
(कृ० भा० ५/४५)

सखि ! भवदवलोकजातहर्षं, सपदि स चम्पक मालया वटुस्तम्।
सुखिनमकृत यत्तदिंगितज्ञा, भवसि न वेत्युदिताह सा स्वसख्या।।२६४।।
(कृ० भा० ५/४६)

---

(२६१) अहा ! कितने आश्चर्य का विषय है ! श्रीकृष्ण रूप अद्‌भुत चकोर की चन्द्रिका को शशि वदना (चन्द्रमा) श्रीराधा पिपासिता होकर बारम्बार पान करने लगीं, (चन्द्रमा की चन्द्रिका का पान चकोर करता है, किन्तु यहाँ चकोर की चन्द्रिका को चाँद पान कर रहा है, यह एक आश्चर्य) दूसरा आश्चर्य श्रीश्याम जलधर के ऊपर राधा चातकी कन्दर्परस की वर्षा कर रही है (चातक के ऊपर ही जलधर वर्षा करता है किन्तु यहाँ यह भी विपरीत दशा हो रही है।)

(२६२) तदनन्तर राधारानी तथा उनकी सखीवृन्द बांये हाथ को ऊँचा कर अपने–२ अवगुण्ठन से मस्तक को चातुरी पूर्वक ढकते–२ नीचे की हुई दृष्टि के कोण से प्रियतम के चरण कमलों की सुधा का लेहन (पान) करते हुए उनके सामने ही चलने लगीं।

(२६३) जब ये कुछ दूर तक चली गयीं तो श्रीहरि ने भी अपना मुख घुमाकर इनके नितम्ब की कान्ति पर अपनी दृष्टि को स्थिर कर दिया (अर्थात् इनको ही पीछे की ओर देखते रहे) इन सुन्दरिगणों ने भी जब नन्दालय के प्रांगण को पार कर लिया तो सिर से अपने अवगुण्ठन को कुछ सरका लिया।

तुंगविद्या के साथ श्रीराधा का परिहास :

(२६४) अब तुंगविद्या सखी श्रीराधारानी के साथ परिहास करती हुई कहने लगी– हे सखि! तुम्हारा दर्शन कर नागरगुरु महानन्दित हुए यह देखकर मधुमंगल ने उनके गले में जो चम्पकमाला पहनायी उसका अर्थ तुम्हें कुछ समझ आया क्या ? (अर्थात् चम्पकमाला पहनाने के बहाने मधुमंगल ने श्रीकृष्ण के साथ तुम्हारे मिलन का संकेत दिया है) राधारानी तब तुंगविद्या के इन वचनों का तात्पर्य समझ कर कहने लगीं।

त्वमसि खलु यथा तथान्वमासी, र्निजसदृशीर्यतसे परा विधित्सुः।
इति दर–विकसत्स्मिता भ्रमद्भू, स्तवरितमवाप महापुरान्तरं सा।।२६५।।
(कृ० भा० ५/४७)

स्फटिक–घटित कुड्यमीड्यभर्मो–ज्जवलपटलं पवि–कीलकं कवाटम्।
मणिमय–ललनाधृत–प्रदीप, व्रतति–नगद्विजराजि–राजितद्वाः।।२६६।।
(कृ० भा० ५/४८)

द्युमणि–किरणदीप्तरत्नकुम्भ, ध्वज–नटकेकिवृताग्र–पौरटाट्टम्।
सुरवर–पुरनिन्दि यत्र शन्दं, विलसति मन्दिरवृन्दमिन्दिराढ्यम्।।२६७।।
(कृ० भा० ५/४६)

मसार–प्राचीरं मरकतगृहं हेमपटलं, प्रवाल–स्तम्भालि–स्फटिकवृति वैदूर्य्यबड़भिः।
महानीलेन्द्राट्टं विमलकुरुविन्दोपलमहो, प्रतीहारं नानाकृति जित–विमानावलिपुरम्।।२६८।।
(आ० १/१५२)

---

(२६५) हे सखि ! तुम जैसी हो, वैसा ही तुम दूसरों का भी अनुमान लगाती हो। जैसे तुम उन चंचल नागरेन्द्र के वक्षःस्थल पर चम्पकमाला जैसी शोभा पाती हो वैसा ही क्या अन्य सबको बनाने की चेष्टा करती हो। इस प्रकार मंदहास्यपूर्वक भ्रूधनु कम्पित करते हुए प्रणयरोष पूर्वक श्रीराधा कुछ शीघ्रतापूर्वक चलती हुई महापुर में प्रविष्ट हुई।

नन्दालय में ब्रजेश्वरी के साथ श्रीराधा का मिलन प्रसंग :–

(२६६) नन्दालय के समस्त मन्दिर समूह (कमरों) की दीवारें स्फटिकमणि, छतें महामूल्य सुवर्णरचित, दरवाजे हीरे के कील लगे हुए तथा दरवाजों के दोनों ओर मणि–प्रदीप–धारिणि मणिमय नारीद्वय एवं मणि निर्मित लताओं से जड़ित मणिमय वृक्षों के ऊपर मणिमय पक्षी विराज रहे हैं।

(२६७) सुवर्ण की अट्टालिका के ऊपर के भाग में सूर्य की किरणों से चमचमाते हुए रत्नकुम्भ के ऊपर ध्वज और उसके ऊपर कृत्रिम नृत्य करता हुआ मयूर शोभा पा रहा है। इस पुर के मध्य सुरेन्द्रपुर (स्वर्ग) विनिन्दी परम–सुखद एवं निखिल शोभा–सम्पत्तियुक्त मन्दिर (बड़े–बड़े कमरे) समूह विराजित हैं।

(२६८) इस पुर की प्राचीर (बाहर का परकोटा) इन्द्रनीलमणि से बनी हुई गृह सकल मरकतमणि विरचित, छत्त सुवर्णमय, स्तम्भ सकल प्रबालमणि–रचित, वृति स्फटिकमय, छज्जे वैदूर्य्य मणि रचित, अट्टालिकाए महानीलकान्तमणि, घटित, प्रकाण्ड–२ (विशाल) द्वार सकल पद्मरागमणि द्वारा रचित, जोकि विविध रंगों से चित्रित, इस पुर के सामने बड़े–२ राजगृहों की शोभा भी फीकी मालूम पड़ती है।

कुड्ये यस्य मणि–प्रवेकरचिते शिल्पक्रिया–कल्पितैः प्रत्यासज्य शुकैः समं, गृहशुकेष्वासादित–स्थेमसु।
सप्राणाः किममी इमे किमथवेत्युन्मीलतः संशयादातुं दाड़िमबीजकानि सुचिरं मुह्यन्ति मुग्धांगनाः।।२९९।।

(आ० १/१५३)

मुख्यप्रकोष्ठे चतुरालयेऽस्या, भाण्डार–गेहं वरुणस्य दिश्यम्।
श्रीकृष्णवासः शुभदक्षिणस्थः, श्रीरामधामोत्तरदिश्युदेति।।३००।।

(ब्रज० २/१९)

प्राच्यां गृहं तादृशमेव यत्र, प्राच्यां स यस्यान्यतर–प्रकोष्ठे।
स्वपुत्रभद्राय निजेष्टदेवं, नारायणं सेवते एव नन्दः।।३०१।।

(ब्रज० २/२०)

कोषालयस्यान्वित–दक्षिणाशे, कृष्णस्य धाम्नः शुभपश्चिमेऽस्ति।
या पाकशालाद्वयमध्य एव, विश्रामधामानुरु राधिकायाः।।३०२।।

(ब्रज० २/२१)

कृष्णस्य धाम्नोऽन्वितदक्षिणांशे, पाकालयस्यापि विराजमानः।
आराम आस्ते सरसी च यत्र, रहो मनोज्ञं बहुगेहवेदि।।३०३।।

(ब्रज० २/२२)

---

(२९९) श्रेष्ठ–२ मणियों द्वारा निर्मित इसकी दीवारों पर शिल्पकला की निपुणता से चित्रित शुक पक्षीगणों को देखकर गृहपालित वास्तविक शुक भी मानो उनके जैसा अनुकरण करते हुए निस्पन्द (गतिहीन) भाव धारण कर लेते, जिसे देख सुन्दरीगण इस प्रकार संशय में पड़ जाती कि इनमें से कौन से जीवित है और कौन से चित्रित। यह निर्णय करने में और उनको अनार के दाने खिलाते हुए मुग्ध सी होकर, कुछ क्षण खड़ी ही रह जाती थीं।

(३००) इस पुर के चारों ओर मुख्य–२ प्रकोष्ठ हैं। जिनमें पश्चिम में भण्डारघर, शुभ दक्षिण दिशा में श्रीकृष्ण का निवास गृह एवं उत्तर में श्रीबलरामजी का भवन।

(३०१) इसी प्रकार पूर्व दिशा में मुख्य प्रकोष्ठ में, श्रीकृष्ण के भवन के समान ही श्रीनन्दमहाराज का भवन है, इस भवन के पूर्व में एक ओर प्रकोष्ठ है जिसमें नन्दबाबा अपने पुत्र के मंगलविधान के लिये अपने इष्टदेव श्रीनारायण की अर्चना करते हैं।

(३०२) भण्डारघर से संलग्न दक्षिण की ओर एवं श्रीकृष्ण के भवन के पश्चिम ओर जो पाकशाला है इन दोनों के बीच श्रीराधारानी के विश्रामार्थ एक छोटा सा गृह (कमरा) है।

(३०३) श्रीकृष्ण का भवन एवं पाकशाला जहाँ मिलती हैं उसके दक्षिण में पुष्पोद्यान एवं सरोवर है जहाँ पर श्रीराधाकृष्ण के मिलनार्थ कई गृह एवं वेदी बनी हुई हैं।

अथ समुपसेदुषीं सखी भिर्हरि, जननी निजवेशम भासयन्तीम्।
अमनुत भुवनत्रयैकलक्ष्मी, मुदितवतीं मुदिताऽर्कमित्रपुत्रीम्।।३०४।।

(कृ० भा० ५/५२)

तत्रागतां चरणयोः प्रणतां स्वदोर्भ्यामुत्थाप्य तां हृदि निधाय मुकुन्दमाता।
आघ्राय मूर्ध्नि मुदिता जननी परार्द्धा स्निग्धा चुचुम्ब मुखमश्रुमुखी ततोऽस्याः।।३०५।।

(गोवि० ३/३७)

प्रत्येकमालिंगय्य च तद्वयस्याः, पप्रच्छ साऽव्याहतभव्यमस्याः।
व्यग्रा सुतस्याशन–साधने द्राक्, सस्नेहमेताः पुनरावभाषे।।३०६।।

(गोवि० ३/३८)

न सुतासि कीर्तिदायाः, किन्तु ममैवेति तथ्यमाख्यामि।
प्राणिमि वीक्ष्य मुखन्ते, कृष्णस्येवेति किं त्रपसे ?।।३०७।।

(उ० ४/४५)

मधुर–मृदुल–मोदकादि किञ्चित् सममुपवेश्य सखीजनैर्बलात्ताम्।
द्रुतहृदया घनिष्ठयाऽऽशयित्वा भृशमुपलाल्य निनाय पाकशालाम्।।३०८।।

(कृ० भा० ५/५५)

---

(३०४) सखीगण सह वृषभानुकुमारी को अपने गृह को ज्योतिर्मय बनाते हुए त्रिभुवन की असाधारण शोभा की अधिष्ठात्री देवी के रूप में उदित होते हुए देखकर, माता यशोदा परम आनन्दिता हो उठीं।

(३०५) नन्दभवन में प्रवेश कर श्रीराधारानी ने यशोदाजी को प्रणाम किया। असीम स्नेहयुक्त मुकुन्द जननी ने प्रफुल्लित होकर अपनी दोनों भुजाओं को उठाकर हृदय से लगा लिया और मस्तक सूँघकर उनका मुख चुम्बन करने लगीं।

(३०६) इस प्रकार यशोदाजी ने राधारानी की प्रत्येक सखी का आलिंगन किया और फिर राधारानी की कुशलप्रश्नादि कर शीघ्र ही उनको श्रीकृष्ण के लिए भोजन बनाने का आदेश देती हुई व्यग्रचित हो, स्नेहपूर्वक कहने लगीं–

(३०७) मिष्ठान्न, पक्वान्नादि बनाने के लिए यशोदाजी का निर्देश :– हे वत्से ! लज्जा क्यों करती हो? तुम कीर्तिदा की कन्या नहीं हो, मैं सत्य कह रही हूँ मेरी ही कन्या हो। तुम्हारे मुखारविन्द का दर्शन कर, श्रीकृष्णमुखदर्शन तुल्य ही आनन्दलाभ कर मैं जीवित हूँ।

(३०८) तदनन्तर माता यशोदा ने स्नेहाद्र होकर बहुत आग्रह कर उन सबको बैठाकर मधुर, मृदुल मोदकादि कुछ स्वल्पाहार धनिष्ठा द्वारा भोजन कराया और पुनः उन सबको बहुत लालन करती हुई पाकशाला में ले गयीं।

विविध–मधुर–भक्ष्योत्पादने लब्धवर्णा ब्रजभुवि किल यूयं विश्रुता मिष्टहस्ताः।
तदिह कुरुत पुत्रयः ! साधु भक्ष्याणि यत्नाद्दररुचिरपि वत्सः सस्पृहं मे यथात्ति।।३०६।।

(गोवि० ३/३६)

उपलावणिकं त्वेकाः काश्चित् कुरुत दाधिकम्।
सार्पिष्कमपरा यूयं वत्साः शार्करिकं पराः।।३१०।। (गोवि० ३/४०)

सरस–रसवतीसत्प्रक्रिया–पण्डितासि त्वमिह रसवतीं मे याहि राधे ! प्रयत्नात्।
जननि ! बलजनन्याधिष्ठितां मिष्टमन्नं रचय सह तयैव व्यञ्जनान्युत्तमानि।।३११।।

(गोवि० ३/४१)

वटकममृतकेलिं साधयातिप्रयत्नात् सरस–मसृणमन्यं पुत्रि ! कर्पूरकेलिम्।
मधुरममृतकोटेर्यत्र कृष्णः सतृष्णास्त्रिजगति न हि कश्चित् त्वामृते यस्य वेत्ता।।३१२।।

(गोवि० ३/४२)

यस्यामुच्चैलालसाढ्यः सुतो मे तां पीयूषग्रन्थिपालीं च कृत्वा।
कर्पूरैलाद्यान्वितपानके त्वं यत्नाद् वत्से ! धेहि पञ्चामृताख्ये।।३१३।।

(गोवि० ३/४७)

---

(३०६) हे पुत्रिगण ! नाना प्रकार सुमधुर भोजनपदार्थ बनाने में तुम सब परम सुचतुरा हो और मिष्टहस्ता (तुम्हारे हाथ का गुण है कि वस्तु सुंदर मीठी बनती है) हो, इस प्रकार की तुम्हारी बृजमंडल में ख्याति (नाम) है। अतएव मेरा पुत्र अल्परुचि (खाने में कम रुचि वाला) होते हुए भी जिस प्रकार रुचिपूर्वक अधिक भोजन करे, उस प्रकार तुम उत्तम से उत्तम भोज्य पदार्थ बनाकर तैयार करो।

(३१०) तुममें से कोई नमकीन, कोई दही से बने, कोई घी में पकाये और कोई मीठे भक्ष्य पदार्थ तैयार करो।

(३११) हे राधे ! इस जगत में रसमय रसोई की परिपाटी में तुम ही सबसे अधिक जानने वाली (चतुरा) हो। अतएव हे पुत्रि ! तुम बलदेव जननी रोहिणी द्वारा सब तैयारी की गयी रन्धनशाला में जाकर, प्रयत्नपूर्वक उनके साथ मिलकर, उत्तम से उत्तम मिष्ठान्न और व्यंजन बनाकर प्रस्तुत करो।

(३१२) और हे वत्से ! तुम अति प्रयत्नपूर्वक अमृत से भी सुमधुर सुरसाल एवं सुकोमल 'अमृतकेलि' और 'कर्पूरकेलि' नामक बड़े बनाकर तैय्यार करो जिनको मेरा कृष्ण बहुत स्वाद से भोजन करता है इस प्रकार के बड़े (वटक) बनाने की विधि, त्रिभुवन में तुम्हारे बिना और कोई नहीं जानता।

(३१३) इसके अतिरिक्त हे वत्से ! जो 'पीयूषग्रन्थि' नामक मिष्ठान्न है जिसे मेरा कृष्ण अत्यंत प्रेम से भोजन करता है वे पीयूषग्रन्थि सकल तैय्यार कर कर्पूर–इलायची आदि युक्त पंचामृत के रस में डुबोकर रख दो।

त्वं विधेहि ललितेऽम्ब ! रसालां त्वञ्च षाड़वमिहाशु विशाखे !
त्वञ्च भोः शिखरिणीं शशिलेखे पुत्रि ! चम्पकलते ! मथितं त्वम्। ।३१४ । ।
(गोवि० ३/४४)

आमिक्षां त्वं पुत्रि ! संसाध्य तस्या–स्तत्तद्द्रव्यैर्योगपाकप्रभेदैः।
तत् मेदान् तुंगविद्ये ! विधेहि त्वं मत्स्यण्डीपानकान्यम्ब चित्रे ! । ।३१५ । ।
(गोवि० ३/४५)

त्वं खण्डमण्डानि च रंगदेवि ! त्वं क्षीरसारान् विविधान् सुदेवि !
वासन्ति ! शुभ्रा मृदुफेनिकास्त्वं, त्वं मंगले ! कुन्डलिकां विधेहि। ।३१६ । ।
(गोवि० ३/४६)

कादम्बरी ! त्वं कुरु चन्द्रकान्ती, स्त्वं लासिके ! तण्डुलचूर्णपिण्डीः।
त्वं शष्कुलीः कौमुदि ! भूरिभेदा–स्त्वमिन्दुपिण्डानि मदालसेऽम्ब!! ३१७ । ।
(गोवि० ३/४७)

शशिमुखि ! वटकानि त्वं विधेहि प्रयत्नादधिवटकमुखानि प्राज्य–माधुर्यभाञ्जि।
प्रणय सुमुखि ! रम्याः शर्करा–पट्टिकास्त्वं मणिमति ! बहुभेदांस्त्वञ्च पिष्टान्नपूपान्। ।३१८ । ।
(गोवि० ३/४८)

---

(३१४) हे मातः (प्यार पूर्वक) ललिते ! तुम रसाला बनाओ। हे विशाखे तुम शीघ्र ही 'षाड़व' (पानक वा पेय पदार्थ) बनाकर प्रस्तुत करो, हे शशिलेखे ! तुम 'शिखरिणी' एवं हे पुत्रि चम्पकलते! तुम मठा तैय्यार करो।

(३१५) हे पुत्रि तुंगविद्ये ! तुम आमिक्षा (छैना) बनाकर यथोचित द्रव्यों के साथ उसे अच्छी तरह मिलाकर उससे कई प्रकार के पकवान रचना करो। हे चित्रे ! तुम मिश्री का पानक (शरबत) तैय्यार करो।

(३१६) हे रंगदेवि ! तुम खण्डमण्ड (पीठा, मिठाई) हे सुदेवि ! तुम विविध प्रकार खीरसा, हे वासन्ति ! तुम शुभ्रवर्ण की कोमल फेनि, हे मंगले ! तुम (कुण्डलिका) जलेबी, रचना करो।

(३१७) हे कादम्बरी ! तुम चन्द्रकान्ति (चन्द्रकला नामक मिठाई) हे लासिके ! तुम चावल के आटे के लड्डू, हे कौमुदि ! तुम नाना प्रकार की शष्कुली (गुंजिया), एवं हे मदालसे ! तुम चन्द्राकार शुक्लवर्ण इन्दु नामक पिष्टक (पीठा) बनाकर प्रस्तुत करो।

(३१८) हे शशिमुखि ! तुम यत्नपूर्वक बहुत से दही–बड़े तथा अन्य प्रकार के बड़े बनाकर तैय्यार करो, हे सुमुखि! तुम सुन्दर चीनी के मेवापाक, हे मणिमति! चावल के आटे से विविध सुन्दर मीठे पिष्टक (पीठे) बनाकर तैय्यार करो।

विधत्स्व भोः काञ्चनवल्लि ! वत्से ! गोधूमचूर्णोद्भव–लड्डुकानि।
मनोहराख्यानि मनोरमे ! त्वं त्वं मौक्तिकाख्यानि च रत्नमाले ! ।।३१६।।

(गोवि० ३/४६)

सुभृष्ट–निस्तुष–तिलैर्मोदकान् कुरु माधवि !
तथा तिल–कदम्बाख्याः सतिलाः खण्डपट्टिकाः।।३२०।। (गोवि० ३/५०)

लाजान् धानाश्च संभृष्टान्, पृथुकान् घृत–भर्जितान्।
कृत्वा विन्ध्ये ! सिता–क्वाथैः समुद्गान् कुरु मोदकान्।।३२१।।

(गोवि० ३/५१)

रम्भे ! करम्भं कुरु शातकुम्भ, कुण्ड्यां सुरम्भाफल–शर्कराद्यैः।
निष्पीड्य पक्वाम्ररसं मनोज्ञे ! सिताघनक्षीरयुतं विधेहि।।३२२।।

(गोवि० ३/५२)

उत्त्थापितं यत्तुमया मथित्वा, प्रातः सुगन्धापयसो दधीनि।
तदिष्टगन्धं नवनीत–पिण्डं , हैयंगवीनं कुरु भोः किलिम्बे।।३२३।।

(गोवि० ३/५३)

स्वयं दुग्ध्वा बृजेन्द्रेण प्रहितं धवलापयः।
पानार्थमम्बिके मन्दं 'त्वं श्रुतं कुरु वत्सयोः'।।३२४।। (गोवि० ३/५४)

---

(३१६) हे वत्से कंचनलते ! तुम आटे के लड्डू, हे रत्नमाले ! तुम मोतीचूर के लड्डू बनाकर प्रस्तुत करो।

(३२०) हे माधवि ! तुम तिलों को भूनकर, कूटकर तिलों के लड्डू बनाओ, हे तिलकदम्ब! तिल की गजक आदि नाना प्रकार पदार्थ बनाकर तैय्यार करो।

(३२१) हे विन्ध्ये ! तुम लाज (खील) भुने जौ, चिड़वा, मूँग आदि घी में तलकर चीनी मिलाकर मोदक बनाकर तैय्यार करो।

(३२२) हे रम्भे ! तुम पके हुए केले, चीनी मिलाकर स्वर्णभाण्ड में करम्भ (दही में मिलाकर शक्तू) तैय्यार करो। और हे मनोज्ञे ! तुम पके हुए आम के रस को निचोड़कर उसमें चीनी और घनादूध मिलाकर (आमरस) बनाकर रख दो।

(३२३) हे किलिम्बे ! प्रतिदिन उषाकाल में सुगन्धा नामक गाय के दूध से जो दही जमाया है उसे मथकर नवनीत (पिण्ड) गोलाकार निकालकर तुम उसका घी तैय्यार करो।

(३२४) हे अम्बिके ! बृजराज ने स्वयं धवला गाय को दुहकर जो दूध भेजा है तुम उसे आवर्तन (औटा) (गर्म करके) रखो, गोष्ठ से आकर रामकृष्ण उसको पीयेगें।

ऋजीषदर्वी निवहैः परीतां, मृद्दारु कुण्ड्यादिक–भाजनैश्च।
चुल्लीचयाढ्यां मम सिक्तलिप्तां, तद्दुग्धशालां ब्रजताशु बालाः।।३२५।।
(गोवि० ३/५५)

नानोपकरणानि त्वं तानि तानि धनिर्ष्ठके !
निष्कास्य तत्तद्भाण्डेभ्यः पात्रेष्वाधाय दापय।।३२६।। (गोवि० ३/५६)

तत्तत् पदार्थां स्त्वरितं तुलस्या, सहानया रंगणमालिके त्वम्।
आनीय कोषालयतोऽस्मदीया, द्दासीगणैर्दापय तत्र तत्र।।३२७।। (गोवि० ३/५७)

आम्रातकाम्रफलपूर–करीर–धात्री–लिम्पाक–कोलि–रुचकादिफलानि कामम्।
तैले चिरं सलवणे किल सन्धितानि मूलान्यथार्द्रक–मुखानि च रोचकानि।।३२८।।
(गोवि० ३/५८)

मत्स्यण्डिका–रसचिरोषितपक्वचिञ्चा–धात्री रसाल–वदरी–शकलानि तद्वत्।
निष्कास्य भोस्त्वमिह मन्थनिकाकुलेभ्यः कृत्वा नयेन्दुमुखि ! काञ्चन–भाजनेषु।।३२९।।
(गोवि० ३/५९)

शन्दे ! शुभे भरणि पीवरि मिष्टहस्ते, चुल्लीचयोपरिधृतातुलमन्थनीषु।
दुग्धानि भारिकगणोपहृतानि गोष्ठा, द्वत्साः ! शनैः श्रपयताशु निधाय यूयम्।।३३०।।
(गोवि० ३/६०)

---

(३२५) हे पुत्रिगण ! पिष्टक आदि बनाने की दर्वी, (पलटा, छन्नी, कलछी आदि) मिट्टी तथा लकड़ी (काष्ठ) से बने कुण्डी (दही जमाने की कूँडी आदि पात्र) जल से सम्यक प्रकार धोकर रक्खे हुए, तथा गोबर से लिपी पुती बहुत से चूल्हों से युक्त मेरी यह दुग्धशाला में तुम आकर देखो।

(३२६) हे धनिष्ठे ! तुम नाना उपकरण, काम में आने वाले पात्र, भाण्ड (बड़े–२ बर्तन) में से निकालकर इनको प्रदान करो।

(३२७) हे रंगनमालिके ! तुम तुलसी को साथ लेकर दासियों द्वारा जिस–२ वस्तु की जहाँ–२ आवश्यकता है उसे वहाँ–वहाँ पहुँचा दो।

(३२८–२९) हे चन्द्रमुखी ! बड़ा आँवला, आम, नींबू, टैंटी, छोटा आँवला, बड़े नींबू, बेर, आदि अदरक, मूली जो बहुत दिनों से तेल लवण तथा अन्य मसाले डालकर अचार बनाकर रक्खे हुए है, इसके अतिरिक्त मिश्री को पकाकर बहुत दिनों से डुबाकर रखी हुई इमली, आम, बेर आदि के मुरब्बे भाण्ड (पात्रों) से निकालकर स्वर्णपात्र में रखकर ले आओ।

(३३०) हे शन्दे ! हे शुभे ! हे भरणि ! हे पीवरि ! हे मिष्ट हस्ते ! तुम सब भारवाही गणों (दूध के बड़े–२ पात्रों को भरकर लाने वाले) द्वारा लाये गये दूध के पात्रों को चूल्हों के ऊपर बड़े–२ कढाबों में डालकर इषत् (धीरे–२) औटाओ (गर्म कर गाढ़ा करो)।

कान्तभुक्तावशिष्टं संभुज्य तु जातशर्मिकाम्।
आयातां स्व–समीपे तां राधामाह सलालनम्।।३३१।।

सरसिजमुखि ! कीर्त्तिदैककीर्त्ते ! पचनकला–चतुरा कृतासि धात्रा।
तदयि रसवतीं प्रविश्य पाकं कुरु ललितादिसखीकृतेतिकृत्यम्।।३३२।।

(कृ० भा० ५/५६)

शशिमुखि ! शरदां शतं जयैवं, सुखय मनोनयने ममेत्युदित्वा।
अनयत सुमनोहरास्तदालीः, शमतुलवत्सलतालता नताः सा।।३३३।।

(कृ० भा० ५/५४)

गोष्ठेश्वरीं समभिवाद्य विशेषनम्रा तत्पाणिपद्मधृतपाणिरतीव कम्रा।
आसाद्य रामजननीं प्रणनाम याता–मध्यक्षतां पचनकर्मणि साभिजाता।।३३४।।

(कृष्णा० २/८४)

कैलासशैलकनिभं दधती स्वकान्त्या, नीलांशुका प्रणयिनी हि सदात्र राधा।
एहीति दोः प्रसरणेन मुहुर्वदन्ती, शिश्लेष तां समुखचुम्बमसौ हसन्ती।।३३५।।

---

(३३१) इधर धनिष्ठा द्वारा (श्रीकृष्ण के अधरामृत को मिलाकर) दिये गये मिष्ठान्नादि को पाकर श्रीराधा आनन्दितमन से यशोदाजी के पास आयीं और वे राधा का लालन करती हुइ उनसे कहने लगीं।

(३३२) हे कमलवदने ! कीर्तिदाकीर्तिदायिनि ! राधे ! पाकशास्त्र में सुनिपुणा बनाकर विधाता ने तुम्हारी रचना की है। तुम इस पाकशाला (रसोई) में प्रवेश कर पाक करो। ललिता आदि सखीगण सभी तुम्हारे साथ सहयोग करेंगीं।

(३३३) हे चन्द्रवदने राधे ! तुम शतवर्ष आयुपर्यन्त जययुक्त होकर मेरे हृदय एवं नेत्रों के आनन्द का वर्धन करती रहो तत्पश्चात् सब सखीवृन्द ने भी यशोदाजी के चरणों में प्रणाम किया और उन्होंने सबको आशीर्वाद देकर उनका आलिंगनकर उन्हें सुखी किया उस समय वे (सखीगण) सब इस प्रकार शोभा पा रही थी मानो यशोदा रूप वात्सल्यलता के सुन्दर पुष्प हो।

राधारानी का माता रोहिणी के साथ रसोई बनाना :–

(३३४) विनयादि गुणों से अतीव सुशोभिता श्रीराधारानी ने माता यशोदा को प्रणाम किया तब माता ने अपने हाथ से उनके दाहिने हाथ को लेकर पाककार्य की अध्यक्षा रोहिणी के पास ले गयीं और राधारानी ने उनको भी प्रणाम किया।

(३३५) कैलाशपर्वत के समान शुभ्र कान्तिमती नीलवस्त्र धारण किये, सर्वदा श्रीराधा के प्रति स्नेहमयी श्रीरोहिणी माता ने तब बार–२ आओ, आओ कहकर हँसते हुए, बाहु प्रसारण कर श्रीराधा का आलिंगन कर मुख चुम्बन किया।

ताभ्यां महानसमुपेत्य च पाकशाला–पालीः स्मितेन मृदुना वचसा च बाला।
सम्मान्य मान्यचरिता मुमुदे मितानि पाकक्रियोपकरणानि विलोक्य तानि।।३३६।।
(कृष्णा० २/८५)

कुष्माण्डकालु–कचु–मानक–कन्द–तुम्बी–वार्त्ताकु–मूलक–पटोल–फलानि शिम्बी।
डिण्डीश–वारणवुषामफलान्यनीचा–रम्भाविशेष–नवगर्भ–नवीनमोचाः।।३३७।।
(कृष्णा० २/८६)

वास्तूक–मारिष–पटोलशिखाः कलायवल्ली शिखाश्चणकाग्रशिखाः प्रधाय।
तुम्बीशिखाश्च मृदुलाः सहपोदिकाग्रा–न्यालोक्य सैक्षत सखीः सरसाः समग्रा।।३३८।।
(कृष्णा० २/८७)

यद् येन येन विधिना रुचिरत्वमेत्य यद् व्यञ्जने यदुपयुज्यत इत्यवेत्य।
ताभिर्महानसचरीभिरमूनि तानि तत्रत्प्रकारमथ कुट्टित–कर्त्तितानि।।३३९।।
(कृष्णा० २/८८)

एला–लवंग–मरिचार्द्रक–जात्यजाजी–जातीफलत्वच–सुलांगलि–शस्यराजीः।
सिद्धार्थतण्डुल–निशा–दलितांश्च मासान्, केचिज्जनाः पिपिषुरब्जदृशामशेषान्।।३४०।।
(कृष्णा० २/८९)

पिष्ट्वा सुवर्णपुटिकासु शुभप्रभावै–राच्छादितास्वनुचरीघटया सरावैः।
सुस्थापितानि वसनोपरि पाकलीला–रम्भे चकार हृदयं निरवद्यशीला।।३४१।।
(कृष्णा० २/९०)

---

(३३६) श्रीराधा, माँ यशोदा एवं रोहिणी के साथ रसोई में आ गयीं। मान्यचरित्रा (जिनके चरित्र का सभी सम्मान करते हैं) श्रीराधा ने रसोई घर में लगी हुई दासियों के प्रति मृदु हास्य एवं मीठे वचनों से उनका सम्मान किया और यथास्थान पर रखे हुए अपरिमित उपकरण आदि को देखकर बहुत आनन्दित हुई।

(३३७) कुष्माण्ड, आलू, मान (कोचू) ओल, घीया, बैंगन, मूली, परवल, सैंम, ढैड़स, (टिंडे) कच्चा केला, उत्तम रम्भा, केले के फूल (मोचा) थोड़ (केले के बीच के डण्ठल) इत्यादि।

(३३८) मटर का साग, चने का साग, कोमल घिया, पुदीना इत्यादि के प्रति दृष्टिपात कर रसमयी राधारानी ने सखीगण को यथोचित व्यंजन बनाने के लिए इंगित कियां।

(३३९) जो तरकारी जिस–२ रीति से सुन्दर बनती है ओर जिस–२ व्यंजन के उपयुक्त है, दासीगण उनको उसी प्रकार छेदन (अमनिया कर) छीलकर, बनाकर प्रस्तुत करने लगीं।

(३४०) इलायची, लौंग, मिर्च, अदरक, जायफल, जीरा, जैत्री, नारियल, सफेद सरसों, चावल, हल्दी, धनिया आदि बृजसुन्दरीगण पीसने लगीं।

(३४१) पीसकर उन्होंने छोटी–२ सोने की कटोरियों में वस्त्र द्वारा ढककर रख दिये, तब निर्मल चरित्रा राधारानी ने रसोई के कार्य में अपना मन एकाग्र कर लगाया।

आवश्यकाभरण–वेश–लसत्प्रतीका, धौतांघ्रि–पाणिकमला सहरोहिणीका।
वभ्राज सा वरमहानस वेदिकायां, श्रद्धाय कौतुकवती पचनक्रियायाम्।।३४२।।

(कृष्णा० २/६१)

दीप्तासु रामजननींगिततोऽनलेन चुल्लीषु चारुतर–दारु–समुज्जज्वलेन।
आरुरुहन्नखिल–लोचन–चित्रजैत्री–स्तास्ताम्ररीति–रजताचित–पाकपात्रीः।।३४३।।

(कृष्णा० २/६२)

जज्वाल स स्वयमफुत्कृतिवीतधूम–मग्निः स्वयं जलमभूदनभूमभूम।
यद् यत्र यत्र लवणं च तथा प्रमाणं, तत्तत्र तत् करतेलऽकुरुत प्रमाणम्।।३४४।।

(कृष्णा० २/६३)

अगरु–सरल–देवदारु–दारु, ज्वलन–परिश्रित–चुल्लिकाचयाग्रे।
निहितविविधपात्रराजिराजद्, बहुविध–तेमन–साधुसाधनार्थम्।३४५।।

(कृ० भा० ५/६३)

ज्वलन–कलन–पात्रधारणोभ–त्यवनति–मूर्च्छन–दर्विचालनाद्यैः।
त्रिवलि–कुच–भुजांसकम्पचेलो–च्चलनवशादुदपादि यस्तदाऽस्याः।।३४६।।

(कृ० भा० ५/६४)

---

(३४२) कुछ हल्के–२ आवश्यक आभूषण तथा वेश विन्यास से अत्यंत सुन्दर रूप को प्रकाशित करती हुई श्रीराधारानी तब अपने करकमल एवं चरणारविन्द धोकर, माता रोहिणी के साथ आदरपूर्वक पाक क्रियार्थ कौतुकवती (अत्यंत रुचिपूर्वक) होकर, महापाकवेदी पर विराजमान हुईं।

(३४३) रोहिणी माता के इंगित से सुन्दर (सूखी) लकड़ियों द्वारा चूल्हों में अग्नि जलाई और सबके नेत्र तथा मन को (देखकर) प्रसन्न करने वाले पीतल, तांबे तथा चांदी के बर्तन चूल्हों पर रक्खे।

(३४४) वह अग्नि बिना फूँक दिये स्वयं ही जलने लगी और उसमें धुंआ नहीं हुआ। थोड़ा या बहुत जिसमें जल देने की आवश्यकता है वह दिया गया और फिर जिस व्यंजन में जितने लवण आदि देने का प्रयोजन है उतना ही दासीगण उनके हाथ में देने लगीं।

(३४५–४६) अगरु, सरल, देवदारु आदि की लकड़ी चूल्हों में जल रही हैं या नहीं यह भी राधारानी देख रही हैं (यदि अधिक अग्नि है तो लकड़ी कुछ बाहर निकाल देतीं हैं और यदि कम जल रही हो तो और अधिक लकड़ी लगा देतीं हैं।) कढ़ाई में द्रव्यों को (सब्जी आदि) डालना, पात्रों का उठाना, रखना, छौंक लगाना, कलछी चलाना आदि कार्यों को करते हुए श्रीराधारानी की उदर की त्रिवली, वक्षस्थल, भुजाएं, कंधे हिलने लगे, उत्तरीय वस्त्र को इधर–उधर समेटती हुई उनकी अंग कांति की अपूर्व शोभा माधुरी उच्छलित होने लगी।

मधुरिमभरमच्युतः स्वसौध, स्फुरित गवाक्षधृतेक्षणः पिवस्न्तम्।
मदन–मदमुदञ्चितं विवृण्वन्, किमपि जगाद पटुर्वटुं मिषेण।।३४७।।

(सन्दानितमकम्) (कृ० भा० ५/६५)

प्रहित्य तं साथ महानसं गता, किं किं त्वया साधितमेतया सह।
सर्वं तदेतन्मम तैमनादिकं, संदर्शयेत्याह बलस्य मातरम्।।३४८।।

(गोवि० ३/८४)

तामाह सम्मार्जित–वेदिकान्तरे, नवीन मृद्भाजन–पंकित संभृतम्।
सा दर्शयन्ती कृततेमनादिकं, राधां प्रशंसन्त्यथ ताञ्च रोहिणी।।३४६।।

(गोवि० ३/८५)

सुमधुरं शशितोऽपि सुसंस्कृतं, निपुणया पचने मृदु राधया।
प्रवर–मन्थनिकासु सुसंभृतं, सुमुखि ! पश्य पुरः सखि ! पायसम्।।३५०।।

(गोवि० ३/८६)

बलपुष्टिकरं हृद्यं मधुरं मृदुलं सति !
मन्थनी संभृतं पश्य संयावमनया कृतम्।।३५१।।

(गोवि० ३/८७)

---

(३४७) उनकी इस शोभा का श्रीकृष्ण रन्धनशाला के निकटवर्ती अपने कक्ष के गवाक्ष में नेत्र लगाकर आस्वादन करने लगे। जिससे उनके हृदय में मदनावेश प्रकट होने लगा ओर वे बहाने से उसे व्यक्त करते हुए मधुमंगल से कहने लगे।

माता यशोदा का रन्धनशाला में प्रवेश, पकवान तथा व्यंजन आदि का प्रदर्शन :–

(३४८) इधर माता यशोदा ने रन्धनशाला में जाकर रोहिणी देवी से कहा – तुमने श्रीराधा के साथ मिलकर कौन–२ सा व्यंजन तैयार किया है वह मुझे दिखाओ।

(३४६) तब माँ रोहिणी रन्धनादि के विषय में श्रीराधा की बहुत–२ प्रशंसा करती हुई, भली प्रकार धोकर, पौंछकर साफ की गयी वेदिकाओं के ऊपर नूतन मिट्टी के पात्रों में रखे हुए विविध व्यंजन दिखाने लगी और कहने लगीं।

(३५०) हे सखि ! हे सुमुखि ! रन्धनकार्य में सुचतुरा, कोमलांगी श्रीराधा द्वारा बनायी गयी सुसंस्कृत (अच्छी तरह दूध गाढ़ा कर पकायी गयी) खीर (पायस) जो सामने बड़े–२ मिट्टी के पात्र में रखी हुई है– इसे देखो ! यह चन्द्र जैसी शुभ, सुशीतल और अमृत से भी अधिक सुमधुर है।

(३५१) हे सती ! इस मिट्टी के पात्र में रखा हुआ, मृदुमधुर, रुचिकर, बल एवं पुष्टिकर, संयाव (दूध में पकाया हुआ दलिया) यह राधा ने ही बनाया है।

रम्भासीरीक्षीरसारैः शष्कुलीर्विविधाः सखि !
पश्य पिष्टविकारांश्च नाना भेदान् सुसंस्कृतान्।।३५२।।

(गोवि० ३/८८)

पीयूषग्रन्थि–कर्पूरकेलिकामृतकेलिकाः।
अनया संस्कृताः पश्य यद्विधिर्मे न गोचराः।।३५३।।

(गोवि० ३/८९)

केवलो मथितक्लिन्नो मौद्गोऽयं वटको द्विधा।
सितालवण–संयोगान्मासस्यापि चतुर्विधः।।३५४।।

(गोवि० ३/९०)

चिञ्चाम्रातक–चुक्राम्रैस्तत्तद्द्रव्यादियोगतः।
ईषन्मधुरगाढ़ादिभेदादम्लो द्विषड्विधः।।३५५।।

(गोवि० ३/९१)

बद्वरम्भा–नव्यगर्भ–तन्नव्यमुकुलांशयोः।
मानकन्दाम्बुकच्वीनां मुखांशस्यालुकस्य च।।३५६।।

(गोवि० ३/९२)

---

(३५२) और देखो – केला (पका) नारियल, खीरसा, आदि द्रव्यों के सहयोग से बनाये गये यह नाना प्रकार के पिष्टक (पीठा मिष्ठान्न) और भी विविध प्रकार पकवान तैयार किये हैं।

(३५३) पीयूषग्रन्थि, कर्पूर केलि, अमृतकेलि, आदि पकवान भी श्रीराधाने ही बनाये हैं इनको बनाने की विधि तो मैं भी नहीं जानती।

(३५४) मूंग की दाल को पीसकर मथकर मीठे और नमकीन दोनों प्रकार के बड़े तैयार किये है इसी प्रकार उर्द की दाल के भी मीठे एवं नमकीन अतः चार प्रकार के बड़े बनाकर तैयार किये गये हैं।

(३५५) इमली, आम्रातक, अमचूर, आम आदि की खटाई में (सौंठ बनाकर) मूंग की दाल के बड़े अथवा अन्य द्रव्यों के सहयोग से बनाये गये चार प्रकार के सौंठ बड़े कुछ कम चीनी डाल कर अधिक खटाई वाले चार प्रकार के, कुछ अधिक चीनी डालकर कम खटाई वाले, कुछ मध्यम खटाई वाले, चार प्रकार के कुछ इमली में तथा अन्यान्य खटाई में अन्यान्य द्रव्यों के बड़े, इस प्रकार बारह प्रकार के सौंठ के बड़े बनाकर तैयार किये हैं।

(३५६) और देखो केले के फूल ओर उसका मुकुलांश, मानकचू सकरकन्द, पानी कोचू आदि के अग्रभाग, आलू, कुष्माण्ड, ढेडस, आदि के।

कुष्माण्ड–डिण्डीशणाञ्च चक्राभ–खण्डजालकम्।
चणकक्षोद–पंकाक्तं घृतभृष्टं पृथक् पृथक्।।३५७।।

(गोवि० ३/६३)

चणकक्षोदवटकान्याज्यभृष्टानि केवलम्।
अपरान्यम्लसक्तक्रक्वाथक्लिन्नानि लोकय।।३५८।।

(गोवि० ३/६४)

चणकक्षोदपिण्डानां स्विन्नानां क्वथिताम्भसि।
खण्डानि द्रव्यपाकादि भेदान्नानाविधानि च।।३५६।।

(गोवि० ३/६५)

वटिका फलमूलानां पृथक् संयोगभेदतः।
त्रिजात–मरिचाद्यैस्तु प्रकारान् बहुधाकृतान्।।३६०।।

(गोदि० ३/६६)

कर्कारु–ज्योत्स्निकालावुफलान्यालि पृथक् पृथक्।
राजिका–दधियोगेन संस्कृतान्यनया शुभे।।३६१।।

(गोवि० ३/६७)

वत्सेप्सित–प्रसूनानि घृतभृष्टानि केवलम्।
घृतभृष्टा दधिक्लिन्नाः कलिकाः कोविदारजाः।।३६२।।

(गोवि० ३/६८)

---

(३५७) गोलाकार खण्ड बेसन में मिलाकर घी में तलकर अलग–२ रखे हुए हैं (पकोड़े)।

(३५८) केवल घी में तलकर बेसन की पकौड़ी (मठे में एवं खटाई में) तथा अन्यान्य द्रव्यों के भी वटक (बड़े अथवा पकौड़ी आदि) यह सब देखो।

(३५६) प्रसिद्ध बेसन को घोलकर उसमें भिन्न–२ द्रव्य (सब्जी) मिलाकर कई प्रकार के सुस्वादु पदार्थ बनाये जाते है वे सब बनाये गये हैं देखो।

(३६०) जायफल, दालचीनी, जैत्री (तेजपत्र, रसवास आदि) डालकर कई प्रकार के फल एंव मूल आदि के अलग–२ एक–२ द्रव्य के बहुत प्रकार के पदार्थ बनाकर, सजाकर रखे गये हैं।

(३६१) हे शुभे सखि ! देखो श्रीराधा ने कुष्माण्ड और अलाबू आदि फलों को अलग–अलग राई और दही में डालकर रायता बनाया है।

(३६२) वत्स श्रीकृष्ण को जो अत्यंत प्रिय है उन बकुल के फूलों (प्रसून) को घी में भूनकर (तलकर) एवं काञ्चन पुष्प की कलियों को घी में तलकर दही में मिलाकर (रायता) बनाया गया है।

घृतभृष्टा दधिक्लिन्नाः प्रसूनवटिका द्विधा।
पटोलस्य फलान्याब्जभृष्टानि रुचिदान्यलम्।।३६३।। (गोवि० ३/९९)

वृद्धकुष्माण्ड–वटिकाः कच्वीमानालुकन्दकैः।
तिक्तलालितचूर्णाद्याश्चविकाढ्याः पराः कृताः।।३६४।। (गोवि० ३/१००)

सितैला–मरिचैर्योगाद्दुग्धतुम्बीकृतानया।
तद्योगादपरं मिष्टं क्षीरकुष्माण्डनामकम्।।३६५।। (गोवि० ३/१०१)

दधिशूरणकं मिष्टं धात्रीशूरणकं परम्।
दध्नैकं भर्जितं चान्यं कारबिल्वफलं द्विधा।।३६६।। (गोवि० ३/१०२)

मृदुरम्भा–गर्भखण्ड–वृद्धकुष्माण्डखण्डयोः।
सितादधियुतः पाको मधुराम्लः सुशीतलः।।३६७।। (गोवि० ३/१०३)

नालीत्–मेथी–शतपुष्पिका–मिशी–पटोल–वास्तुक–वितुन्न मारिषाः।
प्रकार–संयोग विभेदतोऽनया, शाकाः सुधागर्वहृतः सुसंस्कृताः।।३६८।।
(गोवि० ३/१०४)

---

(३६३) इसके अतिरिक्त वकुल के बड़े भी दो प्रकार के बनाये है एक तो घी में तलकर तथा दूसरे दही में डुबोकर। और देखो परवल को भी घी में तलकर (भाजा) बनाया है।

(३६४) कोचू, मान, आलू, सकरकन्दी आदि के साथ वृद्धकुष्माण्ड बड़े बनाये है इनमें से किसी को नालीता चूर्ण में मिलाकर और किसी को चइ में मिलाकर बनाया गया है।

(३६५) देखो ! श्रीराधा ने चीनी, इलायची, काली मिर्च आदि के योग से दुग्ध तुम्बी (घिये की खीर) और इन्हीं द्रव्यों के सहयोग से घिये की बरफी (खोआ आदि मिलाकर) तैय्यार की है।

(३६६) इसके अतिरिक्त दही और चीनी के साथ धात्रीफल को मिलाकर घी में तले हुए ओल को बनाया है और इसी के साथ–२ दही और चीनी मिलाकर बेल (फल) यह दो प्रकार के भेद से बनाया है।

(३६७) और देखो केले के फूल के मध्यभाग के खण्ड (छोटे–२ टुकड़े कर) और इसी प्रकार वृद्धकुष्माण्ड के भी छोटे–२ टुकड़े अमनिया करके चीनी और दही के सहयोग से पकाकर अति शीतल तथा मधुर चटनी तैयार की है।

(३६८) नालीतपत्र, मेथी, शतपुष्पी (शलूफा), मिषी (महूरी) परवल, बथुआ, बितुन्न (सुषुनि), व मारीस (नटिया) आदि विविध साग, विविध प्रकार की विधि से श्रीराधा ने बनाये हैं। ये अमृत के गर्व को भी खर्व (नष्ट) करने वाले हैं (अर्थात् अमृत से भी सुस्वादु हैं)।

कलम्बी पक्वचिञ्चाया रसपक्वा रुचिप्रदा।
कृष्णनालीत–शाकोऽयमामाम्रफलयुक् शुभः।।३६६।। (गोवि० ३/१०५)

मयूष्ठकस्य मुद्गस्य मासस्याप्यधुना मया।
त्रिविधोऽयं सुधाकूपनिभः सूपो विपाच्यते।।३७०।।
(गोवि० ३/१०६)

पंकैः सुमनचूर्णानां दासीभिभृशमर्दितैः।
पूर्णेन्दुमण्डलाकाराः क्रियन्ते रोटिका मया।।३७१।। (गोवि० ३/१०७)

कृतानि क्रियमाणानि कर्तव्यानि तु कानिचित्।
इत्यन्नव्यञ्जनानि त्वं संसिद्धानि प्रतीहि नौ।।३७२।।
(गोवि० ३/१०६)

सौरभ्य–सद्वर्ण–मनोहरं तत्, सा वीक्ष्य सर्वं मुदिता बभूव।
जिज्ञासमानामथतद्विधानं, तां रोहिणी विस्मयपूर्वमाह।।३७३।। (गोवि० ३/११०)

सामग्री सैव सामान्या पाकस्य प्रक्रियाप्यसौ।
किन्त्वपूर्वगुणे हेतुगान्धर्ववा–हस्तसौष्ठवम्।।३७४।। (गोवि० ३/१११)

(३६६) पकी हुई इमली के रस में पकी हुई कलम्बी और कच्चे आम के साथ मिलाकर कृष्ण नालीतपत्र का साग अत्यंत सुन्दर रूप से बनाया गया है।

(३७०) और सखि देखो ! अभी मैंने मूंग, उर्द, मयूष्टक (वनमुदग), मुदग तीन प्रकार की दाल जोकि अमृत कूप (अत्यंत सुस्वादु) सदृश है, बनाकर तैयार की है।

(३७१) और इधर देखो दासीगणों द्वारा अच्छी प्रकार मलकर नर्म किये गये आटे की पूर्णचन्द्रमण्डल जैसी रोटियाँ मेरे द्वारा बनायी गयीं हैं।

(३७२) हे यशोदे ! हम दोनों द्वारा बनाये गये और बनाये जा रहे हैं, और भी जो शीघ्र ही बनाने चाहिए उन सब व्यंजनों और पदार्थों को अब तुम प्रायः बन ही गये समझो।

(३७३) तब उन सब पदार्थों की सुन्दर सुगन्ध, सुंदर रंग रूप, जोकि मन को हरण कर रहा था, देखकर माँ यशोदा आनन्दित होती हुई पूछने लगी– यह सब पदार्थ इतने सुन्दर कैसे बन गये ? रोहिणी इसका उत्तर देती हुई कहने लगी–

(३७४) पाक सामिग्री और उसको बनाने की क्रिया तो उसी प्रकार साधारण है जिसे जानते हैं किन्तु यह जो अपूर्वरूप से (असाधारण रूप से सुन्दर सुस्वादु) बनी है इसका एकमात्र कारण श्रीराधा के हस्तकमल का सौष्ठव (स्पर्श एवं निपुणता) ही है।

सा तां राधामन्नसंस्कारसक्तां, प्रस्विद्यन्तीं लज्जया नम्रवक्त्राम्।
दृष्ट्वा राज्ञी स्नेहविक्लिन्नचित्ता, दासीमस्या बीजनायादिदेश।।३७५।।
(गोवि० ३/११२)

अथ तस्याः परिवेशन–कौशलमाह–व्याप्तायां वसनेन भोजनभुवि
श्रीरत्नपीठाग्रत–स्तत्तद् व्यञ्जनरत्न–रत्नपुटिकापंकितः क्रेमेणाभितः।
मिष्टाभीष्ट सुपिष्ट कौध–पुटिका पंकितस्तु तासां बहिः–
सम्यग्भव्य–सुगव्य–हेमपुटिका–पंकितस्तु तासां बहिः।।३७६।।
(कृष्णा० ३/१)

इत्येवं क्रमतोर्द्धमण्डलतया पंङ्क्तिक्रमेणादभुते स्वालीभिः पुरु चारुचित्ररचनाद्वैविध्य आपादिते।
अन्योन्याव्यतिषिक्त–सूक्ष्मसुरभिश्लक्षैन्धृताच्च्यातनैर्मध्ये हेममयी व्यधायि रुचिरा पात्री शुभैरोदनैः।।३७७।।
(कृष्णा० ३/२)

सौवर्णां तल–पात्रिकां घृतपुटीलिम्पाकखण्डादिभिः सन्धानार्द्ररसालखण्ड–सहितैः सत्कासमर्दादिभिः।
युक्तां दक्षिणतो निधाय निकटे तस्याश्च भृंगारकान्, कर्पूरेण सुवासितेन पयसापूर्णान् व्यधात् कानकान्।।३७८।।
(कृष्णा० ३/३)

---

(३७५) तब यशोदाजी अन्न (चावल, शेठा में) बनाने में लगी हुई श्रीराधा को जो अपनी प्रशंसा सुनकर लज्जा से सिर झुकाएं थीं और रन्धन के परिश्रम से जिनके श्रीअंग में स्वेदबिन्दु आ गये थे, देखकर स्नेह से द्रवित होकर उनको पंखे से हवा करने के लिये एक दासी को आदेश दिया।

भोजन का परिवेशन कौशल एवं आनन्द पूर्वक श्रीकृष्ण बलराम का सखागण सहित भोजनरंग

(३७६) अब राधारानी तथा सखीगण पाकशाला से बाहर आकर भोजन मन्दिर में (जिसमें सब बनी हुइ सामिग्री सजाकर रखी जाती है) जहाँ कि वस्त्र से ढककर उत्तम रत्नवेदी है उस पर उन उत्तम व्यंजनों को रत्ननिर्मित बड़ी–२ बाटियों में डालकर क्रमानुसार चारों ओर रख दिया, उसके पीछे (बाहर) मीठे और सुस्वादु पीठे (मिष्ठान्न आदि) भी उसी प्रकार वाटियों में भरकर रख दिये, उसके बाहर सुमंगल उत्तम गव्य (दूध के बने पदार्थ) स्वर्ण की बाटियों में भरकर रख दिये।

(३७७) इस प्रकार अर्द्धचन्द्रकार पंक्ति बनाकर सब पदार्थ सजा दिये बीच में सुन्दर चित्र रचना कर, सखियों ने अपनी अद्भुत कला का परिचय दिया। अंत में इन सब पदार्थों के मध्य में खिले हुए, सूक्ष्म, सुगन्धित, कोमल, घी से तर, सुंदर चावल से भरा सुवर्ण का पात्र रख दिया।

(३७८) एक स्वर्ण पात्र में घी की कटोरी, नींबू, अदरक, अचार, मुरब्बे आदि अलग–२ पात्रों में दाहिने एक ओर रखे और उसके पास कर्पूर द्वारा सुवासित जल के भरे (झारी आदि) पात्र ढककर रख दिये।

तस्याः पाकसुकौशलं बहुविधं दृष्ट्वा बृजेशप्रिया तासां तत्परिवेषचित्ररचनां चातिस्फुरद् विस्मया।
आनेतुं प्रजिघाय वत्सलमनाः कृष्णं च रामं च सा धात्रेयीमथ तौ समीयतुरतिश्रद्धावशादञ्जसा।।३७९।।

(कृष्णा० ३/४)

नत्वा मातरमाज्ञया सहबलस्तस्याः समुल्लासनः प्रेम्णा बालकदासिकाकृत–पदाम्भोजद्वयीधावनः।
आचम्योपविवेश सम्मुखतया चार्वन्नपात्रीपुरः सर्वं तत्तदवेक्ष्य विस्मितमना बभ्राज पीताम्बरः।।३८०।।

(कृष्णा० ३/५)

श्रीदामसुबलौ वामे पुरोऽस्य मधुमंगलः।
दक्षिणे श्रीबलश्चान्ये परितः समुपाविशन्।।३८१।।

(गोवि० ४/२२)

मातृभ्यां क्रमदर्शितेन हि पथा भोक्तुं समारब्धवान् यद् यद् भोक्तुमुपक्रमं स्म कुरुते त्यक्तूं न तत् सोढवान्।
भोक्तं तत्तद्शेषमप्यभिलषन् सामर्थ्यवांश्च स्वयं किञ्चित् किञ्चिदभुक्त वीक्षकभिया दुर्वाद–भीताप्ययम्।।३८२।।

(कृष्णा० ३/७)

---

(३७९) बृजेश्वरि श्रीराधा की निपुणता पूर्ण बनायी गयी भोजन सामिग्री एवं सखीगण की व्यंजनों को परोसने की, विचित्र क्रमानुसार पदार्थों को सजाकर रखने की कुशलता को देखकर अतिशय विस्मित हो गयीं। तब वत्सला जननी ने रामकृष्ण को लाने के लिये दो दासियों को भेजा। माता का आदेश (संवाद) पाकर रामकृष्ण अत्यंत श्रद्धापूर्वक शीघ्र ही आकर माता के पास उपस्थित हो गये।

(३८०) माता की आज्ञा का पालन करने वाले श्रीबलराम के सहित पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण ने आकर माता को प्रणाम किया। तब बालिका दासियों ने उल्लसित होकर उनके प्रेमपूर्वक श्रीचरण कमल धुला दिये और वे माता का आनन्द वर्धन करते हुए, आचमन कर, परोसी हुई अन्नव्यंजनादि थाली के सामने बैठ उन सब पदार्थों को देखकर विस्मित हो गये।

(३८१) श्रीदाम और सुबल श्रीकृष्ण के बांये, मधुमंगल सामने, श्रीबलरामजी दांये और अन्यान्य सखागण उनके चारों ओर बैठ गये।

(३८२) माता यशोदा एवं रोहिणी भोजन का क्रम (पहले क्या, तदुपरांत क्या भोजन करना हितकर होता है) बतलाने लगीं– श्रीकृष्ण उसके अनुसार ही भोजन करने लगे, जिस–२ पदार्थ को श्रीकृष्ण आरोगते वही इतना स्वादिष्ट लगता कि छोड़ने को मन नहीं चाहता। यद्यपि वे इन सब पदार्थों को पाने की इच्छा कर रहे थे और स्वयं सामर्थवान भी थे फिर भी देखने वालों के भय से 'यह बहुत अधिक खाने वाले हैं' (बहुभोजी) इस दुर्वाद की आशंका से, वे कुछ थोड़ा–२ लेकर भोजन करने लगे।

व्याख्यादिभिः सहभोजिभिः सहबलैः पाकस्य तत्कौशलं स्वादुंकारमदन्नवागपि ह्रदा सोऽपि प्रशंसन्नलम्।
आदौ पायसमाश किञ्चिदपर–प्राचुर्य्यपर्य्यप्तितां वीक्ष्य व्यञ्जनरत्न–यत्नगमिना लोभेन भून्माचिताम्।।३८३।।
(कृष्णा० ३/८)

शाकादिक्रमतोऽभितोषवशतः सर्वाणि सद्व्यञ्जनान्यादन्मातृमुदे भवेदपि यथा पंक्त्रीमनोरञ्जना।
तान् सर्वान् सहभोजिनः सरसया वाचा हसन् हासयन् भुञ्जध्वं न परित्यजेत् किमपीत्येकान्तमाह्लादयन्।।३८४।।
(कृष्णा० ३/६)

स्वस्वसंस्कृत मिष्ठान्नं (पक्वान्नं) प्रातराशोपयोगियत्।
उपजह स्तयाहूता मात्रे गोप्यो मुदान्विताः।।३८५।।
(गोवि० ४/२४)

श्रीराधया यत्नत एव गेहा, दानीत खण्डोद्भव लड्डुकानि।
गंगाजलाख्यान्यथ रंगदेवी, तदिंगितेनोपजेहार मात्रे।।३८६।।
(गोवि० ४/२५)

तानि माता बलादिभ्यो विभज्य स्नेहतो ददौ।
प्रकीर्ण स्वर्ण पात्रेषु विनिधाय पृथक् पृथक्।।३८७।। (गोवि० ४/२६)

(३८३) भोजन बहुत कुशलता पूर्वक अत्यन्त स्वादिष्ट बनाया गया है। इस प्रकार श्रीबलराम तथा अन्यान्य सखागण प्रशंसा करते–२ भोजन कर रहे थे। श्रीकृष्ण भी मन ही मन 'बहुत सुस्वादु है' इस प्रकार प्रसन्न होते हुए सर्वप्रथम थोड़ी सी खीर आरोगी क्योंकि अभी अन्यान्य बहुत पदार्थ भोजन करने हैं, वे भी अधिक परोसे हुए हैं और उनको पाने की भी श्रीकृष्ण के अंतर में बहुत इच्छा है।

(३८४) श्रीकृष्ण माता को आनन्दित करने एवं प्रेयसी श्रीराधा को प्रसन्न करते हुए अतिसन्तोष पूर्वक साग, सब्जी से लेकर समस्त उत्तम व्यंजनों का भोजन करने लगे। साथ में भोजन करने वाले बालकगण स्वयं हंसते तथा श्रीकृष्ण को हँसाते हुए 'खाओ खाओ' 'कुछ भी छोड़ना मत' इत्यादि कहते हुए एक दूसरे को आनन्दित कर रहे थे।

(३८५) अन्यान्य गोपीगण भी यशोदाजी द्वारा बुलाये जाने पर वहाँ आयीं और अपने हाथ से बनाये हुए प्रातःकालीन भोजन योग्य पकवान्नादि लाकर उनको (श्रीकृष्ण के भोजनार्थ) दिये।

(३८६) तत्पश्चात् श्रीराधारानी जो अपने हाथ से यत्नपूर्वक बनाकर अपने घर से लायीं थीं वे 'गंगाजल' नामक मिष्ठान्न तथा लड्डू भी श्रीराधा के इंगित से रंगदेवी ने यशोदाजी के हाथों में लाकर दिये।

(३८७) तब यशोदा माता ने वह लड्डू आदि लेकर एक बड़े से स्वर्णपात्र में डालकर, स्नेहपूर्वक रामकृष्ण तथा अन्य सभी बालकों को बांट कर दिये।

आस्वादयन्तं घृतपक्वमन्नं, सुनर्मभिस्तानपि हासयन्तम्।
आलोकयन्तं नयनाञ्चलेन राधाननं तं ददृशुर्मुदाल्यः।।३८८।।

(गोवि० ४/२७)

अदौ भद्रमिदं मिष्टमेतत् स्निग्धं सुचारु तत्।
तर्जन्या दर्शयन्त्यम्बा भुङ्क्ष्व वत्सेत्यभाषत्।।३८९।।

(गोवि० ४/४८)

यद् यदिष्टं भवेद् यस्य ज्ञात्वा ज्ञात्वा हसन् हरिः।
तस्मै तस्मै ददौ तत्तत् स्वपात्रात् प्रक्षिपन् मुहुः।।३९०।।

(गोवि० ४/२९)

वीक्ष्य यत्नान्वितामम्बां मन्दमश्नन्तमच्युतम्।
परिहास–पटुस्तस्मिन् बृजेशामवदद् वटुः।।३९१।। (गोवि० ४/३०)

अयञ्चेद् भूरि नात्त्यम्ब ! देहि मे सर्व मद्म्यसौ।
मयैवालिंगतः पुष्टो भविता भूरिभोजिना।।३९२।। (गोवि० ४/३१)

नास्य मन्दरुचेः शक्तिर्घृतपक्वान्नभोजने।
तदस्मै लघुराद्धान्नं व्यञ्जनान्यम्ब ! दापय।।३९३।। (गोवि० ४/३२)

---

(३८८) श्रीकृष्ण घी में पकायी हुई समस्त वस्तुओं का भोजन करते हुए, सखागण के साथ हास–परिहास करते–२ बीच में एक–२ बार श्रीराधा के प्रति दृष्टिपात कर रहे थे, सखीगण यह दृश्य देखकर परम आनन्दित होने लगीं।

(३८९) तदनन्तर माता यशोदा तर्जनी उंगली से भोजन की वस्तु दिखाकर कहने लगीं– 'वत्स ! देखो यह पदार्थ कितना अच्छा बना है, यह कितना मीठा है और देखो यह भी कितना सुस्वादु है तुम इसे खाओ तो।।

(३९०) तब श्रीकृष्ण अपने सखाओं में, जिसको जो –२ वस्तु प्रिय लगती है वही हंसते हुए अपनी थाली में से उठा–२ कर देने लगे।

(३९१) तब परिहास कुशल मधुमंगल, भोजन कराने में यत्नशील माता को और भोजन करने में शिथिलरुचि (पेट भर जाने से धीरे–२ खाते हुए) श्रीकृष्ण को देखकर कहने लगा–

(३९२) हे माता ! कृष्ण तो कुछ भी नहीं खा रहा, तुम सब वस्तु मुझे दो, मैं बहुत खा सकता हूँ। मैं खाकर इसका आलिंगन करूंगा, बस उससे ही इसका शरीर पुष्ट हो जावेगा।

(३९३) इसकी पाचन शक्ति कमजोर है, घी में बनाये हुए इन सब व्यंजनों, पकवानों को पचाने की इसकी शक्ति नहीं है इसलिए इसे तो हल्के–२ (लघुपाक) अन्नव्यंजनादि खाने को दो।

अथ कृष्णः स्वपात्रस्थ पक्वान्नाञ्जलिभिर्हसन्।
पंचयैः पूरयामास भुङ्क्षेति वटुभाजनम्।।३६४।।

(गोवि० ४/३३)

ततो वामकफोणिं स्वं वादयन् वामपार्श्वके।
सम्यग्भोक्तुं कृतारम्भः प्रहृष्टो वटुराह तम्।।३६५।।

(गोवि० ४/३४)

वयस्य ! पश्य भक्ष्येऽहमित्यश्नम् कवलद्वयम्।
मातर्मे दधि देहीति प्राहिणोत्तां तदाहृतौ।।३६६।।

(गोवि० ४/३५)

गोपाः पश्यत नृत्यतीह चपलः पकवान्नलब्धाशया कीशेशो दधिलम्पटोऽयमिति तान् कृत्वोन्मुखांस्तदिशि। तेषां भोजन–भाजनेषु शनकैर्निक्षिप्य भक्ष्यं निजं सर्वं भुक्तमिदं मयेति स पुनर्गर्वायमानोऽवदत्।।३६७।।

(गोवि० ४/३६)

तथागतां तां दधिपात्रहस्ता, मुवाच पश्यम्ब ! विनैव दध्ना।
मयोपभुक्तं द्रुतमेव सर्वं, तत् पायसं दापय भूरि मह्यम्।।३६८।।

(गोवि० ४/३७)

---

(३६४) मधुमंगल के यह वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने हंसते–२ अपने पात्र से पाँच–छः अंजलि पकवानादि लेकर मधुमंगल की थाली में डालकर 'खाओ–खाओ' इस प्रकार कहने लगे।

(३६५) श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये पकवान प्राप्त कर मधुमंगल अपने बांयी (पार्श्व) ओर बांयी कोहनी को बजाते हुए, सब पदार्थ भोजन करते हुए, हर्ष पूर्वक श्रीकृष्ण से कहने लगा–

(३६६) "सखे ! मैं भोजन करता हूँ, तुम देखो, ऐसा कहकर एक साथ दो ग्रास मुख में दिये और फिर 'माँ मुझे दही दो' कहकर माता को दही लाने के लिये भेज दिया।"

(३६७) यशोदा माँ दही लेने गयीं और इधर सखागणों से मधुमंगल कहने लगा– 'देखो देखो भाई ! दही का लोभी एक वानरराज पकवान छीनने की आशा से कैसे चंचल हो रहा है उसके यह वचन सुन सब ऊपर की ओर (बंदर को) देखने लगे इतने में झट मधुमंगल ने अपनी थाली के पकवान उन सब की थाली में डाल दिये और गर्वपूर्वक कहने लगा 'देखो मैंने सब कुछ खा लिया है'।

(३६८) दही के पात्र को हाथ में लिये माता को आते देख फिर कहने लगा– 'देखो माँ, मैंने तो दही के बिना ही सब कुछ खा लिया है अब मुझे पायस दो।

हेमेषु पात्रेषु निधाय राधया, नवीनरम्भादलमन्द–मारुतैः।
शीतीकृतं स्वे परिवेशितं करे, तेभ्यो ददौ पायसमाशु रोहिणी।।३६६।।
(गोवि० ४/३८)

आनीयानीय गान्धर्वा–दत्तानि व्यञ्जनानि सा।
शाकादीन्यम्लशेषाणि तेभ्योऽदात् क्रमशः शनैः।।४००।। (गोवि० ४/४०)

रम्भोद्र स्तच्छद वर्ण लाघवाः समृष्ट गोधूम सुचूर्ण रोटिकाः।
घृतभिषिक्ताः परिवेशिता स्तया तेभ्योन्यं पात्रेषु निधाय साददौ।४०१।। (गोवि० ४/४१)

पूर्वं पक्वान्नमुद्दिश्याधुना त्वन्नादिकञ्च या
वटोः सुपरिहासोक्तिर्नात्र स्यात् पुनरुक्तता।।४०२।। (गोवि० ४/४०

कृष्णः सतृष्णो नैवात्र बलः कवलमात्रभुक्,
श्रीदामा नाम मन्दाशी सुबलोऽसुबलोज्वितः।।४०३।। (कृ० भा० ६/४५)

क्वैषां भक्ष्यैकतानत्व–राहित्यमविदग्धता।
क्वैतदन्नं सुधानिन्दि स्वयं लक्ष्म्यैव साधितम्।।४०४।। (कृ० भा० ६/४६)

---

(३६६) तब श्रीराधा द्वारा स्वर्णपात्रों में रखी हुई एवं नवीन केले के पत्र को चलाकर मन्द–२ वायु से शीतल की गयी पायस को रोहिणी देवी अपने हाथों से परोसने लगीं।

(४००) रोहिणी माता तब राधारनी द्वारा ला–लाकर पुनः–२ दिये जाने वाले साग अन्न–व्यंजन सभी पदार्थ बार–बार देने लगीं।

(४०१) फिर राधिका द्वारा दी गयीं, केले के वृक्ष भीतर स्थित पत्र की तरह शुक्लवर्ण, कोमल, घी से तर, अच्छी तरह मले हुए आटे की नरम रोटियाँ पात्र में रखकर, रोहिणी माँ परिवेशन करने लगी।

(४०२) पहले पकवान के प्रति और अब अन्नव्यंजनादि को लेकर मधुमंगल की परिहासउक्ति इसमें पुनरुक्ति (एक बात को दो बार कहना) दोष नहीं है।

(४०३) मधुमंगल कहने लगा :– इस परम सुस्वादु भोजन की कृष्ण को तो इच्छा नहीं है, और बलदेव तो बस केवल एक ग्रास मात्र ही भोजन कर पाते हैं, श्रीदाम तो स्वभावतः ही मन्दभोजी (कम खाने वाला) और सुबल तो भोजन शक्ति के अभाव में एकदम बलहीन है (नाम ही सुबल है बल तो है ही नहीं)।

(४०४) हाय रे हाय ! देखो कहाँ तो इनकी भोजन जैसे रसमय विषय में अरसिकता! और कहाँ ये अमृत की भी निन्दा करने वाले स्वयं लक्ष्मी द्वारा बनाये गये भोज्य पदार्थ।

काव्यं विफलतां किं न याति सत्कविनिर्मितम् ?
यत्र गोष्ठ्यां तदास्वाद–लोलुपत्वं न वर्त्तते।।४०५।।

(कृ० भा० ६/४७)

चतुवर्गफलं मूर्त्तेमेतदन्नं चतुर्विधम्।
अहं केवलमेकोऽस्य पात्रमित्यवदद् वटुम।।४०६।।

(कृ० भा० ६/४८)

श्रीदामोवाच पिण्डीभिः पिचिण्डं पूरय द्रुतम्।
यदेव तव सर्वस्वं यदर्थं वटुतामधाः।।४०७।। (कृ० भा० ६/४६)

वटुराख्यदरे मूर्ख ! गोपस्त्वं किं नु वेत्स्यसि ?
रसास्वादं स्वधर्मार्थं गा रोद्धुमटवीमट।।४०८।। (कृ० भा० ६/५०)

पश्यैषोऽहमनूचानो विप्रो यैर्मन्मुखे हुतम्।
तैरिष्टः सर्वयज्ञेन भगवानेव केवलम्।।४०६।। (कृ० भा० ६/५१)

श्रीदामोचे श्रुतिस्मृत्येर्वर्त्मापि शतजन्मसु।
त्वया परिचितं नैव विप्रत्वे सूत्रमेव ते।।४१०।। (कृ० भा० ६/५२)

---

(४०५) जिस सभा में आस्वादन लोलुप रसिक जन नहीं होते, वहाँ पर जैसे सत्कवि रचित काव्य विफल हो जाता है उसी प्रकार यहाँ स्वाद को न ज़ानने वालों के सामने, यह रसमय भोजनभी विफल ही हो रहा है।

(४०६) यह चतुर्विध भोजन, चारों प्रकार के फल (धर्म, अर्थ काम, मोक्ष) देने वाला है, लेकिन एक मैं ही इन फलों को प्राप्त करने योग्य पात्र हूँ।

(४०७) मधुमंगल के इन वचनों को सुनकर श्रीदाम कहने लगे– 'हाय, जो तुम्हारा सर्वस्व है, और जिसे प्राप्त करने के लिए तुमने ब्राह्मणत्व स्वीकार किया है, शीघ्र ही अपने उस पिचिण्ड (पेट) को पिण्ड देकर भरो। (रसिकता की व्याख्या करते–२ पेट नहीं भर पायेगा।)

(४०८) मधुमंगल कहने लगा–अरे मूर्ख गोप ! तुम रस का आस्वादन क्या जान पाओगे, अपने धर्म का पालन करने के लिये वन–२ गाय चराने जाओ।

(४०६) हे अरसिक ! देखो, मैं अनूचान (वेदाध्यायी) ब्राह्मण हूँ, जो मेरे मुख में आहुति देंगें वे सब यज्ञों द्वारा भगवदर्चना का फल प्राप्त करेंगें।

(४१०) श्रीदाम कहने लगा 'अरे वटु ! सौ जन्मों से तुम्हारा श्रुति, स्मृति से कोई परिचय (ज्ञान) नहीं है। केवल ब्राह्मणत्व का परिचय देने वाला यज्ञोपवीत (सूत्र) मात्र धारण कर रखा है।

कृष्णः प्राह वटोरस्ति रसशास्त्रेऽनुशीलनम्।
व्यञ्जनानेकतात्पर्य – लक्षणाभिज्ञता यतः।।४११।। कृ० भा० ६/५३)

वटुराह षड़ेवात्र रसा न त्वष्ट मन्मते।
षोढ़ैव न्याय्य आस्वादो यत् षड़ेवेन्द्रियाणि नः।।४१२।। (कृ० भा० ६/५४)

रसा ह्यष्टाविति प्राहुर्ये तेऽपि व्यञ्जनाश्रिताः।
व्यञ्जनाभिज्ञतालेशोऽप्येषां किन्तु न विद्यते।।४१३।। (कृ० भा० ६/५६)

विहाय शाकसूपादीन् विहायस्ते धयन्ति यत्।
तन्नीरं प्रकटं हित्वा धावन्त्येव मरीचिकाम्।।४१४।। (कृ० भा० ६/५७)

कारणं रसनिष्पत्तौ चर्व्वणेनेति तज्जगुः।
चर्वन्तु परिचोषयन्ति न पितुर्जन्मकोटिभिः।।४१५।। (कृ० भा० ६/५८)

---

(४११) श्रीकृष्ण कहने लगे – अरे मधुमंगल! तुम्हें रसशास्त्र का अच्छा ज्ञान है, तो जिससे व्यंजनवृत्ति का तात्पर्य और लक्षण का ज्ञान होता है। (दूसरे अर्थ में व्यंजन–भोजन पदार्थों का ज्ञान है तो)।

(४१२) मधुमंगल कहने लगा– किसी रसशास्त्र में श्रृंगार आदि अष्ट रसों का वर्णन है, किन्तु मेरे मत में तो छः रस ही है और छः प्रकार का आस्वादन ही न्यायसंगत है क्योंकि पाँच इन्द्रियाँ (चक्षु, कर्ण, नासिका, त्वक, मुख) तथा एक प्रधान मन यह भोजन के छः रसों का आस्वादन कर प्रसन्न होते हैं।

(४१३) 'व्यंजनवृती के बिना रसास्वादन नहीं होता' इस प्रकार जिनका मत है वे आठ या इससे भी अधिक रसों को स्वीकार करते हैं, किन्तु वे व्यंजनों (श्लेष में रसोई में बने सुस्वादु पदार्थ) के विषय में लेश मात्र भी नहीं जानते।

(४१४) वे तो साग, सब्जी, दाल आदि मूर्तिमान रसों का परित्याग कर निराकार श्रृंगार आदि रस का आस्वादन करते रहते हैं। बताओ, प्यासे व्यक्ति की जल के बिना क्या प्यास मिट सकती है, वह तो मरीचिका अनुसरण वत् (दूर से सूर्य की किरणों से रेती जहाँ जल के समान दिखायी देती है, उसे जल समझकर, उसके लिये भागना) बृथा ही श्रम करना है।

(४१५) वे जो रस निष्पत्ति का कारण रस चर्वण (धीरे–२ रस का आस्वादन) बताते है वे कोटि जन्म में भी चर्वण क्या है यह नहीं समझ सकते। (क्योंकि अमूर्त्त रस का चर्वण कैसे हो सकता है, चर्वण (चबाना) तो इन मूर्त (जो सामने हैं) व्यंजनों (भोजन के सुस्वादु) पदार्थों का) का ही संयन है जिसे प्रत्यक्ष ही देख लो।

रामः प्राह रसास्वादे केऽनुभावा भवन्मते।
के वा सञ्चारिणः को वा स्थायी स स्वाद्यते कथम्।।४१६।।

(कृ० भा० ६/५६)

वटुरूचे यद्प्राप्त्या पूर्वमेवाश्रु मे भवेत्।
प्राप्त्या तु व्यञ्जनस्यास्य पुलकास्यप्रसन्नते।।४१७।।

(कृ० भा० ६/६०)

वर्णस्य स्निग्धतातृप्त्या वैवर्ण्यं तच्च पश्य मे।
भुञ्जान एव यद्वच्मि स्वरो मे तेन भिद्यते।।४१८।।

(कृ० भा० ६/६१)

स्तम्भो मे भूरि मिष्टान्नभोजनाशक्तिदुःखजः।
प्रस्वेदः प्रकटोऽन्ते तु प्रलयो बहुभक्षणात्।।४१६।।

(कृ० भा० ६/६२)

आलस्यचिन्तास्वापाद्याः स्पष्टाः सञ्चारिणोऽत्र नः।
स्वाद्यत्वेनेक एवापि स्थायी तु विविधाभिधः।।४२०।।

(कृ० भा० ६/६३)

---

(४१६) रस सिद्धांत की यह नयी व्याख्या सुनकर कौतूहल से श्रीबलराम कहने लगे– अच्छा तुम्हारे मत में रस के आस्वादन का क्या–२ अनुभाव है ? संचारी भाव कौन–२ से हैं ? स्थायी भाव कौन है ? और किस प्रकार से उसका आस्वादन करना चाहिए सब खोलकर कहो।

(४१७) मधुमंगल कहने लगा– सुनो ! अलंकार मत से रसास्वादन के पश्चात् अश्रु (सात्विक अनुभाव) आते हैं, किन्तु मुझे तो इन भोजन पदार्थों के न मिलने से, पहले से ही (क्रन्दन से) अश्रु आ जाते हैं और फिर जब इस प्रकार के व्यंजन प्राप्त हो जाते है तो रोमांच, पुलक प्रफुल्लता (रस के अनुभाव) होने लगती है।

(४१८) भोजन से जब तृप्ति होती है तो मेरा वर्ण स्निग्ध हो जाता है, यही वेवर्ण्य है, भोजन के समय चीत्कार (और लाओ इत्यादि) यही स्वरभंग है।

(४१६) बहुत सारे परोसे हुए मिष्ठान्न आदि जब मैं नहीं भोजन कर पाता तो दुःख से मेरा अंग स्तम्भ एवं प्रस्वेद युक्त होता है जो कि तुम अभी ही देख रहे हो और जब मैं बहुत ज्यादा (लोभवश) खा लेता हूँ तो प्रलय (मोह व मूर्च्छा) दशा हो जाती है।

(४२०) आलस्य, चिन्ता, निद्रा आदि संचारी भाव सब स्पष्ट ही अनुभव हो रहे हैं और आस्वादन ही इसका स्थायी भाव है जो एक प्रकार का होने से भी अनेक नामों से विख्यात है।

आज्याभ्यक्तानि भक्तानि मन्ये काञ्चनवारिणा।
स्नापितानीव सौरभ्यं येषां सौलभ्यमभ्यगात्।।४२१।।

(कृ० भा० ६/७०)

गोदन्तकृत्त घासादि–घ्रायिन्यां गोपसंसदि।
कृतपुण्यस्य मे भूरिभोगभाजः प्रसंगतः।।४२२।।

(कृ० भा० ६/७१)

वने विप्रास्तपस्यन्ति पत्रमूलफलाशनाः।
वटोस्ते नाधिकारोऽस्ति भोगे याहि तपश्चर।।४२३।।

(कृ० भा० ६/७२)

सत्यं भो यैः पुरा तप्तं पत्रमूलफलादिभिः।
परिणम्य जनुष्यत्र व्यञ्जनत्वेन तैर्मम।।४२४।।

(कृ० भा० ६/७३)

भौमस्वर्गजुषः साधु प्रत्यक्षीभूयतेऽन्वहम्।
इति जानीत भोगोऽयमतप्ततपसः कुतः।।४२५।।

(कृ० भा० ६/७४)

(४२१–२२) आज जो यहाँ भोजन किया है वो तो मानो घी से स्नान करा, सोने के पानी से धोकर परितृप्त कर दिया हो और जिस भोजन की सुगन्धि से सारा गोप समाज आमोदित हो रहा है। हाय हाय जिनके भाग्य में वन–वन गाय चराना और गायों के दांतों से काटी गयी घास की सुगन्ध ही प्राप्त हो, ऐसे इन श्रीदामा आदि गोपों को आज इस प्रकार के (महान सुगन्धित, अत्यंत सुस्वादु दुर्लभ) पदार्थ भोजन करने को मिल गये है यह तो सब बहुभोजी (अधिक खाने वाले) कृतपुण्यपुंज मेरे ही संग की कृपा से समझ लो।

(४२३) श्रीदाम कहने लगा – हे वटु ! ब्राह्मण तो पत्र, मूल, फल आदि भोजन करके वन में तपस्या करते हैं, अतएव तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारा इन भोगों (उत्तम पदार्थ भोजन करना) का अधिकार नहीं है। अतएव जाओ वन में जाकर तपस्या करो।

(४२४–२५) मधुमंगल कहने लगा– अरे श्रीदाम ! तुमने सत्य कहा है– मैंने तो पूर्व जन्मों में पत्र, मूल, फल आदि द्वारा बहुत तपस्या की है, अब वही (पत्र मूल फल) उत्तम व्यंजन (भोजन पदार्थ) बनकर इस जन्म में भौमस्वर्गवासी (पृथ्वी पर ही स्वर्ग के सुख प्राप्त हो रहे हैं) मुझको प्रतिदिन, उत्तम रूप से, देखो प्रत्यक्ष ही प्राप्त हो रहे हैं। जो व्यक्ति पूर्व जन्मों में तपस्या नहीं करते, उन्हें इस प्रकार के भोग (उत्तम भोजन) नहीं प्राप्त हो सकते।

एवञ्चेत् प्राथम प्राप्तुमर्हन्त्यते बलीमुखाः।
वाग्व्ययश्रमिणोऽत्रापि जनुष्येते तपस्विनः।।४२६।।

(कृ० भा० ६/७६)

शीतोष्णवातसहनाः पत्रपुष्पफलाशनाः।
जातिस्मराः कथं न स्युः कोऽमीषां वेत्ति विज्ञताम्।।४२७।।

(कृ० भा० ६/८०)

कृष्णः प्राह सखे ! विप्रा ब्रह्मोपासन–तत्पराः।
कीशाः कुक्षिम्भरा एषां द्वयेषां महदन्तरम्।।४२८।।

(कृ० भा० ६/८१)

अस्य कीशस्य चावैमि न किमप्यन्तरं हरेः।
नरत्वं वानरत्वं वानयोर्भेदे न कारणम्।।४२९।।

(कृ० भा० ६/८२)

किञ्च ख्यापयता तेन लोकेऽपूर्वां स्वविज्ञताम्।
वृहत्वाद् वृहणत्वाच्च स्वकुक्षिर्ब्रह्म मन्यते।।४३०।।

(कृ० भा० ६/८३)

---

(४२६) (माता रोहिणी मधुमंगल को पायस देने लगीं, यह देख सुबल कहने लगा) यदि वाक् व्यय श्रमकारी (ज्यादा बोलने का परिश्रम करने वाला) एवं तपस्वी समझकर मधुमंगल को खीर दी जा रही है, तब तो इन बंदरों को ही पहले देनी चाहिए क्योंकि ये दो गुण तो इनमें भी है।

(४२७) क्योंकि ये शीत, उष्ण, वात, वर्षा आदि सहनकर, पत्र, पुष्प, फल भोजन कर वनों में वास करते हैं ये जातीस्मर (पूर्वजन्म ज्ञाता) क्यों नहीं होंगें इनकी विज्ञता को क्या कोई जान सकता है ?

(४२८) तब श्रीकृष्ण कहने लगे– सखे ! सुबल ! ब्राह्मणगण तो ब्रह्मोपासना में तत्पर रहते हैं और वानर केवल उदरम्भर (पेट भरने वाले) फिर इन दोनों में तो बहुत अंतर है, तुमने इन्हें समान कैसे कर दिया ?

(४२९) सुबल कहने लगा – हे कृष्ण ! मैं तो इन ब्राह्मणों और वानरों में कुछ भी भेद नहीं देखता। इन दोनों का स्वभाव तो एक ही है और मधुमंगल का नरत्व और इनका वानरत्व बस इतना ही अन्तर है।

(४३०) (और जो तुम कह रहे हो कि वानर पेट भरने वाले और ब्राह्मण ब्रह्मोपासक है तो सुनो)– इस मधुमंगल ब्राह्मण ने तो अपनी अपूर्व विद्वता का प्रचार करने के लिये (ब्रह्म शब्द का अर्थ महान एवं सर्वव्यापक) अपने पेट का ही ब्रह्म मान लिया है।

अतस्त्रिषवणं तस्य ध्यायता पूर्तितसाधनम्।
स एवोपास्यतेऽनेन नैष्ठिक–ब्रह्मचारिणा।।४३१।।

(कृ० भा० ६/८४)

कदाचिद्भूरिपक्वान्न–ग्रसनावेश–संभ्रमैः।
कीशायितं स्यात् पाणिभ्यां भुञ्जानस्यास्य लाघवैः।।४३२।।

(कृ० भा० ६/८५)

इत्युक्त्वाजीहसत् सर्वान् सुबलस्तान् वटुः स तु।
हसन् भुञ्जान एवोच्चैः काशैः शोनमुखोऽभवत्।।४३३।।

(कृ० भा० ६/८६)

गोष्ठेशाह वटो ! तिष्ठ क्षणं मा भुङ्क्ष्व मा हस।
स्थैर्य्यमाप्नुहि मा जल्प मैनं हासयतार्भकाः।।४३४।।

(कृ० भा० ६/८७)

धनिष्ठया यल्ललितादि–संस्कृतं, तत्तद्रसालादिकमाहृतं पुरः।
कृत्वा पृथक पात्रचये बृजेश्वरी, सस्नेहमेभ्योददती मुमोद सा।।४३५।।

(गोवि० ४/४२)

---

(४३१) अतः इसकी ब्रह्मोपासना अपने पेट की उपासना से ही सिद्ध होती है और दिन में तीन बार यह अपने पेट को भरने का ही साधन ध्यान करते–२ यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी उदरब्रह्म का ही भजन करता रहता है।

(४३२) कभी–२ तो बहुत से पकवान भोजन करने में इसे इतनी शीघ्रता होती है कि दोनों हाथों से खाने लगता है उस समय तो यह ब्रह्मचारी मानो बिल्कुल वानरत्व को ही प्राप्त हो जाता है।

(४३३) सुबल के इस प्रकार मधुमंगल के प्रति परिहास वचनों को सुनकर सभी जोर–२ से हँसने लगे और मधुमंगल का भी भोजन करते–२ हँसते–२ खाँसी आने से लालमुख हो गया।

(४३४) यह देखकर ब्रजेश्वरि माता यशोदा कहने लगी– अरे मधुमंगल ! कुछ देर रुक जाओ। भोजन मत करना और हँसना मत, स्थिर हो जाओ, अब बोलना भी नहीं। अरे बालको, अब इसे और मत हँसाओ।

(४३५) इसके बाद ललिता आदि सखियों द्वारा बनाया गया रसाला धनिष्ठा ने अलग–२ पात्रों में सजाकर आगे लाकर रखा और यशोदा माँ स्नेहपूर्वक सबको देते हुए परम आनंदित हुई।

हृदयदयित–मुखवीक्षण–हृष्टा–स्तदतिमधुरमृदुकान्ति–विकृष्टाः।
मुमुद्रुदित–पृथुभाविहस्ता, रमणभवनमधि ताः पुरुशस्ताः।।४३६।।

(गोवि० ४/४३)

अन्नान्यथो तानि चतुर्विधानिते, पीयूषसारोद्भव–विक्रिया इव।
आस्वादयन्तो मधुराणि सस्पृहं, तं हासयन्तो जहसुश्च नर्मभिः।।४३७।।

(गोवि० ४/४४)

चर्वन्ति चर्व्याणि मृदूनि केचित्, लेहयानि चान्ये चटुलं लिहन्ति।
पिबन्ति पेयानि परे प्रहृष्टा, श्चूश्यन्ति चोष्याण्यपरे वितृप्ताः।।४३८।।

(गोवि० ४/४५)

स्वादुंकारं कमलनयनः सस्पृहं तत्तदन्नं हस्तस्पर्शादमृत–मधुरं मन्दमन्दं प्रियायाः।
तद्वक्त्राब्ज–प्रहितनयनप्रान्तभृंगो निगूढं प्राश्नन्नम्बा–मनसि निविड़ं स प्रमोदं व्यतानीत्।।४३६।।

(गोवि० ४/४६)

(४३६) अपने प्रियतम के गृह में वे सब महामंगलमयी श्रीराधा आदि गोपीगण अपने प्राणरमण के मुखारविन्द का दर्शन कर अत्यंत आनंद लाभ करने लगीं, उनके अंग की मृदुल मधुर कांति से आकृष्टचित्ता और उस समय उदित होने वाले महाभाव से व्याकुलचित्ता होकर भी उनको महामोद की प्राप्ति हुई।

(४३७) तत्पश्चात् मधुमंगल आदि सखागण अमृत से भी सारातिसार सुमधुर, चतुर्विध (चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय) अन्न–व्यंजनादि का रुचिपूर्वक आस्वादन करते हुए, परिहास वाक्यों से श्रीकृष्ण को हँसाते हुए सभी हंसने लगे।

(४३८) कोई–२ उनमें से चिढ़वा आदि चबाने लगा, कोई खील (मूढ़ी) के लड्डू (पीठे) दूध दही में डुबोकर या आम कटहल, केले आदि के खण्ड वा रस में डालकर, नाना प्रकार की लेह्य वस्तुओं को चटपट चाटने लगे, कोई दुग्ध आदि पान करने लगे, और कोई–२ पके आम आदि चूस–२ कर खाते हुए परम तृप्ति को प्राप्त हुए।

श्रीराधारानी का श्रीमुख दर्शन कर श्रीकृष्ण की भोजन शिथिलता एवं दोनों माताओं का आग्रह

(४३६) श्रीराधा के वदन कमल पर निगूढ़भाव से भ्रमर स्वरूप अपने नेत्रों के कोण अर्पण करते हुए, श्रीकृष्ण प्रियतमा के हस्तस्पर्श से अमृत से भी सुमधुर उन भोजन पदार्थों को पाकर तृप्तिपूर्वक बहुत स्वादिष्ट, बहुत स्वाद है' इस प्रकार कहते हुए माता के हृदय को परम आनन्दित करने लगे।

प्रहित चकितनेत्र प्रान्तदृष्टिप्रणाली मिलित–तदतिलावण्यामृतास्वादपुष्टा।
प्रसरदखिलभावोल्लासमाच्छादयन्ती दयितहृदयमुच्चै राधिकाप्याजहार।।४४०।।

(गोवि० ४/४७)

अथ बलजननीं तामन्तराकृत्य नृत्यन्मदकलमदिराक्षी मर्पयन्तीं करेऽस्याः।
मृदु मृदु मधुरान्नं प्रेयसीं प्रेक्ष्य कृष्णः श्लथरुचिरशनेऽभूदुन्मना नागरेशः।।४४१।।

(गोवि० ४/४८)

सामिभुक्तं कियत्तेन किञ्चण्त्र्यंशावशोषितम्।
भक्ष्यं वीक्ष्याशने मन्दं तञ्चासीद् व्याकुला प्रसूः।।४४२।।

(गोवि० ४/४६)

यत्नात् संस्कृतमन्नादि सर्वं त्यक्तं कथं सुत।
क्षुधितोऽसि कियद् भुङ्क्ष्व शपथः शिरसो मम।।४४३।।

(गोवि० ४/५०)

आनाय्य यत्नाद् वृषभानु कन्यकां, संस्कारितं सर्वमिदं सुतानया।
अन्नादि मिष्टञ्च सुधा–परार्द्धत, स्तथापि नाश्नासि करोमि किं हता।।४४४।।

(गोवि० ४/५१)

---

(४४०) चकित नेत्रों के कोण से दर्शन करती हुईं जब राधारानी की दृष्टि श्रीकृष्ण से मिली, उस समय श्रीकृष्ण के महालावण्यामृत आस्वादन से वह भी परम आनंद को प्राप्त हुई और अपने हृदय के उल्लास को गोपन करती हुईं वह भी प्रियतम के हृदय को सम्यक आकर्षित करने लगीं।

(४४१) सम्मुख खड़ी माँ रोहिणी के हाथों में मृदु मन्द भाव से अन्नव्यंजन आदि देते समय, नागरेन्द्र श्रीकृष्ण ने, मदमत्तखञ्जन (पक्षी) के समान नृत्य परायण नयनों वाली प्रेयसी का दर्शन किया, उस समय वह मन ही मन उसी का आस्वादन करते हुए भोजन करने में शिथिल रुचि (अत्यंत धीरे–धीरे पाने लगे) हो गये।

(४४२) माता ने देखा कि कृष्ण का अभी आधा भोजन नहीं हुआ, और किसी–२ वस्तु का तो एक तिहाई भी नहीं पाया और यह भोजन में शिथिलरुचि हो रहा है, देखकर अत्यंत व्याकुल हो उठीं।

(४४३) वे कहने लगीं– वत्स ! क्षुधित होते हुए भी इतने परिश्रम से बनाये हुए इन पदार्थों को क्यों नहीं खा रहे हो। तुम्हें मेरी शपथ, कुछ और भोजन करो।

(४४४) देखो, मैंने यत्नपूर्वक वृषभानु कुमारी को बुलाकर उसके हाथ से सुधा राशि से भी सुस्वादु ये सब अन्नव्यंजन तैयार करवाये हैं, तब भी तुम भोजन नहीं कर रहे हो ! हाय मेरा दुर्भाग्य ! अब मैं क्या करूँ।

अथ सा रोहिणीमाह पश्य रोहिणी ! चञ्चलः।
दुर्बलः क्षुधितोऽप्येष किमप्यत्ति न मन्दभुक्।।४४५।।

(गोवि० ४/५२)

ततःस्नेहपरीतांगी लालयन्त्यघमर्दनम्।
प्रलम्बहन्तुरम्बेयं बभाषे तं पुरःस्थिता।।४४६।।

(गोवि० ४/५३)

यत्नादन्नं साधितं वत्स ! मिष्टं मल्लीमृद्वय्या राधयेदं मया च।
क्षुत्क्षामोऽसि त्वञ्च नाश्नासि तत्तामम्बामेतां माञ्च किंवा दुनोषि।।४४७।।

(गोवि० ४/५४)

जननी तव पश्य खिद्यते, सुत ! निर्मञ्ज्नमत्र यामि ते।
भ्रमतो भविता वने श्रमः, कियदश्नीहि विधेहि मद्वचः।।४४८।।

(गोवि० ४/५५)

भुक्तं मया भूरि गता बुभुक्षे, त्युक्त्वा नियम्योच्छलितं विकारम्।
तं वीक्ष्य मन्दं पुनरप्यदन्तं, ननन्दतुर्नन्दसुतं जनन्यौ।।४४९।।

(गोवि० ४/५६)

---

(४४५) अब माता यशोदा रोहिणी से कहने लगीं– देखो रोहिणी ! यह चंचल बालक दुर्बल है, भूखे होने पर भी नहीं खा रहा। इसकी क्षुधा इतनी मंद हो गयी है।

(४४६) तब स्नेहभरी रोहिणी माता (बलराम जननी) सामने बैठकर श्रीकृष्ण को प्यार करते–२ कहने लगीं–

(४४७) देखो वत्स ! मल्लिका पुष्प से भी सुकोमल अंगों वाली इस राधा ने तथा मैंने कितने परिश्रम से यत्न करते हुए यह सब भोजन पदार्थ बनाये हैं तुम क्षुधाकातर होते हुए भी भोजन न करके क्यों अपनी माँ को, राधारानी को तथा मुझको दुःखी कर रहे हो ?

(४४८) ये देखो तुम्हारी माता कितनी दुःखी हो रही हैं। मैं तुम्हारी बलिहार जाऊँ वत्स ! वन–२ भ्रमण करने में तुमको बहुत परिश्रम होगा अतः कुछ तो आहार करो। हमारी बात मान लो।

(४४९) तब श्रीकृष्ण कहने लगे– माता ! मैंने बहुत सारा भोजन कर लिया है, अब और भूख नहीं है। तत्पश्चात श्रीराधारानी के दर्शन से जो भाव उच्छलित हो रहे थे उन्हें कुछ मात्रा में सम्वरण (छिपाते हुए) करते हुए श्रीकृष्ण कुछ–२ धीरे–२ भोजन करने लगे जिसे देखकर दोनों माता प्रसन्न हो उठीं।

इदमिदमतिमिष्टं वत्स ! भुङ्क्ष्वेति माता सशपथमथ तत्तद्दर्शयन्त्यंगुलीभिः।
सकलमभिलषन्ती कर्त्तुमश्रुप्तुलाक्षी तदुदरगतमन्नं स्वात्मजं वावदीति।।४५०।।
(गोवि० ४/५७)

रसाला–पक्वाम्रद्रव–शिखरिणीषाडवपयः करम्मामीक्षाव्यञ्जन–दधिफलापूप–वटकान्।
कृताम्रेड़ा नेत्रस्तनज–पयसा क्लिन्नसिचयाप्यतृप्ता तं तृप्तं मुहुरथ सुतं प्राशयदियम्।।४५१।।
(गोवि० ४/५८)

भक्ष्यं भोज्यं बहुतरमिष्टं, लेहयं, पेयं मृदुमधुरं ते।
भुक्त्वा पीत्वा रसभरतृप्ताः, सर्वेऽभूवन् वनगमनोच्छुकाः।।४५२।।
(गोवि० ४/५९)

सर्वे सुवासितमृदा मुखपाणिपद्मान्यामृज्य साधु मृदुलेखिकया च दन्तान्।
दासैः प्रणीत–कनकादिक–कुण्डिकासु तैर्दत्तवारिभिरथाचमनं व्यधूस्ते।।४५३।।
(गोवि० ४/६०)

ऐला–लवंग–घनसार–विमिश्रिताभिजम्बूलदत्त–वरखादिर–गोलिकाभिः।
शीतोज्ज्वलाभिरधिवास्य मुदा मुखन्ते सव्येन पूर्णमुदरं ममृजुः करेण।।४५४।।
(गोवि० ४/६१)

---

(४५०) समस्त मिष्ठान्नों को खिलाने की इच्छा से माता अपनी शपथ दिलाते हुए कहने लगीं– वत्स ! यह पदार्थ जो बहुत ही उत्तम एवं मीठा है, कहकर उंगली से दिखाती हुईं नेत्रों में अश्रुभर कर कहने लगीं– 'जो–२ परोसा है वह सब भोजन करो।'

(४५१) नेत्रों के जल एवं स्तनदुग्ध से भीगे वसनयुक्त माँ यशोदा पुत्र के भोजन दर्शन से अतृप्त होकर, रसाला, पके आम का रस, शिखरणी, षाडव (पेय, दूध, दही, मिश्री युक्त) छैने के पदार्थ, दही, फल, पीठे, बहुत प्रकार के बड़े, लड्डू आदि से तृप्त पुत्र को भी बारम्बार कह–२ कर (खाओ और खाओ) भोजन कराने लगीं।

(४५२) चर्व्य, चोव्य, लेह्य, पेय बहुत से मीठे, मृदु मधुर पदार्थों का भोजन, पानकर रसभार से तृप्त वे सब बालकगण अब वन जाने के लिये उत्सुक हो उठे।

(४५३) अब सबने सुवासित मृत्तिका (मिट्टी) द्वारा अपने–२ मुख एवं करकमल धोये और कोमल खड़िका से दाँत साफ किये, फिर दासों द्वारा स्वर्णपात्रों में लाये गये जल द्वारा आचमन किया।

श्रीकृष्ण का विश्राम , उस शोभा को देखकर श्रीराधा के सात्विक विकार :

(४५४) इसके पश्चात् सबने 'जम्बुल' नामक दास द्वारा दी गयी इलायची, लौंग, कर्पूर आदि से मिलाकर कत्थे के चूर्ण (पीसकर बनाया हुआ) से बने मुखवास की गोली को ग्रहण कर, आनन्दपूर्वक बांये हाथ से अपने–२ परिपूर्ण उदर को (पचाने के लिये) मार्जन (हाथ फिराना) करने लगे।

रसाल–करसंस्कृतोपहृत–नागवल्लीस्फुरत्–सुपक्वदलवीटिकाः सुखमदन्त एवोत्सुकाः।
ततः शतपदान्तरविशाल–पल्यंकिकाकुलेष्पथ विशश्रमुः परिजनैरमी बीजिताः।।४५५।।

(गोवि० ४/६२)

तमिह विश्रामितं परिचारकाः, शिखिदलव्यजनैः समबीजयन्।
अवदलय्य दलं मृदुवीटिकाः, प्रभुमथादयति स्म विलासकः।।४५६।।

(गोवि० ४/६३)

निष्क्रम्य धौताङ्घ्रिकरां महानसाद् दासीगणैस्तां व्यजनैरुपासिताम्।
राधां प्रकोष्ठान्तरगां सखीजनैर्विलोकयन्तीं रमणं गवाक्षतः।।४५७।।

(गोवि० ४/६४)

आनन्दज–स्वेदजलैर्बृजेशया, प्रतीयमानां श्रम–कोर्षितेत्यलम्।
भोक्तुं प्रयत्नादुपवेश्य सा मुदा, बलाम्बयान्नानि गृहाददापयत्।।४५८।।

(गोवि० ४/६५)

तया निदिष्टा घृत–संस्कृतान्नं, दातुं धनिष्ठा हरिभुक्तशेषैः।
संमिश्रय गूढ़ं घृतसंस्कृतान्नै, गृंहात्तदानीय ददावमूभ्यः।।४५९।।

(गोवि० ४/६६)

---

(४५५) इसके पश्चात् उन सबने 'रसाल' नामक दास द्वारा बनायी गयी अत्युत्तम पान की बीरी को सुखपूर्वक ग्रहण किया और उत्सुकचित्त से प्रायः सौ पग दूर अपने–२ कक्ष में बिछे हुए विशाल पलंग पर विश्राम किया। परिचारकगण उन सबको व्यजन करने लगे।

(४५६) दासगण श्रीकृष्ण को मयूरपिच्छ रचित व्यजन से हवा करने लगे एवं 'विलासक' दास ताम्बूल पत्र को बीच में से दो भाग कर छोटी–२ कोयल बीरी बनाकर खिलाने लगा।

(४५७) इधर श्रीराधा रानी रसोई से बाहर आकर अपने कर चरण आदि प्रक्षालन कर समीपवर्ती अन्य कक्ष में जाकर (जहाँ से श्रीकृष्ण के दर्शन हो रहे थे) गवाक्ष से अपने प्रियतम को निहारने लगीं।

(४५८) श्रीकृष्ण दर्शन से उनके श्रीअंगों से स्वेद जल निकलने लगा, जिसे देखकर माता यशोदा समझने लगी कि रसोई के परिश्रम से ही यह स्वेदबिंदु आ गये हैं, तब उन्होंने दासीगण को ताल के पंखे से व्यजन करने का आदेश दिया और रोहिणी द्वारा भोजन गृह से भोजन पदार्थ मंगाकर श्रीराधारानी को भोजन करने के लिये बैठाया।

(४५९) जब यशोदा माता ने श्रीराधाआदि सखीगण को घृतयुक्त चावल आदि देने को कहा, तब धनिष्ठा चुपचाप श्रीकृष्ण का अधरामृत लाकर उसमें मिलाकर उन सबको देने लगी।

अनश्नन्तीं ह्रिया वीक्ष्य वस्त्रावृत–नताननाम्।
राधिकामवदत् कृष्णमाता वात्सल्य–विक्लवा।।४६०।।

(गोवि० ४/६७)

जननि ! मयि जनन्यां किं नु लज्जेदृशीयं सुत इव मम चेतः स्निह्यति त्वय्यतीव।
अयि ! तदपनयैनां यामि निर्मञ्छनं ते शिशिरय मम नेत्रं भुङ्क्ष्व पश्यामि साक्षात्।।४६१।।

(गोवि० ४/६८)

यूयञ्च मे स्थ तनयास्त्वनया ह्रिया किं पुत्र्यः कुरुध्वमशनं ललितादयस्तत्।
इत्याग्रहाच्छपथदानशतैश्च माता मिष्ठान्नमिष्टवचनैः समभोजयत्ताः।।४६२।।

(गोवि० ४/६९)

ततो दासी–धौतैः करकमलयुग्मैर्निजनिजैरिमाः प्रक्षाल्यास्यां शशि–सहितवार्भिर्निजनिजम्।
पटैर्मार्जित्वा च स्वपरिजन–दत्ता हिमकरा वियुक्ता वीटीस्ता वरकनकगौर्यो बुभुजिरे।।४६३।।

(संग्रहकर्त्तुः)

हृद्युद्गतैः सुतकरग्रहणाभिलाषैस्तदभूषणैः सुबहुशः सह यानि यत्नात्।
निष्पाद्य तन्नववधु–प्रतिरूपकाणि स्नेहाद्धृतानि सदने वरसम्पुटेषु।।४६४।।

(गोवि० ४/७०)

---

(४६०) श्रीराधा को भोजन न करते हुए तथा लज्जावश सिर झुकाए बैठे देखकर, वात्सल्य से विकल होकर माता यशोदा कहने लगी–

(४६१) हे वत्से ! मैं तो तुम्हें अपने पुत्र के समान ही समझकर स्नेह करती हूँ फिर तुम मुझसे इतनी लज्जा क्यों कर रही हो ? अतएव इस लज्जा का त्याग करो, मैं तुम्हारी बलिहार जाऊँ। तुम मेरे सामने भोजन करो जिसे देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगें।

(४६२) तब ललिता आदि सखीगण से माता यशोदा कहने लगी– अयि पुत्रिगण ! तुम सब मेरी सन्तान तुल्य होकर, मुझसे इस प्रकार लज्जा क्यों कर रही हो ? तुम सब भोजन करो और मैं देखूं। इस प्रकार शत–२ शपथ देकर माता यशोदा ने अतियत्नपूर्वक उनको भोजन कराया।

(४६३) भोजन के पश्चात् दासियों ने उनके करकमल धुला दिये वे स्वर्णवत गौरी सुन्दरियों ने कर्पूर वासित जल से अपने–२ मुख धोकर सूक्ष्म वस्त्र से पौंछ लिये और अपनी–२ दासियों से कर्पूरयुक्त ताम्बूल की बीरी लेकर आरोगने लगीं।

(४६४) श्रीकृष्ण के विवाह की अभिलाषा हृदय में उठने से माता यशोदा ने पहले से ही नववधू के लिये जो बहुत से सुन्दर आभूषण वस्त्रादि बनवाकर स्नेहपूर्वक उत्तम सम्पुटों (बक्स, डिब्बे आदि) में रखे हुए थे।

तैर्भूषणैरथ धनिष्ठकयोपनीतैस्ताम्बूल चन्दन–नवाम्बर–नागजैश्च।
आलीवृतां नववधूमिव तां बृजेशा सम्मान्य हार्दवलिता मुदिता बभूव।।४६५।।
(गोवि० ४/७१)

राधाहृतं यन्निशि तद्विशाखा धनिष्ठयादात् सुबलाय गूढम्।
पीतोत्तरीयं सुबलोऽपि तस्यै नीलाम्बरं कृष्णहृतं तयैव।।४६६।।
(गोवि० ४/७२)

इति श्रीश्री भावना सार संग्रह प्रातर्लीला स्वादनानुमोदनोनाम द्वितीय : संग्रह।। २।।

❖

---

(४६५) उन सब आभूषणों को धनिष्ठा द्वारा मंगवाकर, ताम्बूल, चन्दन, सिन्दूर और नवीन वस्त्र (सारी आदि) आनंदपूर्वक श्रीराधा को नववधू के सदृश मानकर, समर्पण करती हुई माता परम प्रसन्न हुई।

(४६६) तत्पश्चात् निशान्तलीला में, सम्भ्रमवश जो श्रीकृष्ण का पीताम्बर राधारानी पहनकर आ गयीं थी, उसे विशाखा ने प्रातःकाल धनिष्ठा को चुपचाप दे दिया और धनिष्ठा ने एकान्त में सुबल के हाथ में दे दिया एवं श्रीकृष्ण जो राधारानी का नीलाम्बर लेकर चले गये थे वह सुबल ने धनिष्ठा के द्वारा विशाखा के हाथ में दे दिया।

इति श्रीश्री भावनासार संग्रहे प्रातः लीला स्वादनुमोदनो नाम द्वितीय संग्रह

❖

❖ श्री श्री गौरांग विधुर्जयति ❖

श्रीश्री भावना सार संग्रहः

तृतीय संग्रहः

अथ पूर्वाह्ण लीला

हरिवन गति लीलां व्याकुलीभूतगोष्ठां, स्मृति विषयगतां यः कारयामास साक्षात्।
तदनुकरणकारी भक्तवृन्दस्य मध्ये, तमहमिह भजामि गौरचन्द्रं हिनित्यम्।।१।।

कृष्णं गोभिः स्वमित्रैर्विपिनमनुसृतं, गोष्ठं लोकानुयातं, श्रीराधास्फूर्त्ति लोलं तदभिसृतिकृते प्राप्ततत्कुण्डतीरम्।
राधाञ्चालोक्य कृष्णं कृतग्रहगमनमार्ययार्कार्चनायै, दिष्टां कृष्णप्रवृत्यै प्रहितनिज सखी वर्त्मनेत्रां स्मरामि।।२।।
(गोवि० ५/१)

देवप्रस्थ–वरूथपांशु–सुबल–श्रीदामभिः शोभनै–रोजस्थि–प्रमुखैर्विशाल–वृषभ– श्रीस्तोककृष्णार्जुनैः।
सार्द्धं गोपसुताः समानवयसः सर्वे समानाशया गोपेन्द्रांगनमाययुः प्रमुदिताः श्रीकृष्ण संगाशयाः।।३।।
(कृष्णा० ३/१५)

श्रीगौरचन्द्र : (श्रीराधाकृष्ण की पूर्वाह्ण लीला स्मरण में विभोर :–)

(१) सखासह श्रीकृष्ण करैं वन गमन। देखि सब बृजवासी भये व्याकुल मन।।
सोइ लीला स्मरण करैं गौरांग सुन्दर। तदनुकरण लीला करैं मनोहर।।
भक्तवृन्दमध्य नानाभाव विभूषित। अश्रु–कम्प–स्तम्भ–सर्व अंग रोमांचित।
भावविभोर गौरचन्द्र संग भक्तगण। सेवा करैं हम सब आनन्दित मन।।

(२) मूलसूत्र :– पूर्वाह्ण समय जब श्रीकृष्ण धेनुवृन्द तथा सखागणों के साथ वन को जाने लगे, उस समय माता–पिता श्रीनन्द यशोदा एवं सब ब्रजवासीगण उनके पीछे–२ चलने लगे और जो श्रीराधा दर्शनार्थ अति सतृष्णा (पिपासु) एवं चंचल होकर उनके मिलने के लिये श्रीराधाकुंडतीर पर जाकर प्रतीक्षा करते हैं, ऐसे श्रीकृष्ण का हम स्मरण करते हैं और जो श्रीराधा, नन्दालय में श्रीकृष्ण के दर्शन कर, अपने घर जाकर अपनी (सास) आर्या जटिला के सूर्य पूजार्थ आदेश को पाकर, पुनः श्रीकृष्णदर्शन की आशा से अपनी सखी को वन में भेजकर सखी के प्रत्यांगन की प्रतीक्षा में नेत्र बिछा कर बैठीं हैं, उनका हम स्मरण करते हैं।

सखागण की गोष्ठ जाने की तैय्यारी एवं रामकृष्ण का गौचारण वेष :–

(३) देवप्रस्थ, वरूथप, अंशु, सुबल, श्रीदाम आदि सुन्दर वयस्यगण एवं बलवान सखमण्डली के अग्रगण्य विशाल, वृषभ, स्तोक कृष्ण एवं अर्जुन आदि के साथ, समान उम्र तथा समान स्वभाव वाले गोपबालकगण सभी आनन्दपूर्वक श्रीकृष्ण के संग की आशा से नन्दमहाराज के आंगन में आकर एकत्रित हो गये।

सर्वे बर्हविषाण–वेणु–लकुटी–निर्योगपाशान्विता गुञ्जा–धातुफल–प्रवाल–सुमनोभूषाभिराभूषिताः।
प्रातः स्नात–सुमृष्ट–भुक्त–धयित–स्फीताः क्वणन्नूपुराः कृष्णोतिष्ठ जय प्रयाम विपिनं चेत्यूचिरे सत्वराः।।४।।
(कृष्णा० ३/१६)

तेषामागमन–स्वनेन कुतुकादुत्थाय तल्पोदरात् श्रीकृष्णोऽपि विमृज्य नेत्रकमलं व्यावल्गुनिद्रादरात्।
तं वेषं परिहाय वेषमपरं गोचारणे काननक्रीड़ा कौतुकमंगलोचितमथो जग्राह चन्द्राननः।।५।।
(कृष्णा० ३/१७)

तावत् स्वसेवाकृतिलब्धवर्णाः, स्नेहेन दासाः परिफुल्लगात्राः।
तैर्गन्धमाल्याम्बरभूषणैस्ते, विभूषयामासुरधीश्वरं स्वम्।।६।। (गोवि० ४/७३)

भक्तिच्छेदाढ्यचर्च्चां मलयजघुसृणैः धातुचित्राणि बिभ्रद्भूयिष्ठं नव्यवासः शिखिदलमुकुटं मुद्रिकाः कुण्डले द्वे।
गुञ्जाहारं सुरत्नस्रजमपि तरलं कौस्तुभं वैजयन्तीं केयूरे कंकणे श्रीयुतपदकटकौ नूपुरौ शृंखलाञ्च।।७।।
(गोवि० ४/७४)

आत्मैकदृश्यगान्धर्वा–प्रतिबिम्ब–करम्बितैः।
दधद्वक्षस्ययं हारं गुम्फितं स्थूलमौक्तिकैः।।८।। (गोवि० ४/७५)

(४) वे सब प्रातः स्नान कर वस्त्राभूषणों से सजधजकर, भोजन पान सब समाधान कर तृप्त होकर आये थे। सबने मयूरपिच्छ, सींगा, वेणु, लाठी तथा छाँदनडोरी (गाय बांधने की रस्सी) धारण कर रखी थी। सबने गुंजामाला, धातुराग (रंग बिरंग चंदन) की पत्रावली, फल, कपोलें (किसलय) पुष्प आदि के भूषण धारण कर रखे थे, सबके चरणों में नूपूर थे– सब शीघ्र आकर कहने लगे– अरे कृष्ण ! जल्दी उठो, तुम्हारी जय हो ! चलो हम सब वन को चलें।

(५) उनके आगमन को सुनकर ही चन्द्रवदन श्रीकृष्णने कौतुकवश शैय्या से उठकर अपने नेत्रकमलों को किंचित मलते हुए, निद्रा से मलिन उस वेष (पोशाक) का त्याग किया तथा वन में गौचारणोपयोगी तथा क्रीड़ा कौतुकादि करने योग्य अन्य वेष धारण किया।

(६) उस समय अपनी–२ सेवा में विचक्षण दासगण, भक्तिरस से प्रफुल्लितवदन होकर, चन्दन माला, वसन भूषण आदि द्वारा श्रीकृष्ण को सजाने लगे।

(७) तदनन्तर दासगण श्रीकृष्ण को भक्तिछेदाढ्य र्चचा द्वारा (चन्दन की खोर अंगुली फिराकर चन्दन की अलग–२ रेखा विशेष) मलय चन्दन से सजाया। फिर माला, धातुचित्रादि रचना, मस्तक पर मयूरपिच्छ से बना चूड़ाधारण कर, नटवरवेष सजा दिया। ऊंगलियों में अंगूठी, कुण्डलद्वय और. वक्षःस्थल पर गुञ्जाहार, रत्नमाला, वैजयन्ती और कौस्तुम मणि धारण करायी। हाथों में केयूर कंकण, चरणों में नूपूर और पायजेब धारण करायीं।

(८) वक्षःस्थल पर एकमात्र जो अपने को ही दिखायी दे इस प्रकार की श्रीराधा की प्रतिमूर्ती से प्रतिबिम्बित स्थूल (मोटे) मोतियों की माला धारण करायी।

श्रृंग वामोदर–परिसरे तुन्दबन्धान्तरस्थं दक्षे तद्वन्निहित–मुरलीं रत्नचित्रां दधानः।
वामेनासौ सरल–लगुड़ीं पाणिना पीतवर्णां लीलाम्भोजं कमलनयनः कम्पयन् दक्षिणेन।।९।।
(गोवि० ४/७६)

चूड़ा–चुम्बित–चारुचन्द्रक लसद्गुञ्जालतः कर्णयोः पुन्नाग–स्तवकी–मणीन्द्र–मकर श्रीकुण्डलापूर्णयोः।
श्रीवक्षः प्रतिमुक्तमौक्तिकलता–श्रीरञ्जिगुञ्जासरः क्रीड़ाकानन–यानकौतुकमना ब्रभ्राज पीताम्बरः।।१०।।
(कृष्णा० ३/१८)

श्वेताद्रिभ्रम–धारकापघनके कस्तूरिका–चर्चिकां वर्हापीड़मथो दधच्च निटिले केयूर–भूषादिकम्।
वाह्वादौ मणिकाञ्चनैर्विरचितं श्रृंगञ्च यष्टिं सखि–वृन्दैः स्वैः परिवेष्टितोऽसितघटीधारी वभौ श्रीबलः।।११।।

एतन्मध्ये– दधतेऽपचितिं हरे र्न चा, पचितिं प्रेमणि येऽनुयायिनः।
उपसेदुरिमे बृजेश्वरीं, प्रथमं रक्तकपत्रकादयः।।१२।।(कृ० भा० ७/११)

अथ कश्चिदधात्तयार्पितां, तनयामोदक–मोदकावलीम्।
अतिवत्सलता–लतावलत्–फलपालीमिव काञ्चिदर्चिताम्।।१३।। (कृ० भा० ७/१२)

मणिचित्रित–दारुपेटिका, न्तरगामंसतटे वहन्नसौ।
शतकोट्यसुतोऽप्यथादरा, दवधानीयताममंस्त ताम्।।१४।। (युग्मक) (कृ० भा० ७/१३)

---

(९) उदर के बांये भाग में फैंट के बीच सींगा, दांये में जड़ाउ (रत्नों से) मुरली रख (सौंस) दी, बांये हाथ में सीधी सोने की लकुट और दांये हाथ में लीला कमल लेकर घुमाने लगे।

(१०) मस्तक के चूड़ा पर मयूरपिच्छ मानो उसका चुम्बन कर रहा हो एवं उस पर सुंदर गुञ्जामाला की शोभा, कर्णयुगल पुन्नागफल के गुच्छे तथा इन्द्र नीलमणि जटित सुन्दर मकर कुण्डल मण्डित, मनोहर वक्षस्थल पर सुन्दर मुक्तामाला एवं गुञ्जाहार, इस प्रकार की अपूर्व शोभा से सुसज्जित होकर पीताम्बरधारी श्रीकृण वनगमन के लिए कौतुहलयुक्त हो उठे।

(११) और इधर श्वेताद्रि (श्वेत पर्वत का सा भ्रमोत्पादक श्रीअंग) तुल्य श्रीअंग की शुभ्र कान्ति, उस पर कस्तूरी की चर्चा (खोर) मस्तक पर मोरपंख का चूड़ा, भुजाओं तथा अन्यान्य अंगों में मणि जटित कंचन के अलंकार, हाथ में सींगा एवं लकुट, नीलवस्त्र धारण किये श्रीबलराम अपने सखागणों के बीच शोभा पाने लगे।

(१२) इस समय जिनका प्रेम कभी भी न्यूनता (अपचय) को प्राप्त नहीं होता, और जो सेवा में निपुण हैं ऐसे रक्तक पत्रक आदि दासगण जो श्रीकृष्ण के पीछे–२ जाते हैं, माता यशोदा के पास आये।

(१३–१४) बृजेश्वरी ने किसी दास को श्रीकृष्ण के प्रिय मोदक (बहुत से लड्डू) दिये। वह दास अतिवत्सलता रूपी लता के मानो फल हो इस प्रकार समझकर उन उत्कृष्ट लड्डूओं को रत्नजटित काष्ठ निर्मित सम्पुट (डिब्बे) में रखकर, कंधे पर लटकाकर शतकोटि प्राणों से भी अधिक सावधानी पूर्वक रक्षा करता हुआ साथ–२ चलने लगा।

स्तिमितारुण–चेलकञ्चुका, वृत–चन्द्रोपलचित्रझर्झरीम्।
शशि–वासितनीरपूरिता–मपरो विभ्रददभ्रमावभौ।।१५।।

(कृ० भा० ७/१४)

सितमानसवृत्तिमेव ता, मनुराग पिहितां द्रवत्तराम्।
बहिरेष जनान् किमीक्षय, न्नतुलं सौभगरत्नमाददे।।१६।।

(कृ० भा० ७/१५)

स्फटिकोत्तमसम्पुटं परोऽ, वहदन्तः फणिवल्लीवीटिकम्।
अधिकक्षमयं दधार किं, शशिबिम्बं स्वमनोऽधिदैवतम्।।१७।।

(कृ० भा० ७/१६)

वसनाभरणाद्यनेकधा, दध एकः परिधेयमीशितुः।
द्युमतामपि मोहनाय यत्, सुदृशां कार्मणतां प्रपत्स्यते।।१८।।

(कृ० भा० ७/१७)

मुग्ध स्निग्ध–कुमार पार्षदसदो वेषान्तरापादिकां सामग्रीं सपरिच्छदामथ दधद्वासोविभूषादिकाम्।
आदायानुययौ कुतूहल–वशाद् गोष्ठेशयोराज्ञया ताम्बूलस्य च सम्पुटं मणिमयान् भृंगारकांश्चेच्छया।।१९।।

(कृष्णा० ३/१९)

---

(१५) कोई अन्यदास, कर्पूर वासित जलपूर्ण, गीले लाल वस्त्र से आवृत चन्द्रकांत मणिनिर्मित, चित्रित, झंझरी (सुराही) वहन करता हुआ अतिशय सुंदर लग रहा था।

(१६) ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वह दास लालवस्त्र से ढकी हुई चन्द्रकांतमणि की श्वेत सुराही के बहाने अपने अंतःकरण के अनुराग से आच्छादित अपनी द्रवीभूत शुद्धमनोवृत्ति (स्नेहयुक्त शुद्ध दास्यभाव) को ही दिखाता हुआ अतुलनीय सौभाग्यरत्न को प्राप्त हो रहा था।

(१७) अन्य दास स्फटिकमणि विरचित चक्राकृति (गोल) ताम्बूल की बीरियों से पूर्ण सम्पुट हाथ में लेकर चलने लगा। मानो वह अपने–२ मन के अधिदेवता चन्द्र को ही वहन किये हो (अर्थात् उसका मन सर्वदा उस सम्पुट में ही रखा था।)

(१८) और एक सेवक ब्रजयुवराज के पहनने योग्य बहुत प्रकार के वस्त्र अलंकार लेकर चलने लगा– जोकि स्वर्ग की सुन्दरियों के भी मन को मोहित करने वाले (वशीकरण औषध तुल्य) थे।

(१९) नन्दबाबा एवं माता यशोदा के आदेश से मनोहर स्निग्ध–कुमारदासगण अन्य वेष–परिवर्तित करने के लिये वस्त्र सामग्री भूषणादि समस्त सामिग्री लेकर कौतुहल वश श्रीकृष्ण के पीछे–२ चलने लगे और अपनी इच्छानुसर फिर ताम्बूलसम्पुट एवं मणिमय झारी आदि भी साथ ले ली।

जननीजन–नीवृतं द्रुतं, रचयन् हर्षपयः परिप्लुतम्।
बृजतापशतापनोदनः, पुरतो यन् पुरतोरणादभूत।।२०।।

(कृ० भा० ७/२३)

वनमेति मुकुन्द इत्येयं, ध्वनिरेकः स्फुटमुच्चचार यः।
विविध–ध्वनिसूर्भवन्नभात् श्रुतिपालीः स पुरौकसां विशन्।।२१।।

(कृ० भा० ७/२५)

रचयालि मिषं विशारदे ! जरती–वञ्चकमञ्चकं मुदाम्।
निभृतेन पथा भजे वने, प्रिय–संकेतित–कुञ्जमन्दिरम्।।२२।।

(कृ० भा० ७/२६)

सखि ! किं करवै रवैरवै–घिततर्षा हरिगोपुरोदितैः।
वलभीमधिरोढुमप्यहं, न दधेऽस्पन्दवपुः समर्थताम्।।२३।।

(कृ० भा० ७/३०)

अलकैरलमत्र संस्कृतै, र्मदुरोऽप्यस्तुतमामनावृतम्।
सकृदप्यवलोकय माधवं सखि ! जीवेयमितो विमुञ्च माम्।।२४।। (कृ० भा० ७/३१)

---

(२०) इस प्रकार वेशभूषा से विभूषित होकर बृजजनतापहारी ब्रजेन्द्रनन्दन जननीजन रूप जनपद को आनन्दधारा से प्लावित करते हुए (श्लेष में नयनों के जल तथा स्तनो से क्षरित दुग्धध ारा द्वारा आप्लावित करते हुए) सिंहद्वार के आगे जाकर खड़े हो गये।

(२१) श्रीकृष्ण वन को जा रहे हैं इस प्रकार की ध्वनि जब वनयात्रा की घोषणार्थ नियुक्त सेवक ने की वह अंतःपुर में स्थित रमणियों के कानों में प्रवेश कर जिसका जितना भाव था, उसे प्रकट करते हुए कहने लगी।

(२२) कोई सखी कहने लगी– हे चतुरे ! जिस प्रकार वृद्धा की वञ्चना कर (श्रीकृष्ण मिलन रूप उपाय द्वारा) परमानन्द प्राप्त किया जाय ऐसा कोई छल सोचो, मैं तो एकान्तपथ से प्रियतम द्वारा संकेत की गयी निकुंज की ओर चलीं।

(२३) कोई सखी आनन्द से जड़ हो गयी और कहने लगी– 'सखि ! अब क्या करूँ ? सिंहद्वार से श्रीहरि की वनगमन की ध्वनि उठी है, उनके दर्शनार्थ मेरे हृदय में तृष्णा जागृत हुई है, परन्तु जड़ता ने तो आकर मेरे शरीर को गतिहीन बना दिया है, मैं तो अब अट्टालिका के ऊपर चढ़कर दर्शन करने नहीं जा सकती।

(२४) और एक सखी, अपनी सखी द्वारा वेशविन्यास कराते हुए कहने लगी– हे सखि ! मेरी अलकावली को सँवारने की अब आवश्यकता नहीं है और मेरा वक्षःस्थल भी अनावृत ही रहे, रहने दो, मैं केवल एक बार माधव का दर्शन कर जीवनधारण करूँ, अतः मुझे छोड़ दो।

अयि भावि यदस्तुतत् पतिः, कुरुतां दण्डमसह्यमद्यमे।
स्वगुरोरपि पश्यतो बृजा, म्यधुनायं समयो न यत् स्थिरः।।२५।।

(कृ० भा० ७/३२)

अयि दुर्मुखि ! रारटीषि किं, किमिहैकैव निरेमि ते गृहात्।
कलयात्र रुणद्धि का वधू, रधुना स्व स्वपुराद्विनिर्यतीः।।२६।।

(कृ० भा० ७/३३)

अथ तस्य गमनमाह–व्योम्नि व्योमचरैः सुगन्धिकुसुमासारैः समराधितः प्रासादेषु कुलांगनाभिरभितो नेत्राम्बुजैः पूजितः। रथ्यायां शिशुभिर्जयेति मधुराव्यक्तैः कलैरर्च्चितः स्वस्वद्वारि विसारिणां प्रवयसामाशीर्भिरावर्द्धितः।।२७।।

(कृष्णा० ३/२१)

स मन्द्रघोषाभिध–श्रृंगघोषैः, संतोषयन् घोषमपास्तदोषम्।
संमोहयन् हृदब्रजसुन्दरीणां, संपोषयन् प्रेम बहिर्जगाम।।२८।।

(गोवि० ५/२)

---

(२५) गुरुजनों के बीच एक सखी बैठी हुई कहने लगी– अरी, मेरे भाग्य में जो है वो हो जाय, चाहे मुझे पति असह्य दण्ड दें अथवा गुरुजन ही देखकर (भर्त्सना करें) मैं सबका अनादर कर आज श्रीकृष्ण दर्शन को चली, यह समय तो स्थिर नहीं रहेगा (अर्थात् अभी श्रीकृष्ण वन चले जायेंगे।)

(२६) कोई सखी अपनी सास द्वारा रोके जाने पर बोलने को बाध्य हो उठी– 'अरी दुर्मुखि! चिल्ला क्यों रही हो ? मैं क्या अकेली ही घर से बाहर जा रही हूँ ? अपनी आँखों से देखो, कौन सी बहू इस समय घर से बाहर निकल कर नहीं जा रही और कौन सी सास अपनी बहू को तुम्हारी तरह रोक रही है ?

श्रीकृष्ण का वन गमन वर्णन :–

(२७) वन गमन को प्रस्तुत श्रीकृष्ण पर आकाश से देवगण सुगन्धित पुष्पों की वर्षा कर उनकी आराधना करने लगे, अट्टालिकाओं पर चढ़कर बृजसुन्दरीगण अपने नेत्रकमलों द्वारा उनकी सम्यक प्रकार पूजा करने लगीं, रास्ते–२ में शिशुगण 'जय–जय' कहते हुए मधुर ध्वनि करते हुए मानो उनकी अर्चना करने लगे, अपने–२ द्वारों पर इधर–उधर खड़ी वृद्धागण भी आशीर्वाद देकर उनकी सम्वर्धना करने लगीं।

(२८) गोष्ठ को जाते हुए श्रीकृष्ण जगत के अमंगल का नाश करने वाले 'मन्द्रघोष' नामक सींगे की ध्वनि कर ग्रामस्थ लोगों को प्रसन्न करने लगे, बृजांगनाओं के चित्त का विमोहन करने लगे, एवं उनके प्रेम को सम्यक बढ़ाते हुए आगे चले।

गवांस्थाणीश्रेणीस्फुरित मभितोऽल्पावृतिचयोल्लसद्वत्सावास–स्फुरित–तलवृक्षावलि–चितम्।
करीषक्षोदस्योच्चय–मृदुलभूमीतलमसौ ब्रजाभ्यर्णं पूर्णं ब्रजधनजनैर्वाक्ष्य मुमुदे।।२९।।
(गोवि० ५/६)

गोपेन्द्रेण पुरैव दासतनयै गावो विनिष्कासिता दोहानन्तरमेव वत्सनिचयाश्चान्यत्र सञ्चारिताः।
उत्कर्णाश्चकितेक्षणाः प्रणयिता व्यालम्बिहम्वारवास्तस्थुस्ता बृजसीम्न एव निकटे कृष्णप्रतीक्षेक्षणाः।।३०।।
(कृष्णा० ३/२०)

बभ्राजे स गवां गणो हरशिरश्चन्द्रप्रभा भास्वरः श्वेतद्वीप इवापरो वसुमती सञ्चारलीलापरः।
तस्मिन् सन्ततमेव किन्तु भगवान् विक्रीड़ति श्रीधरः श्रीमानेष तु सञ्चरत्यघरिपोरव्यग्रमग्रेसरः।।३१।।
(कृष्णा० ३/२३)

दुग्धाब्धि–प्रसरक्षमा अपि रुचा दुग्धाब्धिशोभाहरा दुग्धाब्धेः स्वयमुत्थिता भगवती लक्ष्मीरिहैव स्थिरा।
सर्वाः कामगवीयशोभरमुषो यासां निपीतं पयः कृष्णेन श्रुतिमूर्त्तयः कथममूर्गावो गिरामाश्रयः ?।।३२।।
(कृष्णा० ३/२४)

---

(२९) पुर से बाहर आकर श्रीकृष्ण ने देखा, कहीं–२ असंख्य गौशालाएं श्रेणीबद्ध बनी हुई हैं, कहीं वृक्षश्रेणी के नीचे छोटे–२ आवरण (छप्पर) देकर वत्स गणों के आवास शोभा पा रहे हैं, सूखे हुए गोबर के चूरे से ढककर किसी–२ स्थान की भूमि अतिकोमल हो गयी है। इस प्रकार बृजवासीजन एवं उनके धन (गायों को) से परिपूर्ण बृज की समीपवर्ती भूमि को देखकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए।

(३०) गोपेन्द्र (नन्दमहाराज) ने पहले ही दासगणों के पुत्रों द्वारा गायों को बाहर निकाल दिया था और दोहन कर बछड़ों को भी अन्यत्र भेज दिया, इधर गायें अपने कान ऊँचे खड़े कर, चकित नेत्रों से, हम्बा ध्वनि करते–२ श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा करती हुईं उनके पथ पर दृष्टि लगा बृज की सीमा पर खड़ी हो गयीं।।

(३१) श्रीमहादेवजी के शिर पर जो शुभ्र चन्द्रमा की प्रभा है उसके समान उज्जवल वर्ण धेनु समूह मानो दूसरे श्वेतद्वीप की रचना करते हुए इस पृथ्वी पर विचरण करते हुए लीलापरायण होकर शोभा पा रहे हैं। उस श्वेतद्वीप में भगवान श्रीधर निरन्तर क्रीड़ा करते हैं, लेकिन यह श्वेतद्वीप तो श्रीकृष्ण के आगे–२ ही सुखपूर्वक विचरण कर रहा है। यह ही अंतर है।

(३२) अहो ! यह धेनुगण दुग्धसमुद्र प्रसव करने में समर्थ हैं एवं कान्तिद्वारा दुग्धसमुद्र की शोभा का हरण कर रहीं हैं। दुग्ध समुद्र से प्रकट हुई भगवती लक्ष्मी स्वयं इन गोगणों में ही अचन्चला होकर विराज रही हैं। यह जो गाय हैं उनमें से प्रत्येक ही कामधेनु समूह की भी यशोराशि का नाश कर रही है (अर्थात् कामधेनु से भी अधिक उत्तम हैं) जिन गायों का दूध स्वयं श्रीकृष्ण पी रहे हैं उन वेदमूर्ती गायों का क्या वाणी द्वारा वर्णन किया जा सकता है।

दृष्ट्वा कृष्णमुपागतं सह सखिव्रातैः समानन्दिताः पङ्क्तीभूय निजेच्छयैव चलिताः केनापि न प्रेरिताः।
कृष्णावेश–मनोविकाश–पिशुनैरानन्दहम्वारवैः। कुर्वाणा हरितां मुखं मुखरितं ताः कीर्णकर्णोत्सवैः।।३३।।
(कृष्णा० ३/२५)

साहंपूर्विकमाशु धावितवतां कृष्णस्य पश्चात् पुरः, पाश्वेषु बृजपालवालसदसां सम्मोद आसीत् परः।
येषां शेखरबर्हिबर्हमहसा सन्मञ्जु गुञ्जावली–भूषाभाभिरभू–महाझलमलत्कारा दिशां मण्डली।।३४।।
(कृष्णा० ३/२६)

तेषां वेणु–विषाण–पत्रनिनदः प्रोद्गीर्ण–कर्णोत्सवः प्रीतानां च गवां मरालमधुरः सम्मोद–हम्बारवः।
तेषां च प्रतिनिस्वनः समभवत् कृष्णप्रयाणोत्सव–श्रीशंसी जय–डिण्डिमध्वनिरिव व्याकीर्य्य धैर्य्यं दिवः।।३५।।
(कृष्णा० ३/२७)

वनाय गच्छन् वनजेक्षणो हरि, र्यतो यतः सन्निदधे पदाम्बुजम्।
ततस्ततः सा बृजभूः समुत्सुका, प्रकाशयामास हृदम्बुजं स्वकम्।।३६।।
(गोवि० ५/१२)

तच्छ्रीपदस्पर्शभर प्रमोदैः, सा फुल्लरोमाञ्चित–सर्वगात्री।
ननन्द कृत्तनि तृणानि भूयः, खुरैः क्षतांगानि च रोहयन्ती।।३७।। (गोवि० ५/१३)

(३३) सखागण के साथ श्रीकृष्ण को पास आया देखकर, ये गायें किसी के द्वारा न चलाये जाने पर भी स्वयं ही आनन्दित होकर पंक्तिबद्ध होकर चलने लगी। वे श्रीकृष्ण में अपने मन को आविष्ट कर प्रफुल्लता व्यक्त करते हुए अपनी हम्बा–२ ध्वनि दिशाओं को मुखरित करने लगीं वह ध्वनि कानों में महोत्सव (परम आनन्द) का विधान करने लगी।

(३४) श्रीकृष्ण के पीछे, आगे और दोनों पास ओर 'मैं ही कन्हैया को पहले स्पर्श करूंगा' यह कहते हुए शीघ्रतापूर्वक दौड़ने वाले गोपबालकगण महानन्दपूर्वक चलने लगे। उनके शिर के भूषणमयूरपंखों की कान्ति एवं सुंदर गुंजाओं की माला आदि भूषणों की प्रभा से चारों दिशाएं झलमल–२ करने लगीं।

(३५) कर्ण रसायण वेणु, सींगे, पत्रादि की ध्वनि (पत्तों को बजाना) श्रीकृष्ण की प्रीति को पाकर गायों की मरालवत् (मेघ या राजहंस) मधुर एवं आनन्दजनक हम्बा रव, इन सबकी प्रतिध्वनि उठकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो श्रीकृष्ण की वनयात्रा रूपी महोत्सव की शोभा सम्पत्ति विशेष की सूचना देने वाला जयरूप स्वर्गवासी जनों के भी धैर्य को ध्वंस करने लगा।

(३६) वनगमन के समय कमलनयन हरि जिस–२ स्थान पर अपने चरणकमल रखते, समुत्सुका बृजभूमि उस–२ स्थान पर अपने हृदय कमल प्रकाश करने लगीं (जिससे प्रभु के चरणों को कष्ट नहीं हो।)

(३७) उनके चरणकमलों के स्पर्श से जो आनंदातिरेक उत्पन्न हुआ उससे बृजभूमि सर्वांग पुलकावली प्रकट करने के छल से मानो नये–२ तृण अंकुर प्रकाशित करने लगी जिसे गायें तोड़–२ कर अपने खुरों से क्षत (कुचलती हुई) करती हुई आनन्दित होने लगीं।

फुल्लाक्षि पद्यातिजवा सुसंभ्रमा, प्रीत्यम्बुवृष्ट्यैधित–सर्वतोमुखा।
वृद्धादि–बालान्त–जनावली–सरिद्, बृजाचलाद कृष्णसमुद्रमाययौ।।३८।।
(गोवि० ५/१४)

क्लिन्नाम्बराक्षि–स्तनजैः पयःस्रवैःस्तथाविधैर्यातृ–मुखांगनागणैः।
अम्बा किलिम्बानुगया बलाम्बया, सहागताम्बा सुतदर्शनोत्सुका।।३६।।
(गोवि० ५/१५)

अन्योन्यसंग–संस्तब्धदृष्टिकल्लोलमुल्वणम्।
कृष्णं रसार्णवं भेजे, राधा–सुरतरंगिणी।।४०।। (गोवि० ५/१६)

मंगला श्यामला भद्रा पाली चन्द्रावलीमुखाः।
सस्वयूथः यूथनाथाः सर्वतस्तास्तमन्वयुः।।४१।। (गोवि० ५/१७)

सह–जन धन वृन्दै र्निगते प्राणनाथे जनगति रव हान्यास्पन्दनालापहीना।
पशु–खुरज–रजोर्भिधूरसररासौ जड़ांगी ब्रजवसतिरथासीत् प्रोषित–प्रेयसीव।।४२।।
(गोवि० ५/१८)

---

(३८) उस समय बृज के आबालवृद्ध नर–नारी रूपी नदी मानो बृजरूपी पर्वत से निकलकर अपने नेत्र रूपी कमलों को प्रफुल्लित करके, श्रीकृष्ण के प्रेम नीर की वर्षा से बाढ़ के समान नेगवती होकर, सबके प्रफुल्ल मुख रूपी जलराशि से परिप्लुत होकर श्रीकृष्ण रूपी सागर में आकर मिलने लगी।

(३६) इधर श्रीयशोदा माता अश्रुपात एवं स्तनदुग्ध से अपने अंग के वस्त्रों का अभिषेक करती हुई, उपानन्द आदि की पत्नी तथा अन्यान्य अम्बा, किलिम्बा तथा बलदेव जननी रोहिणी जी के साथ उत्कण्ठापूर्वक श्रीकृष्णदर्शनार्थ आप पहुंचीं।

(४०) सुरतरंगिणी गंगा जैसे सागर से मिलने जाती है उसी प्रकार सुरत–रंगिणी (प्रेममयी) राधारानी भी अन्योन्यमिलन से स्तम्भित दृष्टिरूपी तरंगों से युक्त होकर श्रीकृष्ण रूप रस–सागर में अवगाहन करने हेतु निकल पड़ीं।

(४१) इधर मंगला, श्यामला, भद्रा, पाली, चन्द्रावली, आदि यूथेश्वरी अपने–२ यूथ के साथ चारों ओर से आकर श्रीकृष्ण का अनुसरण करने लगीं।

(४२) बृजप्राणनाथ श्रीकृष्ण धनजन को लेकर जब गोष्ठ को जाने लगे, बृजबस्ती उस समय प्रोषितभर्तृकानारी (जिसका पति परदेश गया हो) के समान दुर्दशाग्रस्त हो गयी। जिस प्रकार ये नारी न किसी के पास ज्यादा जाती है न बोलती है, न श्रृंगार करती है जड़ सी धूलि धूसरित हुई रहती है, उसी प्रकार बृजवासी जन भी चुप से हो रहे हैं। न अधिक किसी के पास जाते है, जड़वत हो गये हैं। गायों के चरणों से उड़ी धूलि से धूसरित होकर सर्वत्र निरानन्द जड़ता सी छा गयीं।

अन्वयत्पितरौ वीक्ष्य सब्रजौ वनसीमनि।
स्थितेऽस्मिन् वलितग्रीवं तस्तम्भे गोकदम्बकैः।।४३।।

(गोवि० ५/१६)

अनन्तशंकौ स्ववन–प्रयाणे–ऽप्यभ्रदभीतेरनिवारयन्तौ।
अस्राकुलाक्षावपि दर्शनोत्सुकौ, स दुःस्थितोभूत् पितरौ समीक्ष्य।।४४।।

(गोवि० ५/२०)

समीक्ष्य राधा वदनारविन्दे, श्रीनेत्रनृत्यमन्द–खञ्जरीटौ।
सुमंगला स्वां मनुते स्म यात्रां, तदीय–सन्दर्शन–सत्फलां सः।।४५।।

(गोवि० ५/२२)

विमनस्कापि मनसा भावयन्त्यथ तच्छुभम्।
विहस्तापि स्वहस्ताभ्यां जननी तमलालयत्।।४६।।

(गोवि० ५/२४)

सुकुमार–कुमार ! चारयन्, सुरभीर्याहि वनाय यासि चेत्।
अनुयाम वयन्च वन्चय, न्न दृशस्त्वं स्फुटमञ्च किञ्च नः।।४७।।

(कृ० भा० ७/३८)

(४३) वन को जाते हुए कुछ दूर एक ओर खड़े हुए मुख पीछे घुमाकर श्रीकृष्ण ने देखा कि पीछे–२ बृजवासीगण के साथ–२ पिता माता भी आ रहे हैं तब वे निस्तबध होकर खड़े हो गये।

(४४) श्रीकृष्ण ने देखा कि मातापिता मेरे वनगमन में नाना प्रकार की अमंगल आशंका कर रहे हैं, और बहुत प्रकार से निषेध करने पर भी मुझे जाने से रोक नहीं पा रहे हैं, नेत्र में अश्रु भरे हुए है जिनके कारण मुझे देख भी नहीं पा रहे हैं। माता–पिता की यह दशा देखकर श्रीकृष्ण दुःखित हो गये।

(४५) श्रीराधारानी के मुखारविन्द पर परमसुखपूर्वक नेत्ररूपी नृत्य परायण खन्जनयुगल दर्शन कर श्रीकृष्ण मन ही मन विचार करने लगे कि उनके दर्शन रूपी सत्फल से (खंजन के दर्शन से यात्रा का सगुण होता है।) उनकी यात्रा मंगलमय होगी।

(४६) जननी यशोदा विमनस्का (उनका मन मानो उनके पास नहीं है) होते हुए भी मन ही मन पुत्र के मंगल की चिन्ता कर रहीं है और विहस्ता (व्याकुला, हाथों के बिना) होती हुई भी हाथों से पुत्र का लालन कर रहीं है।

(४७) वह श्रीकृष्ण से कहने लगीं – 'हे सुकुमार कुमार ! यदि हठपूर्वक तुम गाय चराने वन को जा रहे हो तो जाओ, किंतु हम भी तुम्हारे साथ ही जाऐगें। हमको दर्शन से वंचित कर तुम कहीं मत जाना।

तनय ! प्रणन्नयं नय, स्वसमीपात क्वचनान्यतो न नः।
न सहस्व सुह्रद्व्थां ह्रदि, स्ववियोगानलहेतिहेतुकाम्।।४८।।

(कृ० भा० ७/३६)

पुरभूषण ! दूषणंत्विदं, नगरी सेयमिमे गृहाश्च ते।
त्वयि निर्गत एव नो वला, न्निगिलन्तीव वृथा स्थितायुषः।।४६।।

(कृ० भा० ७/४०)

प्रहरा झपि भाविनस्त्रयः, प्रहरिष्यन्त्यपयातुमक्षमाः।
न च शीघ्रमिहैष्यसि त्वमि, त्यत् इत्त्थं करवाम् किं वयम्।।५०।।

(कृ० भा० ७/४१)

अरुणाब्जदलश्रेणी क्वते, सुकुमारे विमले पदोस्तले।
तृण–कण्टक–शर्करांकिता, क्व नु सा काननभूमिरेषि याम्।।५१।।

(कृ० भा० ७/४२)

मृगनाभि रसोक्षिता क्व ते, नवनीत–प्रतिमेव हा तनुः।
क्व नु सूर्यकरा इमे प्रति, क्षणवर्द्धिष्णुतमा विषोल्वणाः।।५२।।

(कृ० भा० ७/४३)

---

(४८) हे पुत्र ! तुम नीति का पालन करते हुए अपने से हमको कहीं दूर मत भेज देना। अपने वियोग की अग्नि ज्वाला से जलते हुए हम सब की व्यथा तुमको भी दुःखी करेगी (अतएव हमें दुःखी कर तुम स्वयं भी दुःखी मत होना)।

(४६) हे नन्दालय भूषण ! दुःख यही है, तुम यदि हमको अपने संग नहीं लेकर जाओगे तो यह नगरी यह भवन हमको जैसे खा जाऐंगे और तुम्हारे अदर्शन जनित समय हमारी आयु में वृथा ही (जीवन धारण करना) है।

(५०) आने वाले तीन प्रहरों को बिताना हमारे लिए अत्यन्त कठिन है अतः ये प्रहर तो मानो हम पर प्रहार ही करेंगें। तुम यदि शीघ्र वन से नहीं आवोगे तो हाय हम यहाँ क्या करेंगें।

(५१) हे वत्स ! अरुण कमल दल की निन्दा करने वाले अति सुकुमार तुम्हारे विमल चरण तल कहाँ ? और तृण अंकुरों से युक्त कण्टकाकीर्ण वह वन प्रदेश ही कहाँ ? जहाँ तुम जाना चाह रहे हो।

(५२) मृगमदरस से सिक्त (सींचा हुआ) नवनीत तुल्य तुम्हारा यह श्रीअंग ही कहाँ ? और हाय ! प्रतिपल तीष्ण होकर बढ़ती हुई (विष तुल्य प्रखर) प्रचण्ड सूर्य की किरणें ही कहाँ ? (तात्पर्य तुम्हारे अति कोमल अंग उनको कदापि सहन नहीं कर पाएगें।)

असवो यदमी स्फूटन्ति नो, जनयित्र्यास्तव सौभगोज्झिताः।
अतिनिष्ठुरता–पदे परां, वत साम्राज्यधुरामतो दधुः।।५३।। (कृ० भा० ७/४४)

धवलाः परिपान्तु बल्लवाः, स्वयमेव बृजराज ऐतुवा।
स्वहठं न जहासि हा शिशो, कथमत्र श्वसितु स्वबन्धुता।।५४।।
(कृ० भा० ७/४५)

स्तिमितांग ! सुमंगलामृतै, रजनिष्ठाः किमु बल्लवान्वये।
तृणचारिगणानुगामिता, परिभूतिं मृदुलो यदन्वभूः।।५५।। (कृ० भा० ७/४६)

सरणिस्तरणि–प्रभाज्वलत्–सिकता सूनुरटाट्येतेऽद्य याम्।
जनके कनकेष्टकालये, वसतीत्येतदवेक्षते प्रसूः।।५६।।
(कृ० भा० ७/५८)

अनयाप्यविपद्यमानया, गृहकृत्यं विदधानया मया।
जननीत्यभिधा धृता गत, त्रपया तां स्तुवतोऽप्यमी जनाः।।५७।। (कृ० भा० ७/५६)

---

(५३) तुम्हारी जननी के अभागे यह पाँच प्राण, वक्षःस्थल को विदीर्ण कर बाहर क्यों नहीं हो रहें। ऐसा लगता है यह अतिनिष्ठुर स्थान पर साम्राज्यातिशय प्राप्त कर बैठे हुए हैं (अर्थात यह हृदय अति कठोर है और प्राण किस सुख की आशा से नहीं निकल रहे)।

(५४) हे वत्स ! तुम वन को मत जावो। ये गोपगण गायों को चराकर ले आएगें। यदि तुम यह विचार कर रहे हो कि गृहस्वामी के साथ न जाने से अधर्म होगा तो स्वयं बृजरा (नन्दमहाराज) ही चले जावेंगें। यदि तुम इतने पर भी हठ नहीं छोड़ोगे तो बताओ तुम्हारे बन्धुगण (हम सब) कैसे जीवन धारण करेंगें।

(५५) हे सुमंगल अमृत से सिक्त अंगो वाले कृष्ण ! तुमने इस गोपकुल में ही क्यों जन्म लिया ? तुम जैसे अति सुकोमल श्रीअंगों वाले बालक को तृण चरने वाली गायों के पीछे–२ डोलने जैसा पराभव (छोटा काम) स्वीकार करना पड़ा। हाय ! तुम्हारा तो किसी राजघर में जन्म लेना ही उचित था।

(५६) अब जननी बृजराज को कुछ दुःखित होते हुए कहने लगी– हाय ! हाय ! जिस पथ पर आपका पुत्र गमनागमन करेगा वहाँ की बालुका प्रचण्ड सूर्य के ताप से अग्नि की तरह जल रही है और उसके पिता (आप) स्वर्णजटित शीतल भवन में वास करोगे, यह देखकर मैं (माँ होकर) कैसे जीवित रहूंगी।

(५७) अब वह अपनी ही निन्दा करने लगीं– 'हाय इस प्रकार की अनीति देखकर भी मैं जीवित हूँ और अपने गृह के सब कामकाज सावधानीपूर्वक कर रही हूँ। मेरे जैसी निर्लज्जा जननी की मनुष्य स्तुति करते हैं ! (अर्थात् मेरी तो उन्हें निन्दा करनी चाहिए)।

कुलशायिततता तता ततो, भवतो बन्धुतया निजार्जिता।
कुसुमायित–हृत्वमाश्रयं–स्तदपीमां स्वगुणैरमूमुदः।।५८।।

(कृ० भा० ७/६०)

इति मातृवचः स च श्रुति, प्रथितोतसमिवारचया ताम्।
स्मितचन्द्रमसो रसोक्षणै, रनुतप्तां समधुक्षयन्मनाक्।।५९।।

(कृ० भा० ७/६१)

यमुनापवनोपकण्ठगाः, कलयन्तः सुखमेव हन्त गाः।
विलसाम सुगन्ध शीतले, निविड़च्छायातरुब्रजान्तरे।।६०।।

(कृ० भा० ७/६३)

न च कालनहेतुकः श्रमः, स ममैष्यत्यपि सम्भविष्णुताम्।
घटनादिषु यदगवां नवां, मुरलीमेव विशारदामधाम्।।६१।।

(कृ० भा० ७/३३)

चमरीचय–लूममार्जिता, परिषिक्ता मकरन्द–बिन्दुभिः।
तरुषण्ड–निरातपाभितः, प्रचरन्नाभिमृगातिनासिता।।६२।। (कृ० भा० ७/६४)

(५८) फिर वे श्रीकृष्ण से कहने लगीं– 'हे वत्स ! तुम्हारे वनगमन दर्शन के लिए एकत्रित इन सब बन्धुजनों ने बज्र की तरह कठिन हृदय धारण कर रखा है। तथापि तुम कैसे कुसुमकोमल हृदय हो जो अपने गुण से (दया करके) इनको आनन्दित ही कर रहे हो।

(५९) माता के इन वचनों को श्रीकृष्ण ने अपने कानों में उत्तम भूषण की भाँति धारण करते हुए (अर्थात् प्रेम से सुनकर) अनुतप्ता जननी को अपने मृदुमंद हास्य रूप चन्द्र के रस (अमृत) से सींच कर मानो एकदम सुशीतल कर दिया।

(६०) फिर विनीत वचनों से जननी से कहने लगे :– देखो माता ! गौचारण में मुझे किंचित मात्र भी कष्ट नहीं होगा बल्कि आनंद ही प्राप्त होगा। हम सब यमुना तीर चारिणी धेनु वृन्द को परम सुख से देखते–२, सुगन्धि, सुशीतल घनी छाया युक्त वृक्षावली के नीचे खेलते रहेंगें।

(६१) गायों को सम्हालने (एकत्रित करने) में भी मुझे बिन्दुमात्र भी परिश्रम नहीं होगा, क्योंकि गायों को गोपगणों को सबको एक स्थान में बुलाने का कार्य तो मेरी मुरली (अतिदक्षतापूर्वक) ही कर लेगी।

(६२) जिस पथ पर मैं गमनागमन करता हूँ उसे चमरीमृगगण अपनी पूंछ से स्वच्छ कर देते हैं, और वृक्ष अपने अन्दर मकरन्द रस की वर्षा से उसे सींच देते हैं, छत्र की भाँति धूप से हमारी रक्षा करते हैं, इधर–उधर विचरण करते हुए कस्तूरी मृग गण उस पथ को सुवासित कर देते हैं।

मृदुलामल–तूलिकेव या, नुपदं साधुपदानुभूयते।
न तु मातरवेक्षिता त्वया, प्रसभं या सरणिर्विनिन्द्यते।।६३।।

(कृ० भा० ७/६५)

विविधद्युति–पुष्पबल्लीभि, र्वलितैर्मन्दसमीर–वेल्लितैः।
परितः प्रसरज्झरैररं, शिशरैः सौरभ सौभगोदयैः।।६४।।

(कृ० भा० ७/६६)

पिक–गायक–केकिर्नत्तकै, र्भ्रमदिन्दिन्दिर–वृन्दवन्दिभिः।
क्षितिभृत्तढ–कुञ्जकन्दरै–र्मम चेतोऽनुपदं विकृष्यते।।६५।।

(कृ० भा० ७/६७)

मणिमन्दिरवृन्द–शन्दता, मनयद्यच्छविरेव मन्दताम्।
सवयश्चय–भूषितः शये सुखमत्राप्यतिखिद्यसे कुतः।।६६।।

(कृ० भा० ६८)

अथ सोवाच–शतशः सन्ति मे गोपा निपुणा पालने गवाम्।
पालयामि स्वयमिति वत्स ! कोऽयं दुराग्रहः।।६७।। (गोवि० ५/२५)

बालोऽसि मृदुलस्तत्र विमुक्तच्छत्रपादुकः।
दिनं भ्रमसि कान्तारे जीवेतां पितरौ कथम्।।६८।। (गोवि० ५/२६)

---

(६३) और माता ! वन पथ तो पग–पग पर मुझे मृदुल तूलिका (रूई) जैसा कोमल अनुभव होता है, तुमने कभी उसे देखा नहीं इसलिये उसकी निन्दा कर रही हो।

(६४–६५) और वन में विविध कान्ति वाले पुष्प लता मृदुमंद पवन से हिलते हुए शोभा पाते हैं, चारों ओर सुंदर शीतल जल के झरने बह रहे हैं, कोकिला कुल गान गा रहीं हैं, मयूरवृन्द नृत्य कर रहे हैं, इधर–उधर उड़ते हुए मधुकर वृन्द मानो स्तुतिपाठ कर रहे हैं, इस प्रकार गिरिराज के तट पर स्थित कुञ्जें एवं कन्दराएँ सदा मेरे चित्त को आकर्षित करती रहतीं हैं।

(६६) और माता ! उन गिरिराज की कन्दराओं की शोभा तुम्हारे इन मणिमन्दिरों से भी कहीं अधिक सुखदायक है। मैं तो वहाँ ही अपने वयस्कों के द्वारा (सखागण दूसरे अर्थ में सखीगण) पुष्पादि भूषणों से भूषित होकर सुख से शयन करता हूँ। तुम व्यर्थ ही क्यों चिन्ता करती हो?

(६७) यह सुनकर पुनः बृजेश्वरि कहने लगीं– वत्स गौपालन में निपुण शत–२ दास हमारे यहाँ पर विद्यमान हैं तथापि स्वयं ही गौचारण को जाऊँगा इस प्रकार का हठ क्यों कर रहे हो?

(६८) देखो ! तुम सुकुमार बालक होकर सारा दिन छत्र पादुका आदि के बिना वन में भ्रमण करते डोलोगे, यह देखकर पिता–माता कैसे जीवन धारण करेंगें ?

क्रियमाणाग्रहौ स्वस्य छत्रोपानद्विधारणे।
वात्सल्यव्याकुलौ वीक्ष्य पितरौ प्राह केशवः।।६६।। (गोवि० ५/२७)

गोपालनं स्वधर्मो नस्तास्तु निश्छत्रपादुकाः।
यथा गावस्तथा गोपास्तर्हि धर्मः सुनिर्मलः।।७०।। (गोवि० ५/२८)

धर्मादायुर्यशोवृद्धिर्धर्मो रक्षति रक्षितः।
स कथं त्यज्यते मातर्भीषु धर्मोऽस्ति रक्षिता।।७१।। (गोवि० ५/२६)

सुतस्य साद्गुण्यमवेक्ष्य तृप्तौ (साक्षात्) ननन्दतुस्तौ हृदि यद्यपारम्।
अनिष्टशंकाकुलिता तथापि, गोपान् समाहूय जगाद माता।।७२।।
(गोवि० ५/३०)

सुभद्र ! मण्डलीभद्र ! वत्स भो बलभद्रक।
समर्पितोऽयं युष्मासु बालोऽतिमृदुलश्चलः।।७३।। (गोवि० ५/३१)

यण्त्रणीयः शिक्षणीयः पालनीयश्च वः सदा।
स्वैरी चेच्चलतां याति कथनीयं तदा मयि।।७४।। (गोवि० ५/३२)

---

(६६) पुत्र स्नेह से व्याकुल माता पिता को छत्र पादुका आदि धारण कराने के आग्रह को देखकर श्रीकृष्ण उनसे कहने लगे–

(७०) देखो माता ! 'गोपालन हमारा स्वधर्म है' गायें जिस प्रकार छत्र पादुका के बिना वन–वन विचरण करती हैं उसी प्रकार हम गोपगणों को भी उनके पीछे–२ जाना चाहिए यही सुनिर्मल धर्म है और शास्त्र के भी यही वाक्य है।

(७१) देखो माता ! अपने धर्म का पालन करने से आयु तथा यश की वृद्धि हाती है, जो धर्म की रक्षा करते हैं, धर्म भी सदा उनकी रक्षा करता है, अतएव धर्म ही सकल भयों से रक्षा करने वाला है, अब तुम ही बताओ जननि ! उस धर्म को किस प्रकार त्याग किया जा सकता है।

(७२) महाराज नन्द एवं माता यशोदा, यद्यपि पुत्र के इस प्रकार सद्गुणों से युक्त ध र्मपरायण वचन सुनकर मन ही मन अत्यधिक आनंद का अनुभव करने लगे, फिर भी माता अनिष्ट की आशंका से व्याकुल होकर गोपगणों को बुलाकर कहने लगीं–

(७३) हे सुभद्र ! मण्डलीभद्र ! हे बलभद्र ! हे वत्सगण ! मैं इस सुकुमार अति चंचल बालक को तुम्हारे हाथों में सौंप रही हूँ।

(७४) इसको तुम सब सदा नियंत्रण में रखकर शिक्षा देना, पालन करना। यदि यह स्वेच्छाचारी होकर कोई चंचलता करे तो सब आकर मुझे बताना।

धृतखड्गधनुर्वाणैर्भो वत्सा विजयादयः।
पालनीयोऽप्रमत्तैर्वः सदायमभितः स्थितैः।।७५।। (गोवि० ५/३३)

वत्स ! स्थावर–कन्दरेषु विचरन् दूरप्रचारे गवां हिंस्रान् वीक्ष्य पुरः पुराणपुरुषं नारायणं ध्यास्यसि।
इत्युक्तस्य यशोदया मुररिपोर्ख्याज्जगन्ति स्फुरद् बिम्बोष्ठद्वयगाढपीढ़नवशादव्यक्तभावं स्मितम्।।७६।।
(प० ४/१६)

अंगे सुतस्याथ करेण माता, स्निग्धा स्पृशन्तीश्वरनाम–मन्त्रैः।
नृसिंह–बीजैश्च विधाय रक्षां, बवन्ध रक्षामणिमस्य हस्ते।।७७।।
(गोवि० ५/३४)

आज्ञा मातः पितरिति सुतं संपतन्तं पदान्ते दोर्भ्यां धृत्वा हृदि निदधतौ स्तन्यवाष्पाम्बुसिक्तम्।
चुम्बन्तौ तद्वदन–कमलं मार्जयन्तौ कराभ्यां जिघ्रन्तौ तं शिरसि पितरावूहर्तुवाष्पकण्ठम्।।७८।।
(गोवि० ५/३५)

भूर्द्यौर्भव्या भवतु भवतो रक्षिता श्रीनृसिंहः शस्तः पन्था वनमपि शुभं भावुका दिग् विदिग् च।
स्वागम्यः स्वं पुनरथ गृह मंगलान्गिंगितस्त्वं दत्तानुज्ञाः स इति मुमुदे वत्सलाभ्यां पितृभ्याम्।।७९।।
(गोवि० ५/३६)

---

(७५) हे विजय आदि वत्सगण ! तुम सब सावधानी पूर्वक धनुषवाण, खड्ग आदि धारण कर इसकी चारों ओर से सुरक्षा करना और इसका पालन करना।

(७६) "हे वत्स ! गाय चराते हुए दूर वन में अथवा पर्वत की गुहाओं में से सामने कोई हिंसक पशु देखो तो पुराण पुरुष नारायण का ध्यान करना" यशोदा माता के इस कथन को सुनकर श्रीकृष्ण के मुखारविन्द पर अपने स्फुरित (फड़कते हुए) बिम्बाफलसदृश ओठों को दबाते हुए जो अव्यक्त भावपूर्ण दिखाई दिया वह चतुर्दश भुवन की रक्षा करें।

(७७) तदनन्तर जननी ने स्नेहाद्रचित्त से ईश्वर के नाम और मंत्र आदि उच्चारण कर पुत्र के सर्वांग स्पर्शकर श्रीनृसिंह मंत्र से उनके हाथ में रक्षामणि बांध दी।

(७८) तब श्रीकृष्ण ने– 'हे माता ! हे पिता ! अपनी अनुमति प्रदान करो' इस प्रकार कहते हुए उनके चरणों में प्रमाणार्थ झुके उन्होंने दोनों भुजाओं से उन्हें पकड़कर स्तन्य एवं अश्रुजल से अभिषिक्त करते हुए, मुखचुम्बन, शरीर पर हाथ फिराते हुए, उनका मस्तक चूमा और फिर अश्रुगद्गद्कण्ठ से कहने लगे–

(७९) हे वत्स ! नृसिंह भगवान तुम्हारी रक्षा करें, पृथ्वी, आकाश, पथ, वन, चारों दिशाएं, तुम्हारे लिये मंगलदायक हो, तुम निर्विघ्न घर को लौटकर आ जाओ; इस प्रकार उन्होंने उनको आशीर्वाद प्रदान करते हुए स्नेहपूर्ण आलिंगन कर, वन गमन की आज्ञा प्रदान की। आज्ञा पाकर श्रीकृष्ण परम प्रसन्न चित्त हो उठे।

यथा पितृभ्यां स तथा बलाम्बया, ऽम्बा किलिम्बाद्युपमातृयुक्तया।
गोपैश्च गोपीनिवहैश्च लालितो, यथा हरिस्तैः बलोऽप्यभूत्था।।८०।।

(गोवि० ५/४०)

ब्रजांगनानां तृषिताक्षि–चातकान्–सिञ्चन कटाक्षामृतवृष्टिधारया।
न्यवेदयत् काननयानमात्मन, स्ताभिः स्वदृष्ट्यैव च चानुमोदितः।।८१।।

(गोवि० ५/३८)

तासां मनोदीन कुरंगसंधान् विलोक्य लोलान् रुचिपल्लवान् स्वान्।
निन्ये स्फुटं चारयितुं स्वसंगे सन्दान्य हक्श्रंखलया स्वयासौ।।८२।।

(गोवि० ५/३६)

द्वित्राः क्षेप्याः सुमुखि ! घटिकाश्चक्षुषी मुद्रयित्वा मा गाः खेदं सपदि भविता संगमो नो वनान्ते।
आगन्तव्यं मयि करुणया छद्मनाशु स्वकुण्डं कृष्णाश्चक्रे स्फुटमनुनयं राधिकायां दृशेत्थम्।।८३।।

(गोवि० ५/४०)

ययाचे राधिकामाज्ञां स दृशा दैन्यपूर्णया।
कातर्य्यं वमताभूत्तत्कटाक्षेषानुमोदितः।।८४।। (गोवि० ५/४१)

(८०) श्रीनन्द बाबा, यशोदा, रोहिणी, अम्बा, किलिम्बा आदि माताओं ने तथा गोपीगण ने जिस प्रकार श्रीकृष्ण का लालन किया, उसी प्रकार श्रीबलरामजी का भी किया।

(८१) तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने अपनी चपलचितवन रूपी अमृतवृष्टि धारा से बृजरमणीवृन्द के प्यासे नयन रूपी चातकों को तृप्त कर अपनी वनगमनवार्ता की सूचना दी और उन्होंने भी अपनी नयनकोर से मानो उनकी वनयात्रा का अनुमोदन किया।

(८२) श्रीकृष्ण गाय चराने के लिये जाते समय, गोपिकाओं के मन रूपी दीन मृगों को अति चंचल होते हुए देख, अपनी अंग कान्तिरूपी पल्लव (पत्ते) आस्वादनार्थ, अपने नेत्र रूपी रस्सी से बाँधकर मानो संग ही लेकर चलने लगे (अर्थात् बृजगोपिकाओं के चंचल मन श्रीकृष्ण के रूप जाल में बंध कर साथ–२ चलने लगे)।

श्रीकृष्ण की विदा याचना एवं बृजवासियों की विरह व्याकुलता :–

(८३) अब श्रीकृष्ण अपनी चपलचितवन द्वारा ही मानो श्रीराधारानी को कहने लगे– हे सुमुखि ! नेत्र बंद कर (किसी प्रकार कष्ट सहन कर) कुछ समय बिताओ, दुःखी मत होना, शीघ्र ही हम दोनों का वन में मिलन होगा, तुम कोई भी छल कर (बहाना बनाकर) अपने कुण्ड (श्रीराधा कुण्ड) पर कृपा कर आ जाना' इस प्रकार स्पष्ट रूप से ही श्रीराधारानी से प्रार्थना करने लगे।

(८४) जब श्रीकृष्ण दैन्यपूर्ण नेत्रों द्वारा श्रीराधारानी से अनुमति प्रार्थना करने लगे तब उन्होंने भी कातर नयनों से उनका अनुमोदन किया।

मध्येनमः संमिलनेऽप्यलूनै, र्जवात् प्रविष्टैर्हृदये मिथस्तौ।
कटाक्षवाणैरपि मोदमाप्तो, प्रेम्णो विचित्रा हि गतिर्दुरूहा।।८५।।

(गोवि० ५/४२)

राधामनोमीनमयं स्वसंगे, स्वकान्ति–जालेन निबध्य निन्ये।
रुरोध तच्चित्तमरालमुत्कं, सापि स्वदृक्कूणवन–पञ्जरान्त।।८६।।

(गोवि० ५/४३)

प्रेरयन्नग्रतो धेनूरार्कषन् पृष्ठतो बृजम्।
स मित्रै रावृतोऽरण्यं प्रवेष्टुमुपचक्रमे।।८७।।

(गोवि० ५/४४)

तीर्य्यग्ग्रीवं पुनः प्रेक्ष्य सब्रजौ स्नेह–कर्षितौ।
अन्वायान्तौ–पुरस्तिष्ठन्नब्रवीत् पितरौ हरिः।।८८।।

(गोवि० ५/४५)

मातर्नातः परमिह पुरो गन्तुर्महयाटवी वो व्यवर्त्तध्वं त्वरितमिह मे प्रापणीया रसाला।
तातैषाद्य त्रुटितशिखरा कन्दुक–क्षेपणी मे गत्वा घोषं झटिति सुदृढाः पञ्चषाः कारणीया।।८९।।

(गोवि० ५/४६)

---

(८५) युगल किशोर के कटाक्ष रूपी वाण (दोनों) आकाश में मिलकर अच्छिन्न रूप से एक दूसरे के हृदय को घायल करने लगे, फिर भी इससे उन दोनों को आनन्द ही प्राप्त हुआ। ओहो! प्रेम की गति कितनी दुरुह है।

(८६) वन को जाते हुए श्रीकृष्ण राधारानी के चित्त रूपी मीन को अपनी कांति रूपी जाल में बांध कर संग ले गये और श्रीराधा ने भी श्रीकृष्ण के उत्कंठित चित्त रूपी हंस को अपने नेत्र (कुछ–२ बंद करते हुए) रूपी पिंजरे में आबद्ध कर रख लिया।

(८७) श्रीकृष्ण ने तब धेनुवृंद को आगे किया और पीछे खड़े बृजवासियों की चित्तवृत्ति को आकर्षित करते हुए, मित्रगणों से घिर कर वन की ओर चलने लगे।

(८८) पुनः कुछ ग्रीवा पीछे को घुमाकर श्रीकृष्ण ने देखा कि बृजवासीजनों के साथ स्नेह से बंधे हुए माता–पिता मेरे पीछे–पीछे आ रहे हैं तब वो सामने होकर खड़े हो गये और कहने लगे–

(८९) हे माता ! इसके आगे अब और वन की ओर आप मत चलना। यहीं से लौट जाओ। घर जाकर मेरे लिये शीघ्र रसाला (रसमय पेय) भेजना। और हे पिताजी ! आज मेरी गेंद को उछालने वाला आगे का भाग टूट गया है आप घर जाकर बहुत सुदृढ़ (मजबूत) गेंद मेरे लिये पाँच छः बनवा देना।

वलितग्रीवमूर्धास्यं क्षुधितास्तृषिता अपि।
तस्तम्भिरे पुरो गावः पश्याम्ब मदपेक्षया।।६०।।

(गोवि० ५/४७)

प्रेषयिष्यामि सद्भोज्यं भुक्त्वा मध्याह्न एव तत्।
आगेच्छेरपराह्न त्वं तूर्णमित्याह त प्रसूः।।६१।।

(गोवि० ५/४८)

सोऽप्यब्रवीत्तं कृतभोजनौ चेत् श्रोष्यामि गेहे मुदितौ भवन्तौ।
भोक्ष्यामि भोज्यं प्रहितं तदा ते गृहं समेष्यामि न चान्यथाम्ब।।६२।।

(गोवि० ५/४६)

कृतावनः कायमनोवचोभिः, संसिक्तदेहः स्तनदृक्पयोभिः।
स चुम्बितालिंगित आकुलाभ्यां, मुहुर्मुहुदृष्टमुखः पितृभ्याम्।।६३।।

(गोवि० ५/५०)

उद्यद्वियोगोष्ण–रवि–प्रतापितैः, सिक्तैर्निज–प्रेक्षणवीचि–शीकरैः।
कटाक्षधारा–नलनालिकाचयै–र्निपीतलावण्यरसः प्रियागणैः।।६४।।

(गोवि० ५/५१)

---

(६०) हे माता ! देखो सामने ! गायें भूखी, प्यासी अपनी गर्दन तथा मुख पीछे को घुमाकर मेरे आने की प्रतीक्षा करती हुए खड़ी हैं।

(६१) तब माता यशोदा कहने लगी– 'वत्स ! तुम्हारे लिये सुन्दर भोजन के पदार्थ वन में भेज दूंगी तब दोपहर (मध्याह्न) में भोजन करके फिर अपराह्न (संध्या होने से पूर्व घर को आ जाना।)

(६२) तब श्रीकृष्ण कहने लगे–'हे माता यदि मैं यह सुन पाऊँगा कि तुमने भोजन आदि कर लिया है और अच्छी तरह से घर में प्रसन्नतापूर्वक अवस्थान (रहना) कर रही हो, तभी मैं तुम्हारी भेजी हुई वस्तुओं का भोजन करूंगा अन्यथा मैं घर को नहीं आऊँगा।

(६३) श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर पिता–माता उनकी काय मन तथा वाणी से रक्षा का विधान करते हुए, माता अपने स्तनदूध एवं अश्रुओं से श्रीकृष्ण की देह का अभिषेक करते–२ (भिजाते हुए) बारम्बार उनका मुखचुम्बन एवं आलिंगन कर, व्याकुल नेत्रों से उनके मुख को देखने लगे।

(६४) इधर श्रीकृष्ण की प्रिया (श्रीराधा आदि यूथेश्वरीगण) उनके वियोग रूपी प्रखर ताप से उत्तप्त हो रही थी, श्रीकृष्ण ने अपनी चितवनरूपी जलधारा से उनको शीतल किया और वे अपने कटाक्ष रूपी प्रणालिका (नल की धारा) द्वारा उनके श्रीअंग का लावण्यरस पान करने लगीं।

ब्रजत्यागारण्ययानोत्पन्नाभ्यां नन्दनन्दनः।
वैमनस्योन्मनस्याभ्यां व्यग्रोऽसौ प्राविशद्वनम्।।६५।। (गोवि० ५/५२)

बृजस्य कृष्णे निहिते क्षणस्या, खिलेन्द्रियाणां नयनत्वमासीत्।
तस्मिन् वनेनान्तरितेक्षणेन, तेषां समन्तात् सुविलीनताभूत्।।६६।।
(गोवि० ५/५३)

चरत्वतः स्थावरतैव धन्या, वनं प्रयात्येष विहाय यन्नः।
इतीव खिन्नाः स्फुटमादधुस्तां, स्तम्भस्य दम्भाद्ब्रजवासिनस्ते।।६७।।
(गोवि० ५/५४)

हरेश्चिल्ली–चिल्लीगिलितमति–मीलच्छफरिका मुखाम्भोजान्म्लानाच्चलितचलदृष्टि–भ्रमरिकाः।
वियोगोद्यत्पंकावलि–पतितहंसा न विवभू–स्तदाभीरीनद्यो वनशुचिह्वते जीवनधने।।६८।।
(गोवि० ५/५५)

अभ्यासतोऽथ ब्रजवासिनस्ते, विमोहितौ तौ ब्रजपौ गृहीत्वा।
कृष्णनुगामिस्वमनोविहीनै–र्देहैः परं गेहमयुर्निरीहाः।।६९।। (गोवि० ५/५६)

(६५) अब श्रीकृष्ण बृजत्याग के लिए विमनस्क (मन न होते हुए भी) एवं वन जाने की व्याकुलता एवं शीघ्रता के साथ वन की ओर चलने लगे।

(६६) बृजवासीगण श्रीकृष्ण की ओर एकटक दृष्टि से देखते रहे जब तक वो दिखाई दे रहे थे तब तक उनकी सब इन्द्रियों ही मानो नयन बन गयीं थीं, और जब उन्होंने वन में भीतर प्रवेश कर लिया और उनका दिखायी देना बंद हो गया तद क्षण काल में वे सभी इन्द्रियाँ जड़ की तरह चेष्टाहीन हो गयीं।

(६७) बृजवासीगण मन ही मन विचार करने लगे कि हम (जंगम, चलने वालों से) से तो वन के वृक्षलता (स्थावर, अचल) ही धन्य है, जोकि श्रीकृष्ण हमको छोड़कर उनको सुख देने जा रहे हैं, अतएव खिन्न होकर स्तम्भित (जड़वत्) दशा को प्राप्त हो गये।

(६८) बृजवासीजन के जीवनधन श्रीकृष्ण जब वन को जाने लगे तब गोपीगण उसी प्रकार कांतिहीन हो गयीं, जैसे ग्रीष्म के ताप से नदी का जल सूख जाता है। श्रीकृष्ण की भ्रू–रूपी चिल्ली (पक्षी) ने उनकी विवेक बुद्धि रूपी शफरी (छोटी मछली) को मानो ग्रास कर लिया। उनकी (गोपियों की) चंचल दृष्टि रूपी भ्रमरी उनके मुखकमल का त्याग कर उड़ गयी तथा उनका जीवनरूपी हंस मानो श्रीकृष्ण विरह रूपी पंक (कीचड़) में डूब गया (फंस गया)।

(६९) तत्पश्चात् श्रीकृष्ण के पीछे (साथ) गये हुए अपने मन से विहीन होकर बेचारे बृजवासी, शोक से विमोहित (मूर्च्छितप्राय) होकर, नन्दयशोदा को साथ लेकर, अभ्यासवश अपने घरों को लौट आये।

स्वां स्वां सख्योऽपि यूथेशां यत्नादादाय मूर्च्छिताम्।
निन्युर्गृह यन्त्रचंचत् प्रतिमाः प्रतिमामिव।।१००।।

(गोवि० ५/५७)

कुन्दबल्लयथ तां राधां स्वयं व्यग्राप्यचेतनाम्।
आदायायाद् ब्रजं यत्नाद्विचित्तैस्ततसखीजनैः।।१०१।।

(गोवि० ५/८५)

यद्यप्यस्मिन् न्यस्तचित्ता ब्रजस्था, आ तद्दर्श ज्ञप्तिशून्यास्तथापि।
तत्तत्कर्मण्याचरन्ति स्म यद्वज, जीवन्मुक्ता देह–संस्कारतस्ते।।१०२।।

(गोवि० ५/५६)

निर्माणोत्कां स्वपथि जाटिलां गोशकृत्पिण्डिकानां वध्वा वर्त्मन्यथ धृतदृशं व्याकुलां कुन्दबल्ली।
दृष्ट्वादीज्जड़िम–कलितां राधिकां चेतयन्ती कृष्णाभ्यर्णं नयनिपुणधीस्तूर्णमेणां निनीषुः।।१०३।।

(गोवि० ५/६०)

नमाम्यार्ये ! स्नुषेयं ते कल्याणी नीयतां पुरः।
छायाप्यस्या न कृष्णस्य दृष्टि गोचरतां गता।।१०४।। (गोवि० ५/६१)

---

(१००) यन्त्र से चलायी गयी लकड़ी की प्रतिमा जैसे दूसरी प्रतिमा को खींच कर ले जाय, उसी प्रकार सखीगण भी यत्नपूर्वक श्रीकृष्ण विरह से मूर्च्छिता अपनी–२ यूथेश्वरी को लेकर घर को लौट आयीं।

श्रीराधारानी का यावट को लौटना और अभिसार का आयोजन :–

(१०१) स्वयं विरहकातर होने पर भी कुन्दलता चेतनाशून्य सखीगणों के साथ अचेतना श्रीराधारानी को लेकर बृज (यावट) को आ गयीं।

(१०२) यद्यपि बृजवासीगण का चित्त श्रीकृष्ण को समर्पित हो चुका था और श्रीकृष्ण के पुनः वन से लौट आने तक वे अचेतन से हो हुए रहते थे, फिर भी जैसे जीवन्मुक्तपुरुष देह संस्कारवश सभी कार्य करते हैं (उनका मन भगवान मैं ही रहता है) उसी प्रकार वे सभी गृहकार्य करने लगे।

(१०३) इधर जटिला अपने पथ पर कण्डे बनाते हुए अपनी वधू श्रीराधा के लौटने की चिंता से व्याकुल होकर उसका पथ देख ही रही थी कि सामने से कुन्दलता, श्रीराधा को चेतन करके पुनः उनको श्रीकृष्ण के साथ मिलन कराने की चेष्टापरायण होकर, जटिला के पास आकर कहने लगी–

(१०४) आर्ये ! आपको नमस्कार, यह तुम्हारी बहू आ गयी है इसको मैंने इतनी सावधानी से रखा है कि इस कल्याणी की छाया पर्यन्त भी श्रीकृष्ण स्पर्श नहीं कर सके।

साब्धिद्वीपा भवति पृथिवि यस्य नैकस्य मूल्यं तादृग्–दिव्यामितमणिमयं पश्य शच्याप्यलभ्यम्।
सर्वांगीनं वसन–सहितं भूषणं दत्तमस्यै गोष्ठेश्वर्य्या मुदितमनसा पाकनैपुण्यतोऽस्याः।।१०५।।

(गोवि० ५/६२)

धर्माथलाभान्मुदिता स्नुषाया, स्तयैव कार्यान्तरमुच्चिकीर्षुः।
स्वाभीष्ट–सम्पादन–लब्धवर्णां, मत्वावदत्तां जटिला स्तुवन्ती।।१०६।।

(गोवि० ५/६३)

एहयेहि वत्से ! कुशलं भवत्या–स्त्वच्छील–निर्मञ्छनमाशु यामि।
स्निग्धासि यत्त्वं मयि सस्नुषायां मदाशिषा तत् सुतवस्करा स्याः।।१०७।।

(गोवि० ५/६४)

स्वयं साध्वी प्रगल्भा त्वमन्यासां धर्मपालने।
आत्मनीव प्रतीतिर्मे त्वयि त्वां प्रार्थये ततः।।१०८।।

(गोवि० ५/६५)

धर्मे पत्न्या पालिते तत्पतिः स्यात् गोमान् पुत्री वित्तवांश्चायुराढ्यः।
इत्याहास्मान पौर्णमासी स्मृतिज्ञा, सेयं तत्त्वयार्पिता धर्मगुप्त्यैः।।१०९।।

(गोवि० ५/६६)

---

(१०५) हे मान्ये ! यह देखो, बृजेश्वरि ने इसके पाकनैपुण्य से संतुष्ट होकर, इसको सर्वांग शोभा देने वाले वस्त्रों के सहित समस्त महामूल्य मणिमय आभरण दिये हैं, ससागरा सप्तद्वीपवती पृथ्वी भी जिस एक मणि के मूल्य की समता नहीं कर सकती (अर्थात् महामूल्यवान मणियों के भूषण) ये दिव्य मणिजटित भूषण शची (इन्द्रपत्नी) के लिये भी दुर्लभ हैं।

(१०६) जटिला, कुन्दलता को अपने अभीष्ट कार्य सम्पादन में कुशल देखकर और धर्म (श्रीकृष्ण से रक्षा करना) अर्थ की प्राप्ति कराके, पुत्र वधू को घर में लौटा कर लाना, इससे प्रसन्न होती हुई पुनः अन्य कार्य कराने के लिये उसकी (कुन्दलता की) प्रशंसा करती हुई कहने लगी–

(१०७) आओ आओ वत्से ! तुम कुशल से तो हो ? तुम्हारे स्वभाव की मैं बलिहारी जाती हूँ। पुत्रवधू सहित मेरे प्रति जो तुम्हारा स्नेह है, उसके लिए मैं तुम्हें आशीर्वाद करती हूँ–तुम सात पुत्रों की जननी बनो।

(१०८) तुम स्वयं सती साध्वी होकर अन्य साध्वी नारियों के धर्म की रक्षा करती हो, तुम्हारे प्रति मेरा अपनी आत्मा (अपने जैसा) वत् विश्वास है, इसीलिए एक प्रार्थना कर रही हूँ।

(१०९) जिन पुरुषों की पत्नियाँ अपने धर्म का पालन करती हैं उनकी गायें, पुत्र, वित्त, आयु सभी की वृद्धि होती है। यह बात हमने स्मृतिशास्त्र जानने वाली पौर्णमाशी देवी से सुन रखी है अतएव मैं धर्म की रक्षार्थ अपनी पुत्रवधू को तुम्हारे हाथों में सौंपती हूँ।

धर्मादर्थश्च कामश्चेत्यादि सत्यं सतां वचः।
यतोऽस्याः पालिताद्धर्माद्भूयानर्थोऽपि साधितः।।११०।।

(गोवि० ५/६७)

एकः सुतो मे कुशली यथासौ, कुलेऽमले स्यान्न यथा कलंकः।
धर्मं तथास्याः परिपालयन्ती, निर्वाह्य सूर्यार्चनमानयैनाम्।।१११।।

(गोवि० ५/६८)

राधे ! त्वं ताम्रकुण्डीमरुणकपिलिकाक्षीर–दध्याज्यमिज्यं सर्पिष्कान्नं जवामैक्षवमथ घुसृणं पत्रकं पद्ममालाम्।
सार्द्धं सख्यानयेत्यद्युपकरणचयं पुत्रि ! गेहाद् गृहीत्वा गार्ग्या वा केनाचिद्वार्चनपटुवटुना याहि सूर्यार्चनाय।।११२।।

(गोवि० ५/६९)

चण्डासि साध्वी ललिते त्वयासौ नैकाकिनी क्वापि सखी विधेया।
गन्धोऽपि यस्यां किल नन्दसूनो–स्तस्यै दिशे वोऽञ्जलिरेव कायः।।११३।।

(गोवि० ५/७०)

अत्यारूढं दिनं वत्से ! सन्ति गोमयराशयः।
युवर्योन्यस्तभारा स्यां निश्चिन्तोत्पलिकाकृतौ।।११४।। (गोवि० ५/७१)

(११०) सज्जनों का कहना है– धर्म से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है यह अति सत्य वचन है। मेरी बहू ने धर्म का पालन किया है इसीलिये तो इसे इतनी धन सम्पत्ति की प्राप्ति हुई है।

(१११) देखो मेरा एक ही पुत्र है वो जिस प्रकार कुशल से रहे और हमारे निष्कलंक (निर्मल, कलंकरहित) कुल में कोई दोष न लगे उसी के उपयुक्त धर्म की शिक्षा देकर तुम इस राधा को सूर्य पूजा कराके घर ले आना।

(११२) पुनः श्रीराधा को कहने लगी, 'हे राधे ! तुम कुन्दलता के साथ घर से तांबे की कुण्डी, लालरंग की कपिला गाय का दूध, घी, दही, घी पकाये द्रव्य, गुड़, जवा के पुष्प (लाल) कुंकुम, लालचन्दन, कमल की माला आदि सामग्री लेकर गार्गी या कोई सूर्य पूजा कराने में कुशल ब्राह्मण कुमार द्वारा सूर्यपूजा करने जाओ।

(११३) तब वह जटिला ललिता से कहने लगी– 'हे ललिते ! तुम साध्वी एवं चतुरा हो, तुम अपनी सखी राधा को कभी भी अकेली नहीं छोड़ना। जिस दिशा में नन्दनन्दन हों उस दिशा को तो तुम दूर से ही प्रणाम करना।

(११४) पुनः कहने लगी– 'हे कुन्दलते ! हे ललिते ! देखो कितनी दोपहर होती जा रही है मेरा तो अभी कितना गोबर थापने को रखा है, अब मैं तुम्हारे हाथों में राधा को सौंपकर निश्चिन्तमन से उपले (कंडे) बनाने में लग जाऊँगी।

तामूचतुस्ते हृदि संप्रहर्षिते, निश्चिन्तमार्ये ! क्रियतां क्रिया निजा।
आवमवावः सततं भवद्वधूं, तारामिवाक्ष्णः सह पक्ष्यलोचके।।११५।।

(गोवि० ५/७२)

ताः प्रोन्मत्ता अपि जटिलायाः, पीत्वाज्ञावाङ्–मधु मधुरांगयः।
आनन्दोत्फुल्लित तनुचित्ता, धैर्य्यं धृत्वा गृहमनु जग्मुः।।११६।।

(गोवि० ५/७३)

आगत्य खट्टोपरि सन्निविष्टां, श्रीराधिकां क्षालित–मार्जितांघ्रिम्।
दास्यो मुदा पर्यचरन्निजेशां, पादाब्ज–सम्वाहन–वीजनाद्यैः।।११७।।

(गोवि० ५/७४)

मल्ली–रंगण–कर्णिकार–बकुलामोघा–लता–सप्तला–जाती–चम्पक–नागकेशर लवंगाब्जादि–पुष्पोच्चयम्।
श्रीवृन्दा–प्रहितं वनादलिकुलास्पृष्टं दरोज्जृम्भितम् स्वेश्वर्य्याः पुरतो न्यधाद्वनसखी श्रीनर्मदा मालिकी।।११८।।

(गोवि० ५/७५)

कृष्णांगकामालय–वैजयन्तिकां, तैर्वैजयन्ती विरचय्य सा व्यधात्।
राधा स्वनैपुण्यगुणादि–सूचिकां, कर्पूर–कृष्णागुरु सत्व–भाविताम्।।११६।।

(गोवि० ५/७६)

---

(११५) तब कुन्दलता एवं ललिता अत्यंत प्रसन्न होकर कहने लगीं– 'हे आर्ये ! आप निश्चिन्त होकर अपना काम करो, जिस प्रकार दोनों पलकें, आंखों के तारे की रक्षा करती हैं उसी प्रकार हम सब आपकी पुत्रवधू की रक्षा करेगी।

(११६) तत्पश्चात् मधुर अंगों वाली वे सखीगण, जटिला की आज्ञा रूप मधु पान से उन्मत्ता एवं आनन्द से उत्फुल्लचित्ता होकर, धैर्य धारण कर घर को चली आयीं।

(११७) श्रीराधा घर आकर पलंग के ऊपर बैठ गयीं, दासियों ने आनन्दित होकर उनके चरण धुलाये, पौंछें। चरण दबाकर व्यजन आदि करके विविध प्रकार से राधारानी की सेवा करने लगीं।

(११८) तब श्रीराधा की वन सखी नर्वदा नामकी मालिनी जिसको वृन्दा देवी ने भेजा था, वन से भ्रमर द्वारा अस्पृष्ट (जिन फूलों को भ्रमरों ने मधुपान नहीं किया है) अधखिले मल्लिका (मोतिया) रंगन (कनेर लाल, सफेद) बकुल, माधवी, नवमल्लिका, जाती, चमेली, नागकेशर, लवंग, कमल आदि के पुष्प लाकर राधारानी के सामने उपस्थित हुई।

(११६) वृन्दादेवी द्वारा भेजे हुए कुसुम समूह को कर्पूर, अगरु आदि से और अधिक सुगन्धित कर राधारानी ने अपनी शिल्प (माला गूंथने) पटुता की सूचना देने वाली, श्रीकृष्ण अंग रूप कन्दर्प भवन की पताका स्वरूप वैजयन्ती माला निर्माण की।

ऐलेन्दु जातीफलखादिरान्विताः, स्वपाणिहृत्सौरभ–राग भाविताः।
कृष्णाक्षिचित्तानन–चन्द्ररञ्जिका–, सा नागवल्ली दल वीटिका व्यधात्।।१२०।।

(गोवि० ५/७७)

मालामेतां तुलसि ! हरये वीटिकाश्चोपहृत्य ज्ञात्वा वृन्दा–सुबलमुखतः केलिसंकेत–कुञ्जम।
आगच्छाशु त्वमिति ललिता–प्रेरितादाय तां ताः कर्स्तूर्याली–सहित–तुलसी कृष्णपार्श्वं प्रतस्थे।।१२१।।

(गोवि० ५/७८)

श्रीराधिकाप्यथ सखी सहितातिदक्षा, श्रीकृष्णचन्द्र सकलेन्द्रिय तर्पणानि।
कर्पूरकेल्यमृतकेलिमुखानि कामं, कर्त्तुं समारभत साद्भुत लड्डुकानि।।१२२।।

(गोवि० ५/७६)

यदपि निजसखी सान्वेषणायास्य याता स्वयमपि च निमग्ना कृष्णसम्बन्धिकृत्ये।
तदपि हरिमुखेन्दोर्दर्शनोत्काथ मेने क्रुटिमपि युगलक्षं व्यग्रराधा–चकोरी।।१२३।।

(गोवि० ५/७०)

वृन्दया प्रहिता काचिदाससादातिसत्वरा।
वृन्दावनेश्वरीं नत्वा जगाद क्रीड़ितं हरेः।।१२४।।

---

(१२०) अपने हस्तकमल की सुगन्ध से युक्त, हृदय के अनुराग से सुवासित, एवं श्रीकृष्ण के नयन एवं चित्त को प्रसन्न करने वाली एवं मुखचन्द्र को रञ्जित करने वाली इलायची, कर्पूर, जायफल, कत्था आदि से युक्त पान की बीरी बनाकर तैयार की।

(१२१) तब ललिता जी ने तुलसी मञ्जरी से कहा, 'तुलसी ! तुम यह माला एवं बीरी ले जाकर श्रीकृष्ण को उपहार में देना और वृन्दा तथा सुबल से केलिकुञ्ज (जिस कुञ्ज में मिलन होगा) के बारे में जानकर शीघ्र आओ। इस प्रकार आदेश पाकर तुलसी, कस्तूरी सहित, माला एवं पान की बीरी लेकर श्रीकृष्ण के समीप चल पड़ी।

(१२२) तत्पश्चात् सखीगण के साथ मिलकर राधारानी, श्रीकृष्ण की सकल इन्द्रियों को तृप्त करने वाली कर्पूर केलि, अमृतकेलि, आदि लड्डू एवं मिष्ठान्न बनाने लग गयीं।

(१२३) यद्यपि श्रीकृष्णान्वेषणार्थ अपनी सखी तुलसी को भेज चुकीं थीं एवं स्वयं भी श्रीकृष्ण सेवा सम्बन्धी कार्यों में ही लगी हुई थीं, तथापि बृजचन्द्रमा के अदर्शन से व्याकुल होकर राधा चकोरी एक क्षण काल को भी लक्षयुग (लाखों युग) के समान समझने लगीं।

वृन्दादेवी द्वारा राधारानी के पास किसी वनसखी को भेजना एवं वनक्रीड़ा का वर्णन करना :–

(१२४) उसी समय वृन्दादेवी द्वारा भेजी गयी किसी वनसखी ने अतिशीघ्रतापूर्वक आकर श्रीवृन्दावनेश्वरि राधारानी को प्रणाम किया और श्रीकृष्ण की वनक्रीड़ा का वर्णन करने लगी–

वेणुं वामकरेण दक्षिण करेणान्दोलयन् कन्दुकं सैन्दूरं न विदूरयन् वदनतो रागं वसन्ताभिधम्।
उद्गीते सुबलादिभिः प्रियसखैः श्रीमूर्द्ध–निर्धूनने–नास्वादं प्रथयन् मदालस लसद् घूर्णायमानेक्षणः।।१२५।।
(आ० १४/१४१)

पार्श्वद्वये प्रियसखद्वयदीयमानं, ताम्बूलिका दलपुटं पुरट–प्रकाशि।
स्निग्धेन शोणवदनच्छदनद्वयेन, लीलाक्रमादुभयतः कुतुकेन गृह्णन्।।१२६।।
(आ० १४/१४२)

वेणुं वामे करकिसलये दक्षिणे चारुयष्टिं कक्षे वेत्रं दलविरचितं श्रृंगमत्यद्‌द्युतञ्च।
बर्होत्तसं चिकुरनिकरे वल्गुकण्ठोपकण्ठे गुञ्जाहारं कुवलययुगं कर्णयोश्चारु विभ्रत्।।१२७।।
(आ० ७/५८)

सद्रत्नालंकरण–निकरेष्वादधानोऽवहेलां वन्यकल्पे विरचितरुचिर्वत्सपालानुकृत्या।
धावन्नग्रे ब्रजशिशुगणस्योल्लसद् वैजयन्ती–माला श्रीरञ्जित लसदुरोभित्तराभाति कृष्णाः।।१२८।।
(आ० ७/५६)

---

(१२५) वन में जाकर श्रीकृष्ण बायें कर कमल में वेणु और दायें कर कमल में सिन्दूरनिर्मित कन्दुक (गेंद) को उछालते हुए मुख से बसन्त राग का आलाप ले रहे थे। सुबल आदि प्रिय सखागण के उच्च स्वर में गान करने पर वे अपना मस्तक हिलाते हुए आस्वादन का भाव प्रकट करते हुए अपने सुन्दर मदभरे नयन कमल घूर्णित करने लगे।

(१२६) उनके दोनों ओर दो प्रिय सखा उनके अधरों में स्वर्ण वर्ण ताम्बूल की बीरी अर्पण कर रहे थे और वे परमानन्दपूर्वक अपने स्निग्ध लाल–२ ओठों द्वारा दोनों ओर से ही कौतुक करते–२ ग्रहणकर लीला प्रकट कर रहे थे।

(१२७) उनके वाम करपल्लव में वेणु, दक्षिण हाथ में लकुटि, बगल में वेत्र एवं अति अद्‌भुत सींगा, केशों में मोरपंखों का चूड़ा (मुकुट) सुन्दर कण्ठ में गुंजामाला एवं कर्णयुगल में सुन्दर नीलकमल (दोनों ओर दो) धारण कर रखे हैं।

(१२८) उन्होंने बहुमूल्य रत्नों के आभूषणों की अवहेलना कर प्रेमपूर्वक वत्सपालक गोदों का सा वनवासी वेष धारण कर लिया है, जब वे बृजवासी शिशुगणों के आगे–२ दौड़ते हैं तब उनके वक्षस्थल की वैजयन्तीमाला (हिलती हुई) अतीव शोभा पाने लगती है और उस माला की कांति से रंजित, लक्ष्मीरूपा सुवर्ण रेखा युक्त वक्षस्थल की शोभायुक्त श्रीकृष्ण अतिशय सुंदर लग रहे है।

अंसे चारु–विहंगिकाऽग्रविलसच्छिक्यस्थ भाण्डौदना कक्षे वेणु–विषाण–पत्र–मुरली–श्रृंगाणि यष्टिः करे।
गुञ्जोत्तंस मयूरपिच्छरचना मौलौ गले गौञ्जिको हारः श्रोणितटे धटीति मधुरो वेषः शिशूनां वभौ।।१२६।।
(आ० ७/६०)

केयूरे वलयानि किंकिणिघटा हारावली कुण्डले मञ्जीरौ मणितुन्दबन्धलतिका यद्यप्यमीषां बभूः।
नासीत्तत्र तथापि मातृरचिताकल्पेषु तेषां ग्रहः कामं वत्सक–रक्षणोचित–वनाकल्पे यथा लालसः।।१३०।।
(आ० ७/६१)

सौभाग्यं सा सखिनां हि निःशंकालिंगनादिकम्।
स्मृत्वा वक्तुं गुणांस्तेषां तान् दासांश्चाभ्यवन्दत।।१३१।।

गण्डान्तःस्फुरदेककुण्डलमलिच्छन्नावतंसोत्पलं कस्तूरीकृतचित्रकं पृथुहृदि भ्राजिष्णु–गुञ्जास्रजम्।
तं वीरं शरदम्बुदद्युतिभरं सम्वीत–कालाम्बरं गम्भीर स्वनितं प्रलम्बभुजमालम्बे प्रलम्बद्विषम्।।१३२।।
(भ० र० ३/३/२८)

---

(१२६) गोप शिशुओं के बांये कंधे पर सुंदर विहंगिका (बांक) जिसके आगे दो छींके बंधे रहते है जिनमें उत्तम–२ खाद्य द्रव्य रखे हुए हैं, बगल (कक्ष) में वेणु, सींगा एवं पत्र रचित मुरली, हाथ में छोटी सी लकुटि, मस्तक पर गुंजा माला से लपेटा हुआ मोर पंखों का चूड़ा, (अथवा कानों में गुंजा माला, माथे पर मोर मुकुट) गले में गुंजामाला, कटि प्रदेश में पीत वस्त्र (फैंट) इस प्रकार सुंदर–२ वेश धारण कर गोपबालकगण शोभा पा रहे थे।

(१३०) यद्यपि उनके विविध अंगों में बाजूबन्द, कड़े (कंकण) किंकिणि कमरपेटी, हार, कुण्डल, नूपूर एवं अन्यान्य मणिमय आभूषण शोभा पा रहे थे, फिर भी वत्सपालकों जैसी वनवासी वनभूषणों में उनकी जिस प्रकार की लालसा थी वैसे माताओं द्वारा पहनाये गये उन मणिजटित आभूषणों में प्रीति नहीं थी।

(१३१) सखागणों के साथ श्रीकृष्ण का जिस प्रकार निसंकोच आलिंगन आदि प्रेम व्यवहार देखा, उस सौभाग्य का स्मरण कर वह वनसखी उनके गुणों का वर्णन करते हुए उनकी तथा उनके दासों की वन्दना करते हुए कहने लगी–

(१३२) जिनके गण्डस्थल (कपोल का ऊपरी भाग) पर एक कुण्डल शोभा पा रहा है, जिनके कानों के ऊपर नीलकमल पर भ्रमरगण मंडरा रहे हैं, कस्तूरी से बना चित्र विचित्र तिलक, जिनके विशाल वक्षस्थल पर उज्जवल गुञ्जाहार, शरत्कालीन मेघतुल्य शुभ्रवर्ण नीलाम्बरधारी, गम्भीर स्वर, आजानुलम्बित भुजाऐं, ऐसे प्रलम्बासुर संहारी उन वीर बलराम का हम आश्रय करते हैं।

पाटलपट–लसदंगे, लकुटकरः शेखरी शिखण्डेन।
द्युतिमण्डलीमलिनिभां, भाति दधन्मण्डलीभद्रः।।१३३।।

(भ० र० ३/३/२६)

वासः पिंग विभ्रतं श्रृंगपाणिं, बद्धस्पर्द्धं सौहृदान्माधवेन।
ताम्रोष्णीषं श्यामघामाभिरामं, श्रीदामानं दामभाजं भजामि।।१३४।।

(भ० र० ३/३/४१)

तनुरुचि–विजितहिरण्य, हरिदयितं हारिणं हरिद्वसनम्।
सुबलं कुवलय–नयनं नयनन्दितबान्धवं वन्दे।।१३५।।

(भ० र० ३/३/४६)

अरुणाम्बरमुच्चलेक्षणं, मधुपुष्पावलिभिः प्रसाधितम्।
हरिनील रुचिं हरिप्रियं, मणिहारोज्जवलमुज्जवलं भजे।।१३६।।

(भ० र० ३/३/४८)

रम्यपिंगपटमंरोचिषा, खर्वितोरु–शतर्पविकारुचम्।
सुष्ठु गोष्ठयुवराज–सेविनं, रक्तकण्ठमनुयामि रक्तकम्।।१३७।।

(भ० र० ३/२/४६)

---

(१३३) जिनके गुलाबी रंग का मनोहर वस्त्र धारण कर रखा है, हाथ में लकुट, माथे पर मोरपंख, एवं भ्रमर की तरह अंग की कान्ति, इस प्रकार, मण्डलीभद्र नामक सखा की शोभा है।

(१३४) जिन्होंने पीतवस्त्र पहन रखा है, हाथ में सींगा, माथे पर ताम्रवर्ण (तांबे जैसी कुछ लाल) पगड़ी, शरीर का श्याम वर्ण, गले में वनमाला, एवं जो सौहार्द भाव से (अंतरंग मित्र) श्रीकृष्ण के साथ कुश्ती लड़ने में होड़ (स्पर्धा) लगाते हैं, ऐसे श्रीदामा सखा का हम भजन करते हैं।

(१३५) जिनकी अंगकान्ति के सोने (स्वर्ण) की शोभा तिरस्कृत होती है जो श्रीहरि के परम प्रीति के पात्र हैं, जिनके गले में हार, हरे रंग के वस्त्र पहने, कमल से नेत्र, नीतियुक्त व्यवहार (अथवा वचनों से) से अपने सखाओं को आनन्दित करते हैं– उन सुबल सखा की हम वन्दना करते हैं।

(१३६) जिन्होंने लाल रंग के वस्त्र, नेत्र अति चंचल, बसन्ती रंग के पुष्पों से सुसज्जित, इन्द्रनीलमणि की कांति वाले, श्रीहरि के प्रिय, मणिमय हारावलि को धारण किये हुए, इस प्रकार शोभा वाले 'उज्जवल' नामक सखा की हम भजन करते हैं।

(१३७) जिन्होंने पिंगल (कुछ पीला कुछ लाल) वर्ण के वस्त्र धारण कर रखे हैं, अंग कांति से उत्तम दूर्वा (छोटी–२ घास) को भी परास्त करते हैं, वे ब्रजनवयुवराज की सेवा करने वाले, सुन्दर (संगीतज्ञ) कण्ठ वाले, 'रक्त कण्ठ' नाम दास का हम आनुगत्य स्वीकार करते हैं।

मणिमयवरमण्डनोज्जवलांगान, पुरटजवा–मधुलिट्–पटीरभासः।
निजवपुरनुरूप–दिव्यवस्त्रान्, ब्रजपति–नन्दनकिंकरान्नमामि।।१३८।।

(भ० र० ३/२/४७)

वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम्।
गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिल सारसम्।।१३६।।

(भा० १०/१८/७)

क्रीड़िष्यमाणस्तत् कृष्णो भगवान् बलसंयुतः।
वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत्।।१४०।।

(भा० १०/१८/८)

तन्मुलजुघोषालिमृग द्विजाकुलं, महन्मनः प्रख्यपयःसरस्वता।
वातेन जुष्टं शतपत्र–गन्धिना, निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनो दधे।।१४१।।

(भा० १०/१५/३)

स तत्र तत्रारुण–पल्लवश्रिया, फल–प्रसूनोरुभरेण पादयोः।
स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन्मुदा, स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः।।१४२।।

(भा० १०/१५/४)

---

(१३८) उत्कृष्ट मणिमय भूषणों से उज्ज्वल अंग वाले, स्वर्ण, जवाँ, भ्रमर एवं चंदन आदि जैसी जिनकी अंगकांति है, अपनी–२ कांति (शरीर का रंग) के अनुरूप वस्त्र धारण करने वाले, श्रीबृजेन्द्रनन्दन के सेवकों की हम वन्दना करते हैं।

श्रीवृन्दावन की शोभा वर्णन एवं श्रीकृष्ण की वन क्रीड़ा :–

(१३६) श्रीवृन्दावन, विविध कुसुमों से प्रफुल्लित, सुन्दर–२ मृग एवं पक्षियों एवं सारस आदि के कलकूजन से अत्यंत मनोहर प्रतीत हो रहा है।

(१४०) जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने क्रीड़ा करने की अभिलाषा से, बलदेव, गोपगण एवं धेनू समूह से परिवृ होकर, वेणुवादन करते–२ प्रवेश किया।

(१४१) वह वनभूमि कल–२ करने वाले भ्रमर, मृग, पक्षी आदि से परिपूर्ण, भगवद् भक्तों के मन के समान सुनिर्मल जल से भरे सरोवरों से मण्डित, सरोवरों में खिले कमलों की सुगन्ध ा को लेकर बहने वाली वायु जो पंचेन्द्रियों को आह्लाद प्रदान कर रही थी। इस प्रकार की शोभा देखकर श्रीकृष्ण ने वहाँ पर क्रीड़ा करने की इच्छा प्रकट की।

(१४२) आदिपुरुष श्रीकृष्ण ने देखा कि इस वन में सर्वत्र लाल रंग की कांति वाले पत्तों की शोभा से युक्त वृक्षावलि, फल एवं फूलों के भार से झुकी हुई डालियों के अग्रभाग मानो मेरे चरणों का स्पर्श कर रहे है, वे आनंदपूर्वक हंसते–२ श्रीबलरामजी से कहने लगे–

अहो अमी देववरामरार्चितं, पादाम्बुजं ते सुमनः फलार्हणम्।
नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मन–, स्तमोऽपहत्यै तरुजन्मयत्कृतम्।।१४३।।

(भा० १०/१५/५)

ऐतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढ़ं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम्।।१४४।।

(भा० १०/१५/६)

नृत्यन्त्यमी शिखिन् ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस ईयान् हि सतां निसर्गः।।१४५।।

(भा० १०/१५/७)

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्तत्–पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै–र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः।।१४६।।

(भा० १०/१५/८)

---

(१४३) हे देवश्रेष्ठ ! देखो कितने आश्चर्य की बात है ये वृक्ष स्थावर जन्म ग्रहण करके भी मानो अपने अपराध का मार्जन करते हुए (जिस पाप से जड़ योनि प्राप्त हुई है) अपनी–२ डाली के अग्रभाग द्वारा पुष्प फल रूपी पूजा की सामग्री लेकर, ब्रह्मा आदि देवगणों के पूज्य आपके चरण कमलों में नमन कर रहे हैं।

(१४४) हे आदि पुरुष ! ये भ्रमर सकल लोकपावन आपका यशगान करते–२ स्थान–२ पर आपका भजन (अनुगमन) कर रहे हैं। हे अनघ (अदोषदर्शी आपने गूढ़भाव से मनुष्य शरीर धारण कर रखा है, तथापि आपके भक्त मुनिगण भ्रमरवेश धारण कर अपने इष्टदेव को पहचान आपका त्याग नहीं कर सकते।)

(१४५) हे स्तवनीय ! (स्तुतियोग्य) ये मयूर आनंदपूर्वक नृत्य कर रहे हैं, ये हरिणीगण हर्षयुक्त होकर गोपियों की भांति प्रेमभरी चितवन से निहार कर आपको प्रसन्न कर रही हैं, और ये कोकिलाए भी कर्ण रसायन कल–२ गान से आपका प्रिय आचरण कर रही हैं अतएव ये बृजवासी धन्य हैं जो आपकी सेवा कर रहे हैं क्योंकि घर में आये अभ्यागत को अपनी वस्तुद्वारा सम्मान देना साधुजनों का धर्म हैं।

(१४६) यह पृथ्वी तो पहले से ही आपके वराह एवं शेष अवतार में आपका स्पर्श पा चुकी है परंतु आज तो इसके परम सौभाग्य का उदय हुआ है जोकि तृण लता दूर्वा सब आपका चरण स्पर्श पाकर धन्य हो गये हैं। पुष्पों के चयन करने से ये तरुलता आपका नख स्पर्श पाकर धन्य हो रहे हैं। नदी, पहाड़, पक्षी, मृग, सकल, आपकी कृपादृष्टि पाकर धन्य हो गये हैं और स्वयं लक्ष्मी जिस वक्षस्थल के आलिंगन की वासना करती हैं, ये गोपीगण (श्यामालतागण) उस आलिंगन को पाकर धन्य हो गयीं हैं।

एवं बृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून्।
रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधःसु सानुगः।।१४७।।

(भा० १०/१५/६)

क्वचिद् गायति गायत्सु, मदान्धालिष्वनुव्रतैः।
उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः।।१४८।।

(भा० १०/१५/१०)

क्वचिच्च कलहंसानामनु कूजति कूजितम्।
अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित्।।१४६।।

(भा० १०/१५/११)

अनुजल्पति जल्पन्तं कलवाक्यैः शुकं क्वचित्।
क्वचित् सवल्गु कूजन्तमनुकूजति कोकिलम्।।१५०।। (भा० १०/१५/१२)

मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान् पशून्।
क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपाल–मनोज्ञया।।१५१।। (भा० १०/१५/१३)

चकोर–क्रौञ्च–चक्राह्व–भारद्वाजांश्च बर्हिणः।
अनुरौति स्व सत्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः।।१५२।। (भा० १०/१५/१४)

---

(१४७) श्रीकृष्ण इस प्रकार श्रीबलरामजी के प्रति इस प्रकार के स्तुतिवाक्य बोलते हुए, शोभा समृद्धि से युक्त, वृन्दावन में परम प्रसन्न होकर, साथी मित्रों के साथ गोवर्धन के समीप मानसीगंगा के तटप्रदेश पर गउए चराते हुए क्रीड़ा करने लगे।

(१४८) उनके प्रिय सखा उनका यशगान कर रहे थे, श्रीकृष्ण और बलराम मदान्ध भ्रमरों के गुंजन के साथ स्वर से स्वर मिलाकर गान करने लगे।

(१४६) कभी–२ वे कलहंसों के मधुर कूजन का अनुकरण करने लगते, कभी मोर के सामने जाकर दर्शक सखाओं को हंसाते हुए मोर की तरह नृत्य करने लगते।

(१५०) कभी–२ मधुर शब्द करते हुए शुकपक्षी की कलध्वनि का अनुकरण करते, और कभी कोकिला की सुन्दर कलतान के अनुरूप शब्द करने लगते।

(१५१) कभी–२ बीच में गौ और गोपालों का मन हरण करने वाली मेघ गम्भीर ध्वनि से दूर गये हुए पशुओं को स्नेहपूर्वक बुलाने लगते।

(१५२) कभी–२ चकोर, बगुला, चकवा, भारद्वाज एवं मयूरगण आदि की ध्वनि का अनुकरण कर–२ के इधर–उधर भागते हैं। और कभी–२ व्याघ्र सिंह आदि की गर्जना से भीत होकर हरिण आदि पशुओं के भागने पर स्वयं भी भयभीत की तरह भागने लगते।

प्रवालबर्हस्तवक–स्रग् धातुकृतभूषणाः।
रामकृष्णादयो गोपा ननृर्तुयुयुर्धुजगुः।।१५३।।

(भा० १०/१८/६)

कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन्।
वेणुपाणितलैः श्रृगैः प्रशशंसुरथापरे।।१५४।।

(भा० १०/१८/१०)

क्वचिद्‌विल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्व चामलकमुष्टिभिः।
अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया।।१५५।।

(भा० १०/१८/१४)

क्वचिच्चदर्दूरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः।
कदाचित् स्यन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया।।१५६।।

(भा० १०/१८/१५)

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीड़ाभिश्चेरतुर्वने।
नद्यद्रिद्रोणि–कुञ्जेषु काननेषु सरःसु च।।१५७।।

(भा० १०/१८/१६)

---

(१५३) श्रीरामकृष्ण आदि गोपगण, प्रबाल मोरपंख, पुष्पों के गुच्छे, माला, गेरु आदि (पहाड़ों से निकलने वाले रंग) से विभूषित होकर वन में नृत्य, गीत एवं बाहुयुद्ध करने लगते।

(१५४) श्रीकृष्ण जब नृत्य करने लगते तो कोई गोप बालक गाना शुरू कर देता कोई–२ वेणु बजाता तो कोई करताल, कोई सींगा बजाने लगता एवं (श्रीदाम आदि) कोई सभापति बनकर साधू–साधू (बहुत अच्छा) कहते हुए प्रशंसा करने लगते।

(१५५) कभी–२ वे बेल फल एक–दूसरे पर फैंकते हुए कभी कुम्भ फल द्वारा, कभी मुट्ठीभर कर आंवले एक–दूसरे को फैंक कर मारते हुए क्रीड़ा करने लगे, कभी अस्पृश्य होकर दूसरे को स्पर्श करने के लिए भागते कभी चुपचाप किसी के पीछे जाकर उसी आंखे बन्द कर लेते, कभी किसी मृग या पक्षी के रूप का अनुकरण कर उससे युद्ध करने लगते अथवा उस जैसी चेष्टा एवं शब्द करने लगते।

(१५६) कहीं मेंढ़क की तरह उछल–२ कर, कहीं एक–दूसरे को हंसाने के लिए उपहास के वचन, कहीं झूले डालकर झूलते हैं, कहीं राजा बनकर मानो प्रजा पर शासन करते हैं।

(१५७) इस प्रकार लोक प्रसिद्ध खेल तथा अन्यान्य क्रीड़ा परायण रामकृष्ण विविध प्रकार कौतुक करते हुए वृन्दावन की नदी (श्रीयमुना) पर्वत गिरिराज, कन्दराएं, कुञ्जें, कानन एवं सरोवर आदि में विहार करने लगे।

तत्रोपाहूय गोपालन् कृष्णः प्राह विहारवित्।
हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम्।।१५८।।

(भा० १०/१८/१६)

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजर्नादृनौ।
कृष्णा–सङ्घट्टिनः केचिदासन् रामेस्य चापरे।।१५६।।

(भा० १०/१८/२०)

आचेरुर्विविधाः क्रीड़ा वाह्यवाहक–लक्षणाः।
यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः।।१६०।।

(भा० १०/१८/२१)

वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम्।
भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्ण–पुरोगमाः।।१६१।।

(भा० १०/१८/२२)

उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम्।।१६२।।

(भा० १०/१८/२४)

---

(१५८) विहारकुशल भगवान श्रीकृष्ण ने गोप बालकों को बुलाकर कहा– हे गोप सखाओं ! आओ हम अपनी–२ अवस्था एवं शक्ति के अनुरूप दो दलों में बंट कर खेलेंगें।

(१५६) तदनुसार उन्होंने श्रीराम कृष्ण को इस क्रीड़ा का नायक स्थिर किया और कुछ बालक श्रीकृष्ण के पक्ष में तथा कुछ श्रीबलराम के पक्ष में हो गये।

(१६०) इस प्रकार विविध क्रीड़ा करने लगे जिसमें 'वाह्यवाहक' नामक खेल प्रारम्भ किया। इस खेल की विशेषता यह कि जो पक्ष पराजित होगा वह जीतने वालों को कंधे पर चढ़ाकर निश्चित किये गये स्थान तक ले जावेगा और जीतने वाला पक्ष, हारे हुए पक्ष के बालकों के कंधे पर चढ़ेगा।

(१६१) इस प्रकार के खेल में परस्पर एक दूसरे पक्ष को कंधे पर वहन करते हुए एवं गौचारण करते–२ वे सब भाण्डीरवट नामक स्थान पर पहुंच गये।

(१६२) भगवान श्रीकृष्ण पराजित होकर श्रीदामा को वहन (कंधे पर चढ़ाया) किया, भद्रसेन ने वृषभ सखा को एवं प्रलम्ब (असुर वेषधारी बालक) ने बलराम को वहन कर चलने लगे।

क्वचित् क्रीड़ापरिश्रान्तं गोपोत्संगोपबर्हणम्।
स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसम्वाहनादिभिः।।१६३।।

(भा० १०/१५/१५)

क्वचित् पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्षितः।
वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्संगोपबर्हणः।।१६४।।

(भा० १०/१५/१७)

पादसम्वाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः।
अपरे हतपापानो व्यजनैः समबीजयन्।।१६५।।

(भा० १०/१५/१८)

इति स्वकान्तकेलिं सा श्रृण्वन्ती वरवर्णिनी।
मोह जाद्यादि–सम्पन्ना प्रमणान्यच्छ्रुतुमुन्मनाः।।१६६।।

गता श्रावयितुं राधां संबोध्य सा सखी तदा।
वर्णयामास कृष्णस्य लीलावृन्दं मनोहरम्।।१६७।।

---

(१६३) किसी–२ स्थान पर अग्रज श्रीबलराम क्रीड़ा करते–२ जब परिश्रान्त हो जाते हैं तो सखागणों की गोदी में मस्तक रखकर शयन करते हैं। उस समय श्रीकृष्ण स्वयं उनके चरण दबाकर व्यजनादि द्वारा उनका श्रम दूर करते हैं।

(१६४) और जब श्रीकृष्ण बालकों के साथ बाहुयुद्ध आदि कर परिश्रान्त हो जाते तब उनके सखा वृक्ष के नीचे पत्तों (कोमल–२) की शैय्या रचना कर, अपनी गोद में उनका मस्तक रख उन्हें शयन कराते हैं।

(१६५) कोई–२ बालक (सखा) महात्मा श्रीकृष्ण के चरण सम्वाहन करने लगते है तो कोई निष्पाप गोप बालक उनकी व्यजन आदि द्वारा हवा करने लगते हैं।

(१६६) अपने प्राण प्रियतम की इस प्रकार वनक्रीड़ा का वर्णन सुनते–२ वरवर्णिनि (सुंदर अंग कांति वाली) श्रीराधारानी के प्रेम के आवेश में मोह (मूर्च्छा) जड़ता आदि सात्विक विकारों को प्राप्त हुई और श्रीकृष्ण की सखाओं सहित अन्यान्य लीलाओं को सुनने के लिये पुनः उत्कंठिता हो उठीं।

(१६७) श्रीराधा को पुनः श्रीकृष्ण लीला सुनाने के लिए, वृन्दा देवी द्वारा भेजी गयी वह वन सखी उनको सचेतन कर श्रीकृष्ण की मनोहर लीलाओं को सुनाने लगी।

विश्रम्य क्षणमुत्थितः स परितः पर्यन्तशष्पादिनीः श्रद्धावानवधाय धेनुपटली पानीय–पानार्थिनी।
बालैस्तत्परिपालकैर्मुरलिकानादोपदिष्टैर्यूताः, कृष्णो भास्करनन्दिनी–परिसरानासादयामास ताः।।१६८।।
(कृष्णा० ३/३८)

बालाः केचन केचन प्रसृमरा गोमण्डलीमन्वगुः केचित् कृष्णसमीप एव मिलितास्तद्तद्गुणानाजगुः।
दूरस्था निकटस्थिताश्च सकला गावश्च गोपाश्च ते तुल्यां प्रीतिमवाप्य कृष्णमभितस्तुल्यां रतिं तन्वते।।१६९।।
(कृष्णा० ३/३६)

दूरे सन्तु सचेतना मणिभुवोऽप्युन्दन्ति यत्स्पर्शतः, किं ब्रूमो ब्रजराजपुत्र–पदयोस्तां माधुरीं तन्वतोः।
या संव्यक्ततमध्वजाम्बुज–यवाद्यंकावली–शालिता, सा केनापि कदापि कापि कथमप्यासीन्न संलोपिता।।१७०।।
(कृष्णा० ३/४०)

वक्तुं कोऽर्हति गोपराज–युवराजस्याङ्घ्रि पंकेजयोः, सौगन्ध्यं क्षितिवक्षसि प्रणयतो लीलागति न्यस्तयोः।
अंकेष्वेष्व विशंकया वत धिया सौगन्ध्य–बन्धान्धया पुञ्जीभूय विधूय कुञ्ज–कुसुमं गुञ्जन्ति पुष्पन्धयाः।।१७१।।
(कृष्णा० ३/४१)

श्रीकृष्ण का यमुनातट पर गमन, वंशीनाद द्वारा स्थावरजंगम के भाव विकार :–

(१६८) क्षणकाल (थोड़ी सी देर) विश्राम कर श्रीरामकृष्ण उठे, और चारों दिशाओं में दूर–२ तक फैल कर तृणों को चरती हुई गायों को अब पानी पीने की इच्छा होगी यह जानकर, गौचारण के प्रेमी श्रीकृष्ण ने मुरली ध्वनि कर गौरक्षकों को इस बात की सूचना दी और गोपबालकों के साथ धेनुवृन्द को श्रीयमुनाजी की ओर चला दिया।

(१६९) गोप बालक कुछ–२ फैलकर गायों के पीछे–२ चलने लगे, कोई–२ श्रीकृष्ण के निकट आकर उनकी गुणराशि का वर्णन करने लगे, चाहे दूर स्थित चाहे पास हों, गऊऐं तथा गोपगण सभी समान प्रीति को पाकर श्रीकृष्ण के प्रति समान प्रीति ही धारण करते थे।

(१७०) सचेतन प्राणी की बात क्या कही जाय, जिसके स्पर्श से मणिभूमि भी द्रवीभूत हो जाती है, श्रीकृष्ण के उन माधुर्य विस्तार करने वाले चरणकमलों की महिमा का क्या वर्णन किया जा सकता है ? किसी भी प्राणी को, किसी भी समय, किसी भी प्रकार से उन चरणों के सुस्पष्ट ध्वजा, पद्म, यव आदि अनिर्वचनीय चिह्नों की माधुरी का दर्श परश होता है तो वह क्या उसे कभी भूल सकता है ?

(१७१) गोपेन्द्रनन्दन जब धरणी के वक्षस्थल पर प्रेमपूर्वक, लीला करते हुए अपने चरण कमल स्थापित करते हैं, उस समय उसकी सुगन्ध का क्या वर्णन किया जाय, उन सब चरण चिन्हों में प्रचुरतर सुगन्धि के कारण ही तो अंधे होकर (मतवाले होकर) निशंक भाव से यह भ्रमरगण, कुञ्जों की कुसुमराशि को त्यागकर झुण्ड के झुण्ड इन पर ही गुंजन कर रहे हैं।

तूष्णीकान्मुखरी करोति मुखरां तूष्णीकयत्यम्भसां स्तम्भं स्तम्भवतां द्रवं द्रुतमतिस्निग्धत्वमुग्रौजसाम्।
कर्णाभ्यर्णमुपेत्य तूर्णमसकृद्येमं विधत्ते क्रमं तां वंशीमधरे निधाय मधुरं कृष्णो जगौ पञ्चमम्।।१७२।।
(कृष्णा० ३/३७)

स्वत्वधर्मविपर्य्यासैर्वेणुनादामृतोत्थितैः।
स्वसात्त्विकविकारैश्च तदाभूद्व्याकुलाटवी।।१७३।।
(गोवि० ६/१४)

प्रोद्यद्वेपथुरुच्चलत् स्थिरचयैः स्तब्धा जड़ैर्जंगमैः प्रस्विन्न स्रवदश्रुजाल–सलिलैः श्वेता प्रसूनोत्करैः।
साश्रुपुष्पमधुद्रवैः स्वरभिदा युक्ता खगालीरवै रोमाञ्चालियुता लतांकुरचयैर्वृन्दाटवी सा वभौः।।१७४।।
(कृष्णा० ३/१५)

कूजद्भृंगविहंगपल्चमकलालापोल्लसन्ती हरेश्च्योतपंकित्रमसत्फलोत्कर–रसोल्लासाटवी साभवत्।
संफुल्लन्नलिनी विलासि–विहसद्वल्लीमतल्ली–नटीलास्याचार्य–मरुद्गणालिमुदिता सर्वेन्द्रियाऽलादिनि।।१७५।।
(गोवि० ६/१७)

---

(१७२) और सखि सुनो– जिसके कानों में प्रवेश करने मात्र से जो शांत (चुपचाप) रहते हैं वे अधिक बोलने लगते हैं और जो अधिक बोलने वाले हैं वो शांत हो जाते हैं, जल की गति रूक जाती है और वस्तुऐं अचल हैं वे पिघलकर बहने लगती हैं, कठिन को स्निग्ध कर देती है इस प्रकार सबके गुणों को विपरीत कर देनी वाली वंशी को अधरों पर धारण कर श्रीकृष्ण ने पंचमस्वर में गान प्रारम्भ किया।

(१७३) उस समय वेणुनादामृत द्वारा सकल प्राणि विपरीत धर्म को प्राप्त हुए और यह वृन्दाट्वी भी सात्विक विकारों से युक्त होकर व्याकुल हो उठी।

(१७४) उच्छलित स्थावर समूह में कम्प, जंगम में स्तब्धता, द्रवीभूत होते हुए पाषाणों में प्रस्वेद, पुष्पों में श्वेतिमा (विवर्णता) पुष्पों के मधुवर्षण में अश्रु, पक्षीगण के कलरव में स्वरभंग, लतिकाओं में अंकुरों का उद्गम ही मानो रोमांच इन सब सात्विक भावों से वृन्दाट्वी शोभा पाने लगी।

(१७५) यह वृन्दाट्वी – सुंदर मधुर ध्वनि करने वाले भ्रमरादि पक्षियों के उच्च स्वर के छल से उल्लासयुक्ता, सुपक्व आम आदि फलों के रस को क्षरित करते हुए रसोल्लास प्रकट करती हुई, प्रफुल्लित कमलों के रूप में विलास करती हुई, सुप्रसन्न लता रूपी नर्तकी, जिसे मन्द समीर गुरु बनकर नृत्य शिक्षा दे रहा है, इस प्रकार की शोभा धारण किये, मुदित होकर श्रीकृष्ण की समस्त इन्द्रियों को आह्लादित कर रही है।

पुष्पैर्हास्यं भ्रमरैर्गानं पर्णैर्लास्यं मधुभिः पानम्।
दधतस्तरवः स्वफलैः खानं कुर्वन्त्यभ्यागत–हरिमानम्।।१७६।।
(गोवि० ६/१८)

अलि–गायक–चुम्बित कुसुमास्यं, पल्लवपटवृत–विवृत सुहास्यम्।
दधती रहसि–विदधती लास्यं, व्यतनुत वल्लीततिरपि दास्यम्।।१७७।।
(गोवि० ६/१६)

स्वरमण–सहितानां वेणुनादाहृतानां तृणकवल–मुखानां चञ्चलालोकनानि।
हरिरथ हरिणीनां वीक्ष्य राधा–कटाक्षैः स्मृति पथमधिरूढैर्विव्यथे विद्धमर्मा।।१७८।।
(गोवि० ६/२०)

प्रेम्णाऽनृत्यत् फुल्लमयूरीतति युक्तः कृष्णालोकन्मत्तमयूरव्रज आरात्।
स्निग्धे राधा–केशकलापे रतिमुक्ते यत् सत्पिञ्छैराशु मुरारेः स्मृतिरासीत्।।१७६।।
(गोवि० ६/२१)

मदकल–कलविंकी–मत्तकादम्बिकानां सरसि च कलनादैः सारसानां प्रियायाः।
वलय–कटक–काञ्चीनूपुरोद्यत्स्वनोर्मि–भ्रमचुलुकितचित्तोऽभ्यागतं तां स मेने।।१८०।।
(गोवि० ६/२२)

---

(१७६) तब वृक्षगण श्रीकृष्ण को अपने निकट अतिथि रूप में आये हुए देख आनंदित होकर पुष्पों के रूप में हास्य, भ्रमरों के छल से गान, पत्ते हिलाकर नृत्य, मधु द्वारा पान (पेय देकर) और अपने–२ फलों को (भोजन रूप में) प्रदान कर श्रीकृष्ण का स्वागत करने लगे।

(१७७) लताएं भी उस समय अलिरूपी गायक द्वारा चुम्बित एवं पल्लवरूपी पट की ओट (घूंघट लगा) लगाकर, कुसुम रूपी हास्य वदन धारण कर निर्जन में नृत्य करते–२ श्रीकृष्ण के दास्य भाव को प्रकट करने लगीं।

वृन्दावन की शोभा देखकर श्रीकृष्ण के हृदय में राधारानी का उद्दीपन :–

(१७८) उस समय जब हरिणीगण, मृगों के साथ तृणभोजन करते–२ वंशी ध्वनि से आकृष्ट होकर श्रीकृष्ण के निकट आयीं, तो उनके चंचल नेत्र देखकर श्रीकृष्ण को राधारानी के कटाक्ष का स्मरण हो गया जिससे मर्माहत होकर वे व्यथित हो उठे।

(१७६) उसी समय समीप ही श्रीकृष्ण दर्शन से आनन्दोन्मत्त होकर मयूरगण अपनी मयूरियों सहित नृत्य करने लगे, इनके अत्युत्कृष्ट पिच्छसमूह देखकर उनको श्रीराधारानी के रतिविमुक्त, स्निग्ध केशकलापों का स्मरण हो आया।

(१८०) वहाँ निकट ही सरोवर में चटक पक्षी की ध्वनि मानो श्रीराधारानी के वलयों का शब्द, हंसों की ध्वनि में कटक का शब्द, और सारसों की ध्वनि उनके चरणनूपुरों की ध्वनि मानकर, भ्रान्त होकर श्रीकृष्ण राधारानी को अपने समीप आ गयीं हैं इस प्रकार मानने लगे।

उपरि चपलभृंगं पद्ममीषत् प्रकाशं वरपरिमलपूरं शश्वदालोक्य कृष्णः।
स्मितशबल–कटाक्षं पद्मगन्धं प्रियाया मुखमिदमिति मत्वा तामुपेतां विवेद।।१८१।।

(गोवि० ६/२३)

रुचक–करक–बिल्वैर्नागरंगैः सुपक्वैः प्रतिदिशमनुदृष्टै हर्षतर्षाकुलोऽसौ।
सपदि लसदुरोजभ्रान्ति सम्भ्रान्तचेता वपुख इह विभुत्वं राधिकायाः शशंकेः।।१८२।।

(गोवि० ६/२४)

यतो यतः पतति विलोचनं हरेस्ततस्ततः स्फुरति तदंग–संहतिः।
न चादभुतं तदिह तु यद्व्रजाटवी मुदे हरेरलभत राधिकात्मताम्।।१८३।।

(गोवि० ६/२५)

तैरुद्दीपित–भावाली–वात्य्योच्चालितं मनः।
शशाक न स्थिरीकर्त्तुं काशपुष्पनिभं हरिः।।१८४।।

(गोवि० ६/२६)

प्रचार्य गाश्चारयितुं क्षुधार्त्ता, गोवर्धन–क्ष्माभ्रीद्युपत्तकायाम्।
मनोऽमुधावद्दयितां निवर्त्तयन्, समं वयस्यैविजहार कृष्णः।।१८५।।

(गोवि० ६/२६)

---

(१८१) उत्तम सुगन्धि से परिपूर्ण अधखिले कमल पर चंचल भ्रमर को देखकर श्रीकृष्ण, मंद–२ हँसती हुई कटाक्षों से शोभित, कमल की सी सुगन्ध वाले राधारानी के मुखारविन्द को समझकर मन ही मन सोचने लगे कि 'क्या ये प्रिया ही आ गयी है ?'

(१८२) वन में चारों ओर जब श्रीकृष्ण की दृष्टि पड़ती तो वे बीजपुर फल अनार, बेल, नारंगी आदि पके–२ फल देखकर वे अत्यंत हर्षित एंव सतृष्ण होकर श्रीराधारानी के उरोजयुगल की भ्रान्ति से सर्वत्र श्रीराधारानी के विभुत्व (सर्वव्यापकता) की कल्पना करने लगे।

(१८३) इसी प्रकार जहाँ–२ श्रीकृष्ण के नेत्र पड़ते, उसी–२ दिशा में श्रीराधारानी के अंग प्रत्यंग की उन्हें स्फूर्ति होने लगती। वृन्दाटवी ने मानो उस समय श्रीकृष्ण को आनंद प्रदान करने के लिये 'राधामयी' स्वरूप धारण कर लिया हो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

(१८४) इस प्रकार श्रीराधारानी की समता वाले खगमृग लता पता आदि देखकर उद्दीपत हुए भावों से, श्रीकृष्ण का चित्त इस प्रकार घूर्णित होने लगा जैसे चक्रवात (घूमता हुआ वायु का चक्र) में कोई काशकुसुम हो, और वे अपने मन को स्थिर करने में असमर्थ हो गये।

(१८५) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वत की तलहटी में क्षुधार्त धेनुवृंद को तृण भोजन कराने के लिए चलाकर श्रीराधा विषयक में धावित मन को किसी प्रकार रोककर, अपने मित्रों के साथ विहार करने लगे।

तावद्धनिष्ठा घृतपक्वमन्नं, प्रातः कृतं यल्ललितादिभिस्तत्।
दत्तं रसालादियुतं जनन्यक्म, दासीभिरादाय समाजगाम।।१८६।।

(गोवि० ६/३२)

तां वीक्ष्य दृष्टः स हरिर्बभाषे, किं मे धनिष्ठे ! पितरौ सुखं स्तः।
सुस्नातमाभ्यां विहितेशपूजा, प्रतोष्य सर्वान् वद किं नु भुक्तम्।।१८७।।

(गोवि० ६/३३)

साप्याह तं तौ तव मंगलार्थं स्नातार्चितेशौ द्विजसात्कृतार्थौ।
संभोज्य सर्वानथ भुक्तवन्तौ भोज्यानि च प्रेषयतः स्म तुभ्यम्।।१८८।।

(गोवि० ६/३४)

राधासंगद्रुमारोहोत्कण्ठितालम्बनार्थिनी
तां परालम्बनं मेने चित्तवृत्तिलता हरेः।।१८९।।

(गोवि० ६/३५)

इतस्ततः सञ्चरतीर्गवालीः, स्ववेणुनादैरथ संकलय्य।
जगाम ताः पाययितुं वयस्यैः संचालयन मानसजाह्नवीं सः।।१९०।। (गोवि० ६/३६)

भोजन सामग्री लेकर धनिष्ठा का आगमन, माता–पिता का संवाद, मानसी–गंगा में जल क्रीड़ा आदि वर्णन :–

(१८६) अब ललिता आदि सखीगण ने जो प्रातःकाल घी के पक्वान्न आदि बनाये थे वे सब एवं रसाला आदि माता यशोदा ने वन में भेजने के लिए दासीगणों सहित धनिष्ठा को प्रदान किया, और वे उन सब पदार्थों को लेकर वन में श्रीकृष्ण आदि गोपगणों के समीप आयीं।

(१८७) श्रीकृष्ण धनिष्ठा को देखकर प्रसन्न होकर पूछने लगे– धनिष्ठे ! बताओ मेरे माता–पिता कुशल से तो हैं न ? उन्होंने स्नान, भगवत्पूजा आदि करके सबको सन्तुष्ट करते हुए भोजन कर लिया है क्या ?

(१८८) धनिष्ठा कहने लगी– तुम्हारे मंगल के लिये तुम्हारे माता–पिता स्नान नारायण पूजा तथा ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देकर, सपरिवार भोजन कर तुम्हारे लिये ये भोजन सामिग्री भेजी है।

(१८९) इससे कुछ पूर्व ही श्रीकृष्ण की चित्तवृत्ति रूपी लता श्रीराधा संग रूपी वृक्ष पर आरोहण करने के लिये कोई एक आलम्बन (सहारा) की आवश्यकता का अनुभव कर रही थी अब धनिष्ठा को सामने पाकर उसको ही अपना परम अवलम्बन मानने लगे।

(१९०) इधर–उधर चरती हुई गऊओं को श्रीकृष्ण ने वेणु बजाकर एकत्रित किया और जल पिलाने के लिये सखाओं के साथ मानस गंगा की ओर उनको गायों को चला दिया।

पाययित्वा जलं गास्ताः शीतं स्वादु सुनिर्मलम्।
स्वयं गोपाः पपुः सस्नुर्विजह्रः सलिले चिरम्।।१६१।। (गोवि० ६/३७)

परस्परं वार्य्यभिषिञ्चतः सखीन् कदाचिदाक्षिप्य जलानि भञ्जयेत्।
कदापि तैरेव विनोदकोविदो, विलम्भितो भंगभरं जहर्ष सः।।१६२।।
(भाग० २/७/४६)

कदापि कृष्णाजलमध्यतोनिजं, वपुः स निहुन्य सरोज कानने।
मुखञ्च विन्यस्य कुतूहली स्थितो, यथा न केनापि भवेत् स लक्षितः।।१६३।।
(भाग० २/७/४८)

ततस्तदेकेक्षण–जीवनास्ते, न तं समन्विष्य यदालभन्त।
तदा महार्त्ताः सुहृदो रुदन्तो, विचुक्रुशुर्व्यग्रधियः सुघोरम्।।१६४।।
(भाग० २/७/४९)

ततो हसन् पद्मवनाद्विनिःसृत, प्रहर्षपूरेण विकासितेक्षणैः।
सकूर्दनं तैः पुरतोऽभिसारिभिः, संगम्यमानो विजहार कौतुकी।।१६५।।
(भाग० २/७/५०)

मृणालजालेन मनोरमेण, विरच्य हारान् जलपुष्पजातैः।
सखीनलंकृत्य समुत्ततार, जलात् समं तैः स च भूषितस्तैः।।१६६।। (भाग० २/७/५१)

---

(१६१) वहाँ पर गोपबालकों ने गायों को वह सुस्वादु, सुशीतल, सुनिर्मल जलपान कराया और स्वयं भी उस जल का पान तथा स्नान आदि करके बहुत देर तक उसमें क्रीड़ा करते रहे।

(१६२) सखागण एक दूसरे पर जल फेंक–२ कर खेलने लगे। कभी श्रीकृष्ण उन पर जल फेंक कर उनको पराजित करते और कभी–२ सखाओं द्वारा भी विनोद करने में चतुर श्रीकृष्ण जलक्रीड़ा से पराजित होकर प्रसन्न हो जाते।

(१६३) किसी समय यमुना के जल में अपना श्रीअंग एवं कमलवन में अपना मुखारविन्द छिपाकर कौतुकी श्रीकृष्ण इस प्रकार चुपचाप खड़े हो गये कि कोई भी उनको देख नहीं पा रहा था।

(१६४) श्रीगोपाल के दर्शन ही जिनके जीवन है, वे सखागण जब बहुत देर तक उनको खोजते हुए भी नहीं पा सके, तब वे सब परम दुःखी एवं चिंतातुर होकर बहुत उच्च स्वर से रोने लगे।

(१६५) यह देख वे विनोदी श्रीकृष्ण हँसते हुए उस कमलवन से बाहर आ गये, सखागण नाचते कूदते सब उनके पास पहुँच गये और वे सब मिलकर पुनः विविध विहार करने लगे।

(१६६) उन्होंने मृणाल का डोरा बनाकर उसमें अनेक प्रकार के जलपुष्पों के हार बनाये और अपने सखाओं को पहनाये और उन सखाओं ने भी उसी प्रकार श्रीकृष्ण को सजाया, फिर वे जल से बाहर आ गये।

भूषणेन विचित्रेण वन्येन सखिभिः पुनः।
अहं पूर्विकया सवैर्भूषितोऽसौ यथारुचि।।१६७।।

अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः, स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छ–बालुकम्।
स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिक, ध्वनि प्रतिध्वान–लसद्द्रुमाकुलम्।।१६८।।
(भाग० १०/१३/५)

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवा रुऽक्षुधार्दिताः।
वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम्।।१६६।।
(भाग० १०/१३/६)

कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमण्डलै, रभ्याननाः फुल्लदृशोव्रजार्भकाः।
सहोपविष्टा विपिने विरेजु–षछदा यथाम्भोरुह–कर्णिकायाः।।२००।।
(भाग० १०/१३/८)

केचित् पुष्पैर्दलैः केचित्, पल्लवैरंकुरै फलैः।
शिग्भिस्त्वगभिर्दृशद्भिश्च, बुभुजुः कृतभाजनाः।।२०१।। (भाग० १०/१३/६)

---

(१६७) पुनः वे सखागण 'मैं पहले, मैं पहले' इस प्रकार कहते हुए अपनी–२ रुचि के अनुसार श्रीकृष्ण के विचित्र वनभूषणों से सुसज्जित करने लगे।

(१६८) यमुना पुलिन की रमणीयता का दर्शन कर आनन्दित होते हुए कहने लगे– अहो मित्रों! इस पुलिन की अतिरमणीयता देखो यहाँ समस्त क्रीड़ा सामिग्री उपलब्ध है, इसकी कोमल परम स्वच्छ बालुका है, विकसित कमलों की सुगन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमरगण एवं अन्यान्य पक्षीगण कलरव कर रहे हैं उनकी ध्वनिसे प्रतिध्वनित होते हुए तीर पर सब वृक्षावलि भी शोभा पा रही है।

(१६६) अतएव आओ हम सब इस स्थान पर भोजन करें अधिक दोपहर हो रही है, हमें भूख भी लग आयी है गौवत्सगण निकट ही जलपान कर धीरे–२ तृण चरते रहेंगें।

(२००) कमल की कर्णिका के चारों ओर जैसे उसके पत्ते होते है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण की ओर मुख करके गोपबालक उनके चारों ओर मण्डलाकार बहुत सी पंक्ति बनाकर प्रफुल्लित नेत्रों से बैठ गये।

भोजन लीला एवं वनदर्शन करते–२ कुसुम सरोवर पर आगमन :–

(२०१) कोई–२ गोप बालक अपनी अपूर्व रचना का कौशल दिखाते हुए, पुष्पों द्वारा कोई पत्रों द्वारा–पल्लव व फलों द्वारा, कोई छींके व वृक्ष की सूखी छाल का ही और कोई पत्थर पर ही अपने–२ भोजन पदार्थों के अनुरूप पात्र बनाकर भोजन करने लगे।

विभ्रद्वेणुं जठरपटयोः श्रृंगवेत्रे व कक्षे, वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु।
तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्भभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलि।।२०२।।

(भाग० १०/१३/११)

आचम्य ताम्बूलमथो सुगन्धं, कर्पूरपूर्णं स्वगृहोपनीतम्।
वन्यञ्च भुङ्क्ते स्म विभज्य नूत्नं, सनागबल्लीदलपूगमार्द्रम्।।२०३।।

(भाग० २/७/६२)

मोहोत्थितां तां हरिमाल्यगन्धैः सख्या प्रयुक्तैनसि राधिकां सा।
निशम्य वृन्दामुखतो मिलित्वा, संश्रावयामास तदैव सर्वम्।।२०४।।

ततः सखीनाह हरिः सहार्य्या, यूयं क्षणं चारयताग्रतो गाः,
अहं सखीभ्यां सह माधवीयां, वनश्रियं द्रष्टुमिह भ्रमामि।।२०५।।

(गोवि० ६/३६)

दासीर्धनिष्ठावददाशु यात, यूयं गृहीत्वाखिल भाजनानि।
पुष्पाणि नारायण--सेवनार्थं, संचित्य पश्चादहमागतास्मि।।२०६।।

(गोवि० ६/४०)

---

(२०२) यज्ञभुक् (यज्ञ में भोजन करने वाले) श्रीकृष्ण स्वयं बालकेलि को अंगीकार कर अपने चारों ओर सखाओं के मध्य बैठकर, परिहासमय वचनों से उनको हँसाते हुए भोजन कर रहे थे। उस समय उनकी फैंट में वेणु, बांयी कक्ष (बगल) में सींगा एवं लकुटि, बांये हाथ में दधिमिश्रित अन्नग्रास (कौर) उंगलियों के बीच-२ पीलूआदि फल, अचार, मुरब्बे धारण कर रखे थे। इस छवि को देखकर स्वर्ग एवं पृथ्वी के वासी चकित हो रहे थे।

(२०३) भोजन के पश्चात् आचमन किया और घर से लाया गया कर्पूरयुक्त सुगन्धि पान एवं वन में होने वाले नूतन आर्द्र नागवल्ली एवं सुपारी तोड़कर (दासों द्वारा) भोजन करायी।

(२०४) इस प्रकार श्रीकृष्ण लीला सुनते-२ श्रीराधारानी मोहदशा (मूर्च्छा) को प्राप्त हो गयीं तब सखी ने श्रीकृष्ण की प्रसादी माला की सुगन्ध उनकी नासिका में दी तब वह चेतन हुई पुनः वह सखी वृन्दा देवी के मुख से सुनी समस्त कृष्ण क्रीड़ा का वर्णन करने लगी।

(२०५) अब श्रीकृष्ण सखाओं से कहने लगे- हे मित्रों तुम अग्रज बलराम के साथ कुछ देर आगे जाकर गौचारण करो। मैं सुबल एवं मधुमंगल को साथ लेकर बसन्तकालीन वनशोभा के दर्शनार्थ यही भ्रमण कर रहा हूँ।

(२०६) इधर धनिष्ठा दासीगण को कहने लगी 'तुम ये भोजनपात्र लेकर अभी घर चली जाओ, मैं नारायण की पूजा के लिए पुष्प चयन कर कुछ देर बाद आ जाऊँगी।

फुल्लं–गन्धफलीद्वन्द्वमवतंसोचितं तदा।
आदायागत्य कृष्णस्य वृन्दार्पिवती करे।।२०७।।

(गोवि० ६/४१)

तदालोकात् प्रियाकान्ति–स्मृत्योत्कण्ठावतो हरेः।
एजत्करात्तदादाय तच्छ्रुत्योर्निदधे वटुः।।२०८।।

(गोवि० ६/४२)

वृन्दां धनिष्ठां सुबलं वटुञ्च, षाड्गुण्यविज्ञान् सचिवान् स कृष्णः।
उपाय–दक्षानुपलभ्य मेने, राधांगसंगोत्तमराज्यलब्धिम्।।२०६।।

(गोवि० ६/४३)

मधुमंगलहस्तं स प्रगृह्य वाम पाणिना।
वृन्दा–धनिष्ठा–सुबलैः ससार सुमनासरः।।२१०।।

(गोवि० ६/४४)

कुसुमिततरुवल्लीवीथिकुञ्जैर्लसन्तीं स्थलजल विहगालि–व्यूहकोलाहलैश्च।
स कुसुमसरसीं तां वीक्ष्य राधागमोत्कस्तदभिसृति–विचारं स्वानुगैराचचार।।२११।।

(गोवि० ६/४५)

---

(२०७) अब वृन्दा देवी कानों के भूषण बनाने योग्य दो खिले हुए चम्पक पुष्प लेकर वहाँ आयीं और उनको श्रीकृष्ण के कर कमलों में अर्पण किया।

(२०८) इन दो पुष्पों के दर्शन से श्रीराधा की अंगकांति का स्मरण कर अत्यंत उत्कंठित हुए श्रीकृष्ण के कर कमल कांपने लगे। मधुमंगल ने उन पुष्पों को लेकर श्रीकृष्ण के कर्णयुगल में धारण करा दिये।

(२०६) तदनन्तर श्रीकृष्ण (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध एवं आश्रय) छः प्रकार के गुणों में पारंगत (जिनसे राज्य को अच्छी प्रकार चलाया जा सकता है) वृन्दा, धनिष्ठा, सुबल एवं मधुमंगल इन चार आमात्यों को पाकर, श्रीराधा मिलन रूप उत्तम राज्य की प्राप्ति होगी इस प्रकार अनुमान करने लगे।

(२१०) उन्होंने बांये हाथ से मधुमंगल का हाथ पकड़ लिया और वृन्दा धनिष्ठा एवं सुबल के साथ कुसुम सरोवर की ओर चलने लगे।

(२११) कुसुमित तरुलता समूह से आच्छादित कुञ्जों से सुशोभित, स्थल एवं जल में विचरण करने वाले पक्षियों के कलरव से मुखरित इस सरोवर की शोभा का दर्शन कर श्रीकृष्ण, राधारानी के आगमन की आकांक्षा से उत्कंठित होकर, मधुमंगल के साथ उनकें अभिसार के विषय में परामर्श करने लगे।

प्रयाति वृन्दा सुबलो वटुर्वा, राधान्तिकं चेज्जटिला सशंकाः।
एभिः समं वा कलहं विदध्या, द्वधूं निरुन्ध्यादथवा गृहान्तः।।२१२।।

(गोवि० ६/४६)

आकर्षणीं वा मुरलीं निपुञ्ज्यां सर्वाः समेष्यन्ति च गोपरामाः।
तदिष्टलीलादिरसो न सिध्येत् परस्परेर्ष्या–मद–मान–वाम्यात्।।२१३।।

(गोवि० ६/४७)

ततो धनिष्ठे ! ब्रज कुन्दबल्लीं, प्रतीतिकृत् स जटिला यदस्याम्।
तद्वञ्चनाचञ्चुमतिः सदा नौ, स्निग्धार्थिता सा ध्रुवमानयेत्ताम्।।२१४।।

(गोवि० ६/४८)

अथाह वृन्दा भवता यदुक्तं, सत्यं हि तच्चेत् सुमनोऽवचेतुम्।
राधा–सखी काचिदिहागता स्यात्, ज्ञेयरत्तदास्यास्तदुदन्त आदौ।।२१५।।

(गोवि० ६/४६)

अथागता सा तुलसी स्वसख्या, कृष्णं सखिभ्यां सह तत्सखीभ्याम्।
प्रियागमोपाय–विचारलग्नं, पुरः स्फुरन्तं मुमुदे समीक्ष्य।।२१६।। (गोवि० ६/५०)

---

(२१२) वे विचार करने लगे– यदि श्रीराधा के पास वृन्दा, सुबल या मधुमंगल को भेजते हैं तो जटिला को संदेह हो जावेगा, इनके साथ कलह कर सकती है अथवा बहू को ही घर में रोक सकती है।

(२१३) यदि इस प्रयोजन से आकर्षणी मुरली ध्वनि को नियुक्त करूं, तो इसको सुनकर समस्त गोपरमणी ही आ जावेंगी और उनकी परस्पर ईर्ष्या, मद, मान, वामता (विभिन्न स्वभावों के कारण) मेरे अभीष्टरस की निष्पत्ति नहीं हो पावेगी।

(२१४) अतएव हे धनिष्ठे ! तुम कुन्दलता के पास जाओ, वे हम दोनों के प्रति सतत् स्नेहमयी है और विशेषकर जटिला उस पर बहुत विश्वास करती है, जटिला की वंचना करने में वह बहुत निपुण है, उनसे यदि प्रार्थना की जाये तो वे अवश्य ही कोई न कोई उपाय कर श्रीराधा को ले आवेंगी।

(२१५) तब वृन्दा देवी कहने लगी– 'तुमने जो कहा है वह तो सत्य है, किंतु यदि श्रीराधा की कोई सखी कुसुम चयन करने के लिये इधर आयी हो तो पहले उसके मुख से श्रीराधा का समाचार जानना चाहिये।

सखी तुलसी का आगमन एवं उसके मुख से श्रीराधा के संवाद की प्राप्ति :–

(२१६) इधर तुलसी नामकी श्रीराधा की सखी कस्तूरी मंजरी के साथ वहाँ आकर, वृन्दा, धनिष्ठा, सुबल एवं मधुमंगल के साथ श्रीकृष्ण को श्रीराधा की प्रतीक्षा में बैठकर विचार–विमर्श करते देख, परम आनंदित हो उठी।

स्वप्नेऽपि तत्सन्निधिमत्पजन्तीं, तं राधया ते जहुषुः समेताम्।
निश्चित्य सर्वेऽप्यथ माधवोऽभू–तद्दर्शनोत्कोऽध्वनि दत्तदृष्टिः।।२१७।।

(गोवि० ६/५१)

ततः सा तुलसी न्यस्य हृष्टा वटुकरे स्रजम्।
उद्घाट्य पुटिकां वीटीं सुबलस्य करे ददौ।।२१८।।

(गोवि० ६/५२)

राधाकरामोद–समृद्धसौरभं, तच्छिल्पनैपुण्यभरं तथाद्भुतम्।
तामुदिगरन्तीं भ्रमरालिकर्षिणीं, स्रजं विलोक्याभवदुन्मना हरिः।।२१६।।

(गोवि० ६/५३)

कण्ठे स्रजं तामथ वैजयन्तीं, हसन् न्यधाच्छ्रीमधुमंगलोऽस्य।
राधाकरस्पर्शसुखादिवासौ, तत्स्पर्शतः कण्टकितांग आसीत्।।२२०।।

(गोवि० ६/५४)

आगत्य कुञ्जे परिहासलीनां, सम्भावयंस्तां दयितां मुकुन्दः।
तदास्यवीक्ष्योत्कलिकाकुलात्मा, तया हसन्त्या सह संललाप।।२२१।।

(गोवि० ६/५५)

---

(२१७) तुलसी जब स्वप्न में भी श्रीराधा का संग त्याग नहीं करती तब तो श्रीराधा भी अवश्य ही आयीं होगीं इस प्रकार विचार कर सभी प्रफुल्लित हो गये। श्रीकृष्ण तब श्रीराधा के दर्शनार्थ उत्कंठित चित्त होकर उनके पथ की ओर नयन लगाकर बैठ गये।

(२१८) तब तुलसी ने पुटिका (पत्र आदि विरचित सम्पुट) खोलकर, मधुमंगल के हाथ में माला एवं सुबल के हाथ में पान की बीरी अर्पण की।

(२१६) श्रीराधारानी के करकमल के स्पर्श से अत्यधिक सुगन्धित एवं उनके शिष्यनैपुण्य से युक्त, अतिविचित्र, भ्रमरों को आकर्षित करने वाली, उस माला को देखकर अतिशय (श्रीराधारानी के मिलनार्थ) व्याकुल हो उठे।

(२२०) तत्पश्चात् मधुमंगल ने हँसते–२ उस वैजयन्ती माला को श्रीकृष्ण के गले में पहना दिया। उस माला में राधारानी के करकमलों का स्पर्श होने के कारण श्रीकृष्ण का सर्वांग पुलकित हो उठा (मानो राधारानी ही मिल गयी हो)।

(२२१) श्रीकृष्ण मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगे कि राधारानी यहाँ आकर परिहास करने के लिये किसी कुंज में छिप गयीं हैं, अतः वे उनके मुखचन्द्र के दर्शन की उत्कण्ठा से, हास्य–परायणा तुलसी से वार्तालाप करने लगे–

सख्यास्ते कुशलं, सखीशा कुशलं कुत्रेयमात्मालये किं नायाति वनं कृतौ स्वगुरुणादिष्टाथ किं चेष्टते।
मथ्नात्यम्बुघटं ततः किमभवन्निर्भर्त्स्य रुद्धा गृहे युक्त्या चानय वृन्दया न जटिला वञ्च्याह हा धिग् विधिम्।।२२२।।

(गोवि० ६/५६)

सदा राधातिदौर्लभ्य–स्फूर्त्या मत्वा बभूव सः।
हासोक्तिमपि सत्यां तां विषन्नात्मा स्मराकुलः।।२२३।।

(गोवि० ६/५७)

कनकाद्रि–निकेतकेतकी–कलिका कल्पकलेवरद्युतिः।
हृदि सा मुदिरालिमेदुरे, चपला मां किमलंकरिष्यति।।२२४।।

(वि० २/२६)

कृष्णं विषन्नमालोक्य व्याकुला तुलसी स्वयम्।
दृष्ट्या वृन्दा–धनिष्ठाभ्यां भर्त्सिताह ससम्भ्रम्।।२२५।।

(गोवि० ६/५८)

---

(२२२) श्रीकृष्ण कहने लगे– 'हे सखि ! तुम्हारी सखी (श्रीराधा) कुशल से तो हैं न ? तुलसी– हे ईश कुशल हैं। श्रीकृष्ण वे इस समय कहाँ हैं ? तुलसी– 'अपने घर मे है।' श्रीकृष्ण, 'क्या वन में नहीं आवेंगी ? तुलसी– गुरुजनों के आदेशानुसार घर के काम काज में लगीं हैं। श्रीकृष्ण, 'वे क्या कर रही हैं ? तुलसी, 'दही के स्थान पर जल के घड़े को ही मथ रहीं हैं। श्रीकृष्ण, 'उससे क्या हुआ ? तुलसी, 'जटिला ने यह देखकर क्रोधित होकर भर्त्सना करते हुए उन्हें घर में ही रोक रखा है।' श्रीकृष्ण, 'वृन्दा के साथ कोई युक्ति करके उन्हें यहाँ ले आओ।' तुलसी, 'जटिला इतनी सीधी नहीं है कि उसकी वंचना की जा सके।' श्रीकृष्ण दुःखी होते हुए कहने लगे, 'हे विधाता ! तुझे धिक्कार है !

(२२३) कंदर्पाकुल श्रीकृष्ण, तुलसी के इन परिहास वचनों को सत्य मानते हुए, 'हाय ! सदा ही राधा को प्राप्त करना अति दुर्लभ है। अतः परम विषादग्रस्त हो गये।

(२२४) श्रीकृष्ण दुःखित होते हुए कहने लगे, 'अहो जिसकी अंग कांति स्वर्ण पर्वत पर खिली केतकी पुष्प की कली तुल्य है वह श्रीराधा रूपी सौदामिनि क्या कभी मेरे मेघपुञ्ज तुल्य स्निग्ध हृदय को अलंकृत करेगी ?

(२२५) तुलसी श्रीकृष्ण की इस प्रकार व्याकुल दशा को देखकर स्वयं भी व्याकुल हो उठी, वृन्दा तथा धनिष्ठा भी यह देखकर उसे नेत्रों से डांटने लगीं और वह (तुलसी) अत्यंत विनय तथा आदर पूर्वक श्रीकृष्ण से कहने लगी–

मा गाः खेदं ब्रजानन्द ! यामि निर्मञ्छनं तव।
आगतां विद्धि दयितां परिहासः कृतो मया।।२२६।।

(गोवि० ६/५६)

तामाभतामथ निशम्य दिद्रूक्षुरेना–मौत्सुक्य–चञ्चलमना ब्रजराजसूनुः।
उत्तार्य्य चम्पकयुगं निजकर्णयोस्तत् तस्याः समर्प्य करयोर्मुदिताऽवदत्ताम्।।२२७।।

(गोवि० ६/६०)

क्वेयं क्वेयं निहुता वा किमर्थं, रुष्टा सा चेन्नापराधो ममास्ति।
चेन्नर्मैस्तद्दून–चित्ते न युक्तं, हा हा शीघ्रं दर्शयामूं प्रियां मे।।२२८।।

(गोवि० ६/६१)

प्रियावलोकनोत्कण्ठं कालदेशार्थतत्ववित्।
आनिनीषुर्द्रुतं राधां, बभाषे तुलसी हरिम्।।२२६।।

(गोवि० ६/६२)

सा ते कान्ता कमलनयन ! त्वन्मुखालोकनोत्का सूर्यार्चायै सपदि जटिला–प्रेषिता कुन्दबल्ल्या।
त्वामायान्ती प्रथममिह मां प्राहिर्नोत् त्वत्प्रवृत्यै क्रीड़ाकुञ्जं तमुपदिश त्वं यत्र तामानयामि।।२३०।।

(गोवि० ६/६३)

---

(२२६) हे ब्रजानन्द ! दुःख मत करो, मैं तुम्हारी बलिहार जाऊँ। मैं तो हंसी कर रही थी, तुम्हारी प्रिया अब आयी ही समझो।

(२२७) श्रीराधा की आगमन वार्ता सुनकर उनकेदर्शन के लिये उत्सुकता प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण अति चंचल मन से अपने कानों से चम्पक पुष्प द्वय उतारकर तुलसी के हाथों में देते हुए हर्षपूर्वक बोले–

(२२८) अरी तुलसी ! श्रीराधा कहाँ है ? कहाँ है ? वे छिपकर क्यों खड़ी है ? क्या वे मेरे प्रति रुष्ट है ? किन्तु मैंने तो कोई अपराध नहीं किया। यदि वे परिहास करके छिप रही हैं तो क्या दुःखीजन के साथ इस प्रकार करना उचित है ? हाय हाय ! मुझे शीघ्र प्रियाजी के दर्शन कराओ।

(२२६) तब देशकाल के तत्व को जानने वाली तुलसी (कब क्या करना चाहिए इस विषय में चतुरा) श्रीराधा को शीघ्र ही वहाँ पर लाने की इच्छा से, प्रिया के दर्शनार्थ उत्कण्ठित श्रीकृष्ण से कहने लगी–

(२३०) हे कमलनयन ! आपकी वह प्रिया आपके मुखारविन्द के दर्शन निमित्त उत्कंठिता होकर जटिला के आदेश से सूर्यपूजा करने (के बहाने से) कुन्दलता के साथ आ रहीं हैं। उन्होंने आपके भाव तथा सब समाचार लाने के लियें ही मुझे पहले आपके पास भेजा है। अब बताओ किस कुंज में उनको लेकर आऊँ।

तच्छुत्वोच्छ्वसित–स्वान्तः प्रीतो गुञ्जावलीं हरिः।
तुलस्यै दत्तवान् कण्ठादुत्तार्य पारितोषिकम्।।२३१।।

(गोवि० ६/६४)

लीलानिकुंज–कलनाय तदाथ वृन्दा, कृष्णावलोकितमुखी तुलसीं बभावे।
तत्कुण्डतीरगतमानय राधिकां तां, कन्दर्पकेलिसुखदाख्य निकुञ्जमाशु।।२३२।।

(गोवि० ६/६५)

अहञ्च केलि सामग्रीं समग्रयितुमुत्सुका।
राधाकुण्डं त्वया सार्द्धं प्रयातास्मि द्रुतं सखि!।२३३।।

(गोवि० ६/६६)

तावत् कृत्वा प्रिहसहचरीं, स्वस्य चन्द्रावलीं तां संकेतस्थां ब्रजपतिसुतं नेतुमागत्य तत्र।
गुञ्जाहारं हरिहृदि सखीदत्तमाधाय शैव्या दृष्ट्वा वृन्दासहित–तुलसीं विव्यथे खिब्धचित्ता।।२३४।।

(गोवि० ६/६७)

कृष्णस्याग्रे वृन्दया संलपन्त्या, आलोकात्तत् प्रेष्ठसख्यास्तुलस्याः।
राधां मत्वा सागतां दुःखिता तां, शैव्या सव्याजं तदा व्याजहार।।२३५।।

(गोवि० ६/६८)

---

(२३१) तुलसी की बात सुनकर अत्यंत हर्षित होते हुए श्रीकृष्ण ने अपने कण्ठ से प्रसन्नतापूर्वक गुंजामाला उतारकर, तुलसी को पुरस्कार रूप में प्रदान की।

(२३२) तब श्रीकृष्ण ने लीला कुंज का निर्धारण करने के लिये वृन्दा की ओर दृष्टिपात किया। वृन्दाजी श्रीकृष्ण का संकेत प्राप्त कर तुलसी को कहने लगी– तुम राधाकुण्ड के तीर पर 'कन्दर्प केलि सुखद कुंज' में शीघ्र ही प्रियाजी को ले आओ।

(२३३) और हे सखि ! मैं युगल के लिए सम्पादनार्थ सब सामिग्री जुटाने के लिए उत्सुक होकर शीघ्र ही तुम्हारे साथ राधाकुंड को जा रही हूँ।

चन्द्रावली की सखी शैव्या का आगमन, उसको छलपूर्वक प्रतारित कर गौरीतीर्थ के प्रति भेजना :–

(२३४) ईधर चन्द्रावली की सखी शैव्या, चन्द्रावली को संकेत स्थान पर रखकर श्रीकृष्ण को लाने के लिये वहाँ पर आयी। उसने चन्द्रावली द्वारा दी गयी गुञ्जामाला श्रीकृष्ण के गले में अर्पण की और निकट ही वृन्दा एवं तुलसी को देखकर क्षोभ के कारण व्यथित हो गयी।

(२३५) श्रीकृष्ण के सामने, श्रीराधा की प्रिय सखी तुलसी को वृन्दा के साथ वार्तालाप करते हुए देखकर 'श्रीराधारानी आ गयीं हैं' ऐसा मानकर दुःखतचित्त से शैव्या छल करती हुई तुलसी से कहने लगी–

कुर्वन्त्याद्य तया दुर्गाब्रतोद्यापमहोत्सवम्।
तां निमन्त्रयितुं राधां प्रेषितास्मि वयस्यया।।२३६।।

(गोवि० ६/६६)

साद्य लब्धा मयान्विष्य न गृहे नापि कानने।
दिष्ट्या लब्धासि तुलसि ! कथ्यतां कुत्र ते सखी।।२३७।।

(गोवि० ६/७०)

ततः सा तुलसी ज्ञात्वा शैव्यां कौटिल्यमाश्रिताम्।
अवदत्तां सकौटिल्यं शठे शाठ्यं हि यन्नयः।।२३८।।

(गोवि० ६/७१)

कुर्वाणया ब्रतमहोत्सवमम्बिकायाः सा श्यामया स्वसुहृदाद्य निमण्त्र्य नीता।
वृन्दाटवी–परिवृढ़ा स्वगृहं तथास्यां भारोऽप्यधायि विनयैः ससखीकुलायाम्।।२३९।।

(गोवि० ६/७२)

ततो ललितया पुष्पफलमाल्य–समृद्धये।
वृन्दां नेतुं प्रेषिता तां गृहीत्वा चलितास्म्यहम्।।२४०।। (गोवि० ६/७३)

इति तां तुलसी भंगया प्रतार्य्य कुटिलामपि।
ययौ वृन्दा–धनिष्ठाभ्यामुदासीनेव माधवे।।२४१।। (गोवि० ६/७४)

(२३६) हे तुलसी ! आज हमारी सखी चन्द्रावली दुर्गाव्रत का उद्यापन महोत्सव कर रहीं हैं, इसलिये श्रीराधा को निमंत्रित करने के लिये मुझको भेजा हैं।

(२३७) किंतु घर में, वन में खोजते–२ कहीं भी तो वो नहीं मिल रहीं हैं, भाग्य से तुम मिल गयी हो, कहो सखि तुम्हारी प्रिय सखी राधा कहाँ है ?

(२३८) तब शैव्या के कुटिल (छलपूर्ण) वचनों को समझकर तुलसी विचार करने लगी–'शठ के साथ शठता ही करना नीति है इस प्रकार सोचकर तुलसी भी शैव्या को मिथ्या वचनों द्वारा वञ्चना करने के अभिप्राय से कहने लगी–

(२३९) आज श्रीराधा की प्रिय सखी श्यामला 'अम्बिका महोत्सव' करने के लिये श्रीवृन्दावनेश्वरि राधारानी को निमंत्रण देकर अपने घर ले गयी हैं एवं विनती करके उत्सव का सब भार सखियों ने उनको ही सौंपा है।

(२४०) अब ललिता जी ने पुष्प, फल, मालाएं लाने तथा वृन्दा को संग लेकर आने के लिये मुझे यहाँ पर भेजा है, मैं यह सब लेकर वृन्दादेवी के साथ जा रही हूँ।

(२४१) इस प्रकार तुलसी ने अपने वाक् चार्तुय्य से कुटिलमति शैव्या को प्रतारित कर श्रीकृष्ण के प्रति उदासीनता का भाव प्रकट करती हुई, वृन्दा तथा धनिष्ठा के साथ वहाँ से चलने लगी।

पुनर्विवक्षुं तां शैव्यां कृष्णाः कुञ्चित–चक्षुषा।
निर्वार्य्याह स्वमौदास्यां तुलस्यां व्यञ्जयन्निव।।२४२।।
(गोवि० ६/७५)

मा किञ्चद्वद यात्वेषा स्वसख्याः कुशलं वद।
क्वेयमास्ते किं कुरुते प्रिया चन्द्रावली मम।।२४३।। (गोवि० ६/७६)

सातिहृष्टाथ तं प्राह निरुद्धापि धवाम्बया।
दुर्गार्चा–छद्मनानीता यत्नाच्चन्द्रावली मया।।२४४।। (गोवि० ६/७७)

सखीस्थल्योपशल्ये तां त्वत्संगोत्कलिकाकुलाम्।
संरक्ष्य पद्मया तूर्णं त्वान्वेष्टुमिहागता।।२४५।। (गोवि० ६/७८)

चिन्तितोऽन्तवर्हिर्हृष्यन् प्रत्युत्पन्नमतिर्हरिः।
अवदद्वञ्चयन् शैव्यां छद्मना नन्दयन्निव।।२४६।। (गोवि० ६/७९)

अहं तद्दर्शनोत्कण्ठो द्रिष्ट्यानीतेयमाल्यसौ।
गौरीतीर्थं लम्भयैनां गुरुणां वञ्चनक्षमम्।।२४७।। (गोवि० ६/८०)

---

(२४२) ईधर जब श्रीकृष्ण ने देखा कि शैव्या पुनः तुलसी से कुछ बात कहने जा रही है तो उसे नेत्रों के संकेत से रोके हुए, मानो तुलसी के प्रति उदासीनता दिखा रहे हो, इस प्रकार भाव प्रकट करते हुए कहने लगे–

(२४३) शैव्ये ! अब इससे (तुलसी से) कुछ मत बोलो, इसे जाने दो। अब तो अपनी सखी की कुशल कहो, मेरी प्रिया चन्द्रावली कहाँ है ? एवं क्या कर रही है ?

(२४४) अब शैव्या हर्षपूर्वक श्रीकृष्ण से कहने लगी– हे कृष्ण ! चन्द्रावली को अपनी सास द्वारा रोके जाने पर भी मैं उसको दुर्गापूजा का छल करके ले आयी हूँ।

(२४५) आपको दर्शनार्थ उत्कण्ठिता चन्द्रावली को मैं 'सखी स्थली' (नामक स्थान) पर पद्मा के साथ रखकर आपका अन्वेषण करने के लिये शीघ्र ही आयी हूँ।

(२४६) प्रत्युत्पन्नमति (शीघ्र ही किसी उपाय को विचार करने में समर्थ) श्रीकृष्ण तब हृदय में चिन्तित होते हुए भी बाहर आनन्द प्रकाश पूर्वक छलवाक्यों से शैव्या की वञ्चना करते हुए किंतु बाहर से मानो उसे प्रसन्न करते हुए कहने लगे–

(२४७) सखि ! मैं भी तो तुम्हारी सखी के दर्शनार्थ उत्कण्ठित हूँ। सौभाग्य की बात है कि तुम उसको घर से ले आयी हो, अब तुम उसे 'गौरीतीर्थ' (नामक स्थान) पर ले जाओ, जहाँ पर गुरुजनों (सास आदि) का कोई भय नहीं होगा अतः उनकी वञ्चना की जा सकेगी।

यावत् प्रमदराधाख्ये गाः सञ्चारयतो वने।
अवधार्यागतोऽहं स्यां गवां सम्भालने सखीन्।।२४८।।

(गोवि० ६/८१)

इति प्रतार्य्य तां शैव्यां गोदिशं ससखोऽव्रजत्।
मुरारिस्त्वरया हृष्टो सापि चन्द्रावलीं प्रति।।२४६।।

(गोवि० ६/८६)

प्रेषिता ललितया तदालयः, पेशला·जनतयाप्यलक्षिता।
भूभृदन्तिकमुपेत्य सौरभं, भेजुरुन्नतमुदो वनस्रजः।।२५०।।

(कृ० भा० ८/६)

तत्र वीक्ष्य मुदितासु तासु तं, प्राह काचन खनिर्गुणश्रियम्।
रुपमञ्जरिरपार–सौभगा–पृष्ठयौवतमणि–प्रवृत्तिकम्।।२५१।।

(कृ० भा० ८/८)

नागरेन्द्र ! भवता यदा पदा– लिंगिता विपिन भूर्दधे श्रियम्।
स्पर्द्धयेव तव गोष्ठभूस्तया, लिंगयत स्वसुषमां ददानया।।२५२।। (कृ० भा० ८/६)

---

(२४८) इस समय मैं 'प्रमदराधारण्य' (परमादली) वन में गौचारण करते हुए सखागणों को गउओं की देखभाल में नियुक्त कर जब तक वहाँ आऊँ तब तक तुम चन्द्रावली को लेकर 'गौरीतीर्थ' पर आ जाओ।

(२४६) इस प्रकार शैव्या की प्रतारणा कर, श्रीकृष्ण दोनों सखाओं के साथ गायों की ओर चल दिये। शैव्या भी प्रसन्नतापूर्वक चन्द्रावली के समीप चल पड़ी।

श्रीरूप मञ्जरी के मुख से श्रीकृष्ण का श्रीराधारानी की विरह दशा का श्रवण :–

(२५०) इधर श्रीललिता सखी ने अपनी कुछ चतुरा सखियों को अलक्षित रूप से (कोई न जान पाये इस प्रकार) गोवर्धन पर्वत के निकट भेज दिया, उन्होंने वहाँ जाकर श्रीकृष्ण की वनमाला की सुगन्धि पाकर अपार आनंद का अनुभव किया।

(२५१) उस निर्जन स्थान पर श्रीकृष्ण दर्शन पाकर वे सब परम आनंदित हो उठी, श्रीकृष्ण के उनसे तरुणिमयी श्रीराधा का समाचार पूछने पर उनमें से गुणमणिखनि (गुणों की खान) अपार सौभाग्यवती श्रीरूप मञ्जरी उत्तर देने लगीं–

(२५२) हेनागरेन्द्र ! आपके इन चरणकमलों के मात्र आलिंगन से यह वनभूमि इतनी अधिक शोभा को धारण कर रही है, यह सुनकर तुमसे (होड़) करती हुई श्रीराधा तो मानो अपने सकल अंगों द्वारा इस गोष्ठ भूमि का आलिंगन करती हुईं इसकी और अधिक शोभा बढ़ा रही हैं (अर्थात् आपके विरह में भूमि पर लोट रहीं हैं)।

त्वं हरे हरिमणीमयीं व्यधाः, क्ष्मामिमां निजसवण्रतार्पणैः।
साप्यधास्यत विवर्णतां न चे, त्ताञ्च काञ्चनमयीं व्यधास्यत।।२५३।।

(कृ० भा० ८/१०)

गोरजश्छुरितमास्यमीक्षय, स्त्वं वनौकस इमानरोदयः।
हन्त गोरजसि चेष्टमानया, स्वालयः किल तयापि रोदिताः।।२५४।।

(कृ० भा० ८/११)

किन्त्वनीतिरियमीक्षणाम्बुजे, सन्तताम्बुजनके तया कृते।
ते तु पौत्रमुचितं प्रचक्रतुः, कर्दमोऽम्बुजभवोद्भवो यतः।।२५५।।

(कृ० भा० ८/१२)

माल्य–केश–वसनादयः समुच्छृङ्खलत्वमतिसाधवोऽप्यधुः।
भूभुजा विरहितेऽपि नीवृति, स्यात् क्वकस्य च न वा नियम्यता।।२५६।।

(कृ० भा० ८/१३)

---

(२५३) हे हरि ! आपने अपनी अंगकांति से इस वनभूमि को इन्द्रनीलमणि मयी बना दिया है परंतु हाय यदि विधाता ने उन्हें विवर्णा (रंग अथवा अंग कांति का फीका पड़ जाना) न बना दिया होता तो वे भी अपनी कांति से इस गोष्ठभूमि को काञ्चनमयी बना देती ! (अर्थात् आपके विरह में उनकी अंगकांति फीकी पड़ गयी है)।

(२५४) हे बृजजीवन ! आप अपना गौरजमण्डित वदन दिखाकर इन वनवासी स्थावर जंगम को अश्रुयुक्त (रोदन परायण) बना देते हो उधर श्रीराधा भी गो (पृथ्वी की) रज में लोट–२ कर धूलि घूसरिता होती हुई अपनी सब सखीवृन्द को रोदन करा रहीं है।

(२५५) हे श्रीकृष्ण ! श्रीराधा ने एक अनीति (अथवा आश्चर्य जनक) का कार्य किया है जोकि उनके नयन कमल जल को जन्म दे रहे हैं (जल में कमल का जन्म होता है यही नीति है किंतु यहाँ उलटी रीति है) और जो नयन कमल ने कर्दम (अश्रुयुक्त काजल की कालिमा) को पौत्र रूप में जन्म दिया है वह तो उचित ही है (पुराणों में कहा है कि जलजभव अर्थात् नाभिकमल से ब्रह्मा और उसके पुत्र कर्दम ऋषि)।

(२५६) श्रीराधारानी की माला, केश, वसन आदि सब साधू (अत्युत्तम) होते हुए भी उच्छृंखल (बंधनमुक्त वा स्वेच्छाचारी) हो गये हैं। जिस देश में राजा नहीं होता वहाँ कौन नियमों का पालन करता है ? श्रीकृष्ण रूप अधिपति (राजा) के बिना राधारानी की देह रूपी देश में मानो अराजकता फैल गयी है (अर्थात् माला वस्त्र केश सब बिखर गये हैं)।

यत्तवाङ्घ्रि–वनजद्वयं वनोत्, संग एव विहरत् प्रमोदते।
तत्र विश्वसिति सा न निःश्वसि, त्युष्णमेव बहुधापि बोधिता।।२५७।।

(कृ० भा० ८/१५)

नैव तत्र कटुशर्करांकुरे, त्यर्द्धवागपि सखीमुखोद्गता।
श्रोत्रसीम–पतितैव तां परि क्रोशयन्त्यथ जवादमूर्च्छयत्।।२५८।।

(कृ० भा० ८/१५)

हन्त ! ते प्रियतमः समागतो, वीक्ष्यतामिति सखी–मृषोक्तिभिः।
त्वद्वन स्रगतिसौरभेश्च सा, प्राप्य बोधमतिसंभ्रमं दधौ।।२५६।।

(कृ० भा० ८/१६)

आलि ! नेत्रमदिरैकनर्त्तकः स क्व ते सखि ! गृहेऽस्ति निह्नुतः।
किं प्रतारयसि नैव साक्षि यद् व्यक्ति तं किल तदंगसौरभम्।।२६०।।

(कृ० भा० ८/१७)

इत्यलम्भि सुखमेतया मनाक्, तन्न सोढूमशकन्मनोभवः।
एकदैव शर–पञ्चकस्य य, ल्लक्षतामनयदेव तां बलात्।।२६१।। (कृ० भा० ८/१८)

(२५७) हे नाथ ! हम उनको बारंबार समझा रही हैं कि श्रीकृष्ण के चरण रूप (वनज) कमल, वन में विहार करते हुए आनंद प्राप्त कर रहे हैं, वन ही उनकी जन्मभूमि हैं क्योंकि वे वनज हैं, किंतु वे हमारी बात पर विश्वास न कर केवल लम्बी–२ गर्म श्वास ही छोड़ रही हैं।

(२५८) उनकी विरह व्यथा शांत करने के लिये यदि कोई सखी कहती है 'वन में कठोर कंकर व तृणांकुर नहीं हैं' यह शब्द श्रीराधा के कानों में पूरी तरह प्रवेश भी नहीं कर पाते कि वे उच्चस्वर से चीत्कार करती हुई झट से मूर्च्छित होकर गिर पड़ती हैं।

(२५६) उस समय उनकी सखीगण मिथ्या वचनों द्वारा 'राधे ! उठो आपके प्रियतम श्रीकृष्ण आ गये हैं उनके दर्शन करो' कभी–२ आपकी वनमाला की सुगंधि देकर उनको चेतन करती है तब वे आपको आया समझकर अति संभ्रम में पड़ जाती हैं।

(२६०) मूर्च्छा के उपरांत उठकर राधारानी पूछतीं है, 'अरी सखियों ! तुम्हारे नेत्ररूपी खंजन (पक्षी) को नचाने वाला नटवर कहाँ हैं ? उत्तर– 'राधे ! वह घर में छिपे हुए हैं।' राधा, 'मेरी प्रतारणा क्यों कर रही हो ? उत्तर– 'हे राधे! इसमें प्रतारणा (छल) की क्या बात है ? श्रीकृष्ण के अंग की सुगन्धि ही हमारे कथन की सत्यता को प्रतिपादित कर रही है।'

(२६१) सखियों के इन वचनों का विश्वास, वे आपके अंग की स्पर्श की गयी वनमाला की सुगन्धि पाकर ही करके कुछ अंतर में सुख प्राप्त करतीं हैं, किन्तु मनोभव (कामदेव) को यह सुख सहन नहीं होता, वह पुनः बलपूर्वक अपने पाँचों बाण एक साथ चलाकर उनको व्यथित कर देता है।

स्विद्यति स्म पतति स्म वेपते, स्माश्रुभिः स्वमभिषिञ्चति गृहम्।
सा प्रनिश्य न भवन्मुखेन्दुना, प्राप शीतलयितुं स्वलोचने।।२६२।।

(कृ० भा० ८/१६)

हा सखीजन–वचोऽनृतं मन, स्त्वं मुदामृतसमं वृथा कृथाः।
(स्वं) संज्वरो द्विगुणितो यतो द्यति त्वामितीयमपतत् पुनः क्षितौ।।२६३।।

(कृ० भा० ८/२०)

त्वां धिगस्तु रहितं स्वबन्धुना, जीवितेत्यलघुगर्हयाप्यहो।
नो मनागपि तदाप लाघवं, प्रत्युतातिगुरुभारतामगात्।।२६४।।

(कृ० भा० ८/२१)

हन्त ! कान्तविरहेऽपि किं महत्, सौकुमार्य्यमुदियाय सुभ्रुवः।
अंगकानि यदसु–प्रभञ्जन, स्पन्दनं च न हि सोढुमीशते।।२६५।।

(कृ० भा० ८/२२)

ईत्यवेत्य मधुसूदनः प्रियो, दन्तमन्तरुदघूर्णतातुरः।
वाष्पपूर्णनयने निरुद्धवा, गक्षिपत् प्रियसखास्यमण्डले।।२६६।। (कृ० भा० ८/२३)

---

(२६२) तब उनके अंगों में प्रस्वेद (पसीना) बार–२ कम्प, भूमिपतित होना, अश्रुओं की वर्षा होने लगती है। गृह में प्रवेश करके भी हाय ! वे तुम्हारे मुखचन्द्र की चन्द्रिका द्वारा अपने नयन युगल को शीतल नहीं कर पातीं।

(२६३) घर में आपको न पाकर श्रीराधा कह उठती हैं– अरे मन तू व्यर्थ ही क्यों सखी जनों के झूठे वचनों को अमृत तुल्य मान लेता है ? जोकि अब पुनः दुगुना संताप तुमको भोगना पड़ रहा है, इस प्रकार कहती हुई पुनः भूमि पर गिर पड़ती हैं।

(२६४) फिर श्रीराधा– 'अरे हतभाग्य जीवन (प्राण) अपने प्रियतम से रहित तुम्हें धिक्कार है' इस प्रकार बारंबार कहती हुई अपने प्राणों की निन्दा करने लगती हैं' परंतु ये जीवन तो कुछ भी लघुता (हल्का होना) को प्राप्त नहीं होता बल्कि गुरुतर (भारी) ही होता जाता है। (अर्थात उनका जीना भार स्वरूप हो रहा है।)

(२६५) हे राधानाथ ! आपके विरह में भी सुकुमारी श्रीराधा का अनिर्वचनीय सौकुमार्य उदित हो रहा है, क्योंकि उनके क्षीण अंग व्यजन की हवा को सहना तो दूर रहा, प्राणवायु का स्पन्दन भी सहन नहीं कर पा रहे हैं।

(२६६) श्रीरूप मंजरी के मुख से अपनी प्रियतमा की यह दशा सुनकर मधुसूदन अंतर में अत्यंत व्यथित हुए, वाणी रुद्ध हो गयी, अश्रुभरे नेत्रों से अपने प्रियसखा मधुमंगल की ओर देखकर उसे संकेत किया।

तामुवाच वटुरानय द्रुतं, राधिकां कनकपद्मिनीं वनम्।
अन्यथा किमवनं भवेद्गतिः, सैव हन्त ! मधुसूदनस्य यत्।।२६७।।

(कृ० भा० ८/२४)

माधवोऽथ निजमाल्यमर्पयं, स्तां व्यजिज्ञपदिदं च किञ्चन।
प्रेयसी–हृदि गतास्तु चम्पक, स्रङ् ममाद्य सखि ! सेयमुद्गता।।२६८।।

(कृ० भा० ८/२५)

वृत्तमाख्यदखिलं समेत्य सा, राधिकामथ तया वरस्रजः।
श्लेषणाप्त–रमणांगसौरभैः, स्वीय जीवितमकारि जीवितम्।।२६६।।

(कृ० भा० ८/२६)

प्रेयसी–स्वविरहोग्रवृश्चिक, व्रात–दंशविधुरे श्रुते पुनः।
तद्विषज्वलन जर्जरं तदै, वान्वभावि निजमर्म शर्मभित्।।२७०।।

(कृ० भा० ८/२७)

कियद्दूरं ततो गत्वा निवृत्योद्वर्त्मना हरिः।
राधाकुण्डं समायातः प्रियासंगोत्सुकः प्रियम्।।२७१।।

(गोवि० ७/१)

---

(२६७) वटु मधुमंगल श्रीकृष्ण के मन का अभिप्राय समझकर रूपमंजरि से कहने लगे– 'हे रूप मंजरि ! राधा रूपा कनक कमलिनी को शीघ्र ही वन में ले आओ। वन जल के बिना अन्यत्र दुःख ही पाएगी (सूख जावेगी) और मधुसूदन की तो वह एकमात्र गति है, उसके बिना इनका जीवन भी नहीं रहेगा।

(२६८) श्रीकृष्ण रूपा चम्पकमाला मेरी प्रेयसी के हृदय पर विराजित कर, तुम श्रीराधा रूपा चम्पकमाला लाकर मेरे हृदय पर विराजित कर देना।

(२६६) तब श्रीरूपमंजरी सखी ने अत्यंत शीघ्रतापूर्वक राधारानी के पास जाकर समस्त वृतांत सुनाया और चम्पकमाला भी उनको पहना दी। श्रीराधारानी ने उस माला के स्पर्श से अपने प्राणबल्लभ के अंगों की सुगंधि पाकर मानो अपने प्राणों को पुनः जीवित किया।

(२७०) जब राधारानी ने यह सुना कि प्रियतम मेरे विरह रूपी बिच्छुओं के दंशन से अतिकातर एवं विष की अग्नि में जल रहे हैं तब उनको माला से प्राप्त हुआ सुख भी विस्मृत हो गया और वे श्रीकृष्ण के दुःख से स्वयं भी दग्ध होने लगी।

(१) श्रीकृष्ण का राधाकुण्ड में आना और राधाकुण्ड की शोभा का वर्णन :–

(२७१) अब श्रीकृष्ण वहाँ से कुछ दूर जाकर पुनः लौट आये। श्रीराधारानी के मिलनार्थ उत्सुक होकर किसी अप्रसिद्ध पथ से (मुख्य मार्ग छोड़कर) राधाकुंड आ गये।

तच्छीमन्नवमञ्जुकुञ्जवलयं शोभाविभूत्यासमानोर्द्ध दिव्यविचित्ररत्नलतिकाद्यानन्दपुष्पश्रियाम्।
अन्तस्तल्पवरं वरोपकरणैराढ्यं समन्ताद्दधद्–राधामाधव–भुक्त भोग्यमखिलानन्दैकसाम्राज्यभूः।।२७२।।
(वृन्दा० ४/१०६)

मध्यैतादृशकुञ्जमण्डलमहो कुण्डं महामोहनम् सान्द्रानन्दमहारसामृतभरैः स्वच्छैः सदा संभृतम्।
रत्नैर्बद्धचतुसतटी–विलसितं सद्रत्नसोपानवतीर्थं श्रीतटसत्कदम्बकतलच्छायामणीकुट्टिमम्।।२७३।।
(वृन्दा० ४/१०७)

गाधागाधतया तयोरतिमुदं कुर्वत्परप्रेष्ठयो–र्नानादिव्यरसोत्तमानवसरे व्यञ्जन्तयोः प्रीतये।
आश्चर्यं कमलोत्पलादि–कुतुकायोन्मीलयन्मीलयन् नानारत्नमयच्छटाम्बुधिजलं व्यञ्जन्निकुञ्जादिकम्।।२७४।।
(वृन्दा० ४/१०८)

कह्लारोत्पल–पद्मकैरवमुखासंख्यप्रसूनैः स्फुटैर्हंसैः सारस–चक्रवाक–मिथुनैः कारण्डवाद्यैः खगैः।
अतयानन्दमदोरुखेलन–कलध्वानैर्महारम्यया भृंगीयूथशतैर्भ्रमदिभरभितो गुञ्जदभिरामञ्जुलः।।२७५।।
(वृन्दा० ४/१०६)

---

(२७२) श्रीराधाकुंड, जहाँ नवीन एवं मनोरम कुंज समूहों की शोभा सम्पत्ति एवं दिव्य एवं विचित्र रत्न लताओं पर आनन्दमय पुष्पों की शोभा असमोधिता (जिसके समान और कोई नहीं है) को प्राप्त हो रही है। वहाँ पर उत्तम–२ उपकरणों से सुसज्जित शैय्याए, तथा चारों ओर श्रीयुगलकिशोर के भोग विलास की वस्तुएं शोभा पा रहीं हैं। इस प्रकार श्रीराधाकुण्ड में सर्वत्र आनन्द का ही साम्राज्य छाया हुआ है।

(२७३) अहो ! इस प्रकार की कुञ्जों के मध्य महामोहन कुण्ड–सान्द्रानन्दमहारसरूप स्वच्छ अमृत जलराशि से सदा ही पूर्ण, उसके चारों ओर तीर पर रत्नों द्वारा जटित घाट समूह उत्तमोत्तम रत्नजटित सीढ़ियों की शोभा, तटप्रदेश कदम्ब वृक्षों की छाया से युक्त, दीवारें भी मणिमय विराज रहीं हैं।

(२७४) परम प्रियतम युगल किशोर को आनंद प्रदान करने के लिये कहीं–२ गम्भीर जल, कहीं थोड़ा–२ जल, उनकी प्रीति के लिये कहीं–२ जगह–२ विविध दिव्य रस (पेय) रखे हैं। उनके कौतुहल के लिए आश्चर्यजनक कमल नीलकमल, बार–२ उन्मीलन, निमीलन (खिलना, मूंदना) कर रहे हैं, नाना रत्नों की कांति से झलमल करती हुई जलराशि में निकुंजों की छवि प्रतिबिम्बित हो रही हैं।

(२७५) इस कुण्ड में लालकमल, नीलकमल, स्वर्णकमल, कैरव आदि प्रमुख–२ असंख्य पुष्पों की सुगन्धि छा रही है, हंस, सारस, चकवा–चकवी, बत्तख आदि पक्षी समूह अत्यंत आनंदोन्मत्त होकर खेलते हुए कलकलध्वनि करते अत्यंत मनोहर प्रतीत हो रहे हैं, इधर–उधर उड़ती हुई शत–२ भ्रमरीगणों के यूथ भी गुंजन करते हुए बहुत सुंदर शोभा पा रहे हैं।

तीर्थोपरिस्थितद्विद्वितरुशाखावलमबनैः।
युतं नाना पुष्पवासाश्चित्रैर्दोलाचतुष्टयैः।।२७६।।
(गोवि० ७/४)

याम्ये चम्पकयोः पूर्वे नीपयोराम्रयोः परे।
सौम्ये बकुलयोर्बद्धरत्नहिन्दोलिकान्वितम्।।२७७।।
(गोवि० ७/५)

पूर्वाग्नेयदिशोर्मध्ये प्रियकुण्डेन संगतम्।
तत्रोर्ध्वेस्तम्मकालम्बि चित्रसेतु–समन्वितम्।।२७८।। (गोवि० ७/६)

चतुष्कोणेषु वासन्ती चतुःशालाभिरावृतम्।
बानीर–केशराशोक–निकुञ्जैः परितो वृतम्।।२७६।। (गोवि० ७/१०)

गल हृद्युदरनाभिश्रोणिजानुरुध्नैः षड्डुदधिवसुकोणैर्मण्डलांगैश्च कैश्चित्।
शिशिरमनु समुष्णैर्गीष्मकाले सुशीतै–र्विविधमणि निबद्धैर्दिक्षु सोपानयुक्तैः।।२८०।।
(गोवि० ७/७)

मणि रुचिजलवीचि–भ्रान्तितृष्णाभिभूता पतितविहगवृन्दाच्छालवालान्तरालैः।
परिजनयुत–राधा–कृष्ण्योर्नर्मगोष्ठी–प्रमदकृदुपवेशानल्पवेदी–सुशोभैः।।२८१।।
(गोवि० ७/८)

---

(२७६) चारों घाटों के ऊपर विराजमान दोनों ओर दो वृक्षों की शाखा पर नाना प्रकार कुसुम एवं वस्त्रों से सुसज्जित चार झूले पड़े हुए हैं।

(२७७) दक्षिण दिशा के घाट पर दो चम्पक वृक्ष, पूर्व दिशा में दो कदम्ब के वृक्ष, पश्चिम दिशा में दो आम्र के वृक्ष एवं उत्तर दिशा में बकुल वृक्ष की शाखाओं पर रत्नमय हिण्डोलें शोभायमान हैं।

(२७८) यह श्रीराधाकुण्ड पूर्व दिशा से अग्निकोण के मध्य तक श्यामकुण्ड से मिलित हो रहा है और जहाँ पर दोनों कुण्डों का संगम होता है वहाँ ऊपर की ओर स्तम्भ सहश लम्बा एक विचित्र सेतु (पुल) शोभा पा रहा है।

(२७६) इस कुण्ड के चारों कोनों में वासन्ती चतुःशाला एवं चारों दिशाओं में वाणीर, नागकेशर, अशोक आदि की कुञ्जों से परिवृत (घिरा हुआ) है।

(२८०–८१) श्रीराधाकुंड के (बाहर) चारों ओर छायी हुई वृक्षों की श्रेणी है जो कि फूलों से लदी हुई लताओं के घने–२ पल्लवों के भार से नीचे को झुकी जा रही हैं। वृक्षों के नीचे बड़ी–२ वेदी और प्रशस्त मणिमय चबूतरे बने है।

निचितपृथुतलानां कुट्टिमैश्चित्रवर्णैः, कुसुमित बहुवल्लीश्लिष्ट–शाखाभुजानाम्।
घनदलफलपुष्पश्रेणिभारानतानां, विततिभिरभितः संवेष्टितं पादपानाम्।।२८२।।

(गोवि० ७/६)

तद्बहिर्यत्सखीवृन्द वृहत्कुञ्जावलेर्वहिः।
सत्फलैः कदलीषण्डैर्मण्डितं शीतलच्छदैः।।२८३।।

(गोवि० ७/११)

तद्बहिर्वाह्योपवनाश्लिष्ट पुष्पाटवीवृतम्।
स्वमध्यसलिलादीव्यत्–ससेतुरत्नमन्दिरम्।।२८४।।

(गोवि० ७/१२)

ऋतुराजादि–सर्वर्तुगुण–सेवितकाननम्।
वृन्दासंमृष्टगन्धाम्भः संसिक्ताध्वांगनालयम्।।२८५।।

(गोवि० ७/१५)

(२८२–२८३) वृक्षों के तले में आलवाल शोभा पा रहे हैं। इन चबूतरों (कुट्टिम सकल) के चारों ओर सीढ़ी बनी हुई हैं। ये ग्रीष्मकाल में शीतल एवं शीतकाल में गर्म रहते हैं। ये कोई तो गले तक, कोई हृदय तक, कोई उदर तक, तो कोई नाभि तक, कोई–२ नितम्ब एवं घुटनों तक ऊँचे बने हैं। इनमें कोई षडकोण, कोई सप्तकोण, कोई अष्टकोण, तथा कोई–२ गोलाकार भी हैं। इनके प्रति अकस्मात् दृष्टि डालने से मणियों की कांति जल की तरंगों जैसा भ्रम उत्पन्न करती है जहाँ पक्षीगण तृष्णातुर होकर जलपान की आशा से इधर–उधर उड़ते हुए उसी के पास आ जाते हैं। वहाँ पर बहुत सी सुंदर–२ वेदी भी सुशोभित हैं। जहाँ पर श्रीराधाकृष्ण अपने प्रिय नर्मसखा एवं सखीवृन्द के साथ बैठकर आनन्दपूर्वक वार्तालाप करते हैं। इसके बाहरी भाग में सखीवृन्द की बड़ी विशाल कुञ्जें हैं और पुनः उसके बाहर शीतल पत्रों की शोभा से युक्त, सुंदर फलों से लदी हुई कदली (केले) वृक्ष की श्रेणी चारों ओर शोभा पा रही है।

(२८४) इसके बाहर उपवन एवं पुष्प वाटिकाएं हैं तथा कुण्ड के मध्य में जल के ऊपर सेतु के सहित रत्नमन्दिर अपनी अपूर्व शोभा धारण कर रहा है।

(२८५) श्रीराधाकुंड के तीर पर स्थित वन श्रेणी समस्त बसन्त आदि सकल ऋतुओं के सकल गुणों से निरन्तर सेवित एवं यहाँ के पथ, आंगन, आलय (गृह अथवा कुञ्ज गृह) सभी को श्रीवृन्दा देवी (अपने परिकर द्वारा) झाड़ पौंछ, धोकर तथा सुगन्धि जल से सींच कर, सुन्दर बना कर रखतीं हैं।

अथ (तया) तोरणकोल्लोच–पताकालम्बगुच्छकैः।
पौष्पैश्चित्रित–कुञ्जाध्व–दोला–चत्वर–मण्डपम्।।२८६।।
(गोवि० ७/१६)

नवकमलदलालीपल्लवावृन्तनाना–कुसुमरचित–शय्योच्छीर्षचन्द्रोपधानैः।
समधु–चषक–ताम्बूलाम्बबुपात्रादियुक्तैः, सुललित–तललीलागार–कुञ्जप्रपञ्चम्।।२८७।।
(गोवि० ७/१७)

राधाकृष्ण रहःकथानुवदनादाश्चर्य माधुर्यवद्ध्वानैः श्रीशुकशारिकाव्यतिकरैरानन्द–सर्वस्वदम्।
कर्णाकर्षि–कुहु–कुहुरितिकलालापैर्वृतं कोकिलैर्नृत्यन्मत्तमयूरमन्यविहगैश्चानन्दकोलाहलम्।।२८८।।
(वृन्दा ४/१०५)

हारीत–पारावत–चातकादिक–प्रहृष्ट–नानाविधचित्रपक्षिणाम्।
कृष्णेक्षणानन्दविफुल्लवर्ष्मणां, कर्णामृत–ध्वान मनोज्ञ–काननम्।।२८९।।
(गोवि० ७/२२)

राकेशार्बुद–र्निमञ्छ्य–राधेशास्येन्दुपायिभिः।
चकोरैर्न्यक्कृतत्यक्त, चन्द्रैर्वृत–नभस्थलम्।।२९०।। (गोवि० ७/२३)

(२८६) और यहाँ पर पुष्पों के तोरण (द्वार) चन्द्रातप, पताकाऐं, खम्भे एवं पुष्प गुच्छों की बंदनवार द्वारा कुञ्ज मार्ग, चबूतरे, फूले तथा मण्डप सभी की विचित्र शोभा हो रही है।

(२८७) (कुञ्जों के भीतर) नूतन–२ कमलदल, पल्लव, फूलों की कोमल पंखुड़ियों से रचित शैय्या, तकिया, चन्द्र तुल्य गोलाकार तकिये, मधूपूर्ण प्याले, ताम्बूल एवं जल के पात्र आदि द्वारा सुललित भूमि से युक्त, लीला निकेतन कुञ्ज गृह विराजमान हैं।

(२८८) इन समस्त कुञ्जों में श्रीराधाकृष्ण की रहस्यमयी लीलाओं का गान करने वाले अतिसुन्दर शुकसारीगण, अत्याश्चर्यजनक सुमधुर ध्वनि से सबको परम आनंदित करते हैं, कुहु कुहु की ध्वनि करने वाली कोकिलाएं सबके कानों को सुख देती हुईं चारों ओर परिव्याप्त हैं, नृत्य करते हुए मयूर–मयूरी स्थान–२ पर शोभा पा रहे हैं, तथा अन्यान्य पक्षियों के आनन्द कोलाहल से ये कुञ्जें मुखरित हो रहीं हैं।

(२८९) हारीत, पारावत (कबूतर) चातक आदि अन्यान्य पक्षीगण श्रीकृष्ण का दर्शन कर हर्ष से भरकर प्रफुल्लित देह से इन वनों में कर्ण रसायन (कानों को सुख देने वाली) कल–२ ध्वनि कर उठते हैं।

(२९०) असंख्य पूर्ण चन्द्र की निन्दा करने वाले श्रीकृष्ण चन्द्र के मुखचन्द्रमा की सुधा का पान करने के लिये ही मानो चकोर सब, आकाश के चन्द्र को त्याग कर उसका तिरस्कार करते हुए गगन मण्डल को घेर कर आ गये हैं।

विपक्वजालकापक्वफलैः कुसुम–पल्लवैः।
मुकुलैर्मञ्जरीभिश्च नम्रैर्बल्लीद्रुमैर्वतम्।।२६१।।

(गोवि० ७/२४)

अनेक पद्माकर–मध्यसंस्थितं, हरेर्विलासार्चित–तीरनीरकम्।
नानाब्जकान्त्युच्छलितं निरन्तरं, गुणैर्जित क्षीर समुद्रमद्भुतम्।।२६२।।

(गोवि० ७/२५)

स्वसदृकतीरनीरेण कृष्णपादाब्जजन्मना।
निजपार्श्वोपविष्टेनारिष्टकुण्डेन संगतम्।।२६३।।

(गोवि० ७/२६)

तीरे कुञ्जा यस्य भान्त्यष्टदिक्षु, प्रेष्ठालीनां स्वस्वनाम्नाप्रसिद्धाः।
ताभिः प्रेम्णा स्वीयहस्तेन यत्नात्, क्रीड़ातुष्ट्यै प्रेष्ठयोः संस्कृता ये।।२६४।।

(गोवि० ७/२७)

तत्तत्काष्ठाप्रान्तविच्छिन्नसीमा, रामोद्यानावेशनांशान्विताश्च।
तत्तत्सीमाभ्यन्तरोत्पन्नवृक्ष, श्रेणीयुग्माच्छन्नवर्त्यमानीलियुक्ताः।।२६५।।

(गोवि० ७/२८)

(२६१–६२) अहो ! श्रीहरि के विलास द्वारा सम्मानित श्रीराधाकुंड का तीर एवं जल पके हुए, कुछ कम पके हुए, कच्चे फल, किसलय, कुसुम, मुकुल एवं मञ्जरी के भार से झुके हुए वृक्ष एवं लताओं की श्रेणी द्वारा निरन्तर आच्छन्न (छत्राकार ढका हुआ सा) हो रहा है। इसमें बहुत–२ से कमलों के वन बीच–बीच में होने से उनकी विभिन्न रंगों की कान्ति से विचित्र वर्ण वाला होने से, अकस्मात् देखने से प्रतीत होता है मानो यह क्षीरसागर का उपहास कर रहा हो।

(२६३) जिसका (श्रीकृष्ण कुण्ड का) तीर एवं नीर उनके (श्रीकृष्ण के) ही समान है और जो श्रीकृष्ण के पादपद्म स्पर्श से जन्मा है उस श्री अरिष्ट (कृष्ण कुण्ड) के साथ ही यह राधाकुण्ड निलित हो रहा है।

(२६४) इस श्रीराधाकुण्ड के उत्तर तीर से वायुकोण पर्यन्त श्रीललिता आदि अष्ट प्रियतमा की अपने–२ नाम से विख्यात कुञ्जें शोभा पा रही हैं। इन सब कुञ्जों में श्रीराधाकृष्ण केलि–विलास करते रहते हैं इसलिए उनकी क्रीड़ातुष्टि (प्रसन्नतार्थ) के लिए सखीगण स्वयं उन सब कुञ्जों का मार्जन, सुसज्जित करना आदि समस्त कार्य अपने हाथ से यत्नपूर्वक करती रहती हैं।

(२६५) सखीगणों की इन कुञ्जों के बाहरी सीमाओं पर उपवन, उद्यान एवं शिल्पशालाएं विराजमान हैं तथा दो कुंजों के मध्य सीमान्त स्थान पर जो वृक्ष है वह दोनों ओर श्रेणीबद्ध होकर रास्ते को आच्छन्न कर रहे हैं।

उपरितनुतरंगाकार–चित्राञ्चिशुद्ध, स्फटिकमणिचितान्यस्फारवर्तमानि तानि।
मरकतमणिवृन्दैराचिताभ्यन्तराणि, प्रतनुलहरि कुल्या–भ्रान्तिमुत्पादयन्ति।।२६६।।
(गोवि० ७/२६)

मणिचय–रचनाभिः स्वेषु भित्तिभ्रमं द्राक् स्वनिकटमणिभित्तौ चात्मबुद्धिं दधद्भिः।
उपवनयुगमध्ये द्वारवृन्दैर्युतानि प्रविशदितरलोके दर्शनादेव भान्ति।।२६७।।
(गोवि० ७/३०)

चकास्त्युदीच्यां दिशि तीर्थ–सन्निधा,वनंगरंगम्बुजनाम–चत्वरम्।
पद्माभ–कुञ्जाष्टदलैर्विराजितं, सुहेमरम्भावलि–केशरान्वितम्।।२६८।।
(गोवि० ७/३१)

सहस्रपत्राम्बुज–सन्निभं स्फुरत्, सुवर्णसत्कुट्टिममञ्जुकर्णिकम्।
लीलानुकूल्योचित–सन्ततोल्लसद्–विस्तीर्णतालाघवमुन्नतप्रभम्।।२६६।।
(गोवि० ७/३२)

ललिता–शिष्यया नित्यं कलावत्या सुसंस्कृतम्।
सर्वर्तुसुखसम्पन्नं नानाकेलिरसाकरम्।।३००।। (गोवि० ७/३३)

---

(२६६) ये पथ क्षुद्र तरंगाकार चित्र रचनायुक्त, विशुद्ध स्फटिकमय एवं आश्चर्य में डालने वाले है इनका मध्यभाग मरकतमणि द्वारा निर्मित होने से, देखने से छोटी–२ तरंगों से युक्त सरोवर के समान भ्रान्ति उत्पन्न करता है।

(२६७) इन समस्त रास्तों में दो–२ उपवनों के मध्य द्वार बने है जिससे वे संयुक्त हैं। द्वारों पर जो मणियों की रचना की गयी है उसे देखकर किसी अन्य जन (इतरजन, अर्थात् सखीवृन्द के अतिरिक्त अन्य भाव वालों को) को द्वार तो भीत के समान एवं भीत (दीवार) द्वार के समान प्रतीत होती है (जिससे वे भीतर प्रवेश न कर सकें।)

(२) श्रीराधाकुण्ड के उत्तर में ललितानन्द कुञ्ज का वर्णन :–

(२६८–२६६) श्रीराधाकुण्ड के उत्तर दिशा वाले घाट के निकट अष्टदल कमल के आकार की आठ कुञ्जों वाली, 'अनंगरंगाम्बुज' नामक एक विशाल चबूतरे पर जिसकी सुंदर स्वर्णकदली की केशर है, सहस्र कमलाकृति स्वर्ण निर्मित कुहिम (छोटे–२ गृहतुल्य) ही जिसकी कर्णिका है और जो लीला के अनुकूल (आवश्यकतानुसार) कभी संकुचित तो कभी विस्तृत हो जाती हैं, इसकी कांति अत्यंत उज्जवल प्रभायुक्त है,

(३००) श्रीललिता सखी की शिष्या कलावती सखी इसका संस्कार (मार्जन करना, सजाना) करने में निरन्तर यत्न करती रहती हैं, समस्त ऋतुओं के सब सुख इसमें अनुभव होते रहते हैं और यह तो मानो प्रिया–प्रियतम की केलि विनोद की खान (आकर) है।

ललितानन्ददं राधाकृष्णयोः सवयस्ययोः।
निकुञ्जराजयोः पटमन्दिरम् स्फुरदिन्दिरम्।।३०१।।

(गोवि० ७/३४)

माणिक्यकेशरश्रेणी–वेष्टितस्वर्णकर्णिकम्।
बहिर्बहिः क्रमाद्वर्धमान–संख्या–प्रमाणकैः।।३०२।।

(गोवि० ७/३५)

एकैकवर्ण–सद्रत्न–कदम्बेनाचितैः पृथक्।
रचितं बहुभिश्चारु समपत्रालि–मण्डलैः।।३०३।।

(गोवि० ७/३६)

पञ्चेन्द्रियाह्लादकरैः शैत्याद्यब्गुणैर्यतुम्।
तद्बहिः क्रमशः स्वर्णे–वैदूर्यैरिन्द्रलीलकैः।।३०४।।

(गोवि० ७/३७)

स्फटिकैः पद्मरागैश्च चितैर्मण्डप–पञ्चकैः।
शोभितं मण्डपेष्वन्तर्नाना रत्न–विनिर्मितैः।।३०५।।

(गोवि० ७/३८)

केवलैर्मिथुनीभाव–संगातैर्मृगपक्षिभिः।
देवैर्नृभिर्युतञ्चान्यैश्चित्रितै रसदीपनैः।।३०६।।

(गोवि० ७/३९)

---

(३०१) यह 'ललितानन्दद' नाम कुञ्ज, श्रीराधाकृष्ण की सखी गणों के सहित यह मन्दिर रूप में विराज रही है इसमें लक्ष्मी (समस्त शोभा सम्पत्ती) सतत् वर्तमान रहती है।

(३०२–३०३) यह कुञ्ज कमलाकृति है– इसकी केशर समूह माणिक्यमय, कर्णिका सुवर्णरचित, एक–२ वर्ण के रत्नों से निर्मित समान पत्रों वाले अनेक मण्डल (एक के बाहर एक मण्डल) हैं। कर्णिका के बाहर केशर और केशर के बाहर पत्रों के मण्डल जोकि क्रमशः दुगुने–२ संख्या में तथा आकार में वृद्धि प्राप्त हो रहे हैं।

(३०४–३०५) यह कुञ्ज कमल के समान पाँचों इन्द्रियों को आनन्द प्रदान करने वाली, शीतलता आदि गुणों से युक्त, इस कर्णिका के बाहर यथाक्रम स्वर्ण, वैदूर्य, इन्द्रनील, स्फटिक, पद्मराग, आदि मणियों द्वारा रचित पाँच मण्डप अत्यंत सुंदर शोभा दे रहे हैं।

(३०६) मण्डपों के बीच का भाग विविध रत्नों से निर्मित मिथुनी भावापन्न (जोड़े के रूप में) मृग, पक्षी, देवता, मनुष्य, अन्यान्य प्राणी, गंधर्व, किन्नर आदि की विचित्र प्रतिमूर्तियाँ बनी हुई हैं जिनसे ये मण्डप अनिर्वचनीय रस का उद्दीपन कर रहे हैं।

पञ्चवर्ण–भूरिचित्र पुष्प पत्र–विस्फुरत् केशरादिशाखि–शाखिकालि–सद्वितानकम्।
अन्तरस्य भाति जानुदघ्नरत्नकुट्टिमा–गार–मध्यकर्णिका सहस्रपत्र–सारसम्।।३०७।।

(गोवि० ७/४०)

आमूलपुष्पिताशोकवल्लीमण्डल–सञ्चयैः।
सितारुण–हरित्–पीत–श्यामपुष्पै प्रकल्पितैः।।३०८।।

(गोवि० ७/४१)

पद्मपुष्पदलाकारैरुपकुञ्जाष्टकैर्वृतम्।
प्रवीणतादृशाशोकतरुकुञ्जवराटकैः।।३०९।।

(गोवि० ७/४२)

वसन्तसुखदं यस्य भृंगकोकिल–नादितम्।
वायव्यां दिशि भात्यष्टदलकुञ्जाम्बुजं दलम्।।३१०।।

(गोवि० ७/४३)

श्रीपद्मन्दिरं नाम नैर्ऋत्यां राजते दलम्।
चतुर्द्वारं चतुष्पार्श्वे वातायन–समन्वितम्।।३११।।

(गोवि० ७/३४४)

---

(३०७) शुक्ल (सफेद) लाल, हरे, पीले एवं श्याम इन पाँच रंगों के पत्रों, पुष्पों द्वारा शोभायमान केशर तथा वृक्षों की शाखा समूह जिसके सुन्दर चंदोवे (चन्द्रातप) के रूप में परिशोभित, ऐसे मण्डपों के मध्यभाग सहस्रदल कमल की आकृति तथा जानु (घुटने) तक ऊँचे रत्नमय कुट्टिम (लघुगृह तुल्य) ही जिसकी कर्णिका के समान है ऐसी यह कुञ्ज अपनी शोभा का विस्तारकर रही है।

(३०८) इसी 'अनंगरंगाम्बुज' चत्वर (चबूतरे) के वायुकोण में 'बसन्तसुखद' अशोक लता समूह एवं श्वेत, अरुण, हरित, पीत, श्यामवर्ण के पुष्पों से सुसज्जित, विविध लताओं से मण्डित है।

(३०९–१०) प्रशस्त, ऊँची, विस्तृत, आमूल (नीचे से ऊपर तक) पुष्पों से युक्त, अशोक वृक्ष की कुञ्ज ही जिसकी कर्णिका है– इस प्रकार कमल के दलों के आकार वाली तथा आठ उपकुञ्जों से परिवेष्टित वसन्तसुखद नामक यह कुञ्ज ललितानन्दद कुञ्ज के वायु कोण में विराज रही है, यह भी अष्टदल कमलाकृति एवं भ्रमर, कोकिल आदि की ध्वनि से निनादित होकर शोभा पा रही है।

(३११) इस श्रीललितानन्दद कुञ्ज के नैऋतकोण में 'श्रीपद्म मन्दिर' नामक दल है जो चारों दिशाओं में चार द्वार से एवं गवाक्ष (खिड़की) से युक्त है।

नानामणिचितानेक–चित्रभित्ति–चतुष्टयम्।
अन्तः सकृष्णगोपीनां पूर्वरागादि–चेष्टितै।।३१२।।

(गोवि० ७/४५)

रासकुञ्जविलासैश्च ललिताचित्रितैर्युतम्।
पूतनारिष्टसंहाराद्यन्त–तच्चरितैर्बहिः।।३१३।।

(गोवि० ७/४६)

रत्नालिद्युति–किञ्जल्कं सद्गर्भागार–कर्णिकम्।
वहिरब्जदलाकारैर्वृतं षोडश–कोष्ठकैः।।३१४।।

(गोवि० ७/४७)

तत्तद्युगान्तरालस्थैर्द्वयष्टोपकोष्ठकैरपि।
उर्द्धतादृक्सन्निवेश–स्फुरदट्टालिकान्वितम्।।३१५।। (गोवि० ७/४८)

अन्तरन्तः क्रमादुच्चनिर्भित्ति–स्तम्भपङ्क्तिषु।
स्फटिकीषु सुविन्यस्त–प्रवालबलभीकुले।।३१६।। (गोवि० ७/४९)

छादितेन महारत्नपटलैस्तिर्य्यगूर्द्धगैः।
भ्राजितेन सुकुम्भेन शिखरेण विराजितम्।।३१७।। (गोवि० ७/५०)

(३१२–१३) इसकी भित्ति (दीवारों) पर नाना प्रकार की मणि समूह द्वारा रचित विचित्र चित्रकारी चारों ओर हो रही है और भीतर दीवारों पर गोपीगण सहित श्रीकृष्ण की पूर्व रागादि चेष्टाएं (प्रथम मिलन) रास, कुञ्ज विलास और बाहरी भाग की दीवारों पर पूतनावध से लेकर अरिष्टवध पर्यन्त श्रीकृष्ण की समस्त बृजलीलाए श्रीललिता देवी ने प्रतिमूर्ती बनाकर चित्रित कर रखी हैं।

(३१४) इस पद्म मन्दिर के भीतर जो रत्नों की कान्ति (किरणें) वही इसकी केशर है और बीच में जो सुन्दर गृह है वही इसकी कर्णिका तुल्य और जो बाहर सोलह दल कमलाकृति प्रकोष्ठ है वही दल हैं।

(३१५) इन सोलह कमलदल के आकार वाले कोष्ठ के बीच सोलह उपकोष्ठ भी हैं और ऊपर (दूसरी मंजिल) भी ठीक इसी प्रकार सोलह कोष्ठ एवं सोलह उपकोष्ठों से सुसज्जित यह अट्टालिका के समान प्रतीत होता है।

(३१६–१७) इनके ऊपर भित्तिशून्य (बिना दीवारों के) स्फटिकमणि निर्मित खम्भों के ऊपर प्रवालरचित छज्जें (बलभी) बने हैं और उनके ऊपर क्रम से वक्र होकर उर्ध्वगामी (ऊपर से नीचे को झुके हुए) जल आदि निवारणार्थ गृहाच्छादनों से आच्छादित हैं।

अत्युच्चेन वनालोक–सुखदेन निजेशयोः।
मुक्तपार्श्वतृतीयोच्चखण्डेन च सुमण्डितम्।।३१८।।

(गोवि० ७/५१)

अधोरत्नाचितानेकचित्रचित्रेण भास्वता।
उपकुट्टिमयुग्मान्तर्दिक्षु सोपान–शोभिना।।३१६।।

(गोवि० ७/५२)

कण्ठदघ्नातिविस्तीर्ण–कुट्टिमेनाभितो वृतम्।
परितस्तावदुच्चानां प्रान्तोत्पन्नमहीरुहाम्।।३२०।।

(गोवि० ७/५३)

फलैः पुष्पैश्च संश्लिष्ट–कुट्टिमप्रान्तदेशकम्।
केलिरत्नाकरं राधाकृष्णयोः सवयस्ययोः।।३२१।।

(गोवि० ७/५४)

आग्नेय्यां भाति पद्माभ–रत्नहिन्दोल–कुट्टिमम्।
पूर्वापरादिगुत्पन्न–प्रवीणबकुलागयोः।।३२२।। (गोवि० ७/५५)

साचि किञ्चिद्विनिर्गत्य गत्या वक्रोर्द्धयोपरि।
मिलिताभ्यां सुशाखाभ्यां छादितं मण्डपाकृति।।३२३।। (गोवि० ७/५६)

---

(३१८) इस पद्म मन्दिर के तृतीय खण्ड जो कि अति ऊँचा है इसके चारों ओर आस–पास मुक्त (खुला है) तथा नाना रत्नों के मण्डप हैं जहाँ पर बैठकर श्रीराधाकृष्ण कुण्डों की तथा चारों ओर वन की शोभा दर्शन करते हैं।

(३१६) इस पद्म मन्दिर के नीचे की भूमि भी रत्नखचित है, सोलह उपकोष्ठ है उनमें मन को मोहित करने वाले चित्र देदीप्यमान हैं और उनमें दो–दो के बीच में सीढ़ियाँ शोभा दे रहीं है।

(३२०–२१) इस पद्ममन्दिर के प्रकोष्ठ कण्ठ तक ऊँचे तथा अत्यधिक विस्तीर्ण (बड़े–२) हैं। सीढ़ियों के पास भी चारों ओर कण्ठ तक ऊँचे वृक्षों की पंक्ति है जिनके पुष्प एवं फल इन प्रकोष्ठों के चारों ओर छा कर शोभा का विस्तार कर रहे हैं। यह पद्म मन्दिर मानो राधाकृष्ण एवं सखीगण सहित एक केलिरत्नाकर के समान है।

(३२२–२३) ललितानन्दद कुञ्ज के अग्नि कोण में कमलाकृति **'रत्नमय हिण्डोला'** शोभा पा रहा है। यहाँ पूर्व तथा पश्चिम दोनों दिशाओं में दो विशाल बकुल वृक्ष खड़े हैं, इसकी दोनों ओर से दो बड़ी सुंदर शाखाएं परस्पर मिलती हुई ऊपर से कुछ वक्र होकर मण्डप सा बनाकर (फूलों एवं पत्तों से) आवृत कर रखा है।

तच्छाखामूल–संनद्धैः पट्टरज्जुचतुष्टयैः।
दढैर्वद्धचतुष्कोणं नाभिमात्रोच्च–संस्थिति।।३२४।।

(गोवि० ७/५७)

पद्मरागाष्टपट्टिभिः प्रवालज–पदाष्टकैः।
घटितं हस्तमात्रोच्चपट्टिवेष्टन–केशरम्।।३२५।। (गोवि० ७/५८)

द्वष्टपत्राम्बुजाकार–रत्नालिचित्रकर्णिकम्।
द्विद्विपादान्विताम्भोज–दलाभाष्टदलैर्वृतम्।।३२६।। (गोवि० ७/५६)

रत्नपट्टिकेशरान्तर्द्वाराष्टक–सुसंयतम्।
दक्षिणे दल पार्श्वस्थारोहद्वारद्वयान्वितम्।।३२७।। (गोवि० ७/६०)

लघुस्तम्भद्वयासक्तपट्टिपृष्ठावलम्बकम्।
पट्टतुलीलसन्मध्यं पार्श्वपृष्ठोपधानकम्।।३२८।। (गोवि० ७/६१)

नानाचित्रांशुकैश्छन्नं स्वर्णसूत्राम्बरैरपि।
लसच्चन्द्रावलीमुक्तादाम गुच्छवितानकम्।।३२६।। (गोवि० ७/६२)

---

(३२४) इस बकुल वृक्ष की दोनों शाखाओं के मूल से एक हिण्डोला पट्टडोरी द्वारा चारों कोणों से दृढ़तापूर्वक बंधा हुआ है, यह नाभिमात्र ऊँचा है।

(३२५) इस हिण्डोले की पद्मरागमणि की आठ पट्टी और प्रवालमणि खचित आठ पाये (पदाष्टक) हैं। इसकी एक हाथ ऊँची वेष्टनपट्टी (चारों ओर एक हाथ ऊँची) ही मानो केशर है।

(३२६) सोलह दल वाले कमल की कर्णिका जो रत्नों से निर्मित है और अत्यंत आश्चर्य जनक है (इसकी कर्णिका है) दो दो पायों से जुड़े हुए कमल के दल, इस प्रकार आठ दलों से युक्त यह हिण्डोला है।

(३२७) रत्नपट्टी की केशर के मध्य आठ द्वार हैं उसके दक्षिण दल के पास से चढ़ने के लिये दो द्वार बने हैं।

(३२८) हिण्डोले के मध्य स्थल में राधाकृष्ण के विराजने के लिये रेशमी गद्दी एवं दोनों ओर तथा पीठ के पीछे उपाधान (तकिये) रक्खे हैं। झूले के मध्य पीछे छोटे–२ खम्भों से पीछे सहारा देने के लिये पट्टी तुल्य (पृष्ठावलम्बन) बनी है।

(३२९) इसके ऊपर नाना प्रकार चित्र–विचित्र वस्त्रों एवं स्वर्णडोरे से जड़ित (जरी का काम) वस्त्रों से आच्छादित, कृत्रिम चन्द्र श्रेणी, मुक्तामाला एवं गुच्छों से सुसज्जित चंदोवा शोभा पा रहा है।

यत्राष्टदलगालीनां मध्यगौ राधिकाच्युतौ।
गायदन्यवयस्याभिर्वृन्दा दोलयतीश्वरौ।।३३०।।

(गोवि० ७/६३)

स्वारुढ–राधाच्युतयोः सर्वाभिमुखताकरम्।
हिन्दोलाम्बुजमाभाति मदनान्दोलनाभिधम्।।३३१।।

(गोवि० ७/६४)

ऐशान्यां भात्यष्टपद्मं माधवीकुञ्ज–सारसम्।
माधवानन्ददं नाम नानालीलोपहारयुक्।।३३२।।

(गोवि० ७/६५)

फुल्लमल्लीभिराश्लिष्टनम्रशाखाभुजब्रजैः।
छादितं फुल्लपुन्नागैश्चन्द्रकान्त चितान्तरम्।।३३३।। (गोवि० ७/६६)
पद्मपत्राकारकुञ्जैर्वेष्टितं स्वर्णकर्णिकम्।
उदीच्यां मणिकिञ्जल्कं भाति कुञ्जं सिताम्बुजम्।।३३४।।

(गोवि० ७/६७)

नम्रशाखा भुजाश्लिष्ट–फुल्लहेमलताचयैः।
तमालैः कल्पितं जिष्णु–नीलरत्नावलिचितम्।।३३५।।

(गोवि० ७/६८)

---

(३३०) इस कमलाकृति हिण्डोले के आठ दलों पर विराजित अष्टसखीगणों के मध्य सुंदर रूप से विराजमान अपने प्राणेश्वर, प्राणेश्वरि श्रीराधाकृष्ण को वृन्दादेवी अन्य सखीवृन्द के साथ गान करते–२ झुलाती हैं।

(३३१) जब श्रीराधाकृष्ण 'मदनान्दोलन' नामक इस हिण्डोले पर आरोहण कर विराज जाते हैं तब सबको ऐसा प्रतीत होता है मानो युगल किशोर हमारे ही सामने बैठे हुए हैं।

(३३२) ललितानन्दद कुञ्ज के इशानकोण में माधवानन्दद नामक माधवी कुञ्ज है यह भी अष्टदल पद्म के आकार वाली है और नाना लीलाओं के उपहार–सामिग्री से परिपूर्ण है।

(३३३) ललितानन्दद कुञ्ज के उत्तर में 'सिताम्बुज' (सफेद कमल सहश) कुञ्ज है यह प्रफुल्लित मल्लिका लताओं से झुकी हुई शाखाओं से तथा प्रस्फुटित नागकेशर से मानो सम्यक् आच्छादित है इसको मध्य भाग चन्द्रकांतमणि खचित है।

(३३४) इसकी कर्णिका सुवर्णमय है, केशर मणिमय, यह भी अष्टदल कमलाकृति है, आठों दलों में आठ कुञ्जें चारों ओर शोभा पा रहीं हैं।

(३३५) ललितानन्दद कुञ्ज की पूर्व दिशा में 'असिताम्बुज कुञ्ज' (नीलरंग की) है।

नीलपद्मदलाकारैरुपकुञ्जाष्टकैर्वृतम्।
सुवर्णकर्णिकं प्राच्यां भाति कुञ्जासिताम्बुजम्।।३३६।। (गोवि० ७/६६)

अवाच्यां पद्मरागादि–चितान्तर्वाह्यमण्डलम्।
लवंगैश्छादितं फुल्लैर्भाति कुञ्जारुणाम्बुजम्।।३३७।। (गोवि० ७/७०)

कुञ्जं हेमाम्बुजं भाति प्रतीच्यां फुल्लचम्पकैः।
बल्लीभिश्छादितं हेमचितवाह्यान्तरालकम्।।३३८।।
(गोवि० ७/७१)

एवमुत्तरादिकुञ्जा भान्ति राधाहरि–प्रियाः।
नानावर्णाकारभेदाद् दृशां विस्मयकारिणः।।३३६।। (गोवि० ७/७२)

प्रतिविदिशमुदञ्चचम्पकानाञ्चतूर्णा–मरुणहरितपीतश्यामपुष्पोच्चयानाम्।
वरपरिमलधाराक्षिप्तगन्धान्तराणां, प्रतिदिशमधिरोहन् माधवी वेष्टितानाम्।।३४०।।
(गोवि० ७/७३)

---

(३३६) यह भी नीलकमलाकृति आठ उपकुञ्जों से वेष्टित है इसकी कर्णिका सुवर्ण निर्मित है यह कुञ्ज प्रफुल्लित हेमलता की नम्र शाखा रूपी भुजाओं द्वारा आलिंगित एवं परिवेष्टित, तमाल आदि वृक्षों द्वारा सुसज्जित एवं अत्युत्कृष्ट नीलरत्नों द्वारा खचित हैं।

(३३७) इस ललितानन्दद कुञ्ज की दक्षिण दिशा में 'अरुणाम्बुजकुञ्ज' शोभा पा रही है इसका मध्य मण्डल एवं बाहरी मण्डल पद्मराग आदि मणिमाला द्वारा खचित है एवं प्रफुल्लित लवेगलतासमूह द्वारा यह आच्छादित हो रही है।

(३३८) ललिताकुञ्ज की पश्चिम दिशा में 'हेमाम्बुज' नामक कुञ्ज है जोकि प्रफुल्लित चम्पक वृक्ष एवं स्वर्ण चम्पक लता समूह द्वारा आच्छन्न (ढली हुई) है। इसका मध्यभाग एवं बर्हिदेश सुवर्ण मण्डित है।

(३३६) जिस प्रकार उत्तर दिशा में ललितानन्द कुञ्ज है इसी प्रकार आठों दिशाओं में श्रीराधाकृष्ण को प्रसन्न करने वाली कुञ्जें हैं ये वर्ण तथा आकार में भेद रखते हुए सभी नेत्रों को विस्मित करने वाली हैं।

(३) श्रीराधाकुण्ड के ईशानकोण में मदन सुखदा नामक विशाखानन्दद कुञ्ज का वर्णन :–

(३४०) श्रीराधाकुण्ड के ईशान कोण में सुप्रसिद्ध 'मदनसुखदा' नामक विशाखानन्दद कुञ्जराज विराजमान है। इसके चारों कोणों में चार चम्पकतरु विद्यमान है जिसमें लाल, हरे, पीले एवं श्याम रंग के फूलों की सुगन्ध, अन्य सुगन्धियों का निवारण करती हुई इस कुञ्ज को चारों ओर से आमोदित कर रही है और ये वृक्ष के चारों ओर से माधवी लता द्वारा आवेष्टित है।

व्यतिसुमिलित–तिर्य्यङ् निर्गतैः केश्चिदन्यै–रूपरिघटितसंगैः स्निग्धशाखासमूहैः।
शुकपिकमधुपानां नीलपीतारुणानां मधुरनिनदरम्यैश्छादितः सौधतुल्यः।।३४१।।
(गोवि० ७/७४)

स्थलजलजनि–पुष्पैः पल्लवैः कृल्प्तनाना–भरण–वसन–शय्या–सद्वितानादि–पूर्णः।
अरुण–विशद–पीत–श्याम–पद्मोत्पलादद्यै–र्दिशि विदिशि सनालैः कल्पितानेकचित्रः।।३४२।।
(गोवि० ७/७५)

जठरशर–शलाकैः पल्लवैश्चित्रपुष्पैघटित–मृदुकवाटी–प्रावृतद्वाश्चतुष्कः।
मदकलचलभृंगानीकिनी–द्वारपालो मणिचय चितभूमिद्वय्ष्टपत्राव्जमध्यः।।३४३।।
(गोवि० ७/७६)

बहिरपि ततशाखाच्छादिताभिः समन्ताच्चतसृभिरतिभाभिर्वेष्टितो देहलीभिः।
अनिशमिह विशाखा–शिष्यया मञ्जुमुख्या रचननिपुणमत्या संस्कृतोऽध्यक्षयास्य।।३४४।।
(गोवि० ७/७७)

---

(३४१) यह कुञ्ज नील, पीत एवं हरे रंग के, सुमधुर संगीत करने वाले शुक, पिक एवं भ्रमरों से अत्यंत रमणीय लगती है। माधवी लता एवं चम्पक की शाखाओं ने समस्त तथा अन्यान्य भी स्निग्ध शाखाएं सबके ऊपर जाकर वक्रभाव से (टेढ़ी होकर) मिलते हुए (छत सी बनाते हुए) आच्छादित होकर इस कुञ्ज को इतना सुंदर बना दिया है कि यह कोई राजभवन जैसी प्रतीत होती है।

(३४२) स्थल एवं जल में उत्पन्न होने वाले पुष्पों द्वारा पल्लवों के आभूषणों द्वारा वसन, शैय्या एवं चँदोवे आदि से पूर्ण, मृणाल सहित सफेद, पीले, लाल रंग के कमल एवं कुसुम समूह द्वारा इस कुञ्ज की चारों दिशाओं में विचित्र रूप से सजावट हो रही है।

(३४३) इस कुञ्ज का भीतरी भाग शरशलाका (सूत जैसे पतले सरकंडे की तार) में पिराये हुए पल्लव, विचित्र कुसुम समूहों द्वारा निर्मित छोटे–२ चार किवाड़ों द्वारा कुञ्ज के चार द्वार आवरण के रूप में सजाये गये हैं। मदमत्त चंचल भ्रमरगण द्वारपाल की भांति इधर–उधर भ्रमण करते रहते हैं। कुञ्ज का मध्यभाग मणिसमूह द्वारा खचित है और यह कुञ्ज सोलह दल वाले कमल के आकार वाली है।

(३४४) बाहर चारों विस्तृत शाखाओं से आच्छादित एवं महाकान्ति युक्त चार देहली (बरामदों) से परिवेष्टित इस कुञ्ज की अध्यक्षा, नाना चित्र रचना में सुदक्षा श्रीविशाखा सखी की शिष्या मंजुमुखी निरन्तर इस कुञ्ज के संस्कार में नियुक्त रहती हैं।

शिवहरिति तटस्थोऽप्येष राधाबकारेर्विहरण–रसवन्या–प्लावितात्मा समन्तात्।
मदनसुखदनामा लोचनानन्दधामा विलसति स विशाखानन्ददः कुञ्जराजः।।३४५।।

(गोवि० ७/७६)

विचित्र वृक्ष वल्लीभि रत्नैश्चितान्तरः।
चित्रवर्णैः रवगैर्भृंगैः कुट्टिमैः प्रांगणैर्वृतः।।३४६।।

(गो० वि० ७/७६)

चित्र–मण्डप संयुक्तश्चित्रहिन्दोलिकान्वितः।
प्राच्यां चित्रानन्ददाख्यश्चित्रकुञ्जो विराजते।।३४७।।

(गोवि० ७/८०)

स्फटिकैरिन्दुकान्तैश्च चितकुट्टिमचत्वरः।
चित्रितः पुण्डरीकैश्च कैरवैर्मल्लिकादिभिः।।३४८।।

(गोवि० ७/८१)

शुभ्रपुष्पदलैर्वृक्षैर्बल्लीभिश्च समन्वितः।
शुभ्रालिपिककीराद्यैः शब्दज्ञेयैर्निनादितः।।३४६।। (गोवि० ७/८२)

---

(३४५) यह प्रेमरस स्वरूप श्रीराधाकुण्ड के ईशानकोण में स्थित होकर निरन्तर श्रीराधाकृष्ण के विहार रूपी रसवन्या रस की नदी से आप्लावित रहती है। यह मदनसुखदनामक विशाखानन्दद कुञ्जराज सबके नेत्रों को आनंद प्रदान करनेवाले होकर विराजमान है।

(३) श्रीराधाकुण्ड के पूर्व में चित्रानन्दद कुंज का वर्णन :–

(३४६–४७) श्रीराधा कुण्ड के पूर्व चित्रानन्दद नामक विचित्र कुंज विचित्रसा से शोभा पा रही है। इसका विचित्रि आकार विचित्र वर्ण चित्र विचित्र वृक्ष एवं लताएं विचित्र मनोहर रत्नों से इसका मध्यभाग परिमण्डित विचित्र वर्ण के पक्षी भ्रमर प्रकोष्ठ एवं प्रांगण द्वारा यह परिवृत है। यहाँ विचित्र मण्डप चित्र विचित्र हिण्डोले इस कुंज की शोभा के परिवर्धित कर रहे है।

(४) श्रीराधाकुण्ड के अग्निकोण में इन्दुलेखा सुखप्रद कुञ्ज :–

(३४८) श्रीराधाकुण्ड के अग्निकोण में पूर्णेन्दु नामक इन्दुलेखा सुखप्रद कुञ्ज विराजमान है। इसके प्रकोष्ठ एवं प्रांगण स्फटिक तथा चन्द्रकांत मणि द्वारा जटित है। इसमें सफेद कमल, मल्लिका, शुभ्र कुसुम समूह द्वारा चित्रित है।

(३४६) यहाँ शुभ्रवर्ण के पुष्पपत्र, वृक्षलता एवं शुभ्र भ्रमर कोकिल, शुक आदि पक्षियों से परिव्याप्त है। केवल कण्ठ की ध्वनि से ही उनकी जाति (कौन सा पक्षी है) का ज्ञान होता है अन्यथा रंग सबके सफेद होने से किसी को पहचाना नहीं जा सकता।

शुभ्रवेशौ तु राकायां राधाकृष्णौ सहालीभिः।
क्रीड़न्तावपि नेक्ष्येते केश्चिदयत्रागतैरपि।।३५०।।

(गोवि० ७/८३)

पूर्णेन्दुनामा कुञ्जोऽयमिन्दुलेखा–सुखप्रदः।
सुशुभ्रकेलितल्पादिराग्नेय्यां दिशि राजते।।३५१।।

(गोवि० ७/८४)

हेमवल्लीवृतैर्हेम–पुष्पकैश्छादितोऽभितः।
हेमपद्मावलीचित्रो हेम–प्रांगण–कुट्टिमः।।३५२।।

(गोवि० ७/८५)

हेम–मण्डपिकायुक्तो हेम–हिन्दोलिकान्वितः।
हेमाभालिखगैर्युक्तो हेम–लीलापरिच्छदः।।३५३।।

(गोवि० ७/८६)

लीलया पीतवसना पीतालेप–विभूषणा।
यत्र प्रविष्टा श्रीराधा कृष्णनापि न लक्ष्यते।।३५४।। (गोवि० ७/८७)

गौरांगीवेशधृक् कृष्णः स्वप्रेयस्या सहालिभिः।
श्रृणोति प्रेमसंलापं यत्रैताभिरलक्षितः।।३५५।। (गोवि० ७/८८)

(३५०–५१) पूर्णिमा की रात्रि में शुभ्रवेश (सफेद पोशाक) धारण करके सखीवृन्द सहित श्रीराधाकृष्ण जब इस कुञ्ज में क्रीड़ा करते हैं, उस समय अकस्मात् कोई उस कुञ्ज में आकर उनको पहचान नहीं पाता। यहाँ पर अतिशुभ्र केलिशैय्या आदि सब सामिग्री से सुशोभित यह 'पूर्णेन्दु नामक' इन्दुलेखा सुखप्रद कुञ्ज है।

(५) श्रीराधाकुण्ड के दक्षिण में चम्पक लतानन्दद कुञ्ज :–

(३५२–५४) श्रीराधकुण्ड के दक्षिण में 'चम्पक लतानन्दद हेमकुञ्ज' विराजमान है। यह स्वर्णलताओं एवं स्वर्ण वर्ण के वृक्षों से चारों ओर से समाच्छन्न, हेम पद्मावली द्वारा चित्रित, इसके प्रांगण, प्रकोष्ठ, मण्डप, हिण्डोले, भ्रमरगण और लीला विलास की (शैय्या, उपाधान, अन्य समस्त साजसज्जा) सभी सामिग्री सुवर्ण वर्ण की है। कभी किसी लीला के प्रसंगानुसार पीतवस्त्र, पीतअनुलेपन (चन्दनादि चर्चा) पीत स्वर्ण आदि के भूषणों से सुसज्जिता श्रीराधारानी विराज रही होती है तो श्रीकृष्ण भी उनको पहचान नहीं पाते।

(३५५) अहो ! कभी–२ यहाँ गौरांगीरूप धारण कर श्रीकृष्ण गोपनीय भाव से (छिपकर) अपनी प्रेयसी के सखीवृन्द के साथ प्रेमालाप को सुना करते हैं।

कदाचित् पद्मया यत्र प्रेरिता जटिला गता।
ददर्श कृष्णं नो राधां तेनैकासनगामपि।।३५६।।

(गोवि० ७/८६)

स्ववर्णकृत्स्वस्थितानां भाति काञ्चनभूरिव।
दक्षिणे चम्पकलतानन्ददो हेमकुञ्जकः।।३५७।।

(गोवि० ७/६०)

यत्र चम्पकवल्लयाः सा निकुञ्जपाकशालिका।
आस्ते तदीशयोश्चित्रजग्धिवेदिकयान्विता।।३५८।।

(गोवि० ७/६१)

यस्यां पाकक्रियाचार्या सवृन्दा सा निजेशयोः।
सम्पादयति संमोदात् कदाचित् कुञ्जभोजनम्।।३५६।।

(गोवि० ७/६२)

तमाले श्यामबल्लीभिः श्लिष्टशाखैर्वृतान्तरः।
इन्द्रनीलचिताभ्यन्तर्भूमि–कुट्टिमचत्वरः।।३६०।।

(गोवि० ७/६३)

(३५६–५६) तब उनको कोई भी नहीं देख पाता। इस हेमकुञ्ज में (सभी स्वर्णमय होने के कारण) श्रीराधाकृष्ण एक ही सिंहासन पर विराजमान होते हुए भी, कभी पद्मा आदि विपक्षा सखीगण जटिला को वहाँ भेज देती हैं, तब वह केवल श्रीकृष्ण को ही देख पाती है (राधारानी को नहीं) अहो ! जिस प्रकार उसके ऊपर रखी हुई समस्त वस्तुएं कंचन की ही प्रतीत होती है। इस प्रकार सकल स्वर्णकांतिमयी यह चम्पकलता सखी की कुञ्ज है इसमें इनकी प्रसिद्ध पाकशाला है, जहाँ पर श्रीराधाकृष्ण की अत्यंत सुविशाल भोजन वेदिका है। यहाँ पर कभी–२ पाकक्रिया की आचार्य स्वरूपा श्रीचम्पकलता, वृन्दा देवी के साथ आनन्दपूर्वक श्रीराधाकृष्ण की एक साथ कुञ्ज भोजनलीला का आयोजन करती हैं।

(६) श्रीराधाकुण्ड के नैऋता कोण में श्रीरंगदेवी सुखप्रद कुञ्ज का वर्णन :–

(३६०) श्रीराधाकुण्ड के नैऋतकोण में रंगदेवी सुखप्रद कुञ्ज जो कि सब प्रकार से श्यामवर्ण अतः 'श्यामकुञ्ज' रूप से विराज रही है। यह सर्वश्रेष्ठ है (श्रीराधारानी को श्यामवर्ण अतीव प्रिय होने के कारण) क्योंकि श्रीराधारानी के प्रेम को बढ़ाने वाली है। इसके अन्दर की भूमि इन्द्रनीलमणि द्वारा खचित, श्यामवर्ण की लताओं द्वारा चारों ओर से परिवेष्टित एवं तमालतरु की शाखा समूह द्वारा आच्छादित है। इसके प्रकोष्ठ, चबूतरे एवं कुञ्ज में स्थित सकल पदार्थ ही इन्द्रनीलमणियों से चित्रित है।

राधया युगलीभावं गतोऽपि मुखरादिभिः।
नेक्ष्यते हरिरेकैव राधिका यत्र दृश्यते।।३६१।।

(गोवि० ७/६४)

राजते दिशि नैर्ऋत्यां रंगदेवी–सुखप्रदः।
सर्वश्रेष्ठः श्यामकुञ्जो राधिका–रतिवर्द्धनः।।३६२।।

(गोवि० ७/६५)

रक्तबल्लीवृतो रक्तपुष्पपत्रैर्द्रुमैर्वृतः।
शोणरत्न–चिताभ्यन्तःकुट्टिमांगन–मण्डपः।।३६३।।

(गोवि० ७/६६)

रक्तहिन्दोलिका–युक्तःकृष्णेष्टः सर्वलोहितः।
तुंगविद्यानन्ददोऽस्ति पश्चिमऽरुणकुञ्जकः।।३६४।। (गोवि० ७/६७)

हरिद्वल्लीवृक्षचित्रो हरित्पक्ष्यालिसंयुतः।
हरिन्मणिचिताभ्यन्तर्वाहयकुट्टिमचत्वरः।।३६५।। (गोवि० ७/६८)

वायव्यां सर्वहरितो राधाकृष्णाक्षकेलिभूः।
सुदेवीसुखदाभिख्यो हरित्कुञ्जो विराजते।।३६६।। (गोवि० ७/६६)

(३६१–६२) कभी–२ लीला प्रसंगानुसार मुखरा (राधारानी की नानी) आदि किसी वृद्धा के वहाँ आ जाने पर वे श्रीराधारानी के साथ युगलित (मिलकर एक सिंहासन पर विराजे हुए) श्रीकृष्ण को नहीं देख पातीं केवल श्रीराधा को ही देख पाती हैं। (श्याम वर्ण कुञ्ज में इस प्रकार श्रीकृष्ण एकाकार हो जाते है।)

(७) श्रीराधाकुण्ड के पश्चिम में तुंगविद्यानन्दद कुञ्ज का वर्णन :–

(३६३–६४) श्रीराधाकुण्ड के पश्चिम में **'तुंगविद्यानन्दद अरुणकुञ्ज'** विराजमान है। श्रीकृष्ण की यह प्रिय कुञ्ज–लाल रंग की लताओं एवं पुष्पों से तथा पल्लवों से सुसज्जित है। इसके प्रकोष्ठ, अंगण, मण्डप एवं अभ्यन्तर स्थल सभी लाल वर्ण के रत्नों से परिशोभित हैं। लाल रंग के ही हिण्डोले तथा सभी वस्तुएं लाल ही रंग की हैं।

(८) श्रीकुण्ड के वायुकोण में सुदेवी सुखद कुञ्ज :–

(३६५–६६) श्रीराधाकुण्ड के वायुकोण में **'सुदेवी–सुखद हरित् कुल्ज'** विराजमान है। इसमें हरे रंग की लताएं, हरे–२ वृक्ष और उन पर हरे ही रंग के पक्षी बैठे हैं। हरे रंग की मणियों से इसके प्रकोष्ठ, अन्र्तस्थल तथा बाहर की दीवारें आदि चित्रित हैं और सभी पदार्थ हरे रंग की शोभा दे रहे हैं। इस कुञ्ज में युगलकिशोर अक्षक्रीड़ा (पासे खेलना) करते हैं।

उपरिलहरितुल्याकारचित्रैः स्फुरदिभ–र्मरकतचयगर्भैः पद्मरागेन्दुकान्तैः।
घटितमितरलोके तोयवद्भासमानं, मणिचयकुसुमाम्भोजालिहंसादियुक्तम्।।३६७।।
(गोवि० ७/१००)

धनपतिदिशि तादृक् सेतुबन्धानुयुक्तं षडधिकदशपत्राम्भोजवत् सन्निवेशम्।
'सलिलकमल' सद्मानंगयुङ् मञ्जरीशं–प्रदमतुल–सुलावण्योल्लसल्लासीति।।३६८।।
(गोवि० ७/१०१)

श्रीराधेव हरेस्तदीय–सरसी प्रेष्ठाद्भतैः स्वैर्गुणैर्यस्यां श्रीयुतमाधवेन्दुरनिशं प्रेम्णा तया क्रीड़ति।
प्रेमास्मिन् वत राधिकेव लभते यस्यां सकृत्सनानकृत् तत्तस्या महिमा तथा मधुरिमा केनास्तु वर्ण्यः क्षितौ।।३६९।।
(गोवि० ७/१०२)

प्रियाकुण्डं दृष्ट्वा मुदितहृदयोऽप्यस्य विविधैर्गुणैस्तैस्तैरुद्दीपित–विरहभावः स्मरवशः।
प्रियाप्राप्त्युत्कण्ठा–कवलितमना नागरगुरुर्भ्रमान्नानोत्प्रेक्षां बकरिपुरमुष्मिन् स विदधे।।३७०।।
(गोवि० ७/१०३)

---

(६) श्रीकुण्ड के मध्य अनंगमञ्जरी जी की कुञ्ज का वर्णन :–

(३६७–६८) श्रीराधाकुण्ड के मध्य में मरकतमणी जटित, पद्मराग एवं चन्द्रकांत मणि की रचनायुक्त, सब दर्शकों को जल के ऊपर आसमान (तैरती हुई) प्रतीत होने वाली **'अनंगमञ्जरी सुखद'** कुञ्ज विराजमान है। यह सोलहदल के कमल के आकार वाली है, उत्तर की ओर एक सेतु (पुल) से कुण्ड तीर तक संयुक्त है। यह सेतु मणिनिर्मित कुमुद, पद्म, हंस आदि की मूर्ति से सुसज्जित है। इस मनोहर कुञ्ज का दर्शनकर प्रतीत होता है मानो इसके ऊपर (मणियों के प्रकाश में) तरंगमाला झिलमिला रही हो और यह जल के ऊपर कमल सदृश होने के कारण इसे 'सलिल कमल' नामक कुञ्जगृह भी कहते हैं।

श्रीकुण्ड के दर्शन से विरहाकुल श्रीकृष्ण को राधारानी का उद्दीपन :–

(३६९) श्रीराधा जिस प्रकार श्रीकृष्ण की प्रेयसी है यह सरसी (कुण्ड) भी उसी प्रकार उनकी प्रियतमा है। बृजचन्द्रमा माधव उनके अद्भुत गुणों से वशीभूत होकर उसमें निरन्तर प्रेमपूर्वक क्रीड़ा करते रहते हैं। जो व्यक्ति उसमें एकबार मात्र स्नान करते हैं वे श्रीराधारानी के समान (जाति या स्वभाव युक्त) प्रेम भाव प्राप्त करते हैं। इसलिये इस पृथ्वी पर कौन इसकी महिमा, मधुरिमा एवं गुणों का वर्णन करने में समर्थ है।

(३७०) नागर गुरु श्रीकृष्ण इस प्रियाजी के कुण्ड को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए, फिर भी प्रियाजी के विरह में कुण्ड के गुणों (शोभा) का दर्शन कर उनकी विरहाग्नि और अधिक उद्दीपित हो उठी और प्रियतमा के मिलनार्थ उत्कण्ठित होकर बकारि श्रीकृष्ण इस कुण्ड (प्रियाजी के अंगों से तुलना करते हुए) की भ्रमपूर्वक नाना प्रकार की उत्प्रेक्षा करने लगे।

खेलच्चक्रम्युगोरोजं फेनमुक्तास्रगुज्जवलम्।
रसोर्म्युच्छलितं मेने प्रियावक्षःसमं सरः।।३७१।।

(गोवि० ७/१०४)

मधुररसतरंगा विभ्रती पंकजास्यं, भ्रमरक–परिवीतं प्रोल्लसत्खञ्जनाक्षम्।
प्रमुदित–हरिणोच्चैर्हंसकारावरम्या, प्रियतम–सरसी सा प्रेयसीव व्यलोकि।।३७२।।

(गोवि० ७/१०५)

स्वप्रेष्ठारिष्टकुण्डोर्मि–चलद्बाहूपगूहिता।
स्वकोकनद–पाणिभ्यां क्षिप्ततच्चलतत्करा।।३७३।।

(गोवि० ७/१०६)

समीर–चञ्चदम्भोज चलास्येन वलादिव।
चुम्बितालिकटाक्षेषत्तिर्य्यगम्बुज–सम्मुखी।।३७४।।

(गोवि० ७/१०७)

---

(३७१) राधाकुण्ड में खेलते हुए चकवा–चकवी ही मानो प्रिया के उरोजयुगल फेन मुक्तामाला एवं तरंगों में रस का उच्छलन मानकर कुण्ड को राधारानी का वक्षस्थल समझने लगे।

(३७२) प्रेयसी श्रीराधा जिस प्रकार मधुरस की तरंगों से युक्त, उसी प्रकार कुण्ड में मधुर रस (जल) की तरंगों से व्याप्त, प्रेयसी का बदन कमल सहश, सरसी में भी उसी प्रकार कमल सहश वदन प्रकाश पा रहा है, प्रेयसी के कपोलों पर जिस प्रकार चूर्ण कुन्तल (अलकावली) शोभा पाते हैं उसी प्रकार यहाँ भ्रमरावली, प्रेयसी के नयन मानो नृत्य करते हुए खंजन पक्षी, सरसी में भी उसी प्रकार खंजन पक्षी खेल रहे हैं, प्रेयसी के चरणों में जैसे हंसक (पायजेब) की रुनझुन ध्वनि, उसी प्रकार सरसी में भी हंसों की कल–२ ध्वनि हो रही है। इस प्रकार प्रमुदित श्रीकृष्ण, श्रीराधाकुण्ड को मानो साक्षात् प्रियाजी ही समझने लगे।

(३७३) श्रीकृष्ण जब आलिंगनार्थ श्रीराधा को अपनी भुजाओं में ग्रहण करने लगते है, उस समय श्रीराधा जैसे अपने लाल कमल सदृश हाथों से निषेध करतीं हैं, उसी प्रकार मानो राधाकुण्ड भी तरंगों से काँपते हुए कोकनद रूपी हाथ से श्याम कुण्ड के तरंगकम्पित कोकनद को निषेध कर रहा है।

(३७४) श्रीकृष्ण के बलपूर्वक श्रीराधा बदनकमल का चुम्बन करने पर जैसे वे कटाक्ष पात करती हुई मुख मोड़ लेती हैं, उसी प्रकार श्याम कुण्ड के कमल भी वायु के वेग से चंचल होकर राधाकुण्ड के भ्रमरों से चुम्बित कमलों के ऊपर पड़ रहे हैं।

भृंगीझंकार–शीत्कार विकलस्वर–गद्गदा।
प्रोद्यत्कुट्टमिता तेन राधिकेव व्यलोकि सा।।३७५।।

(गोवि० ७/१०८)

समुद्भ्राम्यल्लीलाम्बुजमनिलजातोर्मि–वलितं सरोयुग्मं वीक्ष्यानतशिरसि गोवर्द्धनगिरेः।
निज–प्रेमोद्घूर्णास्खलितवपुषस्तस्य स हरिर्भ्रमत्तारं वाष्पोच्छलितमिव मेनेऽक्षियुगलम्।।३७६।।

(गोवि० ७/१०९)

इत्थं प्रियायाः स सरः स समीक्ष्य तत–प्रत्यंग–संस्मारकमात्मनो गुणैः।
विन्दंस्तदानन्दममन्दमप्यभूत्तदागमौत्सुक्य–विभिन्नधैर्य्यकः।।३७७।।

(गोवि० ७/११०)

प्रायः स एवम्विध–सन्निवेशकं ददर्श तत्पार्श्वगमात्मनः सरः।
कुञ्जैः स्वकान्ताग्रहतोऽतिसंस्कृतै–विराजितं नर्मसखालि–निर्मितैः।।३७८।।

(गोवि० ७/१११)

---

(३७५) श्रीकृष्ण के राधारानी के उरोज, अधर आदि स्पर्श करने पर वे जैसे अंतः में प्रसन्न होती हुई भी बाहर से संभ्रम युक्त क्रोध से व्यथित सा भाव प्रकाश करते हुए 'कुट्टिमित' अलंकार से विभूषित होती हैं उसी प्रकार भ्रमरों की झंकार रूपी शीत्कार एवं पक्षिगणों की कल– ध्वनि रूप गद्गद् मिथ्या कोप के प्रकाश को देखकर श्रीकृष्ण को इस कुण्ड को ही कुट्टिमितभाव युक्त प्रियाजी समझने लगे।

(३७६) हिलते हुए कमलों एवं वायु के वेग से तरंगाकुल इन दोनों कुण्डों को देखकर श्रीकृष्ण समझने लगे मानो मेरे प्रेम में मूर्च्छित प्रायः यह गोवर्धन पर्वत नीचे को मस्तक किये हुए है और ये दोनों कुण्ड उसके अश्रुभरे एवं चंचल तारों से युक्त नेत्र युगल है।

(३७७) इस प्रकार श्रीराधारानी के अंग प्रत्यंग का स्मरण कराने वाला, असीम गुणों से युक्त इस राधाकुण्ड का दर्शन कर मन में अपार आनन्द का अनुभव करते हुए भी बाहर से प्रियाजी के आगमन की उत्कण्ठा से एकदम अधीर हो उठे।

श्रीश्यामकुण्ड, सखाओं की कुञ्जें, मानसपावन तीर्थ वर्णनः–

(३७८) अब श्रीकृष्ण ने श्रीराधाकुण्ड के पास ही अपने सरोवर (श्यामकुण्ड) को देखा जो कि उसी के समान ही शोभा धारण कर रहा था और जिसको उन्होंने अपने प्रिय नर्म सखाओं से मिलकर बनाया था एवं जिसकी (चारों ओर कुञ्जों की) मार्जना, सजाना आदि कार्य उनकी प्रिया गण आग्रहपूर्वक करती रहती हैं।

प्रियनर्मवयस्या ये सुबलो मधुमंगल।
उज्जवलार्जुनगन्धर्वा विदग्धभृंगकोकिलाः।।३७९।।

(गोवि० ७/११२)

दक्ष सन्नन्दनाद्याश्च तेषां स्वस्वाभिधान्विताः।
तैर्विभज्यार्पिताः कुञ्जास्ते राधाललितादिषु।।३८०।।

(गोवि० ७/११३)

वायोर्दिश्यस्ति सुबलानन्ददा कुञ्जशालिका।
राधायांगकृता यस्यास्तीर्थं मानसपावनम्।।३८१।। (गोवि० ७/११४)

नित्यं स्नात्यत्र सालीभिः कुण्डेऽस्मिन् विपुलाग्रहा।
कृष्णपादाब्ज–माध्वीक–पानीये कृष्णवत् प्रिये।।३८२।। (गोवि० ७/११५)

ललितांगीकृतोदीच्यां कुञ्जशालातिचित्रिता।
मधुमंगलशन्दाख्या भाति श्रीराधिका–प्रिया।।३८३।।

(गोवि० ७/११६)

विशाखांगीकृतैशान्यामुज्जवलानन्ददापरा।
एवमन्यासु दिक्ष्वन्या भान्त्यन्याभिः कृताश्रयाः।।३८४।। (गोवि० ७/११७)

(३७९–८०) श्रीकृष्ण के जो प्रियनर्मसखा श्रीसुबल, मधुमंगल, उज्जवल, अर्जुन, गंधर्व, विदग्ध, भृंग, कोकिल, दक्ष, सुनन्दन आदि हैं उनके ही नामों से इन कुञ्जों को पुकारा जाता है। इन्होंने श्रीराधा तथा ललिता आदि सखियों को यह कुञ्जें भाग कर दे दी हैं।

(३८१) श्यामकुण्ड के वायुकोण में 'सुबलानन्दद' नामक कुञ्जशाला को श्रीराधारानी ने अंगीकार किया है जहाँ पर 'मानसपावन' घाट है।

(३८२) श्रीराधा सखीगणों के साथ प्रतिदिन इस घाट पर स्नान करती हैं, यहाँ स्नान करने की उनकी अतिशय उत्कण्ठा रहती है, इस घाट का जल श्रीकृष्ण चरण कमल मधु सहश है एवं उनको अतिशय प्रिय है।

(३८३) श्रीकृष्ण कुण्ड के उत्तर में 'मधुमंगलशन्द' नामक कुञ्जशाला विराजमान है। यह अत्यंत विचित्र शोभामय है एवं श्रीराधारानी को अतिशय प्रिय है। इसको श्रीललितादेवी ने अंगीकार किया हुआ है।

(३८४) श्रीश्यामकुण्ड के ईशानकोण में 'उज्जवलानन्द' नामक कुञ्ज को श्रीविशाखाजी ने अंगीकार किया है। इसी प्रकार पूर्व आदि अन्य दिशाओं में जो सब अर्जुन आदि सखाओं की कुञ्जें हैं वे सब भी चित्रा आदि सखीगणों ने अंगीकार की हुई हैं।

पूर्वपश्चिमदिङ्मार्गावीशेशा–कुण्डयोः क्रमात्।
विस्तीर्णौनृ–पशूनां स्तः स्नानपानार्थ–तीर्थगौ।।३८५।।

(गोवि० ७/११८)

लीलानुकूलेषु जनेषु चित्ते, षूत्पन्नभावेषु च साधकानाम्।
एवम्विधं सर्वमिदं चकास्ति, स्वरूपतः प्राकृतवत् परेषु।।३८६।।

(गोवि० ७/११६)

अथ वृन्दागतं वीक्ष्यानन्दिता नन्दनन्दनम्।
कर्णिकारावतसौ द्वावभ्येत्योपजहार सा।।३८७।।

(गोवि० ७/१२०)

वृन्दा तत्तनिज निपुणतासंस्कृतं दर्शयन्ती तत्तत्कुञ्जादिकमनुतटं स्वेश्वरीं स्मारयन्ती।
राधाकान्तं ककुभि सहजैर्भ्राजमानं गुणैः स्वैः कुण्डैशान्यां मदनसुखदाभिख्यकुञ्जं निनाय।।३८८।।

(गोवि० ७/१२१)

स तद्दृष्टवातिह्वष्टोऽभूत्तत्तत्स्थानेषु राधया।
कृत–कर्त्तव्यलीलानां स्मृति–संकल्प–तत्परः।।३८६।।

(गोवि० ७/१२२)

---

(३८५) श्यामकुण्ड के पूर्व एवं राधाकुण्ड के पश्चिम दिशा के घाट पर मनुष्यों एवं पशुओं के स्नान एवं पान के लिये दो विस्तीर्ण पथ हैं।

(३८६) लीला के अनुकूल नित्यसिद्धगण एवं साधक भक्तगणों के, जिनमें भावदशा उत्पन्न हो गयी है, ह्रदय में इन दोनों कुण्डों के अप्राकृत रूप माधुर्य का प्रकाश होता है, किंतु जो प्राकृत जन है वे इसको प्राकृतवत् ही देखते हैं।

वृन्दादेवी द्वारा श्रीकृष्ण का समादर एवं श्रीकृष्ण की श्रीराधा दर्शनार्थ तीव्रोत्कंठा :–

(३८७) अब श्रीवृन्दादेवी ने श्रीनन्दनन्दन को कुण्डतीर पर समागत देख आनंदपूर्वक उनके पास जाकर दो कर्णिकपुष्पों के कर्णभूषण उनको उपहार प्रदान किये।

(३८८) और अपनी शिल्पकला की निपुणता से सुसज्जित एवं अपने सहजगुणों से देदीप्यमान उन सब कुञ्जों के तट समूह दिखाते–२ श्रीराधा का स्मरण कराते हुए श्रीराधाकान्त को, श्रीकुण्ड के ईशान कोण में स्थित 'मदनसुखद' कुञ्ज में ले गयीं।

(३८६) श्रीकृष्ण इस कुञ्ज की शोभा देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए एवं उन सब स्थानों पर जो–२ लीलाएं की हैं और जो आगे करने की मन में उत्कण्ठा है उनका स्मरण एवं संकल्प करने लगे।

विशाखया मञ्जुमुख्या वृन्दया च सुमण्डितम्।
कुञ्जं विलोक्य तं प्रीतस्तामाहोत्कलिकाकुलः।।३६०।। (गोवि० ७/१२३)

दिष्ट्या वृन्दे ! यदि तव सखी सागता स्यादकस्मान्निष्प्रत्यूहं यदि मम तया स्युश्च ते ते विलासाः।
कुण्डारण्यं मधुसुमधुरं कुञ्जगेहं तदास्मिन्, वैचित्री च तदुपरिचिता कल्पते सत्फलाय।।३६१।।
(गोवि० ७/१२४)

संकेतकुञ्जमगतं तुलसी–सकाशात्, शैव्यान्वितञ्च पथि मां नु निशम्य राधा।
नैष्यत्यसौ तत इतः किल क्वापि गत्वा, तामानयेदिह निवेद्य मम प्रवृत्तिम्।।३६२।।
(गोवि० ७/१२५)

श्रीराधायाः सविध उभयी माधवीयामवस्थां शंसन्त्युच्चैर्मदन–विषमां लालसौद्दीपनीञ्च।
कुर्वाणैनां प्रणय–विकलां व्याकुलां तृष्णायाद्धा तामानेतुं त्वरय ललितां मद्गिरा त्वं धनिष्ठे!।।३६३।।
(गोवि० ७/१२६)

स्थापयैकां सखीं वृन्दे ! गोदिगध्वन्यसौ यथा।
मामन्वेष्टुं सखा कश्चिदागच्छेत्तं प्रतारयेत्।।३६४।। (गोवि० ७/१२७)

---

(३६०) तत्पश्चात् विशाखा एवं उनकी शिष्या मंजुमुखी तथा वृन्दा देवी द्वारा सुसज्जित उस कुञ्ज को देखकर वे अतिशय प्रसन्न हुए एवं उत्कण्ठापूर्वक वृन्दा देवी से कहने लगे–

(३६१) हे वृन्दे ! यदि मेरे भाग्य से तुम्हारी सखी इस समय यहाँ अकस्मात् आ जाय और उनके साथ मेरी अभिलषित लीलाएं निर्बाध रूप से सम्पन्न हों तभी इस कुण्डारण्य की, बसन्त द्वारा सुसज्जित इन कुञ्जों की एवं तुम्हारे द्वारा रचित विचित्र शिल्पकला की सफलता समझी जावेगी। (अन्यथा प्रियाजी के बिना यह सब व्यर्थ ही है।)

(३६२) हे वृन्दे ! मेरे यहाँ आने से पूर्व मेरा शैव्या से मिलन हुआ था (जिसे तुलसी देखकर गयी थी) यदि तुलसी के मुखसे प्रियाजी ने यह बात सुनी तो संभवतः वह यहाँ न भी आएं, अतएव तुममें से कोई जाकर उनको मेरा समाचार (मैंने शैव्या की प्रतारणा कर उसे गौरीतीर्थ भेज दिया है और स्वयं कुण्डतीर पर आकर उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ) बताकर यहाँ पर लेकर आओ।

(३६३) तब श्रीकृष्ण धनिष्ठा से कहने लगे– हे धनिष्ठे ! तुम श्रीराधा के पास जाकर माध ाव की (मेरी एवं बसन्त की) दोनों अवस्थाऐं (मेरी प्रिया के मिलनार्थ उत्कण्ठा एवं बसन्तकालीन उद्दीपनकारी शोभा) उनको ज्ञात करोओ जिससे वे प्रणय से विह्वला एवं मिलनोत्कण्ठा से व्याकुलित हो उठें। फिर तुम ललिता को समझाना जिससे वह राधारानी को श्रीकुण्ड लाने में शीघ्रता करें।

(३६४) हे वृन्दे ! तुम गोष्ठपथ पर एक सखी को नियुक्त कर दो, जिससे कि मेरे अन्वेषण के लिये यदि कोई भी सखा यहाँ आये तो उसे प्रतारित कर लौटा दे।

गौरीतीर्थाध्वनि परां दक्षां स्थापय सा यथा।
पुनरायाति शैव्या चेदन्या वा ताञ्च वञ्चयेत्।।३६५।।

(गोवि० ७/१२८)

पक्वरम्भाफले मग्नदृष्टिं लोलं वटुं हरिः।
वीक्ष्याह वृन्दामनयोः फलैस्त्वं पूरयोदरम्।।३६६।।

(गोवि० ७/१२६)

वटुराहानया किं मे त्वमाज्ञापय मां सखे।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा यथावाञ्छं खादंस्तृप्यामि लोलुपः।।३६७।।

(गोवि० ७/१३०)

तत्र तत्र प्रहितयोः सख्योर्निपुणयोस्तया।
कृष्णोऽप्युत्कण्ठितोऽतिष्ठत् प्रियाध्व–निहितेक्षणः।।३६८।। (गोवि० ७/१३१)

स्मितकमलमुखी सा यावदायाति तावज् जलधिशतगभीरोऽप्यस्तधैर्य्यः स मेने।
क्षणमपि युगलक्षं हन्त यत्तन्न चित्रं प्रणयिनि सहजेयं प्रेमभाजां हि चेष्टा।।३६९।।

इति श्री श्री भावना सार संग्रहे पूर्वाह्न लीला स्वादनानुमोदोनाम तृतीय : संग्रहः ।।३।।

---

(३६५) और एक कार्य करो– गौरीतीर्थ के पथ पर अन्य एक चतुरा सखी को नियुक्त कर दो जिससे वह शैव्या या अन्य कोई (विपक्षा) इधर आये तो उसकी वञ्चना कर सके।

(३६६) मधुमंगल को पके हुए केलों के प्रति लोभपूर्वक देखते हुए श्रीकृष्ण परिहास करते हुए वृन्दा से कहने लगे, "इस लोभी बटु को इन वृक्षों के फल देकर इसका उदर पूर्ण करो।

(३६७) मधुमंगल कहने लगा– हे सखे ! मैं लोभी हूँ, यह तो सत्य है, किंतु वृन्दा लाकर दे, इस प्रतीक्षा से क्या लाभ ? तुम आज्ञा करो, बस मैं देख–२ कर अपनी रुचि के अनुसार फल भोजन कर तृप्त हो जाऊँगा।

(३६८) वृन्दा देवी ने श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार गोष्ठ पथ एवं गौरीतीर्थ के पथ पर दो सुचतुरा सखियों को नियुक्त कर दिया और यहाँ श्रीकृष्ण उत्कण्ठा पूर्वक प्रियतमा के आगमन पथ पर नेत्र लगाकर बैठे हैं।

(३६९) अहो ! जब तक प्रफुल्लकमल वदना श्रीराधा का आगमन नहीं होता, तब तक शतसमुद्रतुल्य गम्भीर हृदय होते हुए भी श्रीकृष्ण नितान्तअधीर होकर क्षणकाल को भी लाखों युगों के समान मानने लगे। इसमें आश्चर्यजनक कुछ बात नहीं है, क्योंकि प्रणयि जनों की अपने प्रेमास्पद जनों के विषय में इस प्रकार की चेष्टा स्वाभाविक ही है।

–: इति पूर्वाह्न लीला नामक तृतीय संग्रह :–

❖ श्री श्री गौरांग विधुर्जयति ❖

श्रीश्री भावना सार संग्रहः

चतुर्थ संग्रहः

अथ मध्याह्न लीला

सहालि श्रीराधा सहित हरिलीलां बहुविधां, स्मरन् मध्याह्नीयां पुलकिततनुर्गद्‌गदवचाः।
ब्रुवन व्यक्तं तांच स्वजनगनमध्येऽनु कुरुते, शचीसूनूर्यस्तं भज मम मनस्तं वत सदा।।१।।

मध्याह्नेऽन्योन्यसंगोदित विविध विकारादि भूषाप्रमुग्धौ,
वाम्योत्कंठातिलोलौ स्मरमख–ललिताद्यालि–नर्माप्तशातौ।।
दोलारण्यावुवंशी ह्वति – रति मधुपानार्कपूजादि लीलौ,
राधाकृष्णौ सुतृप्तौ परिजनघटया सेव्यमानौ स्मरामि।।२।।

(गोवि० ८/१)

अथात्र घोषेश्वर नन्दनप्रिया पृथक पृथक सा युगपन्निजेन्द्रियैः।
आकृष्टचित्ता प्रियसंगमोत्सुकैः स्वं सान्त्वयन्तीमवदद्‌विशाखिकाम्।।३।।

(गोवि० ८/२)

---

(१) श्रीगौरचन्द्र मध्याह्न के समय श्रीमती राधारानी एवं सखी वृन्द के साथ श्रीकृष्ण की जो जो लीलाएं उनका स्मरण एवं अनुकरण करते हुए भक्तगणों के साथ नाना भावों से विभूषित महाभाव रसमय मूर्ति श्रीश्री शचीनन्दन प्रभु का भजन करो।

(२) मूलसूत्र– मध्याह्न के समय जो परस्पर मिलनोत्पन्न विविध विकार (अष्ट सात्विक) एवं तेंतीसों व्याभिचारी भाव आदि भाव रूपों भूषणों से अति मनोहर वाम्य भाव एवं उत्कण्ठा से अतिशय चंचल, कन्दर्प यज्ञ में ललितादि सखीगणों के परिहास वाक्यों से सुख प्राप्त करते हुए संत झूलन, वनविहार, जलकेलि वंशीहरन रति क्रीड़ा मधुपान एवं सूर्य पूजादि विविध लीलाओं में तत्पर एवं अपने सखी परिकर से सेवित श्रीराधा कृष्ण का हम स्मरण करते हैं।

विशाखाजी के समक्ष, श्रीमती राधारानी की पञ्च इन्द्रियों के आकर्षण का वर्णन :–

(३) इसके पश्चात् अपने भवन में विराजमान श्रीब्रजेन्द्र नन्दन प्रेयसी श्रीराधा अपने प्रियतम के मिलन सुख के लिए उत्कण्ठिता होकर अपनी प्रिय सखी विशाखाजी के समीप अपनी पृथक्–पृथक पञ्च इन्द्रियों के आकर्षण के विषय में वर्णन करती हैं और विशाखाजी उन्हें सांत्वना देती हैं।

सौर्न्दयामृतसिन्धुभंग ललना चित्ताद्रिसंप्लावकर्णानन्दि सनर्मरम्यवचनः कोटीन्दुशीतांगकः।
सौरभ्यामृतसंप्लवावृत जगत्पीयूष—रम्याधरः श्रीगोपेन्द्रसुतः स कर्षति बलात् पंचेन्द्रियान्यालि मे।।४।।
(गोवि० ८/३)

नवाम्बुद—लसद्द्युतिर्नव तड़िन्मनोज्ञाम्बरः त्रिभंगमधुराकृति मधुर वन्य वेशोज्ज्वलः।
सुधांशु मधुराननः कमल कान्ति जिल्लोचनः स मे मदनमोहनः सखि! तनोति नेत्रस्पृहाम्।।५।।
(गोवि० ८/४)

नदज्जलदनिस्वनः श्रवण कर्षि—सत्सिञ्चितः सनर्मरस सूचकाक्षर—पदार्थ भंगयुक्तिकः (सनर्मवचनामृतैः स्नपित कामिनी मानसः)।
रमादिक वरांगना हृदयहारि वंशीफलः, स मे मदनमोहनः सखि! तनोति कर्णस्पृहाम्।।६।।
(गोवि० ८/५)

कुरंगमदजिद्वपुः परिमलोर्मि कृष्टांगनः स्वकांग नलिनाष्टके शशियुताब्ज गन्धप्रथः।
मदेन्दु वरचन्दनागुरुसुगन्धचचार्चितः स मे मदनमोहनः सखि! तनोति नासास्पृहाम्।।७।।
(गोवि० ८/६)

---

(४) राधारानी कहती हैं हे सखी! जिन्होंने अपने सौन्दर्य रूपी अमृत समुद्र की तरंगों से ब्रज रमणियों के चित्त रूपी पर्वत को डुबो दिया है, जिनकी परिहास युक्त वचन भंगी कर्णयुगल को आनन्द प्रदान करती है जिनका श्रीअंग कोटि चन्द्र से भी सुशीतल है, जिनके अधर अमृत तुल्य सुन्दरहैं और जो अपने श्रीअंग के सौरभ से जगत को आप्लावित कर रहे हैं ऐसे श्रीब्रजराजनन्दन बलपूर्वक मेरी पञ्च इन्द्रियों को आकर्षित कर रहे हैं।

(५) हे सखी नवजलधर की अपेक्षा जिनकी कान्ति सुन्दर है नवीन सौंदामिनी से भी अधिक सुन्दर जिनका पीताम्बर है त्रिभंग ललित जिनकी मधुर आकृति है शरद्चन्द्र को निन्दित करने वाला उज्ज्वल जिनका मुखारविन्द है मस्तक पर जिनका मयूरपिच्छ सुशोभित है जिनके गले में सुन्दर नक्षत्र तुल्य तारामणी हार है ऐसे मदन मोहन मेरे दोनों नेत्रों की तृष्णा को बढ़ा रहे हैं।

(६) जिनके मृगमद से भी उत्तम श्रीअंग की सुगन्ध उत्तम नारीगणों को आकृष्ट करती है, जिनके आठों अंगों से (चरणयुगल, करयुगल, नेत्रयुगल, नाभि एवं मुखारबिन्द अष्टकमल) कर्पूरयुक्त कमल की गंध फैल रही है जिन्होंने मृगमद कर्पूर उत्कृष्ट चन्दन अगरू प्रभृति दृव्यों से तैयार किया हुआ श्रीअंगों पर लेप किया हुआ है ऐसे मदनमोहन मेरी नासिका की उत्कण्ठा को बढ़ा रहे हैं।

(७) जिनका कण्ठ स्वर मेघ गर्जन की तरह गम्भीर है जिनके भूषणों की ध्वनि कानों को सुखकर प्रतीत होती है जिनके परिहास युक्त रसमय वचन पद पदार्थ भंगी युक्त वचन माधुर्य एवं जिनकी वंशी ध्वनि लक्ष्मी आदि वरांगनाओं के हृदय को हरण करती है ऐसे मदन मोहन कानों की उत्कण्ठा को बढ़ा रहे हैं।

हरिन्मणि कवाटिका प्रततहारि वक्षःस्थलः, स्मरार्त–तरुणीमनः कलुषहन्तृदोर्रागलः।
सुधांशु हरिचन्दनोत्पल – सिताभ्रशीतांगकः, स म मदनमोहनः सखि! तनोति वक्षःस्पृहाम्।।८।।
(गोवि० ८/७)

बृजातुलकुलांगनेतर रसालितृष्णाहरः, प्रदीव्यदधरामृतः सुकृतिलभ्यफेलालवः।
सुधाजिदहिबल्लिका सुदलवीटिकाचर्वितः, स मे मदनमोहनः सखि ! तनोति जिह्वास्पृहाम्।।९।।
(गोवि० ८/८)

एवं गदन्त्यां स्वमनोगिलासं, स्वेदाश्रुकम्पादिकर महानतम्।
कृष्णे गताया हि तथा तुलस्या, वीथीञ्च तस्यामवलोकयन्त्याम्।।१०।।
(संग्रह कर्तुः)

प्राहिनोन्मुरलिकां स्वदूतिका, मच्युतः श्रुतियुगे विधृत्य या।
प्रेयसी निजकलेन लम्भयेत्, कण्ठमस्य कनकस्रजं यथा।।११।।
(कृ० भा० ८/३४)

---

(८) जिनका वक्षस्थल इन्द्रनीलमणि के कपाट की तरह विशाल एवं मनोहर है और जिनके बाहु युगल रूपी अर्गल (बेड़ा) कामार्त तरुणियों के मन के ताप को नाश करने वाला है, एवं जिनके श्रीअंग चन्द्र, हरिचन्दन, नील कमल एवं कपूर आदि से भी अधिक सुशीतल है ऐसे मदन मोहन मेरे वक्षस्थल की उत्कण्ठा को बढ़ा रहे हैं।

(९) जिनका सुमधुर अधरामृत अतुलनीय है एवं ब्रजगोपियों के अन्यान्य रसों की स्पृहा को दूर करने वाला है, पुण्य पुञ्जों के अभाव में जिसका एक बिन्दु भी प्राप्त नहीं किया जा सकता, जिनके चर्बित पान की बीरी सुधा के स्वाद को भी परास्त करती है ऐसे मदन मोहन मेरे जिह्वा की उत्कण्ठा को बढ़ा रहे हैं।

(१०) इस प्रकार विशाखाजी के निकट श्रीराधारानी अश्रुकम्प, स्वेद आदि सात्विक, विकारों से युक्त अपनी प्रबल अभिलाषा व्यक्त करते–करते श्रीकृष्ण का समाचार लाने के लिए गयी हुई तुलसी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी।

श्रीकृष्ण की मुरली ध्वनि से गोपियों की काम विकलता एवं स्थावर जंगम की विपरीत अवस्था :–

(११) इसी समय श्रीकृष्ण ने मुरली रूपी दूती को अपनी प्रियतमा श्रीराधा के आगमन के लिए नियुक्त किया। ये मुरली अपनी सुमधुर ध्वनि उनके कानों में प्रवेश कराकर कनक माला की तरह उनकों श्रीकृष्ण का कण्ठहार बनाने की सामर्थ्य रखती है।

मधुरिम रसवापी मत्तहंसी–प्रजल्पः प्रणय कुसुमवाटी भृंगसंगीत घोषः।
सुरतसमरभेरीभांकृतिः पूतनारे–र्जयति हृदयदंशी कोऽपि वंशी निनादः।।१२।।

(चन्द्रो ३/३३)

स हरि मुरलिकाया निःस्वनोऽभूदमधूनां, श्रवण सविधचारी मन्मथोन्माथकारी।
अविकल कुलशीला चारचर्या भिचारो धृतिविघटनतन्त्रः कोऽपि मन्त्रः स्वतन्त्रः।।१३।।

(आ० १७/५०)

विषायमानं मधुरं तथोर्गं बाञ्छापकं साच निशम्य वंश्याः।
नादं विनिन्द्यापि प्रशस्य तां तं, सखीसमूहं पुनराह राधा।।१४।।

अजड़ः कम्पसम्पादी शस्त्रादन्यो निकृन्तनः।
तापनोऽनुष्णताधारः को वायं मुरली रवः।।१५।। (वि० १/१०)

स्यूतिस्ते धनुषश्च वंशवरतो वन्दे तयोरन्तिम्, विद्धो येन जनस्तनुं विरहयान्नान्तश्चिरं ताम्यति।
विद्धानां हृदि मारपत्रि–विषमैर्ध्वानेषुभिर्नस्त्वया क्रूरे वंशी ! न जीवनं न च मृर्ति घोराविरासीद्दशा।।१६।।

(वि० ६/१२)

---

(१२) उसी समय माधुर्य रस के सरोवर में मदमत्त हंसिनियों की ध्वनि की तरह प्रेम रूपी कुसुमवाटिका में मधुकरों की संगीत ध्वनि की तरह, सुरत समर में भेरी निनाद की तरह, पूतनारि श्रीहरि की हृदय को दंशन करने वाली अपूर्व वंशी ध्वनि जय युक्त होने लगी।

(१३) श्रीकृष्ण की ये मुरली ध्वनि ब्रजबालाओं के श्रवणों में प्रवेश करके उनके हृदय में कन्दर्प क्षोभ उत्पन्न करने लगी। ये ध्वनि धैर्य को ध्वंस करने वाली एवं सम्पूर्ण कुल, शील, आचार एवं सम्पूर्ण कर्मों को नाश करने में एक स्वतन्त्र अभिचार मन्त्र (वशीकरण मन्त्र) के रूप में कार्य करने लगी।

(१४) विष के समान उग्र होते हुए भी सुमधुर एवं अभीष्ट सिद्धि प्राप्त कराने वाली इस वंशी ध्वनि की राधारानी निन्दा करके भी पुनः प्रशंसा करती हुई सखियों के प्रति कहने लगी।

(१५) हे सखी ! कैसा आश्चर्य है इस मुरली ध्वनि का। ये हिम न होते हुए भी कम्पित करने वाली, शस्त्र न होते हुए भी उसकी अपेक्षा अधिक मर्माघातक, उष्ण न होते हुए भी संताप देने वाली है।

(१६) हे क्रूर वंशी ! तुम्हारा और धनुष का एक ही बांस से जन्म है, किन्तु मैं तो धनुष की वन्दना करती हूँ क्योंकि धनुष से जिनका शरीर विद्धा होता है वो शरीर छोड़ने के समय आन्तरिक कष्ट का अनुभव नहीं होता, किन्तु तुम्हारी ध्वनि रूपी कन्दर्प बाण से बिंधे हमारे हृदय की जो विषम दशा हुई है उसे न मरण कहा जा सकता है न जीवन।

सरन्ध्रा नीरन्ध्रा भवति मुखरागैर्ममधुपतेः, कठोरा सारस्यां गमयति कठोरान्तरमपि।
अतृष्णीका तूष्णीकयति मृगपक्षी प्रभृतिकं स्वयं वंशे जाता विकलयति सद्वंशजवधूः।।१७।।

(आ० ११/२६२)

स्वयं शून्याप्यन्तर्बहु वहति राग व्यतिकरं दधात्येकं पर्व प्रकटयति पर्वानि शतशः।
कलान् धत्ते रम्यान् विकलयति सर्व जगदहो मुरारे वंशीयं जड़यति समुल्लासयति च।।१८।।

(आ० ११/२६३)

कलौऽप्यस्याः सूक्ष्मो विलसति विसारी त्रिभुवने विशन्त्यन्तः श्रोत्रं सकलतनुपीड़ां रचयति।
रसं नानाकारं सहजमधुरोऽप्येष तनुते कदाचित् पीयूषं वितरति कदाचिदविषमपि।।१६।।

(आ० ११/२६४)

न जाने सा वंश्युद्गिरति गरलं वामृतरसं न जाने तन्नादोऽप्यशनिपरुषो वाम्बुमृदुलः।
न जाने चात्युष्णो ज्वलित दहनोद्वेन्दुशिशिरो यतो जातोन्मादा मुमुहुरखिलास्ते बृजजनाः।।२०।।

(भाग. २/६/४८)

---

(१७) ये मुरली छिद्रयुक्त होते हुए भी श्रीकृष्ण के मुखारविन्द की ध्वनि से पूरित होकर छिद्ररहित हो गयी है, कठोर होते हुए भी कठोर चित्त वाले जीव जगत को सरसता प्राप्त कराती है। ध्वनि करने वाली होते हुए भी मृगपक्षी आदि सबको मूक कराने वाली है एवं स्वयं उत्तम वंश में उत्पन्न होने पर भी सत कुल में उत्पन्न ब्रज कुल बधुओं को व्याकुल करती है।

(१८) ये मुरली स्वयं शून्य होते हुए भी ब्रज रमणियों के अन्दर अनेक प्रकार के रागों को पैदा करती है। एक पर्व (पौर) की होते हुए भी शत–शत पर्व (उत्सव) को जन्म देती है। मधुर शब्द करने वाली होते हुए भी समस्त जगत को व्याकुल करने वाली है। अहो ! मुरारी की ये वंशी ध्वनि एक साथ जड़ता एवं उल्लासता को प्रदान करने वाली है।

(१६) अधिक क्या कहें, ये मुरली अपनी मधुर कलध्वनि से सूक्ष्म होते हुये भी त्रिभुवन में विस्तारशील होकर विराज रही है, ये कानों में प्रवेश करके सारे शरीर को पीड़ित कर रही है। इसकी कल ध्वनि स्वभाव से मधुर होते हुए भी कृष्ण कान्ताओं में उनके भावानुरूप नाना प्रकार के रसों का विस्तार करती है। ये कभी अमृत (संयोग में) कभी विष (वियोग में) उद्गीर्ण करती है।

(२०) सखी मैं नहीं जानती कि ये वंशी विष अथवा अमृत उद्गीर्ण कर रही है, ये वंशी बज्र से भी कठिन है अथवा जल से भी कोमल है, ये प्रज्वलित अग्नि से भी अधिक उष्ण है अथवा चन्द्र से भी अधिक शीतल है क्योंकि ये नाद समस्त ब्रजवासियों को उन्मादग्रस्त कर रहा है।

विम्बाधरारुणकरांगुलिकान्तिपूरैः पूर्णोदरान्तविवरेण बहिः सरद्भिः।
सा मालवश्रियमिव प्रतिलंध्य कामं रागावली तनुमतीं वमतीव वंशी।।२१।।

(आ० ११/२६०)

स्फुरताधरपल्लवेन मन्दं, विकसद्भिर्दशनांशुभिः स्मितेन।
रमणीमुखसौभगं प्रपेदे, मुरलीरन्ध्रमनेन चुम्ब्यमानम्।।२२।।

(आ० ११/२६१)

अम्भः स्तम्भयति द्रुतं द्रवयति द्रागद्रिमर्दिं द्रवन शुष्कानप्यवनीरुहः किसलयत्यामूलमुन्मूलितान्।
ब्रह्मानन्दलयं गतानपि मुनीनूच्चैः समुच्चाटय–त्याश्चर्यस्य निधानमेष जयति श्रीकृष्ण वेणुध्वनिः।।२३।।

(आ० ११/२६५)

धन्या धयन्ति मुखपंकजमस्य दृगभ्यां चुम्बन्ति तत् किमपि धन्यतरास्त एके।
ते नाम के मुरलिका–परिपीतशेषं येऽस्याधरं सुमुखि धन्यतमाः पिबन्ति।।२४।।

(आ० ११/२६६)

धन्यासि भो मुरलि यत्परिपीयमाना श्यामेन तद्शनचन्द्रिकयासि दिग्धा।
स्निग्धा सती मणितवत् कलकूजितानि सन्तन्वती भुवनमुत्तरलीकरोषि।।२५।।

(आ० ११/२७०)

---

(२१) श्रीकृष्ण के अरुण वर्ण बिम्बाधर एवं हाथ की अंगुलियों की कान्ति के प्रवाह से इस वंशी का उदर पूर्ण होकर भी ये उस कान्ति को अपने छिद्रों के मध्य से बाहर प्रकाशित कर रही है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये वंशी एक मालव श्रीराग का लंघन करके अनेक राग श्रेणी को मूर्तिमती होकर प्रगट कर रही है।

(२२) यह वंशी श्रीकृष्ण के शोभायुक्त अधर पल्लव एवं मन्द हास्य से प्रकाशमान दन्त ज्योति का चुम्बन करती हुई मानों ब्रज रमणियों के मुख्य सौभाग्य का लाभ प्राप्त कर रही है।

(२३) आश्चर्य की निधान श्रीकृष्ण की यह वेणु जययुक्त हो। ये जल को निश्चल करती है और पर्वतों को द्रवित करती है। जो शुष्क वृक्ष समूह मूल सहित टूट चुके हैं उनमें भी नव पल्लवों को जन्म देती है और ब्रह्मानन्द में लीन मुनीवृन्द को भी भली–भाँति उच्चाटन कर देती है।

(२४) हे सखी, सुमुखि ! जो दूर से अपने नेत्रों द्वारा श्रीकृष्ण के मुख कमल का पान करते हैं वे धन्य है और जो अपने मुख द्वारा उनका चुम्बन करती है वे धन्यतरा हैं और मुरली से उच्छिष्ट श्रीकृष्ण का अधरामृत का पान करती है वे ही धन्यतमा हैं सर्वश्रेष्ठा हैं और उनका सौभाग्य वर्णन नहीं किया जा सकता।

(२५) हे मुरली ! तुम ही परम धन्य हो, क्योंकि जब श्याम सुन्दर तुम्हारा चुम्बन करते है तब तुम उनकी दन्तपंक्ति की चन्द्रिका से विलिप्त होकर और स्निग्धा होकर ब्रज–रमणियों के सुरतध्वनि की तरह कलकूजन करती हुई समस्त भुवन को चंचल कर देती हो।

आपच्यमान–दर दाड़िमबीजराजि–राजीव मध्यमपि चेदुररी करोति।
इन्दूदरं विशति चेत् कुरुविन्द पङ्क्ति–र्दन्तावलिः किल तदस्य तुलां विभर्ति।।२६।।
(आ० ११/२७२)

अत्यन्त साहसवती मुरली यदेषा कृष्णाधरं पिबति यं परकीयपेयः।
किं सौभगं तदनयाऽतनि येन रत्नं यत्नं विनापि पुरतः स्वयमेति यस्याः।।२७।।
(आ० ११/२७३)

यत्पीतशेषरस–शीकर–संप्रयोगान्नद्यः प्रफुल्लकमलावलिलोमहार्षाः।
स्तम्भन्ति रुद्धतरसस्तरवः प्रसून–माध्वीकलोचन जलाः परितो रुवन्ति।।२८।।
(आ० ११/२७४)

धन्या जयत्यपि मही महिता महिम्ना कृष्णस्य यच्चरणचिह्नविचित्रवक्षाः।
वंशीरवामृतरसैः सरसान्तरेव याऽजस्रमेव यवसांकुर रोमहर्षा।२६।।
(आ० ११/२७५)

---

(२६) ईषत्–पक्व अनार के बीजों की पंक्ति यदि कमल के मध्य भाग में सजा दी जाय, अथवा यदि पद्मराग मणि की माला चन्द्रमा के बीच में सुशोभित हो तभी सम्भवतः श्रीकृष्ण की मुखारविन्द में सुशोभित दन्तपंक्ति की तुलना हो सके।

(२७) यह मुरली अत्यन्त साहसी है क्योंकि श्रीकृष्ण का अधरामृत जो कि सजातीयता के कारण केवल गोपियों के ही पान के योग्य है यह अन्य जातीय रमणी होकर उसका पान कर रही है। अतएव न जाने इसने कौन सा सौभाग्य किया है जो अनायास ही इसको इतना बड़ा सौभाग्य रत्न प्राप्त हो गया है।

(२८) मुरली के पान से अवशिष्ट रस कण को प्राप्त करके (मुरली बजाने के बाद जब श्रीकृष्ण ने यमुना जल का स्नानपान आदि द्वारा स्पर्श किया तो उसमें कमल श्रेणी का विकास रूप रोम हर्ष होते हुए जल का वेग स्तब्ध हो गया) वृक्षों ने भी इस रस को खींच लिया और कुल परम्परा से प्राप्त इस भाग्य को पाकर गर्वपूर्वक पुष्पों से मधुरूपी अश्रु विसर्जित करते हुए रोदन करने लगे।

(२६) अहो ! ये धरती भी महामहिमा से युक्त है जो कि श्रीकृष्ण के चरणचिन्हों द्वारा उसका वक्षस्थल चित्रित हो रहा है और वंशी के अमृत रस से इसका अन्तर सरस होने से यह तृण और अंकुरों के रूप में रोमांच प्रकाश कर रही है।

वृन्दावनस्य महिमा न हि मादृशीनाम् गम्यो यदत्र मुरभिन्मुरलीरवेण।
स्वान्तं विलास्य मृदुलास्यमयूर्मयूरः स्पन्दं जहुःस्तरुलता मरुताऽऽहताश्च।।३०।।
(आ० ११/२७६)

किं दुश्चरं चरितमालि ! तपो मृगीभिः पश्यन्ति याः सुमुरलीकलमास्यमस्य।
अक्ष्णोः प्रकाम कमनीयगुणत्व मासां नासाम्प्रतं भवति सम्प्रति सम्प्रतीहि।।३१।।
(आ० ११/२७७)

सौभाग्यभागियमहो सखि! कृष्णसारी सारीकरोति नयने सह कृष्णसारा।
वंशी निनाद मकरन्दभरं दधानं कृष्णास्य पंकजमशंकितमापिबन्ति।।३२।।
(आ० ११/२७८)

धन्याविमानवनिता जनितानुरागा द्रागात्तगाढ़ रतिभिः पतिभिः परीताः।
लीलाकल–क्वनितवेनु मवेक्ष्य कृष्णं धैर्यादथाग्वरुरुर्हुमुमुर्हुमुर्हुश्च।।३३।।
(आ० ११/२७९)

विर्स्रंसमान–चिकुराः श्लथमाननीव्यो देव्यो धृतिव्यसनतो निखिला दिवीव।
आरिप्स्यमान ममरद्रुमपुष्पवर्षं विस्मृत्य हन्त ववृषुनयनाम्भ एव।।३४।। (आ० ११/२८०)

---

(३०) अहो वृन्दावन की महिमा हम जैसी ब्रज ललनाओं को भी अगम्य है क्योंकि इस वृन्दावन में श्यामसुन्दर को ही मेघ एवं उनकी मुरली नाद को मेघ को गर्जना समझकर उल्लसित होते हुए मयूर मन्द–मन्द नृत्य करते हैं और यहाँ की तरुलता वायु द्वारा मन्द–मन्द हिलती हुई स्पन्द भाव का त्याग कर रही है।

(३१) हे सखी ! ना जाने इन हरणियों ने कौन सी कठोर तपस्या की है जो श्रीकृष्ण के सुमधुर मुरली ध्वनि युक्त मुखारविन्द का दर्शन कर रही हैं। इनके नेत्र युगलों में जो अत्यन्त कमनीयता है वो इसी कारण है यही विश्वास करना चाहिए।

(३२) अहो सखी यह कृष्ण सारि मृगी बड़ी परम सौभाग्यवती है क्योंकि ये अपने कृष्णसार मृग के साथ श्रीकृष्ण के वंशीवादन युक्त मकरन्द को प्रवाहित करने वाले मुख कमल को निःसंकोच रूप से पान करके अपने नेत्रों को सार्थक कर रही है।

(३३) श्रीकृष्ण में अनुराग रखने वाली विमानों में विचरण करने वाली देवांगनाए ही धन्य हैं क्योंकि वे अपने–अपने पतियों के साथ प्रगाढ़ रूप से मिलित होते हुए भी श्रीकृष्ण के अपूर्व लीला युक्त वेणु वादन कारी मुखारविन्द का अवलोकन करके धैर्य खोकर पुनः पुनः मोह दशा को प्राप्त हो रही हैं।

(३४) अहो ये देवांगनाएं आकाश में रहती हुई श्रीकृष्ण के दर्शन से धैर्य खो चुकी हैं और उनके केशपाश एवं नीवीबन्ध शिथिल हो गये हैं इन्होंने विचार तो किया था कि कल्पवृक्ष के कुसुमों का श्रीकृष्ण के ऊपर वर्षण करेंगी लेकिन वह भूलकर ये अपने नेत्रों के जल का ही वर्षण कर रहीं हैं।

अर्धावलीढ–यवसांकुरशोभिदन्ताः सोत्कण्ठमुन्मिषित नेत्र मुदीर्ण कर्णम्।
चित्रार्पिता इव पतन्तमिवामृतौघं वेणुध्वनि श्रुतिपुटे गमयन्ति गावः।।३५।।
(आ० ११/२८१)

चूषन्ति चूचूकमाहो न न सन्त्यजन्ति वत्सा नयन्ति न पयः कवलं गलाधः।
वंशीकलह्रताह्रदां सखि! नैचिकीनां स्नेहसुनतस्तनरसो धरयैव पीतः।।३६।।
(आ० ११/२८२)

वंशीकलं कलयतोऽस्य निपीय दृगभ्यां रूपामृतं पुनरमुष्य रसानुभूत्या।
ध्यायन्ति मीलितदृशः सखि! बद्धमौनं बद्धासनं मुनय एव पतत्रिनोऽमी।।३७।।
(आ० ११/२८३)

न स्पन्दते सखि! न रोति न वीक्षतेऽन्य–न्नान्यच्छृनोति न जिघत्सति पक्षिसंघः।
रोमाञ्चबानिव मुदागरुतं धुनानो वंशीकलास्वदनमेव परं करोति।।३८।।
(आ० ११/२८४)

स्रस्ते रथांग–कलहंसविचित्रचेले प्रव्यक्त सैकत–नितम्बमुदीर्ण फेनम्।
आवर्तवर्तित–धनभ्रमिभिः समीयेऽपस्मार एव मुरली–निनदैर्नदीभिः।।३६।।
(आ० ११/२८५)

---

(३५) ये धेनूगण उत्कण्ठित होकर आधे चबाये हुए तृणों से शोभित दांतों से उत्फुल्लित नेत्रों से कान खड़े करके चित्र लिखे से श्रीकृष्ण के वेणुनाद को श्रवण पुटों से पान करती हुई मानों अमृत प्रवाह को धारण कर रही हैं।

(३६) अहो ये वत्सगण गौओं के स्तन का पान भी नहीं कर रहे हैं और त्याग भी नहीं कर रहे हैं। दूध के घूंट को गले से नीचे नहीं कर पा रहे हैं। हे सखी गौओं के चित्त श्रीकृष्ण के वेणु नाद से आकृष्ट हो जाने से उनके स्तनों से जो दूध की धारा बह रही है वह तो पृथ्वी ही पान कर रही है।

(३७) हे सखी ! ये पक्षी श्रीकृष्ण के वंशी वादन युक्त मुखारविन्द को पान करके पुनः उस रूपामृत रस का अनुभव करते हुए मुनियों की तरह मौन होकर डाल पर स्थिर बैठे हुए नेत्र बन्द करके ध्यान कर रहे हैं।

(३८) हे सखी ये पक्षी जड़ हो गये हैं न हिलते–डुलते हैं, न शब्द करते हैं, न कुछ देखते है, न शब्द सुनते हैं और न ही कुछ खाने की इच्छा करते है। ये तो केवल आनन्द से रोमाञ्चित होकर पंखों को कम्पित करते हुए केवल मात्र वंशी की कलध्वनि का आस्वादन कर रहे हैं।

(३६) इन नदियों के तो चकवा और हंस रूपी विचित्र वसन स्खलित होने से इनके सिक्तारूपी नितम्ब देश दिखने लगे हैं जल के ऊपर फेन आ गया है इस अवस्था में ये नदियाँ घनघुर्णित (भंवर) होकर अपस्मार (काम के क्षराघात से जनित व्याधि विशेष) दशा को प्राप्त हो रहे हैं।

वीचीकरैः सरसिजाञ्जलिमर्पयन्त्यः कृष्णांघ्रि पंकजयुगं बहु मानयन्त्यः।
सच्छीकरैः शिशिरयन्ति रसेन वंशी नाद प्रहृष्टमनसः सखि! शैवलिन्यः।।४०।।

(आ० ११/२८६)

आच्छादयन् शरदशीतकरस्य तापं छत्रायितः स्ववपुषा यमचेतनोऽपि।
संसर्पति प्रतिपथं परितः प्रसर्पन् मैत्रीं विभावयति मेघरूचीह मेघः।।४१।।

(आ० ११/२८७)

कर्पूरपूर–परमाणु–समेन वारां शीतेन शीकरभरेण विसारिना यः।
गोचारन श्रममपाकुरुतेऽनुगायन् वंशीममुष्य घन एव निसर्गबन्धूः।।४२।।

(आ० ११/२८८)

स्निग्धेषु शाद्वलतलेषु पदारविन्द स्यन्दीनि बल्लभतमा–कुचकुंकुमानि।
वक्षोरुहेषु च मुखेषु च रुषयन्त्यो धन्याः पुलिन्दसुदृशः सुरसा भवन्ति।।४३।।

(आ० ११/२८६)

---

(४०) और सखी ये नदियाँ मुरली ध्वनि श्रवण से आनन्दित होकर अपने तरंग रूपी कर युगल द्वारा कमलों की अञ्जली समर्पित करते हुए श्रीकृष्ण के चरण–युगल की सम्मान पूर्वक अर्चना कर रही हैं ओर अनुराग युक्त होकर अपने सुशीतल जल कणों से उनको शीतल कर रही हैं।

(४१) हे सखी ! ये अचेतन मेघ भी मेघ जैसे श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण के प्रति मित्रता ही प्रकाश कर रहा है क्योंकि यह अपने सखा श्रीकृष्ण के धूप के ताप को दूर करने की सेवा करता हुआ अपने शरीर को चारों ओर छत्राकार विस्तीर्ण करके उनके ऊपर छाया करता हुआ उनके पीछे–पीछे गमन करता है।

(४२) यह मेघ तो श्रीकृष का स्वाभाविक बन्धु है क्योंकि श्रीकृष्ण वंशी गान करते–करते जब थक जाते हैं तब ये कपूर जैसे छोटे–छोटे जल के कणों की वर्षा करते हुए उनके गौचारण जनित श्रम को दूर करता है।

(४३) ये पुलिन्द रमणियां (लकड़िया बीनने वाली) भी धन्य हैं क्योंकि श्रीकृष्ण के श्रीचरणों में लगी हुई उनकी प्रियतमा (यहाँ अनुराग के अतिशय वेग के कारण अपने को प्रियतमा न मानते हुए अन्य नायिका को कृष्ण प्रियतमा समझ रही हैं) का कुचकुंकुम जोकि उनके चरणों से हरे–२ तृणों पर लगा हुआ देखकर उसे उठाकर अपने वक्षस्थल एवं मुख पर लेपन करके श्रीकृष्ण विषयक अनुराग को प्राप्त करती हैं।

हन्ताधिकार्यऽनधिकारितया न भेदः सर्वाभिलाष–सदने मधुरिम्णि तस्य।
युक्तं पुलिन्द–सुदृशो यदिहानुरक्ता रागस्य च प्रकटने ह्ययमेव मार्गः।।४४।।
(आ० ११/२६०)

यः कन्द–कन्दर–पयः–फल–धातुरागैः क्रीड़ोपयोगिभिरसौ भजतेऽनुवेलम्।
गोवर्धनो गिरिवरः स हि माधवस्य लीलासखश्च सखि ! भागवतोत्तमश्च।।४५।।
(आ० ११/२६१)

यस्याश्रयं कृतवतां सखि ! बद्धतृष्णः कृष्णस्तनोत्यभिमतं मतमेतदेव।
श्रेयः सिसाधयिषवो न विना सहायं योग्याश्च तद्‌घटयितुम् कुशला भवन्ति।।४६।।
(आ० ११/२६२)

इत्थमेव मुरलीस्वनामृतं वर्णनेन सुरभिकृतं मुहुः।
कर्णचारुचषकान्तराहितं ता मिथोऽपि परिवेशितं पपुः।।४७।।

अथागता सा तुलसी सभां तां गुञ्जावलीं गन्धफलीयुगञ्च।
निवेदयन्ती ललिता–कराब्जे वृत्तं समस्तं मुदिता शशंसे।।४८।। (गोवि० ८/६)

(४४) श्रीकृष्ण का माधुर्य सभी की अभिलाषा का विषय है और इस विषय में पात्रता एवं अपात्रता का कोई भेद नहीं है इसका प्रमाण यदि हीन जाति पुलिन्द कन्या भी उनके प्रति अनुराग धारण कर सकती है तो समझना चाहिए कि कृष्ण अनुराग को प्राप्त करने के लिए लोभ ही उपाय है।

(४५) और देखो ये गिरिराज गोवर्धन–कन्द, कन्दरा, जल, फल एवं धातु राग आदि सेवा की उपयोग वस्तुएं प्रदान करके श्रीकृष्ण की सेवा कर रहे हैं। अतः यह गिरिराज भागवतों में सर्व उत्तम है एवं लीला में सहायक हैं।

(४६) हे सखी जो इन गिरिराज गोवर्धन का आश्रय ग्रहण करते हैं श्रीकृष्ण उत्सुक होकर उनकी मनोवांछाएं पूर्ण करते हैं। ये ही समस्त शास्त्रों का मत है क्योंकि जो अपना कल्याण साध ान करने की इच्छा रखते हैं उनमें योग्यता होते हुए भी सहायता के बिना उस कल्याण को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते ।

(४७) इस प्रकार श्रीराधारानी द्वारा सखियों के प्रति पुनः पुनः वर्णन किया गया सुरम्य मुरली नादामृत सभी अपने–अपने कानरूपी सुन्दर पात्रों से पान करने लगीं।

तुलसी मञ्जरी का आगमन एवं श्रीकृष्ण वार्ता श्रवण करके श्रीराधा की उत्कण्ठा :–

(४८) जब राधारानी श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए इस प्रकार उत्कट लालसा प्रकट करने लगी ठीक उसी समय तुलसी मञ्जरी वहाँ आ पहुँची और श्रीकृष्ण की दी हुई गुञ्जामाला और दो चम्पक कलिका राधारानी के हाथों में प्रदान करती हुई समस्त वृतान्त निवेदन करने लगी।

श्रवसोरवतंसकद्वयीं हृदि गुञ्जास्रजमप्यमुं शुभाम्।
हरिसंग–समृधसौरभां, प्रियसख्या ललिता मुदा दधे।।४६।।

(गोवि० ८/१०)

तत्स्पर्शतः फुल्लसरोजनेत्रा, कृष्णांगसंस्पर्शमिवानुभूय।
कम्पाकुला कण्टकितांगयष्टि, रुत्कापि गन्तुं स्थगितातदासीत्।।५०।।

(गोवि० ८/११)

धीरता वामता–सूक्ष्ममेघालीभिः प्रबोधिता।
त्वरयन्ती सखीयाने भंगया परिजहा स सा।।५१।।

(गोवि० ८/१२)

पश्यताग्रे दिदृक्षा चेद्गत्वालं मदपेक्षया।
शैव्या वाग्वागुराबद्धं कृष्णसारं मृगेक्षणाः।।५२।।

(गोवि० ८/१३)

विधेयः पद्मिनिनां वः प्रयत्नः कृष्णपद्मिनः।
चन्द्रावली सखी वारी–पतितस्य समुद्धृतौ।।५३।।

(गोवि० ८/१४)

---

(४६) इसके पश्चात् श्रीललिताजी ने प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण प्राप्ति में अनुकूल एवं श्रीकृष्ण अंगगन्ध से अतिशय सौरभयुक्त उन दो चम्पक कलिकाओं को राधारानी के कानों में एवं गुञ्जामाला को गले में पहना दिया।

(५०) प्रफुल्ल पद्मनयना श्रीराधा उस गुञ्जाहार और चम्पक कलिकाओं के प्रस्पर्श से श्रीकृष्ण का स्पर्श सुख अनुभव करती हुई पुलकित एवं कम्पित होकर श्रीकृष्ण मिलन के लिए चलने के लिए उत्कण्ठिता होते हुए भी सहसा रूक गई।

(५१) श्रीराधा अपनी धैर्य धीरता, वामता और सूक्ष्म बुद्धि रूपा सखियों द्वारा समझाये जाने पर अर्थात् धैर्यावलम्बन करके श्रीकृष्ण के मिलनार्थ जाने के लिए शीघ्रता कारिणी ललितादि सखियों को भंगीक्रम से परिहास करने लगी।

(५२) अरी मृग नयनियों, यदि तुम्हारी उनको देखने की अधिक ही इच्छा है तो मेरी अपेक्षा की क्या आवश्यकता है। आगे आगे चलकर देखो कि वह कृष्ण सार मृग (कृष्ण) शैव्या की वाक चातुरी रूप (मृग बंधिनी) द्वारा बँध चुके हैं।

(५३) चन्द्रावली की सखी रूपा वारि में (गजबंधिनी) कृष्ण रूपी हस्ति पतित हो चुका है तुम तो सब पद्मनी नारियां हो इसलिए जाकर उस पद्मी (हाथी) का जाकर उद्धार करो। ये ही तुम्हारा आवश्यक कर्तव्य है।

न हठात् क्रियते सुपण्डितैः, रविचारात् कृतमप्यनर्थकम्।
सुविचार्य कृतं हि कल्पते, सुधियां साधुफलोपपत्तये।।५४।।

(गोवि० ८/१५)

ललिताह सत्यमेतद्यन्न संकेतगो हरिः।
किन्तु शैव्यादि भिर्वति स्तदयानं मानहानये।।५५।।

(गोवि० ८/१६)

अथेशा कृष्णसंगाशोत्कलिका–व्याकुलान्तरा।
तस्य दुर्लभता स्फुर्त्या मनस्ये तदचिन्तयत्।।५६।।

(गोवि० ८/१७)

ननन्दा विद्वेष्ट्री पतिरति कटुः सापि कुटिला धवाम्बा मे पद्माप्रभृति–रिपुपक्षश्च बलवान्।
वनं व्याप्तं सर्वं बृजधनजनैरह्नि सखिभिर्वृतः कृष्णो लभ्यः कथमिह भवेद्विघ्न बहुले।।५७।।

(गोवि० ८/१८)

निष्प्रत्यूहं हरेः संगो दुर्लभो मेऽद्य दुर्विधेः।
इत्याकुलधियस्तस्याः शुभसीच्शकुनोन्नतिः।।५८।। (गोवि० ८/१९)

---

(५४) हे सखीवृन्द बुद्धिमान जन कर्तव्य कार्य को भी सहसा नहीं करते बिना विचार किये किया हुआ काम करके भी व्यर्थ हो जाता है इसलिए विज्ञ जन विचार करके कार्य करते हैं तभी उनके कार्य सफल होते हैं।

(५५) श्रीराधा के ये श्लेष वाक्य सुनकर ललिताजी कहने लगी– सखी तुमने जो कहा है वही सत्य है क्योंकि श्रीकृष्ण ने अभी संकेत स्थान पर गमन नहीं किया है और शैव्या आदि सखीगन वहाँ मिलकर आ पहुँची हैं इसलिए ऐसे स्थान पर जाने से मान हानि की ही सम्भावना है।

(५६) ललिताजी के वाक्य सुनकर श्रीराधा श्रीकृष्ण मिलन के लिए उत्कण्ठित और व्याकुल होती हुई उनकी प्राप्ति को अत्यन्त दुर्लभ समझकर मन ही मन इस प्रकार चिन्ता करने लगी।

(५७) हाय ! ननद मुझसे सदा द्वेष करती है, पति अति कटुभाषी है सास भी कुटिल स्वभाव वाली हैं पद्मा आदि विपक्षा सखियों का पक्ष भी बलवान है। दिन के समय वन में गौएं और समस्त मनुष्य चलते रहते हैं। विशेषतः श्रीकृष्ण तो सदा सखाओं से घिरे रहते हैं। इस प्रकार इतने विघ्नों के रहते हुए मुझे किस प्रकार श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो सकती है।

(५८) हाय हतभागिनी मुझको आज श्रीकृष्ण मिलन दुर्लभ ही प्रतीत होता है– ऐसा सोचकर जब राधारानी व्याकुल हो गयीं तब उनको सामने से एक शुभ शकुन दिखायी दिया।

सुलभो वृषभः स गिरौ कमपि, प्रसभं गणाको बहिरित्यवदत्।
निजवामकुचोरूभुजानयनं, प्रियसंगतयेऽस्फुरदाशु समम्।।५६।।
(गोवि० ८/२०)

भविकशकुनजातामोदपूर्णापि गाढ़प्रणय विसरजासम्भावना लीनचित्ता।
हृदयदयित–वार्त्ता प्राप्ति तृष्णा स्रवन्त्या सममहह ! धनिष्ठामागतां सा ददर्श।६०।।
(गोवि० ८/२१)

स्वमिलनमुदितां तां वीक्ष्य राधा धनिष्ठां हृदयदयितपादैः प्रेरितां मन्यमाना।
उदित विविधभाव–व्याकुलाप्यस्य वार्त्ता–श्रवणकुतुकदिग्धा व्याजतस्तामपृच्छत्।।६१।।
(गोवि० ८/२२)

कुत इह सखि ! वृन्दारण्यतो माधवश्रीः कथय किमनुभूता लोकिता गोत्रवर्यः।
ब्रजधनजन पाता संगतश्चेक्षितोऽसौ कथयनु भवती सा कीदृशी वा स कीदृक्।।६२।।
(गोवि० ८/२३)

---

(५६) बाहर कोई गणक (ज्योतिषी) किसी व्यक्ति को कह रहा है– "पर्वत पर (गिरिराज तट पर) बैल (सर्व श्रेष्ठ कृष्ण) अकस्मात् प्राप्त होंगे" इस शुभ सूचना के साथ ही साथ और भी शुभ सूचना देने वाले अपने वाम स्तन, वाम उरु, वाम भुजा एवं वाम नयन फड़कने लगे।

(६०) श्रीराधा गणक के मुख से मंगल वाक्य सुनकर एवं अपने वाम अंगो के फड़कने के शुभ लक्षणों से आनन्दित होकर प्रणय के अतिशय आवेश में लीन चित्त हो गयीं। इसी समय धनिष्ठा प्राण बल्लभ की वार्ता प्राप्त कराने वाली नदी तुल्य होकर आ पहुँची है। इसीलिये इससे प्राण बल्लभ की सूचना प्राप्त होगी।

धनिष्ठा के मुख से श्रीकृष्ण विषयक वर्णन एवं कथोपकथन :–

(६१) तब श्रीराधा स्वयं को श्रीकृष्ण मिलन के लिए हास्यमुखी धनिष्ठा को आते हुए देखकर प्राणनाथ ने ही इसे मुझे लाने के लिए भेजा है ऐसा विचार करने लगी। ऐसा विचार करके उत्पन्न भावावलि से युक्त होकर वे श्रीकृष्ण वार्ता श्रवण के लिए उत्सुक होकर भंगी पूर्वक धनिष्ठा जी से पूछने लगी।

(६२) सखी कहाँ से इधर आयी हो ? धनिष्ठा – "वृन्दावन से। श्रीराधा–वहाँ माधव की (बसन्त की) श्री (सौन्दर्य) कैसी है ? धनिष्ठा – हाँ देखी है। श्रीराधा – ब्रजमण्डल की गौएं एवं जनगणों के रक्षक उन गोत्र वर्य को (गिरिराज अथवा कुलश्रेष्ठ श्रीकृष्ण) देखा है क्या ? धनिष्ठा – हाँ देखा है। श्रीराधा–तो बोलो वह माधव श्रीकैसी है एवं गोत्रवर्य ही कैसे हैं?

विकसित–वनमालाकृष्ट पुष्टालिवृन्दा विकच–तिलक–लक्ष्मीः कोकिलालाप–रम्या।
हृदि युवतिजनानां काममुद्दीपयन्ती स्फुरति सखि विशाला माधुरी माधवस्य।।६३।।

(गोवि० ८/२४)

विविधोत्कलिका–कीर्णां दर्शनात् स्मरवर्दिनीम्।
माधवीयामवस्थां कः सखि ! वर्णयितुं क्षमः।।६४।।

(गोवि० ८/२५)

घनश्यामो (धरोर्द्धता) धातुच्चय–रचितचित्रावयववान् ध्वनद्वेर्णुधेनुब्रज–जलदभीतिब्रजहरः।
वयः क्रीड़ोन्मीलः सकलसुरभिवर्धमकृती विरावोच्चयैः श्रृंगो लसति सखि ! गोवर्धनधरः।।६५।।

(गोवि० ८/२६)

तद्वाग भंगीमधुलीनां पानोन्मत्तहृदप्यसौ।
कान्तोदन्तं स्फुटं श्रोतुं संवादमनयाकरोत्।।६६।।

(गोवि० ८/२७)

---

(६३) धनिष्ठा भी श्रेष्ठ श्लेष वाक्यों में उत्तर देने लगी– हे सखी ! बसन्त के विशाल माध् ुर्य की बात क्या बताऊँ माधव श्रीखिली हुए वनमाला द्वारा भ्रमरों को आकृष्ट करते हुए अपने सुन्दर तिलक की शोभा द्वारा, कोकिलाओं के मधुर आलाप द्वारा युवतियों के हृदय में काम का उद्दीपन कर रही हैं। श्रीकृष्ण के पक्ष में श्रीकृष्ण की विकसित वनमाला भ्रमरों को आकृष्ट कर रही है। तिलक की रचना से मुखारविन्द की शोभा बढ़ रही है। कोयलों की सुमधुर ध्वनि की तरह उनकी वाणी युवतियों के हृदय में मिलन की लालसा उत्पन्न कर रही है।

(६४) हे सखी माधवीय (बसन्तकालीन) वन शोभा सुन्दर–सुन्दर कलियों से सुशोभित है (श्रीकृष्ण के पक्ष में) वे उत्कण्ठा से व्याकुल हो रहे हैं दोनों ही दर्शन से हृदय में मदनोन्माद को जन्म देने वाले हैं।

(६५) हे सखी ! जिनके अंग प्रत्यंग गेरु आदि धातुओं से चित्रित हैं जहाँ निरन्तर वेणु बजती रहती है, जिन्होंने इन्द्र के कोप से वर्षा करते हुए भयभीत धेनू समूह की रक्षा की जिन पर पक्षी वृन्द बैठे रहते है, जो समस्त गौओं का वर्धन करने में कुशल है जिनके ऊँचे शिखरों पर पक्षी–समूह कल–कल ध्वनि करते हैं – ऐसे धराधर गोवर्धन शोभा प्राप्त कर हे हैं। श्रीकृष्ण के पक्ष में जिनके अंग प्रत्यंग गेरु आदि धातुओं से चित्रित है वेणु वाद्य कर रहे हैं, जो मेघों के भय से गौओं की रक्षा करते हैं जो उच्च स्वर से अपूर्व श्रृंगध्वनि करते हैं ऐसे गोवर्धन को धारण करने वाले श्रीकृष्ण शोभा को प्राप्त कर रहे हैं।

(६६) तब राधारानी धनिष्ठा की इस वचनभंगी रूपी मधुपान करके उन्मत्त होती हुई प्राणनाथ का वृतान्त स्पष्ट रूप से सुनने की इच्छा से कहने लगी।

यानं क्व ते सम्प्रति ? ते समीपे किमर्थमावदयितुं प्रवृत्तिम्।
कस्य ? ब्रजेन्दोः सखि ! कीदृशी सा ? स्वशत्रु कन्दर्पतमोऽभिभूतिः।।६७।।

(गोवि० ८/२८)

छायाद्वितीयोऽयमसौ सहायी, निरायुधोऽयं स च शस्त्रपूर्णः।
स्वरूपसम्पज्जयजातरोष–स्तं राधतेऽसौ स्वमधौ समृद्धः।।६८।।

(गोवि० ८/२९)

समाच्छन्नं कुर्वन्नुपरि कुसुमैः स्वैरिव शरैः समन्तात् सामान्तैरलिपिक–वसन्तानिलमुखैः।
भवत्कुण्डारण्यं न्यरुणदिह कृष्णं रतिपति–बर्हिस्थानीकिन्या इव स तव संगं स्पृहयति।।६९।।

(गोवि० ८/३०)

बहुधा कृतरक्षणं प्रियं पतितं दैवबलेन संकटे।
तव संगतिमात्र–तारने, त्वरितं त्राहि न चेत् कृतघ्नता।।७०।।

(गोवि० ८/३१)

त्वत्संगत्या यदा भाति तदा मदनमोहनः।
अन्यत्र विश्वमोहोऽपि स्वयं मदनमोहितः।।७१।। (गोवि० ८/३२)

---

(६७) श्रीराधा – "हे सखी इस समय कहाँ जा रही हो ? धनिष्ठा – तुम्हारे पास श्रीराधा किसलिए ? धनिष्ठा – "कुछ वार्ता सुनाने" श्रीराधा – किसकी वार्ता ? धनिष्ठा – ब्रजकुलचन्द्र की।" राधा–क्या समाचार है ?" धनिष्ठा – कन्दर्परूपी शत्रु राहु के भय से वो परास्त हो रहे हैं।

(६८) कन्दर्प से उनकी पराजय का कारण यह है कि – श्रीकृष्ण अकेले एवं असहाय हैं, और कन्दर्प अपने दल बल सहित है। कृष्ण अस्त्रहीन हैं और कन्दर्प अस्त्र समूह से युक्त है, श्रीकृष्ण ने कन्दर्प की सौन्दर्य सम्पदा को परास्त कर दिया है इससे क्रोधित होकर और बसन्त काल में समृद्धि शाली होकर वह उनको पीड़ित कर रहा है।

(६९) इस कामदेव ने ऊपर से तो अपने वाणों के सदृश कुसुमों द्वारा और चारों ओर से भ्रमर, कोकिल बसन्त और दक्षिण पवन रूपी सामन्तों द्वारा श्रीकृष्ण को घेरकर तुम्हारे कुण्डारण्य में अविरुद्ध कर रखा है। इसीलिए अब वे बाहरी सेना की तरह तुम्हारे संग (सहायता) की प्रार्थना कर रहे हैं।

(७०) हे सखी आज दैव वशतः प्रियतम संकट में पड़ गये हैं तुमने बहुत बार उनकी संकट से रक्षा की है अथवा उन्होंने तुम्हारी बहुत बार संकटों से रक्षा की है, तुम्हारा संग पाकर ही वो अनायास इस विपत्ति से मुक्त हो जायेंगे अतः शीघ्रता करो नहीं तो तुम्हें कृतघ्नता रूपी दोष लगेगा।

(७१) सखी तुम तो जानती ही हो तुम्हारे संग रहने से ही वे मदन मोहन हैं अन्यथा वे विश्व को मोहित करने वाले होने पर भी स्वयं मदन से मोहित हो जाते हैं।

घृतानल्पकल्पः कृतकुसुमतल्पो हृदि वलद्–विकल्पः संकलपान् विदधदिह जल्पंस्तव कथाम्।
स शूरोऽपि क्रूरातनुकदनन्दूरोजितधृतिर्हरिः कुंजे गुंजन्मधुपपिककपुंजे निवसति।।७२।।
(गोवि० ८/३३)

नवीन जलदद्युतिः कनकपीत–पदाम्बरः स्फुरन्मकरकुण्डलो घुसृण–चारुचर्च्चाञ्चितः।
प्रफुल्लकमलेक्षणः कनकयूथिकामल्यवान् शिखण्डकृतशेखरः स्फुरति साध्वि ! कुंजे हरिः।।७३।।
(गोवि० ८/३४)

श्रीतारुण्य महामृताब्धिविलसद् सौन्दर्यपाथः स्फुरल्लावण्योच्च–तरंगभंगि–विकसत कंदर्पभाव भ्रमे।
श्रीवंशीध्वनि वातय्योत्थित–पतद्योषाक्षिचेतस्तृण–स्तन्वानाशु निमज्जयन्नपि हरिस्तद्वीथिमुद्विक्षते।।७४।।
(गोवि० ८/३५)

बकभिदि सुविदग्धे स्वां सुवैदग्ध्यधारां नवतरुणिमपूर्णे नव्यतारुण्य लक्ष्मीम्।
शशिमुखी ! रतितृष्णा मप्यमुष्मिन् सतृष्ण सफलय वरवेशे वेशभंगी सर्मप्य।।७५।।
(गोवि० ८/३६)

प्रेमोद्भ्रान्तं द्रुतस्वान्तं स्मरक्रान्तं त्वदाश्रितम्।
मूर्च्छान्तां क्रान्तिमायान्तं कान्तं कान्ते ! द्रुतं ब्रज।।७६।। (गोवि० ८/३७)

(७२) श्रीकृष्ण ने अनेक प्रकार के वेशभूषा धारण किये हुए है, कुसुम शैय्या रचना करते हुए हृदय में नाना प्रकार के संकल्प विकल्प कर रहे हैं, तुम्हारे विषय में ही बातचीत कर रहे है, हे सुमुखि! वे स्वयं वीर होते हुए भी क्रूर कन्दर्प की पीड़ा से अधीर होकर कुञ्ज में विराज रहे हैं जहाँ कोकिला और भ्रमर ध्वनि कर रहे हैं।

(७३) हे सखी ! अहो नवीन जलधर की तरह उनकी अंग कान्ति, स्वर्ण तुल्य उनका पीत पट्ट वस्त्र कानों में मकराकृत, कुण्डल, सब अंगों में कुंकुम आदि का सुचारु लेपन विकसित कमल की तरह नेत्रद्वय, गले में सोनजुही (स्वर्ण यूथिका) की माला तथा मस्तक पर मोर के पंखों का चूड़ा शोभा पा रहा है।

(७४) श्रीकृष्ण के श्रीअंग रूपी तारुण्य समुद्र में लावण्य रूपी जल की उच्च तरंगे एवं उसमें कन्दर्प भावरूपी भँवर जिसमें वंशी के नाद रूपी वायु से स्त्रियों के नेत्र एवं चित्त रूपी तृण गुच्छ डूबे जा रहे हैं, लेकिन फिर भी वे हरि तुम्हारे ही पथ पर नयन बिछाये बैठे हैं।

(७५) हे चन्द्र वदने ! उन रसिक शिरोमणि बकारी (श्रीकृष्ण) के प्रति अपने विदग्धता पूर्ण नव तारुण्य युक्त, उत्तम वेशभूषा युक्त अंग लक्ष्मी को समर्पित करके सफल करो और उनकी रतितृष्णा को शान्त करो।

(७६) हे कान्ते ! वे तुम्हारे प्रेम से उद्भ्रान्त, आद्रचित्त (सरस) कन्दर्प शर से आक्रान्त, तुम्हारे एक मात्र आधीन एवं इस समय तो मूर्च्छापर्यन्त क्लान्त दशा को प्राप्त हो गये हैं। इसलिए हे सखी इस समय तुम शीघ्र ही गमन करो।

इति सखी–वचनामृतपानज, प्रकटभावचयाचितविग्रहा।
अतिशयोत्सुकता–जड़ताकुला, द्रुतविलम्बितयानमति र्बभौ।।७७।। (गोवि० ८/३८)

काननाभिसरणोचितांशुका–कल्पवेश परिधापनोन्मुखीः।
सा सखीरपि विलम्बशंकया, क्षिप्यवेशमकृत स्वयं तनोः।।७८।। (कृ० भा० ८/३१)

अधात् काञ्चीं कण्ठे जघनभुविहारं चरणयोः, कृशांगी केयूरे भुजलतिकयोर्नूपूर युगम्।
किमंगैरन्योन्यं मधुमथन–संगोत्सवविधौ प्रसादो व्यातेने प्रणयपिशुनः स्वस्वविभवैः।।७९।।
(आ० ५/५६)

गोस्तनाख्य मणिहारवेष्टनै, र्द्राङ्नितम्बमकरोदलंकृतम्।
कण्ठमण्वधित किंकिणिं, स्रजं मूर्ध्नि वेणिशिखरे ललाटिकाम्।।८०।।
(कृ० भा० ८/३८)

लोचनेमृगमदद्रवाञ्जिते, भालमञ्जन–विशेषकार्चितम्।
हन्त ! यावक रसेन निर्ममे, स्थासकं तनुमनुदितत्वरा।।८१।। (कृ० भा० ८/३९)

नील मञ्जुल–निचोल संवृता माधुरीव निरगात् पुराद्बहिः।
कौमुदीव घनतां गता क्षितौ किं घनेन निहितात्मनोऽन्तरे।।८२।। (कृ० भा० ८/४०)

---

(७७) धनिष्ठा के इस प्रकार के वचनामृत को पान करके राधारानी के श्रीअंग में भाव समूह प्रकाशित होने लगे। और वे उत्सुकता जड़ता, व्याकुलता वशतः द्रुत साथ ही साथ (जड़ता के कारण) विलम्बित गति को प्राप्त करने लगी।

(७८) इसके पश्चात् वन में अभिसार के योग्य वसनभूषन पहराने के लिए प्रस्तुत सखियों की विलम्ब की आशंका से उपेक्षा करके स्वयं ही अपनी वेश रचना करने लगीं।

अभिसार वन शोभा दर्शन एवं राधारानी का उत्कट दिव्योन्माद–

(७९) कृशांगी श्रीराधा, कण्ठ में काञ्ची, कमर में हार चरण युगल में कुण्डल, भुजाओं में नुपूर धारण करने लगीं। मधुसूदन के मिलन रूपी उत्सव की भावना से राधारानी के सकल अंग मानों अपना सौभाग्य वैभव प्रकट करते हुए प्रसन्नता का विस्तार करने लगे।

(८०–८२) भ्रमवश उन्होंने गोस्तनाख्य मणिहार को किंकिणी जानकरअपने नितम्ब देश में पहन लिया और कण्ठ में किंकिणि धारण कर ली। वेणी के अग्रभाग में माथे का टीका, नेत्र में मृग मद और ललाट पर अञ्जन से तिलक की रचना करने लगीं, यावक के रस से देह को चित्रित करके शीघ्रता पूर्वक सुन्दर नील साड़ी पहनकर अपने भवन से मानों मूर्तिमती माधुरी की तरह निकल पड़ी, ऐसा लगता था मानों श्रीराधा रूपी ज्योत्सना को नीलाम्बर रूपी मेघ ने अपने अन्तर में छिपा लिया हो।

ततस्तदैवागत–कुन्दबल्ल्याः, स्वस्य प्रयानाय कृत त्वरायाः।
सा सव्यहस्तेन करं दधाना, परेन लीला कमलं चचाल।।८३।।

(गोवि० ८/३६)

पुरतस्तुलसी धनिष्ठया, सविशाखा ललिता च पार्श्वतः।
परितश्च सखिततिः परा, स्वसखीं तां परिवार्य सान्वयात्।।८४।।

(गोवि० ८/४०)

स्वसम–सहचरीभिः कृष्णराधाघ्रिंसेवो–पकरनवलिता र्भिदासिकाभ्यञ्च युक्ता।
अनुसरति युताभ्यां सूर्यपूजोपचारैः प्रणय सहचरी तां मंजरी रूपपूर्वा।८५।।

(गोवि० ८/४१)

आलीभिः सह पुरोपकानन–प्रान्तवर्त्म–निहितांघ्रिपल्लवा।
ह्रीक्षपा–क्षयवशादवगुण्ठनो, नुक्तमास्यकमलं दधे स्फुटम्।।८६।।

(कृ० भा० ८/४१)

ब्रजाद्विनिष्क्रम्य ददर्श सा पुरः, सुमंगलां स्त्रीं दधिपात्र धारनीम्।
चाषं, द्विजातिं, नकुलं मृगावलीं, धेनुं सवत्सां बृषभञ्च दक्षिणे।।८७।।

(गोवि० ८/४२)

---

(८३) इसी समय कुन्दलता जी आकर सूर्य पूजार्थ जाने के लिए जल्दी करने लगी तब श्रीराधा रानी अपने वाम हस्त से कुन्दलता जी का हाथ पकड़ कर और दाहिने हाथ से नीला कमल घुमाते–२ चलने लगी।

(८४) उनके आगे धनिष्ठा जी के साथ तुलसी दोनों ओर ललिता विशाखा एवं चारों ओर अन्य सखियाँ घेरकर श्रीकृष्ण मिलन के लिए चलने लगीं।

(८५) राधारानी की प्रिय सहचरी श्रीमती रूपमञ्जरी जी युगल सेवा के उपकरणों सहित एवं अपनी अन्य सखियों सहित राधारानी के पीछे–पीछे चलने लगी। उनके पीछे दो दासियाँ सूर्य पूजा के उपकरण लेकर चलने लगीं।

(८६) जब श्रीराधा रानी ने सखियों के साथ पुर से बाहर आकर समीपवर्ती उपवन में पर्दापण किया तो मानो लज्जा रूपी रात्रि के नाश हो जाने से उनका मुखकमल अवगुण्ठन से बाहर होकर खिल गया।

(८७) राधारानी ब्रज की सीमा का अतिक्रमण करके जैसे ही चली उनके सामने दधि का पात्र लिए हुए, सधवा स्त्री और दक्षिण दिशा में नीलकण्ठ पक्षी, ब्राह्मण, नकुल, मृगश्रेणी, सवत्सा धेनु और एक वृषभ को देखा।

सरसि विकचपद्मे वेष्टिते भृंग पंक्त्या मदिरयुगलमुद्यल्लास्यमालोक्य बाला।
प्रचलदलक पाली संगिरिंगत्सुनेत्र–स्वरमण–मुखबिम्बभ्रांतिभाक् स्तम्भितासीत्।।८८।।
(गोवि० ८/४३)

इतिशुभशकुनेक्षोद्भूतमुन्मंथरानां विविधकुटिलहास्योल्लासमातन्वतीनाम्।
प्रणय सहचरीनां श्रेणीभिः पूर्णपार्श्वा मदगजगुरुयाना काननाभ्यर्नमाप।।८९।।
(गोवि० ८/४४)

केलिविपिनं प्रविशति राधा प्रतिपद–समुदित–मनसिजबाधा, कलयति नयनं दिशिदिशि वलितम्।
पंकजमिवमृदुमारुत–चलितम्, विनिदधती मृदुमन्थर पादम्, रचयति कुञ्जरगतिमनवादम्।।९०।।
(ज० १/३१)

इयमथ तरुबल्लीवृन्दमुत्फुल्लयन्ती मदकल–कलकण्ठी काकली–कण्ठनादा।
मधुकर कलविंकी–झंकृतोच्छिञ्जितोर्मिर्वनमनु वनजाक्षी माधवश्रीर्विवेश।।९१।।
(गोवि० ८/४५)

---

(८८) इसके बाद उन्होंने सरोवर में प्रस्फुटित कमल के ऊपर भ्रमरों को तथा दो खञ्जन पक्षियों को देखा। इससे वह श्रीकृष्ण की अलकावलि एवं मुखारविन्द पर नेत्र द्वय की भ्रान्ति से स्तम्भित हो गयीं।

(८९) इस प्रकार शुभ लक्षणों के दर्शन से हर्षित एवं गर्वित होती हुई, नाना प्रकार से कुटिल हास्य से उल्लसित करती हुई प्रिय सहचरियों से युक्त होकर वे मदमत्त गजेन्द्र की तरह गमन करती हुई वन के समीप आ गयीं।

(९०) प्रतिक्षण श्रीकृष्ण मिलन की कामना से आक्रान्त हुई राधारानी मृदु पवन से हिलते हुए कमल की तरह चारों ओर दृष्टिपात करती हुई गजगामिनी राधारानी ने धीरे–२ चलती हुई केलि कानन में प्रवेश किया।

(९१) इस प्रकार कमल नयनी श्रीराधा मतवाली कोकिला की तरह धीरे–धीरे मधुर सूक्ष्म ध्वनि युक्त कण्ठ स्वर से एवं चटक– पक्षी की झंकार से भी सुन्दर अपने भूषणों से ध्वनि करती हुई तरुलता समूह को प्रफुल्लित करती हुई, बसन्त की तरह वन में प्रवेश किया।

फुल्लश्यामलतोज्जवलं–सुतिलकश्रीयुग् विशालार्जुन–प्रोत्फुल्लोच्च–हलिप्रियं शिखिदलश्रेणीभिराभूषितम्।
पुन्नागामलचम्पकालिकृतमालालंकृतम पल्लवै–र्दीव्यतकांचन विद्रुमादि–वलितम् तापिञ्छकान्त्युल्लसत्।।६२।।
(गोवि० ८/४६)

गुंजापुंजविराजितं श्रमहरच्छाया कदम्बाश्रयं वेणुध्वानमनोहरं प्रविलसश्रीपीतना–चर्चितम्।
स्फोटन्मन्मथ संकुलं वरवयः शोभाविलासास्पदं सापश्यत् पुरतोवनं वपुरिक प्रेष्ठस्य सर्वेष्टदम।।६३।।
(युग्मकम्) (गोवि० ८/४७)

पतति नयनमस्या यत्र यत्रात्र वस्तुन्यखिलमिदमघारेस्तत्तदंगायमानम्।
मदयदपि हृदन्तः शस्त्रतामेत्य सद्यः प्रहरति विषमेषोश्चित्रमेतच्च तच्च।।६४।।
(गोवि० ८/४८)

---

(६२) वन को श्रीकृष्ण के श्रीअंग की भांति शोभा विस्तार करते हुए देखकर कहने लगीं– यह वन प्रफुल्लित श्यामलताओं से उज्ज्वल है, श्रीकृष्ण का अंग भी श्रीश्याम एवं उज्ज्वल है। वन में तिलक पुष्प खिल रहे हैं, श्रीकृष्ण के ललाट पर तिलक शोभा पा रहा है। वन सुन्दर अर्जुन और खिले हुए केलि कदम्ब आदि वृक्षों से युक्त है, श्रीकृष्ण विशाल, अर्जुन आदि सखाओं से आनन्दित होकर बलरामजी के साथ विराज रहे हैं, वन मयूर श्रेणी से सुशोभित है। श्रीकृष्ण के शीश पर मोर पंखों का मुकुट सुशोभित है। वन पुन्नाग, आंवला और चम्पक आदि से सुशोभित है, श्रीकृष्ण भी पुन्नाग और चम्पक की माला से सुशोभित हैं। वन काञ्चन और विद्रुम के पल्लव युक्त वृक्षों से युक्त हैं और श्रीकृष्ण भी स्वर्ण, प्रवाल आदि मणियों के भूषणों से विभूषित हैं। वन श्याम, तमाल वृक्षों से शोभित है और श्रीकृष्ण की अंग कान्ति भी तमाल की तरह श्यामवर्ण शोभा पा रहा है।

(६३) वन में गुञ्जा समूह विराजित हैं और श्रीकृष्ण के गले में गुञ्जामाला सुशोभित है। वन में श्रम को हरने वाले छायायुक्त बहुत से कदम वृक्ष हैं और श्रीकृष्ण ने छाया युक्त कदम्ब के वृक्षों के तले आश्रय लिया है। वन, वेणु (बाँस) के शब्दों से मनोहर है और श्रीकृष्ण वेणु बजाते हुए शोभा पा रहे हैं। वन सुन्दर आम्रात्मक वृक्षों से पूर्ण है और श्रीकृष्ण का अंग कुंकुम से लिप्त है। वन खिले हुए मदन वृक्ष से व्याप्त है और श्रीकृष्ण मदनयुक्त चेष्टाओं से शोभित हैं वन उत्तम–उत्तम पक्षियों की शोभा और विलास से युक्त है और श्रीकृष्ण किशोरवय से युक्त शोभा विलास के आधार है इस प्रकार अपने सम्मुख वन को सर्वाभीष्ट प्रदानकारी श्रीकृष्ण का श्रीअंग मानती हुईं राधा रानी श्लेष वाक्यों से वन को श्रीकृष्ण अंगों के तुल्य मानने लगी।

(६४) इस प्रकार वन की जिस जिस वस्तु पर राधारानी की दृष्टि पड़ती है वह उनको श्रीकृष्ण के अंग के तुल्य ही मानने लगतीं हैं और वह वस्तु कन्दर्प के बाण की तरह उनके हृदय में प्रविष्ट होकर जर्जरित कर रही है।

वनस्य कान्त सादृश्यं पश्यन्तीम् विहस्तां तां वयस्याह–
हसन्ती वासन्ती वलित–मुकुलो वालवकुलो।
विशोकश्चाशोकः सुलभविचयश्चम्पकचयः। अनागः पुन्नागस्तवककमनः–
पश्यसुमनः कुटीरः पाटीर–श्वसन–सुरमिर्भाति सुरमिः।।६५।।

(चन्द्रो० ३/३६)

अथ कान्तस्य चरणचिन्हैरकिंतां वनस्थलीं पश्यन्तीं सा विशाखामाह–

(दा० ३४)

पदततिभिरलंकृतोज्जवलेयं ध्वज कुलिशांकुश–पंकजांकिताभिः।
नखरलुठितकुड्मला वनाली किमपि धिनोति धुनोति चान्तरं मे।।६६।।

(उ० १७/७२)

यूथेश्वरीभिः ससखीकुलाभिरन्विष्यमाणो वन–गह्वरेषु।
कथं न लभ्यो निपुणाभिरेताः प्राप्ताः कथं हास्यति वा सः लुब्धः।।६७।।

(गोवि० ८/५२)

---

(६५) वन शोभा की कान्ति को कान्त की तरह देखकर व्याकुलित राधारानी के प्रति सखीगण कहने लगीं– अहो सखी – वृन्दावन की अपूर्व शोभा को देखो ये माधवी लता प्रफुल्लित हो रही है, वकुल मुकुलित हो रहा है अशोक वृक्ष का तो मानो शोक ही दूर हो गया है (खिल गया है) चम्पक के वृक्ष पर पक्षी बैठे हुए हैं और सुन्दर पुनांग पर फूलों के गुच्छे लटक रहे हैं और यह पुष्प वाटिका तो मलय चन्दन के वृक्षों की पवन से चारों ओर सुरभित होकर विराज रहे हैं।

(६६) थोड़ा आगे चलकर प्राण प्रियतम के चरण चिह्नों से अंकित वन भूमि का दर्शन करने राधारानी विशाखाजी को कहने लगीं–

हे विशाखे ! ये वन श्रेणी श्रीकृष्ण के ध्वज, वज्र, अंकुश, कमल आदि चिह्नों से उज्ज्वल एवं अलंकृत एवं उनकी नख श्रेणी से लुण्ठित कलिकाओं से युक्त हुई मेरे अन्तःकरण में किसी अपूर्व आनन्दधारा को प्रवाहित कर रही है।

(६७) वन की सुन्दरता देखते–देखते वह सोचने लगीं, यह यूथेश्वरीगण अपनी–अपनी सखियों से युक्त होकर उनको घने वनों में खोज रही हैं। ये उनको क्यों न पा लेंगी ? और वह रसिक नागर ही इनको पाकर क्यों छोड़ने लगे।

इति निजहृदि राधा सन्दिहानापसव्ये वनमनु विलसन्तं कृष्णसारं मृगीभिः।
शिखिवरमपि सव्ये केकिनीभिः समीक्ष्य प्रियमृगशिखिबुद्ध्या भ्रान्तितः शंकितासीत्।।९८।।
(युग्मकम्) (गोवि० ८/५३)

तमालमष्टापद–बद्धमूलं, सा वेष्टितं फुल्लसुवर्णयूथ्या।
शाखाग्र नृत्यच्छिखिनम् समीक्ष्य, निर्णीतचेता विचिकित्सिताभूत्।।९९।।
(गोवि० ८/५४)

प्रेमेर्षाभुजगी–दष्टा नष्टापण्डा प्रचण्डधीः।
चण्डीश–चण्डकोदण्ड–भ्रूदण्डाह धनिष्ठकाम्।।१००।।
(गोवि० ८/५५)

किमिदमयि धनिष्ठे ! कुत्र किं लोकयाग्रे वनमिदमिह किन्तत् वन्यजातं न चान्यत्।
नटनमिदमपूर्वम् यच्छेठेन्दोः पुरस्तात् कलयसि नहि धूर्ते ! मुद्रिताक्षी किमासीः ?।१०१।।
(गोवि० ८/५६)

ललिताप्रभृतिरथावदत्, प्रियसख्योऽद्भुतमत्र शर्मदम्।
युगपन्नटनं शठेशयो, र्नटनट्योरनयोर्नुपश्यत।।१०२।। (गोवि० ८/५७)

(९८) इस प्रकार राधारानी अपने हृदय में अनेक प्रकार के संदेह करने लगी। उसी समय दाहिने से एक मृगीगणों के साथ विलास करता हुआ कृष्णसार मृग एवं बायीं ओर से मयूरीगणों के साथ विलास करते हुए मयूर को देखकर ये प्रियतम श्रीकृष्ण का मृग और मयूर हैं ऐसा मानकर भ्रान्तिपूर्वक शंका करने लगी।

(९९) तत्पश्चात् स्वर्ण से जिसका मूलदेश जटित है ऐसी प्रफुल्लित स्वर्णयूथीलता से लिपटे हुए तमाल वृक्ष को जिसकी शाखाओं के ऊपर मयूर नृत्य कर रहा है, देखकर सोचने लगीं। ऐसा प्रतीत होता है ये ही श्रीकृष्ण हैं। इस प्रकार की धारणा करके फिर संशययुक्त होकर खड़ी रह गयीं।

(१००) अहो ! उस समय प्रेम ईर्ष्या रूपी भुजंगी द्वारा दंशित होती हुई राधारानी अपनी उचित विवेचनायुक्त बुद्धि से रहित होकर, प्रचण्ड मूर्ति होकर, शिवधनु की तरह अपने भ्रूदण्ड को चढ़ाती हुई धनिष्ठा के प्रति कहने लगीं–

(१०१) अरी धनिष्ठे ये क्या ? धनिष्ठा कहने लगीं कहाँ क्या है ? श्रीराधा – सामने देखो! धनिष्ठा – ये सब वन की वस्तुएं है और कुछ नहीं हैं। श्रीराधा – सामने ये धूर्त शिरोमणि अपूर्व नृत्य कर रहे हैं। ये क्या तुम्हें नहीं दिखता? अरी धूर्ते तुमने क्या आंखे बन्द कर रखी हैं।

(१०२) इसके पश्चात् ललितादि सखियों से कहने लगीं, यहाँ पर उस शठराज नटवर का नटिनी से युक्त अद्भुत सुख प्रद नृत्य तो देखो।

युगपन्नटनं शठेशयो, र्नटनट्योरनयोर्नुपश्यत।।१०२।। (गोवि० ८/५७)
निजवांगमधुना विमोहिता, स्ववशीकृत्य भृशं धनिष्ठिका।
हरिना निज धार्ष्टय–नर्त्तने, विहितासौ वत कूटनर्त्तकी।।१०३
(गोवि० ८/५८)

रतहिण्डकहिण्डितासकौ, छलदूत्याभिध–नृत्यपण्डिता।
नयतीह विधातुमुत्सुका, शठनृत्ये भवतिः सभासदः।।१०४।।
(गोवि० ८/५६)

कलयत स सुरंगाख्योऽपि जात्या कुरंगः प्रणयसहचरीं स्वां रंगिनीम् वंचयित्वा।
विलसति हरिनीभिर्मां विलोक्याप्युमुञ्चन ननु हरि–शठतास्मिन् संगतः संससर्ज।१०५।।
(गोवि० ८/६०)

मत्संगिनीं प्रणयिनीं दयितां मयूरीं वीक्ष्यापि सम्मुखगतां वत केकिनीभिः।
निःशंकमुल्लसति ताण्डविकः कलापी संगेन धार्ष्ट्यमिह संक्रमितं बकारेः।।१०६।।
(गोवि० ८/६१)

अथावदत् स्मेरमुखी धनिष्ठा, त्वयैव सर्वा निजचित्रनृत्ये।
वयंकृताः साध्वी ! सभासदोऽस्मिन् प्रीताःस्मदृष्ट्वा यददृष्टपूर्वम्।।१०७।।

---

(१०३) अरी सखियों अपने वचन रूप मधु द्वारा इस धनिष्ठा को मोहित करके और अपने वशीभूत करके श्रीकृष्ण ने अपनी धृष्टता रूप कूट नृत्य में इसको भी अपने साथ नर्तकी बना लिया है।

(१०४) हे सखीगणों ! रति साधन कुशल श्रीकृष्ण के द्वारा भेजी हुई यह धनिष्ठा छलदूती नामक नृत्य के विषय में अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त कर चुकी है।

(१०५) ये देखो ! "सुरंग" नामक हरिण शठता का आचरण करता हुआ अपनी प्रिय सहचरी 'रंगणी' को छोड़कर हम सबको देखकर भी दूसरी हरणियों के साथ क्रीड़ा कर रहा है निश्चय ही कृष्ण के संग से ही इस हरिण में भी हरि की शठता प्रवेश कर गयी है।

(१०६) हे सखीगन देखो यह तांडविक नामक मयूर मेरे संग रहने वाले सामने खड़ी हुई अपनी प्रिय मयूरी को छोड़कर निशंक होकर अन्याय मयूरीगणों के साथ क्रीड़ा कर रहा है। आश्चर्य की बात है ! बकारि श्रीकृष्ण के संग दोष से इसमें ये धृष्ठता आ गयी है।

(१०७) तब धनिष्ठा हंसती हुई राधारानी को कहने लगीं– हे साध्वी! तुमने ही इस आश्चर्यजनक नृत्य से हमें दर्शक बना लिया है। चलो जो भी हो हम सब इस अपूर्व नृत्य कुशलता को देखकर बहुत प्रसन्न हुई हैं।

(गोवि० ८/६२)

आगच्छताल्योऽद्भुततु नृत्यमेत, कृष्णाय तूर्णम् विनिवेदयामः।
स्निह्यत्यमुष्यां स यथा विलासी, गुणिन्यलं रज्यति यज्गुणज्ञः।।१०८।।

(गोवि० ८/६४)

दुर्लभे सुलभे वार्थे यत्रासक्तिस्तु रागजा।
तत्र नित्यरागभाजां प्रत्युहाशंकिनी मतिः।।१०६।।

(गोवि० ८/६३)

अथ सा स्मितसंवृताननं स्वसखी वृन्दमवेक्ष्य विस्मिता।
पुनरप्यवलोकनाल्लता–तरुसंगं त्ववधार्य लज्जिता।।११०।।

(गोवि० ८/६५)

इत्थं माधवसंगरंग विकसद्वृन्दावनालोकनात् तां कृष्णाद्भुत–माधुरीवर सुधापानातितृष्णाकुलाम्।
प्रेमोन्माद विघूर्णितान्तरतया नानाभ्रमव्याकुलां तत्कृष्णाप्ति समुत्सुका विजहसुः सख्यश्चलन्त्यो द्रुतम्।।१११।।

(गोवि० ८/६६)

मदनरण–वाटिकाख्य–प्रियकेलिकुसुमवनस्य मध्ये सा।
कुंजस्थित–रविमूर्त्तेः, सविधं समुपस्थिताकस्मात्।।११२।।

---

(१०८) अब धनिष्ठा सखियों के प्रति कहने लगीं– चलो सखियों आओ हम सब राधारानी के इस अद्भुत नृत्य को शीघ्रता पूर्वक जाकर श्रीकृष्ण के प्रति निवेदन करें। वह जिस प्रकार के विलासी नागर हैं, इस प्रकार की राधा रानी की चेष्टा सुनकर वे इनके प्रति अतिशय प्रसन्न होंगे क्योंकि गुणज्ञ व्यक्ति ही गुणीजनों को आदर करते हैं।

(१०६) जिस वस्तु में अनुराग होता है वह चाहे सुलभ हो या दुर्लभ, अनुरागीजन उसकी प्राप्ति में विघ्नों की संभावना करते हुए सदा शंकायुक्त होते रहते हैं।

(११०) यह सब सुनकर और सब सखियों को हंसता हुआ देखकर राधारानी विस्मित होतीं हुई पुनः उस दिशा का निरीक्षण करने लगीं। वे देखती हैं– कि लता ही तरु से लिपटी हुई हैं– इस प्रकार देखकर वे लज्जिता हो गयी।

(१११) तब सखियों ने राधारानी को श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित देखकर एवं माधव के (बसन्त) संग से उत्फुल्लित वृन्दावन के दर्शन से श्रीकृष्ण की अद्भुत माधुर्य रूप उत्तम सुधापान के लिए अत्यन्त तृषित एवं प्रेम के उन्माद से मथित अन्तःकरण वाली नाना भ्रम एवं आशंकाओं से युक्त द्रुत गति से चलते देखकर परिहास करने लगीं।

(११२) तत्पश्चात् राधारानी प्रियतम की "मदन रण वाटिका" नामक केलि कुसुम वन के मध्य में स्थित सूर्य की प्रतिमा के पास सहसा उपस्थित हो गयीं।

प्रणम्यं तां भक्तिभरेण तन्वी, बद्धाञ्जली र्वल्गुवरं ययाचे।
निर्विघ्न–गोविन्दपदारविन्द–संगोऽस्तु मे देव ! भवत् प्रसादात्।।११३।।

(गोवि० ८/६८)

प्रतिमा–फुल्लदृग्वक्त्र–प्रसादोत्फुल्लमानसा।
पुनस्तां प्रणिपत्येयं सखीभिः सह निर्गता।।११४।।

(गोवि० ८/६९)

श्रीसूर्यपूजासम्भार–सहिते परिचारिके।
स्थिते तत्रैव तद्वाटीदेवीर्भिललिताज्ञया।।११५।।

(गोवि० ८/७०)

दिशि दिशि विसरन्तीं श्रीमदंगान्मुरारेर्मृगमद–परिलिप्तेन्दिवरानामिवोच्चैः।
पथि परिमलधारां प्राप्य राधोन्मदिष्णुः सपदि तमनु भृंगीवोत्पतिष्णुस्तदासीत्।।११६।।

(गोवि० ८/७१)

कान्तांगगन्धं प्राप्योल्लासेन साह
मिलति परिमलश्रीः कस्य रोमश्रियासौ मम तनु–लतिकायां कुर्वती कुट्मलानि।
सखि ! विदितमिहाग्रे माधवः प्रादुरासीद् भुवि सुरभितया यः ख्यातिमंगी करोति।।११७।।

(उ० १०/६८)

(११३) तब उन्होंने भक्ति युक्त होकर सूर्य प्रतिमा को प्रणाम किया और अञ्जलिबद्ध होकर उनसे सुन्दर वर की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने लगीं– हे देव तुम्हारी कृपा से मुझे श्रीकृष्ण के चरण युगलों का निर्विघ्न संग लाभ हो।

(११४) तब राधारानी ने प्रतिमा के नेत्र और वदन प्रफुल्लित देखकर उनको प्रसन्न जानकर प्रणाम किया और सखी गणों के साथ उस कुञ्ज से बाहर आ गयीं।

(११५) तब श्रीललिताजी के आदेश से दो दासियों को वनदेवियों के साथ सूर्यपूजा के उपकरणों सहित उस वाटिका में रख दिया।

(११६) चारों ओर से आती हुई मृगमदयुक्त नील कमल जैसी श्रीकृष्ण की अति उत्कृष्ट श्रीअंग की गन्ध को प्राप्त करके राधारानी अत्यन्त उन्मत्त हो गयीं और भ्रमरी की तरह श्रीकृष्ण की ओर उड़कर जाने की इच्छा करने लगीं।

(११७) श्रीराधा श्रीकृष्ण अंग गन्ध को पाकर उल्लास सहित ललिताजी को कहने लगीं– हे सखी इस घोर वन में किसके अंग की सुगन्धि मेरे शरीर को स्पर्श करके मुझे रोमाञ्चित कर रही है ? वहाँ मालूम पड़ता है इस वन में निश्चय ही माधव आ गये हैं क्योंकि त्रिभुवन में उनसे अधिक और कौन महा सौरभशाली विख्यात है।

किंवा तपः कृतमहो ननु गन्धवाह भ्रातस्त्वया क्व वसता वरतीर्थ राजे।
यद्गोकुलेन्दुपदयोः सततं सुखेन स्पर्शं निजांगनिकरैः कुरुषे मनोज्ञैः।।११८।।

कृष्णः कान्तातनु–सुरधुनी–सौरभाच्छामृतोर्मीधारामाराद् विपिन वलयं प्लावयन्ती मकस्मात्।
काश्मीराक्ताम्बुज–परिमलोल्लंघिनीं घ्रानपूर्णा–माघ्रायासीत्पुलक–जटिलो भृंगवत्प्रोत्पतिष्णुः।।११९।।
(गोवि० ८/७२)

परिमल–मिलितान्मिलितां, वनमनु दयितां दवीयसीं मत्वा।
हरिना प्रहिता वृन्दा, तामानेतुं समुत्सुकेन।।१२०।।
(गोवि० ८/७३)

पथि ब्रजन्त्या वृन्दाया मानसिवचारोऽयम्–राधाया मुखमण्डलेन वलिना
चन्द्रस्य पद्मस्य च व्याक्षिप्ता सुषमेति केयमबुधैः श्लाघा विनिर्मीयते।।
यददूरेऽप्यनुभूय भूयसि सुधाशुद्धापि चन्द्रावली–पद्माली च
विसृज्य शीर्यति निजां सौन्दर्यदर्पश्रियम्।।१२१।।
(दा० १२)

---

(११८) अरे भाई पवन तुमने किस उत्तम तीर्थराज में रहकर तप किया है जिससे तुम निरन्तर अपने सुन्दर अंगों से गोकुल चन्द्र का सुख स्पर्श प्राप्त कर रहे हो।

श्रीराधारानी की अंग गन्ध से श्रीकृष्ण की उत्कण्ठा एवं वृन्दाजी को उन्हें लाने के लिए भेजना–

(११९) समीपवर्ती वन भूमि के केशर युक्त कमल को तिरस्कृत करने वाली श्रीराधारानी के श्रीअंग रूपी गंगा की अमृतमय निर्मल तरंग के समान सुगन्धित वायु को प्राप्त करके श्रीकृष्ण पुलकित होते हुए भ्रमर की तरह उड़कर उसको प्राप्त करने की इच्छा करने लगे।

(१२०) श्रीराधा के अंग परिमल से आमोदित होते हुए श्रीकृष्ण ने उनको "अभी दूर है" ऐसा समझकर उन्हें लाने के लिए उत्कण्ठित होते हुए वृन्दाजी को भेजा।

(१२१) पथ में जाती हुई वृन्दाजी विचार करने लगी कि राधारानी का मुखारविन्द कमल और चन्द्र से भी अधिक सुन्दर है मूर्ख लोग ही उनकी चन्द्र और पद्म से तुलना करते हैं। श्रीराधामुख का दूर से ही देखकर सुधा पूर्ण चन्द्र श्रेणी एवं कमलों की श्रेणी अपने सुन्दरता के दर्प को त्याग करती हुई विशीर्ण (खण्डित) हो जाती है।

कुंजेनराख्यमथकुंजनृपस्य धाम प्राप्ता ददर्श मिलितां स्वगति–प्रवृत्यैः।
राधोत्सुकेन हरिना प्रहितां हि वृन्दां स्वाभीष्टसिद्धिमिव मूर्तिमतीं पुरः सा।१२२।।
(गोवि० ८/७४)

कृष्णोत्तंसचरं तस्यै वृन्दापीन्दीवरद्वयम्।
तदंगसंगगन्धान्धीकृत पुष्पन्धयं ददौ।।१२३।।

(गोवि० ८/७५)

तत्स्पर्श–सौरभ्यमवाप्य कृष्णो, पस्पर्श–गन्धानुभवेन मत्ता।
समुद्भवद्भाव–पिधानयत्ता, सम्वादमुत्काशु तया व्यधत्त।।१२४।।

कस्माद्वृन्दे? प्रिय सखि! हरेः पादमूलात्, कुतोऽसौ? कुण्डारण्ये, किमिह कुरुते? नृत्यशिक्षां, गुरुः कः?
तं त्वन्मूर्त्तिः प्रतितरुलतं दिग् विदिक्षु स्फुरन्ती शैलूषीव भ्रमति परितो नर्त्तयन्ती स्वपश्चात्।।१२५।।
(गोवि० ८/७७)

---

(१२२) इसके पश्चात् निकुञ्जराज श्रीकृष्ण के कुंजरा नामक स्थान पर आकर राधारानी ने सामने से आती हुई वृन्दाजी को देखकर विचार किया– "श्रीकृष्ण ने ही उत्सुकता से मेरे आगमन की वार्ता जानने के लिए इनको भेजा है" इस प्रकार वे वृन्दाजी को अपनी मूर्तिमती अभीष्ट सिद्धि के तुल्य देखने लगीं।

(१२३) श्रीकृष्ण के अंग संग की गन्ध से जो भ्रमरों को भी अन्धा कर रहे हैं। ऐसे श्रीकृष्ण के कानों के भूषण दो नीलकमल वृन्दाजी ने राधारानी के कर कमलों में प्रदान किये।

(१२४) उन दो नीलकमलों के स्पर्श और सुगन्ध को प्राप्त करके मानों श्रीकृष्ण के अंग की गन्ध और स्पर्श का अनुभव करती हुई राधारानी अत्यन्त उन्मत्त हो गयीं उनके श्रीअंग में भाव विकार उत्पन्न होने लगे फिर भी उनको इस प्रकार करने का प्रयत्न करती हुई वे वृन्दा के साथ कथोपकथन करने लगीं।

(१२५) श्रीराधा–वृन्दे तुम कहाँ से आयी हो ? वृन्दा–श्रीकृष्ण के चरणों के समीप से श्रीराधा– वे कहाँ हैं ? वृन्दा– तुम्हारे कुण्ड के समीप वन में ! श्रीराधा – क्या कर रहे हैं ? वृन्दा– नृत्य सीख रहे हैं। श्रीराधा– नृत्य शिक्षा के गुरु कौन हैं ? वृन्दा तुम्हारी मूर्ति। प्रति तरुलता में चारों ओर स्फूर्ति प्राप्त कराती हुई उनको मानों नृत्य सिखा रही है और वे उसके पीछे–पीछे भ्रमण कर रहे हैं।

मृषाभाषिणि ! एवं मा वदेति राधा वाक्यानन्तरं वृन्दाह–
वैदग्धी–निकुरमब चुम्बितधियः सौन्दर्य सारोज्ज्वलाः।
कामिन्य कति नाद्य बल्लवपतेर्दीव्यन्ति गोष्ठान्तरे।
राधे ! पुण्यवती शिखामणि रसि क्षामोदरि !
त्वां बिना पेघन्ती न परासु षन्मुररिपोर्दृष्टात्र दृष्टिर्मया।।१२६।।

(उ० नायक १/२७)

तद्वार्तया नः किमिहास्त्यरिष्ट कुण्डोत्थ पातालज–गांगवारि।
स्नात्वा यथार्याचरणानुशासनं, मित्रं समर्भ्यच्चय गृहं प्रयामः।।१२७।।

(गोवि० ८/८०)

क्व यानं ते वृन्दे ? तव चरण–राजीव–सविधे किमर्थं ? ते राज्याद्भुत–भविक विज्ञापनकृते।
वदैतत् किं ? श्रीमाधव–सुविभवालंकृतमिदं मुहुर्वृन्दारण्यं लषति भवदालोकन–कृपाम्।।१२८।।

(गोवि० ८/८१)

अथावदत् कुन्दलता प्रगलभा, विमुञ्च वृन्दे ! निजकूटदूत्यम्।
मय्यर्पिता सूर्य समर्चनार्थं निजार्यया कृष्ण सुशंकयेयम्।।१२६।। (गोवि० ८/८२)

---

(१२६) श्रीराधा– अरी मिथ्यावादिनी ऐसी बात मत कहो वृन्दा– हे राधे ! जिनकी बुद्धि अत्यन्त रसिक है और जो सुन्दरता से परम उज्ज्वल हैं ऐसी कितने ही शत्–शत् रमणियाँ गोपराज नन्द बाबा के गोकुल में क्रीड़ा कर रही हैं। किन्तु हे कृशोदरी तुम ही उन समस्त गोपांगनाओं में सबसे अधिक पुण्यवती और शिरोमणि हों, मैं स्वयं देखकर ही कह रही हूँ कि तुम्हारे विरह में मुरारी की दृष्टि अन्य किसी नारी की ओर नहीं जाती है।

(१२७) तब श्रीराधा अपने अभिप्राय को अप्रकट करके कहने लगीं – वृन्दे, इन सब बातों से हमें कोई प्रयोजन नहीं है। हम तो अपनी सास जटिला की आज्ञा से श्याम कुण्ड की पाताल गंगा के जल में स्नान करके अपनी मित्र (सूर्य) पूजा करके घर को लौट जायेंगी।

(१२८) फिर श्रीराधारानी पूछने लगीं– वृन्दे ! तुम कहाँ जा रही हो ? वृन्दा – आप के चरण कमलों के पास श्रीराधा– किसलिए ? वृन्दा – आप के राज्य की अद्भुत सूचना देने के लिए ! श्रीराधा वह किस प्रकार ? वृन्दा– श्रीमाधव (कृष्ण बसन्त) रूपी सम्पत्ति को प्राप्त करके वह वृन्दावन अलंकृत होता हुआ आपके अवलोकन रूपी कृपा की अभिलाषा करता है।

कुन्दलता, वृन्दा और राधारानी का वार्तालाप और श्रीकृष्ण की प्रबल उत्कण्ठा ज्ञात कराना

(१२६) इसके पश्चात् सुचतुरा कुन्दलता जी ने वृन्दा जी को कहा– वृन्दे ! तुम अपना कपटदूतीपना त्याग करो इनकी सास जटिला श्रीकृष्ण से बहुत आशंकित रहती हैं इसीलिए उन्होंने इन्हें सूर्यपूजा के लिए इन्हें मेरे हाथों सौंपा है।

पातालगंगाजलजेऽरिष्टमर्दिसरस्यमुम्।
संस्नाप्य निभृतं नेष्ये पूजायै सूर्यवेदिकाम्।।१३०।।

(गोवि० ८/८३)

न यामस्तत्र चेत् कृष्णो मनोगंगामयामहे।
कृष्णगन्धि दिश्यसौ यन्न नेया जटिलाज्ञया।।१३१।।

(गोवि० ८/८४)

वृन्दाब्रवीत् कुन्दलते किमर्थं हरेर्भिया हिण्डसि चित्तगंगाम्?
उपायमेकं श्रृणु येन तत्र गता अपि द्रक्ष्यति वः स नैव।।१३२।।

(गोवि० ८/८५)

कृष्णः कान्ता सरसि मदनोद्घूर्णितात्मास्ति कुञ्जे यूयं वासन्तिक–वनपथा पूर्वतः सुष्ठु गत्वा।
तीर्थे पादाम्बुज–रसमयेऽरिष्टहन्तुः प्रशस्ते स्नात्वा कामं ब्रजत निभृतं साध्वि! केनाप्यदृष्टाः।।१३३।।

(गोवि० ८/८६)

अवदल्ललिता कुन्दलते ! किं निजदेवरात्।
हरेर्विभेषि मुग्धेव प्रगल्भाप्यप्रगलभतः।।१३४।।

(गोवि० ८/८७)

---

(१३०) इसलिए मैं इनको श्याम कुण्ड में स्थित पाताल गंगा के जल में स्नान कराकर इन्हें चुपचाप सूर्यपूजा कराने के लिए सूर्य मन्दिर ले जाऊँगी।

(१३१) हे वृन्दे ! यदि श्रीकृष्ण श्याम–कुण्ड पर बैठे हों तो मैं इन्हें उधर न ले जाकर मानसी गंगा की ओर ले जाऊँ, क्योंकि जटिला की आज्ञानुसार "जिस ओर श्रीकृष्ण की गन्ध भी हो उधर इनको नहीं ले जाना" हमें कार्य करना है।

(१३२) तब वृन्दा जी ने कहा– श्रीकृष्ण के भय से मानसी गंगा की ओर क्यों जाती हो? जिस प्रकार श्रीकृष्ण तुमको न देख पायें उसका उपाय मुझसे सुनो।

(१३३) हे साध्वी ! इस समय श्रीकृष्ण मदनपीड़ा से मथितचित्त होकर श्रीराधा कुण्ड के तीर वर्ती कुञ्ज में विराजमान हैं, तुम सब पूर्व दिशा की ओर से बसन्त वन के पथ से स्वच्छन्दता पूर्वक जाकर वृष का मर्दन करने वाले श्रीकृष्ण के चरण कमलों के रसमय तीर्थ (श्रीकृष्ण–मिलन अथवा श्यामकुण्ड में स्नान) में स्नान करके जहाँ इच्छा हो गमन करो कोई तुमको नहीं देख पायेगा।

(१३४) यह सुनकर ललिताजी ने कहा– कुन्दलते तुम इतनी चतुर होकर भी अपने भोले से देवर का इतना भय क्यों करती हो ? तुम भी बहुत भोली हो।

यामः स्वकुण्डं पश्यामो माधवीयां श्रियं वने।
स्नात्वा पुनः समेष्यामः किं नः कृष्णः करिष्यति?।।१३५।।

(गोवि० ८/८८)

स्त्रीणां स्वैरं क्रीड़नस्थानतो नः पुंभिर्दृष्टुं स्थातुमप्यत्ययोग्यात्।
तूर्णं वृन्दे ! याहि निःसारयामूं गोपातुर्वा तत्र किं कार्यमस्य।।१३६।।

(गोवि० ८/८६)

अहमतिमृद्वी हरिरतिचन्दः सुकरः कथमिह वर्जनदण्डः।
अपसार्यस्ते सखि ! स शिखण्डी यदसि प्रखरा गुरुरतिचण्डी।।१३७।।

(गोवि० ८/६०)

कुन्दबल्ल्याह वृन्दे ! त्वं भ्रान्ता चण्डानया कथम्।
निष्कास्योऽसौ पशुपतिर्व्याप्यमर्धागमस्य तु ?।।१३८।।

(गोवि० ८/६१)

वृन्दाहाप्तसुभद्रश्रीः कुन्दबल्ल्येव दृश्यते।
मधुसूदन–सम्भोग्या पुन्नागांगाश्रयोन्मुखी।।१३६।। (गोवि० ८/६२)

(१३५) श्रीराधा कहने लगी – सखी ! हमारा कुण्ड है हम जायेंगीं वन में माधव (बसन्त अथवा कृष्ण) के दर्शन करके स्नान करके पुनः आ जायेंगी। कृष्ण हमारा क्या कर लेंगे ?

(१३६) वृन्दे तुम शीघ्र जाओ हम नारी जाति हैं हमारे स्वच्छन्द क्रीड़ास्थान (राधाकुण्ड) से उनको बाहर कर दो क्योंकि यह स्थान पुरुषों के दर्शन और रहने के योग्य नहीं है उन गौएं चराने वाले का वहाँ क्या प्रयोजन है ?

(१३७) तब वृन्दाजी कहने लगीं– राधे मैं तो अत्यन्त मृदु स्वभाव वाली हूँ और श्रीकृष्ण बहुत प्रचण्ड हैं, इसलिए मैं उनको कैसे स्थान त्याग रूपी दण्ड दे सकती हूँ ? हे सखी ! तुम तो प्रखर स्वभाव वाली एवं अति प्रचण्ड हो अतः उन मयूरपिच्छधारी को वहाँ से बाहर करना तुम्हारा ही कर्तव्य है।

(१३८) कुन्दलताजी कहने लगीं– वृन्दे ! तुमने गलत समझा है क्योंकि चण्डी (राधा) किस प्रकार पशुपति (कृष्ण) को निकाल सकती हैं ? क्योंकि चण्डी तो पशुपति के अर्धांग में विराजमान हैं।

(१३६) इस बात को सुनकर वृन्दाजी श्लेष वाक्य में कहने लगीं– अरी सखियों यह सुभद्रश्री (सुन्दर रूप वाली) कुन्दलता को ही तो देखो यह मधुसूदन (भ्रमर दूसरे पक्ष में कृष्ण) की सम्भोग्या होकर पुन्नाग (वृक्ष दूसरे पक्ष में पुरुषोत्तम कृष्ण) का आश्रय करने की अभिलाषा करती है।

स्मेरासु सर्वास्ववदद्विलोक्य, श्रीराधिकामुत्कलिकान्वितां सा।
तां भावगाम्भीर्यसुमन्थरांगीं, कृष्णस्य तृष्णां विनिवेदयन्ती।।१४०।।

(गोवि० ८/६३)

मत्प्रश्नमेकं ललिते ! वद द्रुतं कादम्बिनीं वीक्ष्य दिगन्त उद्गताम्।
पिपासया मुह्यति चातकेश्वरे समीरणाल्याः करणीयमाशु किम् ?।१४१।।

(गोवि० ८/६४)

दिशि दिशि निशि चाह्निः प्रस्फुरन्ति प्रचण्डा अविरत गतिकाली–प्रेर्य्यमानाः पुरोऽमुम्।
नवनवरस पूरैः कालिकाः सेचयन्त्यो न भवति परमेकापेक्षणीयास्य सैव।।१४२।।

(गोवि० ८/६५)

स चेत्तदकनिष्ठः स्यात् सापि तां त्वरितं तदा।
समानाय्य पुरोऽस्यामुं पाययेदमृतं मुदा।।१४३।।

(गोवि० ८/६६)

नीरसा अपि ताः शश्वदाशुगाली–विचालिताः
चपला कालिकाः क्वापि भवन्त्येता न तन्मुदे।।१४४।।

(गोवि० ८/६७)

---

(१४०) इस वाक्य को सुनकर सभी सखियाँ हँसने लगी। वृन्दाजी ने राधारानी की उत्कण्ठा देखकर और भाव की गम्भीरता से उनके अंगों को शिथिल होता हुआ देखकर उनके प्रति श्रीकृष्ण की तृष्णा का निवेदन करने लगी।

(१४१) हे ललिते ! मेरे एक प्रश्न का उत्तर शीघ्रता से बताओ चातकेश्वर (श्रीकृष्ण) आकाश में उदित हुई मेघमाला (श्रीराधा) को देखकर पिपासा से व्याकुल हो रहा है। ऐसे समय वायुरुपा का (सखीगणों का) क्या करना उचित है ? ऐसे समय जो करना उचित हो वही करो।

(१४२) सखीगण कहने लगीं– वृन्दे उस समय वायु श्रेणी को अर्द्ध रात्रि हो अथवा दिवस हो, मेघ मालाओं को प्रेरित करके सामने स्थित चातकेश्वर को नव–नव रसों से सिंचन करना चाहिए क्योंकि उस चातक की मेघमाला के बिना और कोई गति नहीं है।

(१४३) यह सुनकर वृन्दा जी कहने लगीं– हे सखीगण – वह चातक केवल मेघमाला में ही निष्ठा रखता है इसलिए वायुश्रेणी को शीघ्रता पूर्वक मेघमाला को लाकर उसे अमृत–पान कराना चाहिए।

(१४४) हे सखीगण यदि वह चंचल मेघमाला नीरस भी हो और यदि पवन श्रेणी द्वारा पुनः–पुनः विचलित हो जाती हो तब भी वह चातक को सुख ही देती है।

तद् यात यूयं स्वच्छन्दं स्नात्वारिष्टारितीर्थके।
कुरुताल्यो मित्रपूजां तिष्ठाम्त्रास्ति मे कृतिः।।१४५।।

(गोवि० ८/९८)

यातासु तासु लघु सूक्ष्मधियं शुभाञ्च सा शारिके सुचतुरा न्यदिशत् प्रवृत्यै।
आद्यां ब्रजाय सुजवामभिमन्युमातुश्चन्द्रावलेरथ परां गिरिजालयाय।।१४६।।

(गोवि० ८/९९)

सेवासम्भार–संस्कारागारमागत्य वीक्ष्य तान्।
सम्भारान् प्रशंशसोच्चैः सा मुदा तत्कृतो जनान्।।१४७।।

(गोवि० ८/१००)

बसन्तकेलि–हिन्दोललीला–माध्वीकपानयोः।
वनरत्यम्बुकेलीनां मिथोवेशकृते तयोः।।१४८।।

(गोवि० ८/१०१)

वन्याशन–स्वापयोश्च शुकपाठाक्षलीलयोः।
तत्तद्स्थानेषु सा तत्तद्सामग्रीस्तैरयोजयत्।।१४९।।

(गोवि० ८/१०२)

---

(१४५) अतएव हे सखीगण तुम सब स्वच्छन्दता पूर्वक कृष्ण–कुण्ड के पावन घाट में जाकर स्नान करो और मित्र (सूर्य एवं कृष्ण) की पूजा करो मुझे कुछ कार्य है इसलिए मैं यहाँ कुछ क्षण ठहरूँगी।

(१४६) सखीगनों के वहाँ से चले जाने पर सुचतुरा वृन्दा जी ने शीघ्रगामिनी दो सारिकाओं को नियुक्त किया– इनमें सूक्ष्म बुद्धि सारिका को ब्रज से जटिला का समाचार लाने के लिए शुभा सारिका को चन्द्रावली का समाचार जानने के लिए गौरीतीर्थ में भेज दिया।

(१४७) इसके पश्चात् उन्होंने सेवा के उपकरणों की साज–सज्जा गृह में आकर युगल–किशोर की सेवा के उपयोगी समस्त वस्तुओं को देखकर आनन्दित होकर उनको प्रस्तुत करने वाली वन देवियों की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

(१४८–४९) इसके पश्चात् वृन्दा जी परिचारिकाओं द्वारा युगल किशोर की बसन्त केलि, झूलन लीला, मधुपान, वनविहार, रति केलि एवं जल–विहार, परस्पर के श्रृंगार एवं द्रव्यादि, वनभोजन, शयन, शुक सारिका रूप–गुण वर्णन, पासा क्रीड़ा आदि विविध लीलाओं की सामग्री को यथा स्थान सजाकर रखने लगीं।

तत्तलीलापरिकरान् सर्वान् स्थावरजंगमान्।
नन्दितांस्तरितांश्चक्रे तयोरागति वार्तया।।१५०।।

(गोवि० ८/१०३)

तयोर्मिथो दर्शनलब्धि–राका, समुच्छलद्भावचयामृताब्धौ।
सा संप्लवेच्छात्वरितान्तरासीत्, स्थिता हरेः सन्निधिकुंजलीना।।१५१।।

(गोवि० ८/१०४)

तावन्नान्दीमुखी तासां पश्चादागत्य सोत्सुका।
तयोर्लीलावलोकाया स्थिता सा वृन्दया सह।।१५२।।

(गोवि० ८/१०५)

कृष्णोऽप्या राद्वकुलविटपिश्रेणीयुग्मान्तराध्वन्यागच्छन्ती प्रिय सहचरी वेष्टितां बल्लभां ताम्।
दृष्टवा साक्षादुदित मदनोऽपि प्रतीयाय नायं स्फूर्त्या तस्या तदभिगमने यन्मुहुर्वञ्चितोऽस्ति।।१५३।।

(गोवि० ८/१०६)

कान्तापि कान्तमवलोक्य चमत्कृतात्मा तं भूरिभाव विवशा न हि निश्चिकाय।
यत्प्राक् तमालमनु तद्भ्रमतः प्रलापादालीकुलस्य हसितैरतिलज्जितासीत्।।१५४।।

(गोवि० ८/१०७)

---

(१५०) इसके पश्चात् वृन्दा जी राधा–कृष्ण के आगमन की सूचना जानकर समस्त लीला परिकर, स्थावर–जंगम आदि को आनन्दपूर्वक एवं शीघ्रता पूर्वक नियुक्त करने लगीं।

(१५१) इसके पश्चात् युगल किशोर के परस्पर दर्शन रूपी पूर्ण चन्द्र के उदय होने से जिस प्रकार दोनों की भाव समूह रूपी सुधा सागर की तरंगे उच्छलित होंगी उनका दर्शन करने की इच्छा से शीघ्रता पूर्वक वह श्रीकृष्ण के निकट ही एक कुञ्ज में छिप गयीं।

(१५२) इस समय नान्दीमुखी भी उनके दर्शन करने की इच्छा से उत्सुक होकर पीछे–पीछे आकर वृन्दाजी के साथ कुञ्ज में स्थित हो गयी।

दूर से युगल के परस्पर दर्शन जनित आनन्दोन्मत्तता

(१५३) इसके पश्चात् बकुल श्रेणी के बीच में मध्यपथ में सखियों के यूथ के साथ प्राण प्रियतमा को साक्षात् आते हुए देखकर प्रेम का वेग उदय होने से श्यामसुन्दर यह निश्चय नहीं कर सके कि यह प्रिया है या मेरी बुद्धि का भ्रम है क्योंकि इस प्रकार बहुत बार वे वंचित हो चुके थे।

(१५४) इधर श्रीराधा भी श्रीकृष्ण का दर्शन करके विविध भाव–विकारों से विवश होती हुई "ये श्रीकृष्ण हैं" इस प्रकार निश्चय नहीं कर सकीं क्योंकि इससे पहले भी श्रीकृष्ण के भ्रम से तमाल वृक्ष को कृष्ण मानती हुई अनेक प्रकार के प्रलाप करने लगीं थी, जिसे सुनकर सखियों के परिहास से उनको अतिशय लज्जा का अनुभव हुआ था।

मिथस्तत्तद्गुणानन्त्यानुभवाक्रान्तमानसौ।
दर्शनानन्द–मत्तौ तौ सवितर्कम् तदोचतुः।।१५५।।

(गोवि० ८/१०८)

किं कान्तेः कुलदेवता? किमुत वा तारुण्यलक्ष्मीरियं? सम्पद वा किं माधुरी तनुमती? लावण्यवन्या नु किम?
किंवानन्द–तरंगिनि ? किमथवा पीयूषधारास्रुति कान्तासावुत वा ममेन्द्रियगणानाह्लादयन्त्यागता।।१५६।।

(गोवि० ८/१०६)

उत्कीर्णा किमुचारुकारुपतिना कामेन किं चित्रिता प्रेमणा चित्रकरेण किं लवणिमत्वष्ट्रैव कुन्दे धृता!
सौन्दर्याम्बुधि–मन्थनात् किमुदिता माधुर्यलक्ष्मीरियं वैचिन्त्यं जनयत्यहो अहरहदृष्टाप्यदृष्टैव मे।।१५७।।

(चन्द्रा० ३/५३)

उत्कीर्णैरिव चित्रितैरिव नवोद्भिनैरिवोद्यद्वयः कुन्दे विभ्रमितैरिव स्मरकलाशाने निशातैरिव।
मग्नोन्मग्नतयालसैरिव भृशं लावण्यवापीजले केयं केलि–कलानिधिः सुबल मे चेतो हरत्यंगकैः।।१५८।।

(आ० २/१७)

---

(१५५) इसके पश्चात् श्रीराधा और श्रीकृष्ण पारस्परिक स्वभाव सिद्ध गुणावलि (प्रेम का वेग) से अनन्त अनुभावों से आक्रान्त चित्त होकर एक दूसरे के दर्शन के आनन्द से मत्त होकर (एक–दूसरे को पहचानने में पूर्णतया समर्थ न होते हुए) तर्क करने लगे।

(१५६) श्रीकृष्ण श्रीराधा को देखकर इस प्रकार सोचते हैं– क्या यह कोई सुन्दरता की देवी है ? अथवा क्या तारुण्य लक्ष्मी हैं ? क्या माधुर्य की मूर्तिमती सम्पत्ति हैं ? या कोई लावण्य वन्या हैं ? अथवा आनन्द तरंगिनी हैं ? या कोई पीयूष की धारा स्वित हो रही है ? अथवा मेरी समस्त इन्द्रियों को आनन्द प्रदान करती हुई मेरी प्रियतमा तो नहीं आ गयीं।

(१५७) इसके पश्चात् वे सुबल से कहने लगे सखे ! कितना आश्चर्य है ? कि चतुर कलाकार कामदेव ने ही इस कामिनी के कलेवर को निर्माण किया है ? या प्रेमरूपी चित्रकार ने इसे चित्रित किया है ? क्या लावण्य रूपी विश्वकर्मा ने अपने अस्त्रों से इसका निर्माण किया है? अथवा सौन्दर्य समुद्र का मंथन करके ही क्या ये माधुर्य लक्ष्मी प्रगट हुई है ? अहो ! इसका प्रतिदिन दर्शन करके भी ऐसा प्रतीत होता है कि इनको पहले कभी नहीं देखा और ये सदा मुझे मोहित ही कर रही हैं।

(१५८) सखे सुबल ! केलि कला की निधान ये नारी कौन है ? जो अपने सुकुमार अंग प्रत्यंग दिखाकर मेरा चित्त हरण कर रही है अहो ! इसके अंग समूह जैसे गड़ गये हैं, "अथवा चित्रित हो गये हैं" नवनवायमान, यह यौवन अवस्था में प्रवेश करती हुई मानों मुझे भ्रमित कर रही है अथवा कामदेव के तीखे अस्त्रों द्वारा विद्ध कर रही हैं अथवा लावण्य रूपी सरोवर के जल में मग्न कर रही हैं। जिससे मेरे सम्पूर्ण अंग आनन्द से शिथिल हो गये हैं।

या मन्नेत्र–चकोर चन्द्र वदना नासालिनि–पद्मिनि जिह्वाकोकिलका–रसालदधरा कर्णेन हृच्छिञ्जिता।
देहानंग दवार्त्तवारण सुधा–स्रोतस्वतीमूर्त्तिका सैवेयं दयितोदिता फलितवान् मद्भाग्य कल्पद्रुमः।।१५६।।
(गोवि० ८/११०)

अञ्जनी मृगदशो दृगञ्चलः, पञ्जरस्थ इव भाति खञ्जनः।
लेश एव हसितस्य दृश्यते, वस्त्रपूत इव चन्द्रमोद्रवः।।१६०।।
(चन्द्रो० ३/६४)

रचितशिखरशोभारम्भमभोरुहाक्षी श्वसितपवनदोलान्दोलिना मौक्तिकेन।
पुटयुगमतिफुल्लं विभ्रती नासिकायां मम मनसि विलग्ना दर्शनादेव राधा।।१६१।।
(उ० अनुभाव ७६)

तापिंच्छः किं किमु जलधरः कन्दलो वैन्द्रनीलः सानुः किंवाञ्जन शिखरिनः क्षीवभृंगब्रजो नु।
कृष्णापूरः किमुत निचयः किंस्विदिन्दीवरानां पुञ्जीभूतो ब्रजमृगदृशां किन्वपांगावलोकः।।१६२।।
(गोवि० ८/१११)

---

(१५६) अहो ! जो मेरे नेत्र चकोरों के लिए चन्द्रमा के सदृश हैं, जो मेरी नासिका रूप भ्रमरी के लिए कमलिनी तुल्य हैं, जो मेरी जिह्वा रूप कोकिला के लिए आम्र मुकुल वत् आस्वादनी अधर युक्त हैं और जिनके भूषणों की ध्वनि मेरे कानरूप हरिणों को आकर्षित करती है और जो मदन दावानल से दग्ध मुझ मत्त हस्ति के लिए अमृत की नदी स्वरूपिणी है वही प्रियतमा आ गयी हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा भाग्य रूपी कल्पवृक्ष ही मानों फलित हो गया हो।

(१६०) अहो ! इस रमणी के अञ्जन शोभित नेत्रों के अञ्चल मानों पिञ्जरे में स्थित खञ्जन पक्षी की तरह शोभा पा रहे हैं। इनका मृदु–मधुर–हास्य कपड़े के छाने कर्पूर के रस की तरह प्रतीत हो रहा है।

(१६१) अरे बन्धु सुबल ! ये कमलनयनी श्रीराधा अपनी प्रफुल्ल नासिका में जो गजमुक्ता धारण किये हुए हैं वह शिखर शोभा (पके हुए अनार के बीज की कान्ति के सदृश मणि) को धारण कर रही है वह श्वास वायु से हिलता हुआ अति आश्चर्य सौन्दर्य को प्राप्त कर रहा है इसलिए हे सखे दर्शनमात्र से ही ये राधा मेरे मन में समा गयी हैं।

(१६२) इसके पश्चात् श्रीराधा मन में विचार करने लगीं अहो ! ये क्या तमालतरु हैं ? अथवा नवजलधर हैं? या कोई इन्द्रनील मणि की ज्योति है ? या कोई अञ्जन पर्वत के शिखर हैं ? अथवा कोई मत्त भ्रमरों का समूह है ? या यमुना जी का प्रवाह है ? या नील कमलों की शशि है ? अथवा ब्रज रमणियों के पुञ्जीभूत कटाक्षों की चितवन है ?

अयं किं कन्दर्प ? सखलु वितनुः, किं नु रसराट् ? स नो धर्मी, किं वा मृत रसनिधिः ? सोऽति विततः।
किमुत्फुल्लप्रेमामरतरुवरः ? सोऽपि न चरः स बासौ मत्प्रेयान् जयति मम भाग्यं क्व नु तथा।।१६३।।
(गोवि० ८/११२)

कान्तः सोऽयं स्फुरति पुरतो नेत्रभृंगारविन्दम् किंवा भ्रान्तास्म्यहमिति सखि ! ब्रूहि सत्यं विशाखे !
इत्थं पृष्टा पुलकिततनुः गद्गदारुद्धकण्ठी–मालीहासैश्चपलनयनां तामवादीन्मुदासौ।।१६४।।
(गोवि० ८/११३)

कस्तूर्याः सत्तिलकमलिके यस्तवोरोज–युग्मे चित्रं बिन्दुः सुमुखि ! चिबुके नेत्रयुग्मेऽञ्जन श्रीः।
श्रुत्योरिन्दीवर–विरचितः कुन्तले चावतं सः सोऽयं कान्तः स्फुरति सखि ते भाग्यराशिर्व्रजामुम्।।१६५।।
(गोवि० ८/११४)

अतिक्रम्यापांगं श्रवणपथ–पर्यन्तगमन–प्रयासैनैवाक्ष्णोस्तरलतरतारं पतितयोः।
तदानीं राधायाः प्रियतम–समालोकसमये पपात स्वेदाम्भः प्रसर इव हर्षाश्रुनिकरः।।१६६।।
(गी० ११/३२)

---

(१६३) अहो ! ये क्या वही कन्दर्प हैं ? नहीं उसका तो शरीर (अंग) नहीं है अनंग है। तो क्या ये रसराज हैं? नहीं उसका तो धर्म नहीं है। वह स्वयं धर्म है। तो क्या ये अमृत के समुद्र हैं ? नहीं–नहीं वे तो बहुत विस्तृत है। तो क्या ये प्रफुल्लित प्रेम का कल्पवृक्ष है ? नहीं–नहीं वह तो चलता नहीं है। तो क्या ये मेरे प्राण प्रियतम ही सामने विराज रहे हैं ? हाय मैं क्या इतनी भाग्यशालिनी हूँ ?

(१६४) इसके पश्चात् वे विशाखा जी को कहने लगीं– सखी विशाखे ! सामने मेरे नेत्र रूपी भ्रमरों के लिए जो कमल सदृश हैं ये क्या मेरे प्रियतम ही हैं ? अथवा क्या मुझे भ्रान्ति हो रही है ? सखी सत्य कहो ? इस प्रकार पूछे जाने पर विशाखा जी भी पुलकित होकर गद्गद वचनों से अवरुद्ध कण्ठी होते हुए सखीगणों के परिहास से चपला नयना श्रीराधा से कहने लगीं।

(१६५) हे सुमुखि ! तुम सामने जिनका दर्शन कर रही हो वे तुम्हारे ललाट के सुन्दर कस्तूरी तिलक, तुम्हारे वक्षस्थल की पत्रावली, तुम्हारे चिबुक के मृगमद बिन्दु, तुम्हारे नेत्रयुगल की अञ्जनशोभा, तुम्हारे कानों के भूषण नीलकमल, तुम्हारे केशकलापों के अवतंस और यही तुम्हारे सौभाग्य राशि रूप प्रियतम विराजमान हैं। सखी तुम इनके निकट गमन करो।

(१६६) श्रीराधा अकस्मात् प्रियतम का अवलोकन करके इस प्रकार आनन्द में अतिशय निमग्न हो गयीं कि उनके दोनों नेत्रों के तारे घूमकर अपांग देश का अतिक्रमण करके कानों तक पहुँच गये। इसी श्रम से मानों उनके नेत्रों से स्वेद बिन्दु निकल आये और आनन्दाश्रु पात् करने लगे।

निजमधुरिममुद्रा ग्लापितेन्दीवरश्रीर्जयति परमजैत्रः कोऽपि राधाकटाक्षः।
त्रिभुवनजयलक्ष्मीवर्य्यया दत्तदामा मधुरिपुरपि येन क्रीड़या निर्जितोऽभूत्।।१६७।।
(ल० ४/१२)

तुलसीवाक्य स्मरणेन विवर्त्तितमुखीं तां सख्याह—चित्रं गौरि !
विबर्त्तते भ्रमिकरी विश्रम्य विश्रम्यते दृक्ताराभ्रमरी गतागति मियं कर्णोत्पले कुर्वती।
यस्याः केलिभिराकुलीकृतमतेः पद्मालिवार्ता क्व सा गान्धर्वे !
मधुसूदनस्य नितरां स्वस्याप्यभूद्विस्मृतिः।।१६८।।
(उ० ७/५१)

जंघाधस्तटसंगि—दक्षिणपदं किंचिद्विभुग्नत्रिकं साचिस्ताम्भितकन्धरं सखि ! तिरः संचारि—नेत्राञ्चलम्।
वंशी कुट्म्लिते दधानमधरे लोलांगुली—संगतां रिंगद्भ्रूभ्रमरं वरांगि ! परमानन्दं पुरः स्वीकुरु।।१६६।।
(ल० ४/२७)

---

(१६७) तब तुलसी मञ्जरी राधारानी के नेत्रों की ओर दृष्टिपात करके कहने लगीं— जिन्होंने अपने माधुर्य द्वारा नील कमलों की श्रेणी को तिरस्कृत कर दिया है ऐसे परम जयशील श्रीराधाकटाक्ष सर्वोत्कर्ष रूप से विराजमान हैं इनका प्रभाव और अधिक क्या कहें ? क्योंकि त्रिभुवन की जयरूपा लक्ष्मी ने भी इनको स्वयं वरमाला प्रदान की है और वे मुरारी भी इनकी कटाक्षों से परास्त हो जाते हैं।

(१६८) तुलसी के वाक्य श्रवण करके राधारानी ने मुख फिरा लिया। तब कोई और सखी कहने लगी— हे गौरी तुम्हारे नेत्र के तारों की क्या विचित्र शक्ति है जो कि सबकी बुद्धि को भ्रमित कर देती है। हे गान्धर्विके ये नेत्र तारिका भ्रमरी की तरह श्रीकृष्ण के कानों में स्थित नील कमलों के प्रति आश्चर्य रूप से गमना गमन करते हैं जिसे देखकर मधुसूदन भी आत्म—विस्मृत हो जाते हैं और उनके हृदय में अन्य पद्मिनी (चन्द्रावली) का स्मरण ही नहीं होता।

(१६६) इसके पश्चात् ललिताजी कहने लगी— जिनके वामजंघा के नीचे दक्षिण चरण विराजमान है और वे तीन स्थानों से (ग्रीवाकटि चरण) कुछ वक्र हो जाते हैं और जिनके नेत्रों के अञ्चल तिरछे होकर भावों का संचार करते हैं। जिनके संकुचित अधरों पर चंचल उगलियों में वंशी विराजमान है और जिनके भ्रूदेश नृत्य कर रहे हैं। हे वरांगी – आगे बढ़कर उसी परमानन्द को अंगीकार करो।

नवजलधरधामा कोटिकामाभिरामः परिणत–शरदिन्दुस्निग्धमुग्धाननश्रीः
नवकमलपलाशद्रोणिदीर्घारुणाक्षो दशन–कुसुमकान्तिक्रान्त–बिम्बाधरोष्ठः ।।१७०।।
(चन्द्रो० ३/४०)

विभ्रन्नीलच्छविमविषमामग्रहस्तेन यष्टिम् जुष्ट श्रोणितटरूचिरसौ पीतपटांशुकेन।
निन्दन्नीन्दीवर–परिमलोत्सर्पिभिः कान्तिपूरै–राभीरीनामिह विहरति प्रेमलक्ष्मी–विवर्तः।।१७१।।
(ल० १/२७)

सरोजानां पुंजे मदकलममूं पश्यत पुरः परागैरापिंगैः स्फुरदधरकायं मधुकरम्।
मुहुर्भ्रामं भ्रामं भ्रमर–रमणीयः सरभसं निरुन्धानो ध्वानोद्धाति विधुतमूर्धा विहरति।।१७२।।
(दा० १६)

करौ शरदिजाम्बुजक्रमविलासशिक्षागुरु पदौ विवुधपादप प्रथमपल्लवोल्लधिनौ।
दृशौ दलित–दुर्मद त्रिभुवनोपमानश्रियौ विलोकय विलोचनामृतमहो ! महः शैशवम्।।१७३।।
(कर्णा० १/८६)

(१७०–७१) उनका कलेवर नवजलधर के समान विचित्र शोभा सम्पन्न, कोटि–कोटि कन्दर्प से भी जो अति सुन्दर, शरदचन्द्र के समान जिनकी स्निग्ध और सुन्दर कान्ति, नवीन कमल जैसे अरुण और विशाल नेत्र और जिनके दाँत रूपी कुसुमों की कान्ति बिम्बाधरों पर प्रतिबिम्बित हो रही है अहो ! ऐसे नीलवर्ण कान्तियुक्त हाथ में सरल यष्टि धारण किये हुए, कटि तट पर पीतपट्ट वस्त्र धारण किये हुए, अपनी इन्दीवर कान्ति को सब दिशाओं में फैलाते हुए, ब्रज गोपिकाओं की प्रेम लक्ष्मी के घनीभूत विग्रह के समान ये हरि विहार कर रहे हैं।

(१७२) अहो सुन्दरि ! सामने इस कमलवन मत्त मधुकर की ओर तो देखो अहो इसकी क्या आश्चर्य शोभा है? पुष्पों के पराग से इसके शरीर का पिछला भाग पीतवर्ण हो गया है एवं बारम्बार भ्रमण करते–करते कौतुक वशतः मधुकरी समूह को निरोध करता हुआ धृष्टता से अपने मस्तक को कम्पित करता हुआ विहार कर रहा है।

(१७३) जिनके हस्तद्वय शरत्कालीन कमल के विलास की शोभा के भी मानों शिक्षा गुरु हैं और जिनके चरण द्वय कल्पवृक्ष के नवपल्लवों की लालिमा का लंघन करने वाले हैं, जिनके नेत्रद्वय त्रिभुवन के कमल इत्यादि जितने भी उपमान हैं उन सब का अहंकार नाश करते हुए अपनी शोभा का विस्तार कर रहे हैं। अहो देखो ये श्रीकृष्ण अपने कैशोर रूप से कान्ति का विस्तार करते हुए नेत्रों के लिए अमृत रसायन रूप से विराज रहे हैं।

श्यामीकरोति भुवनं वपुषा दिगन्तान् पूर्णेन्दुमण्डलमयी कुरुते मुखेन।
वाचा सुधारसभृतो विदधाति कर्णान् दृष्टया नभोऽम्बुजमयी कुरुते किमेतत्।।१७४।।

(चन्द्रो ३/६३)

सखी—वचनात् शान्तचित्ता सस्पृहं पश्यन्ती सा आह—तदुच्छ्वसित—
यौवनं तरलशैशवालंकृतं मदच्छुरित लोचनं मदनमुग्धहासामृतं।
प्रतिक्षण—विलोभनं प्रणयपीत—वंशीमुखं जगत्रयमनोहरं जयति मामकं जीवितम्।।१७५।।

(कर्णा १/८८)

नवमुरलि—मराली हारि हस्तारविन्दः कवलित—कुरुविन्दच्छायगुञ्जाद्भुतश्रीः।
मृदुल—पवनचञ्चत पिंछचूड़ाञ्चलोऽयं मदयति हृदयं मे श्यामिकानां विलासः।।१७६।।

(ल० ४/१६)

समस्तजगतभूरां मृगदृशामभीष्टाशिषः समर्थमभिपूरणे किमपि दोलयन् दोर्युगम्।
असौ कुलजवल्लवी—मदनवेदनोन्मादन—व्रतप्रणयिनोरसा रसिकमौलिरुद्भासते।।१७७।।

(दा० २७)

---

(१७४) अहो ! क्या आश्चर्य है ? जिनके अंग की शोभा से त्रिभुवन श्याम वर्ण का हो रहा है और जिनका मुखारविन्द अपनी कान्ति से चारों दिशाओं में चन्द्र ज्योत्सना का विस्तार कर रहा है। जिनकी वाणी कर्ण कुहरों में अमृत राशि को प्रवाहित कर रही है तथा जो अपनी दृष्टि—पात से समीपवर्ती गगनमण्डल को अंबुजमय कर रही है। ऐसा श्रीकृष्ण का रूप क्या आश्चर्य है।

(१७५) इस प्रकार सखी के वचनों से शान्तचित्त होकर श्रीराधा श्रीकृष्ण रूप को उत्कंठित होकर देखती हुई कहने लगीं— जिनका यौवन उच्छलित हो रहा है, जो नवकिशोर हैं और जिनके नेत्र कन्दर्प मद से विकसित हो रहे हैं, जिनके हास्यामृत से मदन भी विमोहित हो रहा है, जो प्रणय से वंशी के वदन का चुम्बन करते हुए प्रतिक्षण हमारे हृदय में लोभ उत्पन्न कर रहे हैं, ऐसे त्रिभुवन मोहन मेरे जीवन स्वरूप श्रीकृष्ण की जय हो।

(१७६) नव मुरली रूपी हंसिनी द्वारा जिनका कर कमल सुशोभित हैं, जिनके गुञ्जामाला की शोभा पद्मराग मणि की कान्ति को ग्रस रही है, जिससे उनका अद्भुत सौन्दर्य प्रकाशित हो रहा है, जिनके मस्तक पर स्थित मयूर पिच्छों का चूड़ा मृदु मन्द पवन से हिल रहा है, ऐसे श्यामसुन्दर के समस्त अंगों की शोभा मेरे हृदय को उन्मादित कर रही है।

(१७७) त्रिभुवन की मृग—नयनी रमणियों की कोई अनिर्वाच्य अभीष्ट वासना की परिपूर्ति में समर्थ श्रीकृष्ण के भुज युगल जो कि अपने आलिंगन द्वारा कुल—बालाओं की मदन जनित पीड़ा को उन्मादित करते हुए एवं उनकी प्रीति का वर्द्धन करने वाले वक्षस्थल की सुन्दर शोभा से सुशोभित होते हुए रसिक मौलि श्रीकृष्ण विराज रहे हैं।

प्रपन्नः पन्थानं हरिरसकृदस्मन्नयनयो रपूर्वेवाऽयं पूर्वम् क्वचिदपि न दृष्टो मधुरिमा।
प्रतीकेऽप्येकस्य स्फुरति मुहुरंगस्य सखि ! या श्रियस्तस्याः पातुं लवमपि समर्था न दृगियम्।।१७८।।

(दा० २८)

यदा यदा पश्यसि माधवं पुर–स्तदा तदैवास्य वदस्यपूर्वताम्।
नवः सदास्यात् किमयं तवाथवा, रागोन्मदे विस्मयतः किमक्षिणी।।१७६।।

(दा० २६)

इत्थं मिथोदर्शनतो विशुद्ध, प्रेमस्वभावोद्गतभाववृन्दैः।
विक्षुब्धसोल्लासमनस्तनू तौ, क्षणं न कांचिद्ययतुः प्रवृत्तिम्।।१८०।।

(गोवि० ८/११५)

भावाक्रान्ततया तौ तु बहिर्वृत्ति–पराङ्मुखौ।
जिजल्पिषा दिदृक्षा च स्रस्तचित्तौ व्यधान् मिथः।।१८१।।

पुरः कृष्णालोकात् स्थगितकुटिलास्या गतिरभूत् तिरश्चीनं कृष्णाम्बरदरवृतं श्रीमुखमपि।
चलत्तारं स्फारं नयनयुगमाभुग्नमिति सा विलासाख्य–स्वालंकरणवलितासीत् प्रियमुदे।।१८२।।

(गोवि० ६/११)

---

(१७८) हे सखी ! श्रीकृष्ण अनेक बार मेरे नेत्रों के पथिक हुए हैं, किन्तु इससे पूर्व कभी भी इनका इतना माधुर्य मैंने नहीं देखा ! जिनके एक अंग की थोड़ी सी शोभा का पान करने में मेरे ये नेत्र समर्थ नहीं हो रहे हैं, तो फिर बताओ इस समय मैं इनके सब अंगों की माधुरी का कैसे पान करूँ ?

(१७६) वृन्दाजी कहने लगीं– सखी राधे ! तुम जब–जब माधव को अपने समक्ष देखती हो तब तब यही कहती हो कि ऐसा माधुर्य मैंने पहले नहीं देखा है, क्या तुम्हारे लिए ये नित्य ही नूतन है, अथवा अनुराग और उन्माद के कारण तुम्हारे नेत्र ही इस प्रकार विस्मित हो जाते हैं।

(१८०) इस प्रकार श्रीराधा कृष्ण परस्पर के दर्शन से उत्पन्न हुए विशुद्ध प्रेम के स्वभाव से अनेक प्रकार के भाव के विकारों से क्षुब्ध एवं उल्लसित होते हुए पूर्ण रूप से चेष्टा रहित हो गये।

विलास ललित आदि अलंकारों से विभूषित राधारानी के दर्शनों से श्रीकृष्ण के आनन्द का वर्णन

(१८१–८२) श्रीराधाकृष्ण परस्पर दर्शन करके जब भाव विह्वल हो गये तब परस्पर वाक्यालाप की वासना से दोनों चञ्चल चित्त हो गये। अपने समक्ष श्रीकृष्ण के दर्शन करती हुई श्रीराधा की गति कुटिल और स्थगित हो गयी। उन्होंने अपने मुखमण्डल को अपने नीलाम्बर से कुछ ढक लिया, उनके नेत्रों के चञ्चल तारों से युक्त दोनों नयन कुछ वक्र होते हुए 'विलास अलंकार' को दर्शाते हुए प्रियतम के आनन्द का वर्धन करने लगी।

आकृष्टा पुरतस्तदोत्सुकतया सख्यैव सा लज्जया पश्चाद् वामतयानृजुप्रणयतः सव्ये स्वगेहाध्वनि।
सासव्येऽप्यवहित्थया प्रबलया पुष्पावचित्यै बलादित्थं भावचयोद्गति–प्रचलिता सासीन्मुदे श्रीहरिः।।१८३।।

(गोवि० ६/१२)

इत्थं कृष्टा प्रियाग्रे सा बलिष्ठाभिः समन्ततः।
मनोवृत्तिवयस्याभिर्न निर्याता न च स्थिता।।१८४।।

(गोवि० ६/१३)

ह्रिया तिर्यगग्रीवा चरणकटिभंगी–सुमधुरा चलच्चिल्लीवल्लीदलित–रतिनाथोर्जित धनुः।
प्रियप्रेमोल्लासोल्लासित–ललितालालिततनुः प्रियप्रीत्यै सासीदुदित–ललितालंकृतियुता।।१८५।।

(गोवि० ६/१४)

हरिमानस नटवर्ये, राधातनुनर्तकीगुणैस्तोषात्।
गतवति तां परिरब्धुं तत्तनुनट्यपि तदनुगता जाता।।१८६।।

(गोवि० ६/१५)

---

(१८३) श्रीकृष्ण संग की अभिलाषा करते हुए राधारानी को उस समय मानों उत्सुकता रूपी सखी आगे की ओर लज्जारूपी सखी पीछे की ओर खींच रही है, वामता रूपी सखी उनको कुटिल प्रणय के वशीभूत करती हुई बायीं ओर घर जाने के लिए खींचने लगी और बलवती अवहित्थारूपी सखी दायीं ओर पुष्प चयन के निमित्त बलपूर्वक खींचने लगी– इस प्रकार विरुद्ध भावों के एक साथ उदय होने से चंचल चित्त वाली राधारानी के दर्शन करके श्रीहरि अत्यन्त आनन्दित हुए।

(१८४) इस प्रकार राधारानी अपनी बलिष्ठ मनोवृत्ति रुपिणी सखियों द्वारा आकृष्ट होती हुई न तो जा पा रही थीं और न ही वहाँ रूकने में समर्थ हो रहीं थीं।

(१८५) इस प्रकार लज्जा से उनकी ग्रीवा वक्र हो गयी, चरणों और कटि में अत्यन्त मनोहर वक्रता आ गयी, उनकी भौंहो की चञ्चलता को देखकर मानों मदन अपने तेजस्वी धनुष के गर्व को भूल गया हो, इस प्रकार प्रियतम को प्रेमोल्लास से पूरित करती हुई ललित अंगों वाली, ललिता द्वारा लालित प्रियतम की प्रीति को वर्धित करने वाले 'ललित' नामक अलंकार से राधारानी विभूषित होने लगीं।

(१८६) इस प्रकार श्रीराधारानी के श्रीअंग रूपी नर्तकी के गुणों से श्रीकृष्ण का मानस रूपी नट परितुष्ट हो गया और वह श्रीराधा के तन रूपी नर्तकी का आलिंगन करने की इच्छा से उनकी ओर बढ़ने लगे।

व्यत्यस्ता कल्प गात्री द्रुतमभिसरनः वेशतस्त्वं प्रिये ! तच्चापल्यं वेष एष प्रथयति मनेसहिप्येहयमूं संस्करोमि।
इत्थं स्पर्शोत्सुक–स्वप्रिय परिहसितावाङ्मुखी संकुचन्ती लोलाक्षी विभ्रमालंकृति–रुचिर तनुस्तस्य तुष्टीं व्यतानीत्।।१८७।।

(गोवि० ६/१६)

ह्रिया भिया वाम तयावहित्थया कृतावकर्षा कुसुम ग्रहाय सा।
तिरश्चलन्ती हरिनोत्क चेतसा पुरो निरुद्धा मुमुदे चुकोप च।।१८८।।

(गोवि० ६/१७)

वाष्पव्याकुलितारुणाञ्चल–चलन्नेत्रं रसोल्लासितं हेलोल्लास–चलाधरं कुटिलित–भ्रूयुग्ममुद्यत्स्मितम्।
कान्ताया किलकिञ्चताञ्चितमसौ वीक्ष्याननं संगमादानन्दं तमवाप कोटि गुणितं योऽभून्नगीर्गोचरः।।१८६।।

(गोवि० ६/१८)

अथ सा सविधस्थ–केशर–द्रुमशाखां मुकुला कुलामनु।
अति संभ्रमतः स्वदोर्लतां, कुसुमा दान मिषादुदक्षिपत्।।१६०।।

(गोवि० ६/१६)

---

(१८७) तब श्रीकृष्ण श्रीराधा के प्रति कहने लगे – 'हे प्रिये अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक अभिसार करके आने के कारण तुम्हारे अंगों के भूषण समूह अस्त व्यस्त हो गये हैं। इस प्रकार तुम्हारे विपर्यस्त वेश को देखकर मेरा मन एवं हाथ आदि सब अंग चंचल हो रहे हैं इसलिए आओ तुम्हें ठीक से सजा दूँ, ऐसा कहकर राधारानी को स्पर्श करने के लिए उत्सुक होने लगे। तब श्रीराधारानी अधोमुखी चंचलाक्षी एवं संकुचित होती हुई 'विभ्रम' नामक अलंकार से विभूषित होती हुई प्रियतम को आनन्दित करने लगी।

(१८८) इस प्रकार लज्जा भय वामता एवं उपेक्षा आदि भावों से बलपूर्वक आकृष्ट होती हुई कुसुम चयन के लिए मुड़कर कुछ दूर जाने लगी। तब उत्कण्ठित चित्त श्रीहरि ने उनका आगे आकर पथ रोका तब वे अन्तर में आनन्द और बाहर से कोप प्रकट करने लगी।

(१८६) तब श्रीराधारानी के नेत्र प्रेमाश्रु आ जाने से किंचित अरुण, चंचल एवं रस के आवेश से प्रफुल्लित हो गये। श्रृंगार रस की सूचना देने वाले भावों से उनके अधर कम्पित होने लगे। भ्रूयुगल कुटिल हो गयीं एवं मुखारविन्द पर मृदु मन्द हास्य की रेखा दिखायी देने लगी। इस प्रकार राधारानी को 'किलकिंचत' भाव से विभूषित देखकर माधव को संगम से भी कोटि गुणा अधिक आनन्द प्राप्त हुआ जिसे कि वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

(१६०) इसके पश्चात् राधारानी पुष्प चयन के बहाने कलियों से आच्छादित शाखाओं वाले पुन्नाग वृक्ष से अपनी भुजाओं को ऊँचा करके पुष्प उठाने की चेष्टा करने लगी (यहाँ पुन्नाग शब्द का एक अर्थ प्रियतम श्रीकृष्ण है) अर्थात् उनको आलिंगन करने की अभिलाषा प्रकट करने लगीं।

प्रियालोके राधा कुसुम चयने कौतुकवती धुनीते सत्रासं करतलमदष्टापि मधुपैः।
अखिन्नापि श्रान्त्या श्रयति भुजयालीभुजशिरः परावृता पश्यत्यधृतवसनापि व्रततिभिः।।१६१।।

(आ० ८/२२)

अयि ज्ञातं ज्ञातं हरसि हरिणाक्षि ! प्रतिदिनं त्वमेव प्रच्छन्नं मम सुमनसां मञ्जरिमितः।
चिराद् दिष्ट्या चौरि ! त्वमसि विधृतादय स्वयमतो गुहाकारामारात् प्रविश वसतिं प्रोढ़िभिरलम्।।१६२।।

(उ० श्रृंगार ४०)

सा पृथुवेपथु–दोलितहस्ता, प्रेमसमुत्थितभाव–विहस्ता।
फुल्लमहीरुह–मण्डलकान्ते, तत्र पुरः प्रससार वनान्ते।।१६३।।

(स्त० स्वयमुत ०६)

सख्यैकया मूर्ध्नि कृतांशुकाञ्चला, संवीज्यमाना दलमालयान्यया।
अवेक्ष्यमाणादयितं विदूरत–श्चिनोतिमन्दं कुसुमानि राधिका।।१६४।।

(आ० ५/५२)

एतदीय–कुसुमं सखि ! हेयं, कृष्णपक्ष–सरसा लतिकेयं।
या रुणद्धि वसनं तव शाखा – पाणिनेत्युपजहास विशाखा।।१६५।।

(कृष्णा ४/४२)

---

(१६१) प्रियतम के दर्शन से श्रीराधा कुसुम चयन का कौतुक करती हुई मधुकर से दंशित न होती हुई भी त्रास पूर्वक कर को कम्पित करने लगीं। कोई कष्ट न होते हुए भी श्रम को दूर करने के लिए अपनी बाहु द्वारा सखी के कन्धे का सहारा लेने लगी एवं लता से वस्त्र के न उलझने पर भी बार–बार मुख फिराकर वसन छुड़ाने का अभिनय करने लगीं।

पुष्प चयन, परस्पर हास परिहास कथोपकथन आदि :–

(१६२) श्रीकृष्ण कहने लगे– अब मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम ही प्रतिदिन गुप्त भाव से यहाँ आकर कुसुम कलियों की चोरी करती हो। हे पुष्प चौरि ! आज सौभाग्य से मैंने तुम्हें पकड़ लिया है। अब अधिक चतुराई न करके स्वयं ही इस गुहा कारागार में प्रवेश करो।

(१६३) तब महाकम्प से युक्त हुई राधारानी के हाथ काँपने लगे और प्रेम से उत्पन्न होते हुए भावों से व्याकुल होती हुईं वे समीपवर्ती घने वृक्षों से प्रस्फुटित वन में छिपने का प्रयास करने लगीं।

(१६४) कोई सखी उनके मस्तक पर साड़ी धारण कराने लगीं, कोई पत्तों से उनको पंखा करने लगी, राधारानी अनन्य भाव से दूर से प्रियतम को निहारती हुई धीरे–धीरे कुसम चयन करने लगीं।

(१६५) तब विशाखा जी राधारानी का उपहास करती हुई कहने लगीं हे सखी इस लता के कुसुम अच्छे नहीं है क्योंकि यह लता कृष्ण पक्ष–सरसा (कृष्ण तमाल से लिपटी हुई अतएव रसाल) होकर अपनी शाखा रूपी हाथों से तुम्हारे वस्त्रांचल को पकड़ रही है।

शुक्लपक्षनिभ–पुष्पविशेषा–कृष्णपक्ष–सरसा कथमेषा ?
मद्वियोगमसहिष्णुरियं मा, मारुणन्द्धि मम कौतुक कामा।।१६६।।

(कृष्णा ४/४३)

मुग्ध ऐति मधुपो मुखचन्द्रं, स्वादितुं कमलधीस्तव सान्द्रम्।
तत्त्वयाऽवहितया भवितव्यं श्यामलस्य चरितं नहि भव्यम्।।१६७।।

(कृष्णा ४/४४)

त्वादृशां मुखसरोज–समाजे, सुस्मिते सति कथं द्विजराजे।
हन्त ! गन्धरहिते कथमस्य, स्वाद एष भविता मधुपस्य।।१६८।।

(कृष्णा ४/४५)

पुष्पितां स्पृशति कोऽपि न लोके जह्यमूं सखि ! लतां सुविलोके।
जातिरेव मधुमासि पवित्रा स्पृश्यतां वहति कोमलपत्रा।।१६६।।

(कृष्णा ४/४६)

---

(१६६) श्रीराधारानी कहने लगीं– नहीं–नहीं सखी मैं तो इस लता के शुक्ल पक्ष की तरह विकसित शुभ्र पुष्पों को ही उठा रही हूँ तुम इसे कृष्ण पक्ष पातिनी रसवती (कृष्ण पक्ष सरसा) क्यों कह रही हो ? यह तो मेरे विरह को सहन न कर सकने के कारण ही कौतुकतावश मेरा अवरोध मात्र कर रही हैं।

(१६७) विशाखा – हे मुग्धे तुम्हारे सुन्दर मुखचन्द्र को कमल समझकर आस्वादन करने के लिए ही मानों यह भ्रमर आ रहा है। इसलिए तुमको सावधान रहना चाहिए क्योंकि ये श्यामवर्ण (भ्रमर अथवा श्यामसुन्दर) वालों का चरित्र अच्छा नहीं है।

(१६८) श्रीराधा – अरे तुम्हारे जैसी कमलनियों के जहाँ सुन्दर स्मित वाले मुख कमलों की पंक्ति विराज रही है वहाँ मेरे जैसी गन्ध शून्य मुखचन्द्र वाली से इस मधुकर को क्या ?

(१६६) विशाखा – हे सुनयने ! इस पृथ्वी पर देखा जाता है कि कोई भी पुरुष पुष्पिता (पुष्पवती, रजस्वला) नारी को स्पर्श नहीं करता। सखी इस लता का परित्याग करो, देखो मधु (चैत्र) मास में जातिलता ही पवित्रा एवं कोमल पत्रों वाली होती हैं और वही मधुकर के स्पर्श के योग्य होती हैं। (दूसरे पक्ष में राधे समस्त लताओं में जैसे जाति लता ही श्रेष्ठ होती है इसी प्रकार हम सब गोपिकाओं में तुम्हीं सर्वश्रेष्ठा और परम पवित्रा विख्यात हो इसलिए इस मधुमास में तुम ही मधुसूदन के स्पर्श के योग्य हो।)

पुष्पवत्यपि पवित्रतमेषा, काननेऽत्र लतिकालिरशेषा।
यां स्पृशन्ननिल एष पुनीते, विश्वमेव दुरितं च धुनीते।।२००।।

(कृष्णा ४/४७)

आलि ! पुष्पितमशोकमुदारं, पश्य याहि भज तं च मुदाऽरम।
यं समेत्य सुमनोगुरुरागं, विभ्रति व्रजजनाः परभागम्।।२०१।।

(कृष्णा ४/४८)

नामतोऽपि सखि ! विद्धि पुमांसं, न स्पृशामि पुरुषत्व–कृतांशम्।
वञ्जुलोऽयमपि तिष्ठतु दूरे, त्वं प्रयाहि तदमुं मतिशूरे।।२०२।।

(कृष्णा ४/४६)

आलि ! पश्य पुरुषोत्तममेतं, स्निग्धमुग्ध–सुमनः समुपेतम्।
पश्य यत्परिमलो विसरात्तव–दृष्टिमोहन गुणोऽप्यति चात्तः।।२०३।।

(कृष्णा ४/५०)

---

(२००) इस वन की समस्त लता ही पुष्पवती होती हुई परम पवित्र हैं और देखो इन सबका स्पर्श करके वायु विश्व को पवित्र कर रही है और सब तापों का नाश कर रही है (दूसरे पक्ष में इस वृन्दावन की समस्त गोपिकाएं पुष्पवती कृष्ण संग की वासना से परिपूरित ह्रदय वाली होते हुए पवित्रतमा ही हैं और इन सबका स्पर्श करके ही वह चंचल चूड़ामणि विश्वपावन और समस्त तापों का नाश करने वाले हो गये हैं)।

(२०१) विशाखा – हे सखी ! इस उदार (मनोहर) पुष्पित अशोक वृक्ष को देखो – शीघ्र इसके पास जाओ और इसकी सेवा करो। देखो ! सब ब्रजवासी इसके पास जाकर अति उत्तम लाल रंग के पुष्पों को प्राप्त कर करते हैं (दूसरे पक्ष में सखी इस दाता शिरोमणि धीर, ललित श्रीकृष्ण के दर्शन करो, इसके पास जाओ और इसकी सेवा करो, समस्त ब्रजवासी इसके पास जाकर अनुरागमय भाव को प्राप्त करते हैं।)

(२०२) हे सखी ! तुम ये समझ लो मैं इस लम्पट पुरुष का नाम भी कानों से नहीं सुनती हूँ इस अशोक को तो दूर ही रहने दो इसलिए हे अति उत्तम बुद्धि वाली विशाखे तुम ही इन महावञ्चक के समीप जाओ (और इनकी सेवा करो)।

(२०३) विशाखा – हे आलि ! इन पुरुषोत्तम को देखो (पुन्नाग वृक्ष को देखो) ये अपने कोमल और सुन्दर पुष्पों से युक्त होकर कैसी शोभा का विस्तार कर रहा है (दूसरे पक्ष में ये पुरुष श्रेष्ठ श्यामसुन्दर अत्यन्त स्नेही और मुग्ध है) इनकी सुगन्धि से तुम्हारे, सबके नेत्रों को सुख देने वाले गुणों का अतिशय विस्तार हो रहा है।

पूर्वजल्पित इहापि स दोष–स्तं भजैनमपि चेत्तव तोषः।
उच्छ्रितासि स च ते करलभ्य, श्चारुवेष–पुरुषस्तव लोभ्यः।।२०४।।

(कृष्णा ४/५१)

इत्यतिप्रियसखीजनवाक्यं, सुभ्रूवश्च सरसं प्रतिवाक्यम्।
तन्निशम्य रसिकः स सुबोधः प्रेयसी जितवतीति बुबोध।।२०५।।

(कृष्णा ४/५२)

मन्दमन्दमथ सा विहरन्ती, नूपूरे मृदुकलं क्वणयन्ती।
आवृता सह सखीभिरुदारा, शोभते स्म कुचयोश्चलहारा।।२०६।।

(कृष्णा ४/७१)

यत्र तद्वदन–पंकजगन्ध, स्तत्र भृंगनिकरोऽभवदन्धः।
अन्धकारमभितो विदधानः प्रत्युपैति गरुतो विधुनानः।।२०७।।

(कृष्णा ४/७२)

यत्र पक्ष्मलदृशश्चलदृष्टि–द्योर्तते–विहितनीलिमसृष्टिः।
उल्लसन्मधुकरोत्करतुष्टि–स्तत्र सा कुवलयच्छदवृष्टिः।।२०८।।

(कृष्णा ४/७३)

---

(२०४) श्रीराधा– इस प्रकार सुनकर इसी वाक्य को उल्टाकर विशाखा के प्रति कहने लगीं तुम्हें यदि इस पुन्नाग वृक्ष में (पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्ण में) इतने गुण दिखायी पड़ते हैं तो तुम भी बहुत श्रेष्ठ गुणों वाली हो अतएव तुम ही इस हस्तलभ्य, सुन्दर वेश वाले पुन्नाग (श्रीकृष्ण) की सेवा करो यही तुम्हारे लोभनीय है।

(२०५) इस प्रकार प्रियसखी विशाखाजी के एवं सुन्दर भौहों वाली राधारानी के रसमय वार्तालाप को सुनकर उन सुबोध रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि यहाँ प्रियतमा श्रीराधा ही जय लाभ कर रही हैं।

(२०६) इसके पश्चात् मृदु मन्द भाव से विहार करते–२ नूपुरों की कलध्वनि का स्पंदन करते–२ सहचरियों से परिवेष्टिता श्रीराधा अपने वक्षस्थल पर चंचल हारों से विभूषित होती हुई शोभा विस्तार करने लगीं।

(२०७) जिस–जिस स्थान पर उनके मुखारविन्द की सुगन्धि जाती थी, उधर–उधर ही मानों भ्रमरों का समूह विकल होकर अपने पंखों को कम्पित करता हुआ उस दिशा को अंधकारमय करने लगा।

(२०८) जिस–जिस स्थान पर पद्मनयना श्रीराधा दृष्टि डालती हैं उधर–उधर ही मानों नीलकमलों की पंक्ति खिल जाती है जो कि मधुकरों को उल्लसित एवं प्रसन्न करती है।

यत्र तत्तनुरुचः कृतऋष्मा, निष्पतन्तिजित निर्घनशस्पाः।
तत्र गाढ़तिमिरेऽपि नितान्तं, चन्द्रिका इव चरन्ति दिगन्तम्।।२०६।।

(कृष्णा ४/७४)

यत्र तत्पदनखेन्दुमरीचिः सिञ्चति क्षिति मुदञ्चित वीचिः।
तत्र सञ्चरतिचञ्चूकिशोरा, वासरेऽपि विलुठन्ति चकोराः।।२१०।।

(कृष्णा ४/७५)

राधा सौन्दर्य—माध्वीक पान मत्तो भृशं यदा।
विस्मित पूर्व वृत्तान्त आदावासीन्मिलन्निव।।२११।।

(संग्रह कर्तुः)

माधवस्तां तदालोकन राधिकां बल्लवीवर्गतः सद्गुणेनाधिकाम्।
केयमुद्वाधते मद्वनं रागत—स्तूर्णमित्युल्लपन् फुल्लधी रागतः।।२१२।।

(स्तं० स्वयं० ७)

भालविद्योतित स्फीतगोरोचनं पार्श्वतः प्रेक्ष्य तं विभ्रमल्लोचनम्।
सा पटेनावृता कैतवाद्भामिनि वक्रितभ्रूरभूद्दूरभूगामिनि।।२१३।।

(स्तं० स्वयं० ८)

---

(२०६) जिधर—जिधर उनकी बादलों से रहित—विद्युत पुञ्ज को परास्त करने वाली अंग कान्ति की झलक पड़ती है वह घोर अंधकारमय स्थान भी मानों चारों ओर प्रकाशमान हो जाता है।

(२१०) श्रीराधा पृथ्वी पर जहाँ—जहाँ अपने चरणारविन्द रखती हैं उनके चरणों के नखचन्द्र की किरनमाला से उज्ज्वलित धरती पर दिन में भी चकोर उस स्थान पर अपनी चोंच गड़ाते हुए लोटने लगते हैं।

(२११) श्रीकृष्ण जब श्रीराधा के सौन्दर्य मधु का पान करके अतिशय मत्त हो गये तब वे उनके साथ मिलने के लिए इतने उत्कण्ठित हो गये जैसे उन्हें समस्त पूर्व वृतान्त विस्मृत हो गया हो (अर्थात् उनको ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं प्रथम बार ही श्रीराधारानी के दर्शन कर रहा हूँ।)

(२१२) ब्रज रमणियों में शिरोमणि श्रीराधा को पुष्प चयन करते हुए देखकर श्रीकृष्ण कहने लगे— 'अरे तुम कौन हो जो स्वेच्छापूर्वक इस वन में उपद्रव कर रही हो' ऐसा कहते—कहते वे आनन्दित होते हुए श्रीराधा के निकट आ गये।

(२१३) श्रीकृष्ण के ललाट पर गोरोचन का तिलक लगा हुआ था, चंचल नेत्रों से श्रीकृष्ण को अपने पास आता हुआ देखकर राधारानी भ्रूभंगी पूर्वक कहने लगीं— 'मैं सूर्य पूजा के लिए कुसम चयन कर रही हूँ ऐसा कहती हुई अपने सर्वांग को वस्त्र द्वारा आवरण करती हुई कुसुम चयन के छल से कुछ दूर जाने लगीं।

लीलोद्भ्रान्तं मुहुरथ नुदती, नेत्रद्वन्दं दिशि दिशि सुदती।
वीक्षां चक्रे दलभरविकटां, मल्लीवल्लीं तटभुवि निकटाम्।।२१४।।

(स्तं० स्वयं० ६)

तांमुन्मीलद्भ्रमरविलसितां, लब्ध्वा पुष्पैरुपरि किल सिताम्।
लीनेवाभूद्विकसितमदना, तस्याः प्रान्ते सरसिजवदना।।२१५।।

(स्तं० स्वयं० १०)

भंगुरानंकुरान् निर्दयं छिन्दंती वीरुधः कोमलोद्भेदिनि र्भिन्दंती।
आः कथं लुण्ठसि त्वं मृगांकानने पुष्पराजीमसौ हन्त ! मत्कानने।।२१६।।

(स्तं० स्वयं० १२)

सदात्र चिनुमः प्रसूनमजने, वयं हि निरताः सुराभिभजने।
न कोऽपि कुरुते निषेध–वचनं, किमद्य तनुषे प्रगल्भवचनम्।।२१७।।

(स्तं० स्वयं० १३)

प्रसीद कुसुमं विचित्य सरसा, प्रयामि सरसीरुहाक्ष ! तरसा।
क्रियाद्य महती ममास्ति भवने, विलम्बमधिकं तनुष्व न वने।।२१८।।

(स्तं० स्वयं० १४)

---

(२१४) इसके पश्चात् श्रीराधाजी ने चंचल नयनों से इधर–उधर दृष्टिपात करते हुए वन के प्रान्त देश में निकट ही एक घने–२ पत्रों से सुशोभित मल्लिका की लता को देखा।

(२१५) सरोज वदना श्रीराधा कन्दर्प के प्रभाव से उल्लसित होती हुई, भौरों से घिरी हुई कुसुमों से आच्छादित लता के पीछे जाकर छिप गयीं।

(२१६) श्रीकृष्ण उन्हें कहने लगे– हे चन्द्रानने ! मेरे उपवन में आकर क्यों पुष्प चयन कर रही हो ? तुम निर्दयता पूर्वक मेरे उद्यान को पुष्पों के अंकुर और कोमल–कोमल समस्त लतिकाओं का उन्मूलन कर जाती हो। इस प्रकार लता, पुष्पों को चुराकर क्यों ले जाती हो ?

(२१७) श्रीमती राधारानी कहने लगीं– हम तो प्रतिदिन ही देव पूजा के लिए इस निर्जन वन से पुष्प चयन करके ले जाती है, आज तक तो किसी ने हमें नहीं रोका। आज तुम उग्र होकर इस प्रकार के रुखे वचन क्यों बोल रहे हो?

(२१८) हे कमल नयन ! आज हमारे प्रति प्रसन्न हो, हमें क्षमा करो। हम तुम्हारे जैसी रुखी वाणी बोलना नहीं जानतीं। आज हमारे भवन में पूजा का वृहद् आयोजन है, इसलिए हमको पुष्प चयन करके शीघ्र ही घर जाना है। अतएव वार्तालाप में अधिक विलम्ब करके हमारे पूजन कार्य में बाधा मत डालो।

नियुक्तः क्षितीन्द्रेन तेनास्मि कामं वनं पालयामि क्रमेणाभिराम्।
जनः शीर्णमप्यूद्धरेद्यो दलार्धं हराम्यम्बरं तस्य वित्तेन सार्धं।।२१६।।

(स्तं० स्वयं० १५)

परिज्ञातमद्य प्रसूनालिमेतां लुनीषे त्वमेव प्रवालैः समेताम्।
धृतासौ मया काञ्चनश्रेणिगौरि प्रविष्टासि गेहं कथं पुष्पचौरि।।२२०।।

(स्तं० स्वयं० १६)

स पतिः पिशुनः कुपितः पिशुनः सदने सुखरा जरती मुखरा।
चतुरा गुरुवोभविताकुरवो, व्यसनं पुरुषेश्वर ! किं कुरुशे।।२२१।।

(स्तं० स्वयं० १७)

जलजेक्षण हे कुलजामबलां न हि दुर्यशसा रचयाधवलाम्।
तरसा विरमत्किरणं तरणिम्, दिवि पश्य ततस्त्येजमे सरणिम्।।२२२।।

(स्तं० स्वयं० १८)

---

(२१६) श्रीकृष्ण कहने लगे– महाराज कन्दर्प ने मुझे इस वन की रक्षा के लिए बहुत समय से नियुक्त कर रखा है और मैं इस रमणीय उद्यान की ठीक से रक्षा कर रहा हूँ। यदि कोई भी इस उद्यान के एक टूटे हुए पत्ते का भी अपहरण करेगा तो मैं उसके वस्त्र और अलंकार हरण कर लूँगा।

(२२०) हे काञ्चनगौरी ! हे पुष्प चौरि ! आज मुझे पता चला कि तुम ही मेरे उद्यान के पुष्पों को और नव–पल्लवों को तोड़ कर ले जाती हो, आज मैंने तुम्हें पकड़ लिया है देखूँ आज तुम घर कैसे जाती हो ?

(२२१) श्रीमती राधारानी कहने लगीं – हे पुरुष श्रेष्ठ देखो ! हमारे पति सदा ही हमारे दोषों का अनुसंधान करते हुए हमें दुखी करते हैं और हमारी नानी मुखरा भी बहुत रुखी बातें करने वाली हैं। हमारी सास प्रभृति गुरुजन भी हमें कटु वाक्य बोलने बालीं हैं। इसलिए अब आप भी हमारे प्रति इस प्रकार का अनुचित आचरण न करो। (क्योंकि इस निर्जन स्थान में किसी प्रकार विलम्ब होने से तुम्हारी और हमारी बहुत निन्दा होगी।)

(२२२) हे कमलनयन ! इस अबला को कलंकित न करो। देखो सूर्य की किरणें क्रमशः क्षीण हो रही हैं इसलिए हमारा पथ छोड़ दो और हमें जाने दो।

जाने तव कचपक्षं, संभृतवर–मल्लिकालक्षंम्।
उरसि च कंचुकराजं, ध्रुवमर्वुद–माधवीभाजम्।।२२३।।

(स्तं० स्वयं० १६)

ऐहि तव क्षणमात्रं, विचारयामि क्रमाद्गात्रम्।
तत्त्वे किल निर्णीते, प्रयाहि भवनं तड़ित्पीते।।२२४।।

(स्तं० स्वयं० २०)

न मुधा माधव रचय विवादं, विदधे तव मुहुरहमभिवादम्।
गोकुल वसतौ स्मरमिव मूर्त्तं, न किम् भवन्तं जाने धूर्त्तं।।२२५।।

(स्तं० स्वयं० २१)

वेत्ति न गोपी वृन्दारामं, वृन्दावनमपि भुवि कः कामम्।
अहमिह तदिदं कितव रसालं, कथमवचेष्ये न कुसुमजालम्।।२२६।।

(स्तं० स्वयं० २२)

नेदमत्र कलसरतनि शंस, क्रोधनो नृपतिरेष नृशंसः।
तेन हन्त ! विदिते वनभंगे, यौवतं पतति भीति–तरंगे।।२२७।। (स्तं० स्वयं० २३)

(२२३–२४) श्रीकृष्ण कहने लगे– हे विद्युत गौरी श्रीराधे ! तुम अनंग राजा की अनेक वस्तुएं अपहरण करके ले जा रही हो। देखो तुम्हारी वेणी में लक्ष–लक्ष मल्लिका और तुम्हारी वक्षस्थल की कंचुकी में अरबुद मात्रा में माधवी के कुसुम रखे हुए हैं अतः तुम मेरे पास आओ मैं तुम्हारे अंग–प्रत्यंग का अनुसंधान करके देखूं कि तुम क्या–क्या ले जा रही हो ? वो सब दिखाकर तुम अपने भवन को गमन करो।

(२२५) श्रीराधारानी कहने लगीं– हे माधव हम तुमको पुनः पुनः प्रणाम करती हैं तुम हमारे साथ व्यर्थ की कलह मत करो। तुम कह रहे हो कि मैं कन्दर्प का किंकर हूँ यह तो तुम्हारा कपट वचन है क्योंकि इस गोकुल में तुम्हीं तो मूर्तिमान कन्दर्प हो। तुम्हारी धूर्तता क्या हम जानती नहीं हैं ?

(२२६) हे धृष्टराज – ये तो सभी जानते हैं कि वृन्दा नाम की मेरी एक सखी है उसी का ये वन है। इसलिए इसका नाम वृन्दावन है। इस स्थान पर कन्दर्प का कोई अधिकार नहीं है। यहाँ सम्पूर्ण अधिकार हमारा ही है। इसलिए हम इस वृन्दावन के रसमय फूलों को अवश्य लेंगी। तुम्हारा रोकने का कोई अधिकार नहीं है।

(२२७) हे राधे ! तुम इस प्रकार की बातें मत करो क्योंकि यह कन्दर्प नृपति अत्यन्त निर्दय और क्रोधी है। युवतियों को अपने कानन में इस प्रकार अनुचित कार्य करता हुआ देखकर वह उनको अत्यन्त भयभीत करेगा।

तन्वि ! गेहगमनव्यवसायं, चेत् करोषि श्रुणु रम्यमुपायम्।
अत्र मत्त बहुषट्पदवीरे, लीलया, प्रविश कुञ्ज कुटीरे।।२२८।।

(स्तं० स्वयं० २४)

गोकुले कुलवधूभिरर्चिता, शीलचन्दनरसेन चर्चिता।
राधिकाहमधि कारितामतः, किं करोषि मयि धूर्त्त ! कामतः।।२२६।।

(स्तं० स्वयं० २५)

भ्रलेखां किमरालां त्वं निर्मासि करालां किंवा पश्यसि वामं संरम्भादभिरामम्।
दिष्ट्या काननलोला हेलोत्फुल्लकपोला वृत्ता त्वं हरिहस्ते त्रातान्यो भुवि कस्ते।।२३०।।

(स्तं० स्वयं० २७)

आरुह्य द्रुमवाटीं मुञ्चेमां परिपाटीं गेहान्तस्तव सर्वं जाने भामिनि गर्वम्।
नेदिष्ठः किल भूपः सोऽयं भैरवरुप–तस्याग्रे चल वामे चोलीमर्पय वा मे।।२३१।।

(स्तं० स्वयं० २८)

---

(२२८) हे कृशांगी – यदि तुम्हें गृहगमन की अधिक ही शीघ्रता है तो एक उपाय सुनो – यहाँ मत्त भ्रमर रूपी असंख्य वीरों से रक्षित मेरी कुञ्ज वाटिका है उसमें प्रवेश करो वहाँ तुम्हें कोई भय नहीं रहेगा।

(२२६) श्रीराधा – हे धूर्त ! मेरा नाम राधिका है सच्चरित्रता रूपी चन्दन से मैं अनुलेपिता हूँ अर्थात् इस गोकुल में, मेरे सच्चरित्र की सर्वत्र चर्चा है और समस्त गोकुल की कुलवधुएं मेरा सम्मान करती हैं। ऐसी पवित्रा मुझे पाकर तुम क्या मुझे स्वेच्छापूर्वक कलंकित करना चाहते हो।

(२३०) श्रीकृष्ण– हे प्रिये ! तुम मेरे प्रति वक्र भंगी क्यों कर रही हो ? और मुझ जैसे सर्व प्रिय व्यक्ति के प्रति बार–२ क्रुद्ध होकर क्यों देख रही हो ? मुझे तो अनुभव हो रहा है कि तुम इस परमानन्द कानन में आकर और अपने उत्फुल्ल कपोलों का दर्शन कराती हुई मुझे अत्यन्त प्रसन्न कर रही हो। अतः अब तुम हरि के हाथ में (सिंह या हरि) आ गयी हो। अब तुम्हारी पृथ्वी पर कौन रक्षा करने वाला है ?

(२३१) हे भामिनी ! तुम वृक्षों की वाटिका में आ गयी हो। इसलिए तुम अब घर जाने की आशा छोड़ दो और हे सुन्दरि ! तुम जो ललिता आदि सखियों का गर्व करती हो वह तो केवल घर में ही, यहाँ क्या करेंगी ? यहाँ तो इस समय तुम भयानक कन्दर्प भूपति के समीप आ गयी हो, उसके पास चलो। यदि उसके पास जाने में भय हो तो केवल अपनी कञ्चुकी मात्र मुझे अर्पण कर दो। मेरे संतुष्ट हो जाने पर वह तुम्हें कोई पीड़ा नहीं दे सकेगा।

इति तदुदितनर्माश्रुत्य कर्णामृतं साभ्युदित–तनुविकारान् शश्वदावृत्य यत्नात्।
लपनमिदमसह्यं कामिनः काः स्वकर्णे विदधति तदितो यामीति नीचैर्वदन्ती।।२३२।।
(गोवि० ६/३६)

दयितमपि मनाक् तं वीक्ष्य सावज्ञदृष्ट्या द्रुतगतिचलिताग्रे मुग्धविव्वोकदिग्धा।
क्व चलसि ननु धूर्त्ते ! मामनादृत्यभंग्या हरिरिति स वंदस्तामंशुकान्ते दधार।।२३३।।
(गोवि० ६/४०)

अनुभूयैव तत्स्पर्श मानन्दोत्त्थैर्विचालिता।
नाना भावैः प्रियं राधा तिर्यग ग्रीवं व्यलोकयत्।।२३४।।
(गोवि० ६/४१)

तारा–नर्त्तनसूचितात्यवमतिः स्मेराप्रियास्याम्बुजं धावन्ती तृषितालिनीव कुटिलप्रान्ता निवृत्ता ततः।
किञ्चिद् वाष्प कलाकृलारुणता स्पृष्टाञ्चलोल्लासिनी राधादृष्टिरमज्जयत् प्रियमपारानन्दवारां निधौ।।२३५।।
(गोवि० ६/४२)

(२३२–३३) इस प्रकार श्रीराधा जब श्रीकृष्ण के चोरी आदि का आरोप लगाने वाले हास परिहास युक्त वचनों के बहाने अपने ही समस्त अंगों की सुन्दरता की व्याख्या रूपी स्तुति को सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुई और उनके श्रीअंग में समस्त सात्विक भाव उदय होने लगे वे लज्जावशतः उनको गोपन करती हुई श्रीकृष्ण की उपेक्ष करने लगीं। कहने लगीं– अरे कौन रमणी अपने कानों से कामी पुरुषों के इस प्रकार के वचनों का आदर करती है। इस प्रकार प्रियतम के प्रति ईषत् अवज्ञा दर्शाती हुई "मुग्ध विव्वोक" नामक अलंकार से विभूषित होती हुई शीघ्रता पूर्वक आगे चरण बढ़ाती हुई जाने लगीं। उसी समय श्रीकृष्ण ने 'हे धूर्ते भंगी द्वारा मेरी अवज्ञा करती हुई कहाँ जा रही हो ? ऐसा कहते–कहते आगे बढ़कर श्रीराधा के (श्रीकृष्ण) वस्त्रांचल पकड़ लिये।

(२३४) तब श्रीराधा प्रियतम कृष्ण के कर स्पर्श सुख का अनुभव करती हुई आनन्द से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के भावों को दर्शाती हुई, वक्र–ग्रीवा करके श्रीकृष्ण के प्रति देखने लगीं।

(२३५) अहो ! उस समय श्रीराधा की दृष्टि के माधुर्य का क्या वर्णन करें ? वे अपने नेत्र के ताराओं को नचाती हुई, उनके द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति अतिशय अवज्ञा प्रकट करती हुई, अथवा भ्रमरी की तरह श्रीकृष्ण के मुख पद्म का कुटिल प्रान्त देश से अवलोकन करती हुई किंचित अश्रुकणों से व्याकुल हुई एवं श्रीकृष्ण के वसनांचल ग्रहण करने से अन्तःकरण में हर्ष के कारण किंचित अरुण, उल्लास युक्त दृष्टि से प्रियतम को आनन्द सागर में निमग्न करने लगीं।

आकृष्य तत्करधृतं वसनाञ्चलं सा तिर्यग् दृगञ्चलकलास्मरवाणवृष्ट्या।
विद्धं मुहुर्विदधती प्रियमुन्मदान्धा प्रत्याह तं स्मितसुधा–सुमगाननाब्जम्।।२३६।।
(गोवि० ६/४३)

मधुररसरसरम्यं वस्तुजातं हि यद्यन् निवसति किल लोके प्राकृतेऽप्राकृते वा।
श्रियमुरुतनुचौर्या त्वं हरन्नस्य साधुः स्वयमसि तदिहान्यत्रापि चौर्यापवादी।।२३७।।
(गोवि० ६/४४)

साधुत्वे धार्मिकत्वे च यस्य ते भाति साक्षिणि।
कुमारीनां कोट्वीनां मूर्ध्नि बद्धाञ्जलि स्तुतिः।।२३८।।
(गोवि० ६/४५)

ब्रजभुवि युवराजः सर्वसाद्गुण्यपूज्यः परिणयविधियोग्यानन्तकन्यायुतायाम्।
अभिनव–तरुणोऽप्यप्राप्तपाणिग्रहो य–तदु धृत – नियमोऽसि ब्रह्मचारीति सत्यम्।।२३६।।
(गोवि० ६/४६)

किंवासाधारणः कश्चिद्भाति त्वयि गुणो महान्।
यमार्कण्य न कापि त्वां कन्या वृतवती क्वचित्।।२४०।।
(गोवि० ६/४७)

---

(२३६) इसके पश्चात् श्रीराधा उन्मत्त हुई, कमल नयन श्रीकृष्ण के द्वारा पकड़े हुए अपने वसनांचल को अपनी ओर खींचती हुई एवं कटाक्ष वाणों की वृष्टि से उनको विद्ध करती हुई उनको कहने लगीं।

(२३७) हे कृष्ण ! प्राकृत एवं अप्राकृत लोकों में मधुर सरस एवं रमणीय जितनी भी वस्तुएं हैं उन सबकी शोभा तुमने चोरी करके अपने तन पर धारण किये हुए हैं फिर भी जगत के सामने बड़े साधु बनकर खड़े हो और दूसरों को चोरी का दोष लगाते हो।

(२३८) और क्या कहें चीर हरण के दिन जब समस्त कुमारी कन्याओं ने नग्न वेश से अंजलि बांधकर तुम्हारी जो स्तुति की थी वह स्तुति ही तो तुम्हारी साधुता और धार्मिकता की साक्षी प्रदान कर रही है।

(२३६) और हे कृष्ण ! विवाह के योग्य इस ब्रज भूमि में बहुत कन्यायें हैं और तुम भी समस्त गुणों से युक्त ब्रजराज के पुत्र एवं नव तरुण हो लेकिन फिर भी अभी तक तुम्हारा विवाह नहीं हुआ इससे तो यही स्पष्ट होता है कि तुमने नियम धारण पूर्वक सत्य ही ब्रह्मचर्य ले रखा है।

(२४०) अथवा तुममें कोई ऐसा असाधारण महान गुण दिखायी देता है जिसे सुनकर कोई भी कन्या तुम्हें पतिरूप में वरण करने की इच्छा नहीं करती।

तत्तापाद्भवता मन्ये तुरंगब्रह्मचर्यकम्।
अंगीकृत्य ब्रजे स्वस्य ख्यापिता वटुता मृषा।।२४१।।

(गोवि० ६/४८)

वटुश्चेत् पररामास्यालोकने कुतुकी कुतः ?
वंशीचौरीहृताभिर्वा परस्त्रीभिः कुतो रतिः।।२४२।।

(गोवि० ६/४६)

तद्भवान् वर्णिताख्यातिच्छलेन स्वार्थसाधकः।
कन्यानाञ्च सतीनाञ्च धर्म ध्वंसाय दीक्षितः।।२४३।।

(गोवि० ६/५०)

वटो ! न ते कृत्यमिहास्ति पुष्पा, रामेऽबला स्वैर विहारधाम्नि।
पशूनवंस्त्वं पशुपाल संगी, तच्चारणाय ब्रज शाद्वलेषु।।२४४।।

(गोवि० ६/५६)

कदाप्यनारोपित–पुष्पबल्ली द्रुमैकपोतोऽपि वनाधिकारी।
असंख्य गोचारण लून तत्तन्मूलोऽपि सत्यं विपिनावकस्त्वम्।।२४५।।

(गोवि० ६/५१)

---

(२४१) विवाह न होने के दुख से ही मानों तुमने 'तुरंग ब्रह्मचर्य' धारण कर रखा है अर्थात् जैसे घोड़ा–घोड़ी को देखकर अपनी चंचलता प्रकाश करता है। इसी तरह तुम भी चांचल्य दिखा रहे हो और ब्रज में मिथ्या वटुता विख्यापित कर रखी है।

(२४२) हे कृष्ण ! यदि तुम सत्य ही ब्रह्मचारी हो तो कौतुकवश परायी स्त्रियों का मुख क्यों देखते हो और इस चौरि वंशी से पर स्त्रियों को बुलाकर उनसे प्रेम क्यों करते हो।

(२४३) अतएव ज्ञात होता है कि तुम इस ब्रह्मचर्य के छल से अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हो और लगता है कि कुमारी और साध्वीगण के धर्म को नाश करने के लिए ही तुमने दीक्षा ले रखी है।

(२४४) हे वटु (मधुमंगल) ! स्त्रियों के यथेष्ट विहार स्थान इस पुष्प वाटिका में तुम्हारा कोई कार्य नहीं है। इसलिए तुम गोप बालकों के साथ जाकर पशु चराओं और पशुओं को चराने के लिए नवीन तृण युक्त भूमि में गमन करो।

(२४५) आश्चर्य है ! कि तुमने कभी भी इस वन में किसी फूल का अथवा लता का एक अंकुर भी रोपन (बोना) नहीं किया है। फिर भी इस वन के अधिकारी बनते हो। अपनी असंख्य गौओं को चराने से इस वनभूमि के समस्त वृक्षों को निर्मूल करते रहते हो और फिर भी वन के रक्षक हो यह बिल्कुल असत्य है।

सख्यास्माकं वृन्दया वर्धितं यद्वृन्दारण्यं ख्यातमेतद्विधात्रा।
मह्यं दत्तं तत् सरत्नाभिषेकं राजानंगस्त्वञ्च पातेति सत्यम्।।२४६।। (गोवि० ६/५२)

इति राधायाः सयुक्तिक–वाक्पूयीष मत्तः श्रीकृष्णः सस्मितमाह–
इयं लक्ष्मीवृन्दादपि मधुरवृन्दा मम वधू भवेन्नोचेदारात् सशपथमिमां पृच्छत सतीम्।
श्रुतै यद्दस्पत्योर्न हि भवति भेदस्तटिरतो द्वयोर्नौ नाम्नैव त्रिजगति जनो गायति वनम्।।२४७।।
(स्तवा० कुसुम० ८)

इति कृष्णस्य वागमृतमापीय राधा वृन्दां प्रति नीचैराह–
इदं वृन्दे सत्यं भवति नहि किं वा कथय नः पुरो लज्जां हा हा कथमिव तनोषि प्रियगणे।
ऋतं चेत्तद्रोषच्छलत इव गच्छ क्षणमितो यथा नानावादैर्वयमिह जयामः शठगुरुम्।।२४८।।
(स्तवा० कुसुम० ९)

इदं कर्णे तस्या निगदितवतीष्वासु सहसं मृषारोषादेषा चलकुटिल–चिल्लीक्षणतटैः।
अलं शोनैरेणीदृगति कुटिलाः प्रेक्ष्य सखि ताः सगर्वे गोविन्दे परिषदि ददावुत्तरमिदम्।।२४९।।
(स्तवा० कुसुम० १०)

---

(२४६) हमारी सखी वृन्दा सदा इस वन की देखभाल करती रहती हैं उसी के नाम से यह वृन्दावन विख्यात है और उसने अनेक रत्नों सहित यहाँ मेरा राज्याभिषेक करके यह वन मुझे समर्पित किया है, यही बात सर्वत्र प्रसिद्ध है। बड़े खेद की बात है कि यहाँ कन्दर्प राजा और तुम इसके रक्षक कहाँ से आ गये हो ?

(२४७) इस प्रकार राधारानी के युक्ति सहित वाक्यामृत का पान करके सस्मित कहने लगे (मुस्कराते हुए कहने लगे) अहो ! शत् शत लक्ष्मियों की अपेक्षा भी जो अधिक मधुर हावभावमयी यह वृन्दा तो मेरी पत्नी है यदि तुम्हें विश्वास नहीं होता तो एकान्त में इससे शपथ पूर्वक पूछना और यदि तुम सोचती हो कि पत्नी होने से क्या होता है तो सुनो– वेद कहता है कि स्त्री पुरुष में कोई भेद नहीं होता और वह तो पुरुष की अर्धांगिनी होती है इसलिए हम दोनों के नाम से ही त्रिभुवन में इस वन को जाना जाता है।

(२४८) श्रीराधिका श्रीकृष्ण के इस प्रकार वचनामृत का पान करके वृन्दा जी से धीरे–धीरे पूछने लगीं– हे वृन्दे ! क्या यह सत्य है हमें सब बताओ ! अरे आश्चर्य की बात है ! कि तुम अपने प्रियजनों के सम्मुख भी लज्जा करती हो। यदि यह सत्य नहीं है तो रोष पूर्वक यहाँ से चली जाओ। हम नाना युक्तियों से इस शठ गुरु को जय करेंगी।

(२४९) श्रीराधा के परिहास पूर्वक वृन्दाजी के कान में इस प्रकार कहने पर मृगलोचना वृन्दा देवी मिथ्या कोप प्रकाश करती हुई एवं अपने अरूण वर्ण चंचल नेत्रों से कुटिल दृष्टिपात करती हुई उन कुटिल स्वभावा सखीगणों की ओर देखकर श्रीकृष्ण के प्रति (जो कि वृन्दा के गर्व से गर्वित हो रहे थे) कहने लगीं–

अये! पद्माषण्ड ब्रजनगरभण्ड ब्रजवना दितस्त्वञ्चेदिच्छे रुचिरवनराजत्वमचिरात्।
सखीस्थल्याः षष्ठीं भज निजवधूं तां किल तदा यथा सा तुष्ट्या ते बदरवनराज्यं वितरति।।२५०।।
(स्तवा० कुसुम० ११)

तत इत्थं तत्सौन्दर्यादिस्तवनारभट्या श्रीगान्धर्वाया वृन्दाटव्यां स्वतामर्पयन्ती तमुपालभ्य सोल्लासं पुनराह–
यदेतद्बिम्बत्वाल्लसति मुखमस्याः कमलतो दृशोर्द्वन्दं चञ्चत्कुवलयमृगानामिव चयात्।
उदञ्चान्नासाश्रीः शुकनवयुवात्रोटिवलनाल्लसद्बन्धूकेभ्योऽपि च रुचिघटारज्यदधरः।।२५१।।
(स्तवा० कुसुम० १२)

अये ! दन्ताः कुन्दावलि–करक बीजादि–रचना–दपि स्फीता गीताः कुमुदवनतोऽपि स्मितलवः।
श्रुतिद्वन्दं मुञ्जाललितगुणपुञ्जादपि पुनर्ललाटोद्मल्लक्ष्मीः सुभग–बकपुष्पदतितराम्।।२५२।।
(स्तवा० कुसुम० १३)

चलच्चिल्लीवल्ली भ्रमरवरपंक्तेरपि ततः स्फुरज्जम्बू पक्व प्रचुरफलतोऽप्येतदलकः।
कचोल्लासः स्फूर्जन्मदशिखि–शिखण्डादपि मधौ पिकोत्तान–ध्वानादपि परमुदारं मृदुवचः।।२५३।।
(स्तवा० कुसुम० १४)

---

(२५०) अरे ब्रजनागर भंड (मिथ्या प्रदर्शन करने वाला) तुम्हें यदि इस मनोहर वन का आधिपत्य प्राप्त करने की इच्छा है तो शीघ्र 'सखी स्थली' नामक ग्राम में जाकर षष्ठी रुपा चन्द्रावली नामक अपनी वधू की सेवा करो जिससे सन्तुष्ट होकर वह तुम्हें अपने विलास वन का आधिपत्य प्रदान कर देगी।

श्रीवृन्दावन में राधारानी के सादृश्य की तुलना :–

(२५१) इसके पश्चात् वृन्दाजी राधारानी के सौन्दर्य माधुर्य की प्रशंसा करती हुई एवं वृन्दावन में राधारानी का ही एकमात्र अधिकार स्थापित करने के लिए श्रीकृष्ण का तिरस्कार करती हुई उल्लास पूर्वक पुनः कहने लगी– श्रीराधारानी का मुख, कमल की अपेक्षा भी अधिक शोभा पा रहा है। कमल तो इनके मुख की छाया के समान है और दोनों नेत्र नीलकमल एवं मृग नेत्रों से भी अधिक शोभा पा रहे हैं, नासिका अपनी शोभा से नवयुवक शुक पक्षी की चोंच को तथा अरुण अधर अपनी कान्ति से बान्धुली पुष्प को तिरस्कृत कर रहे हैं।

(२५२) अहो दन्त पंक्ति भी कुन्द कुसुम की पंक्ति और दाड़िम बीज की रचना से भी अधिक शोभित हो रही हैं, इनके हास्य का लेश कुमुद कानन से भी अधिक उज्ज्वल है, इनके कान मुंजा (अर्थात् मुंजा नामक तृण की रस्सी को गोलाकृति करके जैसी शोभा हो) से भी अधिक वक्र रेखा से युक्त एवं ललाट देश बकुल पुष्प से भी अधिक सुन्दर शोभा प्राप्त कर रहा है।

(२५३) श्रीराधारानी के भ्रूलता श्रेष्ठ भ्रमर माला के समान हैं और इनकी अलकावलि और घुंघराले बाल चमकीले और सुपक्व जामुन से भी अधिक काले हैं और इनकी बिखरी हुई केश राशि मयूरों के प्रकाश मान पिच्छ पुञ्ज से भी अधिक शोभाशाली हैं एवं राधारानी के वचन माधुरी बसन्त कालीन कोकिला से भी अधिक सुन्दर है।

नितम्बः शैलानामपि विपुलभारादति गुरुः कुचौ तुंगौ बिल्वादिक–फल कुलादप्यतिघनौ।
भुजायुग्मं भ्राजद्व्रतति–ततितोऽपिहललितं ललामश्रीलोमावलिरपि भुजंगीतति रुचेः।।२५४।।
(स्तवा० कुसुम० १५)

वरोरूरम्भाली क्रमरचनजृम्भादपि गति र्मरालीपालीनामपि चलनरंगान्मृदुतरा।
पदद्वन्दं फुल्लस्थल कमलवृन्दादपि सदा वदान्यत्वं कल्पद्रुम–निकरतोऽपि ब्रजपुरे।।२५५।।
(स्तवा० कुसुम० १६)

दृशोः प्रेम्णा शश्वतक्षरदमृत–निःस्यन्दविततिस्तथा स्वेदस्तोमः कनकजयिर्वष्म प्रपतितः।
मनोगंगा–कृष्णा–विविधसरसीवृन्द विचलत् प्रवाहादप्युच्चैः पुलक उत नीपस्तवकतः।।२५६।।
(स्तवा० कुसुम० १७)

अलं गन्धस्निग्धा कनकगिरिवन्द्या द्युतिरपि स्फुटत् फुल्लच्चम्पावलि–कनकयूथीनिवहतः।
अपि भ्राज द्वक्षः स्थल मतुल–सिंहासन कुलादपि भ्राम्यन्नेत्र क्रमण नटनं खञ्जनगणात्।।२५७।।
(स्तवा० कुसुम० १८)

परञ्चास्यादीनां विकसन भरादेषु किल स क्वचिन्मानान् म्लानिर्वत भवति सैवेष्विह यतः।
अतोऽस्याश्छायैव स्फुटमटविरित्थं खलु भवेत् कथंकारं स्वामिन् भवतु भवतः साम्प्रतमियम्।।२५८।।
(स्तवा० कुसुम० १६)

---

(२५४) इनके नितम्ब देश पर्वत श्रेणी से भी अधिक भारी एवं स्तन युगल उन्नत और बिल्व आदि फल की अपेक्षा भी वृहत, बाहुयुग प्रफुल्लित लता से भी अधिक सुकुमार शोभायुक्त, इनकी रोमावली भुजंगी की कान्ति से भी अधिक सुन्दर है।

(२५५) इनके उरुयुगल (जंघा) श्रेष्ठ केले के वृक्ष की रचना से भी अधिक मनोहर है, गमन राजहंसी को गति से भी मन्थर, चरण युगल प्रस्फुटित स्थल कमल की अपेक्षा भी मधुर और कोमल एवं ब्रजमण्डल में ये चरण कल्प वृक्ष से भी अधिक वदान्य (उदार) होकर विराज रहे हैं।

(२५६) प्रेम के वेग से निरन्तर बहने वाले अमृत के समान दोनों नेत्रों से जो अश्रु निकलते हैं तथा सोने से भी श्रेष्ठ अंग से जो स्वेद बिन्दु गिरते हैं – वे मानों मानस गंगा, यमुना और विविध सरोवरों के जल से भी अधिक श्रेष्ठ हैं, इनके अंग की पुलकावलि कदम्ब कुसुम के केशर की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है।

(२५७) इनकी अंग–कान्ति खिले हुए चम्पक कुसुम के तथा स्वर्ण–यूथी से भी अधिक सुगन्धित एवं स्निग्ध है। सुदीप्त वक्षस्थल की किसी श्रेष्ठ सिंहासन से तुलना नहीं की जा सकती और इनके नेत्र युगल का दृष्टिपात खञ्जन पक्षी से भी अधिक शोभा विस्तार कर रहा है और अंग कान्ति की सोमगिरि भी वन्दना करता है।

(२५८) और हे कृष्ण श्रीराधा रानी का मुखार विन्द किसी समय मान के कारण यदि म्लान भी हो जाता है तो भी इसकी उपमा कमल से ही दी जा सकती है क्योंकि इस वन में केवल कमल ही मलान होते हैं इसलिए यह कानन श्रीमती राधारानी की छाया ही समझना चाहिए। हे स्वामिन् अब बोलो इस कानन को किस प्रकार तुम्हारा कहा जा सकता है।

अपिच मुखादीनां पद्मादिक गुरुपदार्थाः समरुचः प्रपन्नाः सारुप्यं यदति विलसन्ति स्फुटमतः।
अजाण्डे विख्याता प्रकृतिमधुरेयं समगुणा ततः श्रीराधायाः प्रकटमटवीयं प्रियसखी।।२५६।।

(स्तवा० कुसुम० २०)

विराजच्छायात्वे प्रकटतर–सारूप्यवलनात् सखीत्वेऽपि क्रीड़ास्पदमटविरेषा रसमयी।
सदैतस्य एव ब्रजभुवि भवत्येव सुतरां यतश्छाया सख्योः स्फुरति नहि भेदः क्वचिदपि।।२६०।।

(स्तवा० कुसुम० २१)

अदो वृन्दा नान्दीस्तवरसभरैः पोषितवपुः श्रिया पूर्णे घूर्णत्स्मर–नटनतृष्णा–तरलिते।
अहो राधोन्मीलन्मनसिज–महानाटकनटी–नटाचार्यो तस्मिन् नटितुमिव दृष्टिं समतनोत्।।२६१।।

(स्तवा० कुसुम० २२)

विशाखा तु स्नेहस्नपनकृत–रोमाञ्चविलसद्–वपुस्तामलिंगय स्तवरचित–ह्री–श्रीस्मित वृताम्।
सहासं दृगभंग्या गिरिधरमुपालभ्य सहसं विनोदैर्वृन्दायाः शिरसि सुमनोवृष्टिमकरोत्।।२६२।।

(स्तवा० कुसुम० २३)

---

(२५६) और सुनो जब कमल इत्यादि सभी पदार्थ राधाकान्ति के समान हैं, और इनके समस्त अंगों के सदृश होते हुए शोभा पा रहे हैं तब ब्रह्माण्ड में एक श्रीराधा ही वास्तविक रूप से प्रकृति मधुरा विख्यात हैं और यह वृन्दाटवी भी राधारानी के समान ही माधुर्य गुणशालिनी हैं अतः इनकी प्रिय सखी स्वरूपा है।

(२६०) और सुनो यह रसमयी वृन्दाटवी जब राधारानी की छाया के समान हैं और प्रकट रूप से यह इनके तुल्य रूप वाली हैं इसके अतिरिक्त यह वृन्दाटवी सखी भाव से इनकी क्रीड़ास्थली भी है। अतः इस ब्रजभूमि में यह वृन्दाटवी सदा–सदा के लिए श्रीराधारानी की ही है और इन दोनों में कोई भेद नहीं है।

(२६१) इस प्रकार वृन्दा देवी के 'नान्दीपाठ रूपी स्तव' (नाटक के प्रारम्भ में नान्दी पाठ के समान) से आनन्दित हुई मानों कामदेव के नाटक की महानर्तकी के समान नृत्य करने की अभिलाषा से श्रीकृष्ण रूपी नट के प्रति जोकि इस काम नृत्य को दर्शन करने की तृष्णा से चंचल हो रहे थे, दृष्टिपात करने लगीं।

(२६२) किन्तु राधारानी की प्रीति से अभिषिक्त एवं रोमांचित होती हुई श्री विशाखा जी ने अपनी स्तुति के श्रवण से लज्जित एवं ईषत् हास्य करती हुई राधारानी का आलिंगन किया और भ्रूभृंगी विस्तार करते हुए गिरधर श्रीकृष्ण का तिरस्कार करने लगी, और वृन्दा देवी के मस्तक पर आनन्द से भरकर पुष्प वर्षा करने लगीं।

एतन्मधुर–वर्णनाकर्णनेन स्वान्तस्तोषं वहिर्विहस्य सोत्प्रासं कृष्णः पुनराह–
त्वदालेरंगाली मम कमनवृन्दावन तनोः सदंगानां कुञ्जादिक–रुचिरनाम्ना रुचिधनम्।
ध्रुवं हृत्वा म्लानां प्रकटमकरोत्तां कथमिमां–मिदानीं सारूप्यस्तवनमिषतो रक्षसि शठे।।२६३।।
(स्तवा० कुसुम० २४)

तवाल्या एवञ्चेदति गुणगना मत्प्रियवना–दपि श्रेष्ठा सुष्ठु ध्रुवमिह भवन्ति स्फुटममी।
तदा तुच्छं पुष्पं कथमपहरेत् सेयमथवा स्वभावश्चौरानां परधन–जिघृक्षुर्न हि चलेत्।।२६४।।
(स्तवा० कुसुम० २५)

प्रकारैश्छायातो यदति–वरबिम्बस्य महिमा–नमूच्चैर्विस्फार्या स्मरसि मयि राधां वितरितुम्।
कथं तत् स्याद् यस्माद् पतिपरवशेयं तत इमां स चेदाराद् दद्याद् भवति मम तर्हेव ममता।।२६५।।
(स्तवा० कुसुम० २६)

एतद्विचित्ररंगोच्छलित–वाग्भंगीविलाससुधा–स्वर्धुनीतरंगेनोत्तरली–
कृत–हृदवृत्तिदृढनौकां श्रीराधां सस्मितमालोकयन्तीषु सर्वासु सस्मितं ललिताललाप–
पिपासार्त्तः कश्चित् क्षुदतिविवशो वर्त्मनि चलन्मरुक्षेत्रे क्षारोदकमलमभानोऽपि विरसम्।
स्वयम्भु संस्तव्यां हरिपूर–वरस्थामपि सुधां प्रपातुं द्रागिच्छन् जगति किल हास्यास्पदमभूत्।।२६६।।
(स्तवा० कुसुम० २७)

परस्पर परिहास वचन :–

(२६३) इस प्रकार मधुर वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण अन्तःकरण में अत्यन्त सन्तुष्ट हुए लेकिन बाहर से उपहास करते हुए हास्य वचन कहने लगे– हे शठे वृन्दे – तुम्हारी सखी श्रीराधा अपनी अंग कान्ति से मेरे इस मनोहर वृन्दावन रूपी शरीर की कुञ्ज इत्यादि सकल अंगों की कान्ति सम्पत्ति को हरण करके मलिन कर जाती है और अब मैं देखता हूँ कि तुम इन्हें वृन्दावन का सारुप्य देकर इस छल से कैसे इनकी रक्षा करोगी ?

(२६४) यदि तुम्हारी वयस्या राधिका का रूप और गुण मेरे इस प्रिय वृन्दावन से अधिक ही श्रेष्ठ है तो फिर ये राधा इस वन के तुच्छ पुष्पों को क्यों चुराकर ले जाती है ? अथवा यह सत्य है कि चोरी करने वालों का तो यह स्वभाव ही होता है कि वो पराये धन को प्राप्त करके कभी भी उसका हरण करने से विरत नहीं होते।

(२६५) और हे विशाखे ! तुम जो नाना प्रकार से राधारानी को वृन्दावन से अति श्रेष्ठ व्याख्या करके मुझे प्रदान करने का विचार कर रही हो यह कैसे सम्भव हो सकता है ? क्योंकि ये तो अपने पति के आधीन है। हाँ यदि इनके पति ही स्वयं आकर मुझे अर्पण कर दें तब भले ही मेरा इन पर अधिकार हो सकता है।

(२६६) इस प्रकार विचित्र रसास्वादनमयी वाक्चातुर्य रूप मन्दाकिनी में श्रीराधारानी की मनोवृत्ति रूपी सुदृढ़ नौका मानों उसके तरंगों में चंचल हो उठा, ऐसी अवस्था में राधारानी का दर्शन करके हंसती–२ ललिताजी कहने लगी :–

ततो रसिकशेखरं ब्रजराज कुमारं सा दृगञ्चलविभ्रमेन पश्यन्ती सखिं प्रति श्रीराधा व्याजहार–
स्फुटं काली शैव्या चरमवनिता मध्यमवधूर्महापदमा पद्मा परमरुचिकृत कामदकुचा।
वरा षष्ठी चन्द्रावलिरपि लसेद् यस्य महिषि कथं तस्याप्यन्या भवतु भुवि योग्या नववधूः।।२६७।।
(स्तवा० कुसुम० २८)

स्मितरुचि–शिशिरात्तद्वक्त्रपीयूषरश्मेश्चलन्नयन कुरंगोत्प्लावरम्यात् स्रन्तीम्।
पिबति हरिचकोरे नर्मपीयूषधारा मत्रुपदिह सखीनां दृकचकोरीचयोऽपि।।२६८।।
(गोवि० ६/५७)

तत्स्पर्शभीत्येव विवृत्यकन्धरां, कटाक्षनीलोत्पलमालयाप्रियम्।
सा भूषयन्त्यस्फुटभर्त्सनोक्तिका, सावज्ञमग्रेऽपससारलीलया।।२६९।।
(गोवि० ६/५८)

कोई पथिक व्यक्ति प्यास से पीड़ित होकर और क्षुधा से विवश होकर मरुभूमि पर चलते–२ जहाँ खारा पानी भी न मिले, यदि वह स्वर्ग स्थित ब्रह्मा आदि भी जिसकी स्तुति करते है ऐसी सुधापान करने की इच्छा करे तो इस जगत में अवश्य ही हास्यास्पद ही होगा, इसमें क्या संदेह है।

(२६७) इसके पश्चात् राधारानी के रसिक शेखर ब्रजराज कुमार श्रीकृष्ण के प्रति कटाक्ष पात् करके सखियों के प्रति कहने लगीं– काली शैव्या प्रभृति जिनकी छोटी बहुएं और जिनके कुचमण्डल का दर्शन करके ही इनका हृदय कामग्रस्त हो जाता है और महानिधिस्वरूपा परमसुन्दरी सुस्तनी पद्मा जिनकी मध्यम वधू है और श्रेष्ठा षष्ठी चन्द्रावली जिनकी राजमहिषी रूप में शोभा पाती हैं ऐसे व्यक्ति के और किसी योग्य नववधू की क्या आवश्यकता है।

(२६८) तब यह सुनकर श्रीकृष्ण रूपी चकोर ईषत् हास्य करते हुए अपने सुन्दर सुशीतल एवं चंचल नेत्र कुरंगों को नचाते हुए राधारानी के वदनचन्द्र से विगलित परिहास रूपी अमृत का पान करने लगे जिसे देखकर समस्त सखीगनों के नेत्र भी चकोरी की तरह परितृप्त हो गये।

(२६९) इसके पश्चात् श्रीराधा श्रीकृष्ण के स्पर्श भय से भीता होती हुई अपने कन्धे थोड़ा वक्र करके कटाक्ष रूपी नील कमलों से प्रियतम को भूषित करने लगी एवं अस्पष्ट से वचनों द्वारा उनकी अवज्ञा करती हुई भर्त्सना पूर्वक कुछ आगे जाने लगी।

(२७०) तब श्रीकृष्ण श्रीराधा तनुरुपा आश्चर्य नर्तकी का नृत्य देखने के लिए अतिशय लालसायुक्त हुए शीघ्र गमन करते हुए अपने चंचल हाथ से प्रियतमा का चंचल कंचुकांचल धारण करने लगे।

कृष्णोऽथ कान्ता–तनुचित्रनर्त्तकी लास्यावलोकोच्छलितातिलासः।
द्रुतं समेत्योच्चलितेन पाणिना दधार चास्याश्चल कञ्चुकाञ्चलम्।।२७०।।

(गोवि० ६/५६)

कान्ता विभूग्नीकृत–चिल्लीकार्मुका, शोणाक्षिकोणेक्षण वाण–संञ्चयैः।
विखण्ड्य तूर्णं प्रिय धैर्य कंचुकं, लीलारविन्देनतताड़ तं मुहु।।२७१।।

(गोवि० ६/६०)

तस्यारविन्दाहतिजातशातं, विश्वाश्रयेऽस्यापि ममौ न देहे।
ततः सकम्पात् प्रससार वाह्ये, प्रस्वेद वाष्पोत्पुलकच्छलेन।।२७२।।

(गोवि० ६/६१)

तत्स्पर्श–संफुल्लतनोर्नतभ्रुव–श्छिन्ना स्वयं कञ्चुकबन्ध वीटिका।
नीवी च चीनं स्खलदन्तरीयकं, रुन्धे परं स्वेद जलं नितम्बे।।२७३।।

(गोवि० ६/६२)

अथालिवर्गस्मितलोलनेत्रा, तत्पाणिरोधाद् वसनं विमोच्य।
ततोऽपसृत्य द्रुतनीविबन्धे, सा दक्षहस्ताप्यभवद्विहस्ता।।२७४।।

(गोवि० ६/६३)

---

(२७१) तब श्रीराधा अपनी भ्रूधनु वक्र करती हुई लाल–२ नेत्रों से कटाक्ष बाणों द्वारा प्रियतम के धैर्य रूपी कवच को छिन्न करती हुई नील कमल द्वारा बारम्बार उनकी ताड़ना करने लगीं।

(२७२) तब श्रीकृष्ण की मूर्ति, भले ही वह विश्व को आश्रय देने वाले हैं तथापि श्रीराधा के क्रीड़ा कमल द्वारा प्रहार जन्य सुख को अपने भीतर पूरी तरह न समा सकने के कारण मानों वह देह से कम्प, स्वेद, वाष्प और पुलक के रूप में बाहर निकल पड़ा (उनके शरीर में सुदीप्त सात्विक भाव प्रगट होने लगे)।

(२७३) इधर श्रीकृष्ण के स्पर्श से राधारानी की भौहें झुक गयीं और उनका श्रीअंग प्रफुल्लित होने से स्वयं ही उनकी कंचुलिका एवं नीवी के बन्धन छिन्न हो गये। उस समय केवल स्वेद जल ने ही उनके नितम्ब देश पर जो सूक्ष्म उत्तरीय वसन था उसे अवरुद्ध कर लिया।

(२७४) तब सखीगण उनकी इस अवस्था को देखकर हंसने लगीं यह देखकर राधारानी अपने चंचल नयनों से श्रीकृष्ण के हाथ से अपना वसनांचल छुड़ाती हुई वहाँ से थोड़ी दूर जाकर अपने नीवी बंधन को दक्षता पूर्वक ठीक करती हुई अतिशय व्याकुला हो गयीं।

कृष्णोऽपि तावद्वरभाजिपूर्णे, स्वेदाम्बुभिस्तत्स्तनहेमकुम्भे।
स्मरोत्सवारम्भभिषेन पाणि, माधातुमुत्कोऽन्तिकमाप तस्याः।।२७५।।

(गोवि० ६/६४)

कान्ता कथञ्चिद् विनिवध्य नीवीं नेत्रेन पश्यन्त्यरुणाञ्चलेन।
वामेन तं स्मेर सखीः परेन तत्पाणिरोधं प्रति सत्वरासीत्।।२७६।।

(गोवि० ६/६५)

स्मितरुदितविमिश्रं गदगदास्पष्टवर्णम् रमणमनृजुनेत्रा भर्त्सयन्त्युत्सुकापि।
प्रणय सुखज वाम्योच्चालिता सास्य वांच्छा प्रतिहति रहितं तत्पाणिरोधं व्यतानीत्।।२७७।।

(गोवि० ६/६६)

संघट्ट आसीत् करयोर्निरुद्धयो–र्मिथश्चलतकंकणनादमंजुलः।
समीरगत्या चलयोः समन्ततः, कूजन्मदालिव्रजयोरिवाब्जयोः।।२७८।।

(गोवि० ६/६७)

सगद्गदं भर्त्सयन्ती सेयं सस्मितरोदनम्।
तस्मात् कथञ्चिद् विश्लिष्य सेर्ष्यं तस्थौ तदग्रतः।।२७९।।

(गोवि० १०/७)

---

(२७५) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण भी समुत्सुक होकर मानों इस कन्दर्पोत्सव के आरम्भ में घट स्थापन का छल करते हुए राधारानी के कुंकुमलिप्त, स्वेद बिन्दुओं से पूर्ण, स्तन युगल, को अपने हाथ से स्पर्श करते हुए उनके समीप उपस्थित हो गये।

(२७६) तब श्रीराधा किसी प्रकार अपनी नीवी का बन्धन करके अरुण वर्ण वाले बायें नेत्र के कोर से श्रीकृष्ण के प्रति और दायें नेत्र के कोर से हंसती हुई सखियों को देखकर श्रीकृष्ण का हाथ हटाने की चेष्टा करने लगीं।

(२७७) श्रीराधा प्रणय सुख से उत्पन्न वामता द्वारा उद्भ्रान्त हुई उत्सुकता के साथ ईषत् हास्य और रोदन मिश्रित गद्गद अस्पष्ट वचनों से वक्र नेत्रों द्वारा श्रीकृष्ण की भर्त्सना करती करती उनकी अभीष्ट सिद्धि में बाधा डालती हुई, अपने हाथ से उनके हाथ को रोकने लगीं।

(२७८) तब पवन के वेग से हिलते हुए तथा गुनगुन करती हुई भँवर श्रेणियों द्वारा परिशोभित कमल युगल की परस्पर मिलन से जैसी शोभा हो, उसी प्रकार कंकणों की ध्वनि से युक्त राधाकृष्ण दोनों के कर युगल परस्पर मिलन से शोभित हुए।

(२७९) तब श्रीराधा ईषत् हास्य और रोदन मिश्रित गद्गद वचनों से श्रीकृष्ण की भर्त्सना करते–करते किसी प्रकार उनके हाथ से छूटकर ईर्ष्या प्रगट करती हुई उनके सामने आकर खड़ी हो गयीं।

मुखपरिमल–लुब्धस्यालिवृन्दस्य कर्णान्तिकमनुपततः सा झंकृतित्रस्तचेताः।
तदनुचकित–चंचद्दृष्टिभंगीर्दधाना स्वयमपगत–धैर्या सस्वजे प्राणनाथम्।।२८०।।
(गोवि० १०/८)

ततः सखीनां स्मितजातलज्जा, कृतप्रयत्नापि ततोऽपसर्तुम्।
तेनातिगाढं हसतागृहीता, वभौ पयोदे स्थिरचञ्चलेव।।२८१।।
(गोवि० १०/९)

ईर्ष्यात्रपानिर्वृतिवामताभि दृार्ग्देवताभिर्ललनाग्रहैः सा।
आविष्टवाङ् मानस–विग्रहासीत् स्वचेष्टया लोकयतां सुखाय।।२८२।।
(गोवि० १०/१०)

सशपथ–नुति निन्दा तर्जनाक्षेपदैन्यं स्मित रुदित विमिश्रं श्लिष्टमेषा लपन्ती।
प्रियदृढभुजबन्धं मोचयन्ती कराभ्यां भृषमतनुत सालीवृन्द–कृष्णस्य तुष्टिम्।।२८३।।
(गोवि० १०/११)

भ्रमरों की झंकार से भयभीत श्रीराधा का श्रीकृष्ण से मिलन :–

(२८०) तत्कालीन भ्रमर समूह राधारानी के मुखारबिन्द से दूर तक जाती हुई सौरभ से लुब्ध होकर उनके कानों के पास आकर झंकार करने लगे, जिससे वो भयभीत होकर अली श्रेणी के प्रति चकित और चंचल दृष्टि से देखती हुई अधीर होकर स्वयं ही श्रीकृष्ण का आलिंगन करने लगीं।

(२८१) अब श्रीराधा सखियों को हँसता हुआ देखकर लज्जापूर्वक अपना मुख नीचा करके श्रीकृष्ण के हाथ से छूटने का यत्न करने लगीं। लेकिन हास्य वदन श्रीकृष्ण द्वारा प्रगाढ़ भाव से आलिंगित होने के कारण वह अपने आपको छुड़ाने में सफल न हो सकीं, तब दोनों की इस प्रकार शोभा हुई मानों नवजलधर स्थिर सौदामिनी से जड़ित हो।

(२८२) इस समय राधारानी अपने वाक्य, मन और श्रीअंग से ईर्ष्या, लज्जा, सन्तुष्टि और वामतारूपी देवस्त्रियों के गृह से आविष्ट हो जाने पर जैसी दशा हो जाती हो इस प्रकार की चेष्टाएं करती हुई दर्शक ज (सखीवृन्द) को अतिशय सुख प्रदान करने लगीं।

(२८३) श्रीराधारानी अपनी चेष्टाओं द्वारा जैसे शपथ, स्तुति, निन्दा, तर्जन, आक्षेप एवं दैन्य आदि भावों से हास्य एवं रोदन मिश्रित श्लेष वाक्यों का प्रलाप करती हुई अपने हाथों से प्रियतम के दृढ़ बन्धन को छुड़ाने का यत्न करती हुई सखीगणों एवं श्रीकृष्ण के आनन्द का अतिशय रूप से विस्तार करने लगीं।

तयोर्दृढ़ालिंगनतः सुतृप्ताः कम्पादि सम्पन्निचिताः समीक्ष्य।
सखीर्मुदोत्फुल्लमुखीर्निकुञ्जे नान्दीमुखीं तां वदति स्म वृन्दा।।२८४।।

(गोवि० १०/१२)

आश्चर्यम् हरिना राधा गाढमालिंगिता चिरम्।
तदसंगतियुक्तापि निर्वृत्तासीत् सखीततिः।।२८५।।

(गोवि० १०/१३)

अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टेऽस्मिन् स्पर्शलालसा।
स्पर्शेऽस्य सेर्ष्यवाम्यं तच्चित्रमासां विचेष्टितम्।।२८६।।

(गोवि० १०/१४)

नान्दीमुखी तामवदद्वनेश्वरीं लोकोत्तराणां ब्रजसुभ्रुवां सदा।
कृष्णैक सौख्यार्थ शरीरचेतसां तत्तन्न चित्रं किल चेष्टितं यतः।।२८७।।

(गोवि० १०/१५)

---

(२८४) इसके पश्चात् श्रीराधाकृष्ण के दृढ़ आलिंगन के कारण सखीगणों में जो संतुष्टि कम्प आदि सात्विक भावों से अत्यन्त हर्ष के कारण प्रसन्न वदना देखकर वृन्दाजी कुंज में अपने पास स्थित नान्दीमुखी को कहने लगीं।

(२८५) हे नान्दी मुखी ! श्रीराधा के सुख से ही ये सखीगण सुखी होती हैं यह बड़े आश्चर्य की बात है देखो श्रीराधा के श्रीकृष्ण द्वारा कुछ काल तक दृढ़ रूप से आलिंगित दशा को देखकर ये सखीगण श्रीकृष्ण संग न पाकर भी श्रीकृष्ण के आलिंगन दशा को देखकर ये श्रीकृष्ण संग न पाकर भी श्रीकृष्ण के आलिंगन जनित सुख का अनुभव कर रहीं थी।

(२८६) और भी देखो ! इन सकल ब्रज सुन्दरियों की चेष्टा कैसी अद्भुत है कि ये श्रीकृष्ण के दर्शन न पाकर तो उनके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित होती है और दर्शन मिलने पर इनमें उनका स्पर्श करने की लालसा होती है और स्पर्श पाने पर ये ईर्ष्या सहित वाम भाव प्रगट करती है।

(२८७) तब नान्दी मुखी वनदेवी वृन्दा की यह बात सुनकर कहने लगीं– ब्रजांगनाओं की इस प्रकार की चेष्टा कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि इनका शरीर और चित्त निरन्तर प्रतिक्षण श्रीकृष्ण सुख के लिए समर्पित है।

सख्यःश्रीराधिकाया ब्रज कुमुदविधोर्हलादिनीनामशक्तेः सारांश–
प्रेमबल्लयाः किशलयदलपुष्पादि तुल्याः स्वतुल्याः।
सिक्तायां कृष्णलीलामृतरसनिचयैरुल्लसन्त्याममुष्यां जातोल्लासाः–
स्वसेकाच्छतगुणमधिकं सन्ति यत्तन्न चित्रम्।।२८८।।

(गोवि० १०/१६)

विभुरपि सुखरूपः स्वप्रकाशोऽपि भावः क्षणमपि नहि राधाकृष्णायोर्या ऋते स्वाः।
प्रवहति रसपुष्टिं चिद्वि–भूतिरिवेशः श्रयति न पदमासां कः सखीनां रसज्ञः।।२८६।।

(गोवि० १०/१७)

राधा काञ्चनबल्ली, फुल्ला कष्णस्तु फुल्ल तापिञ्च्छः।
अनयोः संगमलक्ष्मीः सुखयति न हि कं सचेतनं लोकम्।।२६०।।

(गोवि० १०/१८)

आसां विशुद्ध प्रणयार्द्र चेतसां तात्पर्यमस्यैव सुखेन चात्मनः।
वाम्यं हि कान्तस्यसुखाय सुभ्रवामतस्दुन्मीलति तस्य संगमे।।२६१।।

(गोवि० १०/१६)

---

(२८८) और देखो श्रीराधा के सुख से सखीगनों को जो सुख की प्राप्ति होती है इसका कारण श्रीराधा के साथ उनका अभेद ही समझना चाहिए। ब्रजरूपी कुमुदगन के लिए जो चन्द्र स्वरूप है ऐसे श्रीकृष्ण की जो आल्हादिनी नाम की शक्ति है। उसी का सारा स्वरूप प्रेम है और राधारानी मानों उसी प्रेम की कल्पलता है और सखीगण उनकी पत्र, पुष्पएवं नव–नव पल्लव स्वरूपा होने के कारण वे श्रीराधा के समान ही है। अतएव श्रीकृष्ण जब अपनी लीलामृत रस से राधारूपी लता का सिंचन करते हैं तब लता के प्रफुल्लित होने के कारण समस्त पत्र पुष्पादि स्वरूपा जो सखीगण हैं वे सिंचन की अपेक्षा शत गुण अधिक उल्लास को प्राप्त करती हैं।

(२८६) हे वृन्दे ! सर्वव्यापक ईश्वर जिस प्रकार अपनी चिद्शक्ति से ही पुष्टि प्राप्त करता है उसी प्रकार अति महान स्वप्रकाश और सुख स्वरूप श्रीराधाकृष्ण का जो प्रेम भाव है वह सखियों के संग बिना कभी भी रसपुष्टि को प्राप्त नहीं होता अर्थात् सखीगण ही उसका सम्यक् रूप से आस्वादन करतीं हैं इसलिए कौन रसज्ञ भक्त सखीभाव का आश्रय नहीं करेगा।

(२६०) श्रीराधा मानों प्रफुल्लित कांचन लता और श्रीकृष्ण कुसुमित तमालतरु स्वरूप इनके मिलन की शोभा किस सचेतन व्यक्ति को सुखी नहीं करती।

(२६१) इसलिए विशुद्ध प्रेम से सरस चित्र वाली इन ब्रज सुन्दरियों को श्रीकृष्ण के सुख से ही प्रयोजन है, आत्मसुख से नहीं। इनमें जो वामता देखी जाती है वह भी केवल श्रीकृष्ण को सुखी करने के लिए ही है इसलिए श्रीकृष्ण से मिलित होने पर इनमें वाम्यभाव का उदय होता है।

अथेप्सितैतद् दृढबाहूवक्षःस्पर्शोत्थितानन्दभरापि राधा।
वाम्योत्थ–वैमत्यमिवाचरन्ती सा भर्त्सयन्ती ललितामवादीत्।।२६२।।

(गोवि० १०/२०)

स–कुसृति–हरिदूत्या कुन्दबल्ल्या मिलन्ती कपटिनि ! ललिते ! त्वं मामिहानीय धृष्टे!
शठकुलगुरुहस्ते नेत्रभंग्या निधाय कलयसि खलभर्त्तुर्धाष्ट्यनृत्यं तटस्था।।२६३।।

(गोवि० १०/२१)

प्रखरा यद्मून्मृद्वी मृदुनालिंगितामुना।
न तच्चित्रं यदा सीद्वां गुणयोः परिवर्तनम्।।२६४।।

(गोवि० १०/२२)

रुष्टैव तुष्टो ललिताऽमुना व्यधात् संलापमुद्यत् स्मितगर्वतर्जनम्।
सतीव्रतध्वंसन धृष्टभूपते ! विधातुमारब्धमिदं नु किं त्वया।।२६५।।

(गोवि० १०/२३)

स्वसखीं पृच्छ ललिते ! किमियं कर्त्तुमुद्यता।
वलात् स्वांगेन संवेष्ट्य मदंगं यात्मसाद्वध्यात्।।२६६।।

(गोवि० १०/२४)

---

(२६२) इसके पश्चात् श्रीराधा स्ववांछित कृष्ण के दृढ़ बाहु और वक्षस्थल के स्पर्श सुख से आनन्द में विह्वल होती हुई पुनः वामता प्रगट करती हुई ललिताजी को तिरस्कार पूर्वक कहने लगीं।

(२६३) हे कपटिनी धृष्टे ललिते ! तुम इस शठ हरि की दूती मालूम पड़ती हो जो कि कुन्दलता के साथ युक्ति करके मुझे यहाँ लाकर नेत्रों के इंगित से इस शठ कुलगुरु के हाथ में समर्पित करके और उदासीन होकर इनका धृष्टता रूपी नृत्य देख रही हो।

(२६४) हे ललिते ! तुम प्रखर स्वभाव वाली होते हुए भी आज इन मृदुस्वभाव वाले श्रीकृष्ण से मिलकर कोमला हो गयी हो इसमें आश्चर्य नहीं क्योंकि तुम दोनों ने मिलकर अपने स्वभाव को परिवर्तित कर लिया है अर्थात् श्रीकृष्ण का कोमल स्वभाव तुममें आ गया है और तुम्हारा प्रखर स्वभाव श्रीकृष्ण में।

(२६५) अब ललिताजी राधारानी के इन वचनों को सुनकर भीतर से सन्तुष्ट होते हुए भी बाहर से क्रोध सा प्रकट करती हुई किंचित हास्य युक्त तर्जन वाक्यों से श्रीकृष्ण के प्रति कहने लगीं – हे सतीव्रत नाशक धृष्ट भूपति तुम ये क्या कर रहे हो ?

(२६६) श्रीकृष्ण कहने लगे – ललिते तुम अपनी सखी से ही पूछो कि ये क्या करने के लिए प्रस्तुत हुई हैं। इन्होंने ही बलात् अपने अंग द्वारा मेरे अंग का वेष्टन (लिपटकर) करके मुझे आत्मसात् कर लिया है।

पुन्नागं त्वां माधवीयं स्वयं यत् फुल्ला सांगैर्वेष्टते युक्तमेतत्।
त्वं यत्तां तैर्वेष्टसे तन्न युक्तम् बल्ल्या वक्षो वेष्ट्यते नामुनासौ।।२९७।।

(गोवि० १०/२५)

मयाप्यस्यै दत्त मंगमनयाप्यात्मसात्कृतम्।
का ते हानिः पुनर्नैतदादातुम् शक्यते मया।।२९८।।

(गोवि० १०/२६)

इयं शूरा क्रूरा जयति ललिता क्रोधवलिता यशः श्वेतामेतां विसृज शठतां स्वांच शठतां।
निजाभिध्यामिद्धयामलिपक ! सुसिद्धां स्वपुरतः प्रजावत्यां सत्यां त्वयि च रतिमत्यां विरचय।।२९९।।

(गोवि० १०/२७)

ललितायाः पुरो राधां वातोऽपि स्पृष्टुमक्षमः।
तत्त्यजामुं नचेदस्मद्धाटी शाटीं निचोलय।।३००।।

(गोवि० १०/२८)

श्रीललिता एवं श्रीकृष्ण का परिहास, मुरली हरण आदि :–

(२९७) यह सुनकर ललिताजी कहने लगीं – हे कृष्ण यह श्रीराधा फुल्ल माधवीलता के समान हैं इन्होंने यदि पुन्नाग तरु स्वरूप (पुरुष श्रेष्ठ) तुम्हारा आलिंगन किया है तो उपयुक्त ही है। परन्तु तुमने वृक्ष रूपी होकर जो लता का वेष्टन किया है यह तो उपयुक्त नहीं है क्योंकि लता ही वृक्ष का वेष्टन करती है वृक्ष कभी लता का वेष्टन नहीं करता। इसलिए हमारी सखी ने जो किया है वह कोई अनुचित कार्य नहीं है।

(२९८) तब श्रीकृष्ण कहने लगे – ललिते ! मैंने श्रीराधा को अपना अंगदान किया है और इन्होंने भी आत्मसात कर लिया है। अब यदि कहो कि इसमें हानि क्या है ? तो सुनो दी हुई वस्तु को पुनः ग्रहण नहीं करना चाहिए इसलिए अब मैं अपने अंग को पुनः ग्रहण करने में समर्थ नहीं हूँ।

(२९९) यह सुनकर ललिताजी अपने वक्षस्थल पर अंगुली धारण करती हुई तर्जन पूर्वक कहने लगीं– देखो कृष्ण मेरा नाम ललिता है और इस समय मैं क्रोधान्वित एवं कठोरता से व्यवहार करूंगी। अतः हे शठ ! अपनी शठता के साथ इस पवित्र यश वाली श्रीराधा का परित्याग कर दो। हे भ्रमर के समान चरित्र वाले यदि तुम्हारी पर स्त्री विषयक स्पृहा है, तो इस अपने सम्मुख विद्यमान और तुमसे प्रेम करने वाली भ्रातृजाया कुन्दलता से ही अपनी वासना की पूर्ति करो।

(३००) पुनः ललिताजी कहने लगीं – हे कृष्ण हमारे सामने तो वायु भी श्रीराधा के अंग का स्पर्श करने में समर्थ नहीं है अतएव इनका परित्याग करो। अन्यथा आगे आकर आक्रमण का सामना करो।

इत्यालपन्त्यां त्वरितं रुषास्यामग्रे सरन्त्यां ससखीकुलायाम्।
कम्पाश्रुरोमाञ्च मुखैश्च भावैरानन्दजै सोऽप्यभवद्विहस्तः।।३०१।।
(गोवि० १०/२६)

कान्तांगसंगजसुखेन विमोहितेऽस्मिन् भीतोऽयमित्यवगते ललिताभियान्यैः।
आदाय कम्पितकरान्मुरलीं स्खलन्तीं सा निर्गता झटिति विश्लथबाहूवन्धात्।।३०२।।
(गोवि० १०/३०)

अथ सखीनां परस्परवाक्यम्— निद्रागमेऽपि सखि! नन्दसुतस्य हर्तुं यां शक्नुवन्ति न पराः पशुपालबालाः।
धन्या कटाक्ष कलया किल मोहयन्ती तां राधिकाद्य पुरतो मुरलीं जहार।।३०३।।
(वि० ४/३४)

राधा स्वगतम् :—
या निर्माति निकेतकर्म रचनारम्भे करस्तम्भनम् रात्रौ हन्त! करोति कर्षनविधिं या पत्युरंकादपि।
गौरीनां कुरुते गुरोरपि पुरः या नीवि विध्वंसनं धूर्त्ता गोकुलमंगलस्य मुरली सेयं ममाभूद्वशा।।३०४।।
(वि० ४/३५)

---

(३०१) यह बात कहते—कहते ललिताजी तत्क्षण अन्यान्य सखियों के साथ आगे आने लगीं, जिसे देखकर श्रीकृष्ण आनन्द जनित कम्प अश्रु और रोमांच आदि भावों से व्याकुल हो गये।

मुरली विषयक वाद विवाद :—

(३०२) कान्ता श्रीराधा के अंग संग सुख से श्रीकृष्ण के सभी अंग शिथिल हो जाने से उनके कांपते हुए कर युगलों से जैसे ही मुरली गिरने लगी तभी राधारानी ने मुरली को संभाल लिया और उनके किंचित शिथिल बाहुबन्धन से अकस्मात् बाहर आ गयीं तब अन्यान्य सखियां विचार करने लगीं कि ऐसा प्रतीत होता है मानों ललिताजी के भय से श्रीकृष्ण ने राधारानी का परित्याग किया है।

(३०३) सखियाँ आपस में कहने लगीं — देखो सखी अन्यान्य गोपकुमारीगण नन्दनन्दन की निद्रिता अवस्था में भी जिस मुरली को हरण करने में समर्थ नहीं होती हैं, श्रीराधा के कटाक्ष बाण धन्य हैं जिनसे विमोहित होकर श्रीकृष्ण के सामने ही उनके हाथ से मुरली लेने में राधारानी समर्थ हो सकीं हैं।

(३०४) श्रीराधा मन में विचार करने लगी जो मुरली गृह कार्य करते समय हाथों को स्तम्भित कर देती है, रात्रि में पतियों की सन्निधि में शयन अवस्था से वन में आकर्षित कर लाती है और गुरुजनों के समक्ष गौरांगी ब्रजरमणियों की नीवी मोचन कर देती है। "वही गोकुलानन्द श्रीकृष्ण की यह मुरली मेरे हाथ में आ गयी है।"

अथ वंशीं प्रत्याह–अच्छिद्रमस्तु हृदयं परिपूर्णमस्तु मौखर्यमस्तु मितमस्तु गुरुत्वमस्तु।
कृष्णप्रिये सखि ! दिशामि सदाशिषस्ते यद्वासरे मुरलि ! मे करुणां करोषि।।३०५।।

(प० २५४)

शून्यं त्वं हृदये सलाघवमिदं शुष्कत्वमंगेषु मे मौखर्यं ब्रजनाथनामकथने दत्तं भवत्या निजम्।
तत् किं नो मुरलि ! प्रयच्छसि पुनर्गोविन्दवक्त्रासवं यं पीत्वा भुवनं वशे विदधती निर्लज्जमुदगायसि।।३०६।।

(प० २५५)

निर्गत्य तस्यां स्वपटाञ्चलेन, संगोपयन्त्यां मुरलीं प्रयत्नात्।
आगत्य तस्याः पुरतो विशाखा, कृष्णेन संलापमसौ व्यधत्त।।३०७।।

(गोवि० १०/३१)

हे कृष्ण ! दोर्बिम्बविधुंत्तद ! त्वं भ्रान्तोऽसि या ते प्रसभं गृहीता।
चन्द्रावलीयं न हि पश्य तारा राधाभिधाऽन्योऽपि च तादृशोऽस्याः।।३०८।।

(गोवि० १०/३२)

---

(३०५) हे मुरली मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम छिद्रों से रहित अर्थात् तुम्हारा हृदय परिपूर्ण हो जाय और तुम्हारी मुखरता (खोखलापन) गुरुता में परिणित हो जाय लेकिन हे कृष्ण प्रिय सखी इस आशीर्वाद के बदले में तुम दिन के समय हमारे ऊपर दया करना।

(३०६) तुम्हारा हृदय जिस प्रकार शून्य है इसी प्रकार हमारा भी हृदय शून्य है (मुरली के अर्थ में भीतर से खाली, गोपिकाओं के अर्थ में श्रीकृष्ण बिना जगत् शून्य) तुम्हारा अंग जैसे शुष्क है उसी प्रकार हमारा अंग भी शुष्क रहता है (बंसी के अर्थ में बांस सूखा है गोपिकाओं के अर्थ में कृष्ण विरह में शुष्कता) तुम जैसे ब्रजनाथ का नाम कीर्तन करने में सदा मुखर हो। इसी प्रकार तुमने अपना ये मुखरता गुण हमकों भी प्रदान कर दिया है। तब हे मुरली तुम गोविन्द की अधर सुधा अकेले ही क्यों पान करती हो। उसे हमें नहीं प्रदान करती जिसे पान करके तुम जगत को वशीभूत करती हुई निर्लज्ज होकर उच्च स्वर से गान करती हो।

(३०७) इसके पश्चात् श्रीराधा श्रीकृष्ण के बाहुबन्धन से निकलकर अपने वस्त्रांचल द्वारा मुरली को यत्नपूर्वक छिपा लिया ओर इधर विशाखाजी राधारानी के आगे आकर श्रीकृष्ण के साथ वार्तालाप करने लगीं।

(३०८) विशाखाजी ने कहा हे श्रीकृष्ण आप राहु (हाथ को गोल करके राहु की सी आकृति वाले) के समान क्या भ्रान्त हो गये हो ? तुमने जिसे बलात् ग्रहण किया है वह चन्द्रावली (चन्द्रसमूह) नहीं है। देखो ना ! यह तो राधा नाम की तारा सामने विराजमान है। यह तुम्हारे आलिंगन के योग्य नहीं है और इनकी सब सखियाँ भी तारों के ही समान है अतः ये भी तुम्हारे आलिंगन के योग्य नहीं है।

अद्वैतास्या विशाखाहमनुराधा त्वियं परा।
इयं ज्येष्ठा धनिष्ठेयं चित्रेयं भरणी त्वियम्।।३०६।।

(गोवि० १०/३३)

अन्या वा कति मे गण्या या चैकास्तीन्दुलेखिका।
सापि त्वद्ग्रहनायोग्या तत्वं चन्द्रावलीं ब्रज।।३१०।।

(गोवि० १०/३४)

विशाखे ! सर्व सुखदा सत्यं त्वं शांकरी तनुः।
वाग्बज्रभीषणा मूर्त्तीर्ललिता शातमन्यवी।।३११।।

(गोवि० १०/३५)

असौ विशाखे ! सुलभां विहाय चन्द्रावलीं तां बहुधो पभुक्ताम्।
सुर्दुलभां वाञ्छति भानवीयां श्रियं रसास्वाद–विशेषलिप्सुः।।३१२।।

(गोवि० १०/३६)

भोगः क्रमेण तारासु सदा राहोर्विराजते।
कौतुकादिन्दुलेखामप्यपुरां स जिघृक्षति।।३१३।।

(गोवि० १०/३७)

---

(३०६) मैं विशाखा हूँ ! जो कि राधारानी से अभिन्न हूँ और ये ललिताजी राधारानी का अद्वितीय स्वरूप है अतः इनका एक नाम अनुराधा है। यह धनिष्ठा है, ये ज्येष्ठा है वो चित्रा है और वे भरनी है।

(३१०) और मैं कितने नाम गिनाऊँ ? एक देखो ये इन्दुलेखा है इसलिए ये भी ग्रहण के योग्य नहीं है। राहु के योग्य तो पूर्ण–चन्द्र ही है इसलिए तुम चन्द्रावली के पास जाओ।

(३११) श्रीकृष्ण कहने लगे – हे विशाखे ! तुम सुखदायिनी हो और कल्याण कारिणी शिवमूर्ति स्वरूपा और ललिता शातमन्यवी (इन्द्रमूर्ति) अर्थात् ये अपने वाक्य रूपी वज्र द्वारा भयंकर स्वभाव वाली है।

(३१२) अब जो भी हो विशाखे यह रसास्वाद का विशेष लिप्सु राहु, अनायास लभ्या बहुधा उपभोक्ता चन्द्रावली का परित्याग करके सुदुर्लभा, भानुश्री की अभिलाषा करता है। यह राहु (मैं) सुलभा चन्द्रावली का परित्याग करके भानु सम्पत्ति राधिका को ही प्राप्त करने की इच्छा करता हूँ।

(३१३) और हे विशाखे ! यद्यपि राहु का भोग क्रमानुसार सभी तारों के प्रति शोभा पाता है तथापि वह कौतुकवश अपूर्व इन्दुलेखा को ग्रहण करने की इच्छा रखता है।

इत्यालपन् श्रीहरिरिन्दुलेखा, मालिंगितुं तत् सविधं जगाम।
दृष्ट्वान्तिके तं चकितापयान्ती, साप्युच्चलदभ्रू स्मितपूर्वमाह।।३१४।।

(गोवि० १०/३८)

धृष्टापगच्छ हे राहो ! न ते योग्येन्दुलेखिका।
पूर्णां चन्द्रावलीं याहि भुङ्क्ष्व ताराः क्रमेण वा।।३१५।।

(गोवि० १०/३९)

तेनालक्षितमागत्य गृहीता ललिताब्रवीत्।
अनुराधा न ते लभ्या विशाखाभोगमन्तरा।।३१६।।

(गोवि० १०/४०)

स्पृष्टा विशाखाप्यथ साब्रवीत्तं राधोपभोगाद् भवता विशाखा।
भुक्तैव तत् किं पुनरेधि धृष्ट ! ज्येष्ठां विहाय क्रमलभ्यभोगाम्।।३१७।।

(गोवि० १०/४१)

ज्येष्ठाप्यलक्षितं स्पृष्टा म्लिष्टं रुष्टा तमब्रवीत्।
चित्राभोगं बिना धृष्ट ! क्लिष्टोऽन्यासां तवाक्रमः।।३१८।।

(गोवि० १०/४२)

(३१४) श्रीकृष्ण यह कहकर इन्दुलेखा का आलिंगन करने के लिए जब उनके निकट जाने लगे तब इन्दुलेखा श्रीकृष्ण को देखकर चकित होती हुई पलायन करने लगी और हँसते हुए भ्रूभंगी विस्तार पूर्वक कहने लगीं।

(३१५) अरे धृष्ट राहु तुम इस स्थान से प्रस्थान करो। इन्दुलेखा तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम तो पूर्ण चन्द्रावली के पास जाओ अथवा क्रमानुसार सभी ताराओं का भोग करो।

(३१६) श्रीकृष्ण इन्दुलेखा की बात सुनकर अलक्षित रूप से आकर ललिताजी को ग्रहण करने लगे। तब ललिताजी कहने लगीं– विशाखा के भोग के बिना कभी भी तुम्हें अनुराधा प्राप्त नहीं हो सकतीं।

(३१७) इस वाक्य को सुनकर श्रीकृष्ण विशाखा का स्पर्श करने लगे तब विशाखाजी कहने लगीं – श्रीराधा के भोग से विशाखा का भोग तो हो गया क्योंकि राधा और मैं तो परस्पर अभिन्न हैं। अच्छा हे धृष्ट ! तुम अपने क्रमानुसार प्राप्त भोग ज्येष्ठा को त्यागकर पुनः मेरे पास क्यों आये हो ?

(३१८) तब श्रीकृष्ण अलक्षित भाव से ज्येष्ठा को स्पर्श करने लगे। तब ज्येष्ठा जी रुष्ट सी होती हुई कहने लगीं– हे धृष्ट चित्रा के भोग के बिना अन्य सबके प्रति तुम्हारा आक्रमण क्लेश का ही कारण होगा।

सहसा विधृता चित्रा तमाहाप्येहि लम्पट।
ग्रहाणां क्रमतो भोगस्तारासुत्क्रमतो नहि।।३१६।।

(गोवि० १०/४३)

तुंगविद्याब्रवीच्चित्रे ! राहोर्नात्र व्यतिक्रमः।
वक्रातिचारगत्यापि ग्रहाणां क्वचिदाक्रमः।।३२०।।

(गोवि० १०/४४)

साप्याह तुंगविद्ये ! त्वं तुलाराशिस्ततोऽमुना।
आक्रान्तायां तु चित्रायां पीड़िताशु भविष्यसि।।३२१।।

(गोवि० १०/४५)

तुंगविद्याह तं स्पृष्टा धृष्ट ! किं रंगदेविकाम्।
आदौ पीड्यां तुलाराशिं हित्वा मां तं जिघृक्षसि।।३२२।।

(गोवि० १०/४६)

सापि स्पृष्टाह तं राहो ! त्वं कन्याराशिभोगकृत्।
पूर्णदृष्टां मीनराशिं चम्पबल्लीं प्रपीड़य।।३२३।।

(गोवि० १०/४७)

साप्याशु विधृताप्याह धूर्त्तेमां कुम्भराशिकाम्।
सुदेवीं त्वरितं याहि यतस्ते व्युत्क्रमा गतिः।।३२४।। (गोवि० १०/४८)

---

(३१६) तब श्रीकृष्ण सहसा चित्राजी को धारण करने लगे और वे भी बोली हे लम्पट तुम यहाँ से प्रस्थान करो। समस्त ग्रहों का (तारा) क्रमानुसार ही भोग होता है क्रम को छोड़कर नहीं।

(३२०) तब तुंगविद्या जी कहने लगीं– हे चित्रे यहाँ तो राहु ने क्रम भंग नहीं किया है। कभी–कभी वक्र और अतिचार गति द्वारा भी ग्रहों का आक्रमण होता है।

(३२१) चित्राजी कहने लगीं – तुंगविद्ये ! तुम भी तुला राशि हो। इसलिए चित्रा के राहु द्वारा आक्रान्त होने पर तुम भी शीघ्र ही उसके द्वारा पीड़ित की जाओगी।

(३२२) श्रीकृष्ण के तुंगविद्या को स्पर्श किये जाने पर तुंगविद्या कहने लगीं– हे धृष्टे पहले पीड़नयोग्या तुला राशि रंगदेवी को छोड़कर तुम मुझे ग्रहण करने की क्यों अभिलाषा करते हो ?

(३२३) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण के रंगदेवी को स्पर्श किये जाने पर रंगदेवी कहने लगीं– हे राहु ! तुम तो कन्या राशि का भोग करते हो अतः मीन राशि चम्पकलता को जाकर अच्छी प्रकार पीड़ित करो।

(३२४) तब श्रीकृष्ण सहसा चम्पक लता को धारण करने लगे तब वह भी उसी प्रकार कहने लगीं – हे धूर्त तुम कुम्भ राशि स्वरूपा सुदेवी के पास गमन करो क्योंकि तुम्हारी गति का व्यतिक्रम हो जायेगा।

स्पृष्टा सुदेवी तं प्राह मधुसूदन ! ते स्पृहाम्।
सर्वां काञ्चनबल्लीयं प्रफुल्ला पूरयिष्यति।।३२५।।

(गोवि० १०/४६)

सा गृहीतावदत् कृष्ण ! चकोरात्र किमागतः ?
स्फुरच्चन्द्रमुखीमासां स्वतृष्णाशान्तये ब्रज।।३२६।।

(गोवि० १०/५०)

अलक्षितं साप्यमुना गृहीता चुचुंम्बिषुं तं विमुखी जगाद।
त्यजान्यजायां शठ ! वंशिकां तां निजप्रियां चुम्ब चुचुम्बिषा चेत्।।३२७।।

(गोवि० १०/५१)

सा चिरात् स्वकरादपच्युतां, मुरलीं तामवधार्य तद्गिरा।
क्व गतेति विलक्षितः क्षणं, स्वदृशं कुन्दलताानने न्यधात्।।३२८।।

(गोवि० १०/५२)

सापि तं चलदृग्भंगया राधिकां तामदर्शयत्।
तद्विज्ञाय तया वंशी तुलस्यां गुप्तमर्पिता।।३२६।। (गोवि० १०/५३)

---

(३२५) श्रीकृष्ण सुदेवी के पास जाने लगे तब सुदेवी जी भी श्रीकृष्ण से कहने लगीं हे मधुसूदन यह प्रफुल्लित कांचनलता तुम्हारे समस्त मनोरथों को पूर्ण कर देगी। तब श्रीकृष्ण कांचनलता का स्पर्श करने लगे तो वह भी कहने लगीं– हे मधुसूदन यह प्रफुल्लित कांचनलता तुम्हारे समस्त मनोरथों को पूर्ण कर देगी।

(३२६) तब श्रीकृष्ण कांचनलता का स्पर्श करने लगे तो वह भी कहने लगीं – हे कृष्ण चकोर ! तुम यहाँ क्यों आये हो ? अपनी तृष्णा शान्ति के लिए हम सब में प्रफुल्लित चन्द्रमुखी के पास गमन करो।

(३२७) श्रीकृष्ण अलक्षित भाव से चन्द्रमुखी को धारण करके उसका मुख चुम्बन करने की इच्छा करने लगे तो वह विमुखी होकर श्रीकृष्ण के प्रति कहने लगी– हे शठ ! यदि तुम्हारी चुम्बन ही करने की इच्छा है तो परायी स्त्रियों का त्याग करके अपनी प्रिया वंशी का चुम्बन करो।

(३२८) इसके पश्चात् चन्द्रमुखी के इन वाक्यों को सुनकर श्रीकृष्ण के मुरली का स्मरण हुआ "हाय मेरे हाथ से मुरली कहाँ चली गयी" ऐसा कहकर कुछ क्षण के लिए विस्मित होकर कुन्दलता के मुख की और देखने लगे।

(३२६) तब कुन्दलता जी ने श्रीकृष्ण को अपनी चंचल नेत्र भंगी द्वारा श्रीराधिकाजी के प्रति संकेत कर दिया। राधारानी उस संकेत को समझकर गोपन भाव से वंशी को तुलसी को अर्पित कर दिया।

सा तां प्रयत्नात् पिहितां विधाय स्थिता विशाखा – ललितादि – पश्चात्।
कृष्णोऽपि राधां समुपेत्य तावद् दिधीर्षुरेनमिदमाललाप।।३३०।।

(गोवि० १०/५४)

मनो विशुद्धं चलमप्यदृश्यं, कटाक्ष कामांकुश–श्रृंगविद्धम्।
विधाय पाटच्चरि ! मे हरन्त्या, न दृश्य वंशीहृतिरद्भुताते।।३३१।।

(गोवि० १०/५५)

बद्धनामि बाहुपाशैस्त्वां लुठाम्यंशुकभूषणम्।
नयामि कुञ्जकारायां स्मरराजेऽर्पयामि च।।३३२।।

(गोवि० १०/५६)

राधाप्यसाधारणभावविद्धा, सावज्ञमालोक्य हरिं चलन्ती।
वंशीविचारच्छलतो निरुद्धा, निवारिते नाप्यमुना गृहीता।।३३३।।

(गोवि० १०/५७)

हरिस्तामाह चौरि ! त्वं वृथा किं चेष्टसे तव।
त्यागो वंश्या न मे यावत्तावद्दोर्बन्धनान्न सः।।३३४।।

(गोवि० १०/५८)

---

(३३०) इसके पश्चात् तुलसी मंजरी ने उस वंशी को यत्न पूर्वक ढक कर विशाखा और ललिता जी के पीछे खड़ी हो गई। श्रीकृष्ण तब राधारानी के निकट आकर उनको पकड़कर कहने लगे,

(३३१) हे चौरि ! मेरे कामादि क्षोमरहित परम निर्मल चंचल एवं अदृश्य (आकार रहित) मन को तुमने अपने कटाक्ष रूपी अंकुश द्वारा विद्ध कर दिया है तो फिर मेरी दृश्या (जो सामने दिखायी दे रही है) वंशी को हरण कर लोगी, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

(३३२) अतएव मैं तुम्हें अपने बाहुरूपी पाश द्वारा बाँधकर तुम्हारे वसन भूषन सब छुड़वा लूँगा एवं तुमको कुंजरूपी कारागार में ले जाकर कन्दर्प महाराज के पास समर्पित कर दूंगा।

(३३३) तब श्रीराधा श्रीकृष्ण के (परिहास जनित) असाधारण भाव से विद्ध सी होती हुई अवज्ञा पूर्वक श्रीकृष्ण के प्रति देखकर 'चलो हटो मुझे स्पर्श मत करो' इस प्रकार कहती हुई जब जाने लगीं तब श्रीकृष्ण ने उनके निवारण किये जाने पर भी वंशी को प्राप्त करने के बहाने से उनको अवरुद्ध कर लिया।

(३३४) एवं राधारानी के प्रति कहने लगे – हे चौरि ! तुम मेरे बाहु बन्धन से मुक्त होने के लिए व्यर्थ चेष्टा क्यों कर रही हो ? जब तक तुम मेरी वंशी का त्याग नहीं करोगी तब तक मैं तुम्हें नहीं छोड़ूगा।

मृषा रुषारालचलाक्षिचिल्ली, लतं समुद्यत्स्मितगर्वितास्यम्।
हरेः पुरस्तावदुपेत्य तूर्णं साटोपतर्जं ललितावदत्तम्।।३३५।। (गोवि० १०/५६)

परांगनासंगमपूतमूर्त्ते ! सतीव्रत–ध्वंसन ! याहि याहि।
स्नातां पवित्रां रविपूजनार्थ, स्पृष्ट्वा छलोक्त्या कुरु मापवित्राम्।।३३६।।
(गोवि० १०/६०)

उन्मादितः स्वाधर–पायनैर्यया त्वं धृष्ट यासीः सुमनः सरोवरे।
वंशी तया ते शठ ! शैव्यया हृता न मन्यसे चेत्तुलसीह साक्षिणि।।३३७।।
(गोवि० १०/६१)

खलः करोति दुर्वृत्तं नूनं फलति साधुषु।
शैव्यया ह्रियते वंशी साध्वी राधा तु दुष्यते।।३३८।। (गोवि० १०/६२)

तया दृशः प्रेरणया निदिष्टां कृष्णे यियासौ तुलसीमभीष्टाम्।
राधापयाता दयितोपरोधात् सौधाकरी मूर्त्तीरिवाम्बुवाहात्।।३३९।। (गोवि० १०/६३)

---

(३३५) इसके पश्चात् ललिताजी मिथ्या क्रोध से अपनी भौहों को वक्र करती हुई ईषत् हास्य युक्त गर्वित वदन से अभिमान पूर्वक तर्जन गर्जन करती हुई तत्क्षण श्रीकृष्ण के सामने आकर उनको कहने लगीं।

(३३६) हे वरांगना संग से पवित्र देह वाले ! हे सतीव्रत ध्वंसकारी जाओ–जाओ सूर्य पूजा के निमित्त स्नान करके पवित्र हुई श्रीराधा को छल पूर्वक स्पर्श करके अपवित्र न करो। (श्लेषार्थ– हे सतीव्रत ध्वंसकारी तुम मत जाओ, तुम रवि सदृश, नेत्रों के प्रकाशक और आनंद प्रद हो अतः रविरूप तुम्हारी ही पूजा के लिए ये स्नान करके पवित्र होकर आयी हैं अपने स्पर्श द्वारा इन्हें और अधिक पवित्र करो।)

(३३७) हे शठ ! तुम धृष्टा शैव्या का अधरपान करके उन्मत्त हो गये थे तब शैव्या ने ही कुसुम सरोवर पर तुम्हारी वंशी चुरा ली थी यदि तुम्हें विश्वास नहीं है तो इस विषय में तुलसी साक्षी है। यह बात सत्य है अथवा मिथ्या इसी से पूछ लो।

(३३८) खल व्यक्ति जो दुराचरण करते हैं निश्चय ही साधुगणों को उसका फल भोगना पड़ता है। आश्चर्य की बात है कि शैव्या ने वंशी चुरायी है और साध्वी राधा पर दोष लगाया जा रहा है।

(३३९) तब ललिताजी ने नेत्रों के संकेत से ''वंशी तुलसी के पास है'' इस प्रकार श्रीकृष्ण को इंगित कर तुलसी को दिखा दिया। श्रीकृष्ण वंशी पाने के लिए जब तुलसी के समीप जाने लगे, तब श्रीराधा श्रीकृष्ण के बाहुबन्धन से बाहर आकर इस प्रकार शोभा को प्राप्त हुई मानों मेघों से चन्द्रमा बाहर प्रगट हो गया हो।

सापींगितज्ञा लघु रूपमंजरी करेऽर्पयित्वा मुरलीमतर्कितम्।
ततोऽपसर्त्तुं विहितोद्यमामुना बलाद् गृहीतोत्पुलकास कम्पिता।।३४०।।
(गोवि० १०/६४)

निधाय कुब्जीकृत पाणिशाखा निजानने साब्रुवतातिदीना।
हा हा कृपालो ! त्यज मामयोग्यां निर्मञ्छनं यामि तवास्मि दासी।।३४१।।
(गोवि० १०/६५)

वंशी न मय्यस्ति यदर्थमाग्रहः शैव्याकरे साद्य मयैव लोकिता।
इत्यालपन्ती चलदृष्टि–संज्ञया सासूचयन्तं प्रति रूपमंजरीम्।।३४२।।
(गोवि० १०/६६

यावद्विहाय तुलसीं मधुसूदनोऽसौ तां मंजरीं विदितवेणु–मरन्दगन्धाम्।
आयाति तावदियमिंगितपण्डिताशु वंशीं निधाय ललितामनु साधु तस्थौ।।३४३।।
(गोवि० १०/६७)

कृष्णोऽपि तां तूर्णमलक्षितागतिः स्वबाहूपाशेन निबध्य सत्वरः।
वंशीं विचिन्वन् कुचपट्टिकान्तरे तामाह सा तस्करि ! ते क्व गोपिता।।३४४।।
(गोवि० १०/६८)

---

(३४०) तब तुलसी मंजरी ने भी इंगित समझकर वंशी का अलक्षित भाव से रूप मंजरी जी के हाथ में देकर उस स्थान से जाने का प्रयत्न करने लगीं। लेकिन श्रीकृष्ण द्वारा बलपूर्वक ग्रहण किये जाने पर पुलकावलि से युक्त होती हुई कम्पित होने लगीं।

(३४१) तब तुलसी मंजरी ने अपने दोनों हाथ जोड़कर अंजलि को मुख तक लाकर अत्यन्त दीन भाव से कहने लगीं – हा हा कृपालु ! हाय मुझ जैसी अयोग्या का परित्याग करो। मैं तुम्हारी बलिहारी जाऊँ। मैं तो तुम्हारी एक दीन दासिका हूँ।

(३४२) जिसको पाने के लिए तुम्हारा इतना आग्रह है वह वंशी तो मेरे पास नहीं है आज ही मैंने उसे शैव्या के हाथ में देखा है। ऐसा कहकर नेत्रों के इंगित से श्रीकृष्ण को रूपमंजरी जी की ओर जाने का संकेत किया।

(३४३) तब श्रीकृष्ण तुलसी का परित्याग करके वेणुरूपी मकरन्द की सौरभ से परिचित श्रीरूप मंजरी जी के पास जैसे ही आये तत्क्षण उन्होंने इंगित को समझकर ललिताजी के पास चुपचाप वंशी को रख दिया और साधु व्यक्ति की तरह सामने आकर खड़ी हो गयी।

(३४४) तब श्रीकृष्ण अलक्षित गति से शीघ्र आकर श्रीरूप मंजरी जी को अपने भुजपाश में बांधकर उनकी कंचुकी में वंशी का अन्वेषण करते हुए कहने लगे – "हे तस्करी वंशी कहाँ छुपायी है।"

साप्यब्रवीत्तं विनिवारयन्ती, लब्धैव चौर्यां मयि साद्य वंशी।
दिष्ट्या भवान् पूर्णमनोरथोऽभूद्, गत्वानयैवाह्वय गोपनारीः।।३४५।।

(गोवि० १०/६६)

निजाभिमर्शेन परांगनातते सतीव्रत दूषयितुं त्वमुत्सुत्कः।
स्वयं विनिह्नुत्यं कुतोऽपि वंशिकां तन्मार्गन व्याजमुपाश्रितोऽधुना।।३४६।।

(गोवि० १०/७०)

ततो दृशास्मै ललितां प्रदर्शय सा तद्वाहु वन्धाच्छिथिलाद्विनिर्गता।
कृष्णोऽपि स स्वागति–शंकया रहस्तां कुन्दवल्ल्यार्पितवंशिकां ययौ।।३४७।।

(गोवि० १०/७१)

उपागतं तं ललिताह कोपना हूं दूरतस्तिण्ठ किमर्थमागतः।
वंशी यदीयं मयि नैव विद्यते धार्ष्ट्येयन चेत्तत्फलमाश्ववाप्स्यसि।।३४८।।

(गोवि० १०/७२)

चिन्तामणीनां चयमन्तिके स्थितं पदापि या नाभिमृशन्त्यवज्ञया।
राधासखीभिस्तव वंशनालिका किमर्थमाभिर्वत सा हृता शठ !!।।३४९।।

(गोवि० १०/७३)

---

(३४५) तब रूप मंजरी जी श्रीकृष्ण को निवारण करती हुई कहने लगीं– मैं चौरि हूँ। वंशी तो मेरे द्वारा आपको मिली जो भी हो आपका परम सौभाग्य है कि वंशी अन्वेषण के छल से मेरी कंचुकी का स्पर्श और आलिंगन द्वारा आपका मनोरथ पूर्ण हो गया। अब जाओ इस वंशी से परायी स्त्रियों का आवाहन करो।

(३४६) और आप अपने आलिंगन से पर रमणियों के सतीव्रत को दूषित करने के लिए उत्सुक हो रहे हो क्योंकि स्वयं ही वंशी को कहीं छिपाकर रख दिया है, उसके अन्वेषण के छल से यहाँ आकर उपस्थित हो गये हो।

(३४७) इसके पश्चात् श्रीरूप मंजरी जी ने नेत्रों के इंगित द्वारा श्रीकृष्ण को ललिताजी की ओर दिखाकर उनके शिथिल भुजबन्धन से शीघ्र बाहर आ गयीं। इधर ललिताजी श्रीकृष्ण के आगमन की शंका से वंशी को शीघ्रता पूर्वक कुन्दलता जी के हाथ में अर्पण कर दिया। इतने में ही श्रीकृष्ण ललिताजी की ओर आने लगे।

(३४८) तब कुपिता श्रीललिता श्रीकृष्ण के समीप आते देख हुँकार पूर्वक कहने लगी – 'दूर रहो' मेरे पास किसलिए आ रहे हो ? यदि मेरे पास वंशी नही निकली तो इस धृष्टता का शीघ्र ही फल पाओगे।

(३४९) हे शठ ! जो निकट स्थित चिन्तामणियों के समूह को भी अवज्ञा करदेती हैं और अपने चरण से भी उसका स्पर्श नहीं करती ऐसी श्रीराधा की सखीगण किसलिए तुम्हारी एक बांस की पौरि वंशी का हरण करेंगी ?

सच्छिद्रया नीरसया कठोरया ययानिशं व्याकुलितं जगत्त्रयम्।
सा स्वामिनो यन्मुरली कराद्गता वृत्तं बहूनां तदिदं सुमंगलम्।।३५०।।

(गोवि० १०/७४)

स्वस्थान–सन्दानित–नीविकुन्तलाः कुर्वन्तु कर्माणि सुखं गृहेऽबलाः।
स्वैरं हरिणोऽपि चरन्तु सप्रियाः सरन्तु शातं सरितः सरित्पतिम्।।३५१।।

(गोवि० १०/७५)

शीतार्त्तनग्नाम्बुनिमग्नकन्यका गणस्य वासांसि हृतानि यन्त्वया।
तेनाचिरात्ते मुरली कराद्गता प्राप्नोति दुःखं पर दुःखदो हि यः।।३५२।।

(गोवि० १०/७६)

हस्त मात्राराता शुष्का सरन्ध्रा वंशकाष्ठिका।
हा हन्त गोकुलेशस्य सर्वस्वं केन वा हृतम्।।३५३।। (गोवि० १०/७७)

व्याजाद् विषन्नमिव तं प्रसमीक्ष्य कृष्णं सावज्ञहास–ललिता वचनावरुद्धम्।
श्रीराधिकामनु निधाय रहोऽस्य वंशीम् साकूतमब्रूवत कुन्दलताभ्युपेत्य।।३५४।।

(गोवि० १०/७८)

---

(३५०) जो मुरली बहुत से छिद्रों (दोष) से युक्त है नीरस एवं काठ की अतः कठोर है जिसकी ध्वनि से त्रिभुवन सदा व्याकुल रहता है ऐसी मुरली के तुम स्वामी हो। अब तुम्हारे हाथ से यदि वह कहीं गिर गयी है तो इससे सबका बहुत मंगल ही है।

(३५१) चलो जो भी हो अब ब्रजरमणियां अपनी नीवी और केश ठीक–ठीक बन्धन कर सकेंगी और अपने गृहकार्य को सुख पूर्वक कर सकेंगी और हरिणियाँ अपने–अपने पतियों के साथ ठीक से तृण–भोजन कर सकेंगी एवं नदियाँ शीघ्रता पूर्वक अपने पति समुद्र को गमन करेंगी क्योंकि अब मुरली ध्वनि से इनकी गति स्तम्भित नहीं होगी।

(३५२) हे कृष्ण तुमने शीत पीड़िता, विवस्त्रा, जलनिमग्ना कन्याओं के जो वसन हरण किये थे उसी कारण से आज आपकी मुरली कहीं हाथ से गिर पड़ी है। यह उचित ही हुआ है कारण, जो व्यक्ति दूसरों को दुःख देते है वे निश्चय ही दुख को प्राप्त होते हैं।

(३५३) अहो ! बड़े दुख का विषय है एक हाथ परिमाण, उस पर भी शुष्क, सछिद्रा, एक बाँस का टुकड़ा जो कि गोकुला नाथ श्रीकृष्ण की सर्वस्व सम्पति ! हाय हाय ! उसको किसने हरण कर लिया ?

(३५४) इसके पश्चात् कुन्दलताजी, ललिताजी के इन परिहास एवं अवज्ञा रूपी वचनों से स्तब्ध से होते हुए श्रीकृष्ण को देखकर वंशी को चुपचाप राधारानी के समीप रखकर वह विपन्न होते हुए श्रीकृष्ण को कपट पूर्ण वाक्यों से कहने लगी –

सच्छिद्रैक–वराटिकार्धमपि यन्मूल्यं न सा जर्जरा या ता मस्करपर्विका तव कराद्यात्वस्तु ते मंगलम्।
का वा हानिरियं विषीदसि कथं पुत्रोऽसि गोपेशितुस्त्वांमेता विहसन्ति हन्त ! मुदिताः श्रुत्वा ग्रियऽहम् ह्रिया।।३५५।।

(गोवि० १०/७६)

सोऽप्याह तां कुन्दलतेऽनभिज्ञा वंशीगुणानां यदिदं ब्रवीषि।
चित्रं न तद् यत् स्वगुणः प्रकाश्यते यथानयासु त्वयि न क्वचित्तथा।।३५६।।

(गोवि० १०/८०)

या या यदेच्छा मम जायतेऽन्त मर्याप्यसाध्या किल हेलयासौ।
तदैव तां तां कुरुते सुसिद्धां नारायणस्यैव चिदाख्य शक्तिः।।३५७।।

(गोवि० १०/८१)

सर्वशक्तियुता सेयं मम सर्वार्थसाधिका।
अलौकिकीं शक्तिमस्या विदन्ति राधिकादयः।।३५८।।

(गोवि० १०/८२)

ललिताः कथं वंशीं न विद्मः कुदृनीनृपाम्।
इमां तन्नीति–कुशलां षिड्गस्य तव बल्लभाम्।।३५९।। (गोवि० १०/८३)

(३५५) हे कृष्ण ! जिसका एक आधी कौड़ी भी मूल्य नहीं है, ऐसी छिद्रयुक्ता एवं जीर्णा बाँस की पर्विका (पौरि) यदि तुम्हारे हाथ से गिर गयी हो तो जाने दो, इसमें तुम्हारी कौन सी हानि हो गयी है ? तुम क्यों इतने दुखी हो रहे हो? तुम तो गोपराज के पुत्र हो। हाय ! बड़े दुख की बात है ये सब ब्रजांगनायें कैसे हर्ष के साथ तुम्हारा परिहास कर रही हैं और मैं ये सुन सुनकर लज्जा से मरी जा रही हूँ।

(३५६) श्रीकृष्ण कहने लगे– तुम वंशी के गुणों से अनभिज्ञ हो तभी इस प्रकार कह रही हो। इसमें आश्चर्य नहीं है क्योंकि यह वंशी इन ब्रज देवियों पर जिस प्रकार अपने प्रभाव का विस्तार करती है वैसा तुम पर नहीं।

(३५७) कुन्दलते ! वंशी के गुणों का मैं अधिक क्या वर्णन करूँ। मैं स्वयं अपनी जिन इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सकता उन सब मेरी वासनाओं को यह वंशी नारायण की चिद्शक्ति की तरह अनायास ही पूर्ति करने में समर्थ है।

(३५८) अतएव समस्त शक्तियों से सम्पन्न, मेरे समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली इस वंशी की अलौकिक शक्ति को तो श्रीराधा आदि गोपियाँ ही जानती हैं।

(३५९) यह सुनकर श्रीललिताजी कहने लगीं– हे कृष्ण तुम्हारी वंशी कुहिनियों (जो नायक नायिका का मिलन कराती है) की नीति में अति कुशल है अतः यह उनकी रानी है और तुम जैसे कामुक की यह प्रियतमा इसे हम क्यों नहीं जानेगीं।

सुधा पारीनारीहृदयकरि–वारीयमनिशं जगद् योषादोषामलसुकृतमोषाति निपुणा।
रमा–गौरी–सौरी–मुख युवतिचौरी त्रिजगति प्रसिद्धा सिद्धा तेऽद्भुतगुण–समृद्धा मुरलिका।।३६०।।
(गोवि० १०/८४)

अवददथ स ललिता खलु चण्डी कुटिलवचन–दृढ़–कण्टकदुर्गां
अपहरति च मुरलीं मम शाढ्याद् वत परिवदति च तामुत मांच।।३६१।।
(गोवि० १०/८५)

इत्याभाष्य हरौ तस्याः संव्यानान्तं जिघृक्षति।
सापसृत्याब्रवीद्भुग्नभ्रूलतं सस्मिताननम्।।३६२।।
(गोवि० १०/८६)

सैवास्मि ललिता कृष्ण ! बहुधा कलिता त्वया।
चलिता वलितालीभिः शठता फलिता न ते।।३६३।।
(गोवि० १०/८७)

इव्युदीर्य ललिता मपयान्तीं, तां निगृह्य वसने स जगाद।
वंशिका–वितरणं न बिना ते, यानमद्य सुलभं स्वगृहाय।।३६४।।
(गोवि० १०/८८)

---

(३६०) यह मुरली अपने अमृत प्रवाह रूपी उद्गार से समस्त गोप–रमणियों के हृदय रूपी हस्ति का बन्धन करने वाली और त्रिभुवन की समस्त नारियों की सुनिर्मल पुण्यराशि को चुराने में अत्यन्त निपुणा है। अन्य स्त्रियों की तो क्या कहें, रमा, गोरी एवं सूर्य पत्नी संध्या प्रमुखा युवतियों को आकर्षण करने में समर्थ है। अतः हे कृष्ण तुम्हारी यह सिद्धा मुरली अद्भुत गुणों से परिपूर्ण है।

(३६१) श्रीकृष्ण कहने लगे – अति प्रखर स्वभाव वाली, कुटिल वाक्य रूपी तीक्ष्ण, कांटों से युक्त दुर्ग स्वरूपा यह ललिता मेरी वंशी को शठतापूर्वक चुराकर अब देखो उल्टा मेरी और मुरली की निन्दा कर रही है।

(३६२–६३) इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण ललिताजी के उत्तरीय वसन का छोर पकड़ने लगे उसी समय ललिताजी थोड़ा दूर हटकर अपनी भौहें वक्र करती हुई हँसते–हँसते कहने लगीं– कृष्ण मैं वही ललिता हूँ जिसका पराक्रम तुम बहुत बार देख चुके हो, अब देखो मैं सखियों के साथ यहाँ से जा रही हूँ और तुम अपनी शठता से कुछ नहीं कर पाओगे।

(३६४) ऐसा कहकर ललिताजी जाने के लिए प्रस्तुत होने लगीं, तब श्रीकृष्ण ने उनका वसन पकड़कर कहा– मेरी बंशी दिये बिना आज तुम घर नहीं जा सकती हो।

त्वया चेन्न ह्रता वंशी कथं भीत्या पलायते।
शोधयित्वा निजांगानि यथेष्टं गच्छ तिष्ठ वा।।३६५।।

(गोवि० १०/८६)

ततः सांशुकमाकृष्य वक्रदृष्ट्याह वीक्ष्य तम्।
अंगानि स्वप्रजावत्याः काममत्त विचारय।।३६६।।

(गोवि० १०/६०)

वंशयस्माभिर्नैव नीता न दृष्टा नोज्मस्यौग्राच्चेत्तथापि त्वमस्मान्।
दास्ये मूल्यं कुन्दबल्लीप्रदिष्टं तच्चेन्नेष्टं तत्सदृक्षां ततोन्याम्।।३६७।।

(गोवि० १०/६१)

मल्लीभृंगयौ श्रीपुलिन्दात्मजे नः सख्यौ शैलेन्द्रालये मद्गिरा ते।
दास्येते ते जर्जरां छिद्रमुक्तामानीयैकां पर्विकां कीचकस्य।।३६८।।

(गोवि० १०/६२)

पुलिन्दानां कन्या मयि परमधन्या रतियुषस्तृणाप्तास्मत् पादाम्बुज–घुसृणलेप–क्षतरुजः।
गिरेर्गुञ्जाधातून् भृशमुपहरन्तिः स्वसहितान् मदीयास्ता दास्यः कथम् तव सख्यः समभवन्।।३६६।।

(गोवि० १०/६३)

---

(३६५) हाँ ललिते यदि तुमने वंशी चोरी नहीं की है तो भय से पलायन क्यों कर रही हो? पहले मुझे अपने सभी अंगों को दिखाकर फिर जहाँ इच्छा हो जाओ या रूको।

(३६६) तब ललिताजी श्रीकृष्ण के हाथ से अपना वस्त्र छुड़ाकर वक्र दृष्टि से श्रीकृष्ण को कहने लगीं– हे कामवत्त तुम अपनी भाभी कुन्दलता के ही अंगों को जाकर देखो।

(३६७) हमने न तो वंशी ली है न देखी है तथापि यदि तुम उग्रता का प्रयोग करना न छोड़ो तो यह कुन्दलता वंशी के बदले में जो मूल्य देने के लिए बोलेगी हम वही मूल्य प्रदान कर देंगी। वह मूल्य यदि तुम्हें स्वीकार न हो तो तुम्हारी वंशी जैसा एक और बाँस का खण्ड (टुकड़ा) तुम्हें लाकर दे देंगी।

(३६८) हे कृष्ण ! गिरि गोवर्धन वासिनी मल्ली और भृंगी नाम की दो पुलिन्द कन्या हमारी सखियाँ हैं हमारे कहने पर वे एक नूतन छिद्र रहित एक बाँस का खण्ड लाकर तुमको प्रदान कर देंगी।

(३६६) 'मल्ली और भृंगी हमारी सखी है' यह बात ललिता जी के मुख से सुनकर श्रीकृष्ण कातर भाव से कहने लगे – 'ये परमधन्या पुलिन्द कन्या तो मेरे प्रति अतिशय अनुरक्ता हैं और मेरे चरण–कमलों में लगा हुआ कुंकुम जब वृन्दावन भूमि के तृणों पर लग जाता है तो ये उसे उठाकर अपने मुख और वक्षस्थल पर लेप कर अपनी कन्दर्प पीड़ा को शान्त करती हैं एवं गोवर्धन से गुंजा और नाना प्रकार के धातु यत्नपूर्वक लाकर मुझे प्रदान करती हैं अतः ये तो मेरी दासी हैं, ललिते ! बोलो ये तुम्हारी सखी कैसे हो गयीं।

वंशी हरसि मे मामप्यवजानासि यत्ततः।
निबध्य दण्डयामि त्वां कोऽसौ रक्षति रक्षतु।।३७०।।

(गोवि० १०/६४)

ललितां पृष्ठतः कृत्वा विशाखा तत्पुरः स्थिता।
नीचैरुपदिशन्तीव सस्मितं सा तमब्रवीत्।।३७१।।

(गोवि० १०/६५)

प्रगतार्थानामर्थो नष्टोद्देशक–सहायतो लभ्यः।
युक्त्या मार्गय तत्त्वं न ह्योग्रेण क्रियासिद्धिः।।३७२।।

(गोवि० १०/६६)

अवदच्चम्पकबल्ली नष्टोद्देश्यर्थ–लोलुपः सुतराम्।
वंशैक पर्विकायै बहुधन हानिः कथममुना क्रियताम्।।३७३।।

(गोवि० १०/६७)

तुंगविद्याह मुग्धे त्वं मर्मज्ञा नासि तच्छृणु।
वश्यैव यस्य सर्वस्वं किं न दद्यात् स तत्कृते।।३७४।।

(गोवि० १०/६८)

---

(३७०) सो जो भी हो ललिते जब तुमने मेरी मुरली चुरायी ही है और ऊपर से मेरी ही अवज्ञा करती जा रही हो, अब मैं तुम्हें बांधकर दण्ड दूंगा देखूं कौन तुम्हारी रक्षा करता है।

(३७१–७२) तब विशाखा जी ललिताजी को पीछे करके श्रीकृष्ण के सामने आकर खड़ी हो गयीं और धीर स्वर में मानों उपदेश देती हुई मन्द हास्य करती हुई बोली – हे कृष्ण जिसकी कोई वस्तु खो जाती है तो वह जो उसके बारे में कुछ जानकारी रखता है (नष्टोद्देशक) उसकी सहायता से वह खोई हुई वस्तु प्राप्त होती है इसलिए अब तुम इसी युक्ति का अवलम्बन करो (किसी नष्टोद्देशक की सहायता लो) तभी तुम्हारी वस्तु मिलेगी उग्रता से कोई कार्य सिद्ध नहीं होगा।

(३७३) चम्पक लताजी कहने लगीं– जो व्यक्ति खोई हुई वस्तु की जानकारी दे वह तो बहुत अर्थ लोलुप होता है। अब ये कृष्ण एक बाँस के टुकड़े के लिए इतने धन की हानि क्यों करने लगे ?

(३७४) तब तुंगविद्या जी कहने लगीं – अरी मुग्धे चम्पकलते ! तुम्हें वास्तविकता का ज्ञान नहीं है। देखो मैं बताती हूँ इन श्रीकृष्ण की वंशी ही सर्वस्व है तो फिर ये उसके लिए क्या नहीं दे सकते।

चौरे नष्टोद्देशकस्य प्रसादात् लब्धे ग्राह्यं वित्तमात्यीयमादौ।
पश्चान्नष्टोदेशिनेऽपि प्रदातुं दण्ड्यादस्माद् भूरिकृत्वेति नीतिः।।३७५।।

(गोवि० १०/९९)

विशाखाह वद स्वामिन यन्नष्टोद्देशिने त्वया।
देयश्चौरे तु यो दण्डस्तज्ज्ञात्वाख्यामि ते हितम्।।३७६।।

(गोवि० १०/१००)

अंकस्रमणिमाले करमर्दफलञ्च चुम्बकं रत्नम्।
परमपि दास्याम्यस्मै यो मे वंशीं समुद्दिशति।।३७७।।

(गोवि० १०/१०१)

हर्त्तुर्हराम्यबर–रत्नभूषणे, तारुण्यरत्नं च घटद्वयस्थितम्।
दोः पाशबद्धं स्मरदण्डनाय, तं निकुञ्ज कारामनु वेशयामि च।।३७८।।

(गोवि० १०/१०२)

साप्याह योग्यमेवैतद्गोपेन्द्रतनयस्य ते।
वंशीञ्च हस्तगां विद्धि यत्त्वं न कृपणायसे।।३७९।।

(गोवि० १०/१०३)

---

(३७५) नष्टोद्देशक की सहायता से पहले तो ये चोर को पकडेंगे फिर दण्डयोग्य उस चोर से ही अपना धन प्राप्त करके तत्पश्चात् नष्टोद्देशक (जिसने वंशी का पता बताया है) को देने के लिए उस चोर से ही धन ग्रहण करेंगे, यही नीति है।

(३७६) विशाखा जी ने कहा – हे स्वामिन ! बोलो आप – नष्टोद्देशक को क्या दोगे ? और चोर को क्या दण्ड दोगे ? पहले मुझे ये सब बता दो ये सब जानकर मैं आपके लिए जो हितकर होगा वो बताऊँगी।

(३७७–७८) श्रीकृष्ण कहने लगे – जो मेरी वंशी की जानकारी देगा मैं उसको अपने गले की पुष्पमाला, मणिमाला, कामरंग नामक फल चुम्बक नामक रत्न और अन्यान्य द्रव्य प्रदान करूँगा और जिसने मेरी वंशी का अपहरण किया है मैं उसके वसन रत्नभूषण एवं घटद्वय में स्थित यौवन रत्न का हरण करके कन्दर्प राजा से दण्डित कराने के लिए अपने भुजपाश में बांधकर उसे निकुंज कारागार में ले जाऊँगा।

(३७९) श्रीविशाखा जी कहने लगीं – तुम तो गोपेन्द्र नन्दन हो अतः तुम्हारा इस प्रकार व्यवहार उपयुक्त ही है अगर तुम इस प्रकार धन देने में कृपणता न करो तो समझो कि वंशी तुम्हारे हाथ में आ गयी।

वंश्युद्देशं कुन्दबल्ल्यैव साक्षाज् जानात्येकाहञ्च तस्याः सकाशात्।
मय्युद्देशः क्लेशकारी कृतः स्याद्दत्त्वोत्कोचं तां ततः पृच्छयत्नात्।।३८०।।

(गोवि० १०/१०४)

अथाह सा कुन्दलतां च हृष्टा दिष्ट्यागतस्ते सखि ! लाभदिष्टः।
उद्दिश्य वंशीं निजदेवराय सुदुर्लभोत्कोचमिमां गृहाण।।३८१।।

(गोवि० १०/१०५)

कुन्दबल्ल्या विशाखायां लग्नायां श्रवसीश्वरि।
इंङ्गितज्ञा न्यधाद् वंशीं निभृतं तुलसीकरे।।३८२।।

(गोवि० १०/१०६)

साकूतं पश्यति ततः कुन्दबल्ल्या मुखं हरौ।
साब्रवीतां विशाखेऽहं न चौरं वेद्मि ते शपे।।३८३।।

(गोवि० १०/१०७)

जानीयां चेद्विनोत्कोचमुद्दिशामि स्वयं हि तम्।
देवृस्वं यन्ममैव स्वं नाहं यूयं यथापराः।।३८४।।

(गोवि० १०/१०८)

---

(३८०) देखो यह अकेली कुन्दलता ही वंशी के बारे में जानती हैं मुझे भी इसी से कुछ जानकारी हुई है अतः इसी कुन्दलता को उत्कोच (धन) देकर इसी से सब जानकारी प्राप्त करो। मेरे बताने से तुम्हें इतनी सुविधा नहीं होगी।

(३८१) तब विशाखाजी प्रफुल्लित अन्तःकरण से कुन्दलता को कहने लगीं– सखी कुन्दलते ! तुम्हारे भाग्य में तो आज बहुत लाभ का योग आ गया है। अपने देवर को वंशी के बारे में बताकर और इस सुदुर्लभ उत्कोच (धन) को ग्रहण करो।

(३८२) इस प्रकार परिहास करती हुई विशाखाजी कुन्दलता के कान में कुछ कहने लगीं– जिसे देखकर राधारानी ने तुरन्त इंगित जानकर चुपचाप वंशी तुलसी के हाथ में दे दी।

(३८३) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण कुछ जानने की इच्छा से कुन्दलता की ओर देखने लगे। कुन्दलताजी विशाखा को कहने लगीं – सखी विशाखे ! तुम्हारी शपथ मुझे चोर के विषय में कुछ जानकारी नहीं है।

(३८४) तुम जैसे इनकी परायी हो मैं तो इस प्रकार नहीं हूँ क्योंकि देवर का धन तो मेरा ही धन है इसलिए यदि मुझे वंशी के बारे में कुछ जानकारी होती तो मैं बिना कुछ उत्कोच लिए ही श्रीकृष्ण को उसका पता बता देती।

वेत्सि हि चौरं त्वमिह मुरल्याः स्वीकुरु रत्नानि च दिश तत्ताम्।
यद्यनुकूला त्वमिह सखि ! स्यास्तर्हि च सा स्वप्रभुकरगा स्यात्।।३८५।।

(गोवि० १०/१०६)

गृहाण पूर्वमुत्कोचं वंशिकां वा समुद्दिश।
वंशिकोत्कोचयोर्लाभे युवयोः प्रतिभूरहम्।।३८६।।

(गोवि० १०/११०)

कृष्णोऽपि कुन्दलतिका–नयनेंगितज्ञः स्वोत्सुक्यमुत्प्रकटयन्निजवंशिकाप्त्यै।
पार्श्वागतः शित–कटाक्षशरैः प्रियायाः स्तब्धो भवन्ननुगया स तया वभाषे।।३८७।।

(गोवि० १०/१११)

निज श्यामरसो वंश्यां यस्त्वया न्यस्यतेऽत्र सः।
विश्वः कृष्णरुचिं कुर्वन् भाति बिन्दुतया स्थितः।।३८८।।

(गोवि० १०/११२)

हृत्वा ते राधया वंशी बिन्दुच्यावाद्वशीकृता।
बिन्दुः स्वचिबुके लग्नोऽप्यज्ञातत्वान्न गोपितः।।३८६।।

(गोवि० १०/११३)

---

(३८५) सखी विशाखे ! यहाँ चोर कौन है अगर इसे तुम निश्चित रूप से जानती हो तो बता दो और इन सब रत्नों को तुम ग्रहण करो। यदि तुम अनुकूल हो जाओ तो निश्चय ही श्रीकृष्ण को मुरली प्राप्त हो सकती है।

(३८६) या तो तुम ये सब धन पहले ही लेलो या वंशी का पता बताकर पीछे ले लेना। श्रीकृष्ण और तुम्हारे बीच में इस वंशी के उत्कोच के विषय में मध्यस्थ रहूँगी।

(३८७) तब श्रीकृष्ण भी कुन्दलता जी के नेत्र के इंगित को समझकर अपनी वंशी को प्राप्त करने के लिए उत्सुक होते हुए जब प्रियतमा श्रीराधारानी के पास आये तो उनके नेत्रों के तीक्ष्ण कटाक्ष शरों से क्षुब्ध से होकर जड़वत खड़े हो गये। तब पास में स्थित कुन्दलताजी श्रीकृष्ण को कहने लगी।

(३८८–३८६) हे श्रीराधे ! श्रीकृष्ण ने वंशी में अपने समस्त श्यामरस (श्रृंगार रस) को भर दिया है और यही मृगमद बिन्दु के रूप में तुम्हारे चिबुक पर स्थित है। अब कुन्दलताजी श्रीकृष्ण से कहने लगीं– राधारानी ने तुम्हारी वंशी को चुराकर मानों समस्त श्याम रस को ही बिन्दु रूप में चिबुक पर धारण कर लिया है। इसी कारण उन्होंने आपको भी पूर्णतया वशीभूत कर लिया है। वंशी को तो उन्होंने गोपन कर लिया है किन्तु अनवधानता (भूल से) के कारण चिबुक पर लगे हुए मृगमद बिन्दु को वह गोपन नहीं कर पायी हैं।

वंश्याश्चिह्न बिन्दुमेनं त्वयदौ दिष्टया दृष्टं स्वाधरेनाहराशु।
पश्चाज्जित्वा न्यायतस्तां गृहीत्वा दण्डोत्कोचावप्यमूं दण्डयोक्तौ।।३६०।।
(गोवि० १०/११४)

सिद्धैव सा मुरलिका तव राधिकायां तां त्वं गृहाण नहि वा मम नात्र हानिः।
उत्कोचमर्थयति मां त्वरितं विशाखामुष्यै प्रतिश्रुतधनं वितराग्रतो मे।।३६१।।
(गोवि० १०/११५)

मुद्रामादौ वंशिकाया गृहीत्वा, दास्याम्यस्मै त्वत्कृतोत्कोचमाशु।
पश्चाद्वंशीं दण्डमुत्कोचमेतां, काराकुञ्जे दण्डयामात्र रुद्धा।।३६२।।
(गोवि० १०/११६)

इति ब्रुवाणं दयितान्तिकागतं कृष्णं समीक्ष्याधर दंशनोद्यतम्।
तं वारयन्ती ललिता मृषारुषा मध्यं तयोरेत्य जगाद सस्मितम्।।३६३।।
(गोवि० १०/११७)

मित्रार्चना नाद्य कृतानयास्याः क्षतेन मालिन्यमहो विधातुम्।
हठात् प्रवृत्तोऽस्यपयाहि किन्ते भीतिर्न देवान्न च लोकधर्मात्? ।३६४।।
(गोवि० १०/११८)

---

(३६०) अतः अब तुम वंशी का चिह्नरूप मृगमद बिन्दु जो कि भाग्यवश स्पष्ट रूप से बाहर दिखायी दे रहा है उसे अपने अधरों से हरण कर लो। इसके पश्चात् न्यायपूर्वक अपनी वंशी को ग्रहण करो और फिर जो इनको दण्ड देना उचित हो वह देकर वंशी की जानकारी देने वाले को भी पर्याप्त धन दो।

(३६१) अब तुम्हारी वंशी राधारानी के पास है। यह तो सिद्ध हो गया, उसे चाहे तुम लो अथवा न लो मेरी इसमें क्या हानि है ? हाँ ! विशाखा जी को शीघ्रता पूर्वक उत्कोच (पुरस्कार का धन) जिसे देने के लिए वचन दिया था वह मेरे सामने दे दो।

(३६२) श्रीकृष्ण ने कहा मैं पहले वंशी का चिह्न (चिबुक पर मृग मद बिन्दु को ग्रहण कर लूंगा तत्पश्चात् इस विशाखा को जो उत्कोच तुमने दिलवाने का वचन दिया है वह भी दे दूंगा और फिर इस राधा को कुञ्ज कारागार में बन्द करके दण्ड देकर अपनी वंशी को तथा उत्कोच में दिये जाने वाले धन को ग्रहण कर लूंगा।)

(३६३) प्रियतम श्रीकृष्ण ऐसा कहकर श्रीराधा के निकट आकर जैसे ही अधर दंशन के लिए उद्यत हुए तो यह देखकर श्रीललिताजी श्रीकृष्ण को निवारण करतीं हुईं दोनों के बीच में आकर मिथ्या क्रोध पूर्वक मन्द हास्य युक्त वदन से कहने लगीं।

(३६४) बड़े आश्चर्य की बात है ! श्रीराधा ने आज अभी सूर्य-पूजा भी नहीं की है और तुम अपने दन्ताघात से क्षत् करके इनको मलिन करने के लिए हठात् उद्यत हो गये हो, शीघ्र यहाँ से चले जाओ। तुम्हें क्या देवता और लोक धर्म का भी भय नहीं है।

हरिस्तामाह हे राधे ! मद्दन्तानां ममापि न।
दोषोऽयं किन्तु ते बिन्दुर्यद्बहिः प्रकटं धृतः।।३६५।।

(गोवि० १०/११६)

चिबुकमनुवसन्नप्येष बिन्दुर्भयात्ते परिचित निजमित्रं मां समीपे समीक्ष्य।
सपदि दशनदुर्गे संप्रविष्टोऽस्यसंगाच्छाशिमुखि ! दशना मे दंशनास्ते वभूवुः।।३६६।।

(गोवि० १०/१२०)

तां कुन्दबल्ल्याह सुचित्रकाव्ये, व्यदर्शि बिन्दुच्युतके स्वशक्तिः।
त्वयेर्षया साभ्यधिकामुनापि, बिन्द्वागमे तत्र कवीश्वरेन।।३६७।।

(गोवि० १०/१२१)

विवृत–स्वगुणोत्कर्षे गुणिनि गुणज्ञा न दोषमायान्ति।
प्रीणन्त्यस्मिंस्तस्मान् मण्डय मंण्मिालया त्वममुम्।।३६८।।

(गोवि० १०/१२२)

---

(३६५) यह सुनकर श्रीकृष्ण श्रीराधा को कहने लगे– हे राधे इस विषय में तो न मेरा और न मेरे दांतों का ही कोई अपराध है। यहाँ तो तुम्हारे इस मृगमद बिन्दु का ही दोष है जिसे तुमने स्पष्ट रूप से बाहर प्रगट कर रखा है।

(३६६) श्रीकृष्ण इस प्रकार कहकर बलपूर्वक चिबुक बिन्दु को विलुप्त करते हुए श्रीराधा के प्रति कहने लगे– हे शशिमुखी ! यह बिन्दु तुम्हारे चिबुक पर अत्यन्त सुन्दरता पूर्वक अवस्थित होने पर भी इसका मुझसे वर्ण साम्य है, अतः यह मुझ परिचित अपने मित्र को अपने पास देखकर तुम्हारे भय से अकस्मात् मेरे दशन रूपी दुर्ग में प्रवेश करना चाहता है अर्थात् अपने माधुर्य से मेरी दन्तश्रेणी का चुम्बन करने की वासना करता है।

(३६७) इसके पश्चात् श्रीकुन्दलता जी श्रीराधा को कहने लगी – हे श्रीराधे तुम कवयित्रियों में प्रधान हो अतः तुमने बिन्दु च्युत अर्थात् बिन्दु जिससे च्युत होता है ऐसे नाम वाले सुन्दर चित्र काव्य को अपनी कवित्त शक्ति से प्रगट किया है और कवि श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने ईर्ष्या करके बिन्द्वागमन (बिन्दु का आगम) नामक चित्र काव्य के द्वारा अपनी उस अधिक कवित्त शक्ति का प्रदर्शन किया है अर्थात् तुमने चिबुक पर कस्तूरी बिन्दु को धारण किया जिससे आकृष्ट होकर श्रीकृष्ण ने उसका चुम्बन किया है।

(३६८) अब यदि कोई गुणी व्यक्ति अपने गुणों का उत्कर्ष प्रकाशित करता है तो दूसरे गुणज्ञ व्यक्ति उसका दोष को न देखकर अपितु उसके गुणों से सन्तुष्ट ही होते हैं। अतएव तुम भी अपनी मणिमाला से इनको विभूषित करो (अर्थात् चुम्बन दान दो)।

देवर–शिशिरगुणैर्यत् सम्प्रति सखि ! कुन्दबल्लि फुल्लासि।
स्वदशन–कुसुमैः पूजय तदधरमरुणं त्वमेवास्य।।३६६।।

(गोवि० १०/१२३)

रुष्टैव कुन्दलतिका वददच्युतं सा सेयं हरेऽतिमुखरा मुखरा–सुनप्त्री।
एषा सदैव ललिता प्रखरा त्वया सा लभ्या कथं नु मुरली मृदुभीरुनात्र।।४००।।

(गोवि० १०/१२४)

एताः प्रगलभाः कुटिला बह्वयस्त्वं मृदुरेकलः।
संरक्ष्य वस्त्रालंकारं तदितः स्वसखीन् ब्रज।।४०१।।

(गोवि० १०/१२५)

परपुरुष–गृध्नुचित्ता धर्माधर्मग–विचार–रहिताश्च।
मामपि तन्निजसंगे कृतार्थयितुमुद्यता एताः।।४०२।।

(गोवि० १०/१२६)

यासां स्वधर्मनिष्ठानां साध्वीनाममलात्मनाम्।
बालेन देवरेनापि सम्भाषनमसाम्प्रतम्।।४०३।।

(गोवि० १०/१२७)

ता नः संदूषयन्त्येता दुरुक्त्या यामि तद्गृहम्।
दत्त्वा मोचय मां बन्धाद् विशाखायै प्रतिश्रुतम्।।४०४।। (गोवि० १०/१२८)

---

(३६६) यह सुनकर रुष्ट सी होती हुई श्रीराधा कहने लगीं– सखी कुन्दलते ! इस समय तुम अपने देवर के शिशिर (शीतल) गुणों से अत्यन्त प्रफुल्लित हो रही हो अतः तुम ही अपने दशन रूपी कुसुमों से अपने देवर रूपी सूर्य के अधरों की पूजा करो।

(४००) तब कुन्दलता भी क्रोध करती हुई श्रीकृष्ण से कहने लगीं– कृष्ण ये श्रीराधा मुखरा की सुन्दरी दोहित्री हैं, इसलिए ये भी अत्यन्त मुखरा हैं और ललिता तो सदा ही प्रखरा है किन्तु तुम मृदु एवं भीरु स्वभाव वाले हो इसलिए इस प्रकार कैसे तुम मुरली को प्राप्त कर सकते हो। अर्थात् यदि तुम भी कुछ प्रगल्भ (चतुर) हो सको तभी मुरली प्राप्त कर सकोगे।

(४०१) और देखो ये सब गोपियाँ बहुत चतुरा हैं और कुटिला हैं। इसके साथ ही ये बहुत संख्या वाली हैं जब कि तुम कोमल स्वभाव वाले और एकांकी हो और तुम्हारा जो एक मात्र सम्बल मुरली था वो भी चला गया। अब अच्छा यही है कि तुम चले जाओ।

(४०२) ये सब पर पुरुष में आसक्त चित्र वाली और धर्म तथा अधर्म का विचार न रखने वाली गोपांगनाएं हैं। जो कि मुझे भी अपने जैसा बनाकर दूषित करने के लिए उद्यत हो रही हैं।

(४०३–४) देवर के बालक होने पर भी उसके साथ मेरे जैसी धर्म निष्ठा वाली, निर्मल स्वभाव वाली पतिव्रताओं के लिए बात करना भी उचित नहीं है, अतएव मैं तो घर जा रही हूँ। विशाखा को जो तुमने उत्कोच देने का वचन दिया है उसे देकर मुझे बन्धन से मुक्त करो।

ततो हसन्नाह हरिर्विशाखा–मेहियेहि रत्नानि गृहान साध्वि।
इतीरययस्तां परिषस्वजेऽसौ, सख्यो हसन्त्यः परिवब्रुरेनम्।।४०५।।

(गोवि० १०/१२६)

ताभिस्तदास्मिन् कलहायमाने, कोलाहले प्रोच्छलिते च राधा।
प्रयत्न–संमूकित–भूषणाली, प्रविश्य कुंजान्तरभून्निलीना।।४०६।।

(गोवि० १०/१३०)

तावत् सशंका तुलसी तु वंशीं वृन्दान्वितं कुंजमगाद् गृहीत्वा।
वृन्दाप्युपादाय करात्ततोस्या निधाय वंशीं ह्रदि तामवादीत्।।४०७।।

(गोवि० १०/१३१)

वंशोत्तंसा वंशिकेऽसि त्वमेका सद्वशानां क्षुद्रवंशोद्भवापि।
या लीलानां हेतुरेतादृशीना मासीद्राधाकृष्णयोरद्भुतानाम्।।४०८।।

(गोवि० १०/१३२)

ततः सखीहास–विलोलनेत्रा सगद्गदं कृष्णमधिक्षिपन्ती।
तद्बाहुबन्धान्निविड़ात् प्रयत्नान् निर्गत्य रोषादवदद् विशाखा।।४०९।।

(गोवि० १०/१३३)

---

(४०५) यह सुनकर श्रीकृष्ण हँसते–हँसते विशाखाजी से कहने लगे– साध्वी ! आओ आओ 'रत्नों को ग्रहण करो'। ऐसा कहते–कहते विशाखाजी को आलिंगन में बाँध लिया, तब सब सखीगणों ने भी हँसते–हँसते जाकर श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर लिया।

(४०६) उस समय सखीगणों के सहित श्रीकृष्ण कलह करने लगे तब उच्च ध्वनि से कोलाहल होने लगा। श्रीराधा उस समय यत्न पूर्वक अपने आभूषणों की ध्वनि न करते हुए चुपचाप कुंज में जाकर छिप गयीं।

(४०७) तब तुलसी मंजरी ने शंकित होकर वंशी को जिस कुंज में वृन्दा जी थीं उस कुंज में जाकर वंशी वृन्दा जी को दे दी और वृन्दा जी ने भी उस वंशी को ग्रहण करके अपने वक्षस्थल में छिपाकर कहने लगीं–

(४०८) हे वंशिके ! तुम सद्वंशगणों के बीच में एक क्षुद्र वंश में उत्पन्न हुई हो लेकिन फिर भी तुम वंश श्रेष्ठा हो क्योंकि तुम राधाकृष्ण की इस प्रकार अद्भुत लीला का कारण बन गयी हो।

(४०९) इसके पश्चात् विशाखा समस्त सखियों को अपनी ओर हँसते हुए देखकर चंचल नयनों एवं गद्गद स्वर से श्रीकृष्ण के प्रति भर्त्सना करते–करते अत्यन्त कठिनता से उनके भुजबन्धन से बाहर आकर रोष पूर्वक कहने लगी–

न स्मः स्वीयास्तत्कृतो वा सहाया ग्राह्यं वित्तं ते कथं नः परस्य।
तस्मादर्थोद्देशिकायै निजायै देह्यैतत्वं भ्रातृपत्न्यै शठेश।।४१०।।

(गोवि० १०/१३४)

कुन्दालि ! त्वं किं प्रगल्भापि मुग्धा जाता कस्माद् यत् स्वदेवुर्धनं स्वम्।
हित्वा मोग्ध्यादन्यदीयं चिकीर्षुर्मालिन्यं नस्तेन किंवा करोषि।।४११।।

(गोवि० १०/१३५)

तामव्रवीत कुन्दलता विशाखे ! ददात्यसौ वो वरसुद्विजाभ्यः।
धनं वदान्यो निजधर्मवृद्धयै निषिध्य पापं किमहं विदध्याम्?।४१२।।

(गोवि० १०/१३६)

चेत् प्रीतिदानमस्येदं किं भीताः स्थः प्रतिग्रहात् ?
गृहीत्वा द्विगुनं कृत्वा यूयं वितरताचिरात्।।४१३।।

(गोवि० १०/१३७)

चित्राब्रवीद्धनमिदं निजवेतनत्वात् स्वीयं सखि ! त्यजसि किं परकीयबुद्धया?
आढ्यास्यनेन न कृतिस्तव चेत् स्वसरव्यै स्वस्याग्रतः सपदि दापय कुन्दबल्ल्यै।।४१४।।

(गोवि० १०/१३८)

---

(४१०) हे शठराज ! हम तुम्हारी आत्मीय नहीं है और न ही हम तुम्हारे किसी कार्य में सहायक हैं, तुम पराये हो और तुम्हारा धन भी पराया है। हमें उसका ग्रहण करने से क्या प्रयोजन है ? अतएव तुम अपनी वंशी की सूचना देने वाली अपनी भाभी कुन्दलता के पास जाकर उसे ही यह (आलिंगन) धन दो।

(४११) इसके पश्चात् विशाखा कुन्दलता से कहने लगी– सखी कुन्दलते ! तुम इतनी चतुर होते हुए भी इतनी भोली क्यों बन रही हो। अपने देवर के धन का परित्याग करके मुग्ध–तावश उस धन को दूसरे को देने की इच्छा करती हो। उस धन से हमें क्यों मलिन करती हो?

(४१२) यह सुनकर कुन्दलता विशाखाजी से कहने लगी– यह दाता कृष्ण तुम जैसी वरसु द्विजाओं (अर्थात् सुन्दर दाँतो वाली श्लेषार्थ–उत्कृष्टा ब्राह्मणी) को धन दान कर रहे हैं मैं निषेध करके पाप की भागी क्यों बनूं।

(४१३) और यदि तुम यह विचार करती हो कि श्रीकृष्ण ने यह प्रीतिपूर्वक दान दिया है तो इसे ग्रहण करने में इतनी भयभीत क्यों हो रही हो ? इसे ग्रहण करके और इसका दुगुना श्रीकृष्ण को प्रतिदान कर दो।

(४१४) तब चित्राजी विशाखाजी को कहने लगीं – सखी विशाखे ! यह धन तो तुम्हारा अपना वेतन है इसे पराया समझकर क्यों त्याग करती हो। इस धन से तुम सम्पन्न हो गयी हो। यदि अब तुम्हें इसकी आवश्यकता नहीं है तो अपने सामने स्थित इस कुन्दलता को ही इसे प्रदान कर दो।

पुनः कौन्द्यब्रवीच्चित्रे ! स्वरत्नं दीयतेऽमुना।
नांगीकुरुत चेत् कास्य हानिस्तत् स्वगृहे स्थितम्।।४१५।।

(गोवि० १०/१३६)

कृष्णादानं प्रदानन्ते क्षुदास्वेतासु नोचितम्।
सुकलः सुकलायां त्वं राधायां तत्तदाचर।।४१६।।

(गोवि० १०/१४०)

अन्विष्य तामथ दृशा हरिरप्यपश्यन् कुत्राप्युवाच ललितां क्व नु गोपितासौ।
चौरी त्वया कुटिलया स्वसखी पुरो मे आनीयतामितरथा त्वमिहासि दण्ड्या।।४१७।।

(गोवि० १०/१४१)

साप्याह प्रतिभूर्नाहं का जानाति क्व सा गता।
कुरु राज्यं तयात्र त्वं योग्यया याम्यहं गृहम्।।४१८।।

(गोवि० १०/१४२)

एकाब्रवीत् सा स्वगृहं प्रयाता, पराब्रवीत् सूर्यसमर्चनायै।
अन्याब्रवीन्मानसजान्हवीं ते स्पृष्टाऽपवित्रा पुनराप्लवाय।।४१९।।

(गोवि० १०/१४३)

---

(४१५) कुन्दलता कहने लगी – चित्रे ! श्रीकृष्ण तुमको अपना धन प्रदान कर रहे हैं यदि तुम इसको ग्रहण नहीं करती हो तो इसमें इनकी क्या हानि है ? इनका धन इनके घर में ही रहे।

(४१६) अब कुन्दलता श्रीकृष्ण से कहने लगी– कृष्ण इन सब क्षुद्र हृदय वाली गोपिकाओं से तुम्हारा आदान प्रदान उचित नहीं है क्योंकि तुम जैसे सुकल (उत्तम दाता–भुक्ता) हो तो अपने जैसी सुकला (उत्तम देने और भोगने में समर्थ) राधा से ही आदान प्रदान करो।

(४१७) यह सुनकर श्रीकृष्ण श्रीराधा का अन्वेषण करने लगे और उनको न देखकर ललिताजी से कहने लगे– ललिते ! तुम अत्यन्त कुटिला हो तुमने अपनी चौरि सखी राधा को कहाँ छिपा दिया है उसे मेरे सामने लाओ। यदि नहीं लाओगी तो मैं तुमको ही यथोचित दण्ड दूँगा।

(४१८) यह सुनकर ललिताजी कहने लगीं– मैं इसके लिए उत्तरादायी नहीं हूँ। क्या जाने वे कहाँ गई हैं तुम अपने योग्य उनके साथ यहाँ राज्य करो मैं तो घर जा रही हूँ।

(४१९) तब कोई एक सखी कहने लगी–श्रीराधा घर चली गयी हैं, और एक सखी कहने लगी वे तो सूर्य देव की पूजा करने गयी हैं। तब एक और अन्य सखी कहने लगी– तुमने उनका स्पर्श करके उन्हें अपवित्र कर दिया है, इसलिये वह पुनः मानसी गंगा में स्नान करने गयी हैं।

इत्यालीभिः प्रलब्धोऽसौ पश्यन् कुन्दलताननम्।
तया दृशा निकुञ्जाय प्रेरितस्तं प्रविष्टवान्।।४२०।।

(गोवि० १०/१४४)

तस्मिन् प्रविष्टेऽथ निकुञ्जगह्वरं चतुर्षु सख्योऽथ स कुन्दबल्लिकाः।
बद्वा लतापाशचयैः कवाटिका–द्वारेषु कुञ्जांगण एव ताः स्थिताः।।४२१।।

(गोवि० १०/१४५)

कान्तं वीक्ष्यान्तिकायातं सापसर्त्तुं कृतोद्यमा।
अलब्धनिर्गमा द्वार्षु तल्पं नीतामुना बलात्।।४२२।।

(गोवि० १०/१४६)

स्मरदावप्रतप्तोऽसौ राधां–सुरतरंगिनीम्।
रहोलब्धा यथावाञ्च्छं रेमे कृष्णमतंगजः।।४२३।।

(गोवि० १०/१४७)

भ्रुभेदः स्मितसंवृतो नही नहि त्युक्तर्मदेनाकुला विश्रान्तोधति–पाणिरोधरचनं शुष्कं तथा क्रन्दनम्।
सृष्टो यः सखि! राधया मुहुरयं संगोपनोपक्रमो भावस्तेन हृदि स्थितो मुरभिदि व्यक्तः समन्तादभूत्।।४२४।।

(वि० ७/३६)

श्रीकृष्ण का कुञ्ज में प्रवेश और विविध विलास आदि :–

(४२०) श्रीकृष्ण इस प्रकार सखियों द्वारा प्रताड़ित होकर कुन्दलता के मुख की ओर देखने लगे तब उन्होंने उन्हें इंगित पूर्वक निकुंज की ओर बता दिया और श्रीकृष्ण ने भी उस कुंज में प्रवेश किया।

(४२१) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण के निकुंज गृह में प्रवेश करने पर कुन्दलता के सहित सखियों ने लतापाश से निर्मित द्वार को बन्द कर दिया और कुंज के बाहर अवस्थित हो गयीं।

(४२२) तब श्रीराधा अपने प्रियतम को निकट आता हुआ देखकर पलायन करने के लिए उद्यत होने लगी तो द्वार से बाहर न जा सकीं तभी श्रीकृष्ण बलपूर्वक उन्हें शैया पर ले आये।

(४२३) इसके पश्चात् जिस प्रकार मदमत्त गजराज दावानल से संतप्त होकर स्वेच्छानुसार जल विहार करता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण रूपी मत्त हस्ति कन्दर्प रूपी दावानल से संतप्त होकर निर्जन में राधा रुपी गंगा को प्राप्त करके स्वेच्छापूर्वक रमण करने लगे।

(४२४) श्रीराधा श्रीकृष्ण के प्रति अपने हृदय के भाव को बार–बार गोपन करने का जितना ही प्रयत्न कर रहीं थीं उतना ही वह गोपन न होकर बाहर प्रकट होने लगा। श्रीराधा जो श्रीकृष्ण के प्रति असम्मति सूचक भौहों को कुटिल कर रहीं थीं, वही हास्ययुक्त होने से सम्मति सूचक हो रहा था, वह 'ना ना' पूर्वक जो निषेध उक्ति कर रहीं थी वही मद से आकुलता स्वर भंग आदि द्वारा सम्मति प्रकट हो रही थी, हस्त रोध द्वारा जो अनभिप्राय सूचित कर रही थी वही कर स्पर्श जात हर्ष एवं पलक परम अभीष्ट प्रगट हो रहा था, क्रन्दन भी शुष्क होने से दुख के अभाव को ही प्रकट कर रहा था।

प्रातिकूल्यमिव यद् विवृण्वती, राधिका रदनखार्पणोद्धुरा।
केलिकर्मणि गता प्रवीणतां, तेन तुष्टिमतुलां हरिर्ययौ।।४२५।।

(वि० ७/४०)

तदा तामुद्धृत्योरसि भुजबलादुच्छलदुरुस्फुरज्जङ्घाग्रीवापदमति–नमोक्त्या कुटिलिताम्।
स्मरश्चापं स्वं चाम्पकमिव सकम्पं सरसयन् नट्द्विद्युद्बल्लीमिव नवघनस्तल्पमविशत्।।४२६।।

(कृ० भा० ६/६४)

नीवीकञ्चुकमुक्तिरोध–विचलद्दोरुत्स्वनत्कंकणा वंशीं मे दद देह्यलं मम–ममामंत्युल्लसद्गद्गदाः।
तारुण्यादिधनात्मसात्कृति–सुसंरक्षोद्गत–व्यग्रता उद्यद्धार्ष्ट्यभटापसारितधृतिह्ववामताद्यालयः।।४२७।।

(गोवि० १०/१४८)

आविर्भूत–मिथोऽतिपौरुषलसद्गाढप्रयोगोत्सवाः सीत्काराञ्चित–कण्ठकूजित–सरत्पीयूषधारोत्कराः।
अन्योन्याग्रह–नर्मपूर्वक–कृताकल्पादिशोभा द्वयो राधामाधवयोर्जयन्ति मधुराः कुञ्जे रहः केलयः।।४२८।।

(गोवि० १०/१४६)

---

(४२५) श्रीराधा केलि विलास में प्रगल्भता प्रकाश करती हुई दन्त और नखाघात में जो प्रतिकूलता की तरह व्यवहार कर रही थीं उस सबसे श्रीकृष्ण अतिशय सन्तुष्ट हुए।

(४२६) तब श्यामसुन्दर ने श्रीराधिका को बलपूर्वक अपने वक्षस्थल पर धारण किया उस समय श्रीराधा वाम्यवश अपनी जंघा, ग्रीवा और चरण बारम्बार उठाने लगीं और 'ना ना ना' पूर्वक अपनी असम्मति प्रकाशित करने लगीं। इस प्रकार उनका उच्छलन देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा मानो नवधन के बीच विद्युतलता नाच रही है अथवा मानों कन्दर्प अपने चम्पक धनुष को कम्पाता हुआ ध्वनि कर रहा है।

(४२७) विलासी श्रीकृष्ण श्रीराधा की नीवी और कंचुकी मोचन करने लगे। श्रीराधा भी अपने हाथ से उनका अवरोध करने लगीं। उस सयम उनकी बाहु के भूषण कंकणादि उच्च ध्वनि करने लगे तब श्रीकृष्ण मेरी वंशी दो यह कहकर गद्गद् स्वर से 'द द देहि' इस प्रकार के वाक्यों का प्रयोग करने लगे और श्रीराधा भी उसी प्रकार गद्गद् स्वर से 'मि म ममा म' अर्थात् मेरे पास नहीं है। इस प्रकार उल्लास से आविष्ट होती हुई उच्चारण करने लगीं। उस समय श्रीकृष्ण उनके तारुण्य आदि समस्त धन को आत्मसात् करने के लिए जब उद्यत होने लगे तब उसे सुरक्षित करने के लिए श्रीराधा भी व्यग्र हो उठीं तब धृष्टता रुपी सेनापति ने उनकी धैर्य, (धीरता) लज्जा, वामता आदि सभी सखियों को दूर कर दिया।

(४२८) जिस विलास में प्रिया–प्रियतम परस्पर अतिशय पौरुष को प्रगट करते हुए शोभा पा रहे हैं, जिस विलास में राधारानी के विलासोत्पन्न आनन्द से उत्पन्न सीतकार ध्वनि सुधा धारा की तरह प्रवाहित हो रही है एवं जिस केलि में परस्पर आलिंगन करने के लिए एक–दूसरे को परिहास पूर्वक ग्रहण करते हुए नख चिह्न आदि संभोग रूपी भूषणों के चिह्न बना रहे हैं, निकुंज में स्थित श्रीराधा कृष्ण की इस प्रकार की गूढ़ मधुर केलि जय युक्त हो।

क्रीड़ावसनामवधार्य ततः समन्ताद् द्रष्टुं तयोर्निधुवनान्तविलास मुत्काः।
आगत्य कुञ्जमनु मुक्तकवाटबन्धाश्छिद्रेषु दत्तनयनाः परितः स्थितास्ताः ।४२९।।
(गोवि० ११/४)

आम्रेड़ितः स्वांगविभूषणायतत्, कर्त्तुं प्रवृत्तोऽप्यनया निवारितः।
समुच्छलद्विभ्रमया तदप्यमुं, विभूषयन्नास तया स भूषितः।।४३०।।
(गोवि० ११/५)

सखीत्रपा कुण्ठित निर्गमेच्छां चौरीमिव न्यायजितां गृहीत्वा।
करे बलात् फुल्लविलोचनोऽसौ, कुञ्जालयात् प्रांगनमाससाद्।।४३१।।
(गोवि० ११/७)

संकुचतफुल्लनयनौ, प्राणप्रेष्ठौ पुरः स्थितौ।
हृष्यन्त्यः परिवार्याल्यः सखीमाहुः ससम्भ्रमम्।।४३२।।
(गोवि० ११/८)

मुञ्चन्त्या नः कुत्र यातं भवत्या नास्माभिश्चान्विष्य लब्धा कुतोऽपि।
धृष्टेनासीत् क्वामुना वा प्रसंगो जातास्मात्ते भाग्यतो नाभिभूतिः।।४३३।।
(गोवि० ११/६)

---

(४२६) इसके पश्चात् सखीगण श्रीराधा कृष्ण की क्रीड़ा समाप्त जानकर उनकी विलास के अन्त में मुख माधुरी का दर्शन करने के लिए उत्सुक होती हुई कुंज के द्वार खोलकर छिद्रों से दर्शन करती हुई चारों ओर अवस्थित हो गयीं।

(४३०) तब श्रीराधा श्रीकृष्ण को बार–बार अपनी अस्त – व्यस्त वेशभूषा को व्यवस्थित करने के लिए कहने लगीं। श्रीकृष्ण ऐसा करने के लिए जब प्रस्तुत हुए तो श्रीराधा में 'विभ्रम भाव' उच्छलित होने से वह उन्हें वेश रचना के लिए निवारण करने लगी। लेकिन फिर भी श्रीकृष्ण उनको विभूषित करने लगे और श्रीराधा ने भी उनको विभूषित किया।

(४३१) तब श्रीराधा की सखियों के पास जाने की इच्छा यद्यपि लज्जा के कारण कुण्ठित हो रही थी तथापि श्रीकृष्ण हर्षित होकर परास्त हुई चौरि के रूप में श्रीराधा का हाथ पकड़कर निकुंज से बाहर प्रांगण में आकर प्रस्तुत हुए।

(४३२) तब संकुचित नेत्रों वाली प्राण प्रियतमा श्रीराधा और प्रफुल्लित नयन प्राण प्रियतम श्रीकृष्ण के सम्मुख उपस्थित होने पर सखीगण अत्यन्त प्रसन्न होती हुई दोनों को चारों ओर से घेरकर सम्भ्रम पूर्वक श्रीराधा को कहने लगीं।

(४३३) हे सखी ! हम सब को छोड़कर तुम कहाँ गयीं थी ? तुमको बहुत खोजा लेकिन तुम कहीं मिली ही नहीं। तुम्हारा इस धृष्ट के साथ कहाँ मिलन हुआ। चलो जो भी हो भाग्यवश इनसे तुम्हारा पराभव नहीं हुआ।

निशम्य तासां परिहासभंगीं निशाम्य चासौ रति–लक्षणानि
कान्तं निजालीः प्रति सूचयन्तं ह्रियेर्षया चोच्चलिता तदासीत्।।४३४।।

(गोवि० ११/१०)

कान्तंहसन्तं कुटिलीकृतभ्र, श्चलाधरा गद्गद्रुद्धकण्ठी।
सा तर्जनी चालनया ततर्ज, स्वालीर्हसन्तीरवदच्च भंगया।।४३५।।

(गोवि० ११/११)

गृहोन्मुखीं कर्षथ वस्त्रकर्षं लीना क्वचित् सूचयथाश्वमुष्मै।
संगे स्थितां खेदयथामुना मां संगः कथं वोऽथ मया विधेयः।।४३६।।

(गोवि० ११/१२)

युष्माभिरीरित सुमत्तभजंगवर्यान्नाम् चंचलात् सपदि कण्टकबल्लिसख्यः।
स्पर्शोत्सुकादपसृतां चकितां ररक्षुः कुञ्जाश्च रक्तसित सच्छतपत्रिकाश्च।।४३७।।

(गोवि० ११/१३)

कुन्दबल्ल्यवदत् सत्यं राधे ! ते नानृतं वचः।
यत्तन्निरोधजं चिह्नं कृष्णांगे दृश्यते स्फुटम्।।४३८।।

(गोवि० ११/१४)

---

(४३४) तब श्रीराधा सखियों की परिहास भंगी को श्रवण करके और अपने प्रियतम को वृन्दा के प्रति रति चिह्नों की सूचना देते हुए देखकर ईर्ष्या एवं लज्जा के भाव प्रकट करने लगी।

(४३५) इसके पश्चात् प्रियतम को हँसते देखकर भौहों को कुटिल करती हुई कम्पित अधरों से गद्गद वाणी द्वारा अपनी तर्जनी उंगली को चलाकर श्रीराधा प्रियतम को तर्जन करने लगीं और अपनी सखियों को हँसते देखकर भंगी पूर्वक उनको कहने लगीं।

(४३६) हे सखीगण जब मैं घर जाने के लिए प्रस्तुत होती हूँ तब तुम लोग मेरा वस्त्र पकड़कर (रुक जाने के लिए) खींचती हो और यदि मैं गुप्त रूप से कहीं छिपने जाती हूँ तो तुम श्रीकृष्ण को सूचित कर देती हो तुम्हारे साथ रहने पर तुम मुझे श्रीकृष्ण द्वारा खेद ही प्रदान करती हो अतएव मैं अब तुम्हारा संग किस प्रकार कर सकती हूँ।

(४३७) तुम्हारे द्वारा प्रेरित सुमत्त, चंचल, स्पर्शोत्सुक इन कामुक कृष्ण से मैं भीत होकर जब पलायन करने लगी तो चकिता मुझको कुंज में लाल और शुक्ल वर्ण की कमल दलों ने एवं कन्टक लताओं ने ही मानों सखी रूप से मेरी रक्षा की।

(४३८) तब कुन्दलता जी कहने लगीं– राधे ! तुम्हारा यह कहना सत्य है तुम्हारे वचन कभी भी मिथ्या नहीं हो सकते। कारण कि श्रीकृष्ण के अंग में निवारण जनित चिह्न स्पष्ट रूप से दिखायी दे रहे हैं।

तीक्ष्णैः स्वकण्टकनखैःश्चटुलाभिराभिस्त्वद्गोपनाय वपुरस्य लतासखीभिः।
आचोटितं सखि ! तदोपयिकं तदेतच्चित्रं त्विदं तदधिकं यदिदं तवापि।।४३६।।
(गोवि० ११/१५)

गोपांगनागणरते रतिलम्पटस्य चन्द्रावलेर्धृतिरुरस्यलमस्य युक्ता।
यत्वं विभर्षि हृदि ता महितामपीदं चित्रं परं सखि ! वदात्र च तत्र हेतुम्।।४४०।।
(गोवि० ११/१६)

तामाललाप ललिता कुरु माऽत्र शंकां पुंसः परादतिचलाद्भयविद्रुतानाम्।
स्पर्शोत्सुकाद्वपुषि साध्वि ! कथं सतीनां दारिद्रय्मस्तु वनकण्टकज–क्षतानाम्।।४४१।।
(गोवि० ११/१७)

तृप्त्यै मुरारेरथ राधिकाया माधुर्यकर्पूर–सुवासितां स्वाम्।
विधातुकामाः कविता–रसालां तया निषिद्धाः कुटिल भ्रवापि।।४४२।।
(गोवि० ११/१९)

संफुल्लगोविन्द–मुखारविन्द–मन्दस्मितामन्द–मरन्दसिक्ताः।
तदिंगितज्ञाः क्रमतश्चलाक्षीम् तां वर्णयन्त्यो जहसुर्वयस्याः।।४४३।। (गोवि० ११/२०)

---

(४३९) लेकिन सखी राधे इन चंचल सखियों ने तुम्हारी रक्षा करने के लिए अपने कन्टक रूप तीक्ष्ण नखों द्वारा श्रीकृष्ण के अंग को छिन्न–भिन्न किया, यह तो उचित ही है किन्तु इन लता समूह ने तुम्हारी सखी होते हुए श्रीकृष्ण की अपेक्षा तुम्हारे ही अंगों को अधिकतर रूप से क्षत–विक्षत किया है यह बड़े आश्चर्य की बात है।

(४४०) और जो गोपांगनाओं के साथ प्रेम करते हैं ऐसे अत्यन्त लम्पट श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर चन्द्रावली (नख चिह्न रूप चन्द्र, चन्द्रावली नाम की सखी) विराजमान हैं यह तो उपयुक्त ही है किन्तु तुम्हारी तो वह विपक्षा सखी है तुम उसे हृदय पर धारण कर रही हो यह बड़े आश्चर्य की बात है ! जो भी हो सखी कण्टकों द्वारा देह के क्षत–विक्षत होने एवं चन्द्रावली के धारण होने के कारण तो बताओ।

(४४१) तब ललिताजी कुन्दलता जी को कहने लगीं– साध्वी कुन्दलते ! अति चंचल स्पर्शोत्सुक पर पुरुष के भय से पलायन करने वाली सती नारियों के अंग पर बन की कण्टक लताओं से होने वाले क्षत विक्षत् चिह्नों का अभाव क्यों होने लगा ? अर्थात् उनके शरीर में कण्टक चिह्न अवश्य ही होंगे।

(४४२–४३) इसके पश्चात् सखीगण श्रीकृष्ण की सन्तुष्टि के लिए अपनी कविता रूप शिखरनी (दधि, दुग्ध, मिश्री, इलायची से मिश्रित रसाल पेय) को श्रीराधा के माधुर्य रूपी कर्पूर से सुवासित करने की इच्छुक होते हुए भी श्रीराधा की कुटिल दृष्टि से निवारित होने पर भी श्रीगोविन्द के प्रफुल्लित मुख पद्म के सुमधुर हास्य रूपी मकरन्द से अभिषिक्त होती हुईं उनके इंगित को जानकर चंचलाक्षी श्रीराधा का परिहास करते हुए रूप वर्णन करने लगीं।

क्षयिष्णूं तं हित्वा शशजठरमिन्दूं मितकलं सदापूर्णानंकाविगणितकलानामघभिदः।
कलाभिर्बहवीभिः करनख–विधूनां निजतनूमलञ्चक्रेऽस्याः किं स्तनगिरिश–लिंगद्वयमिदम्।।४४४।।
(गोवि० ११/२५)

नाभिलोमावलिरुर सिज द्वंदमास्यं विभाति श्रीराधायामिति विधिकृता पश्यतां भ्रान्तिरेषा।
सत्यं सान्द्रामृतमयसरस्येकनालोत्थमब्जद्वन्दं शश्वत् करपरिचयैर्मीलयन् दीव्यतीन्दूः।।४४५।।
(गोवि० ११/४३)

नाभिः कुण्डं त्रिवलिविततिर्मेखला चावलग्नं वेदिर्लोमावलिरपि जुहुः श्रीकुचौ भद्रकुम्भौ।
कामो यज्वा सुजघन–गलौ पीठशंखौ बकारेश्चित्ताकृष्टिः फलमिह वभौ यज्ञशालास्य राधा।।४४६।।
(गोवि० ११/४५)

भ्रूरोमाल्यौ धनुरसिलते श्रीकटाक्षाः पृषत्काबाहू पाशौ गल इह दरः श्रीनितम्बो रथांगम्।
दीव्यद्गण्डौ कनकफलके श्रीनखाश्चांकुशाः श्रीराधा भाति स्मरनरपतेः शस्त्रशाला विशाला।।४४७।।
(गोवि० ११/४७)

श्रीराधा रूप वर्णन :–

(४४४) तत्पश्चात हास्य विकास से जिनकी दन्त पंक्ति शोभा पा रही है ऐसी विशाखा श्रीकृष्ण को हर्षित करने के लिए कहने लगीं– श्रीराधा के यह वक्षस्थल रूपी मानों दो शिवलिंग, परिमित कलाशाली, क्षय होने वाला, सकलंक, शशांक को त्यागकर श्रीकृष्ण के सदा पूर्ण अकलंक, अक्षय कलाओं से युक्त हस्त नखचन्द्र की रेखाओं द्वारा अपने कलेवर को भूषित कर रहे हैं।

(४४५) तब काञ्चन लता नाम की सखी श्रीराधा के नयन इंगित द्वारा निवारित होते हुए भी श्रीकृष्ण की भ्रूभंगी से प्रेरित होती हुई स्पष्ट रूप से राधा रूप का वर्णन करने लगी – अहो श्रीराधारानी के श्रीअंग में नाभिह्रद उसके ऊपर रोमावली उसके ऊपर स्तनद्वय और उसके ऊपर उनका मुखमण्डल शोभा पा रहा है जिसके दर्शन करके ऐसी भ्रान्ति होती है मानों विधि ने किसी सुधा सरोवर के ऊपर एक मृणाल जिस पर दो कमल प्रस्फुटित हो रहे है उसके ऊपर एक चन्द्र प्रकाशित हो रहा है जिसकी किरणों से यह कमल किंचित मुद्रित हो गये हैं।

(४४६) मृग लोचना माधवी कहने लगीं– जिनके नाभि ही होम कुण्ड उसके ऊपर उदर में जो त्रिवली ही मानो मेखला मध्यदेश वेदी, रोमावली जुहू (स्रुवा) वक्षस्थल ही मंगलमय कुम्भयुगल कन्दर्प ही यज्ञकर्त्ता नितम्ब ही पीठ अर्थात् आसन कण्ठ ही शंख और श्रीकृष्ण को आकर्षित करना ही इसका फल है ऐसी श्रीराधा मानों श्रीकृष्ण की यज्ञ शाला स्वरूप होकर विराजमान है।

(४४७) बासन्ती नाम की सखी उन धन्यतमा वृषभानुकन्या श्रीराधा के प्रति दृष्टिपात करते हुए कहने लगीं– जिनके भ्रूयुगल मानों धनुष रोमावली खड़ग, सुन्दर कटाक्ष–बाण, दोनों भुजायें नागपाश, गलदेश शंख, मनोहर नितम्ब चक्र, गण्ड युगल स्वर्ण फलक, सुन्दर नख श्रेणी अंकुश स्वरूप ऐसी श्रीराधिका कन्दर्प की सुविशाल अस्त्रशाला के रूप में शोभा पा रही हैं।

राधायाः सुतनुः सुधा–सुरधुनी बाहू विसे सत्स्तनौ काकौ श्रीमुखनाभि–पाणि–चरणा पद्मानि वक्रालकाः।
रोलम्बा मधुरस्मितञ्च कुमुदं नेत्रे तथेन्दीवरे रोमाली जलनीलिकेह लसति श्रीकृष्णहृकुञ्जरः।।४४८।।
(गोवि० ११/४६)

यो बालार्कविकाशि–सुप्तमधुप–स्वर्णाम्बुजैकच्छदो विश्राम्यतपिकहेममन्दिर–गवाक्षाधोविटकोऽपि यः।
तौ राधामदबिन्दुचारु चिबुकं दृष्ट्वा स्वसाम्योत्सुकौ श्रीकृष्णांगुलि–संगसौभगगुणैर्न्यक्कृत्य विभ्राजते।।४४६।।
(गोवि० ११/७७)

राधायाः कुंकुमानां परिमलविततिनिर्जिहीतेऽखिलांगान्नाभिभ्रूकेशनेत्रादगुरुमृगमदालिप्तनीलोत्पलानाम्।
वक्षः स्रोत्रास्य नासा करपदयुगलादिन्दुलिप्ताम्बुजानां कक्षश्रोणीनखेभ्यो मलयजरस–संसिक्तसत्केतकीनाम्।।४५०।।
(गोवि० ११/११७)

कयात्ममूर्त्तिलिखिता नखेन वामस्तनोर्द्ध्वे तव पंकजाक्ष !
न याति न म्लायति दिव्यरूपां यामुद्वहन् हन्त ! न लज्जसेत्वम्।।४५१।।
(अ० ५/५८)

---

(४४८) तब वृन्दाजी कहने लगीं– श्रीराधा की सुन्दर देह मानो सुधा सुरधुनी (अमृतमय गंगा) स्वरूप है जिसमें दोनों भुजायें मृणाल उत्तम चक्रवाक, सुन्दर मुखारविन्द, नाभि हाथ एवं चरण कमल है। कुटिल अलकावलि भ्रमरों के समान हैं। सुमधुर हास्य ही मानों कुमुद पुष्प, नयन युगल ही मानों नीलकमल, रोमावली ही मानों शैवाल स्वरूप एवं श्रीकृष्ण का हृदय रूपी हस्ति राज ही उस गंगा में विहार कर रहा है।

(४४६) प्रभात कालीन सूर्य की किरणों से विकसित होते हुए स्वर्ण कमल के एक दल पर एक भ्रमर शयन कर रहा है अथवा स्वर्ण मन्दिर के गवाक्ष के अधो भाग में एक घोंसले में कोकिला विश्राम कर रही है लेकिन श्रीराधा के मृगमद बिन्दु युक्त सुचारु चिबुक का दर्शन करके यह दोनों ही अपने सौभाग्य की निन्दा करते हैं, कारण श्रीराधा का चिबुक श्रीकृण की उंगली के स्पर्श रूपी सौभाग्य से अधिक शोभा पा रहा है।

(४५०) श्रीराधा के समस्त अंगों से विविध प्रकार की सुगन्ध निकल रही है अर्थात् उनकी नाभि, भ्रू, केश, नेत्र, से अगरु और मृगमद से लिप्त नील कमल श्रेणी की सुगन्ध, उनके वक्षस्थल कर्ण, वदन, नासिका और चरण युगल से कर्पूर लाल कमल की सुगन्ध एवं कक्ष नितम्ब, नख सकल से चन्दन युक्त केतकी की सुगन्ध निकलती है।

(४५१) हे कमल लोचने ! तुम्हारे वाम स्तन के ऊपरी भाग पर किसने नख द्वारा अपनी मूर्ति बना दी है ? देखो! यह मूर्ति न तो दूर हो रही है न म्लान हो रही है हाय ! तुम भी इसको वहन करते हुए लज्जा का अनुभव नहीं कर रही हो ?

श्रीवत्सस्य च कौस्तुभस्य च रमा–देव्याश्च गर्हाकरो राधापादसरोजयावकरसो वक्षःस्थलस्थो हरेः।
बालार्कद्युतिमण्डलीव तिमिरैश्छन्देन बन्दीकृता कालिन्द्याः पयसीव पीव–विकचं रक्तोत्पलं पातु वः।।४५२।।
(अ० ८/१२)

मिथस्तासां प्रेमाम्बुधि–मथनजां वाङ्मयसुधां धयन् कृष्णास्तृष्णामधिकमुपलेभे श्रुतिभृताम्।
तदास्याब्जेनापि प्रवर–परिहासामृतमधु–द्रवासारैवृष्ट्यैरतुलमुदमाद्यन्त महिला।।४५३।।
(कृ० भा० १०/७०)

अथाह वृन्दा ब्रजकाननेशौ पादाम्बुजे वामृतु कारुमुख्यैः।
निवेदितं षडभिरिहास्ति यत्तत् सार्द्धं समाकर्णयतं सखीभिः।।४५४।।
(गोवि० १२/१)

प्रीत्यर्थं युवयोः सुचित्रितमिदं वृन्दावनं किंकरैरस्माभिर्बहुयत्नतो निपुणता–सर्वस्व–प्रत्यर्पणैः।
तन्नाथौ कृपया समीक्ष्य सफलं कर्त्तुं युवामर्हतम् भृत्यानां हि विशेषकौशलकृतेरीशावलोकः फलम्।।४५५।।
(गोवि० १२/२)

---

(४५२) श्रीहरि के वक्षस्थल पर स्थित राधारानी की चरणकमल का यावक रस (आलता) जो अपने समीपस्थ श्रीवत्स, कौस्तुभ और कमलादेवी का भी तिरस्कार कर रहा है जिसे देखकर प्रतीत होता है मानों तिमिर राशि ने चतुरता पूर्वक अरुण के किरणों की पुंज को बन्दी बना लिया है अथवा कालिन्दी के नील जल में कोई लाल कमल खिल रहा है वही मानों हम सबके विघ्न रूपी अन्धकार को दूर करने में समर्थ है।

(४५३) इस प्रकार सखियों के प्रेमाम्बुधि के मथन से जो वचन सुधा प्रगट हुई उसका पान करके श्रीकृष्ण और अधिक तृष्णा से आतुर हो गये और श्रीकृष्ण के मुखकमल से जो अनुपम परिहास रूपी अमृत मधु की वर्षा होने लगी उसका पान करके समस्त सखी मण्डल उन्मत्त हो गया।

षड्ऋतुओं की सेवा का वर्णन :–

(४५४–५५) इसके पश्चात् वृन्दा देवी कहने लगीं– हे ब्रजकाननेश्वर ! राधाकृष्ण ! आप दोनों के चरण कमलों में ये छः ऋतुऐं ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शीत, बसन्त प्रधान शिल्पी के रूप में कुछ निवेदन कर रहे हैं। वो आप ध्यानपूर्वक श्रवण करें। ऋतुगण कह रही हैं – हम सब किंकरों ने आपकी प्रीति के लिए अत्यन्त यत्न और निपुणतापूर्वक अपना सर्वस्व अर्पण करके इस वृन्दावन को चित्रित किया है अतएव हे वृन्दावनेश्वरी आप दोनों इस वृन्दावन का भली भांति दर्शन करके हमारे परिश्रम को सफल करिये क्योंकि स्वामिनी यदि अपने किंकरों के विशेष कौशल जनित कार्य का अवलोकन करते है तभी उसकी सफलता होती है।

निर्यन् कुञ्जादालिपाली–परीतः कृष्णः कान्तापांगभृंगी विलीढः।
पंचेषुणां संचयं प्रांचयन् किं पादाग्रैकत्विट्कणं स्वं विरेजे।।४५६।।
(कृ० भा० ११/१)

वीक्ष्याकस्मात् प्रेयसः सव्यदोष्णा राधास्कन्धं सन्दितं स्वं चकम्पे।
माधुर्याब्धेरुत्तरंगेण केनाप्यभ्यामृष्टा काननकम्भोजनीव।।४५७।।
(कृ० भा० ११/२)

पार्श्वद्वन्दे दीयमाने सखीभ्यां, राधाकृष्णौ चारु ताम्बूलवीट्यौ।
नीत्वासव्यासव्यपाण्यगुलिभि–र्वक्त्रद्वन्देऽन्योन्यमेवादधाते।।४५८।।
(कृ० भा० ११/३)

वामा प्रेयोवामपाणिं निरास्यद्–वक्षोजं स्वं स्पृष्टुकामं करेन।
चित्रं मन्येऽरुन्ध लावण्य वापी, पद्मं चक्रास्वादिरप्तोत्पलेन।।४५९।। (कृ० भा० ११/४)

---

(४५६) इसके पश्चात् सखियों से परिवेष्टित होकर श्रीकृष्ण कुंज से बाहर आये। श्रीराधारानी की अपांगरूपी मधुकरी उनके माधुर्य का आस्वादन करने लगे। उस समय की शोभा को देखकर परास्त से होते हुए मानों कोटि–कोटि मदन श्रीमन् मदनमोहन के श्रीचरणों के अग्रभाग की अपनी कान्ति द्वारा अर्चना करने लगे।

(४५७) श्रीकृष्ण के दर्शन करके राधारानी सात्विक भावों के उदय होने से कम्पित होने लगीं। उस समय उनकी जो शोभा हुई उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीकृष्ण ने अपनी वामभुजा राधारानी के स्कन्ध अर्पण करके उस समय कम्पित हुई राधा इस प्रकार शोभित हुई मानों एक महान माधुर्य का सागर हो उसकी एक तरंग से उसमें स्थित हेम कमलिनी कम्पित हो रही हो।

(४५८) राधाकृष्ण दोनों वन विहार के लिए चल रहे हैं उनके दोनों ओर दो सखियाँ दोनों को पान की बीरी उनके हाथों में प्रदान कर रही हैं। श्रीराधा बायें हाथ की उँगली द्वारा उसे ग्रहण करके श्रीकृष्ण के मुख में और श्रीकृष्ण दक्षिण हाथ से ग्रहण करते हुए श्रीराधा के वदन में अर्पण करने लगे।

(४५९) इसी बीच श्रीकृष्ण अपनी वाँम बाहु द्वारा जिसे कि श्रीराधा के कन्धे पर अर्पण कर रखा था उससे श्रीराधा के वक्षोज का स्पर्श करने के लिए उद्यत हुए, वामा श्रीराधा प्रीतम के हस्त कमल को अपने हाथ से दूर करने लगी उसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य होने लगा मानों लावण्य सरोवर के किसी पद्म को आस्वादन करने के लिए इच्छुक चक्रवाक को लाल कमल ठेलकर दूर कर रहा हो, इसका तात्पर्य यह है कि कमल ही कमल का विरोध कर रहा है जबकि सजातीय होने के कारण यह सम्भव नहीं है और दूसरा आश्चर्य यह है कि चक्रवाक और पद्म दोनों ही सूर्य के मित्र है। यदि श्रीकृष्ण के हस्त कमल को श्रीराधा वक्षोज रूपी चक्रवाक आस्वादन करना चाहता है तो दोनों में प्रीति होनी चाहिए न कि विरोध।

शाखि व्रातैरावृतेऽप्यन्तरन्तः सूर्यद्योति–प्रस्फुरत्याकुलात्मा।
सद्यः स्वेदि श्रीमुखं स्वप्रियाया–स्तिर्यङ् मौलिच्छाययाच्छादयत् सः।।४६०।।

(कृ० भा० ११/५)

किंचिदविवक्षौ पुरतः सरन्त्यां, चलत्करायां वनपालिकायाम्।
दैवात् समीराभिमुखी यदासीद्–वंशी तदास्या ध्वनिरुच्चचार।।४६१।।

(गोवि० १२/३४)

तत्काकली–श्रवणतश्चकितासु सर्वास्वासाद्य तां सपदि कुन्दलता सखीभिः।
आदाय तत्करतलान्मुरलीमथैनां चोरीयमित्युपनिनाय हरेः समीपम्।।४६२।।

(गोवि० १२/३५)

राधाव्रवीन्मुरलिकां विनिधाय वृन्दापाणौ कदर्थयति ते सखि ! देवरोऽस्मान्।
तन्मन्यसे न यदि पृच्छ कुतोऽनयेयं प्राप्ता न चेद्वदति सत्यमियं हि दण्ड्या।।४६३।।

(गोवि० १२/३६)

वृन्दाह कक्खटिकया वंशी शैव्याकराद्वलात्।
आच्छिद्यानीय मे दत्ता कुञ्जे नान्दीमुखी–पुरः।।४६४।।

(गोवि० १२/३७)

---

(४६०) वृक्षों को छायायुक्त पथ पर श्रीराधा कृष्ण जा रहे हैं। पत्तों की छाया के मध्य–मध्य से जो सूर्य की किरणें निकल रही है उनके स्पर्श मात्र से श्रीराधा रानी के मुखारविन्द पर स्वेद बिन्दु झलकने लगे जिसे देखकर श्रीकृष्ण व्याकुल होते हुए अपने मयूर मुकुट को थोड़ा तिरछा करके उनके ऊपर छाया करने लगे।

(४६१) इसके बाद वनपालिका श्रीवृन्दा देवी कुछ बोलने की अभिलाषा से हाथ को चलाती हुई जैसे ही आगे आयीं वैसे ही दैवयोग से वंशी वायु का स्पर्श पाकर बज उठी।

(४६२) इसके पश्चात् वंशी की ध्वनि को श्रवण करके सब सखियाँ चकित सी होती हुईं और कुन्दलताजी ने वृन्दा के हाथ से मुरली लेकर "यह वृन्दा चौरि" ऐसा कहती हुई श्रीकृष्ण के पास ले गयीं।

(४६३) श्रीराधा कहने लगीं– सखी कुन्दलते ! तुम्हारे देवर ने इस वृन्दा को हाथ में वंशी देकर हमें व्यर्थ में इतना कष्ट दिया है यदि कहो कि ऐसा नहीं है तो इस वृन्दा से पूछो कि इसे वंशी कहाँ मिली और इतने पर भी यदि यह वृन्दा सत्य न बोले तो निश्चय ही यह दण्ड के योग्य हैं।

(४६४) वृन्दा ने कहा–कक्खटी वानरी ने शैव्या के हाथ से बलपूर्वक वंशी छीनकर नान्दीमुखी के सामने कुंज में मेरे हाथ में वंशी दी थी।

अथ कुन्दलता वंशीं कृष्णपाणौ समर्पयत्।
सोऽप्यादाय चिराल्लब्धां प्रहृष्टस्तामवादयत्।।४६५।।

(गोवि० १२/३८)

मनोवंशान् कुर्वंस्त्रिजगदबलानां मदनरुग् घुनोत्कीर्णान् जीर्णान् स्थिरचरगधर्मान् विनिमयन्।
ऋतुनां सम्पत्तीर्युगपदिह षन्नां समुदयन् सुधासारैः शिञ्चन् जगदुदलसद्वेणुनिनदः।।४६६।।

(गोवि० १२/३६)

श्रीकृष्णस्याविकलमुरलीध्वानवाणौर्विदूरान्नारीणां यद्वरधृतियुजां दर्पकोन्मत्ततासीत्।
अस्त्रीलोकोऽप्यभवदतनुच्चण्डपीड़ाविहस्तस्तन्नाश्चर्यं जगति यदयं मारमूर्त्ती–स्वरूपः।।४६७।।

(गोवि० १२/४०)

द्रवति शिखरिवृन्देऽचञ्चले वेणुनादै–र्दिशि दिशि विसरन्ती निर्झरापः समीक्ष्य।
तृषितखगमृगाली गन्तुमुत्का जड़ा तैः स्वयमपि सविधाप्ता नैनैव पातुं समर्था।।४६८।।

(गोवि० १२/४१)

वंशीनादैः सरसि पयसि प्रापिते ग्रावधर्मं हंसी सन्दानितपदयुगाः स्तम्भितांगी विरंसुः।
आसन्नीशाः स्वयमपि जड़ा बद्धपादा न गन्तुं ताभ्यो दातुः न विषशकलं नापि भोक्तुं मरालाः।।४६६।।

(गोवि० १२/४२)

---

(४६५) इसके बाद कुन्दलता ने श्रीकृष्ण के हाथ में वंशी दे दी और वे बहुत समय के पश्चात् वंशी को पाकर अत्यन्त प्रसन्न होते हुए वंशी बजाने लगे।

(४६६) वंशी ध्वनि त्रिभुवन की समस्त अबलाओं के मन रूपी बांस को मदनजनित रोग रूपी धुन के कीडो से खाकर जीर्ण कर देती है एवं स्थावर को चर धर्म में तथा चर को स्थावर धर्म में परिणित करती हुई तथा श्रीवृन्दावन में छः ऋतुओं की शोभा को एक साथ प्रगट करती हुई, त्रिभुवन को अमृत की धारा से सींचकर प्रफुल्लित कर देती है।

(४६७) श्रीकृष्ण की निरन्तर मुरली ध्वनि रूपी वाणों से अत्यन्त धैर्यशालिनी नारियों के हृदय में भी कन्दर्प जन्य उन्मत्तता एवं पुरुषों के भी अनंग की प्रचंड पीड़ा से जो व्याकुलता हो जाती है यह कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि श्रीकृष्ण साक्षात् मूर्तिमान कन्दर्प स्वरूप हैं।

(४६८) इसके पश्चात् वंशी ध्वनि से जो स्थावर–जंगम में स्वभाव की विपरीतता हो गई उसका वर्णन कर रहे हैं–वेणुनाद से पत्थरों के विगलित हो जाने से पर्वत द्रवित होने लगे और उनसे चारों ओर जलराशि प्रवाहित होती हुई देखकर जलपानार्थ तृष्णातुर खग मृग जाने के लिए उत्कण्ठित होते हुए वंशी की ध्वनि से जड़ होकर खड़े रह गये और वे जलपान करने में समर्थ न हो सके।

(४६६) वंशी नाद से सरोवरों के जलप्रवाह पाषाण की तरह जमजाने से रमण की अभिलाषा वाली हंसियों के चरण जड़ (रुक) गये और उनके सब अंग निश्चल हो गये और हंसों के चरण प्रस्तर रूपी जल में बांध जाने से वे न तो अपनी हंसियों को मृणाल दे पा रहे है और न ही स्वयं खाने में समर्थ हो पा रहे है।

ततो वृन्दाटवीं वृन्दा स्फीतां तत्तदृतुश्रिया।
दर्शयन्ती स्वनाथौ तावभाषत पुरोगता।।४७०।।

(गोवि० १२/४३)

स्फुरस्तम्भा स्तब्धैविलसति चरैः कम्पवलिता स्थिरैः कम्प्रैः स्विन्ना स्रवदुपलकैर्गद्गदयुता।
विरावैरस्पष्टैः पुलकवलिताङ्ग्यकुरचयैः सखीश्रेणीवेशौ प्रणयविवशा सेयमटवी।।४७१।।

(गोवि० १२/४४)

वासन्ती–बकुलादिकैर्विचाकिलामोघाशिरीषादिकेर्यूथीनीप–सुकेतकीप्रभृतिर्भिजात्यब्जवाणादिभिः।
लोध्राम्लान मुखैश्च चारुकुसुमैर्बन्धूक–कुन्दादिभिः क्लृप्ताकल्पविभूषणार्चिततनुस्तैर्भाति सेषाटवी।।४७२।।

(गोवि० १२/४५)

फुल्लाभिर्माधवीर्भिबकहर विलसन्त्यत्र फुल्ला रसालाः सन्मल्लीभिः शिरीषास्त्विह वरगणिका वीथिभिश्चात्र नीपाः।
जातीभिः सप्तपर्णा इह च कुसुमिताम्लानपालीभिरस्मिन् लोध्रास्ते वां सपर्यार्थिन इह फलिनीश्रेणीभिः कुन्दभेदाः।।४७३।।

(गोवि० १२/४६)

श्रीवृन्दावन की शोभा वर्णन :–

(४७०) इसके पश्चात् वृन्दा देवी अपने प्राणनाथ श्रीराधाकृष्ण के आगे–आगे चलकर उनको उन समस्त ऋतुओं की शोभा के विस्तार से वृन्दावन का दर्शन कराती हुई कहने लगीं–

(४७१) हे राधाकृष्ण ! यह अटवी सखियों की तरह प्रणय से विवश होती हुई शोभा पा रही है जैसे सब सखियों के अंग में स्तम्भादि सात्विक भाव होता है उसी प्रकार इसमें जो जंगम प्राणी हैं वो स्तम्भ युक्त हो जाते है और जो स्थावर हैं उनके कम्पित होने के कारण यह कम्पितांगी गलित होते हए प्रस्तरों द्वारा ये स्वेद युक्ता अस्फुट पक्षियों की ध्वनि ही मानों इसके गद्गद वचन हैं और अंकुर समूहों से ही पुलकित होती हुई शोभा पा रही है।

(४७२) इसमें बसन्त ऋतु में उत्पन्न होने वाले माधवी और बकुल आदि ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होने वाले मल्लिका, गुलाब और शिरीष, वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाले जूही यूथिका, कदम्ब और केतकी शरद ऋतु में उत्पन्न होने वाली जाति, कमल और बाण (नीलझिण्टी) हेमन्त ऋतु में उत्पन्न होने वाले लोध्र अम्लान और शिशिर ऋतु में उत्पन्न होने वाले बन्धूक, कुन्द आदि पुष्पों से अपने अंगों का विभूषित करती हुई यह वृन्दाट्वी शोभा पा रही है।

(४७३) हे कृष्ण ! यह वृन्दाट्वी माधवी लता के साथ प्रफुल्लित रसाल (आम्र) वरगणिका (जूही) के सहित कदम्ब जाति के सहित सप्तवर्ण और विकसित अम्लान लता के सहित लोध्रगण प्रियंगुलता के सहित कुन्दगण आप दोनों की पूजा के लिए विशेष रूप से शोभा पा रही हैं।

भृंगैः क्वापि वनप्रियाः क्वचिदिमे चाषैश्च धूम्याटका दात्यूहै शिखिचातकास्ततइतो हंसादयः सारसैः।
कीराः क्वापि किकीकूलैरिह भरद्वाजैश्च हारीतकाः गायन्तीव मुदात्र वां गुणयशः प्रेम्णा रुवन्तः सदा।।४७४।।
(गोवि० १२/४७)

क्वचिन्मरकतस्थली कनकगुल्मवीरुद्द्रुमाः क्वचित् कनकवीथिका मरकतस्य वन्यादयः (बल्ल्यादयः)।
क्वचित्कमलरागभूस्फटिकगुल्मवीरुद्द्रुमाः क्वचित् स्फटिकवाटिका कमलरागबल्ल्यादयः।।४७५।।
(अ० १/२५)

क्वचिन्मरकतद्रुमाः कनकवल्लिभिर्वेल्लिताः क्वचित् कनकपादया मरकतस्य बल्लीजुषः।
क्वचित् स्फटिकभूरुहाः कमलरागबल्लीभृतो द्रुमाः कमलरागजाः स्फटिकबल्लिभाजः क्वचित्।।४७६।।
(अ० १/२६)

न सोऽस्ति मणिभूरुहो विविधरत्नशाखो न यः सुचित्रमणिपल्लवा न खलु या न शाखाश्च ताः।
न तेऽपि मणिपल्लवा विविधरत्नपुष्पा न ये न पुष्प निकरोऽप्यसौ विविधगन्धबर्न्धुन यः।।४७७।।
(अ० १/२७)

---

(४७४) यह वृन्दाट्वी किसी स्थान पर भ्रमरों के सहित कोकिलागण कहीं चाष पक्षी (स्वर्ण चातक) के सहित फिंगराज और कहीं–कहीं डाहुक पक्षी के साथ मयूर और चातक गण, किसी स्थान पर सारसों के साथ हंसगण, कहीं–कहीं स्वर्ण चातक पक्षियों के साथ शुकगण एवं कहीं–कहीं भारद्वाज पक्षियों के साथ हारीत पक्षी आनन्द पूर्वक प्रेम से विवश होते हुए आप दोनों के गुण और यश का कीर्तन कर रहे है।

(४७५) वृन्दावन का कोई स्थान मरकत मणि से युक्त भूमि वाला है और कहीं वन भूमि पर स्वर्ण लताएं हैं कहीं स्वर्णमय पथ है उस पर मरकत मणि के वृक्ष, लताएं आदि हैं कहीं पद्मराग मणिमय भूमि है और उस पर स्फटिक मणि के गुल्म लता और वृक्ष हैं कहीं पर स्फटिक मणि युक्तवाटिका जिसमें पद्मराग मणि के तरुलता गुल्म आदि विराज रहे हैं।

(४७६) और भी कहीं–कहीं मरकतमय तरुसकल कनकलताओं द्वारा व्याप्त हैं और किसी स्थान पर स्वर्णमय वृक्ष मरकत मणि की लताओं द्वारा वेष्टित हैं। कहीं–कहीं पर स्फटिक मणिमय वृक्ष पद्मराग मणि की लताओं को धारण किये हुए है और कहीं–कहीं पद्मरागमणि की प्रभा वाले वृक्ष सकल स्फटिक मणिमयी लताओं से युक्त होकर शोभा पा रहे हैं।

(४७७) वृन्दावन में ऐसा कोई मणिमय वृक्ष नहीं है जिसकी समस्त शाखाएं विविध रत्नमय न हों ओर ऐसी शाखाऐं भी नहीं हैं जिन पर अनेक वर्णों के मणिमय पल्लव न दिखायी देते हों और ऐसे मणि पल्लव भी नहीं जो विविध रत्नमय प्रस्फुटित पुष्पों से युक्त न हों और ऐसे पुष्प समूह भी नहीं है जिन सब में अनेक प्रकार की सुगन्ध न आ रही हो।

विहारमणिपर्वत–प्रकरतः पतद्भिर्मणि–द्रवैरिव सुनिर्झरैः स्वयमितस्ततः पूरिता।
स्थलस्थलरुहां मणीतरमणीभिराकल्पिता तथा मणिपतत्रिभिर्विलसितालवालावली।।४७८।।
(अ० १/२८)

केऽप्यालवालकुरुविन्द–मयूख वृन्दै–लाक्षारसैनिरवधीव कृताभिषेकाः।
अन्तर्नमान्तमिव सन्ततमेघमानं कृष्णानुरागरसमेव समुद्वमन्ति।।४७६।।
(अ० १/३५)

चत्वारस्तरवश्चतुर्षु सरुचः कोणेषु तेषामधो द्वे द्वे चोभयतः प्रिये इव लते विश्वक् तथाऽवर्धताम्।
तानाक्रम्यपरस्परान्तवपुषः पुष्पैः फलैः पल्लवैः सांगोपांगमणीन्द्रमण्डपरुचः कुर्वन्ति सर्वा यथा।।४८०।।
(अ० १/१२५)

स्तम्भास्तेऽमी वड़भ्यो नियत कुसुमिताः स्कन्धशाखास्तदीया बल्लीनां पुष्पितानामपि विटपकुलैः कल्पितानिच्छदींषि।
कैश्चिद्दारोऽपि भंगीविरचन–रुचिरा भित्तयः केश्चिदन्यैः पुष्पैः प्रालम्बचूड़ाकलसविरचना चामरादीनि कैश्चित्।।४८१।।
(अ० १/१२६)

---

(४७८) वृन्दावन में वृक्षों के चारों ओर जो आलवाल हैं, वे जिन पर्वतों की कन्दराओं में प्रिया–प्रियतम विहार करते हैं। उनसे द्रवित होने वाले मणिपुञ्ज सदृश स्वयंगलित सुन्दर झरनों के जल द्वारा स्वयं भर जाते हैं और जो भूमि एवं भूमि पर उत्पन्न होने वाले वृक्षों की श्रेणी है वह चिन्तामणियों से निर्मित है एवं उस पर जो पक्षियों की श्रेणी शोभित है वह भी मणिमय हैं।

(४७६) और भी कुछ ऐसे वृक्ष हैं जिनके आलवाल पद्मराग मणि की किरणों के समान झलक देते हैं ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने लाक्षारस से अभिषेक किया हो और वे मानों अपने अन्तर में जो सदा वर्धित होता हुआ अनुराग है उसको भीतर न समा सकने के कारण बाहर प्रकट कर रहे हों।

(४८०) वृन्दावन के समस्त घाटों के ऊपर जो सब लता मन्दिर हैं :– उनके चारों कोनों में चार वृक्ष– ये वृक्ष स्थूलता, दीर्घता, विस्तार और सौन्दर्य में सभी समान हैं। इन समस्त वृक्षों में प्रत्येक वृक्ष के नीचे दोनों ओर से दो–दो लताएं मानों उनकी दो–दो प्रियाएं हो, दो–दो लताओं ने फैल कर चारों ओर से समुचित रूप से व्याप्त कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है ये आठों लता उन वृक्षों पर आक्रमण करके मानों पल्लव, पुष्प, फल आदि अंगों द्वारा साक्षात् मूर्तिमती होकर उस मणिमय मण्डप की शोभा का विस्तार कर रही हों।

(४८१) ये चारों वृक्ष भूमि से सीधे उठकर मानों चार स्तम्भ के समान खड़े हैं और उनकी मोटी–मोटी तथा छोटी–छोटी शाखा कुछ टेढ़ी होकर एक दूसरे से मिलकर मानों चार मण्डपाकृति बना रही हैं और पुष्पित लताओं की शाखाओं द्वारा मानों चारों ओर छोटे–छोटे छज्जे बन गये हों। कोई–कोई लता अपनी शाखाओं के कौशल से मानों चार द्वारों का और इसी प्रकार चारों ओर दीवारों का निर्माण करती हुई लताऐं शोभा पा रही हैं। अन्य कहीं (ऊपर छतों पर) पुष्प राशि द्वारा चूड़ा कलश जिसके चारों ओर पत्रावली शोभितहै और कहीं–कहीं पुष्पों द्वारा ही चँवर सुशोभित हो रहे हैं।

तयेत्थं दर्शितं सर्वं विलोक्य पारितोषिकम्।
ददर्तुहारयुग्मञ्च श्लाघां चक्रतुरीश्वरौ।।४८२।।

अर्घ्यं कुट्म्लकैर्मरन्दपटलैः पाद्यं परागैर्मधुस्यन्दाद्रैरनुलेपनं किसलयैः पुष्पैश्च भूषां फलैः।
नैवेद्यं पवनाहतैरवयवैर्नृत्यं मदालिस्वनै गीतं कल्पयता हरिर्वनगतो बल्लीचयेनार्चितः।।४८३।।
(अ० ५/१६)

एकनानिल चपलेन पत्रहस्ते नारौत्सीत् स्तवकपयोधरं परेण।
आक्षेपं न न न न नेति चंचलालि भ्रूभङ्ग्या व्यधित हरिं विलोक्य बल्ली।।४८४।।
(अ० ५/१६)

सन्त्रासं किसलय–पाणिकम्पनेन प्रोत्साहं कुसुममयेन सुस्मितेन।
रोयञ्च भ्रमरघटा–कटाक्षपातै–रासन्ने मधुभिदि वीरुधोऽभ्यनैषुः।।४८५।।
(अ० ५/१६)

नानापुष्पाणि दृष्ट्वा सलालसः कृष्णो राधां प्रसाधयति–
सीमन्तोपरि बन्धुजीवकुसुमं सिन्दूर बिन्दुकृतं चित्रैर्नव्यदलैर्व्यधायि मकरी गण्डे नखाग्रक्षतैः।
चक्रे कञ्चुलिका पयोधरभरे नाना प्रसूनच्छदैः कृष्णेन प्रणयातिरेकरभसस्तस्यामभिव्यंजितः।।४८६।।
(अ० ५/१६)

---

(४८२) श्रीवृन्दाजी द्वारा प्रदर्शित इस प्रकार वृन्दावन की शोभा का दर्शन करके श्रीवृन्दावनेश्वर और श्रीवृन्दावनेश्वरी ने उन्हें हार युगल पारितोषिक प्रदान करते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे।

लताओं के द्वारा कृष्ण सेवा :–

(४८३) श्रीवृन्दावन की लताएं मुकुल द्वारा अर्घ्य, मकरन्द द्वारा पाद्य, मधु धारा से भीगे हुए पराग द्वारा अनुलेपन, पुष्प व पल्लवों द्वारा भूषण, फलों द्वारा नेवैद्य, पवन से हिलते हुए पत्रादि अंगो द्वारा नृत्य, मदमत्त भ्रमर द्वारा संगीत, इस प्रकार की कल्पना करते हुए श्री कृष्ण की पूजा करने लगीं।

(४८४) कोई लता पवन से हिलते हुए एक पत्र रूपी हाथ द्वारा पुष्पों की गुच्छी रूपी पयोधर का स्पर्श करने लगी तो दूसरे पत्र रूपी हाथ द्वारा चंचल भ्रमर पंक्ति रूपी भ्रूभंगी द्वारा श्रीहरि को देखते हुए न न न न इस प्रकार का अभिनय करते हुए उनके आलिंगन को निवारण करने लगी।

(४८५) श्रीमधुसूदन के पास आने पर लताएं पल्लव रूपी हाथ के कम्पन द्वारा त्रास कुसुमरूपी हास्य द्वारा उत्साह भ्रमर पंक्ति रूपी कटाक्षपात द्वारा रोष प्रगट करने लगी।

नाना पुष्पों का दर्शन करके श्रीकृष्ण अत्यन्त लालायित होकर श्रीराधारानी का श्रृंगार करने लगे

(४८६) उन्होंने मस्तक के ऊपरी भाग में बन्धूक पुष्प द्वारा सिन्दूर का बिन्दु बना दिया और नख से किसलयों को क्षत करके राधारानी के गण्ड स्थल पर मकरी चित्र और नाना प्रकार के पुष्प पल्लवों द्वारा उनके पयोधर युगल की कंचुलिका की रचना की। इस प्रकार श्रीकृष्ण श्रीराधा के प्रति अपने असीम प्रणय की अभिव्यक्ति करने लगे।

विपिनलतादलकुसुमैर्विभूष्य राधां हरि प्राह।
त्वं सुमुखि ! कृष्णपक्ष–प्रणयवती कुञ्जदेवता कापि।।४८७।।

(अ० ५/३३)

राधे ! मुखं तव विधुर्नु सरोरुहं नु नेत्रे च खञ्जनयुगं नु चकोरकौ नु।
मूर्त्तिश्च कांचनलतैव नु चन्द्रिका नु धाता नु पञ्चविशिखो नु रसो नु वाद्यः।।४८८।।

(अ० ८/८)

उदञ्चद्वक्षोजस्तवकनमिता बाहुविटपद्वयी–दोले रम्या स्मितकुसुम सौरभ्य–सुभगा।
इयं सन्ध्यारागच्छविलमृदपाण्यंगुलिदला नवीना ते राधे ! विलसति तनूरत्नलतिका।।४८९।।

(अ० ८/१४)

पूर्णो यदि स्यादनिशं सुधांशुः स चेत् कलंकेन भवेद्विहीनः।
चकोरपेयोऽपि न चेदयं स्यात् त्वदास्यदास्याम तदैष राधे !!४९०।।

(अ० ८/१५)

स्वतश्चपललोहिते सुमुखि राधिके ! ते दृशौ गतं सहजलालसं प्रकृतिमन्दमन्दस्मितम्।
स्वभावमृदुवक्रता ललितमर्धमर्धम् वचो मदश्च मदनश्च वा मधुमदश्च कैर्लक्ष्यताम्।।४९१।।

(अ० ८/५०)

---

(४८७) श्रीहरि वन लता पुष्प पल्लव आदि द्वारा श्रीराधा का श्रृंगार करके कहने लगे– अयि सुमुखि ! तुम कोई कृष्ण पक्ष की प्रणयशालिनी अपूर्व कुंज देवी हो।

(४८८) हे राधे ! तुम्हारा मुखमण्डल पूर्ण चन्द्रहै या प्रफुल्लित कमल, हे राधे ? तुम्हारे नेत्र द्वय खंजन युगल हैं ? अथवा चकोर युगल हैं ? तुम्हारी यह मूर्ति स्वर्णलता है या शारद् चन्द्रिका? और तुमको बनाने वाला कामदेव है या श्रृंगार रस ?

(४८९) हे राधे ! तुम अपने उन्नत वक्षोज रूपी पुष्प–गुच्छ भार से नम्रा बाहुरुपी शाखाओं के दोलन से रमणीया मृदु हास्य कुसुमों के सौरभ से सुखदा, संध्या राग की तरह कान्ति युक्ता, कोमल हाथ के उंगुलियों रुपी दल विशिष्टा इस प्रकार तुम्हारी यह तनरुपी रत्न लत्तिका शोभा पा रही है।

(४९०) हे राधे ! चन्द्रमा यदि निरन्तर पूर्ण रहे और कलंक विहीन हो और कभी भी चकोर द्वारा उसका आस्वादन नहीं किया गया हो तो भले ही वह चन्द्र तुम्हारे मुखारविन्द का दास होने की योग्यता प्राप्त कर सकता है।

(४९१) हे सुमुखि राधिके ! तुम्हारे नेत्र युगल स्वभाव से ही चपल और लालिमा युक्त और तुम्हारी गति स्वाभाविक लालसामयी (आलिंगनेच्छामयी), स्वभाव से ही मृदुमन्द हास्य, युक्त तुम्हारे स्फुट वचन मृदु और वक्रता युक्त होने से मनोहर, अतः तुम मद हो या मदन अथवा मधुपान जन्य मत्तता इसे कौन समझ सकता है ?

स्तनौ स्तवकविभ्रमौ विहसितं प्रसूनोद्गतिर्वचो मधुरसो दृशावभिमुखस्थिति खञ्जनौ।
भ्रवौ भ्रमर–मण्डली करपदं नवाः पल्लवास्त्वमेव सखि ! राधिके ! मदनकल्पवल्ली भुवि।।४६२।।
(अ० ५/३६)

एवं वर्णयतस्तस्य मुखं दृष्ट्वा सा मानं चकारेति वर्णयति–
गण्डेकुण्डलपद्मरागमहसो विम्वं प्रति प्रेयसः पारक्योऽधरराग इत्यरुणितापांगी चलं वीक्ष्य तम्।
स्निग्धाक्षी दयितो रुषं विदितवान्नो वेति दोलायिता न्यञ्चद्वक्त्रतया विचार्य च मृषा मानं दधे राधिका।।४६३।।
(अ० ५/७६)

कोपे यथातिललितं न तथा प्रसादे वक्त्रं विधिस्तव तनोतु सदैव कोपम्।
इत्याकलय्य दयितस्य वचोविभंगीम् राधा जहास विहसत्सु सखीजनेषु।।४६४।।
(अ० ४/३)

प्रियालोके दृष्टिं नमयति तमन्यां प्रति लसद्दृशं स्निग्धारक्तप्रचलनयना पश्यति वधुः।
पुनः पश्यत्यस्मिन् स्मित–पुलकसंगोपन–परा हठात्तेन श्लिष्टा सपदि गतवाम्या समभवत्।।४६५।।
(अ० ५/७७)

---

(४६२) हे सखि राधिके! इस जगत में एक मात्र तुम ही काम का कल्पलता हो – क्योंकि तुम्हारे स्तन युगल पुष्प गुच्छों की शोभा, हास्य कुसुम का विकास, वाक्य मधुरस, नयनयुगल एवं दूसरे के सामने बैठे हुए कंचन द्वय और भ्रयुगल भ्रमर मण्डली तथा हस्त एवं पद नवीन पल्लव रुप है।

श्रीराधा का कपट मान :–

(४६३) इसी प्रकार श्रीकृष्ण का वर्णन करने पर उनके मुखारविन्द की ओर देखकर श्रीराधारानी मानिनी हो गयीं इसी अवस्था का वर्णन करते हुए कह रहे हैं :–

प्रियतम के गण्डस्थल पर कुण्डल में जड़ित पद्मराग मणि की कान्ति का प्रतिबिम्ब पड़ने से उसे किसी अन्य नायिका का अधर राग मानकर श्रीराधिका अरुणित कटाक्षों द्वारा चंचल दृष्टि से स्निग्ध नेत्रा होकर 'प्रियतम मेरे क्रोध को जान पाये हैं या नहीं' इस प्रकार का विचार करती हुई अपने मुखारविन्द को अवनत करके मिथ्या मानवती हो गयी।

(४६४) 'हे प्रिये ! तुम्हारा वदन मण्डल क्रोध में जितना सुन्दर प्रतीत हो रहा है उतना प्रसन्नावस्था में नहीं, अतएव विधाता तुम्हें सदा कोपान्विता ही बनाये रखे' प्रियतम की इस प्रकार की वाम्यभंगी का श्रवण करके सब सखियाँ हँसने लगी और राधारानी भी हँस पड़ी।

(४६५) प्रियतम के अवलोकन करते समय श्रीराधिका अपनी दृष्टि को झुका लेती है और प्रियतम के अन्य सखी के प्रति दृष्टि निक्षेप करने पर वे स्निग्ध आसक्त और चंचल नयनों से उनके प्रति दृष्टिपात करती है। श्रीकृष्ण के पुनः उनकी ओर दृष्टिपात करने पर वह मृदु हास्य करतीं अपनी पुलकावलि का गोपन करने का प्रयत्न करने लगीं। इसके पश्चात् प्रियतम द्वारा हठात् आलिंगिता होने पर वे अपने वाम भाव का परित्याग कर देती है।

कान्तभुजबन्धनात्–विश्लिष्टा चलन्ती अग्रे भ्रमरं दृष्ट्वा परावृतय कान्तमाह–
अपि करधुतिभिर्मयापन्नो मुखमयमञ्चति चञ्चलो द्विरेफः।
अघदमन ! मयि प्रसीद वन्दे कुरु करुणामवरुन्धि दुष्टमेनम्।।४६६।।

(उ० १३/१४)

रक्ष रक्ष मुहुरेष भीषणो, धावति श्रवण चम्पकं मम।
इत्युदीर्य मधुपाद् विशंकिता, सस्वजे हरिलोचना हरिम्।।४६७।।

(उ० ११/६८)

राधाभासो मरकतमयीं कुर्वते कृष्णकान्तिम् कृष्णास्याभा अपि च हरितीकुर्वते धाम तस्याः।
स्थाने स्थाने यदि निवसतस्तौ तदा गौरनीलावेकस्थाने यदि वत तदा तुल्यभासौ विभातः।।४६८।।

(चै० ६/१६)

केशवांसतटराजिभुजाया, मन्थरालसगतेः सह–यान्त्याः।
तन्नितम्बभुवि लग्न–विलग्नो, वीचिवत् किल रराज नितम्बः।।४६९।।

(चै० ६/१६)

---

(४६६) कान्त के भुजबन्धन से मुक्त होकर चलते–चलते श्रीराधा आगे भ्रमर को देखकर कुछ पीछे लौटती हुई प्रीतम से कहने लगीं :–

हे अघनाशन ! मैंने अपने हाथ से इस चंचल मधुकर को कितना दूर किया लेकिन फिर भी यह मेरे मुख पर ही आ रहा है। किसी तरह भी दूर नहीं होता इसलिए आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। मैं आपके चरणों में प्रणाम करती हूँ मुझ पर करुणा करके तुम इस दुष्ट मधुकर को दूर भगाओ।

(४६७) यह भयंकर भ्रमर गुनगुन करता हुआ बार–बार आकर मेरे कान में लगे हुए चम्पक पुष्प के प्रति धावित हो रहा है अतएव 'रक्षा करो रक्षा करो' ऐसा कहती हुई मधुकर से शंकिता मृगलोचना श्रीराधिका ने श्रीहरि का आलिंगन कर लिया।

(४६८) श्रीराधा की कान्ति श्रीकृष्ण की कान्ति को मरकतमयी एवं श्रीकृष्ण की कान्ति श्रीराधा की कान्ति को हरित वर्ण करदेती है। यदि श्रीराधा कृष्ण पृथक–पृथक स्थान पर विराजमान होते हैं तो उन दोनों की गौर–नील कान्ति शोभा पाती है किन्तु यदि वे एक स्थान पर मिलित होकर विराजते हैं तो दोनों की आभा एक समान होकर शोभा पाती है।

(४६९) इसके पश्चात् केशव के स्कन्ध देश पर जिनकी भुजा विराजमान है और जो आलस्य मन्थर गति हो गयी हैं ऐसी श्रीकृष्ण सहगामिनी ब्रजसुन्दरी श्रीराधिका के नितम्ब–देश का मध्य भाग जब श्रीकृष्ण के नितम्ब से मिलित होता है तो मानों गौर नील वर्ण की तरंगे एक दूसरे से मिलती हुई शोभा पाने लगती हैं।

उल्लसन्मदन–मन्थरपाद–न्यासभाजि गमने रमणीनाम्।
श्रोणीबिम्बकुचयोः परिणाहः खेदयन्नपि वभूव सुखाय।।५००।।

(चै० ६/१३)

वीचिभंग इव कांचन कांची, कामडिंडिम्–र वेन नितम्बः।
सुभ्रुवां गमनविभ्रमभूषो, मन्दमन्दमलसेन ननर्त्त।५०१।।

(चै० ६/१४)

कोमलञ्चरणपद्ममशक्तं मा स्म गा द्रुततरं मदिराक्षिः।
इत्यतीव विकलौ रुदतः किं नूपुरौ प्रणयतो रमणीनाम्।।५०२।।

(चै० ६/१५)

तत्तदंध्रिकमलस्य विलासे, सस्पृहं कथयतीव महान्तम्।
स्वानुरागमनुरागवतीनां यावकैररुणिता वनभूमिः।।५०३।।

(चै० ६/१६)

ईशाविमं पश्यतमात्मनोऽग्रे, बसन्त कान्ताख्यमरण्यभागम्।
यस्मिन्ऋतुनामधिपो मुदा वां सेवोत्सुकः स्वैर्विभवैश्चकास्ति।।५०४।।

(गोवि० १२/६८)

(५००–५०१) अहो ! जिस मन्थर गति को देखकर मदनराज भी उल्लसित होता है ऐसे मन्द गति से चलते हुए रमणीयों के सुविशाल नितम्ब और वक्षस्थल उनको खेद युक्त करते हुए भी उनके सुख का कारण ही होते हैं और ब्रजरमणियों के नितम्ब देश पर विराजमान स्वर्ण मेखला अपनी कान्ति तरंगों का विस्तार करती हुई कामदेव की डिम्डिमी के समान मानों आलस्य से धीरे–धीरे नृत्य कर रही हो।

(५०२) क्या आश्चर्य है ? 'कोमल चरण कमल थक गये हो अतः हे मदिराक्षी ! अब शीघ्र गति से मत चलो' ऐसा कहते हुए ही मानों नूपुर युगल ब्रजरमणियों के प्रति प्रणय प्रकट करते हुए धीरे–धीरे रो रहे हैं।

(५०३) अहो ! अनुरागवती ब्रजरमणियों के चरण कमलों में सुशोभित यावक (आलता) वनभूमि को रंजित करता हुआ मानों अपनी अभिलाषा को प्रगट करता हुआ अपने हृदय के अनुराग ही बाहर व्यक्त कर रहा है।

(५०४) इसके पश्चात् वृन्दा देवी आगे–आगे चलकर अपने प्राणेश्वर श्रीराधाकृष्ण को बसन्त ऋतु से शोभान्वित श्रीवृन्दावन को दिखाकर कहने लगीं– हे प्रभु युगल ! आप अपने समक्ष इस बसन्त कानन की शोभा का अवलोकन करिये। जिसमें ऋतुराज बसन्त आनन्दित होकर आपकी सेवा करने के लिए उत्कंठापूर्वक अपने वैभव का विस्तार कर रहा है।

यस्मिन् पुञ्जि–मञ्जुगुञ्जदलयो वासन्तिका मण्डपाः कूजत्कोकिलकेलि कौतुक रहः कोलाहलाः पादपाः।
चञ्चच्चन्दनशैलनन्दन–मरुल्लोलल्लताबान्धवं लीलाचङ्क्रमणक्रमेण स ययौ देशं वसन्तोत्सवम्।।५०५।।
(कृष्ण० ३/५८)

अथ तद्विलोक–मुदितेन, स्वमधुरिम–दर्शनोद्गता सा।
हृदयदयितां प्रति तां, प्रमदादवर्णि हरिणा वनद्युतिः।।५०६।।
(गोवि० १२/६६)

पुन्नागैरवतंसनं विदधतीवासन्तिकाभिः स्रजं गुच्छार्धं बकुलैर्ललाटफलके सिन्दूरकं किंशुकैः।
चाम्पेयैः कुचकञ्चुकं कटितटे शोणाम्बरं वञ्जुलैः–र्नित्यं मूत्तीमती सती विजयते श्रीर्यत्र पौष्पाकरी।।५०७।।
(आ० १/१०२)

कुन्दे मरन्दाशन–तुन्दिलास्ते, मन्दादराः सम्प्रति कुन्ददन्ति !
इन्दिन्दिराः पश्य मरन्दलुब्धा, माकन्दमुच्छूनशिखं प्रयाति।।५०८।।
(गोवि० १२/७०)

मौनव्रतं त्यक्तुमिवान्यपुष्टाः कण्ठं कषायेण विशोधयन्तः।
सार्धं पिकिभिः कलकण्ठि ! पश्य, माकन्दमुद्यन्मुकुलं प्रयांति।।५०९।।
(गोवि० १२/७१)

---

(५०५) यहाँ वासन्ती कुंज गृहों में प्रत्येक पुष्प पर मनोज्ञ गुंजन परायण भ्रमर विराजमान है। जहाँ वृक्षों पर कोकिल आदि कुहू–कुहू ध्वनि से कौतुक करती हुई कोलाहल कर रही हैं। जहाँ चंचल मलय वायु से हिलती हुई लताएं अपनी बन्धुता का स्थापन कर रही है ऐसे बसन्तोत्सव नामक प्रदेश में श्रीराधा कृष्ण लीला विनोद करते–करते उपस्थित हुए।

(५०६) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण बसन्त की वह शोभा देखते हुए प्रसन्नचित होकर, प्राणप्रिया श्रीराधा के प्रति लक्ष्य करके, अपने दर्शन से उत्पन्न हुई उस वन की कान्ति का वर्णन करते हुए कहने लगे–

(५०७) यह वासन्ती शोभा मानों शरीर धारण करके विशेष रूप से उत्कर्ष को प्राप्त हो रही है। यह शोभा पुन्नाग पुष्पों के कर्णभूषण, माधवी पुष्पों की माला, बकुल पुष्पों का गुच्छहार पलाश पुष्पों द्वारा ललाट का सिन्दूर, चम्पक पुष्प द्वारा कंचुकी और अशोक पुष्पों से कटिदेश का लाल वस्त्र धारण किये हुए है।

(५०८) हे कुन्ददन्ति ! देखो मधुपान से तृप्त होकर मकरन्द के लोभी भ्रमर वृन्द इस समय कुन्द पुष्प को छोड़कर ऊँचे–ऊँचे शिखर वाले आम्र मुकुल पर धावित हो रहे हैं।

(५०९) हे कलकण्ठी ! आम्र मुकुल को खाकर ही कोकिला सुन्दर कण्ठ ध्वनि प्राप्त करती है, यह प्रसिद्ध है इसीलिए देखो आज कोकिलाओं के साथ कोकिल पक्षी मौन छोड़कर आम्र मुकुल के कषाय रस द्वारा अपने कण्ठ को विशोधन करके आम्र मुकुल आस्वादन करने के लिए आम के वृक्षों की ओर जा रहे हैं।

वासन्ती–स्वर्णयूथी–मुखहसित–लतालीभिरालिलिंगतांगी फुल्लेयं चम्पकाली बकुलततिरियं सापि तापिञ्छमाला।
सेयं पुन्नागवीथी सुतिलकविततिः सा त्वियं चूतपाली श्रेणीयं वञ्जुलानां विलसति पुरतश्चावलिः केशराणाम्।।५१०।।
(गोवि० १२/७२)

पुन्नागाः सप्तलाभिर्विधुमुखि ! बकुलाःसल्लवंगावलीभिः कुब्जाभिः कोविदाराः सुदति ! रुरुचिरे चम्पकाः केतकीभिः।
तेऽशोकाः स्वर्णयूथीततिभिरिह लसत्किंशुकाः पाटलीभिर्वासन्तीभी रसालाः सितशतदलिकाश्रेणीभिः केशराश्च।।५११।।
(गोवि० १२/७३)

अतिमुक्तैरतिमुक्तैरतिमुक्तैश्चान्वितं वनं यदिदम्।
रथकन्मालिकामोक्षाकांक्षैरपि सेवितं तस्मात्।।५१२।।
(गोवि० १२/७४)

शरोत्पत्तिस्थानायत इदमरण्यं रतिपतेर्लतावृक्षव्रातः कुसुमशरकारायत इह।
पतन् भृंगव्यूहः प्रतिकुसुममुच्चैर्ध्वनिमिषाद् दिशन् भद्राभद्रं गणयति परीक्षाकर इव।।५१३।।
(गोवि० १२/७५)

---

(५१०) माधवी, स्वर्ण यूथिका आदि विकसित लताओं द्वारा आलिंगित एवं प्रफुल्लित यह चम्पक श्रेणी एवं मालिका द्वारा आलिंगित बकुल श्रेणी, तमाल पंक्ति, पुन्नाग, सुन्दर तिलक वृक्ष श्रेणी, आम्र पंक्ति, वंजुल श्रेणी, नागकेशर श्रेणी शोभा पा रही है।

(५११) और हे विधुमुखि ! हे सुदंति ! नवमालिका के साथ पुन्नाग वृक्ष, उत्तम लवंग लता के साथ वकुल वृक्ष, कुब्जालता सहित कोविदार, केतकी के साथ चम्पक वृक्ष, स्वर्ण यूथी के साथ अशोक वृक्ष, पाटली के साथ शोभित किंशुक, माधवी के साथ आम्र और शुभ्रवर्णा शतपत्रिका के साथ नाग केशर सकल शोभा पा रहे हैं।

(५१२) अतिमुक्त अर्थात् रथजनक नामक वृक्ष से यह वन युक्त है। अतिमुक्त अर्थात् माधवीलता से यह वन शोभित है और मालिक अर्थात् माली इसकी सेवा करते हैं और अतियुक्त अर्थात् जो मोक्ष को प्राप्त कर चुके है या जो मोक्ष की आकांक्षा करते हैं, ऐसे व्यक्तियों द्वारा यह वन सेवित है अर्थात् जो मुक्ति लाभ कर चुके हैं या जो ब्रजांगनाओं की पदधूलि रूपी मोक्ष की इच्छा करते हैं ऐसे व्यक्ति इस वन की सेवा करते हैं।

(५१३) यह वन रतिपति कामदेव के बाणों की उत्पत्ति के स्थान की तरह ही है कारण इसकी लताएं और वृक्ष सभी पुष्प बाणों की भाँति प्रतीत हो रहे हैं और भ्रमरगण प्रत्येक पुष्प पर जाकर उच्च ध्वनि करते हुए मानों एक परीक्षक की तरह यह उत्तम है अथवा उत्तम नहीं है इस प्रकार गणना कर रहे है।

मधुपी मधुपं विष्टं स्वप्रतिबिम्बांचि पुष्पमनु दृष्ट्वा।
मिलितां मधुपीमन्यां, मत्वा तृषितापि निववृते रोषान्।।५१४।।

(गोवि० १२/७६)

अजनि मदनो राजा मन्त्री मधुमलयानिलो निखिलविजयी सेनानीन्द्रश्चरा भ्रमरा इह।
पिकपरिषदः प्रापुर्दण्डेऽधिकारमदक्षिणा ब्रजकुलभुवो दण्ड्याः काराः कृता गिरिगह्वराः।।५१५।।

(कृ० भा० १३/१६)

माकन्दानां कलितकलिकास्वादनः कोकिलोऽयं चञ्च्यञ्चुर्यदयमनदत् कण्ठमूलं धुनानः।
ग्रासीभूतः सह कलिकया यत्र लब्धावकाशो मूर्त्तो नादः कुहुरिति बहिर्याति यत्र द्विरेफः।।५१६।।

(आ० १/१००)

मदकलकलकण्ठ–कण्ठघण्टा,–ध्वनिनिकरानुमित स्वतंत्रचारः।
पतिसरति स यत्र मत्तवामा, कलकलदः स्मरगन्धसिंधुरेन्द्रः।।५१७।।

(आ० १/१०२)

---

(५१४) हे प्रिये ! देखो इस वन में भ्रमरी अपने प्रतिबिम्ब युक्त पुष्प पर बैठा हुआ देखकर भ्रमर को किसी अन्य नायिका के साथ मिलित होता हुआ जानकर स्वयं तृष्णातुर होते हुए भी रोष वश वहाँ से चली गई।

(५१५) हे राधे ! इस भूमि का राजा मदन, मन्त्री मधु एवं निखिल विजयी मलयानिल सेनापति, भ्रमरगण गुप्तचर, पिकरुपी सभासद, दण्डाधिकारी वाम स्वभाव वाली ब्रजकुल ललनाएं दण्डनीया और गिरि कन्दरा कारागृह।

(५१६) यह कोकिला आम्रवृक्षों से उसकी कलियों का आस्वादन करके अपनी चोंच का विस्तार करके और कण्ठ का कम्पन करती हुई अपनी प्रतिवादी कोकिला का शब्द सुनकर जब और जोर से कूजने लगी तो उसके मुख में कलिका के साथ एक भ्रमर चला गया और फिर जब पुनः वह कुहू शब्द करने लगी तो वह मानों मूर्तिमान कोकिला के शब्द की तरह बाहर आ गया।

(५१७) कोकिलाओं के कण्ठ की कल–कल ध्वनि ही मानों जिसके कण्ठ में स्थित घण्टा का शब्द हो रहा है और जिससे उसकी मत्तता के कारण स्वच्छन्द गति का अनुमान होता है ऐसा कन्दर्प रुपी महामत्त गजराज श्रेष्ठ रमणियों के चित्त मे कोलाहल उत्पन्न करता हुआ चारों ओर गमन कर रहा है।

अथ कान्तवाक्यमसहमानानामिव सखीनां परस्परमुत्प्रेक्षोक्तिः–
आमन्दचन्दन–समीर गुरुपदेशात् प्रत्यग्रपल्लवकराभिनयं दधत्यः।
गीतेन भंगमिथुन प्रकरस्य वन्यः कृष्णावलोकनमुदा सरसं नटन्ति।।५१८।।
(आ० १४/१४७)

सन्त्रासं नवदल पाणि–कम्पनेन प्रोत्साहं कुसुममयेन सुस्मितेन।
रोषंच भ्रमरघटा–कटाक्षपातै रासन्ने मधुभिदि वीरुधोऽभ्यनेषुः।।५१६।।
(अ० ५/१६)

एकेनानिलचपलेन पत्रहस्ते–नारौत्सीत् स्तवक–पयोधरं परेण।
आक्षेपं न न न न नेति चञ्चलालि–भ्रूभंगया व्यधित हरिं विलोक्य वल्ली।
एहीत्याह्वयत इवापरेण कांचित् सव्रीड़ा कुसममयं स्मितं प्यधत्त।।५२०।।
(अ० ५/१६)

अधारण्यश्रान्तेः श्रितविटपिमूला मुरभिदः प्रसूनैवासन्तैरकृत विविधाकल्परचनाम्।
यदा राधां सालीं रचयितुमसौ भूषिततनुः समारब्धह्रीतोऽस्थित नहि तदा तस्य सविधे।।५२१।।

(५१८) इसके पश्चात् प्रियतम के वाक्यों को मानों सहन न करती हुई सखीगन भी (वन की शोभा के प्रति) उत्प्रेक्षा वाक्य बोलने लगी :–

किसी सखी ने कहा – श्रीकृष्ण ने अवलोकन कर लिया है। इस प्रसन्नता से सभी लताएं मन्द–मन्द मलय पवन रुपी गुरु के उपदेश से नवीन पल्लव रुपी हाथों द्वारा अभिनय करते–करते भ्रमर समूह के गीत के साथ नृत्य कर रही हैं।

(५१६) और कोई सखी कहने लगी– मधुमथन श्रीकृष्ण जब लताओं से पुष्प गुच्छ ग्रहण करने के लिए उनके निकट आते हैं तो कोई–कोई भाववती लतिका नवीन दल रुपी हाथ का कम्पन करके भय प्रदर्शित करती है। कुसुम रुपी मृदु हास्य द्वारा प्रोत्साह एवं भ्रमर श्रेणी रुप कटाक्ष पात द्वारा रोष प्रकाश करती हैं।

(५२०) अन्य कोई सखी कहने लगी– श्रीहरि का अवलोकन करके लतिका वायु से चंचल पत्र रुपी एक हाथ द्वारा स्तवक रुपी स्तन मण्डल को आच्छादन करते हुए न न न न 'कहकर भर्त्सना करती है और दूसरे पत्र रुपी हाथ से श्रीकृष्ण की चंचलता को देखकर अपनी सहायता के लिए मानों किसी सखी का आवाहन कर रही है एवं लज्जित होकर अपने कुसमरुपी मृदुहास्य को छिपा रही है।

(५२१) इसके पश्चात् वनभ्रमर से परिश्रान्त होकर वृक्ष के नीचे बैठकर श्रीराधिका सखीगनों के साथ बसन्त ऋतु से उत्पन्न पुष्प समूहों द्वारा श्रीकृष्ण का नाना प्रकार से श्रृंगार करने लगी। श्रीकृष्ण विभूषित होकर जब श्रीराधा की वेष रचना करने के लिए प्रस्तुत हुए तब वे लज्जा वश प्रियतम के निकट नहीं रुक सकीं।

कचौघे पुन्नागं बकुलमुकुलानि भ्रमरकेष्वशोकं सीमन्ते श्रवसि सहकारस्य कलिकाः।
स्तनाग्रे वासन्तीकुसुमदलमालेति कुसुमैः स्वयं वृन्दा राधां सपदि मुमुदेऽलंकृतवती।।५२२।।
(आ० १४/१६)

वृन्दादिभिः सरभसं वनदेवताभिः प्रीत्यादरेण महताभ्युपगम्यमानाः।
कामं वसन्तमहमंगलवेषवासो भूषादिभिर्विदधिरे परिभूषितास्ताः।।५२३।।
(आ० १४/६७)

अथाह वृन्दा ब्रजमंगलाकरा–वालेप–चित्रै रुचिरां सुविस्तृताम्।
वसन्तलीलोत्सव–रंगवेदिका–स्थलीमिमां पश्यतमग्रतः स्थिताम्।।५२४।।
(गोवि० १४/२७)

अगरु–घुसृण–कस्तूरीन्दू–सच्चन्दनानां पृथग पृथगुदञ्चत्कर्दमाम्भः प्रपूर्णैः।
विविध मणिचिताम्बुक्षेपयन्त्रैर्विराजद्वितत–वदनकुम्भैरन्वितां शातकुम्भैः।।५२५।।
(गोवि० १४/२८)

सैन्दूर–कार्पूरक–पौष्प कन्दुकैः, शरासनैर्वाणचयैश्च कौसुमैः।
ताम्बूलमाल्यैः कुसुमाम्बुचन्दनै–रापूर्ण–सौवर्णकभाजनैयुर्तम्।।५२६।।
(गोवि० १४/२६)

---

(५२२) तब वृन्दा देवी ने श्रीराधा के केश पाशों में पुन्नाग पुष्प, ललाट पर बिखरे हुए घुँघराले केशों में बकुल मुकुल, सीमन्त पर अशोक पुष्प, कानों में आम्र कलिका, वक्षस्थल पर बासन्ती कुसुमदलों की माला–इस प्रकार कुसुम समूहों द्वारा स्वयं श्रीराधा को विभूषित करके आनन्दित हो उठे।

(५२३) इसके पश्चात् वृन्दा आदि वन देवियों ने परम प्रीति और आदर के साथ श्रीकृष्ण और श्रीराधा के साथ चलने वाली समस्त सखीगणों का बसन्तोत्सव के अनुकूल वसन भूषन आदि द्वारा विशेष रूप से श्रृंगार कर दिया।

बसन्त लीलोत्सव (होरी) :–

(५२४–२६) इसके पश्चात् वृन्दाजी कहने लगी– हे ब्रज का मंगल विधान करने वाले राधाकृष्ण ! आपके सामने अगरु आदि आलेपों द्वारा नाना प्रकार के चित्रों द्वारा मनोहर यह बसन्त लीलोत्सव की रंग वेदी है। इसका आप दर्शन करें– इस वेदी पर अगरु, कुंकुम, कस्तूरी, कर्पूर, चन्दन आदि पृथक–पृथक और कहीं इन सब को मिलाकर जल को सुगन्धित करके कलशों में भरकर रखा गया है जिन स्वर्ण कलशों के चौड़े मुख पर विविध मणियों से युक्त पिचकारियां शोभायमान हैं और स्वर्ण पात्रों में सिन्दूर कर्पूर और पुष्पों से बने हुए कन्दुक (गेंद) तथा पुष्पों से बने हुए धनुर्वाण, ताम्बूल, मालाएं, कुसुमों से सुगन्धित जल और चन्दन आदि सकल द्रव्य रखे हुए हैं।

कर्पूर–कुंकुम–मदागुरुचन्दनानां पंकैश्च चूर्णनिकरैरतिपूरिताभिः।
श्वासाभिलव्य–मृदुजातुष–कूपिकाभिरापूर्ण हेमतत–भाजनवृन्दयुक्ताम्।।५२७।।
(गोवि० १४/३०)

तत्सामग्रीणामपरिमितताहेतुमाह–
वाष्पच्छेद्य–सदच्छजातुष–पुटी गर्भेषुसंपूरिता नानावर्ण–विलासचूर्णपटली पंकश्च कास्तूरिकः।
पौष्पं कार्मुकमायुधं च विविधं नानाविधान् कन्दुकान् रत्नानां जलयन्त्रकाणि सुषुवुः कल्पद्रुमाणां गणाः।।५२८।।
(आ० १४/६६)

आरुह्य तां श्रीरमणीचयो भवम् स्तदैकतः श्रीरमणोऽप्यथैकतः।
गृहीत–तत्तजलयन्त्रकादिकः परस्परं प्रेमभरादरीरमत्।।५२६।।
(गोवि० १४/३१)

काश्चिद् कौंकुमधूलिधोरणीभृतां वासोऽञ्चलीम् लीलया तिर्य्यक्काञ्चन कांञ्चिसीम्नि जघने बद्धां दधत्योवभूः।
याभिर्यच्चिरसंचितं रतिकलावैदग्ध्यविद्याधनं क्रेतुं कृष्णमनोमणिं तदिव ता ग्रन्थो निधायागताः।।५३०।।
(आ० २२/२२)

---

(५२७) कुछ अन्य स्वर्ण पात्रों में कर्पूर, कुंकुम, मृगमद, अगरु, चन्दन इन पांच द्रव्यों को मिलाकर लाख की बनी हुई सूक्ष्म कूपिका जो कि श्वास वायु से भी टूट सकती है उन सबको सजाकर रख दिया गया है।

(५२८) इस समस्त सामग्री की अपरिमिता (जिसकी मात्रा का माप नहीं किया जा सके) बताते हुए कहते हैं :– उस समय अतिसूक्ष्म आवरण वाले सुन्दर स्वच्छ लाक्षा से बनी हुई पुटिकाओं के मध्य केलि विलास के अनुकूल नाना प्रकार के चूर्ण (गुलाल सदृश) एवं सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित किये हुए पंक सकल, पुष्पमय धनु एवं विविध आयुध, नाना प्रकार के कन्दुक, रत्नमय पिचकारियां आदि बसन्त क्रीड़ा के समस्त उपकरणों को कल्पवृक्षों ने लाकर रख दिया।

(५२६) अब परमसुन्दरी ब्रजरमणीगण एवं परम शोभायमान श्रीकृष्ण उस रंग वेदी पर आरोहण करके दोनों एक दूसरे के सामने अवस्थित हो गये और क्रीड़ायोग्य उपरोक्त पिचकारी आदि ग्रहण करके अतिशय प्रेम से क्रीड़ा करने लगे।

(५३०) किसी–किसी ब्रजसुन्दरी ने स्वर्ण मेखला युक्त कटिदेश पर कुछ वक्र भाव से बँधे हुए कुंकुम धूलि युक्त वस्त्र को लीलाक्रम से अत्यन्त सुन्दर रूप से धारण कर रखा था मानों श्रीकृष्ण के चित्त रूपी माणिक्य को खरीदने के लिए दीर्घकाल से जो रति कला वैदग्धी रुपधन संचित कर रखा था उसे ही मानों अपनी झोली में भरकर उपस्थित हो गयी हों।

श्च्योतैरागुरवैर्महासुरभिभिः कस्तूरिका–कर्दमैः कार्पूरैरपि रेणुभिर्मलयज–क्षोदैश्च संपूरिताः।
वाष्पच्छेदातमा महामणिमय स्थाल्यन्तर–स्थापिताः काश्चिज्जातुष–कूपिकाः करतलेनादाय तत्राययुः।।५३१।।
(आ० २२/२३)

वल्गद्–वल्गुमणीन्द्रकुण्डलधुरा–दीर्घीकृतच्छिद्रयो–विभ्रत्तत्क्षणभुग्नचूतमुकुलं श्रीकर्णयोरेकतः।
गण्डे तत्प्रतिबिम्बभाजि मधुरां काञ्चीत्विषो मंजरीम् ग्रीवासीम्नि विलासबद्धचिकुर–स्तोमेऽतिमुक्तस्रजम्।।५३२।।
(आ० १४/१३३)

उद्धूनितैस्तत इतः पटवासपूरैर्बालारुणाकृतिभिरुद्भटगन्धवद्भिः।
अत्यन्तलाघवतया नभसि भ्रमद्भिरप्राप्तमौलितिलकालकपक्ष्मलक्ष्मीः।।५३३।।
(आ० १४/१४३)

कृष्णः कलेन मुरली–निनदेन तासां वृन्दावनं सुचिर–संचितगानगर्वम्।
काश्मीर रेणुनिकरेण समं समन्तात्ताभिः प्रमोदभसेन विकीर्यते स्म।।५३४।।
(आ० २१/१०)

नानायन्त्रमवादयन्त कतिचित् केचिद् वसन्तं जगुः केचिद् गन्धरजांसि कन्दुकचयानन्योमाचिक्षिपुः।
श्रीकृष्णानुचरोत्करेषु सुबलश्रेष्ठेषु हृष्टान्तरो हासैकप्रणयी वटुः पटुरटन्नुल्लासनृत्यं व्यधात्।।५३५।।
(आ० १४/२२८)

---

(५३१) अन्य कुछ ब्रजांगनाएं मणिमयी थाली में अति सूक्ष्म लाख की बनी हुई कूपिका जिनमें महासुगन्धि अगरु, कस्तूरी पंक, कर्पूर रेणु, चन्दन चूर्ण, आदि भरी हुई हैं और जो सामान्य श्वास वायु से भी हिलमिल हो जाती है उन सबको लेकर वहाँ आ गयीं।

(५३२) इधर श्रीकृष्ण को भी शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उनके चंचल मणिमय कुण्डलों से कानों की अतिशय शोभा हो रही है और उन्होंने एक कान में तत्क्षण टूटा हुआ आम्र का मुकुल धारण कर रखा है और कुण्डलों के प्रतिबिम्ब से उनका गण्डस्थल अनिर्वचनीय कान्ति युक्त हो रहा है। घने–घने केशों से शोभित ग्रीवा देश, विलासमय ढंग से बाँधे हुए केशों का जूड़ा और गले में माधवी पुष्पों की माला धारण किये हुए है।

(५३३) इधर–उधर ऊपर उठते हुए उदय होते हुये सूर्य के समान लाल रंग का अत्यन्त सुगन्धित और अतिशय हल्का जो कि आकाश में ही उड़ रहा है ऐसा पटवास (गुलाल) और बसन्त क्रीड़ा के उपयोगी समस्त चूर्ण श्रीकृष्ण के मस्तक पर लगे तिलक, उनकी अलकावलि और पलकों तक नहीं पहुँच सका।

(५३४) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने सुमधुर, वंशी निनाद से ब्रजसुन्दरियों के चिर काल से संचित गान के गर्व को दूर कर दिया। तब सभी सखीगण आनन्द से एक साथ चारों ओर से श्यामसुन्दर के ऊपर कुंकुम, रेणु डालने लगीं।

(५३५) सुबल प्रमुख श्रीकृष्ण के सखाओं में से कोई–कोई नाना प्रकार के वाद्यों को बजाने लगे और कोई–कोई बसन्तराग गाने लगे, कोई–कोई परस्पर गन्धचूर्ण और कन्दुक फेंकने लगे। हास्य रस में प्रवीण मधुमंगल प्रसन्न मन से चारों ओर भ्रमण करते–करते नृत्य करने लगा।

अन्योन्यहासपरिहास–विलासपूर्वम् सैन्दूर कुंकुमरजोनिकरं किरन्त्यः।
वीणादिवादन–विधानरसेनमुक्तकण्ठं जगुर्द्विपदिकां मदिरायताक्ष्यः।।५३६।।
(आ० २१/६)

काश्चिद् कुंकुम वारिर्भिमलयजाम्भोभिश्च कस्तूरिकापाथोभिः कुंकुमद्रवैरपि पृथक् संपूरितं पौरटम्।
विभ्रत्यो जलयन्त्रजालमतुलं शिल्पेन नानात्मना रेजुर्मन्मथ युद्धयान्त्रिकतते मूर्त्ता इवौजः श्रियः।।५३७।।
(आ० २२/२४)

कृष्णे गायति चर्चरीमतिकलां कण्ठेन वीणा–जिता स्तब्धाति कलिन्दजा तरुलता श्रेण्योऽश्रुवर्षं दधुः।
श्रृण्वन्तः श्रवणोपकण्ठगलितं स्वेदाम्बु तन्माधुरी–धारा–स्यन्दधिया लिहन्ति रभसादन्योन्यमेणीगणाः।।५३८।।
(आ० २१/३३)

गान्धारग्रामसन्धापितगरिम धुराधूतगान्धर्वविद्या गन्धर्वीगर्वखर्वीकरणपटु नटद्भ्रूलतं रक्तकण्ठी।
त्रिस्थानस्पर्शिनानाविधगमकगमं साहसोत्साह–नश्यद्–व्रीड़ा क्रीड़ारसेनालपदिति ललितोदारकेदार–रागम्।।५३९।।
(आ० २१/३९)

---

(५३६) सुलोचना ब्रजरमणियाँ परस्पर हास परिहास मय विलासपूर्वक सिन्दूर, कुंकुम चूर्ण डालते हुए वीणा आदि वाद्य यन्त्रों को बजाते हुए आनन्द पूर्वक मुक्त कण्ठ से द्विपदिका राग का गान करने लगीं।

(५३७) कुछ ब्रजसुन्दरी कुंकुम चन्दन जल, कस्तूरिका जल, पुष्पों से सुगन्धित जल द्वारा परिपूरित नाना प्रकार की चित्रकारी से युक्त अतुलनीय स्वर्णमय पिचकारी हाथ में लेकर कन्दर्प युद्ध में मूर्तिमती अस्त्र धारियों की तरह तेज को धारण करती हुई शोभा पाने लगीं।

(५३८) श्रीकृष्ण वीणा विनिन्दित कण्ठ से अतिसुमधुर चर्चरीराग गान करने लगे, जिससे यमुना आदि समस्त जल प्रवाह स्तब्ध हो गये और तरुलता श्रेणी अश्रुवर्षन करने लगीं। इस संगीत ध्वनि को सुनकर हरिणीगण आनन्द पूर्वक अपने कान के पास से निकलते हुए स्वेद जल को ऐसा मानकर कि 'यह कानों से श्रीकृष्ण की गान की माधुरी ही निकल रहीं है', एक दूसरे को चाटने लगी।

(५३९) इसके पश्चात् ललिताजी होरीलीला के आनन्द से साहस और उत्साह वश लज्जा को त्याग कर अपनी भ्रूलता को नचाते हुए सुस्वर कण्ठ से आरोहण–अवरोहण, सम इन तीन स्थानों को स्पर्श करने वाले नानाविध गमक व्यंजक उत्कृष्ट केदार राग का आलाप करने लगीं। वे संगीत की पटुता में गन्धर्वी गणों के गर्व को भी चूर करने लगीं और गान्धार–ग्राम में बड़े गौरव के साथ उन्होंने गन्धर्व गणों की गान–विद्या को भी परास्त कर दिया।

अश्मानो य इमे मणीन्द्रवपुषो वृक्षालवालात्मकाः सर्वे विद्रुतिमागता यदवमन्नम्भस्तदेतत् पुनः।
जातस्तम्भमलम्भयत् कठिनतां येयं तया सर्वतो वृक्षाणां प्रतिमूलमेव निविड़ा व्यातेनिरे वेदयः।।५४०।।
(आ० २१/४६)

आलीनां कुटिलकटाक्षवाणलक्षैराविद्धो हरिरसृजत् कटाक्षवाणम्।
राधाया उरसि निपत्य ह्री कथंचित् स क्रीड़ा–कवच–विभेदमेव तेने।।५४१।।
(आ० १४/२१२)

व्यतनुत वृषभानुनन्दिनि यं, तनुतर–कज्जलकालकूटदिग्धम्।
स हसित–निशितः कटाक्षवाणो, हरि हृदयं विदयं विनिर्विभेद।।५४२।।
(आ० १४/२१३)

लीलालसं मुकुलिताक्ष–मरालितभ्रू–झंकारि–कंकण मुदस्य कराब्जकोशम्।
केनाप्यलक्षितमथो वृषभानुपुत्री सिन्दूर–कंदुकमुरस्य किरन्मुरारेः।।५४३।।
(आ० १४/२१६)

सहचर–करदत्तैः कन्दुकैः कैंकिरातैः सकलकुलवधूनामेव विक्षोभि वक्षः।
यदकृत कृतहस्तो योगपद्येन सद्यस्तदमरवरनार्याः साधुवादैः पुपुजुः।।५४४।।
(आ० १४/१८६)

---

(५४०) इस संगीत की माधुरी से वृक्षों के आलवाल में लगे हुए महामणिमय प्रस्तर समूह थे, वे समस्त द्रवित होकर जलमय हो गये। ललिताजी ने पुनः अपने गान से उस जल को स्तम्भित करके कठिन बना दिया जिससे सब वृक्षों की वेदियां पुनः पूर्ववत् मणिमय हो गयीं।

(५४१) सखीगणों के लक्ष–लक्ष कुटिल कटाक्ष वाणों से विद्ध होकर श्रीहरि ने अपने कटाक्षवाण चलाये। अहा ! ये वाण श्रीराधा के वक्षस्थल में इस प्रकार लगे जिससे कि उनका लज्जारुपी कवच ही छिन्न–भिन्न हो गया।

(५४२) इसके पश्चात् वृषभानुनन्दिनी ने अपनी सूक्ष्म रेखाओं से युक्त कंजल रुपी कालकूट मिलाकर अपने मृदुहास्य से तीक्ष्ण करके कटाक्षरुपी बाण छोड़ा, जिसने श्रीकृष्ण के हृदय को निर्दयता से विद्ध कर दिया।

(५४३) इसके पश्चात् श्रीराधिका ने लीला से विभोर होकर अपने नयनों को मुद्रित करके भ्रू युगल को कुटिल करके, अपने कंकणों की झंकार करते हुए अपने करकमल को उठाकर, श्रीकृष्ण के बिना और कोई भी न जान पाये, इस रीति से श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर प्रथम बार सिन्दूर का गेंद चलाया फेंका।

(५४४) उसी समय युद्ध कुशल श्रीकृष्ण ने अपने सखाओं के हाथ से दिये गये अशोक पुष्प रचित कन्दुक समूह एक साथ सभी व्रजवधुओं के वक्षस्थल पर फैंके। जिससे उनके वक्षस्थल की अत्यन्त शोभा हुई और उसे देखकर देवांगनाएं साधुवाद करती हुई उनके इस कार्य की प्रशंसा करने लगीं।

शोणश्लक्ष्णारुणसुरभिभिर्धूलिभिर्धूलिभिश्च क्रीड़ायुद्धं समजनि महत् कन्दुकैः कन्दुकैश्च।
श्रंगोन्मुक्तैः कुसुमधनुषो वारुणास्त्रैरिवारात् काश्मीरीयैरतिसुरभिभिर्वारिभिर्वारिभिश्च।।५४५।।

(आ० १४/१६१)

अंसालम्बित–पौष्पकार्मुकलतं वाणावलीं कौसुमीं वंशीञ्चातुलतुन्दबन्धनिहितां रत्नाम्बुयन्त्रं करे।
विभ्रच्छीधटिकांचलंच निभृतं पिष्टातकैः श्रीहरिः कान्ता यंत्र विमुक्त–गन्ध सलिलैः सिञ्चन्निमा दीव्यति।।५४६।।

(गोवि० १४/३७)

एकास्य निःसरति या जलयन्त्रधारा व्योमाध्वनीह शतधा च सहस्रधा च।
आसन्नपातसमये किल लक्षधासौ लक्षेषु पातसमये वत कोटिधा स्यात्।।५४७।।

(गोवि० १४/३८)

जातुष्यो या गन्धचूर्णैः प्रपूर्णाः, क्षिप्तास्ताभिस्तेन वा कूपिकास्ताः।
भूमौ पेतुः क्षेपवेगैर्विशीर्णा, स्तन्मध्यस्था गोलिकालक्षमापुः।।५४८।।

(गोवि० १४/३६)

तासां तनो कुंकुमबिन्दुजाल, मध्ये विराजन्मदबिन्दवस्ते।
सुवर्णवल्लीततिपुष्पवृन्द, सुप्तालिसंघ–भ्रममुन्नयन्ति।।५४६।।

(गोवि० १४/४०)

---

(५४५) तब श्रीकृष्ण और ब्रजसुन्दरियों के साथ परस्पर होरी युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें दोनों ओर से शोण (कुछ श्यामता लिए लालरंग) हल्का लाल, पूर्ण लाल वर्ण के गुलाल और कन्दुक दोनों ओर से फैंके जाने लगे। कन्दर्प के वारुणास्त्र की भाँति सुगन्धित जलों से युक्त पिचकारियाँ एक दूसरे पर चलाने लगे।

(५४६) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण अपने कन्धे पर पुष्पों का धनुष लिए हुए सुन्दर फैंट में कुसुमों में बाण और वंशी हाथ में रत्नजड़ित पिचकारी और पीताम्बर के अंचल में बंधे हुए विविध रंगों के सुगन्धित गुलाल धारण किये हुए, कान्तागण को भिगोते हुए क्रीड़ा करने लगे।

(५४७) श्रीकृष्ण की पिचकारी से जो एक जलधारा निकलती वह आगे जाकर सौ धाराओं में फिर सहस्र धाराओं में बँटकर ब्रजसुन्दरियों के पास तक जाकर लक्ष धारायें होकर और फिर उनके अंगों पर कोटि–कोटि धाराओं में विभक्त होकर उन्हें भिगोने लगीं।

(५४८) श्रीकृष्ण और ब्रजसुन्दरियों के द्वारा चलायी हुई जो सुगन्धी चूर्ण से भरी हुई लाख की बनी हुई सूक्ष्म कूपिका, एक साथ वेग से चलायी जाने पर टूटती हुई उनके अंगों को उनमें स्थित अनेक प्रकार के रंगों से विभूषित करती हुई भूमि पर गिर गयीं।

(५४६) श्रीकृष्ण द्वारा फैंके गये कुंकुम द्वारा ब्रजसुन्दरियों के अंग इस प्रकार शोभा पाने लगे मानों किसी स्वर्णलता के स्वर्णवर्ण के कुसुमों पर कोई कृष्ण वर्ण भ्रमर बैठा हो।

श्रीराधिका–प्रथमकीर्णसुसूक्ष्मरन्ध्र–सद्यंत्र–कुंकुमजलामलबिन्दु–जालैः।
व्याप्तं परिस्फुरति संहननं बकारे–रुद्यत्सुधांकिरणबिम्बशतैर्नभो वा।।५५०।।
(गोवि० १४/४१)

ताः क्षेपवेग–गलितावृतकूपिकानां कर्पूरनागज–परागज–गोलिकाभिः।
लग्नाभिरंगवसनेऽथ सुगन्धितोयैः पंकत्वयेत्य विहिताः शबलांगभासः।।५५१।।
(गोवि० १४/४२)

नानावर्णैर्गन्धचूर्णैविकीर्णै–रादौभूद्यौर्व्यानशे दिग् विदिक् च।
गन्धाम्बूनां वृष्टिसंच्छिन्नमूलैर्लेभे पश्चाच्चित्रचन्द्रातपत्वम्।।५५२।।
(गोवि० १४/४३)

कृष्णस्तीक्ष्णैरतनु विशिखैर्नर्ममन्त्रप्रवीणै–स्तासामासीन्मदन विवशो विद्धमर्मा कटाक्षैः।
तत्प्रत्यस्त्रैः सदरहसितापांगलोकाशुगैस्तान् प्रत्यावर्त्य व्यदधदथ ता व्याकुलाः सोऽपि शश्वत्।।५५३।।
(गोवि० १४/४७)

काचिद्वंशीमपहृतवती कापि पानीययन्त्रं काचिद् पौष्पं धनुरनुपमं वाणजालं च काचित्।
अप्यन्यस्यां कुतुककलया मण्डनान्यहरन्त्यां भ्रूभंगेन स्मितसुरुचिना राधिका वाधिकासीत्।।५५४।।
(आ० १४/२३०)

---

(५५०) श्रीराधा द्वारा प्रथम बार जो सुन्दर छोटे–छोटे छिद्रों वाली पिचकारी द्वारा जो कुंकुम जल फैंका गया उससे श्रीकृष्ण अंग की इस प्रकार शोभा हुई मानों नील आकाश में शत्–शत् चन्द्रमाओं का प्रतिबिम्ब छा गया हो।

(५५१) इसके पश्चात् जोर से फेंकने के कारण कूपिकाओं के आवरण फट जाने से उनमें भरे हुए सिन्दूर और नाना रंगों के गन्धचूर्ण जब गोपिकाओं के अंग में लगे हुए जल के साथ मिल गये तो उनके वस्त्र और सकल अंग नाना रंगों से चित्रित हो गये।

(५५२) और चारों ओर से नाना रंगों के गुलाल फैंके जाने से उससे पृथ्वी आकाश और चारों दिशाएं व्याप्त हो गयीं और फिर पिचकारियों के द्वारा सुगन्धित जल डालने से ऊपर उड़ा हुआ गुलाल आकाश में मानों एक निराधार चित्र विचित्र चन्द्रातप (चन्दोपा) की भांति शोभा पाने लगा।

(५५३) इसके पश्चात् ब्रजांगनाओं के परिहास वाक्यों से और तीक्ष्ण कटाक्ष रूपी कन्दर्प वाणों से मर्म स्थान के विद्ध हो जाने से श्रीकृष्ण मदन के आवेश से विवश हो गये तो फिर उन्होंने भी ईषत् हास्य के साथ प्रतिपक्ष के ऊपर अपने अस्त्र स्वरूप कटाक्ष वाणों द्वारा ब्रजसुन्दरियों के कटाक्ष वाणों को निरस्त कर दिया अर्थात् अपनी मधुर चितवन से उन्हें व्याकुल कर दिया।

(५५४) इसके पश्चात् किसी ब्रजसुन्दरी ने वंशी का अपहरण कर लिया, किसी ने पिचकारी, किसी ने अनुपम पुष्प धनुष और किसी ने उनके बाणों को छीन लिया। कोई ब्रजवधू कौतुक वश श्रीकृष्ण के अलंकारों का हरण करके ले जाने लगी तब श्रीराधिका मृदु हास्य सहित मनोहर भ्रूभंगी द्वारा उन्हें इस कार्य से रोकने लगी।

आवेगस्य जवने महता निर्भज्य विभ्रश्यतो भूमौ जातुषकोषतोऽतिमृदुलान् निसृत्य दूरं गतैः।
गन्धैरागुरवैर्घनैर्मलयज क्षोदैश्च गोलायितै–भित्वाण्डं खगपोतकैरिव बहिर्भूतैर्निपेतेऽभितः।।५५५।।
(आ० २२/४६)

तेषां ये ब्रजराज सूनूनिकटे वेगात् समं सर्वतः क्षिप्तानां निपतन्ति तानरहयन् पार्श्वस्थिताः सुभ्रुवः।
ये वा केऽपि लगन्ति तस्य जलदश्यामे प्रतीकेऽभित–स्तानालुम्पति राधिका स्मितमुखी स्वेदच्युता पाणिना।।५५६।।
(आ० २२/५०)

स्वांचलेन घुसृणादिक–पंकान् स्वेदवारि च शनैः क्षपयन्त्या।
यत् पपे मधुरिमास्य दृशात द्वीरपानमिव जातममुष्याः।।५५७।।
(आ० १४/२७१)

अनु दक्षिणोत्तरदिशौ विशाखया सह चित्रया व्यजनचारु चालनैः।
व्यतिदर्शनोपधिक–धर्मबिन्दवः सहसास्ततां दधति वां सदोदिताः।।५५८।।
(कृ० भा० १२/८४)

लीलाविलास–गमनक्रममन्दमन्द–शब्दायमान–मणिनूपूर–किंकिणीकः।
उष्ठाधरे ललितया ललितोपनीतं ताम्बूलपूरक मदन्मदमत्तमूर्त्तिः।।५५९।।

---

(५५५) इसके पश्चात् चारों ओर से ब्रजसुन्दरीगण प्रत्येक एक साथ कई एक कूपिकाओं को फैंकने लगीं। उनके शीघ्रता पूर्वक चलाये जाने से जब वे अपना आवरण भंग करके भूमि पर गिरती तो ऐसा प्रतीत होता मानों डिम्ब भेद करके जैसे पक्षी शावक बाहर निकल रहा हो, इसी प्रकार उन कूपिकाओं से सुगन्धित पदार्थों का गोलाकार चूर्ण समूह निकलकर चारों ओर दूर–दूर तक पड़ने लगा।

(५५६) चारों ओर से एक साथ गोपीगन द्वारा फैंका गया गन्ध चूर्ण जो कि ब्रजराजनन्दन के ऊपर पड़ रहा था उसे उनके निकट स्थित ब्रजरमणी निवारण करने लगीं और जो कुछ श्रीकृष्ण के मेघतुल्य श्यामवर्ण अंग पर आकर लगा उससे मृदु हास्य करती हुई श्रीराधारानी अपने स्वेदजलयुक्त हाथ से पोंछ देती थी।

(५५७) श्रीराधा अपने अंचल से धीरे–धीरे श्रीकृष्ण के अंग पर लगा हुआ कुंकुम पंक और स्वेद जल पोंछ रही थीं और अपने नेत्ररूपी चषक से (प्याले से) उनके माधुर्य का पान करने लगीं। वह उनके पक्ष में वीर पान (योद्धागन युद्ध में विजयी होकर मधु आदि पान करते हैं) की भाँति ही था।

(५५८) श्रीराधाकृष्ण के दक्षिण ओर विशाखा बांयी ओर चित्रा सखी चँवर करते हुए उनके परस्पर दर्शन से जो स्वेद–बिन्दु निकल रहे थे उन्हें दूर करने लगी।

(५५९) श्रीकृष्ण मदमत्त गति से और लीलाविलास से जब धीरे–धीरे चरण रखने लगे तो उनके चरणों के मणिमय नूपुर और किंकिणि मन्द–मन्द शब्द करने लगीं और ललिताजी द्वारा उनके अधरों में दिये गये ताम्बूल बीरी का वे आनन्द सहित आस्वादन करने लगी।

क्लिन्नातिसूक्ष्मवसनान्तरुदीर्णतत्त–दंगावली–मधुरिमामृतसत्प्रवाहैः।
संसिक्त कान्त–नयनाब्जमनस्त्टीका–स्तस्यापि तैरतिनिषिक्त–वितृप्तनेत्राः।।५६०।।
(गोवि० १४/३३)

ताम्बूल चर्वित दरोच्छ्वसितैकगण्डाः क्लिन्नालकालिवृतघर्म जलाञ्चिभालाः।
विस्रस्तकेश विगलत् कुसुमावलीका लोलत्कचांसयुगचारुकुचांशमध्या।।५६१।।
(गोवि० १४/३४)

मह्यां मेघः स च नर व पुस्तं च सिञ्चन्त्यजर्सं शाम्पास्तस्मात् पृथगितलसन्मूर्त्तयो गन्धवाराम्।
धारासारैः सततममुना सिच्यमाना मुदास्मिन् वृन्दादीनामपिवदमृतं नेत्रवापीह वर्गः।।५६२।।
(गोवि० १४/४८)

कांचीकुन्तलहारमौलि कटकैः शैय्यातपत्रालयैर्वल्लीवृक्षमृगद्विजैर्बहुविधैनाना कला–कल्पितैः।
पौष्पैरेव मुदा व्यधुः परिजन श्रेण्यस्तयोः स्वामिनोः सेवां स्वादि वन्यमूलफलयोस्ताम्बूलपूर्णास्ययोः।।५६३।।

---

(५६०) ब्रजसुन्दरियों के भीगे हुए सूक्ष्म वस्त्रों के भीतर से झलकने वाले उनके अंगों का माधुर्य रुपी अमृत प्रवाह, श्रीकृष्ण के नेत्र कमलों को और मन रुपी तट को मानों भिगोने लगा और इसी प्रकार प्रियतम श्रीकृष्ण के अंग की माधुर्य रुप अमृत प्रवाहिनी देह कान्ति ब्रजांगनाओं के नेत्रों को अतिशय रुप से शीतल और परितृप्त करने लगी।

(५६१) चर्वित ताम्बूल से ब्रजरमणियों का एक ओर का गण्ड स्थल थोड़ा सा ऊँचा, भीगी हुई घुंघराली अलकों तथा स्वेद बिन्दु युक्त कपोलों से युक्त होकर शोभा पा रहा था। उनके बिखरे हुए केश कलाप से गिरते हुए कुसुम समूह और दोनों कन्धों और वक्षस्थलों के ऊपर फैले हुए केश झूलते हुए से शोभा पा रहे थे।

(५६२) प्रथम तो पृथ्वी पर मेघ एक आश्चर्य, फिर विद्युत सकल उस मेघ से पृथक होकर विलास कर रहीं थीं, और ये मेघ सुगन्धित जल से उनको निरन्तर सींच रहा था, यह उससे भी अधिक आश्चर्य और इस मेघ का वृन्दा आदि अपने नयन रुपी चातकों द्वारा आनन्द पूर्वक सुध ापान कर रही थीं।

(५६३) इसके पश्चात् प्राणेश्वर युगल वन के फल–फूलों का आस्वादन करते हुए, मुख में ताम्बूल चर्वण करते हुए विराज रहे थे तब उनकी सेविका वनदेवी आदि सखियों ने नाना प्रकार की कलाओं के साथ बनाये गये फूलों के हार, कांची (मेखला), कुण्डल, मुकुट, कटक अर्थात् वलय, शैया, छत्र और लता वृक्षों की कुंजे और पशु पक्षी आदि की रचना की, जिसके द्वारा प्रिया–प्रियतम को परम आनन्द प्राप्त हुआ।

अटवीं प्रियामथ दर्शयन्।
अवदत् प्रियौ मधुमंगलः।।५६४।।

(गोवि० १२/७६)

निचायतं श्रीव्रजकाननेशौ निदाघरम्यं वनभागमेतम्।
यः स्वागतौ वीक्ष्य पुरो भवन्तौ सेवोत्सुकः स्वैर्विभवैश्चकास्ति।।५६५।।

(गोवि० १२/८०)

यत्र निर्झरनिर्हाद–निवृत्तस्वनझिल्लिकम्।
स्वस्वतुच्छीकरजीषद्रुममण्डल–मण्डितम्।।५६६।।

सरित्सरः प्रस्रवनोर्मिवायुना, कहलारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा।
न विद्यते यत्र वनौकसांदवो, निदाधवह्वयर्कभवोऽतिशाद्वले।।५६७।।

अगाधतोय ह्रदिनितटोर्मिभि, र्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः।
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्वणा, भुवो रसं शाद्वलितं च गृहण्ते।।५६८।।

निदाघ (ग्रीष्म) वन विभाग में प्रवेश और वहाँ की लीला :–

(५६४) इसके पश्चात् मधुमंगल प्रिया–प्रियतम को दर्शन कराते–कराते उन्हें कहने लगे :–

(५६५) हे व्रजकाननेश्वर राधाकृष्ण ! ग्रीष्म ऋतु के इस वन विभाग का दर्शन करो। यह वन भाग आपके शुभागमन को देखकर सेवा के लिए उत्सुक होता हुआ अपने समस्त वैभव के साथ शोभा का विस्तार कर रहा है।

(५६६) इस ग्रीष्म ऋतु के वन में झरनों की ध्वनि और झींगुर का शब्द (झीं झीं) एक प्रकार से लुप्त सा हो गया है और ये वृक्षगण अपनी शाखा पल्लवों के ऊपर दारुण सूर्य के ताप को सहन करते हुए सहिष्णुता के गुण में ऋजीष (कढ़ाई या पतीली) को सहन शक्ति को भी तुच्छ करती है।

(५६७) नये–नये तृणों से हरे–हरे प्रदेश वाली नदी सरोवर झरने जिनकी तरंगों का स्पर्श करके कल्हार–कमल, नील कमल, जिनके पराग का स्पर्श करती हुई वायु वनवासियों के ग्रीष्म कालीन सूर्य के प्रचण्ड ताप का निवारण करती है।

(५६८) ग्रीष्म काल में भूमि का मलिनांश दूर हो जाने से प्रखर सूर्य किरणों के कारण अगाध जल वाली नदियों के तट पर जो नये नये तृण उत्पन्न होते हैं वह भी भूमि का रस ग्रहण नहीं कर पाते।

वस्त्राणि सत्पाटलिपुष्पवृन्दैः, शिरीषपुष्पैरवतंसकांश्च।
मल्लीभिरंगाभरणानि हर्षाद्–विभर्त्त्यसौ वामिव दातुमुत्कः।।५६६।।

(गोवि० १२/८२)

सुपंक्तिमैः पीलू–करीर–धात्री, राजादनैः सत्पनसाम्रबिल्वैः।
विकंकतैर्जालक–तालबीजैः, सिषेविर्षवांधिनुतेऽसकौ माम्।।५७०।।

(गोवि० १२/८३)

इह रविमणिबद्धप्रान्तभूम्युष्मदीव्यद्–दिनकर–करजालैर्म्लानिमाशंक्य वां किम्।
प्रणयतत निजांगैश्छादयन्त्यो भवन्तौ कलयतमगबल्ल्यः पल्लवैर्बीजयन्ति।।५७१।।

(गोवि० १२/८४)

बहुप्रजेयं कदली निजात्मजैर्वृताभितस्तैः सुतवस्करा यथा।
तान् लालयन्तीच्छद पाणिना वभौ धयत्यधोऽञ्चत्सुमनः स्नूतस्तनम्।।५७२।।

(गोवि० १२/८५)

सुदीर्घनासेति सुपंक्तिमाम्रे विनस्त्यचञ्चुं पिकमाकलस्य।
स्मेराननाः प्रेक्ष्य पुरो निजालीः प्रियां हरे पश्य विनम्रवक्त्राम्।।५७३।। (गोवि० १२/८६)

(५६६) यह वन विभाग आपको विभूषित करने के लिये ही खिले हुए गुलाब के फूलों के वसन शिरीष पुष्पों के कुण्डल मल्लिका पुष्पों के अन्य अंगों के आभरण अर्पण करने के लिए उत्सुक होकर मानों हर्ष पूर्वक इन्हें धारण किये हुए है।

(५७०) और यह वन विभाग पके हुए पीलू, करीर (बांस अंकुर) फल आँवला, पियाल कटहल, बेल, बेंथी आदि फल आपके भोजन के लिए प्रस्तुत करते हुए आप दोनों की सेवा की अभिलाषा प्रगट करते हुए मुझे आनन्दित कर रहे है।

(५७१) और भी इस वन के वृक्ष और लताएं जिनके नीचे सूर्यकान्तमणि की वेदियाँ हैं और जो सूर्य के ताप से अतिशय उत्तप्त हो गयी हैं उन्हें देखकर आप दोनों के मन म्लान हो गये हैं इसी आशंका से प्रणयवश इन वृक्षों ने अपनी शाखा प्रशाखा द्वारा आपको ढक दिया है और पत्रों द्वारा आपको व्यजन कर रहे हैं।

(५७२) और सप्त पुत्रवती नारी की भाँति बहुत से सन्तानों वाली यह कदली अपनी सन्तानों से परिवृत्त होती हुई अपने पत्ररुपी हाथों से अपनी सन्तानों का लालन करती हुई मानों नीचे झुके हुए पुष्प रुपी स्तन से उन्हें मधुपान कराती हुई शोभा पा रही है।

(५७३) हे कृष्ण ! देखो पके हुए आम के वृक्ष पर अपनी दीर्घ नासिका रुपी चोंच से आस्वादन करती हुई कोकिला को देखकर श्रीराधा यह अनुभव कर रही हैं कि मानों श्रीकृष्ण मेरे मुख का चुम्बन करने के लिए प्रस्तुत हैं और सामने खड़ी हुई सब सखियाँ परिहास कर रही हैं, अतः देखो ये तुम्हारी प्रियतमा नतमुखी हो रही हैं।

मल्लीवल्लीमतल्लीततिभिरिह लसल्लोललोलालिमाला–चिल्लीभिश्चारुतल्लीतटभुवि विदधत् साधु हल्लीशकेलिम्।
क्रुध्यत्कन्दर्प–मल्लीकृत–कुसुमचयेषत्स्मिताभिस्तमालः सोऽयं श्रीगोपपल्लीसुत इव सद्वल्लवीभिश्चकास्ति।।५७४।।
(गोवि० १२/८७)

निशम्य वाचं मधुमंगलस्य, राधामुकुन्दौस्मितशोभितास्यौ।
वृन्दावितीर्णान् श्रवणे न्यधत्तां, शिरीषपुष्पस्तवकान् परस्परम्।।५७५।।
(गोवि० १२/८८)

करारविन्देन पराग–पांशुलान् कृष्णः प्रियाया अलकान् व्यतस्तयत्।
साप्यस्य चूड़ोपरि केकिचन्द्रकान् विकाशिदोर्मूलमथालकानपि।।५७६।।
(गोवि० १२/८९)

कृष्णः प्रियामाह हृदि स्पृशन् प्रिये निदाघतापैरुपतापितोऽभितः।
पलायमानः कुचशैलदुर्गकं समाश्रितः शैत्यगुणोऽस्ति किं तव?।।५७७।।
(गोवि० १२/९०)

कान्ते ! सुधांशुमणिबद्धनगालवाले त्वद्वक्त्र–शुभ्रकिरणोदयजाम्बूपूरे।
स्नात्वा निपीय सलिलं विगतोष्णतापा–स्ततसेतुमूर्ध्नि विलसन्ति खगाः सकान्ताः।।५७८।।
(गोवि० १२/९१)

---

(५७४) अतिशय सुन्दर, चंचल और सतृष्ण भ्रमर पंक्ति ही जिनकी भौहें हैं और मानों क्रुद्ध होकर कन्दर्प रुपी माली ने जिसके सब कुसुमों को विकसित कर दिया है वे कुसुम ही जिसका मन्दहास्य है ऐसी सुन्दर रुप से विकसित मल्लिका के साथ यह तमाल वृक्ष मानों हल्लीशक नृत्य (जिस नृत्य में एक नट कई नर्तकियों के साथ मण्डली बाँधकर नृत्य करता है) करता हुआ ऐसे शोभा हो रही है मानों किसी सरोवर के तट प्रदेश में गोपियों से घिरकर ब्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण शोभा पा रहे हैं।

(५७५) इस प्रकार राधाकृष्ण मधुमंगल के वचनों को सुनते हुए सुमधुर हास्य करते हुए शोभित हुए तब वृन्दाजी ने शिरीष के पुष्पों के गुच्छ प्रदान किये। जो कि दोनों ने परस्पर एक–दूसरे को कानों में धारण करा दिये।

(५७६) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने श्रीराधा की घुँघराली अलकावलि को पुष्पों के पराग से धूसरित कर दिया और श्रीराधा ने भी उनके मयूर–पिच्छों से निर्मित मुकुट के ऊपर और अलकावलि पर पुष्पों का पराग छिटक दिया।

(५७७) श्रीकृष्ण प्रियतमा का हृदय स्पर्श करते हुए कहने लगे– हे प्रिये ! शीतलता रुपी गुण ने इस ग्रीष्म ताप से उत्तप्त होकर इधर–उधर भागते हुए मानों तुम्हारे वक्षस्थल रुपी दुर्ग का आश्रय ले लिया है।

(५७८) और हे प्रिये ! इन वृक्षों के आलवाल जो कि चन्द्रकान्तमणि से जटित है तुम्हारे मुखचन्द्र को देखकर इनमें जल प्रवाहित होने लगा है और पक्षी सब अपनी–अपनी प्रियाओं के साथ इनके किनारे पर बैठकर विलास कर रहे हैं।

कलय पुरतः कान्ते ! गोवर्धनोऽखिलभूभृतां नृपतिरभवच्छक्रं शत्रुं निरस्य चिरस्य किम्।
निजनिजरुचां तत्या मेर्वादिभिः करभूतया यदयमधुनोपासां चक्रे विनिह्नुत विग्रहैः।।५७६।।

(कृ० भा० १३/२०)

क्वचन कनकप्रस्थात स्वस्था प्रसपति जाह्न्वी–क्वचिदिह गुहा विद्योतन्ते हिमैर्विहितालयाः।
क्वचन शिखरैर्वीथीं रोद्धं रवेरमिलास्रते क्वचन रजतग्रावैः सिंहासनान्यपि भान्ति नौ।।५८०।।

(कृ० भा० १३/२१)

भृंगारास्तनुनिर्झरैर्विटपिभिस्तत्रातपत्रावलीः पल्यंका स्फटिकैरलंकृतिकुलं धौतोज्वलैर्धातुभिः।
रत्नानां निकुरम्बकेण किल नौ येनार्पिता दर्पणाः सोऽयं राजति शेखरः शिखरिणां गोवर्धनाख्यो गिरिः।।५८१।।

(ल० ८/२७)

विलसति किल सोऽयं पश्य मत्ते मयूरः शिखरभुवि निविष्टस्तन्वि ! गोवर्धनस्य।
मुहुरमलशिखण्डं ताण्डव–व्याजतस्ते व्यकिरदुपहरन् यः कर्णपूरोत्सवाय।।५८२।।

(ल० ८/२८)

---

(५७६) हे प्रिये ! आगे देखो – समस्त पर्वतों के चिरशत्रु इन्द्र को परास्त करके यह गोवर्धन समस्त पर्वतों का राजा होकर विराज रहा है। इसीलिये सुमेरु आदि पर्वत, महाराजाधिराज के आगे जैसे कोई ऊँचा होकर नहीं खड़ा होता उसी प्रकार अपने विग्रह को कुछ नीचा और छिपाकर अपनी कान्ति द्वारा गोवर्धन की उपासना कर रहे हैं।

(५८०) हे राधे ! इस गोवर्धन को सुमेरु हिमालय विन्ध्याचल और कैलाश आदि सभी पर्वत अपने–अपने धन में से कुछ कर देते हैं। ये देखो गोवर्धन के स्वर्ण प्रस्तरों से स्वयं जाह्नवी प्रवाहित हो रही है यही सुमेरु का चिह्न है और गोवर्धन की गुफाओं में जहाँ (हिम बर्फ युक्त) शिलायें हैं वहीं हिमालय का चिह्न है और ये गोवर्धन के ऊँचे–ऊँचे शिखर सूर्य का पथ रोकने की चेष्टा कर रहे हैं यही विन्ध्याचल का चिह्न है और जो ये रजतमय शिलाओं से हमारे बैठने के सिंहासन बने हुए हैं यही कैलाश का चिह्न है।

(५८१) यह गोवर्धन गिरि अपने देह से निकलने वाले झरनों द्वारा झारी का जल, वृक्ष समूह द्वारा छत्र, स्फटिक की शिलाओं द्वारा पर्यंक, विशुद्ध उज्ज्वल धातुओं द्वारा आभरण एवं रत्न समूह द्वारा दर्पण, प्रस्तुत करके शोभा पा रहे हैं।

(५८२) प्रिये कृशांगी ! देखो ये मयूर बारंबार नृत्य के छल से तुम्हारे कानों के अग्रभाग के लिए भूषन स्वरुप अपने पंख गिराकर आपको अर्पण कर रहा है अब यही मदमत्त मयूर गोवर्धन शिखर भूमि पर क्रीड़ा कर रहा है।

अग्रे चम्पक चक्रमस्य पुरतो पुन्नागवीथी ततो जम्बूनां निकुरम्बकं तदभितस्तंगा कदाम्बाटवी।
इत्युच्चैर्वरशाखिभिः परिचितैरेभिः क्रमादाचितं कालिन्दीमुपतिष्ठते गिरितटात् पन्थाः प्रथीयानसौ।।५८३।।
(ल० ८/२६)

कृष्णेन हर्षादुपठौकितानि, निर्माय पुष्पाभरणानि यानि।
उच्चैरभीष्टान्यपि तानि राधा, नैच्छद् गभीरप्रणयस्मयेन।।५८४।।
(अ० ५/५३)

अहमिह विचनोमि त्वदगिरैव प्रसूनं कथय कथमकाण्डे चण्डि ! वाचंयमासि ?
विदितमुपधिनालं राधिके ! शाधि केन प्रियसखि ! कुसमेन क्षोत्रमुत्तंसयानि।।५८५।।
(उ० १५/१०७)

रोषस्तवाभूद्यदि राधिकेऽधिक, स्तथास्तु गण्डः कथमुच्छव–सित्यसौ?
स्वनर्मणेत्थं दुरपन्ह्वस्मितां, प्रियामचुम्बत् पशुपेन्द्रनन्दनः।।५८६।।
(उ० १५/१११)

लीलारत्नमयाचलोदर–सरच्छीताम्भसो निर्झराः प्रच्छाय–क्षतभानुभानुनिकरा भूमिरुहाणां वराः।
वाताः पाटलिवाटिका–परिमलैः खञ्जन्ति यत् खञ्जवत् स्थानं फुल्लशिरीषकुञ्जमगमत्तदग्रीष्मसन्तोषवत्।।५८७।।
(कृष्णा० ३/५६)

---

(५८३) और देखो चम्पक वृक्ष सकल उसके आगे पुन्नाग श्रेणी उसके आगे जामुन के वृक्ष और उनके चारों ओर कदम्ब वन, इस प्रकार बड़े–बड़े वृक्षों से परिव्याप्त विख्यात पथ से गोवर्धन से कालिन्दी तट पर्यन्त विस्तृत है।

(५८४) श्रीकृष्ण ने जिन समस्त फूलों के आभरणों को निर्माण करके हर्ष के साथ श्रीराधा को उपहार प्रदान किया वे सब उन्हें अत्यन्त अभीष्ट होते हुए भी श्रीराधिका गम्भीर प्रेम के गर्व से उन्हें धारण करने की अनिच्छा प्रकट करने लगीं।

(५८५) इस कारण श्रीराधा को मानवती जानकर श्रीकृष्ण कहने लगे– हे अकारण कोपिने चण्डी ! तुम्हारे वाक्यानुसार ही तो मैंने यहाँ आकर ये पुष्प चयन किये हैं तो अब तुम बिना कारण ही क्यों मौनव्रत कर रही हो। हे राधे ! अब तुम्हारे मान का कारण मुझे ज्ञात हो गया है। अब अधिक कपट मत करो, आज्ञा करो किन पुष्पों से आपके कर्ण भूषणों की रचना करुँ।

(५८६) हे राधे ! यदि तुम्हें अधिक क्रोध आ रहा है तो बताओ कि एक ओर का गण्डस्थल क्यों प्रफुल्लित हो रहा है ? इस प्रकार श्रीकृष्ण के परिहास करने पर प्रियतमा श्रीराधा अपनी हँसी को रोकने में असमर्थ हो गयी और पशुपेन्द्र नन्दन श्यामसुन्दर ने उनका चुम्बन कर लिया।

(५८७) इसके पश्चात् जहाँ लीलारत्नमय गोवर्धन गिरि के मध्य से शीतल जल के झरने निकल रहे हैं और जिस स्थान के बड़े–बड़े वृक्ष सूर्य की किरणों के ताप को सम्पूर्ण रुप से रोक रहे हैं, और जिस स्थान की वायु गुलाब के उद्यान की सुगन्धि लेकर मन्द–मन्द खंजवत प्रवाहित हो रही है ऐसे प्रफुल्लित शिरीषु कुंजों से सुशोभित 'ग्रीष्म सन्तोष वत्' नामक स्थान पर श्रीकृष्ण प्रियाजी के साथ जाकर विराजमान हुए।

किं वा हेमोद्योतिनीलाश्मदिव्यच्छत्रीभावं प्राप्य घर्मापनुत्यै।
वैवर्ण्यास्त्रै ऊहर्तुगद्गदोद्यन मन्द्रध्वानेनास्तुवातां मुदेमौ।।५८८।।

(कृ० भा० ११/११)

कर्पूर त्रसरेण, बन्धूभिरपां, निस्यन्दिभिर्बिन्दुभि–श्चंचच्चामर–चारु मारुतधुतैर्मुक्तावितानैरपि।
आकीर्णे जलयन्त्रवेश्मणि सरोवाप्यादि–मध्यस्थिते कृष्णो यत्र मुदा निदाघदिवसे शेते समं कान्तया।।५८९।।

(आ० १/११०)

भालप्रान्त–निबद्धकुन्तलभरो मुक्तास्रजा स्थूलया वासः कांचनवारिहारि पवनस्पन्दानुमेयं दधत्।
मल्लीकोरकमालया द्रुततर–श्रीखण्डपंकेन च द्वित्रेण प्रियमण्डनेन च कृताकल्पो हरिः खेलति।।५९०।।

(आ० १/१११)

सभ्रूभंगमनंगवाणजननीरालोकयन्ती लताः सोल्लासं पदपंकजे दिशि दिशि प्रेखलयन्त्युज्ज्वला।
गन्धाकृष्टधियः करेन मृदुना व्याधुन्वती षटपदान् राधा नन्दति कुंजकंदरतटे वृन्दावनश्रीरिव।।५९१।।

(उ० ११/५७)

---

(५८८) श्रीराधाकृष्ण के ऊपर विद्युत युक्त मेघ देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों ये मेघ प्रीति वश श्रीराधाकृष्ण के ग्रीष्म जनित ताप और घर्म बिन्दुओं को दूर करने के लिए स्वर्ण मण्डित नीलमणि का छत्र हो और आनन्द से वर्षा के छल से उसमें वैवर्ण्य और अश्रु धारण करता हुआ मन्द ध्वनि रुप गद्गद वाक्यों द्वारा राधाकृष्ण की मानों स्तुति कर रहा हो।

(५८९) इस वन विभाग में सरोवर और बावड़ी के बीच में ऐसी कुंजे है, जिनमें फव्वारे चल रहे हैं और कर्पूर के कणों से युक्त सूक्ष्म–सूक्ष्म जल बिन्दु झड़ रहे है और तीव्र गति से चलने वाले चँवर समूहों की वायु से मुक्तामय चन्द्रातप हिल रहे हैं ऐसी कुंजों में श्रीकृष्ण ने प्रियतमा के साथ जाकर शयन किया।

(५९०) ग्रीष्मकाल में श्रीकृष्ण, स्थूल मुक्ताओं द्वारा मस्तक के केशपाशों को दो भागों में बाँटकर बाँध रखा है, और जो सोने के जल की तरह सुन्दर हैं धारण कर रखे है। मल्लिका की कलियों की माला और द्रवीभूत चन्दन का लेप किये हुए एवं स्वभाविक रूप से शीतल गुण वाले दो तीन प्रिय अलंकारों द्वारा विभूषित होकर क्रीड़ा कर रहे हैं।

(५९१) श्रीराधा की वेश रचना करने के लिए पुष्प चयन करते–करते श्रीराधा को दूर से देखकर श्रीकृष्ण कहने लगे– अहो श्रीराधा ! इन लताओं को कन्दर्प की जननी (क्योंकि कन्दर्प इन्हीं लताओं के फूलों से बाण निर्माण करके हमारे ऊपर निर्दयता पूर्वक प्रहार करता है) ऐसा विचार कर उन पर (तीक्ष्ण) दृष्टिपात् कर रही है और उल्लास वश चरण कमलों को इधर–उधर चला रही हैं जिनकी सुगन्ध से आकृष्ट होकर आये हुए मधुकर वृन्द को अपने कर कमल द्वारा दूर हटा रही है। अहो ! यह श्रीराधा वृन्दावन की साक्षात् श्री की भाँति निकुंज मन्दिर में विराज रही हैं।

राधाकृष्णौ प्राह ततस्तौ सुबलोऽपि प्रावृड् मंजूं पश्यतमग्रे वनभागम्।
विद्युन्मेघो वामिह मत्वा प्रणयान्धौ नृत्यत्यारान्मत्तमयूरब्रज एषः।।५६२।।
(गोवि० १२/६२)

मल्लीमतल्लीकुलपालिकाना–मंके निषन्नान् भ्रमरान् सुलोलान्।
स्वसौरभैः पश्यतमात्तगर्वाः कर्षयन्त्यमुष्मिन् गणिका हसन्त्यः।।५६३।।
(गोवि० १२/६३)

अस्मिन् भृंगालि–ललिता वर्षा वर्षोर्जिताटवी।
घनमेघावृता भाति यूथी–यूथीकृतालिका।।५६४।।
(गोवि० १२/६४)

कदम्बैः प्रालम्बान् कुटजकुसमैर्गर्भकवरान् किरीटान् केतक्या दल समुदयै रंगणयुतैः।
स्फुटद्यूथीपुष्पैरपि विविधहारान् सकभुमै–रसौ प्रावुड् लक्ष्मीचरण कमलेष्वर्पयति वाम्।।५६५।।
(गोवि० १२/६६)

अन्तः स्तम्भितवारि जाति मुकुलोन्मेषक्षमम् वर्षतां स्फर्जत्स्फूर्जधुमष्यपोह्य शिखिनां लास्योचितं गर्जताम्।
शिलष्ट्वा श्रीकर वाहिनं जलमुचामोघः कदम्बानिलम् यत्रास्ते सततं स तत् प्रति ययौ वर्षा प्रहर्ष–स्थलम्।।५६६।।
(कृष्णा० ३६०)

वर्षा प्रहर्ष वन विभाग में प्रवेश और वहाँ की शोभा का वर्णन :–

इसके पश्चात् सुबल श्रीराधाकृष्ण को कहने लगे– देखो यह सामने स्थित वन विभाग वर्षा से मनोहर हो रहा है और प्रेमान्ध आप दोनों को विद्युत से युक्त मेघ समझ कर मयूर सकल प्रेमोन्मत्त होकर आनन्दपूर्वक नृत्य कर रहे हैं।

(५६३) और देखो ! इस वन में गणिका अर्थात् जूही गर्वित होकर हास्य करते–करते प्रशस्त मल्लिका रुपी कुल रमणी की गोद में स्थित चंचल भ्रमरों को अपनी सुगन्धि से आकृष्ट कर रही है।

(५६४) इस वन विभाग में समस्त कुंजे भ्रमरमाला से मनोहर वर्षा कालीन वृष्टि से बृद्धिशील, घने–घने पत्रों से ढकी हुई और जूही के पुष्पों से भ्रमरों को आकृष्ट करती हुई शोभा पा रही है।

(५६५) और देखो यह वर्षा लक्ष्मी तुम दोनों के चरणों में सरल और लम्बे हार, गिरि मल्लिका के उत्तम केशभूषण, रंगण पुष्प और केतकी के दलों से किरीट, अर्जुन पुष्प और प्रफुल्लित जूही के द्वारा नाना प्रकार के हार आपको समर्पण कर रही है।

(५६६) इस वन में मेघमाला, अपनी अन्तर में जल को स्तम्भित करके कुसुमों की कलियों को विकसित करने योग्य वर्षा कर रही है और भयंकर वज्र ध्वनि न करके केवल मयूरों के नृत्य के अनुकूल ही गर्जना कर रही है और जल कण वाही कदम्ब वायु धीरे–धीरे प्रवाहित हो रही है ऐसे इस 'वर्षा प्रहर्ष स्थल' में श्रीकृष्ण ने प्रियतमा के साथ गमन किया।

समुन्मिषित–मालती कुसुमसुस्मिता मेदिनि कदम्बतरुकोरकै पुलकिता वनानां ततिः।
अजस्रगलदस्रभ्रद्घनपयः कणानां गणैरपि द्युरमणीसमं यदनुरागमा तन्वते।।५६७।।
(आ० १/५३)

पुरन्दर–धनुर्लतातिलकचारुभालस्थला तड़ितकनक केतकीदललसत्तमः कुन्तला।
विलोलविषकण्ठिका–विमल–मालभारिण्यसौ नवोन्नत–पयोधरा हरिमनोहरा दिग्वधूः।।५६८।।
(आ० १/५४)

सारंगीकुलकाकुकर्षण विधेराश्वासवाङ्मानिनि मानक्षोदनपेषणी–भ्रमिवलत् सुस्निग्धमन्द्रध्वनिः।
नृत्यन्मत्तमयूर मौरजरवः प्राणेश–विश्लेषिणि प्राणाकर्षणमन्त्रपाठनिनदो मेघस्वनः श्रूयते।।५६९।।
(आ० १/५५)

दात्यूहाः परितो रुवन्ति गणशः कोषाष्ठिकः सर्वतो मण्डूकाः प्रचलाकिनस्तत इतो धाराधरा व्योमनि।
आसाराः पयसां झपज् झपदिति स्निग्धातिमन्द्रस्वराः सर्वे मुग्धदृशां रतान्तसमये स्वापोत्सवं कुर्वते।।६००।।
(आ० १/५६)

---

(५६७) विकसित मालती कुसुम समूह द्वारा शोभन मृदुमधुर हास्य शालिनी पृथ्वी कदम्ब वृक्ष की कलिकाओं द्वारा पुलकित वनश्रेणी एवं मेघ के जलकणों से अविरत बहने वाली अश्रुधारा युक्त आकाश रुपा रमणी 'वर्षा प्रहर्ष विभाग' में अपने अनुराग का विस्तार कर रही है।

(५६८) इस विभाग में दिशा रुप रमणी का ललाट मानों इन्द्रधनुष रुपी तिलक से शोभा पा रहा है, और विद्युत समूह रुपी स्वर्ण केतकी के दलों से अन्धकार रुपी केश शोभा पा रहे हैं। चंचल बक–पंक्ति की ही मानों विमल माला धारण की हुई हो और नवीन उन्नत मेघ रुपी पयोधारों से यह दिशा रुपी वधू विभूषित होकर श्रीकृष्ण के मन का हरण कर रही है।

(५६९) इस 'वर्षा हर्ष विभाग में मेघों की गर्जना सुनी जा रही है उसे सुनकर ऐसा प्रतीत होता है मानों चातकी बड़े कष्ट और विनयपूर्वक प्रार्थना कर रही है और मेघ उसे प्रबोध वाक्यों से आश्वासन दे रहे हैं तथा मानवती रमणियों का मान भंजन करने के लिए मानों पेषणी यन्त्र (चक्की) की तरह है और वियोगिनी रमणियों के तो मानों प्राणों को बाहर निकालने वाली मन्त्र ध्वनि की तरह है।

(६००) 'इस विभाग में चारों ओर डाहुक पक्षी शब्द कर रहे हैं और सकल झुण्ड बनाकर शब्द कर रहे हैं। चारों ओर मयूर गण, चारों ओर केका केका शब्द कर रहे हैं। मेघ गर्जना कर रहे हैं और उनकी जलधारा झपत झपत शब्द कर रही है यह सब स्निग्ध और गंभीर शब्द सुरतान्त समय सुन्दरी रमणियों की सुख निद्रा का विधान करता है।

मध्ये गौरी परिणतफलैर्नम्रशालै–रसालै रन्ते श्यामा रुचिभिरभितः पक्वजम्बूफलानाम्।
प्रान्ते पाण्डूः स्फुटसुरभिभिः सूचिभिः केतकाना–मुद्यानश्रीः स्फुरति विविधैर्वर्ण कैश्चित्रितेव।।६०१।।
(आ० १/५७)

ऊर्द्ध्वोद्वोरुश्यामशाखा–सहस्रैः पीतैः पुष्पैः स्यन्दमानैर्मरन्दैः।
शम्पाम्भोदश्रीजयिन्यां विशन्तौ नीपाटव्यां रेजतुस्तौ लसन्तौ।।६०२।।
(कृ० भा० ११/१२)

मध्ये तस्य या मणिकुट्टिमाल्यो द्राघीयस्यः कृष्णमुद्वप्रभूताः।
ता विन्दन्तेऽहर्निशं शीधूवृष्टिं जाग्रत्या सत्यालिपाल्यैव पाल्याः।।६०३।।
(कृ० भा० ११/१३)

तत्प्रान्तोत्थस्तम्भवद् द्विद्विवृक्षोदञ्चच्छारवान्योन्य–संश्लेष भंग्या।
गोपानस्यवाञ्चिता भान्ति पुष्प–प्रालम्बाढ्या मारकत्यो वलभ्यः।।६०४।।
(कृ० भा० ११/१४)

---

(६०१) पक्व फलों से युक्त झुकी हुई शाखाओं सहित आम्र समूह द्वारा उद्यान की शोभा बीच में पीत वर्ण और अन्त में जामुन के वृक्षों की कान्ति से कुछ श्यामवर्ण और चारों ओर केतकी के नुकीले पुष्प दलों से कुछ ईषत् पाण्डु वर्ण होकर प्रकाश पा रहे हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है मानों हरिताल आदि अनेक रंगों द्वारा यह उद्यान चित्र विचित्र शोभा पा रहा है।

(६०२) इस प्रकार वन शोभा देखते–देखते श्रीराधाकृष्ण कदम्ब कानन में जा पहुँचे। यह कदम्ब कानन क्रमशः ऊँची–ऊँची श्यामवर्ण की सहस्र–सहस्र शाखाओं के ऊपर पीत रंग के असंख्य कुसुमों के मकरन्द की वर्षा करता हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों विद्युत युक्त जलधर की शोभा को जयकर रहा हो।

(६०३) इस कदम्बाटवी में बहुत बड़ी–बड़ी वेदियां हैं जिन्हें देखकर सुहृदय में ऐसा भाव उदय होता है मानों श्रीकृष्ण के आनन्द को ही बिछाकर वेदी बना दी हो। जिनके ऊपर कदम्ब के कुसुम मधु की वर्षा करते हुए उसे सींचते हैं और भ्रमर जागते रहकर प्रहरी बनकर उसकी रक्षा करते हैं।

(६०४) एक–एक वेदी के दोनों ओर से दो–दो स्तम्भ के समान कुसुमित कदम्ब वृक्ष खड़े हैं, उनकी परस्पर शाखाओं के मिलने से मानों रत्न जटित मरकतमणि निर्मित छत्री बन गयी हो और स्वभाव से ही विकसित कुसुम श्रेणी फूलों की बन्दनवार के समान झूलती हुई शोभा पा रही हो।

यच्छाखाग्रविलम्बिनीभिरनतिस्थूलाभिरान्दोलिनी बद्धा कांचनरज्जूभिर्विजयते प्रेंखोलखट्टा हरेः।
या प्रागदक्षिणपश्चिमोत्तरगतिस्तल्ये समन्तात् कुले सर्वाभिर्मम संमुखीति ककुभां लक्ष्मीभिरालोक्यते।।६०५।।

(आ० २२/५)

पुष्पै सूक्ष्म–श्लक्ष्न–चेलान्तरस्थै वृन्तोन्मुक्तैः किंकरीभिः कलाभिः।
आच्छन्नास्ताः सौरभैः सौकुमार्यै–स्तावाक्रष्टुं साधु शक्तिं तदाधुः।।६०६।।

(कृ० भा० ११/१६)

मध्ये तासां काञ्चिदञ्चत्पताकां वीक्ष्यारुह्य श्यामधामा विरेजे।
शोभादेव्या सेव्यमानामिवैतां मन्ये मूर्त्तानन्द एवाध्यतिष्ठत्।।६०७।।

(कृ० भा० ११/१७)

कर्षन् कान्तां हर्षवर्षासु सम्यक् तिम्यन् हस्तालम्बमालम्बमानाम्।
उत्त्थाप्यैतां स्वाग्रतो जाग्रतः किं प्रेम्णो वापीमापिपत् स्वाभिमुख्यम्।।६०८।।

(कृ० भा० ११/१८)

पुष्पावल्यारात्रिकेनास्यपद्मद्वंदं नीराज्यालिसंघः सगानम्।
हारोष्णीषाद्यापयन् सुस्थितत्वं स्रकताम्बूल–स्थासकैः पर्यचारीत्।।६०६।।

(कृ० भा० ११/१६)

---

(६०५) दोनों वृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग से लटकायी हुई न अधिक मोटी न अधिक पतली स्वर्णमय रज्जु जिस पर झुलाने योग्य झूला विराजमान है जिसे चारों ओर झुलाया जासकता है और झुलाने से चारों ओर स्थित दिशा रुपी लक्ष्मी गण या (गोपीगण) ऐसा अनुभव करती हैं कि इस झूले का मुख हमारे ही सामने है।

(६०६) किंकिणियों ने अनेक कला प्रकाश करके कोमल और सुगन्धित पुष्पों के वृन्त को हटाकर झूलों पर बिछाकर और उसको ऊपर से सूक्ष्म और कोमल वस्त्र द्वारा ढक दिया ऐसे झूले अपनी सुगन्धि और सुकुमारता से श्रीराधाकृष्ण को आकर्षित करने लगे।

श्रीश्री राधाकृष्ण की झूलन लीला :–

(६०७) इन झूलों की श्रेणी के बीच में पताका युक्त एक परमोत्कृष्ट झूले को देखकर श्याम विग्रह वाले श्रीकृष्ण उस पर विराजमान हो गये। तब ऐसा प्रतीत होने लगा मानों शोभा देवी द्वारा सेवित मूर्तिमान आनन्द ने ही मानों झूले पर आरोहण किया।

(६०८) श्रीकृष्ण ने हर्ष रुपी वर्षा से भली–भाँति आर्द्र होने के लिए अपनी प्रियतमा श्रीराधा को भी अपने हाथों से झूले के ऊपर अपने सामने बिठा लिया मानों मूर्तिमान आनन्द के सम्मुख कोई जाग्रत प्रेम की निर्झरणी उपस्थित हो गयी हो।

(६०६) सखी समूह सब गान करते–करते पुष्पावलि द्वारा रसिक युगल की आरती करते हुए उनकी बलिहारी जा रहीं थीं और झूले पर चढ़ते समय जो उनके हार, पाग आदि आभूषण अस्त–व्यस्त हो गये थे, उन्हें ठीक करके सजाने लगीं तथा माला, ताम्बूल, चन्दन आदि चर्चा द्वारा उनकी सेवा करने लगीं।

काञ्च्यामुक्त प्राञ्चिशाट्यंचलान्ते किंचित पौर्वापर्यतोऽङ्घी विलङ्हय।
कुब्जीभूयादाय दोलां क्षिपन्त्या–वन्वस्थातां द्वे दिशौ प्राणसख्यौ।।६१०।।
(कृ० भा० ११/२०)

अन्ये धन्ये तिष्ठतः स्मेक्षमाने धृत्वा पाण्योः पुण्यताम्बूलवीट्यौ।
यूनोरास्याम्भोजयोरर्पयन्त्यौ वेगोपान्ते मङक्षू लब्धावकाशे।।६११।।
(कृ० भा० ११/२१)

आल्यो मान्याः प्रेमवन्या इवान्याः पर्वश्रीलाः सर्वतः साधुशीलाः।
हस्तोदस्तैः शस्तरागैः परागै–श्चक्रूर्वृष्टिं दृष्टिमापय्य दृष्टिम्।।६१२।।
(कृ० भा० ११/२२)

देव्यस्त्विष्टं मानयन्त्यः स्वदिष्टं तौ पश्यन्त्याः श्यन्त्य एवाखिलाधिम्।
जातस्तम्भा अप्यसम्भाविताशा दिव्यातेनुः पुष्पवर्ष सतर्षम्।।६१३।।
(कृ० भा० ११/२३)

तत् संगिन्यो विप्रुषो वृष्यमाणा, हृष्यन्मेघैस्तन्मरन्दत्वमापुः।
रामाराजेरंगसंगात्तदीयै, मुंक्ता वृन्दैरन्वविन्दन्त मैत्रीम्।।६१४।। (कृ० भा० ११/२४)

---

(६१०) इसके पश्चात् झूले के दोनों ओर दो प्राण सखियाँ साड़ी के अंचल को करधनी से बाँधकर झुलाने के लिए प्रस्तुत हो गयीं। वे स्वयं को थोड़ा झुकाते हुए झूले को पकड़कर कभी थोड़ा आगे जाकर और फिर पीछे लौटकर झोटा देने लगी।

(६११) और दो अन्य भाग्य शालिनी प्राण सखी अपने कर कमलों में उत्तम ताम्बूल की बीरी लिए हुए दोनों ओर खड़ी होकर दर्शन करने लगीं। ये झूले का वेग शान्त होने पर अवकाश पाकर प्रिया–प्रियतम के मुखारबिन्द में ताम्बूल प्रदान करने लगीं।

(६१२) एवं अन्य साधु स्वभाव वाली वरिष्ठ सखीगण झूलन के उत्सव से आनन्दित होते हुए श्रीराधाकृष्ण के ऊपर खिले हुए फूलों के पराग की वर्षा करने लगीं और उससे उनके नेत्रों को अपार आनन्द प्राप्त हुआ।

(६१३) गगन मण्डल में देवीगण भी इस प्रकार के श्रीराधाकृष्ण के झूलन उत्सव को देखकर अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगीं और अपने मन के सन्ताप (हम देवियों का इस लीला में प्रवेश का अधिकार नहीं है यह अधिकार तो केवल गोपीदेह में ही सम्भव है) को मिटाने के लिए उनके ऊपर दिव्य कुसुमों की वर्षा करने लगीं।

(६१४) उसी समय गगन में स्थित मेघ भी परमानन्द युक्त होकर छोटी–छोटी जल की कणिका बरसाने लगे जो फूलों के साथ मिलकर मकरन्द के समान बन गयीं और फिर श्रीकृष्ण प्रेयसियों के अंग पर गिरकर मोतियों के आभूषण से प्रतीत होने लगीं।

जृम्भोदञ्चत् सौरभव्रातमाद्यद्भृंगश्रेणीस्तोत्रभाजा मुखेन।
गीतैर्नीतैर्माधुरीं साधुरीति द्यामाच्छाद्य द्योतते स्मालिपालि।।६१५।।

(कृ० भा० ११/२५)

तयोर्भ्रंशयत्कैश्यन् मिथ इह चलत्कुण्डलयुगे तथा चञ्चत् काञ्चीस्तवकपटलं तत्समुदये।
परिम्लायन्माल्यद्वयमपि चलत् कंकणवरे दृढ़ं दोलान्दोले सति सपदि सन्दानितमभूत्।।६१६।।

(कृ० भा० १०/५५)

नृत्यं भेजुर्हारताटंकमाल्या न्यातोद्यत्वं किंकिणि नूपूराद्याः।
वक्त्रे स्मित्वा सभ्यतामाददाते, यूनोर्दोलानन्द चन्द्रे विवृद्धे।।६१७।।

(कृ० भा० ११/२६)

अन्योन्यांगप्रोच्छलत्कान्तिसिन्धोर्वीचीव्रातामन्दहिन्दोलिकासु।
प्राप्तान्दोलान्योन्यनेत्रारविन्द–श्रीसन्दोहैराढ्यतामापुराल्यः।।६१८।।

(कृ० भा० ११/२७)

इत्थं चेतस्त्वेततयोदोलयन् यत् कामो वामोऽन्तरायं न चक्रे।
लीलाशक्तेरेव तत्र प्रभावः कोऽप्योजस्वी हेतुरित्याहुरार्य्याः।।६१९।। (कृ० भा० ११/२८)

---

(६१५) झूले के ऊपर श्रीराधाकृष्ण को झूलते हुए देखकर सखियाँ वीणा आदि यन्त्रों के बिना ही केवल मुख से ही सुमधुर गान करने लगी। वह गान स्वर्ग लोक तक जा पहुँचा। गान के समय बीच–बीच में जो उनको जम्भाई आती थी उससे उनके मुख से अलौकिक सुगन्धि निकलने के कारण भ्रमर व्याकुल होकर उनके मुख के पास गुनगुनाने लगे। उससे ऐसा प्रतीत होने लगा मानों अलि कुल ब्रजसुन्दरियों के श्रीमुख की स्तुति कर रहे हों।

(६१६) इसके पश्चात् झूला इतने वेग से चलने लगा कि राधाकृष्ण के केश–पाश स्खलित हो गये और कम्पित होते हुए एक–दूसरे से उलझ गये। गले में पहने हुए चन्द्रहार के मुक्ता गुच्छ परस्पर उलझ गये। फूलों की माला म्लान होकर चंचल कंकण से उलझ गयी।

(६१७) श्रीराधाकृष्ण के झूलन विहार से उनके आनन्द रुपी चन्द्रमा के अतिशय बढ़ जाने पर उनके हार, कुण्डल, माला मानों नाचने लगे और किंकिणी नुपूर आदि नृत्य के अनुकूल वाद्य करने लगे और उन दोनों के वदनारविन्द पर मृदु हास्य शोभा पाने लगा।

(६१८) इस प्रकार जैसे–जैसे राधाकृष्ण झूल रहे थे उस समय उनकी कान्ति रुपी सिन्धु तरंगायित होने लगा और झूले पर एक–दूसरे के वदन का सौन्दर्य देखने से आनन्द के कारण उनके नयनकमल भी मानों झूलने लगे और इस शोभा को देखकर सखियाँ भी परमानन्द लाभ से मानों परमधनी हो गयी।

(६१९) जिस प्रकार झूले पर दोनों की कान्ति रुपी सिन्धु तरंगायित हो रहा था। उस समय मानों एक–दूसरे के नेत्र भी परस्पर एक–दूसरे को झुलाने लगे। इस प्रकार की लीला के प्रतिकूल काम भी दोनों के मन को विचलित करने लगा लेकिन फिर भी वह झूलन में किंचित मात्र भी बाधा नहीं दे सका। यही उनकी लीला शक्ति का एक अनिर्वचनीय प्रभाव है।

दोलारज्ज्वालम्बशाखे स्वलौल्यादेतौ चञ्चत्पञ्चशाखाग्रगाभिः।
पुष्पाढ्याभिः पल्लवालीभिरिष्टैः सेवेते स्मामोदनैर्वीजनैः किम्।।६२०।।
(कृ० भा० ११/२६)

तत्तत् पत्राभ्यन्तरानन्तशिल्प–प्रोतान् धर्त्तूं चंचलान् माल्यखण्डान्।
यत्नैर्भृंगा नाशकन् यद् भ्रमन्तस्तत्रागुञ्जन् केवलं सापि शोभा।।६२१।।
(कृ० भा० ११/३०)

दोलावेगा धिक्यकामौ स्वपद्भ्यामाक्रम्यैतां स्वावनत्युन्नतिभ्याम्।
स्वं स्वं सर्वाः कौशलं दर्शयन्तौ प्रेमानन्दं तुन्दिलं चक्रतुस्तौ।।६२२।।
(कृ० भा० ११/३१)

हिन्दोलाया रहसी विन्दमाने पर्यायेण द्वे दिशौ स्तो यदन्तौ।
प्राप्योर्द्धाषधः स्थायिनोः खेलतोः सा यूनोः कान्तिः कौतुकं कापि तेने।।६२३।।
(कृ० भा० ११/३२)

(६२०–२१) जिन वृक्षों की शाखाओं से झूले की डोरी बँधी थी उन झूलों के तेजी से चलने से अपनी शाखाओं के अग्रभाग पर स्थित कुसुमु युक्त पत्रों द्वारा सुगन्धित हवा करते हुए सेवा करने लगे, उन्हीं शाखाओं के पत्तों के बीच बहुत सुन्दर कला से गुंथी हुई छोटी–छोटी मालाएं, झूले के साथ झूल रही थीं। भ्रमर उनको पकड़ने के लिए उनके साथ–साथ झूले के आगे–पीछे भाग रहे थे। वे मालाओं के ऊपर गुनगुनाते हुए उनके साथ ही झूल रहे थे। इससे भी अनिर्वचनीय शोभा हो रही थी।

(६२२) श्रीराधाकृष्ण झूले को अधिक वेग से झुलाने की अभिलाषा से अपने चरणों से झूले को दबाकर आगे और पीछे की ओर झूले के वेग को बढ़ाने का कौशल दिखाते हुए सखीवृन्द को प्रेमानन्द में विभोर करने लगे।

(६२३) इसके पश्चात् झूला वेग से दोनों ओर जाने लगा। दोनों ओर जाने से प्रिया–प्रियतम दोनों ही कभी ऊपर की ओर कभी नीचे की ओर जाते हुए बड़ी ही कौतुक पूर्णशोभा का विस्तार करने लगे। अर्थात् हिन्दोले पर दोनों एक–दूसरे के सामने स्थित होने के कारण जब श्रीराधा झूले में ऊँचे की ओर जातीं तो श्रीकृष्ण नीचे की ओर जाते। जब श्रीकृष्ण ऊँचे की ओर जाते तो श्रीराधा नीचे की ओर जातीं। यह देखकर किसी रहस्य लीला विशेष का अनुभव करती हुई सखीवृन्द कौतुक वश ईषत् हास्य युक्त वदन को अपने अंचल से ढकती हुई तर्जनी अंगुली द्वारा यह लीला एक–दूसरे को दिखाने लगीं।

राधाहारः संस्पृशन् कृष्णवक्षश्चक्रे, नृत्यान्येकतो दिश्त्युदारम्।
अन्यत्रास्याः कञ्चुकीं श्लिष्यती स्म, स्रक् तस्यापीत्याययुर्मोदमाल्यः।।६२४।।

(कृ० भा० ११/३३)

अन्योन्यांगादर्श–दृष्टस्वभासो, रन्योन्यानालोकज–कान्तिभाजोः।
तर्हयन्योन्य–श्वासभूमाभिमर्शा, दन्योन्यं संदृश्यतौ हृष्यतः स्म।।६२५।।

(कृ० भा० ११/३४)

इत्त्थं लीलावारिधिः कौतुकित्वा, दत्युद्रेकं रंहसो निर्मिमाणः।
पृष्ठामृष्टौत्तुंगपर्यन्तशाखा, पत्रालीकां तांचकारेव भीताम्।।६२६।।

(कृ० भा० ११/३५)

मैवं मैवं माधिकं हन्त दोलेत्युक्तिं तस्यास्तत्सखीनांच स्ररण्वन्।
स्मित्वा स्मित्वा वर्द्धयन्नेव दोलाजंघालत्वं माधवो भ्राजते स्म।।६२७।।

(कृ० भा० ११/३६)

---

(६२४) जिस बार श्रीकृष्ण नीचे पड़ जाते थे उस समय श्रीराधा का हार श्रीकृष्ण के वक्षस्थल को स्पर्श करके एक ओर नाचने लगे और जिस बार श्रीराधा नीचे रह जातीं उस समय श्रीकृष्ण की वन माला श्रीराधा की कंचुकी का स्पर्श करके दूसरी ओर नाचने लगती। इसे देखकर सखीवृन्द अतुल आनन्द को प्राप्त करने लगीं।

(६२५) श्रीकृष्ण के मरकत मणि के दर्पण जैसे अंग में श्रीराधा अपना प्रतिबिम्ब देखने लगीं और उनको श्रीकृष्ण नहीं दिखने लगे और इधर स्वर्ण दर्पण सदृश श्रीराधा अंग में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर श्रीकृष्ण श्रीराधा को नहीं देख पा रहे थे। अतः दुख के कारण दोनों ही दीर्घ निःश्वास लेने लगे तत्काल ही दोनों के दर्पण सदृश अंग मलिन हो गये जिससे वे अपने प्रतिबिम्ब को न देख पाने के कारण दोनों एक–दूसरे का दर्शन प्राप्त करके परमानन्द को प्राप्त हुए।

(६२६) इस प्रकार लीलावारिधि में डूबे हुए श्रीकृष्ण झूले के वेग को अत्यन्त अधिक बढ़ाकर कौतुक के साथ स्वयं ही झूला झुलाने लगे। इससे झूला बहुत ऊँचा उठने के कारण राधारानी की पीठ से ऊँची–ऊँची कदम्ब की शाखाओं के पत्र स्पर्श करने लगे जिससे गिरने के भय से वह अत्यन्त भयभीत हो गयीं।

(६२७) यह देखकर श्रीराधा और सखीगण भयभीत होती हुई, श्रीकृष्ण से पुनः–पुनः कहने लगीं– हे प्रियतम ! बस और अधिक तेज मत झुलाओ। इस प्रकार बार–बार निषेध करने पर भी श्रीकृष्ण यह सुनकर भी अनसुने की तरह हँसते–हँसते झूले के वेग को बढ़ाने लगे।

बन्धाद् वेणी विच्युता नावगुण्ठ–स्तस्थौ मूर्द्धिन व्यस्तता भूषणानाम्।
पादौ शाटी नाप्यधादित्यमूष्या वैयग्रये हा जहासीति स्म कृष्णः।।६२८।।

(कृ० भा० ११/३७)

इत्थं स्वाक्ष्णोस्तृप्यतो रंहसा तां वित्रस्ताक्षीमासनान्भ्रंशयित्वा।
स्वीयं कण्ठं ग्राहयामास मध्ये–दोलाखट्टं ताञ्च जग्राह दोर्भ्याम्।।६२९।।

(कृ० भा० ११/३८)

एकीभूते चम्पकेन्दीवराभे मूर्त्ती यूनोरुद्‌गिरन्त्यावभाताम्।
सम्मर्दोत्थं सौरभं व्यश्नुवानं पारेस्वर्ग हन्त! पद्मादिनासाः।।६३०।।

(कृ० भा० ११/३९)

साम्यद्वेगा सा समन्तादधृताभू–द्दोलाप्यारादागताभिः सखीभिः।
राधा द्रागेवावरुह्याथ तस्या–स्ताविस्तत्तत् संलपन्ती ललास।।६३१।।

(कृ० भा० ११/४०)

---

(६२८) उससे राधा रानी व्याकुल हो गयीं, उनकी वेणी खुल गयी, माथे से साड़ी खिसक गयी, भूषण अस्त व्यस्त हो गये और पवन से उत्तरीय वसन न उड़े इस उद्देश्य से उन्होंने अपने चरण से साड़ी को दबा रखा था, वह भी संभालने में असमर्थ हो गयीं। हाय हाय ! राधारानी की ऐसी अवस्था देखकर भी श्रीकृष्ण जोर–जोर से हँसने लगे।

(६२९) राधारानी की ऐसी अवस्था देखकर अपने नेत्रों को परितृप्त करते हुए झूले के वेग को पहले से भी अधिक और अधिकतर बढ़ाने लगे। श्रीराधा अत्यन्त भयभीत होती हुई अपना आसन त्याग कर श्रीकृष्ण के गले को दोनों भुजाओं से आलिंगन करती हुई उन्हें जोर से पकड़कर झूलने लगीं। श्रीकृष्ण भी उनका दृढ़ रूप से आलिंगन करते हुए अपनी दोनों भुजाओं से अपनी प्रियतमा को वक्षस्थल पर आबद्ध करके केवल चरणों के बल से ही झूले को चलाते हुए झूलने लगे।

(६३०) चम्पक और नीलकमल जैसी कान्ति वाले इन दोनों के एकीभूत हो जाने पर और आलिंगित अवस्था में दोनों के अंग से चम्पक और नीलकमल जैसे सुगन्धि निकलकर स्वर्ग से उठती हुई वैकुण्ठ वासिनी लक्ष्मी आदि की नासिका में प्रवेश कर गयी।

(६३१) इसके पश्चात् अवलम्बन के बिना झूले के ऊपर राधाकृष्ण को देखकर सखियों ने धीरे–धीरे झूले को पकड़ लिया और क्रमशः धीरे–धीरे झूले का वेग शान्त हो गया। फिर झूले से नीचे उतरकर श्रीराधा सखीगनों के साथ मिलित होकर श्रीकृष्ण ने उनके साथ जो परिहास किया वह सब सुनाने लगीं।

मुख्यास्वष्टास्वाद्यभूतामथाली–मारोह्यास्यां तां सकृष्णां स्वयं सा।
प्रेमणा गायद्दोलयन्ती स चापि प्रेयान् दोले पूर्ववत्तामजैषीत्।।६३२।।

(कृ० भा० ११/४१)

एवं प्रेष्ठास्ता विशाखादिकालीः सान्द्रं दोलान्दोलमापय्यतस्याः।
हिन्दोलातः सोऽवतीर्य्येव सर्वा स्वेकेकस्यामन्यहिन्दोलिकासु।।६३३।।

(कृ० भा० ११/४२)

तासां द्वे द्वे सुन्दरीणां स्वदोर्भ्यां तत्रागृह्यारोह्य महयाः प्रसह्य।
भ्राम्यन्नेको दोलयत्ताः समस्ताः प्रेमाम्भोधेस्तस्य किं वास्त्यकृत्यम्।।६३४।।

(कृ० भा० ११/४३)

ताः सर्वास्तु स्वस्वहिन्दोलिकान्तस्तं चापश्यन् स्वस्ववक्त्रं धयन्तम्।
नैतच्चित्रं गोकुलाधीशसूनो–रिच्छाशक्तेः किं पुनः स्यादशक्यम् ?।।६३५।।

(कृ० भा० ११/४४)

एक तत्रैवास्ति हिन्दोलनाब्जं, वृन्दादिष्टं प्रेयसीभिर्मुकुन्दः।
आरुह्यैतत्कर्णिकास्थोपबर्हा, लम्बी दोषाश्लिष्टराधोरराज।।६३६।।

(कृ० भा० ११/४५)

---

(६३२) इसके पश्चात् अष्ट सखियों में सर्व प्रधाना श्रीललिताजी को श्रीराधाजी ने अपनी कुशलता से श्रीकृष्ण के साथ झूले पर विराजमान कराया और स्वयं झुलाने लगीं तथा प्रेम से गान गाने लगीं। श्रीकृष्ण ने झूले के ऊपर जो श्रीराधा के साथ जैसा व्यवहार किया था ललिताजी के साथ वैसा ही व्यवहार किया।

(६३३–३४) इस प्रकार विशाखा आदि सखियों को भी इस प्रकार झूला झुलाकर श्रीकृष्ण झूले से नीचे उतर आये। (पीछे कदम्ब वन में जिस प्रकार झूलों की श्रेणीं का वर्णन आया है) उनके ऊपर प्रत्येक झूले में श्रीकृष्ण दो–दो गोपियों को बलपूर्वक अपनी भुजाओं से उठाकर झूले में बिठाया और असंख्य झूलों में एक साथ झूलते–झूलते शोभा पाने लगे। प्रेम समुद्र श्रीकृष्ण के लिए कौन सा कार्य असम्भव है।

(६३५) झूलों में बैठी हुई प्रत्येक गोपी यह देख रही थी कि मधुसूदन मेरे ही बदन कमल का पान कर रहे हैं। गोकुलेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में यह कुछ भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि उनकी इच्छा शक्ति के सामने कुछ भी असम्भव नहीं है।

(६३६) वहाँ एक कमलाकृति झूला भी था। वृन्दाजी ने श्रीराधाकृष्ण को उसकी शोभा भी दिखायी। श्रीकृष्ण प्रेयसियों के साथ उस पर विराजमान हो गये। झूले की कर्णिका में जो सिंहासन था उस पर फूलों के दिव्य आस्तरन और फूलों के ही तकिये लगे हुए थे। उस पर प्रिया–प्रियतम बैठ गये।

अष्टाबाल्योप्यष्टपत्रान्तरस्था–स्तत्तद्वाह्ये षोडशाल्यो विभान्त्यः।
वृन्दा–नीत–स्वादु–खर्जूर–जम्बू–द्राक्षाः प्राशनन् कान्तभुक्तावशिष्टाः।।६३७।।
(कृ० भा० ११/४६)

पीयूषान्तर्गर्व–सर्वस्कषस्य, प्रागेवाभूत् पानकादेः प्रपाणम्।
अन्तेहेमद्योतिताम्बूलवीटी, वृन्दान्योन्यप्रीतिदानाभियोगः।।६३८।। (कृ० भा० ११/४७)

नान्दीवृन्दे विन्दतः स्म प्रमोदं नोदं पाण्योदोलनाब्जे ददत्यो।
दास्योप्यास्योल्लासमापद्य सद्यो, नानागानारम्भशम्भाबभूवुः।।६३६।।
(कृ० भा० ११/४८)

दोलान्दोल–क्रीड़या ताः समन्ताः, जित्वा प्राप्ताश्लेष–चुम्बादिरत्नः।
सार्धं कान्तामण्डलेनावरुह्य प्रागात् प्रेयान् काननाय।।६४०।। (कृ० भा० ११/४६)

राधास्योत्त्था मुद्रिता या स्मितश्री स्तस्यास्तत्र स्मारकानेव दृष्ट्वा।
यूथ्यालीनां कोरकान् स व्यचैषीत् हृद्याधातुं तान् स्रजः संरचस्य।।६४१।।
(कृ० भा० ११/५०)

---

(६३७) चारों ओर अष्ट दलों पर आठ प्रधान सखियाँ बैठ गयीं और उसके बाद सोलह दलों पर अन्य सखियां बैठकर झूलने लगीं। झूले पर सखियों सहित प्रिया प्रियतम को विराजित देखकर परम आनन्दपूर्वक वृन्दाजी खजूर, जामुन, अंगूर आदि नाना फल लाकर उनके सामने रखने लगीं जिन्हें राधाकृष्ण पाने लगे और उनका अवशिष्ट सखीवृन्द भोजन करने लगीं।

(६३८) इससे पूर्व ही (फलों के भोजन से) वृन्दाजी ने प्रिया–प्रियतम को अमृत गर्व–नाशक शर्बत आदि का पान करा दिया था और फिर फल भोजन के उपरान्त सुनहरी रंग की पान की बीरी प्रीति सहित प्रदान की।

(६३६) कमलाकृति झूले को झुलाने के लिए आनन्द पूर्वक नान्दीमुखी और वृन्दा दोनों ओर खड़ी हो गयीं। दासियाँ भी इस प्रकार का आनन्द देखकर परम प्रसन्न हो उठीं और आनन्द से नाना प्रकार के गान गाने लगीं।

(६४०) श्रीकृष्ण ने झूलन लीला में सखीवृन्द से जय प्राप्त करके उनसे आलिंगन और चुम्बन रुपी रत्न प्राप्त किया! इसके पश्चात् वे झूले से उतरकर अपनी प्रियतमाओं के साथ एक वन से दूसरे वन में भ्रमण करने लगे।

(६४१) भ्रमण के समय वर्षा ऋतु से विकसित जूही, कुसुम की कलियों को देखकर श्रीकृष्ण सोचने लगे। जिस प्रकार श्रीराधा अवहित्था (भावों का गोपन) के वश मुखारविन्द पर मृदु हास्य उदित होने पर साथ ही साथ उसे संकुचित कर लेतीं हैं, उसी प्रकार इन स्वर्ण यूथी (सोनजुही) की कलियों की भी शोभा है ऐसा सोचते–सोचते यूथी की कलियों को चयन करके उनकी माला बनाकर अपने हृदय पर धारण कर ली। अर्थात् जूही की कलियों की माला के छल से श्रीकृष्ण ने श्रीराधा की मृदु हँसी को ही अपने हृदय में धारण कर लिया।

खेऽगान्मेघः कृष्णगात्रच्छवित्वं विद्युत्तांसामंगभासा–ततित्वम्।
भूमे रूढ़ैरिन्द्रगोपैः समूढैः पादालक्ताभ्यक्तता व्यक्तमासीत्।।६४२।।

(कृ० भा० ११/५१)

कृष्णाभ्रेणातुलघनरसैः सर्वतो वृष्यमाणै–रत्युत्फुल्लाः किल सुमनसः सर्ववत्यो लताश्च।
तत्सस्याल्योऽप्यसमसुषमाः शं चिरायान्वभूवन् वर्षाहर्ष वनमपि यतो हर्षवर्षास्वमाक्षीत्।।६४३।।

(कृ० भा० ११/५२)

यत्रोत्फुल्ल–सरोरुहत्पलचलत्कहलार–रक्तोत्पलैः सत्कारण्डव–हंस सारसबक क्रौञ्चादिभिश्चंचलैः।
वाप्यो रत्नतटाः सरांस्यपि सुधान्यक्कारि वारीण्यथ प्रायाद्देशमयं तमेव शरदामोदं नवो मन्मथः।।६४४।।

(कृष्णा० २४/३/६१)

अथावदत् कुन्दलता निचायतं, वृन्दावनेशो वनभागमग्रतः।
इमं शरच्चारुतयेह विश्रुतं वयस्यया वां शरदा विभूषितम्।।६४५।।

(गोवि० १३/६)

---

(६४२) वर्षाकाल में आकाश में जो नवीन जलधर है वही मानों श्रीकृष्ण की अंग कान्ति और जो विद्युत खेल रही हैं वही गानों गोपियों की कान्ति है और भूमि पर जो इन्द्रगोप नामक लाल रंग का कीट है वही मानों गोपियों के चरणों का आलता सा प्रतीत होने लगा।

(६४३) जब श्रीकृष्ण रुपी मेघ चारों ओर घनी वर्षा करने लगे तो मालती आदि लताएं अत्यन्त उत्फुल्ल और आनन्दित हो उठीं और वृक्षों के फल–फूल भी अच्छी प्रकार सुषमायुक्त हो गये। अहो ! वर्षा से 'वर्षा हर्ष वन' मानों हर्ष में ही डूब गया (वन के अर्थ में मेघों द्वारा लता पुष्प प्रस्फुटित होकर वन हरा भरा हो गया, श्रीकृष्ण के अर्थ में श्रीकृष्ण रुपी मेघ ने श्रृंगार रस की वर्षा करके समस्त सखीवृन्द को उत्फुलित प्रेमपूर्ण बनाकर मानों हर्ष की वर्षा कर दी।)

शरदामोद नामक वन–विभाग में प्रवेश :–

(६४४) इसके पश्चात् जिस स्थान पर प्रस्फुटित लाल कमल, नीलकमल चंचल, कल्हार और अन्य जाति के कमल खिले है और जिस स्थान पर चंचल कारण्डव (बत्तख) हंस, सारस, बगुला, कुररी आदि जलचर पक्षियों की ध्वनि हो रही है और जिस स्थान की क्षुद्र नदियाँ तालाब इत्यादि के तटदेश रत्नों से जटित हैं और उनमें अमृतनिन्दि जलराशि है ऐसे शरदामोद नामक स्थान पर नवीन मदन श्रीकृष्ण ने सखियों के साथ प्रस्थान किया।

(६४५) कुन्दलताजी कहने लगी– हे वृन्दावनाधीश्वर ! श्रीराधाकृष्ण आप दोनों अपने सामने इस वन विभाग का दर्शन करो क्योंकि आपकी सखी शरद् ऋतु ने इसे विभूषित किया है। इसीलिए शरद् काल की शोभा विख्यात् है।

चञ्चत्खञ्जनलोचनाम्बुजमुखी लोलालिमालालका खेलत्कोककुचा सिताभ्रसिचया रक्तोत्पलौष्ठाधरा।
कूजत्सारसपालिरम्यरसना नीलोत्पलोत्तसिका नाथौ पश्यतमत्र वां शरदियं सेवोत्सुकास्ते सखी।।६४६।।

(गोवि० १३/७)

जातीभिः सह रंगणाभिरखिलांगालंकृतिः कैरवैः–रुत्तंसानवतंसकांश्च सुभगै रक्तोत्पलेन्दीवरैः।
शय्यां कुंजगृहे स्वयं निपतितैः शेफालिका–सञ्चयै–र्निर्मायार्पयितुं शरत्सहचरी वां वर्त्म संवीक्षते।।६४७।।

(गोवि० १३/८)

स्थलकमलवनान्तः कौसुमं यस्य तल्पं विमलबहुलतारं व्योम मुक्तावितानम्।
विकशितचलकाशाश्चामराणां समूहः स ऋतुरतुलकान्तिर्यत्र राजेव रेजे।।६४८।।

(आ० १/६८)

अथ वृन्दयोपहृतमम्बुजं हरिः परिगृह्य हस्तनलिनेन शस्तरुक्।
समजिघ्रदप्यतुलसौरभैः क्षितौ जयसि त्वोमत्यलघु तुष्टुवे च तत्।।६४९।।

(कृ० भा० १२/७)

कमलस्तवे सखि ! कृते मया कथं वदनं तवाभवदरालचिल्लिकम्।
दरशोणिमां चटुलितांगयवेदिषं निजगौरव–च्यवनहेतुकं हि तत्।।६५०।।

(कृ० भा० १२/८)

---

(६४६) हे युगल किशोर ! यह शरद् रुपा सखी आप दोनों की सेवा करने के लिए उत्सुक हो रही है देखो ! चंचल खंजन ही इनके नयन हैं, प्रफुल्लित कमल इनका मुख है, इधर–उधर चंचलता पूर्वक भागते हुए भौरे ही इसकी अलकावलि है, क्रीड़ा परायण चक्रवाक इसके स्तन हैं, श्वेत वर्ण के बादल इसके वसन हैं, लाल कमल इसके ओष्टाधर है कोलाहल करती हुई सारस श्रेणी इसका रमणीय चन्द्रहार है और नीले कमल इसके कानों के भूषण हैं।

(६४७) ऐसी यह शरद् सहचरी रंगण एवं जाति पुष्पों के युवतियों के अलंकार कुमुद के फूलों के शिरोभूषण (बन्दिनी), लाल और नीले कमलों क कर्णभूषण एवं कुंज गृहों में स्वयं गिरने वाले शेफालिका के फूलों द्वारा शैया की रचना करती हुई आप सब की सेवा करने के लिए (यह शरद् ऋतु) आपका पथ निरीक्षण कर रही है।

(६४८) इस वन विभाग में अनुपम शोभा शालिनी शरद् ऋतु राजा की तरह विराज रही है। स्थल कमलों के वन में पुष्प दलों की जिसकी शैया है निर्मल ताराओं से भरा हुआ आकाश है जिसका मुक्तामय चन्द्रातप विकसित वायु से कम्पित होते हुए काश कुसुम ही जिसके चँवर हैं।

(६४९) इसके पश्चात् वृन्दा देवी ने एक अत्यन्त सुन्दर कमल लाकर उत्सुकता पूर्वक उपहार प्रदान किया। श्रीकृष्ण ने उसे अपने कर कमल द्वारा ग्रहण करके श्रीराधा के मुख की ओर एक बार दृष्टि डालकर फिर उस कमल का चुम्बन करके कहने लगे– हे कमल ! तुमने अपनी अतुल सौरभ से सारी पृथ्वी की सुगन्धों को जीत लिया है।

भवतु क्रमादुभयमेव जिघ्रता यतरद्मवेन्मधुर–सौरभाधिकम्।
तदवेत्य तस्य जय एव सर्वदा निजवेणुनाप्यलघु गास्यते मया।।६५१।।
(कृ० भा० १२/९)

इति तां निगद्य तदलक्षितं हरिः परिचुम्बय तन्मुखमुवाच विस्मितः।
अहहातुलः परिमलोऽयमेव तत् सखि ! नानृतं त्वमपि मे समक्रुधः।।६५२।।
(कृ० भा० १२/१०)

धिगरे ! वृथैव परिफुल्ल मूढ किं, त्रपसे न जैत्र वनितास्य सन्निधौ।
निज पंकजत्व–जलजत्वयोर्द्वयो, रनुरूपमेव शठ ! चेष्टसेऽथवा।।६५३।।
(कृ० भा० १२/११)

तरुबल्लि–लास्यविधिशिक्षणं प्रतिक्षणमेव सक्षणमितो वितन्वता।
तदुपाहृत–स्वमकरन्द–सौरभोच्चय–दक्षिणाभिरपि न प्रसीददता।।६५४।।
(कृ० भा० १२/१२)

---

(६५०) ऐसा कहते हुए कमल की स्तुति करने लगे तब राधा किंचित कुपित सी हो गयीं। यह देखकर श्रीकृष्ण पुनः कुछ दूसरी बात बताते हुए कहने लगे– हे सखी राधे ! मैंने कमल की स्तुति की है। इससे तुम्हारा कुटिल भ्रू युक्त वदन कुछ अरुण वर्ण का क्यों हो गया है। हे चंचलपांगी ! मैं इसका कारण समझ गया हूँ। मैंने तुम्हारे मुख की स्तुति न करके इस कमल की स्तुति की है। इसी से अपने गौरव की हानि समझकर ही मानों तुम क्रोध से अरुण हो गयी हो।

(६५१) अच्छा जो भी हो अब मैं तुम्हारे मुखारविन्द और इस कमल को आघ्राण करके जिसकी सुगन्धि अधिक समझूँगा, अपनी वेणु द्वारा उसी का ही यश उच्च स्वर में गान करूँगा।

(६५२) ऐसा कहकर रसिक शेखर अलक्षित भाव से पुनः–पुनः श्रीराधारानी के मुखारविन्द का चुम्बन करके विस्मित सा होते हुए कहने लगे– हे सखी श्रीराधे ! तुम्हारे वदन की सुगन्धि ही अतुलनीय। हे सुवदने तुम मेरे प्रति वृथा कोप न करो।

(६५३) तब श्रीकृष्ण मन में विचारने लगे मैंने जो कमल की स्तुति करके श्रीराधा को कुपित किया है अब मैं इसी की निन्दा करके इन मानिनी को प्रसन्न करता हूँ। ऐसा विचार कर कमल के प्रति कहने लगे – अरे कमल ! तुझे धिक्कार है अरे मूढ़ ! तू व्यर्थ क्यों प्रफुल्लित हो रहा है, अपनी सुषमा से जिस रमणी ने तुझे परास्त कर दिया है उसके मुख के सामने तू प्रफुल्लित हो रहा है, तुझे लज्जा नहीं आती। तेरा पंकजत्व और जलतत्व सार्थक ही है अर्थात् पंक से उत्पन्न होने के कारण श्री हीन होना और जल जड़वस्तु है इसलिये उससे उत्पन्न होना मूढ़ता का हेतु है।

(६५४) हे राधे ! कमल आदि फूलों की सुगन्धि से तुम्हारे मुख की सौरभ कहीं अधिक है। इस विषय में यह वायु ही प्रमाण है क्योंकि यह वायु तरुलताओं को आनन्दित होकर नृत्य की शिक्षा प्रदान करती है और तरुलता इसे मकरन्द रुपी दक्षिणा प्रदान करते हैं

शृणु कोपने ! तवमुखाम्बुजाञ्चली–तटमेव किं नटयता नभस्वता।
प्रीतलभ्य तत्परिमलान् सुदुर्लभान् अहमद्य धन्य इति नाभ्यमन्यत।।६५५।।

(कृ० भा० १२/१३)

ललिताह यस्य दरगन्धमात्रत–स्त्वमुदारमुन्मुरहराभिलक्ष्यसे।
मकरन्दमस्य किमु हास्यसि त्वमि–त्यतिशंकया कवलितां करोषि माम्।।६५६।।

(कृ० भा० १२/१४)

सखि ! मा विषीद कति वा न माधुरी–सरितः स्रवन्ति परितो यतोऽनिशम्।
सकृदेव पंचषपृषन्ति–पानतः सरसोऽस्य किं नु भविता दरिद्रता ?।।६५७।।

(कृ० भा० १२/१५)

इति सव्यदोर्भुजगपाश–वेष्टनैः स्ववलाद्वशीकृततनोर्नतभ्रुवः।
अधरामृतं यदपिवत्तदुत्थिता, वदनद्वयद्युतिरतीतृपत् सखीः।।६५८।।

(कृ० भा० १२/१६)

पक्वाम्रातक–पिंगलामरुणितां सत्पक्वनारंगकैः पीतां पक्त्रिमकर्मरंगकफलैः श्यामांच भल्लातकैः।
आपक्वैरथ फुल्ललोघ्रववलामम्लायदम्लानकां श्रीकृष्णे विपिनस्थलीमथ ययौ हेमन्त–सन्तोषिकाम्।।६५९।।

(कृष्णा० ३/६२)

---

(६५५) लेकिन फिर भी यह उससे प्रसन्न नहीं होती और तुम्हारे मुखकमल के घूँघट को नचाती हुई (हटाती हुई) अतुल परिमल लाभ करके 'आज मैं धन्य हो गयी' ऐसा अनुभव करती है इस बात को क्या आप नहीं जानती हैं।

(६५६) तब ललिताजी कहने लगीं – हे नागर आप जिसकी गन्ध मात्र पाकर परमानन्दित हो जाते है इस समय उस मुख कमल की मकरन्द का आस्वादन आपने कैसे त्याग कर दिया है। मुझे तो इस बात की बड़ी आशंका हो रही है।

(६५७–५८) श्रीकृष्ण ने कहा– सखि ललिते ! तुम दुःखी मत हो ! श्रीराधा के मुखारविन्द रुपी माधुर्य के सरोवर से दशों ओर जो स्रोत निकल रहे है उसके पाँच छः बिन्दु मात्र एक बार पान करने से परम तृप्ति प्राप्त होती है, ऐसा कहकर वाम बाहु रुप भुजगपाश से श्रीराधारानी के अंग को वेष्टन करते हुए उनका अधरामृत पान करने लगे उस समय रसिक युगल के वदन युगल की माधुरी सखी वृन्द को परितृप्त करने लगी।

(६५९) इसके पश्चात् जहाँ पके हुए आंवलों द्वारा पिंगल वर्ण सुन्दर पकी हुई नारंगियों से अरुण वर्ण, पके हुए कामरंग, फलों से पीत वर्ण हल्के पके हुए भल्लातक से श्याम वर्ण प्रस्फुटित लोध्र से धवल वर्ण और सदा सुन्दर महासहा वृक्ष से सुमण्डित यह 'हेमन्त सन्तोष' नामक वनस्थली में श्रीराधाकृष्ण ने सखीगणों के साथ प्रवेश किया।

नान्दीमुखी तदनु तावववदद्वनेशौ निध्यायतं स्वपुरतो वनभागमेतम्।
हेमन्तशन्तमतया प्रथितं निजैः सत्–सम्पच्चयैश्चरणमर्चितुमुत्सुकं वाम्।।६६०।।

(गोवि० १३/४५)

चित्राम्लानकुरुण्डकैः कुरुवकैः फुल्लैर्लसत्सौरभा–माद्यत्तित्तिरि–लाव–षट्पद–किखी कीरावैर्मञ्जुला।
हृद्या पंक्त्रिम–नागरंगरुचकैः शीता तुषारानिलैः सेयं भाति वनस्थलीह भवतो पञ्चेन्द्रियाहलादिनि।।६६१।।

(गोवि० १३/४६)

स्फुरित–सहचरालीवेष्टितोऽम्लानकान्ति–स्तत कुसुमधनुर्मूच्छालि गोपी प्रगीतः
विकचकुसुमवाणः कृष्ण ! ते देहतुल्यो मुखरित–शुकलीलो भाति हेमन्तकालः।।६६२।।

(गोवि० १३/४७)

हिमऋतुलक्ष्मीमतिमुदितस्ताम्।
हरिरथ कान्तां प्रतिकुरुते स्म।।६६३।।

(गोवि० १३/४८)

हेमन्त वन शोभा वर्णन :–

(६६०) इसके पश्चात् नान्दी मुखी श्रीराधाकृष्ण को कहने लगीं– हे वृन्दावनाधीश्वरि ! हे वृन्दावनाधीश्वर ! आपके सामने यह 'हेमन्त शन्तम' नामक वन की शोभा अपनी समस्त फल–पुष्प आदि सम्पति लेकर आप दोनों की चरण सेवा करने के लिए उत्सुक हो रही है।

(६६१) अहा ! यह वनस्थली विकसित झिण्टी कुसुम द्वारा चित्रिता, प्रफुल्लित कुरुवक कुसुम समूह द्वारा सुन्दर, सौरभशालिनी मदमत्त तित्तिर (बसन्त गौर पक्षी), लाव (छातार), भ्रमर, किखी, शुक आदि पक्षियों की ध्वनि से मनोहारिणी, सुपक्व नारंगी और बीजपुर फल से हृदय ग्राहिणी और तुषारयुक्त शीतल वायु से शीतलांगी होकर हमारी पंचेन्द्रियों को आनन्द दे रही है।

(६६२) हे कृष्ण यह हेमन्त काल तुम्हारी देह के समान शोभा पा रहा है। देखो तुम्हारी देह जैसे सहचरियों से परिवेष्टित है उसी तरह यह हेमन्त काल पीत झिण्टी द्वारा वेष्टित है, तुम्हारी देह जैसे अम्लान (सुन्दर) कान्ति से युक्त है और यह हेमन्त काल अम्लान अर्थात् आमल पुष्पों से शोभित है। तुम्हारी देह द्वारा कन्दर्प विलसित हो रहा है वैसे ही हेमन्त काल कन्दर्प को समृद्ध करने वाला है। तुम्हारी देह जैसे गोपियों से सुशोभित है इसी प्रकार हेमन्त काल भी प्रफुल्लित गोपी नाम की लता से शोभित है और तुम्हारी लीला जैसे शुकदेव आदि कीर्तन करते है उसी प्रकार हेमन्त काल में शुक पक्षी आनन्द पूर्वक कलरव करते हैं।

(६६३) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने हर्षित होकर प्रियतमा श्रीराधा के प्रति हेमन्त ऋतु की शोभा का वर्णन, एक और उपमा का प्रदर्शन करके कहने लगे।

रुचिर–विविध वर्णा पक्वशाल्यंशुकांगी मदकल–शुकपालीनाद–नान्दीमुखीव।
सुमुखि ! परिणतोच्चैर्नागरंगसेस्तनीयं कलय वरनटीवाभाति हेमन्तलक्ष्मीः।।६६४।।

(गोवि० १३/४६)

ऋताविहाग्नेः प्रबलोष्णाभावा भिया हिमान्याः परितो द्रवन्तः।
कूपाप्सु केचिद् विनिपत्य लीनाः क्रोड़े द्रुमस्याद्रिदरीषु चान्ये।।६६५।।

(गोवि० १३/५१)

क्रमाद्भानोरुष्मा ह्रसति हिमयोगेन महता वलन्ते वक्षोजद्वय परिसरषुष्म–विभवाः।
क्रमाद्दैर्घ्यं रात्रेर्भवति ह्रसिमा वाम्यरहसो वधूनां शीतार्त्त–प्रियतम–परिष्वञ्जनविधौ।।६६६।।

(आ० १/७६)

इह सखि ! तुषारांशोरंशो निशाऽतिसमेधते ह्रसति दिवसो भागो भा गोपतेरपि ताम्यति।
तनूरपि धृतोत्कम्पा शम्पासमाप्यतनूधूता हिम–महिमभिः कान्ते कां ते गमिष्यति वा दशाम्।।६६७।।

(कृ० भा० १३/३)

तदिह मम हृदवेशमन्यस्मिंस्त्वदुत्कलिकालिभि–स्त्वदुचित–निवासार्थं कोष्णीकृते निभृतेक्षणम्।
प्रविश सहसा जाड्यं दूरे विहाय विहारिणित्यतिजवभुजद्वन्देनैनां चकर्ष स हर्षदः।।६६८।।

(कृ० भा० १३/४)

---

(६६४) हे प्रिये ! मनोहर एवं नाना रंगों का पका हुआ धान ही जिसके अंग के वसन हैं मदमत्त शुक पक्षियों की उच्च ध्वनि ही मानों जिसका स्तुति पाठ है, पकी हुई नारंगी फल ही जिसके स्तन युगल हैं ऐसी यह 'हेमन्त–शोभा' रुपी नटी शोभा पा रही है इसे देखो।

(६६५) हे प्रिये ! इस ऋतु में अग्नि की प्रबल उष्णता हिम ऋतु के भय से कुछ–कुछ तो कुएं के जल में और कुछ–कुछ वृक्षों की क्रोड़ में और कुछ–कुछ गिरि कन्दराओं में जाकर छिप गयी है।

(६६६) इस विभाग में अत्यन्त शीत के कारण क्रमशः सूर्य का ताप क्षीण होकर आपके वक्षस्थल में तापाधिक्य की वृद्धि कर रहा है, रात्रि क्रमशः बड़ी हो रही है और शीतार्त्त प्रियतमों का आलिंगन करने में रमणियों की वामता का ह्रास हो रहा है।

(६६७) हे सखी ! चन्द्र का अंश रजनी हेमन्त काल में बढ़ रही है और सूर्य का भाग दिन क्रमशः ह्रास को प्राप्त हो रहा है। इससे सूर्य की किरणों का बल क्षीण हो गया है और तुम्हारा विद्युत के समान श्रीअंग मदनावेश से कम्पित हो रहा है। हे कान्ते ! शीत काल अपनी महिमा द्वारा और क्या–क्या दशा करेगा यह कहा नहीं जा सकता।

(६६८) 'हे मनोहारिणी ! तुम्हारे शीतकाल में सुन्दर निवास के लिए उत्कण्ठा रुपी सखी द्वारा बनाया गया ईषत् उष्ण, अति निवृत्त, मेरा हृदय रुपी भवन, इसमें तुम क्षण काल के लिए जाड्य (जड़ता) त्यागकर प्रवेश करो।' ऐसा कहकर हर्षदाता श्रीकृष्ण ने बलपूर्वक अपने भुजयुगल द्वारा श्रीराधा को अपनी ओर आकर्षित (खींच) कर लिया।

नहि नहि नहीत्युक्तेनापि प्रियेण दृढ़ं बलादुरसि रसिका सा बाहूभ्यां न्यवध्यत बल्लभा।
शिथिल रसनाबन्धाद्वन्धोस्तदुरुविमर्दिता दपतदवनौ वंशी रोषादिवादर–लाघवात्।।६६६।।
(कृ० भा० १३/५)

त्वमसि कठिने! शीता गीताश्रयप्युरुदोषभू स्तदुचितफलं विश्वोद्वेजिन्यवाप्नुहि साम्प्रतम्।
इति ललितया सा वेण्यग्रे निवध्य निजुन्हुने स्मरमधुमदान्तां तत्स्वामी चिरादपि नास्मरत्।।६७०।।
(कृ० भा० १३/६)

समयविदथैताभ्यः सार्धं प्रियेण विहारिणा सरसमटवीपाली–पाली प्रमोदधुराधरा।
अरुणकपिशश्यामान् श्लक्ष्णान् सुवर्णरसाञ्जितान् लघु लघु लघुन्नीशाराणां चयान् समूपाहरत्।।६७१।।
(कृ० भा० १३/७)

कुरुबक–कुसुमानि केशपाशे–ष्वलककुलेषु वहन्ति लोध्रधूलीः।
स्रजमुरसि महासहाप्रसूनै–र्ब्रजसुदृशो न मणीन्द्रमण्डनानि।।६७२।।
(आ० १/७७)

---

(६६६) तब बार–बार ना ना कहकर निषेध करते हुए भी प्रियतम श्रीकृष्ण ने अपनी रसिका बल्लभा श्रीराधा को दृढ़ता से भुजयुगल द्वारा अपने वक्षस्थल में निबद्ध कर लिया। उस समय श्रीराधा के उरुदेश के आघात से श्रीकृष्ण का कटि वस्त्र कुछ शिथिल हो गया और श्रीराधा के उरुदेश के आघात से अपने गौरव की हानि का अनुभव करती हुई उसमें बंधी हुई वंशी, रोष पूर्वक भूमि पर गिर पड़ी।

(६७०) तब ललिताजी ने भूमि से मुरली को उठा लिया और कहने लगी– हे कठिने मुरली! तुम नीरस काठ जाति की होने के कारण शीतकाल में भी शीतल और कभी भी उष्ण नहीं होती हो। मधुर गान करना ही एक मात्र तुम्हारा गुण है, बाकी तो सब दोष है! हे विश्व को उद्वेग देने वाली! तुम्हें इसका उचित फल मिलना चाहिए। ऐसा कहकर वंशी को अपनी वेणी के अग्रभाग में बाँध लिया। मुरली के स्वामी श्रीकृष्ण को मदन मधुमद से मत्त होने के कारण यह सब कुछ भी पता न चला।

(६७१) श्रीराधाकृष्ण हेमन्त ऋतु में वन भ्रमण करते–करते शीत से व्याकुल हो गये तब विपिन पालिका वृन्दा देवी ने परम आनन्दित होकर सबको ही अरुण, कपिश, श्याम आदि रंगों की स्वर्ण रस रंजित छोटी–छोटी रजाइयां उपहार में दीं।

(६७२) उस समय ब्रज सुन्दरीगणों ने केशों में कुरुवक, पुष्प, अलकावलि में लोध्र पुष्प, वक्षस्थल में महासहा (पीत झिण्टी) के फूलों की माला धारण कर रखी थी। शीत के कारण मणिमय आभरण धारण करने की इच्छा नहीं हो रही थी।

कालीय कालेपनमंगरागे, लीलागृहे केवलधूपधूमः।
ताम्बूलमेलादिककटूप्रयोगं, नोष्णेतरो यत्र गुणो गुणाय।।६७३।।

(आ० १/७८)

प्रालेयद्रवशीकरैर्दिनमुखे, कृष्णागमाकांक्षया या हर्षेण विरोदितीव विकसत्कुन्दौघदन्तश्रिया।
उद्दामद्युतिदामभिर्दमनकैस्तां कीर्णकेशामिव प्रीत्याश्वासयितुं जगाम शिशिरामोदस्थलीं माधवः।।६७४।।

(कृष्णा० ३/६३)

अथालोकयन्तौ पुरोऽरण्यभागम्।
समुत्कौ निजेशाववादीद्वनेशा।।६७५।।

(गोवि० १३/५५)

प्रविशदखिलजन्तूत्कम्परोमांचकारी क्वचिदलघुनगाधः कोष्णाताशीतहारी।
मृदुलित रविकान्तिर्दक्षिणाशागतार्कः शिशिर–रुचिरनामा भात्यरण्येकदेशः।।६७६।।

(गोवि० १३/५६)

---

(६७३) इन्होंने कम्बस्वक (पीले रंग का काष्ठ विशेष) का अंगराग लेपन किया हुआ था और लीलाग्रहों में केवल धूप का धुँआ और इलायची आदि कटु झाल (काली मिर्च) आदि इस युक्त ताम्बूल का प्रयोग कर रहे थे। इस हेमन्त काल में शीतलता गुण न होकर दोष बन गयी है।

(६७४) इसके पश्चात् जो स्थान प्रभात के समय कृष्ण चले जायेंगे इस आशंका से मानों शिशिरपात् रुपी अश्रु–बिन्दु विसर्जन कर रहा है और कुन्द कुसुम के विकास के छल से मानों अपनी दन्त पंक्ति का सौन्दर्य प्रकाशित करते हुए आनन्द रोदन कर रहा है। प्रचुर ज्योत्सना का विस्तार करती हुई दमनक फूलों की पंक्ति विरहिणी नारी की तरह अपने केश कलापों का विस्तार कर रही है और उसको प्रेम सहित आश्वासन देने के लिए ही मानों राधा माधव ने इस 'शिशिरामोद' नामक वन में प्रवेश किया।

शिशिरामोद नामक वन विभाग में प्रवेश :–

(६७५) इसके पश्चात् वृन्दावनाधीश्वरि श्रीराधा और वृन्दावन नाथ श्रीकृष्ण को वृन्दादेवी अग्रवर्ती 'शिशिररुचिर' नामक वन विभाग का अवलोकन कराती हुई उत्सुकता पूर्वक कहने लगी–

(६७६) हे राधाकृष्ण ! शिशिर रुचिर नामक इस वन की कैसी शोभा हो रही है अहा ! इस वन में प्रवेश करते ही समस्त जीव जन्तु काँप रहे है। किसी स्थान पर ऊँचे–ऊँचे वृक्षों के नीचे कुछ उष्णता् पाकर शीत को दूर कर रहे हैं और इस अरण्य में सूर्य की किरणें भी बहुत मृदुल हो गयी है और सूर्य देव दक्षिण दिशा की ओर गमन कर रहे हैं।

जवा बन्धू काभारुणवरदूकूलं दमनक–प्रभाचोलीं कुन्दद्युति सित निचोलंच दधति।
भरद्वाजश्रेणी–विरुतियुत हारीतरुतिभिः स्तवन्तीव प्रेमणा शिशिरऋतुलक्ष्मी र्मिलतिवाम्।।६७७।।
(गोवि० १३/५७)

निविड़दल–तरूणां वसारोद्यन्तकाला–गतरविकरकोष्णे सूर्यकान्ताञ्चितेंके।
मृगततिरूपविष्टा मन्दरोमन्थरम्या प्रकट पुलक वाष्पा वां समीक्ष्याभ्युपैति।।६७८।।
(गोवि० १३/५८)

ऋतावस्मिन् तेजःक्षतिरनुदिनं प्राणसुहृदां सरोजानां नष्टिः स्वसुखसमयाह्नोऽपि लघुता।
तुषारैश्चण्डांशोरपि मृदुभिरुच्चैर्वत कृता विनैकं विश्वेशं भवति नहि कः कालवशगः।।६७९।।
(गोवि० १३/५९)

प्रबलशिशिरभीत्या भानुरोष्णयं स्ववित्तं स्तनयुगगिरिदुर्गे बल्लवीनां न्यधत्त।
त्वरितमिदममूभिः कृष्णभोगाय क्लृप्तं प्रभवति नहि गाढ़प्रेम्णि धर्माद्यपेक्षा।।६८०।।
(गोवि० १३/६०)

---

(६७७) और इस शीत ऋतु की शोभा का अधिक क्या वर्णन करें, यह बन्धूक पुष्प की प्रभा से युक्त लाल रंग के उत्तम वस्त्र, दमनक अर्थात् (दोना पुष्प) की कान्ति से युक्त कंचुकी, कुन्द पुष्पों की कान्ति से युक्त शुक्ल वर्ण की ओढ़नी धारण किये हुए, भरद्वाज नामक पक्षियों की श्रेणीसे उच्च ध्वनि करते हुए, हारीत पक्षी के रव द्वारा स्तुति करते–करते मानों आप दोनों के साथ प्रेमपूर्वक मिलने के लिए प्रस्तुत हैं।

(६७८) और देखो ! प्रातः काल और सायंकालीन रवि की किरणों से ईषत् उष्ण एवं सूर्यकान्त मणि से युक्त घने–घने दलों वाले वृक्षों के नीचे हरिण सकल मन्द–मन्द गति से तृणों का चर्वण करते हुए अन्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं और आप दोनों के दर्शन करने के लिए उनके शरीर में पुलकावलि तथा नेत्र अश्रु बिन्दुओं से युक्त हो रहे हैं।

(६७९) अहा ! क्या आश्चर्य है एक जगत्पति भगवान के बिना कौन काल से वशीभूत नहीं होता ? देखो इस शीतकाल में प्रचण्ड, मार्तण्ड का तेज पुंज भी प्रतिदिन क्षीण हो रहा है और सूर्यदेव की प्राण समान सुहृद कमलिनी भी नष्ट हो रही है और सूर्य के अपने सुख का समय दिवस भी क्षय को प्राप्त हो रहा है।

(६८०) सूर्य देव ने प्रबल शिशिर के भय से गोपियों के स्तनयुगल रुपी गिरि दुर्ग में अपना उष्णता रुपी धन रख दिया था किन्तु हे कृष्ण ! इन सब गोपियों ने तुम्हारे उपभोग के लिए इस धन को तुम्हें अर्पित कर दिया है। किसी के स्थापित धन को दूसरे को देना भले ही धर्म विरुद्ध है लेकिन प्रेम की गाढ़ता में धर्म का विचार नहीं होता।

इति तद्गिरा प्रमुदितोऽत्र, शिशिरऋतुजां वनश्रियम्।
बकरिपुरथ कलयन् स तदा ललितं जगाद निजप्रियाम्।।६८१।।

(गोवि० १३/६१)

भ्रमदिन्दिरवृन्दं सुन्दरि ! शिशिरागमं दिशत्यत्र।
मन्दादरमरविन्दे, विन्दति कुन्दे यदानन्दम्।।६८२।।

(गोवि० १३/६२)

पश्येन्दिरेन्दिन्दिरवृन्दसयुता, दन्दह्यमानं प्रबलैर्हिमैर्निजम्।
विहाय संप्रत्यरविन्दमन्दिरं, कुन्दावलौ सुंदरि मन्दिरीयति।।६८३।।

(गोवि० १३/६३)

हिमानी राहुसेनानीः सूर्य, निर्जेतुमक्षमा।
तस्मिन् प्रणयनीं ज्ञात्वाज्वालयत् पद्मिनी ततिम्।।६८४।।

(गोवि० १३/६४)

तोयोत्थिताया ब्रजकन्यकाततेः स्तनावली यां स्मृतिमानिनाय मे।
पाकोन्मुखीयं बदरीफलावली तामत्र सा मत्स्मृतिमानयत्यसौ।।६८५।।

(गोवि० १३/६५)

---

(६८१) बकरिपु श्रीकृष्ण वृन्दाजी के इस प्रकार वचन सुनकर परम आनन्दित होते हुए शिशिर ऋतु के वन की शोभा दर्शन करते हुए प्रियतमा श्रीराधाजी को सुललित स्वर से कहने लगे :–

(६८२) हे सुन्दरि ! देखो इस वन प्रदेश में भ्रमण करते हुए भ्रमर पद्म पुष्प के प्रति आदर त्यागकर कुन्द कुसुम का आनन्द ले रहे हैं। इससे जाना जाता है कि अवश्य ही शीत ऋतृ का आगमन हो गया है।

(६८३) हे सुन्दरि ! देखो भ्रमर सकल द्वारा सुशोभित उनके मन्दिर स्वरूप कमल प्रवल हिम राशि से दग्ध प्राय हो गये हैं। यह देखकर भ्रमरों ने कुन्दलता को ही अपना मन्दिर बना लिया है अर्थात् अब कुन्द के फूल ही शोभा को प्राप्त हो रहे हैं।

(६८४) हे प्रिये ! देखो राहु के सेनापति के समान हिम राशि ने सूर्य को पराजय करने में असमर्थ होकर पद्मिनी को ही सूर्य की अत्यन्त प्रिया समझते हुए जलाना आरम्भ कर दिया है।

(६८५) हे प्रियतमे ! और देखो– चीर हरण के दिन ब्रजकुमारी जब जल से बाहर निकल कर आयीं तो उनके स्तन मानों पाकोन्मुख उत्तम बदरीफल के समान मेरी स्मृति पथ में आ रहे हैं वही ये बदरीफल मुझे उन कुमारियों के गुणों का स्मरण दिला रहे हैं।

कचभरमधि बन्धुजीवमाला, दमनकपल्लवबल्लभोऽवतंसः।
उरसि च नवकुन्दकोरकाणां, स्रगिति वधुर्न दधे मणीन्द्रभूषाम्।।६८६।।

(आ० १/८६)

हरिरथ दयिताया वृन्दयानीय दत्तौ सित–मृदुलजवान्तर्मञ्जरी–कर्णपूरौ।
सपुलक–करकम्पं कर्णयोः स न्यधत्त श्रुतियुगमनु तस्यैयापि कौन्दावतंसौ।।६८७।।

(गोवि० १३/६६)

राधायाः करपंकजेऽथ निहिता कौन्दी मुदा वृन्दया या माला लघुलोहितोत्पलकुलस्रगदीप्तिमेषा दधे।
सूक्ष्मेन्दीवरमाल्यरोचिरनया कृष्णस्य कण्ठेऽर्पिता तेनास्या हृदि योजिता सपुलके चाम्पेयमाल्यद्युतिम्।।६८८।।

(गोवि० १३/६७)

स्मेरा विशाखावददेतदद्भुतं सुकोमला पश्यत कुन्दबल्लिका।
एकैव पुष्पिण्यनिशं स्मरोन्मदैः क्रमोत्क्रमाभ्यां भ्रमरैः प्रपीयते।।६८९।।

(गोवि० १३/६८)

---

(६८६) ब्रज वधुओं ने केश कलापों में बन्धुजीव पुष्पों की माला, कानों में दमनक पुष्पों के पत्तों द्वारा बने हुए कुण्डल, वक्षस्थल पर नवकुन्द की कलियों की माला धारण की हुई है। इस समय वे और अधिक मणि आदि के भूषण धारण नहीं करतीं।

(६८७) इसके पश्चात् वृन्दाजी ने जिसका बीच का भाग श्वेत है ओर जो मृदुल जवा फूल से बने हुए ऐसे मंजरियों से भरे हुए कर्णभूषण लाकर भी राधा के कर्णों में पहना दिये और श्रीराधा ने भी श्रीकृष्ण के कर्ण युगल में कुन्द कुसुम के कुण्डल पहना दिये।

(६८८) इसके पश्चात् वृन्दाजी ने राधारानी के करकमल में एक कुन्द के फूलों की माला समर्पित की। यह माला जब राधारानी के लाल लाल कर पल्लवों में विराजित हुई तो लाल कमलों की माला के समान कान्ति वाली प्रतीत होने लगी। इसके पश्चात् श्रीराधा ने वह माला श्रीकृष्ण के कण्ठ में पहना दी तब यही माला सूक्ष्मतम नील कमलों की माला के समान कान्ति वाली प्रतीत होने लगी। तब श्रीकृष्ण ने पुनः इसी माला को श्रीराधा के पुलकित (कृष्ण स्पर्श से) हृदय पर ध ारण करा दी तब यह माला श्रीराधा अंग कान्ति से चम्पक माला की कान्ति को प्राप्त हुई बड़ा आश्चर्य है। एक कुन्द माला ही संसर्ग के कारण तीन रंगों को प्राप्त हुई।

(६८९) तब हास्य करती हुई विशाखा जी कहने लगीं– हे वृन्दावनधीश्वर श्रीराधाकृष्ण ! यह आश्चर्य देखो एक सुकोमल कुन्दलता पुष्पित होती हुई कन्दर्प मत्त भ्रमरों द्वारा क्रम से और विपरीत क्रम से भोग की जा रही है अर्थात् यह कुन्दलता नाम की गोपी जब पुष्पित (अर्थात् ऋतुमती होती है तो कामुक पुरुषों द्वारा अनुलोम एवं विलोम द्वारा उपभोगता होती है यह परिहास उक्ति है।

चित्राब्रवीत् साध्वि ! न चित्रमेतत् सौभद्रमेषां रमणं यदस्याम्।
विभात्यमीष्वत्यनुरागवत्यां, प्रचेतसामास यथैव वार्क्ष्याम्।।६६०।।

(गोवि० १३/६६)

कौन्द्याललाप कलयाद्भुतमालि ! फुल्लान स्वान् स्वान् निजान्तिकगतानपि बन्धुजीवान्।
संत्यज्य धैर्यरहिता नवबन्धुजीव–मेकं पिबन्ति तमिमं शतशो भ्रमर्यः।।६६१।।

(गोवि० १३/७०)

चित्राह सारग्रहिलातिपूता, कृष्णात्विङ्ढ्यन्मधुमात्रवृत्तिः।
भृंगीततिः पंचमगानगुर्वी, यत्रातिशुद्धं मधुतत्रसक्ता।।६६२।।

(गोवि० १३/७१)

अथालिवर्गानन–सौरभाहृत–स्ताभिर्मुखाब्जेषु पतन्निवारितः।
विन्दन् सा राधावदनाम्बुजंरुवं–स्तदगन्धमत्तः परितोऽलिरञ्चति।।६६३।। (गोवि० १४/१)

(६६०) विशाखाजी के इन्हीं वाक्यों को सुदृढ़ करती हुई चित्राजी कहने लगीं– हे साध्वी विशाखे ! इन भ्रमर सकल के प्रति अनुरागवती यह कुन्दलता समस्त भ्रमरों के साथ रमण करती है इसका यह विहार सुखप्रद ही है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि यह सुभद्र गोप की पत्नी है अतः इसका रमण भी सौभद्र रमण ही है जैसे प्रचेतागणों में अनुराग करने वाली वृक्षों की कन्या का प्रचेताओं के साथ रमण मंगलप्रद ही हुआ था उसी प्रकार इस कुन्दलता का भी सौभद्र रमण ही है।

(६६१) इसके पश्चात् कुन्दलता सब सखियों की भर्त्सना करती हुई चित्राजी के साथ वार्तालाप करती हुई कहने लगी– देखो ! क्या आश्चर्य है ? यह शत् शत् भ्रमरीगण अधीर होकर अपने निकटस्थ प्रफुल्लित बन्धुजीव (बान्धुली पुष्प) समूह को परित्याग करके एक नवीन बन्धुजीव को चुम्बन कर रही हैं। श्लेष अर्थ में – भ्रमरी स्वरुपा शत् शत् गोपियां अपने गृहस्थित पतियों को त्यागकर श्रीकृष्ण का सेवन कर रही हैं।

(६६२) चित्राजी प्रत्युत्तर देती हुई कहने लगीं– जिनकी कृष्ण कान्ति है और जिनका अन्तःकरण पवित्र है मधु ही जिसके जीवन की वृत्ति है, पंचम स्वर में गाने में जो अति समर्थ है ऐसी भ्रमरीगण जहाँ अति विशुद्ध मधु रहता है वहीं जाकर आसक्त होती हैं क्योंकि वे सार ग्राह्यणी हैं श्लेष पक्ष मे हम सब गोपिकाएं, जिनसे श्रीकृष्ण भी कान्ति युक्त हो जाते हैं, जो अति पवित्रा, सार ग्राह्यणी और मधु रुपी प्रेम ही जिनके जीवन का आधार है। पंचम गान अर्थात् संगीत विद्या में जो निपुण हैं और जहाँ मकरन्द रुपी सब वस्तुओं का सारातिसार प्रेम विराजमान रहता है ऐसे श्रीकृष्ण में ही आसक्त रहती हैं।

श्रीराधारानी का प्रेम वैचित्र्य भाव :–

(६६३) इसके पश्चात् सखी वृन्द के मुखारविन्द के सौरभ से आकृष्ट होकर एक भ्रमर उनके वदन कमल पर मंडराने लगा किन्तु जब सखियों ने उनको दूर किया तब वह श्रीराधारानी के मुख कमल की सुगन्धि को प्राप्त करके उन्मत्त होकर गुनगुन ध्वनि करता हुआ उनके मुखारविन्द के चारों ओर भ्रमण करने लगा।

नेत्रान्तोद्धुननैश्च कंकण झणत्कारोर्मि–संतर्जनै–त्रासाद्दोलितपाणिपद्मधुवनैः क्षिप्तोऽपि भृंगो यदा।
लोभान्नापससार तर्ह्यपसृता श्रीराधिका श्रीहरेः संव्यानाञ्चलसंवृतास्यकमला पार्श्वे निलीय स्थिता।।६६४।।
(गोवि० १४/२)

तस्मिन् गते पद्मवनीमलौ चले तामाहुराल्यः सखि ! मा भयं कुरु।
निवारितेऽस्माभिरसौ रुवन् शठः पद्मालिमुत्को मधुसूदनो गतः।।६६५।।
(गोवि० १४/३)

आढ्यंकरण्या सुभगकरण्या स्थूलंकरण्या प्रणयोच्चलक्ष्म्या।
अन्धंकरण्या दयितं पुरस्थं, नान्धीकृतासावनुसन्दधे तम्।।६६६।।
(गोवि० १४/४)

तावत् कृष्णेन ताः सख्य इंगितज्ञेन वारिताः।
तत्पक्षं जगृहुः सख्या विस्मिताः प्रेमचेष्टितैः।।६६७।। (गोवि० १४/५)

राधा स्वगतम्–समजनि दवाद्वित्रस्तानां किमार्त्तरवोगवाम मयि किमभवद्वैगुण्यं वा निरकुंशमीक्षितम्।
व्यरचि निभृतः किं वा हूतिः कयाचिदभीष्टया यदिह सहसा मामत्याक्षीद्वने वनजेक्षणः।।६६८।।
(वि० ५/४६)

---

(६६४) श्रीराधा भयभीत होती हुई अपने नेत्र कुछ बन्द से करती हुई कंकणों की झंकार के साथ तर्जन गर्जन करके अपने हाथ में स्थित लीला कमल को घुमाते हुए भ्रमर को भगाने लगीं। जब भ्रमर मधु के लोभ के कारण श्रीराधाा वदन कमल से दूर नहीं हटा तब श्रीराधा पलायन करती हुई श्रीकृष्ण के उत्तरीय वस्त्र द्वारा अपने मुख को ढककर उनके पास ही छिप कर खड़ी हो गयीं।

(६६५) तब चंचल भ्रमर कमलवन की ओर चला गया और सखियाँ श्रीराधाजी से कहने लगीं "सखी राधे अब भय मत करो" हमसे निवारित होकर यह शठ मधुसूदन (एक अर्थ में कृष्ण, दूसरे अर्थ में भ्रमर) पद्मालि (पद्मवन अथवा पद्मा की सखी चन्द्रावली) के समीप चला गया है।

(६६६) यह सुनकर श्रीराधा समझने लगी कि मधुसूदन चन्द्रावली के पास चले गये हैं तब अत्यन्त समृद्धा, सुन्दर और अन्ध बनाने वाली प्रणय सम्पत्ति द्वारा श्रीराधा मोहित होकर समीपस्थ श्रीकृष्ण को भी नहीं पहचान सकीं।

(६६७) इंगित को समझने में सुनिपुणा सखीगणों को श्रीकृष्ण ने श्रीराधा की प्रेम चेष्टा देखने के लिए इंगित करके निवारित कर दिया और वे भी कौतुक देखने के लिए श्रीकृष्ण के पक्ष का ही समर्थन करने लगीं।

(६६८) तब श्रीराधा स्वयं को ही कहने लगीं :– क्या सब गौएं दावानल से विस्तृत होकर आर्न्तरव कर रही हैं ? क्या प्रीतम श्रीकृष्ण ने मुझमें ही किसी विशेष अवगुण को देखा है ? क्या कोई प्रियतमा ही संकेत करके उन्हें निर्जन स्थान में ले गई हैं ? नहीं तो पद्मलोचन इस निर्जन वन में मुझे त्यागकर क्यों चले गये?

प्रेमवैचित्तविभ्रान्ता कान्ता कान्तांतरं गतम्।
कान्तं मत्वा ततोभ्येत्य रुष्टा प्राह धनिष्ठिकाम्।।६६६।।

(गोवि० १४/६)

धनिष्ठे धृष्टस्ते क्व नु कपटनाटीनटि ! नटस्त्वदर्थ स्वप्रेयान् कुसुममवचेतुं सखि ! गतः।
गतोऽसौ पद्मालीं कपटिनि ! स तामानयति चेद्भविष्यत्यप्येषा तव मुखरुचा निर्जितरुचिः।।७००।।

(गोवि० १४/७)

दोषोऽत्र ते नास्त्यहमेव मूढ़ा, श्रुत्वापि या तं गहने सशैव्यम्।
विश्रभ्य वाण्यां तव कूटदूत्यो, यदागता तस्य शठस्य पार्श्वम्।।७०१।।

(गोवि० १४/८)

धनिष्ठैषाप्यस्मद्हृदयसदृशी वञ्चयति नः स चाप्यस्मानस्यन् विलसति तया मत्प्रियवने।
इदञ्चाप्यस्माकं नयनविषयं सम्प्रतिगतं चिरंञ्जीवेद्योऽस्मिन् जगति स हि वा पश्यति न किम्।।७०२।।

(गोवि० १४/९)

---

(६६६) तब श्रीराधा प्रेम वैचित्री से विभ्रान्त होकर प्रियतम श्रीकृष्ण किसी अन्य कान्ता (चन्द्रावली) के पास चले गये हैं, ऐसा समझकर क्रोध करती हुई वहाँ से उठकर धनिष्ठा के पास जाकर धनिष्ठा को कहने लगीं :–

(७००) धनिष्ठे ! तुम कपट नाट्य की नटिनी हो ! अथवा इस कपट नाट्य की नटिनी चन्द्रावली और उसके नट वे श्रीकृष्ण कहाँ हैं ? धनिष्ठा ने कहा – सखि राधे ! तुम्हारे निज प्रियतम श्रीकृष्ण तुम्हारे लिए पुष्प चयन करने गये हैं। यह सुनकर श्रीराधा कहने लगीं– वह पद्मालि के पास गये हैं, अब वे यदि उस पद्मा सखी चन्द्रावली को यहाँ लेकर आ जायें तो क्या होगा ? तब धनिष्ठा कहने लगीं– वह चन्द्रावली तुम्हारी वदन कान्ति से मलिन हो जायेंगी अर्थात् उसकी शोभा फीकी पड़ जायेगी।

(७०१) श्रीराधा कहने लगीं :– हे धनिष्ठे ! इस विषय में तुम्हारा कोई दोष नहीं है। मैं ही मूढ़ा हूँ जो कि तुम्हारे मुख से 'श्रीकृष्ण शैव्या के साथ वन में विराज रहे है' यह सुनकर भी मैं तुम्हारी कपट बातों का विश्वास करके इस शठ श्रीकृष्ण के पास यहाँ आ गयी हूँ।

(७०२) तब श्रीराधा किसी को भी न देखती हुई अत्यन्त दुःखी होकर चिन्ता से व्याकुल होकर कहने लगीं – हाय ! कितने दुःख की बात है ! मेरी अन्तरंग सखी धनिष्ठा भी मेरी वंचना कर रही है और श्रीकृष्ण भी मुझे छोड़कर उस पद्माली के संग मेरे ही प्रियवन में विहार कर रहे हैं और यह सब मैं अपने नेत्रों से देख रही हूँ जो इस जगत में चिरजीवी होता है वह कौन सा दुःख नहीं देखता।

इदं किं सोढ़व्यं भवति यदयं मत्प्रियसरो–निकुञ्जे पद्मालीं क्वचिदपि निधायात्र निभृतम्।
समानाय्याप्यस्मान क्षणमहह संदर्श्य शठधीर्मुधालापारम्भं न इह स विहायागमदमूम्।।७०३।।

(गोवि० १४/१०)

ललिताह तस्य धार्ष्ट्यं मया दृष्टं मुहुः सखि !
नावैषि सरला तत्वमेहि यामः स्वमन्दिरम्।।७०४।।

(गोवि० १४/११)

इति तां ललिता पाणौ धृत्वा चक्रे गृहोन्मुखीम् !
सापि तद्विरहाद्भीता दीनार्त्तोत्का जगाद ताम्।।७०५।।

(गोवि० १४/१२)

दृष्टान् दोषान् न गृहनाति चिन्तयत्यसतो गुणान्।
दिदृक्षते तादृशं तं वामं चेतः करोमि किम्।।७०६।।

(गोवि० १४/१३)

स्त्रीततेर्न क्वचित् कामजाप्यूर्जिता लालसाबल्लरी दृश्यते वाह्यगा।
षष्ठिकाधान्यजातेरिवेतीरिता सा तया तां सखीं राधिका व्याहरत्।।७०७।।

(गोवि० १४/१४)

---

(७०३) हाय ! कितने दुःख की बात है ? यह शठ बुद्धि श्रीकृष्ण मेरे कुण्ड के तीरवर्ती कुंज में किसी निभृत स्थान में पद्मा सखी चन्द्रावली को छिपाकर और हम सब को यहाँ लाकर झूठी बातें बनाकर हमारा त्याग करते हुए उस चन्द्रावली के पास चले गये। यह क्या किसी को सहन होगा ?

(७०४) इस बात को सुनकर ललिताजी कहने लगीं– सखि ! मैंने श्रीकृष्ण की इस प्रकार की घृष्टता अनेक बार देखी है। तुम सरल हो यह सब कुछ नहीं जानतीं, आओ हम सब घर को चलें।

(७०५) यह कहकर ललिताजी राधारानी का हाथ पकड़कर उन्हें घर की ओ ले जाने लगीं। श्रीराधा श्रीकृष्ण विरह से भयभीत होती हुई अत्यन्त दीना, आर्ता, और उत्कण्ठिता होकर ललिताजी से कहने लगीं–

(७०६) सखि ललिते ! श्रीकृष्ण गुणों के न होने पर भी उन्हें गुण ही समझ कर ग्रहण करते हैं और दोष सब दिखायी पड़ने पर भी उन्हें ग्रहण नहीं करते। तो मेरा यह वाम स्वभाव वाला कुटिल चित्त ऐसे श्रीकृष्ण के दर्शन करने की इच्छा कर रहा है अब बताओ मैं क्या करूँ ?

(७०७) षष्ठिका धान्य (शाटी नामक धान्य) पका हुआ होने पर भी छिलके के आवरण से ढका रहता है किन्तु बाहर नहीं होता इसी प्रकार काम जन्य वद्धित लालसा वृद्धि पाती हुई भी कभी बाहर दिखायी नहीं देती। इस प्रकार ललिताजी द्वारा प्रेरित होती हुई भी श्रीराधा कहने लगीं–

त्यज व्यर्था नारीचय नयकथां कर्णतुदनीं विनिर्यान्ति प्राणाः स्फुटति मम हृदघूर्णति वपुः।
ब्रजेन्नाशं मानो ब्रजतु महिमा ह्रीश्च सधृतिः सखि ! त्वां वन्दे हा हृदयदयितं दर्शय लघु।।७०८।।

(गोवि० १४/१५)

आभीरेन्द्रसुते स्फुरत्यपि पुरस्तीव्रानुरागोत्थया विश्लेषज्वर–सम्पदा विवशधीरत्यन्तमुदघूर्णिता।
कान्तं मे सखि ! दर्शयेति दशनैरुद्घूर्णशस्पांकुरा राधा हन्त ! तथा व्यचेष्टत यतः कृष्णोऽप्यभूद्विस्मितः।।७०९।।

(उ० १५/१४८)

सारल्यं ते विविधरमणीलम्पटो धृष्टभूपश्चापल्यञ्चाप्यनुपममिदं क्वापि रामास्वदृष्टम्।
आलोक्येतोऽप्यधिकमहहो वञ्चयिष्यत्यसौ त्वां त्वच्चारित्रैर्वयमिह हताः किं पुनर्हंसि वास्मान्।।७१०।।

(गोवि० १४/१६)

इतोऽपि का सास्त्यधिकात्र वञ्चना यया शठोऽस्मान् स कदर्थयिष्यति।
इत्यालपन्ती प्रियमैक्षताग्रऽतः सालिंग्य काञ्चिद्दयितां समागतम्।।७११।।

(गोवि० १४/१७)

---

(७०८) सखी ललिते ! नारीगनों की कानों को व्यथा देने वाली विफल नीति कथा को छोड़ो। इन सब बातों से मेरे प्राण बहिर्गत हो रहे हैं। हृदय फटा जा रहा है और देह विघूर्णित हो रहा है। अब तो चाहे मेरे मान का नाश हो जाये धैर्य के साथ महती लज्जा भी दूर हो जाये हाय ललिते ! मैं तुम्हारी वन्दना करती हूँ शीघ्र ही प्राण प्रियतम के दर्शन कराओ।

(७०९) श्रीकृष्ण जब सामने रहते हैं तब भी श्रीराधा अनुराग से उत्पन्न हुए विरह रुपी ज्वर से संतप्त एवं विवश होकर अतिशय घूर्णित हो जाती हैं और अपनी सखियों को 'सखी प्रियतम कहाँ है ? दर्शन कराओ' इस प्रकार कहती हुई दांतों में तृण दबाकर इस प्रकार की चेष्टा करने लगती हैं जिसे देखकर श्रीकृष्ण भी विस्मित हो जाते हैं।

(७१०) ललिताजी कहने लगीं – सखी राधे श्रीकृष्ण धृष्टों के राजा हैं और ब्रजरमणियों में लाम्पट्य परायण हैं। तुम्हारे जैसी सरलता और चपलता तो मैंने किसी रमणी में नहीं देखी। तुम्हारी इस निरुपम चपलता को देखकर वह तुम्हारी इससे और भी अधिक वंचना करेंगे हाय ! तुम्हारे इस शील स्वभाव से हम तो बहुत दुखी हो गयीं। अब तुम हमें और अधिक दुःखी मत करो।

(७११) यह सुनकर श्रीराधारानी कातर होकर कहने लगीं– सखी इससे ज्यादा भी और क्या मेरी वंचना करेंगे और इससे अधिक भी मेरा क्या तिरस्कार होगा ऐसा कहते–कहते राधारानी देखने लगीं कि प्रियतम श्रीकृष्ण किसी अन्य कान्ता का आलिंगन करते हुए उनके सामने आ गये हैं।

तां वीक्ष्य पश्चाद्दयितोपगूढ़ां स्वसम्मुखीनां प्रतिकुर्वतींस्वम्।
पद्मा—सखीत्वेन विनिर्णयन्ती, ह्रियेर्षया सा विमुखी चकम्पे।।७१२।।

(गोवि० १४/१८)

वल्गूयन्तीं समीक्ष्यामुंमन्तुयन्तीह राधिका।
सा कुन्दलतयाभाषि कृष्णेनेरितया दृशा।।७१३।।

(गोवि० १४/१९)

कान्तं द्रष्टुं समुत्का त्वमागतं तं समुत्सुकम्।
द्रुतं मिल कथं जातास्यकस्माद्विमुखी रुषा।।७१४।।

(गोवि० १४/२०)

साप्याह तां हरेर्वक्षस्यमुं किं त्वं न पश्यसि ?
यां प्रदर्शयितुं गेहादानीताहं त्वया शठे।।७१५।।

(गोवि० १४/२१)

कृष्णोऽब्रवीद्यां मनुषे न सैषा, काप्यागतैकात्र मयानुयुक्ता।
राधा—वयस्या वनदेवतास्मी, त्युक्त्वा, बलान्मां परिरभ्य सास्ते।।७१६।।

(गोवि० १४/२२)

(७१२) इसके पश्चात् राधारानी देखने लगीं कि वह कान्ता मानों पीछे की ओर से श्रीकृष्ण का आलिंगन कर रही है। यहाँ श्रीकृष्ण के अंग में वह अपने ही प्रतिबिम्ब का दर्शन कर रही हैं लेकिन वे समझ रही हैं कि यह पद्मा की सखी चन्द्रावली ही मेरे जैसी चेष्टा करती हुई श्रीकृष्ण के अंग पर विराजमान है। अपने प्रतिबिम्ब को चन्द्रावली निश्चय करके श्रीराधा लज्जा और ईर्ष्या से मुख मोड़कर क्रोध के आवेश से कम्पित होने लगी।

(७१३–१४) श्रीकृष्ण ने जब यह देखा कि श्रीराधा मेरे वक्षस्थल में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर ही क्रोध कर रही है तो उनके नेत्रों के इंगित से प्रेरित होकर कुन्दलता जी राधारानी को कहने लगीं— सखी राधे ! तुम प्रियतम के दर्शन के लिए उत्कण्ठित हो रहीं थीं। अब वे उत्सुक होकर तुमसे मिलने के लिए आ गये हैं। अब तुम शीघ्र ही उनसे मिलो। क्रोध से मुख क्यों फेर लिया है।

(७१५) श्रीराधा कहने लगीं— हे शठे ! जिसको दिखाने के लिए तुम मुझे घर से यहाँ लायी हो श्रीकृष्ण के वक्षस्थल में उस सखी चन्द्रावली को क्या नहीं देख पा रही हो ?

(७१६) यह सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे— हे राधे ! तुम जिसे अपने मन में विचार रही हो यह पद्मासखी चन्द्रावली नहीं है। यह तो कोई अदृष्ट चरी वन देवी है जो कि अपने आप को राधासखी बताकर बलपूर्वक मेरा आलिंगन कर मेरे वक्षस्थल पर विराज गयी है।

आलिंग्य संचुम्ब्य च मां स्वविद्यया पृष्ठे च लग्नोरसि मे तयासकौ।
यथा न निःसारयितुं क्षमोऽस्म्यहं स्वयञ्च निःसर्त्तुमपि प्रयत्नतः।।७१७।।

(गोवि० १४/२३)

प्रार्थितापि मया नैषा मां जहात्यतिकामुकी।
वारयैनां निजसखीं बलान्मां पीड़यत्यसौ।।७१८।।

(गोवि० १४/२४)

श्रुणु सखि ! तव कर्णे वर्णयाम्यत्र नीचैर्विरचय मुखचन्द्रं मा वृथारादविवर्णम्।
इयमुरसि मुरारेरस्ति नान्या मृगाक्षी मरकत मुकुराभे बिम्बितासि त्वमेव।।७१९।।

(उ० १०/३०)

लग्नायां ललितायां तच्छुत्यौ सासीदधोमुखी।
सकृष्णा जहसुः सख्यः कुन्दबल्ली जगादताम्।।७२०।।

(गोवि० १४/२५)

नैवाक्षिलग्नं दयितं विलोकसे छायां निजामन्यजनीं च मन्यसे।
सर्वत्र चन्द्रावलिकां विशंकसे चित्रं तवेदं प्रणयाख्य नर्तनम्।।७२१।। (गोवि० १४/२७)

---

(७१७) और यह वन देवी मेरा आलिंगन और चुम्बन करके अपनी विद्या द्वारा मेरे वक्षस्थल और पीठ पर जाकर इस प्रकार विराज गयी है कि मैं यत्न करके भी इसे दूर नहीं कर पा रहा हूँ और यह देवी स्वयं भी प्रयत्न करके मुझे छोड़ नहीं पा रही है।

(७१८) हे राधे ! मेरे प्रार्थना करने पर भी यह कामुकी मेरा परित्याग नहीं कर रही तुम ही अपनी सखी को निषेध करो। यह बलपूर्वक मुझे पीड़ित कर रही है।

(७१९) तब श्रीविशाखाजी श्रीराधारानी के कान में धीरे–धीरे कहने लगीं सखी ! ध्यान से सुनो अन्यथा पीछे तुम्हारी बहुत हँसी होगी। हे सुन्दरी ! व्यर्थ में ही क्यों अपने वदनचन्द्र को मलिन कर रही हो ? इस ब्रज मण्डल में मुरारी के मरकतमणि के दर्पण तुल्य वक्षस्थल में और कोई भी मृगाक्षी नहीं हो सकता। तुम ही इसमें प्रतिबिम्बित हो रही हो अतः अपना मुख प्रसन्न करो।

(७२०) इसके पश्चात् ललिताजी श्रीराधारानी के कान से लगकर कहने लगी :– श्रीकृष्ण के अंग में तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब है यह चन्द्रावली नहीं है। यह सुनकर श्रीराधा अपना भ्रम समझ गयीं और उन्होंने अपना मुख नीचे कर लिया जिसे देखकर श्रीकृष्ण एवं अन्य सब सखियां हँसने लगीं तब कुन्दलता श्रीराधा से कहने लगीं–

(७२१) सखी राधे ! नेत्रों के सामने स्थित प्रियतम को भी नहीं देख पाती हो और अपनी छाया को ही कोई दूसरा जानकर भ्रमित हो जाती हो। सर्वत्र चन्द्रावली से आशंकित रहती हो। तुम्हारायह प्रणय नृत्य अत्यन्त आश्चर्यजनक है।

ज्योत्सनासीधूं हरिमुखविधोरप्यनल्पं पिबन्तौ नान्तस्तृप्तिं तव कथमपि प्राप्नुतो दृकचकोरौ।
आघूर्णन्तौ मदकलतया सुष्ठु मुग्धौ यदेतौ भूयोभूयस्तमिह वमतो वाष्पपूरच्छलेन।।७२२।।
(उ० १४/८१)

समारम्भं पारस्परिक–विजयाय प्रथयतोरपूर्वा केयं वामघदमन ! संरभ लहरी ?
मनोहस्ती बद्धस्तव यदनया रागनिगडै–स्त्वयाप्यस्याः प्रेमोत्सव नव गुणैश्चित्तहरिणः।।७२३।।
(उ० १४/१५०)

राधाया भवतश्च चित्तजतुनी स्वेदैर्विलाप्यक्रमाद्युञ्जन्नद्रिनिकुञ्जकुञ्जरपते ! निर्धूतभेदभ्रमम्।
चित्राय स्वयमन्वरञ्जयदिह ब्रह्माण्डहर्म्योदरे भूयोभिर्नवराग–हिंगुलभरैः श्रृंगारकरुःकृति।।७२४।।
उ० १४/१५५)

इत्थं दीव्यन्नविकल–कलाशालि–सीमन्तिनीनां नर्मच्छद्माधर–कुचकरस्पर्श–पुष्पार्चनाद्यैः।
वल्लीनां वा किशलय–फलास्वादमत्तः पिकेशो भ्रामं भ्रामं स किल ललितानन्ददं कुञ्जमाप।।७२५।।
(गोवि० १३/११४)

---

(७२२) इसके पश्चात् वृन्दा जी कहने लगीं– हे राधे आपने श्रीहरि के मुखचन्द्र की ज्योत्सना रुपी माधुरी का पान तो कर लिया। अभी तक तुम्हारे नेत्रों को तृप्ति नहीं हो रही और यह निरन्तर घूर्णित होते–होते मुग्ध होकर पुनः–पुनः अश्रु–बिन्दु गिराते हुए मानों उस ज्योत्सना रुपी मधु को बाहर गिरा रहे हैं।

(७२३) कुन्दलताजी विस्मित होकर श्रीकृष्ण से कहने लगी– हे अघदमन ! तुम और श्रीराधा परस्पर एक–दूसरे को जय करने की अभिलाषा से जो दर्शन स्पर्श चुम्बन आदि अपूर्व चेष्टाएं कर रहे हो उससे देखो श्रीराधा ने अपने अनुराग रुपी श्रृंखल द्वारा तुम्हारे मन रुपी मत्त हाथी को बाँध लिया है और तुमने भी अपनी प्रेमोत्सव रुपी नूतन रज्जु से इनके मन रुपी हरणि को बाँध लिया है।

(७२४) श्रीवृन्दा श्रीकृष्ण से कहने लगीं – हे कृष्ण ! हे गोवर्धन गिरि निकुंज के कुंजर राज ! श्रृंगार रस रुपी अपने कार्य में कुशल शिल्पी ने स्वेद अर्थात् भीतर बाहर द्रवित करने वाले सात्विक भावों द्वारा आपके और राधारानी के चित्त रुपी लाक्षा को द्रवित करके इस प्रकार मिलाकर ब्रह्माण्ड रुपी भवन को चित्रित करने के लिए उसके एक नव राग हिंगुल से रंजित कर दिया है।

ललितानन्ददकुंज में मधुपान लीला :–

(७२५) इस प्रकार श्रीकृष्ण चौसठ कलाओं से पूर्ण ब्रजांगनाओं के साथ परिहास करते हुए, नये पत्तों और फलों का बसन्तकाल में रस आस्वादन करके उन्मत्त कोकिल की तरह उनके साथ चुम्बन, आलिंगन, पुष्पार्चन आदि क्रीड़ाएं करते हुए इधर–उधर भ्रमण करते–करते ललितानन्दद कुंज में आ पहुँचे।

अथ ताभिः समो कृष्णो माध्वीकपानकुटिट्मे।
निविष्टः शीतलच्छाये विश्रामसुखमन्वभूत्।।७२६।।

(गोवि० १४/७७)

गोपीनामरविन्दसुन्दरदृशां श्रीकृष्ण पार्श्वद्वया–दारभ्याग्रत एव मण्डलतया तत्रोपवेश–स्थितिम्।
लब्धानां पुरतः सा राजति धृतालंकारपीताम्बरो रत्नालीखचितो यथा हरिमणिः सौवर्णहारान्तरे।।७२७।।

(गोवि० १४/७८)

अथालयः स्वके करे सरोजसञ्चयाद्वरे निधाय पञ्चचामरंत चिता भरैर्मुदामरम्।
निविष्टमत्र कान्तया नितान्तकेलितान्तया न्यवीजयन्निजं प्रियं रुचा जितस्मरश्रियम्।।७२८।।

(गोवि० १४/७९)

गतश्रेमेऽस्मिन् सगणे सखीभिः पादाब्ज सम्वाहन–वीजनाद्यैः।
माध्वीकपूर्णं चषकं पुरस्तात् तयोः समानीय दधार वृन्दा।।७२९।।

(गोवि० १४/८०)

विकसितमनु नृत्यत्खञ्जनाभ्यां विराजत् कनककमलमेकं नीलराजीवमन्यत्।
वरतनु वकरात्रोवः पश्यतोः प्रादुरासीद् दधिचषकमकस्मात् पद्मयुग्मं विचित्रम्।।७३०।।

(गोवि० १४/८१)

---

(७२९) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ब्रजांगनाओं के साथ सुशीतल छायायुक्त मधुपान वेदी में प्रवेश करके विश्राम सुख का अनुभव करने लगे।

(७२७) स्वर्णहार के बीच में जैसे विविध रत्नों से जटित इन्द्रनीलमणि शोभा पा रही हो ठीक इसी प्रकार श्रीकृष्ण के दोनों ओर दांये बायें मण्डलाकार होकर कमलनयना ब्रजसुन्दरीगण विराज गयीं और उनके मध्य में पीताम्बरधारी अलंकारों से सुशोभित श्रीकृष्ण शोभा पाने लगे।

(७२८) अब सखीगण आनन्दसे परिपूर्ण होकर कमलों से भी सुन्दर अपने हाथों में चँवर धारण करके वेदी पर विराजमान वनभ्रमण से परिश्रान्त प्रिया–प्रियतम जो कि अपनी कान्ति से मदन को भी परास्त कर रहे थे व्यजन करने लगी।

(७२९) कुछ अन्य सखीयाँ पाद सम्वाहन चंवर व्यजन द्वारा प्रिया–प्रियतम का श्रम दूर करने लगी तब वृन्दाजी मधु से पूर्ण पानपात्र (प्याला) लाकर श्रीराधा कृष्ण के सामने रख दिया।

(७३०) इसके पश्चात् वरांगी श्रीराधा और श्रीकृष्ण उस मधु के पान पात्र की ओर एक साथ दृष्टिपात करने लगे तो दोनों के नेत्र एक साथ उसमें प्रतिबिम्बित होने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा मानों नृत्य करते हुए दो–दो खंजनों से शोभित एक खिला हुआ कनक कमल और दूसरा नील कमल उन पात्रों में आर्विभूत हो गया हो।

नयनमधुपयुग्मं राधिकायाः प्रलुब्धं झटिति पतितमासीन्नीलपद्मेऽथ तस्मात्।
द्युतिभरमधुपूर्णान्नालमुत्थातुमासीत् कनककमलमध्ये तद्वदेवाच्युतस्य।।७३१।।
(गोवि० १४/८२)

सौन्दर्यं मधुतां मुखं चषकतां माध्वीकमादर्शतां नेत्रद्वन्दमवाप सन्मधुपतां सर्वेन्द्रियं नेत्रताम्।
अन्यांगं जड़तां तयोः सपुलकं चित्तं स्मरोन्मत्ततां सामग्रयेव तदेतरेत्थमभवत् पानक्रियाप्तोन्नतिम्।।७३२।।
(गोवि० १४/८३)

अथाब्रवीत् कुन्दलताम्बुजाननौ पीतं युवाभ्यां मधुपेयमक्षिभिः।
नेत्रोत्पलास्याब्ज–सुवासितं द्वयो रसज्ञया पेयमिदञ्च पीयताम्।।७३३।।
(गोवि० १४/८४)

आदाय निन्ये चषकं बलानुजः पिबेति कान्तावदनाब्ज–सन्निधिम्।
तिर्यङ्मुखी तद्दयितापि लज्जया करेण जग्राह निजेन तत्करात्।।७३४।।
(गोवि० १४/८५)

आवृत्य वक्त्रं वसनाञ्चलेन तन्माध्वीकमाघ्राय सकृत् सुधामुखी।
निजाधरस्पर्श–सुवासितीकृतं समर्पयामास करे प्रियस्य सा।।७३५।।
(गोवि० १४/८६)

---

(७३१) इस समय श्रीराधा के नेत्र रुपी दो भँवर प्रलुब्ध होकर तत्क्षण नील पद्म का मधुपान करने लगे और वहाँ से हटने में असमर्थ हो गये और ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण के नेत्र रुपी भँवर स्वर्ण कमल का मधुपान करने लगे और वहाँ से हटने में असमर्थ हो गये।

(७३२) इस समय श्रीराधाकृष्ण का सौन्दर्य ही मानों मधुस्वरूप मुख ही मानों पानपात्र, मधु ही मानों दर्पण, नेत्र युगल भ्रमर, समस्त इन्द्रियां दर्शनाभिलाषिणी बन गयीं। अन्य सभी अंग पुलक के कारण जड़ हो गये और चित्त मदनोन्मत्तता को प्राप्त हो गये। इस प्रकार के मधुपान में सारी सामग्री ही कुछ अन्य प्रकार की होकर विलक्षणता को प्राप्त हुई।

(७३३) तब कुन्दलता जी श्रीराधाकृष्ण से कहने लगीं– हे कमलनयने श्रीराधा ! हे कमलनयन श्रीकृष्ण ! इस मधु को आपने अपने–अपने नेत्रों से पान कर लिया है अब नेत्र कमलों एवं मुख कमल से सुवासित इस मधु को आप दोनों रसना से पान करो।

(७३४) तब रामानुज श्रीकृष्ण मधु के चषक को अपने हाथ में उठाकर 'हे प्रिये पान करो' ऐसा कहते हुए प्रियतमा श्रीराधा के मुखकमल के निकट चषक को ले गये। तब श्रीराधा ने लज्जा से नतमुखी होती हुई उस चषक को श्रीकृष्ण के हाथ से अपने हाथ में ग्रहण किया।

(७३५) सुधामुखी श्रीराधा वस्त्र के अंचल से अपने वदन को किंचित् आवृत करके लज्जा से नतमुखी होकर केवल एक बार मात्र मधु का आघ्राण करके अपने अधरों के स्पर्श से उसे सुवासित करते हुए प्रियतम श्रीकृष्ण के हाथ में अर्पण कर दिया।

प्रियाटवीवृक्षलतोद्भवं प्रियं प्रियाधर स्पर्श–सुसौरभं मधु।
निज प्रियाली–परिहास–वासितं प्रियार्पितं सस्पृहमापपौ प्रियः।।७३६।।

(गोवि० १४/८७)

दयिता–गुणमेदुरेण तद्–दयितापाणितलेऽमुनार्पितम्।
दयिताधर–वासितं पपौ, दयिताप्यंशुकसंवृताननाः।।७३७।।

(गोवि० १४/८८)

तद्वक्त्रशेषामृतमिश्रितासवैः, पूर्णानि कृत्वा चषकाणि सादरम्।
वृन्दा सवृन्दा सहकुन्दबल्लिका, न्यधादमूषां पुरतः सखीनाम्।।७३८।।

(गोवि० १४/८९)

ताभिः सखीनां चषकेष्वथाग्रतो न्यस्तेषु कृष्णः स्वविचित्र–विद्यया।
पार्श्वेऽखिलानां युगपत् सदक्षिणे नालोकि केनापि परिस्फुरन्नपि।।७३९।।

(गोवि० १४/९०)

सख्यास्ताः केवलं स्वस्य स्वस्यैव पार्श्वमागतम्।
पाययन्तं पिबन्तञ्च मधु तं ददृशुः प्रियम्।।७४०।।

(गोवि० १४/९१)

---

(७३६) यह मधु वृन्दावन की वृक्ष लताओं से उत्पन्न हुआ इसलिए प्रिय है और प्रिया के अधर स्पर्श से सुवासित हुआ और अपनी प्रिय सखियों के परिहास रस से सुरभित हुआ एवं श्रीराधा के हाथ से अर्पित किया गया इसलिए श्रीकृष्ण उसे उत्कण्ठित होकर पान करने लगे।

(७३७) प्रियतमा श्रीराधा के गुणों से अतिशय स्निग्ध हुए श्रीकृष्ण ने तब उसे अपने मुखारविन्द से सुवासित मधु को प्रियतमा के कर कमल में अर्पित किया। श्रीराधा ने अंचल से अपने वदन को आवृत करके प्रियतम के अधरों से सुवासित उस मधु का पान किया।

(७३८–३९) तब वृन्दा देवी ने अपने परिकर और कुन्दलता जी के साथ श्रीराधाकृष्ण के पीने से बचा हुआ मधु उसमें अन्य और मधु मिलाकर उससे सब पात्रों को परिपूर्ण कर दिया और आदर पूर्वक सब सखियों के आगे समर्पित किया। जब वृन्दाजी ने समस्त सखीवृन्द के सम्मुख मधु के चषक रख दिये तब श्रीकृष्ण अपनी विचित्र विद्या से सब सखियों के दाहिनी ओर स्फूर्ति पाने लगे लेकिन कोई उनको देख नहीं पाया।

(७४०) सब सखीवृन्द अपने–अपने समीप विराजमान 'श्रीकृष्ण को मधुपान कराते हुए और स्वयं भी करते हुए' दर्शन करने लगीं।

कादम्बरीमद–विघूर्णित–शोणकोण–प्रोत्फुल्ललोचन–सरोजविराजितानि।
आमोद मोदित निमण्त्रित–षट्पदानि हासेन्दुकान्तिवलिताधर–पल्लवानि।।७४१।।
(गोवि० १४/६२)

कृष्णस्य नेत्ररसनास्वदनीय–भूरि–सौन्दर्यसन्मधुरिमासव–पूरितानि।
तस्यातिपान्मनुतृट् परिपूरणाय वक्ताण्ययुश्चषकतां सुदृशाम् मूषाम्।।७४२।।
(गोवि० १४/६३)

स्मरयुजां सरकाय मृगीदृशां, सरकपानमदोन्मदचेतसः।
सरकतामयिते मुखपंकजे, सरकतां समगादधरो हरेः।।७४३।।
(गोवि० १४/६४)

माध्वीकभेदान् विविधान सवृन्दा, वृन्दाथ वृन्दावन–नाथयोः सा।
नाना विदंशैः सहितान् पुरस्तात् समर्पयामास तथा सखीनाम्।।७४४।।
(गोवि० १४/६५)

तांस्तान् प्रपिबतां तेषां पान–पायनमाधुरी।
नेत्रोन्मदाय वृन्दादेश्चिराय मदिरायते।।७४५।। (गोवि० १४/६६)

(७४१–४२) कादम्बरी (कदम्ब पुष्प के रस) मधुपान करने की मत्तता से विघूर्णित लाल वर्ण के नेत्रों के कोर जिनके ऐसे प्रफुल्लित नेत्रों वाली, जिनकी सौरभ से अलिकुल आमोदित और निमंत्रित हो रहे हैं, जिनकी हास्य चन्द्रिका से अधर पल्लव रंजित हो रहे हैं और श्रीकृष्ण के नेत्र युगल और जिह्वा द्वारा जिनका सौन्दर्य प्रचुर रूप से आस्वादनीय एवं प्रशस्त लावण्य रुपी मधु से परिपूरित गोपीजनों के मुखारविन्द श्रीकृष्ण के पान करने की तृष्णा को बढ़ाते हुए मानों पान पात्र बन गये।

(७४३) जहाँ मधुपान के मद से उन्मत्त चित्त श्रीकृष्ण के मधुपानार्थ कामोन्मत्तता मृगनयनी व्रजसुन्दरियों के मुखारविन्द पान पात्र बन गये वहाँ दूसरी ओर श्रीकृष्ण के अधर भी मृगलोचनाओं के पान पात्र बन गये अर्थात् श्रीकृष्ण प्रियागनों के वदन कमल का मधुपान करने लगे और वे भी श्रीकृष्ण के अधरामृत का पान करने लगीं।

(७४४) तत्पश्चात् वृन्दाजी वनदेवियों के साथ श्रीराधाकृष्ण और सखीगणों के सम्मुख नाना प्रकार के विदंश (मधुपान के पश्चात् अन्य भोज्य वस्तु) और उसके साथ अन्य प्रकार के मधु समर्पित किये।

(७४५) तब वृन्दाजी द्वारा प्रस्तुत किये गये विदंश के सहित अन्य–अन्य प्रकार के मधु श्रीकृष्ण गोपीगनों को परस्पर पान कराने लगे और स्वयं भी करने लगे। इससे जो एक अपूर्व माधुर्य उत्पन्न हुआ वह वृन्दा प्रवृत्ति सखीगण चिरकाल तक अपने नेत्रों को उन्मत्त करने वाली मदिरा के समान पान करने लगीं।

अविरत मधुपाने स्वादुकान्ताधरोष्ठं सततमधरपाने मध्वभूत्तद्विदंशः।
मदनमधूमदाभ्यां तृष्णया पानभाजां मिथ इह मिथुनानां निश्चयो नास पाने।।७४६।।

(गोवि० १४/६७)

माधवागत्यनंगोत्थैर्मदैर्माधवपानजैः।
माधवस्पर्शजैश्चासन् व्याकुलास्ता वरांगनाः।।७४७।।

(गोवि० १४/६८)

स्खलित–वसन–भूषांगद्यसम्भालनं यत् स्फुट हसितमकाण्डेऽप्रशन पूर्वोत्तरञ्च।
प्रलपितमनिदानं चोत्थितं बल्लवीनां प्रथयति मदमन्तवारुणीपानजंतत्।।७४८।।

(गोवि० १४/६९)

निधुवन मनु पूर्वं यत् प्रियेण प्रियाणां स्खलनमयनवासः केशवाचां विधेयम्।
मधुमद इह कुर्वस्तादवधूनामभूषा–मकुरुत मुरशत्रोः प्रीति साहाय्यमस्य।।७४९।।

(गोवि० १४/१००)

---

(७४६) इसके पश्चात् निरन्तर मधुपान से कान्ताओं के सुस्वादु अधरोष्ठ मानों विदंश और सतत् अधरामृत पान के पश्चात् मधु ही मानों विदंश स्वरूप हो गया। मदन मद और मधुमद दोनों की उन्मत्तता के कारण उत्पन्न हुई तृष्णा से श्रीकृष्ण और ब्रजसुन्दरी पारस्परिक अधर और मधुपान करते हुए यह निश्चय नहीं कर सकीं कि कौन सा मधु है कौन सा विदंश ? कौन कान्ता है कौन कान्त ? यह कुछ भी ज्ञान नहीं रहा।

(७४७) इस समय बसन्त ऋतु के समागम से मदजनित मद, मधुपान निमित्त मद एवं श्रीकृष्ण स्पर्श संजात मद, इन तीनों मदों से उत्तमांगी व्रजसुन्दरीगण अत्यन्त व्याकुल हो उठीं।

(७४८) अंग–प्रत्यंग से वस्त्राभूषण स्खलित हो गये तो भी अज्ञानवश उनके प्रति दृष्टिपात न करते हुए हँसी का कारण न होते हुए भी असमय उच्च हास्य प्रश्न न होते हुए भी उसका उत्तर देना कारण न होते हुए भी प्रलाप करना, वारुणि पान की मत्तता के कारण ब्रजांगनाओं में यह सब लक्षण प्रकाश पाने लगे।

(७४९) मधुपान जन्य मत्तता से रहस्य लीला में प्रथम प्रियतम द्वारा प्रियाओं के प्रति गमन, वस्त्र, केश और वचन आदि का स्खलन दिखायी देता है लेकिन यहाँ मधुपान की मत्तता से यह सब व्यवहार से गोप सुन्दरियों में सम्पन्न होने लगा जो कि श्रीकृष्ण की प्रीति की वृद्धि करने लगा।

उक्तौ लोहलतागतौस्खलितता केशांशुकेस्रस्तता–नेत्रान्तेऽरुणता मुखे सुरभिता नेत्रे तथोद्घूर्णता।
नर्मोक्तौ स्फुटता दृशि भ्रमितताततकृतौ घृष्टता या यासीत् सुदृशां तदा त्रिसरकोत्पन्नाधिनोत् सा प्रियम्।।७५०।।

(गोवि० १४/१०१)

कृष्णे ब्रजाम्बुजदृशां हृदि गाढ़रागो नारीस्वभावजह्रिया विनिगूहितो यः।
आडम्बरं मधुमदस्य न सोढूमीशो नेत्रोत्पलेषु बहिरेत्य चकार वासम्।।७५१।।

(गोवि० १४/१०२)

नवेन मधुपानेन काच्चिन्नवकिशोरिका।
मदोद्रेकाद्भ्रान्तनेत्रा प्रललापातिविह्वला।।७५२।।

(गोवि० १४/१०३)

ल ल ल ललिते ! प प प पश्य राधाच्युतौ स स स सह वो म म म मण्डलैर्भ्राम्यतः।
वि वि वि विपिनं म म म मही च ताभ्यां समं ग ग ग गगनं ल ल ल लम्बते हा कथम्।।७५३।।

(गोवि० १४/१०४)

---

(७५०) अब उनके वचनों में गद्‌गद्ता, गति में स्खलता, केश और वस्त्रों की अस्त व्यस्तता, नेत्रों में अरुणता, मुखारविन्द में सुगन्धता, नेत्रों में उद्‌घूर्णिता, परिहास वचनों में प्रस्फुटता, दृष्टि निक्षेप में भ्रमितता और समस्त कार्यों में घृष्टता, इस प्रकार सुलोचना ब्रजांगनाओं की तीन प्रकार के मधु (वृक्ष से उत्पन्न, गुड़ और पुष्पों के रस से उत्पन्न) से उत्पन्न चेष्टाएं श्रीकृष्ण के मन को सन्तोष प्रदान करने लगीं।

(७५१) ब्रजवासिनी कमलनयना ब्रजगोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति जो गाढ़ अनुराग वह स्त्री स्वभाव के कारण लज्जावश हृदय में गूढ़ भाव से छिपा रहता था किन्तु आज उस लज्जा ने मधुमद का आडम्बर न सहन करते हुए बाहर आकर नेत्र कमलों में वास कर लिया।

(७५२) और कोई एक नवीना किशोरी जिसने प्रथम बार मधुपान किया अत्यन्त मत्तता के कारण उद्‌भ्रान्त नेत्रा और अत्यन्त विह्वला होती हुई इस प्रकार प्रलाप करने लगी।

(७५३) प्रलाप इस प्रकार– ललिते देखो राधाकृष्ण तुम्हारे मण्डल के साथ घूम रहे है यह वन पृथ्वी और राधा कृष्ण के साथ आकाश भी मानों उड़ा जा रहा है हाय ! यह क्या हो गया! इस वाक्य में ललिते शब्द में तीन बार 'ल' शब्द का प्रयोग 'पश्य' अर्थात् देखो इसमें 'प' का तीन बार प्रयोग 'सह' अर्थात् सहित इसमें 'स' का तीन बार प्रयोग 'विपिन' में 'वि' का तीन बार प्रयोग 'यही' में 'य' का 'गगन' में 'ग' का और लम्बते में 'ल' का तीन–तीन बार प्रयोग करके प्रलाप वाक्यों का उच्चारण करने लगी।

हा कष्टं द्यौः प पतति कथं हन्त घू घूर्णते भूर्नाथ ! त्वं मां ध धर पतितां कम्पते गात्रयष्टिः।
इत्थं वृद्ध स्खलित–ह्रसितैरक्षरैर्व्याहरन्ती त्रासात् काचिद् भुजलतिकया कृष्णकण्ठं दधार।।७५४।।
(आ० २०/१६५)

अंकांकि स्खलनं कराकरि मनःसंवाद–संवेदनं कर्णाकर्णि वृथाकथासु युगपच्चुम्बाः शतं गण्डयोः।
स्कन्धास्कन्धि भुजौ मुखामुखि मुहुर्माध्वीक पानक्रमे राधामाधवयोर्मधौ मधुमदक्रीड़ा जरीजृम्भते।।७५५।।
(अ० ५/१५)

आलि प्रेयान् हरिरतिशठः कृष्ण ! मे संप्रसीद श्यामे स त्वामभिसरति किं नाथ ! दासी तवास्मि।
इत्येन्योन्य प्रकृतिविकृतिभावेतेनन्वीतोक्ती राधाकृष्णौ मधुमदमुदा मोहितौ वः पुनीताम्।।७५६।।
(अ० ५/१७)

करोति नादं मुरली रली रली ब्रजांगनाह्नन्मथनं थनं थनम्।
ततो विदूना भजते जते जते हरे ! भवन्तं ललिता लिता लिता।।७५७।।(उ० ११/८८)

---

(७५४) राधारानी मधुपान जन्य मत्तता से परवश होकर कहने लगीं– हाय हाय ! आकाश क्या 'प' पतित हो रहा है ? पृथ्वी क्या 'घू' घूर्णित हो रही है ? मेरी देह कम्पित हो रही है, मैं गिर जाऊँगी हे नाथ ! मुझे संभालो। इस प्रकार त्रासवश कभी अधिक अक्षरों का कभी स्खलित अक्षरों का कभी अल्प अक्षरों का प्रयोग करके बोलती हुई श्रीराधा ने श्रीकृष्ण के कण्ठ में अपनी भुजाओं को डालकर उन्हें पकड़ लिया।

(७५५) राधामाधव की यह मधुपान जनित क्रीड़ा कितने आश्चर्य रूप से उत्कर्ष को प्राप्त हुई परस्पर दोनों एक–दूसरे के अंक में गिरने लगे। एक दूसरे के कर स्पर्श से परस्पर ह्दय के भाव व्यक्त करने लगे। एक–दूसरे के कानों से लगकर निरर्थक बात करने के बहाने से गण्डस्थल पर शत् संख्य चुम्बन करने लगे, एक दूसरे के कन्धे पर एक दूसरे की भुजाएं रखते हुए अपने–अपने मुखों को पास लाकर मधु पिलाने लगे।

(७५६) श्रीराधा और श्रीकृष्ण दोनों ही मधुमद से उत्पन्न प्रमोद से विमोहित हो रहे थे और अपने–अपने स्वभाव को भूलकर असंगत वचनों का उच्चारण करने लगे– श्रीराधा–कृष्ण को राधिका समझकर उन्हें कहने लगीं– अरी सखी प्रियतम श्रीकृष्ण अत्यन्त शठ हैं और इधर श्रीकृष्ण राधिका को कृष्ण समझकर कहने लगे– हे कृष्ण ! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ। पुनः राधिका उसी भाव में कहने लगीं – अयि शाम्य राधिके श्रीकृष्ण क्या तुमसे मिलने के लिए आये हैं ? अब श्रीकृष्ण कहने लगे – हे नाथ ! मैं आपकी दासी हूँ। दोनों ही इस प्रकार विचित्र और मुग्धभाव से आचरण करते हुए हम सबको पवित्र करें।

(७५७) मधुपान से उन्मत्तता श्रीराधा कहने लगीं– कृष्ण ! मैं समझ गयी हूँ तुम्हारी मुरली से उन्मत्त होकर ब्रजांगनाओं का ह्रदय मथित हो गया है इसीलिए ललिता व्यथित चित्त से तुम्हारा ही भजन करने को प्रवृत्त हो गयी है। इस वाक्य में श्रीराधा मुरली के स्थान पर रली रली मथन के साथ घन घन ललिता के साथ लिता लिता और भजते के साथ जते जते कुछ व्यर्थ के शब्दों का प्रयोग करने लगीं।

विसृत्वरामोद–विकृष्टभृंग–विकस्वराम्भोजविनिन्दिवक्त्रः।
मध्वासवेष्टाधर सीधूपान, प्रोद्बुद्धकन्दर्पमदातिलोलः।।७५८।।

(गोवि० १४/१०५)

अन्तर्विलोलालिसमीरवेल्लत्, प्रोत्फुल्लरक्तोत्पलजैत्रनेत्रः।
ललास लोलोल्ललनासु धृष्णक्, कृष्णः सतृष्णालिरिवाब्जिनीषु।।७५९।।

(गोवि० १४/१०६)

मदेरिताभ्यामथ तौ सखीभ्यां, रिरंसयान्तश्चसुषुप्सया च।
निषेवितावासतुरालिपालिः, सुषुप्सया केवलयाञ्चितासीत्।।७६०।।

(गोवि० १४/१०७)

तयोर्मदात्पन्ननिगूढ़लीला, स्पृहाविदः प्रेरणयाथ कौन्द्याः।
कान्तावतंसार्थमशोकपुष्प, गुच्छाय गच्छत्यरविन्दनेत्रे।।७६१।।

(गोवि० १४/१०८)

कान्तापि घूर्णापरिपूर्णिताक्षी, सेवापरालीतति–सेव्यमाना।
निकुञ्जकुञ्जाभिध–कुञ्जराजे, सुष्वाप पुष्पावलीतल्पभाजि।।७६२।।

(गोवि० १४/१०९)

(७५८–५९) इसके पश्चात् पद्मिनी गोपांगनाएं सतृष्ण भ्रमर के समान श्रीकृष्ण के साथ विलास करने लगीं। अहो ! इस विलास का कितना माधुर्य जो कि दूर–दूर से इस सुगन्धि से समाकृष्ट होकर भ्रमरों के समूह ने उन्हें परिव्याप्त कर लिया। उनके मुख खिले हुए कमल की अपेक्षा भी अत्यन्त शोभा युक्त, मधु और श्रीकृष्ण अधरामृत पान से उठे हुए काममद से अत्यन्त चंचल और उनके नेत्रों के मध्यभाग मानों भ्रमरों द्वारा और वायु से चलायमान हुए लाल कमल की शोभा को भी परास्त करने वाले थे।

(७६०) इसके पश्चात् श्रीराधाकृष्ण मद प्रेरित रमणइच्छा और शयन इच्छा दोनों सखियों द्वारा सेवित होते हुए अर्थात् उनके हृदय में रमण और शयन की इच्छा का उदय हुआ लेकिन अन्यान्य सखियों में केवल शयन की इच्छा का ही उदय हुआ।

(७६१–६२) इसके पश्चात् श्रीराधाकृष्ण की निगूढ़ लीला के रहस्य को सम्यक प्रकार से जानने वाली कुन्दलता की प्रेरणा से पंकजनयन श्रीकृष्ण श्रीराधा के कर्ण भूषणों के लिए अशोक पुष्प के गुच्छ लाने के लिए गये और इधर श्रीराधा ने घूर्णित नेत्रों से युक्त सेवा परायणा सखीगनों से सेवित होती हुई विविध कुसुमों से रचित शैय्या पर 'निकुंज नामक ललितानन्दद कुंज में गमन करके शयन किया'।

गन्धोत्तमाः परिमलाधिकवासितोद्य–ज्जृम्भोद्गमास्यकमलागलदम्बरांगयः।
घूर्णायमान–नयना– शयनाभिलाषाः सख्योऽप्ययुस्तत इतः स्खलिताङ्घ्रिपाताः।।७६३।।

(गोवि० १४/११०)

तल्पोपकल्पनगृहीतद्लालिकञ्ज–किंजल्कधूलि–परिपिंजरितान्तरेषु।
सम्वर्त्तिकाब्जदलपल्लवपुष्पतल्प–पुञ्जेषु चञ्चदलिगुञ्जित मञ्जुलेषु।।७६४।।

(गोवि० १४/१११)

गुञ्जावलीकुसुममञ्जरीचित्रितेषु ताम्बूलगन्धजलभाजनराजितेषु।
कुंजेषु कंजवदना मदखञ्जनाक्ष्यः सर्वाः पृथक्पृथगिताः सुषुपुर्वयस्याः।।७६५।।

(गोवि० १४/११२)

कंकेल्लि–पल्लवकतल्लज–कर्णपूरः कंकेलिवल्लि–नवकस्तवकाञ्चि पाणिः।
तत्रागतोऽथ स हरिः प्रविवेश तूर्णं वृन्दादृशोदित–निकुञ्जसरोजमुत्कः।।७६६।।

(गोवि० १५/१)

राधा सुरधुनीं प्राप्ते कृष्णमत्तमतंगजे।
उड्डीयापस साराली–मरालीपालिरञ्जसा।।७६७।।

(गोवि० १५/२)

---

(७६३) तब उत्तम अंग गन्ध युक्ता अन्यान्य सखी भी जिनकी जम्भाई से मुख से अत्यन्त सुगन्धित मुखारविन्द शोभा पा रहा था। वे भी निद्रा से घूर्णित नयना इधर–उधर लड़खड़ाते हुए पग रखते हुए शयन की अभिलाषा से अन्यान्य कुंजों में चली गयीं।

(७६४–६५) जिन समस्त कुंजों के बीच शैय्याओं की रचना के लिए सुकोमल पत्र, कमल की केशर और उसके सूक्ष्म रेणु, कमल के दल, अन्यान्य नवीन पल्लव पुष्पों से युक्त समस्त सामग्री सजाकर रखी गयी है, जो कुंजें भ्रमर श्रेणी द्वारा गूँज रही हैं, गुंजा और पुष्पों की कलियों से चित्रित हैं, जहाँ ताम्बूल चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ सुरभित जल से पूर्ण पात्र रखे हुए हैं ऐसी कुंजों में जाकर पद्म वदना खंजनाक्षी समस्त सखियों ने शयन किया।

निकुंज सरोज–कुंज में प्रवेश एवं शयनादि लीला विलास :–

(७६६) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण अशोक वृक्ष के खिले हुए पत्तों के कर्णभूषण एवं अशोक वृक्ष के अभिनव कुसुम गुच्छ को हाथ में धारण किये हुए उत्सुक चित्त से आ रहे थे तब वृन्दाजी ने इंगित से उन्हें निकुंज सरोज नामक कुंज में प्रवेश करने को कहा।

(७६७) श्रीराधा रुप सुर धनी को प्राप्त करके कृष्ण रुपी मत्त हस्ति को देख सखी श्रेणी रुपी हंसिनियों का दल उड़कर दूर चला अर्थात् वे अन्य स्थान को चली गयीं।

पिबन्नसौ लोचन–पुष्करेण, लावण्यरूपामृतमम्बुजाक्ष्याः।
व्यदालयत् कञ्चुकशैवलं श्री, करेन नीवी नलिनीञ्च लोलः।।७६८।।

(गोवि० १५/३)

कान्तापि तन्द्राविनिमीलिताक्षी, स्वप्ने ददर्श प्रियमन्तिकाप्तम्।
नीवीकुचाकर्षणयत्नवन्तं, तं वारयन्ती प्रललाप वाम्यात्।।७६६।।

(गोवि० १५/४)

म म म मापि पि पि स्पृश मां हरे ! कि कि कि किं वि विधातुमिहच्छसि।
श शयितुं द द देहि मम क्षणं क कलिताक्षियुगास्मि घू घूर्णया।।७७०।।

(गोवि० १५/५)

स्मितरुदित–विमिश्रं गद्गदास्पष्टवर्णं रमणमनु तदेति व्याहरन्ती कराभ्याम्।
प्रियकरमतिलोलं वारयन्ती प्रबुद्धा प्रियमथ तमपश्यत् स्वञ्च तादृक्क्रियं सा।।७७१।।

(गोवि० १५/६)

मीलितोन्मीलिताक्षी सा स्मरमाध्वीकमादिता।
स्वप्नजागरयोरासीत् समवाक्चेष्टितादिका।।७७२।।

(गोवि० १५/७)

---

(७६८) तब श्रीकृष्ण के नयन कमल श्रीराधा रुप का लावण्यामृत पान करने लगे और चंचल चित से श्रीहस्त द्वारा कंचुक रुपी शैवाल और नीवी रुप नलिनी को अपसारित करने लगे।

(७६६) इधर प्रियतमा श्रीराधा तन्द्रावश निमिलिताक्षी, स्वप्नावस्था में प्राणकान्त को समीप देख नीवी आदि स्पर्श करते जान वाम्य भाव से निवारण करती हुई प्रलाप करने लगी।

(७७०) मुझे स्पर्श मत करो हे कृष्ण तुम क्या करना चाहते हो ? मुझे सोने दो एक क्षण के लिए, घोर निद्रा से मेरे नेत्र मुदित हो रहे हैं। इसी प्रकार मापि में 'म' शब्द का तीन बार प्रयोग किं में 'कि' शब्द का तीन बार प्रयोग देहि में द द का दो बार प्रयोग और कलित में 'क' का और घूर्णया में 'घ' का एक एक वर्ण अधिक उच्चारण करती हुई मत्तता के कारण प्रलाप करने लगीं।

(७७१) श्रीराधा निद्रितावस्था में ही मृदु मन्द हास्य, रोदन, गद्गद, अस्फुट वर्ण विन्यासपूर्वक हस्त–पद का संचालन करते हुए प्रियतम को निषेध करने लगी। तदनन्तर स्वयं जाग्रत होकर भी प्रियतम को उसी प्रकार चेष्टा करते देख हास्यादि सहित उनका हस्त निवारण करने लगीं।

(७७२) इस प्रकार निन्द्रा भंग होने पर भी श्रीराधा अपने नेत्रयुगल खोलकर कन्दर्प और मधुपान से उन्मत्ता होती हुई स्वप्न एवं जागरण दोनों अवस्थाओं में एक जैसी वाक्य और चेष्टा करने लगीं।

धृतेपाणिद्वन्दे झटिति झणितं रत्नवलयैर्हृते नीवीग्रन्थौ मुखरितममन्दं रसनया।
प्रियायाः स्वानन्द–प्रतिहतधियः किन्त्वपघनो घनोतृष्णं कृष्णं प्रति समतनोर्त्तजनमिव।।७७३।।
(अ० ५/१३)

प्राग् दोर्मण्डली पीड़नोद्धुरधियः प्रोद्दामवैजात्यया निर्बन्धादधरामृतानि पिबतः सीत्कारपूर्णास्यया।
कन्दर्पोत्सव–पण्डितस्य मणितैराक्रान्तकुञ्जान्तया सार्द्धं राधिकया हरेर्निधुवनक्रीड़ाविधिर्वर्धते।।७७४।।

राधायाः स्तनमण्डले हरिपरीरम्भेण दम्भोद्धुरं व्याप्ता स्वर्णधराधरं जलधरारम्भोऽद्य भूयानभूत्।
स्वस्थानं परिहृत्य कौस्तुभमणिव्याजेन निर्वाणदं स्थातुं सम्प्रति नूनम्ररमणिस्तत् सन्धिमभ्याविशत्।।७७५।।
(रति० ५/६२)

प्रत्यूहः पुलकांकुरेण निविड़ाश्लेषे निमेषेण च क्रीड़ाकूतविलोकितेऽधरसुधापाने कथानर्मभिः।
आनन्दाभिगमेन मन्मथकलायुद्धेऽपि यस्मिन्नभू–दुदभुतः स तयोर्वभूव सुरतारम्भः प्रियम्भावुकः।।७७६।।
(गी० १२/१०)

---

(७७३) हाथों के चलाने से राधारानी के रत्न वलय (चूड़ी आदि) झन्–झन् शब्द करने लगे। नीवी की ग्रन्थि खुल गई। मेखला धीरे–धीरे शब्द करने लगीं। प्रियतमा श्रीराधा की बोध शक्ति आनन्द के अतिशय वेग से अभिभूत हो जाने पर भी वे अपने श्रीअंग द्वारा तृष्णातुर श्रीकृष्ण को निवारण करती हुई तर्जन करने लगी।

(७७४) प्रथम तो श्रीकृष्ण उनका बाहुयुगल द्वारा पीड़न (अर्थात् आलिंगन) करने को उद्यत हुए जिससे श्रीराधिका भी लज्जा को त्यागकर उनका प्रगाढ़ आलिंगन किया। श्रीकृष्ण ने आग्रह पूर्वक उनका अधरामृत पान किया तब श्रीराधारानी के मुख से निकलती हुई सीत्कार ध्वनि मानों कन्दर्पोत्सव की वृद्धि करने लगी और यह ध्वनि कुंज के भीतर मुखरित होने लगी। इस प्रकार श्रीराधा के सहित श्रीहरि की रति क्रीड़ा वृद्धि को प्राप्त होने लगी।

(७७५) श्रीराधारानी के स्तन मण्डल पर श्रीहरि का आलिंगन इस प्रकार शोभा दे रहा था मानों आज स्वर्णाचल को किसी नवीन मेघ ने घेर रखा हो और सूर्य मानों कौस्तुभ मणि के छल से अपने स्थान का परित्याग करके किसी एकान्त में रहने के लिए स्वर्णाचल और जलधर के बीच में प्रवेश कर रहा हो।

(७७६) बाहुपाश से आलिंगन क्रीड़ा कौतुक वश वे नेत्रोन्मलिन अधुरामृत पान, परिहास वाक्य, रति क्रीड़ा में विघ्न स्वरूप होने पर भी यहाँ दोनों के सुरत व्यापार में अतिशय सुख का विधान करने लगे।

दोर्भ्या संयमितः पयोधरभरेणापीड़ितः पाणिजैराविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः।
हस्तेनानमिताः कचेऽधरसुधापानेन सम्मोहितः कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः।।७७७।।
(गी० १२/११)

माराङ्के रतिकेलिसंकुलरणारम्भे तया साहस–प्रायं कान्तजयाय किंचिदुपरि प्रारम्भि यत् सम्भ्रमात्।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलता दोर्वल्लिरुत्कम्पितम् वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिध्यति।।७७८।।
(गी० १२/१२)

मीलदृष्टि मिलत्कपोलपुलकं सीत्कारधारावशादव्यक्ताकुलकेलिकाकू–विकसद्दन्तांशुधौताधरम्।
श्वासोन्नद्धपयोधरोपरि परिष्वंगी कुरंगीदृशो हर्षोत्कर्षविमुक्ति निः सहतनोर्धन्यो धयत्याननम्।।७७६।।
(गी० १२/१३)

तदास्याः श्रीभालं श्रमसलिल लोलालकवृतं नितम्बो निस्पन्दः स्तनयुगलमुच्छ्वास–चपलम्।
भुजद्वन्दं मन्दं नयनयुगमामीलितमभूत्पराभूतेतीयं समिति दयितानन्दमतनोत्।।७८०।।
(गोवि० १५/२१)

---

(७७७) श्रीराधा की बाहुलता पाश में श्रीकृष्ण आबद्ध, पयोधर–भार से प्रपीड़ित, नख चिह्नों से अंकित दशनाघात अधरक्षत और श्रौणितट से ताड़ित होते हुए शोभा पाने लगे। श्रीराधारानी अपने हस्त द्वारा प्रियतम के केशों का स्पर्श करने लगीं, और अधर सुधापान से विमोहित हो गयीं। इस प्रकार की सुरत क्रीड़ा से कान्त श्रीकृष्ण अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। काम की गति कुछ ऐसी ही विचित्र और कुटिल है।

(७७८) रति केलि के इस संग्राम में प्रियतम को परास्त करने के लिए श्रीराधिका ने उनके वक्षस्थल पर जो केलि आरम्भ की उसके परिश्रम से उनके जघन स्थल कम्पित, बाहु युगल शिथिल, चक्षु निमिलित होने लगे। स्त्री जाति का पौरुष रस कैसे सिद्ध हो सकता है।

(७७६) श्रीराधारानी के स्तनयुगल श्वास उच्छवास से स्फीत हो उठे। उस समय धन्य उस वक्ष स्थल का श्रीकृष्ण आलिंगन करने लगे। अतिशय सुख से श्रीराधा की देह जब चेष्टाहीन हो गयी तब वे बार–बार उनका मुख चुम्बन करने लगे तब उस मुख की अद्‌भुत शोभा हो उठी। उनके दोनों नेत्र बन्द हो गये, कपोल प्रदेश पुलकित हो उठे। वे सुख से आकुल हो उठीं और अस्फुट ध्वनि करते हुए दन्तपंक्ति की शुभ्र ज्योत्सना से अधरों को उज्जवल करने लगीं।

(७८०) श्रीराधारानी का ललाट देश श्रमबिन्दुओं से और चंचल अलकावलि से युक्त, नितम्ब स्पन्दनहीन स्तन युगल उच्छवास से चपल, भुजद्वय गतिहीन और नेत्र युगल अर्द्धोन्मीलित होती हुई कन्दर्प युद्ध में मानों परास्त होकर श्रीकृष्ण के आनन्द का विस्तार करने लगीं।

श्रमजलकणदिग्धस्निग्धनिस्पंदमूर्त्तीर्गलितवसनभूषाकल्पतल्पप्रजल्पा।
प्रियहृदि पतितांगी राधिका मीलिताक्षी स्थिरतड़िदिव नव्याम्भोधरे सा व्यराजीत्।।७८१।।

(गोवि० १५/२३)

अस्याः श्वासोच्चलत्तुन्दं मुहुः कृष्णोदरं स्पृशत्।
किमानन्दजडं स्तस्याः सेवायै चेतयत्यमुम्।।७८२।।

(गोवि० १५/२४)

दीव्यत्तदात्वोदित–माधूरीणां, स्पर्शेक्षणेच्छा दयितांगकानाम्।
समागतालीव हरेर्मृगाक्ष्या, ग्लानिस्तदैका तनुसेविकासीत्।।७८३।।

(गोवि० १५/२५)

ताभ्यान्तु सन्ध्यौ विहिते तदा तयोः प्रेम्णा प्रियायाः स्वकराम्बुजन्मना।
उत्थाय चक्रे श्रमतोयमार्जनं कैश्यालकाल्यम्बरसंवृतिञ्चसः।।७८४।।

(गोवि० १५/२६)

---

(७८१) श्रीराधारानी का श्रीअंग कन्दर्प युद्ध के कारण श्रम जनित स्वेद बिन्दुओं से लिप्त, अति स्निग्ध और स्पन्दनहीन हो गया। उनके अंग से वसन भूषन तथा अन्य वेश विगलित हो गये और गद्गद् भाव से अस्फुट वचन बोलते–बोलते प्राण कान्त के अंग में अपने अंग को विन्यस्त कर किंचित निद्रा से नयनों को कुछ मुद्रित सा करते हुए नवजलधर के अंग में स्थिर सौदामिनी की भाँति शोभा पाने लगी।

(७८२) श्रीराधारानी का उदर पुनः पुनः लम्बी श्वास के कारण कुछ ऊँचा उठता हुआ श्रीकृष्ण के उदर को स्पर्श करने लगा मानों वह श्रीराधा की सेवा करने के लिए आनन्द से शिथिल हुए श्रीकृष्ण को जगाने लगा।

(७८३) श्रीराधा का तत्कालीन उत्पन्न माधुर्य युक्त अंग–प्रत्यंग के स्पर्श और दर्शन की जो अभिलाषा श्रीकृष्ण के अन्तःकरण में उत्पन्न हुई, उससे वे श्रीराधारानी के अंग की भले ही सेवा करने लगे हों लेकिन मृगाक्षी श्रीराधिका को जो उस समय ग्लानि उत्पन्न हुई वही मानों उनकी अंग सेविका बन गई।

(७८४) तत्पश्चात् श्रीकृष्ण द्वारा श्रीराधा के अंग प्रत्यंग का स्पर्श और दर्शन की इच्छा एवं श्रीराधा की ग्लानि इन दोनों सेविकाओं द्वारा मिलकर श्रीकृष्ण ने उठकर अपने कर कमल से प्रेमपूर्वक श्रीराधारानी के श्रम बिन्दुओं का मार्जन किया और उनकी अलकावलि और वसन इत्यादि को ठीक से सुसज्जित करने लगे।

संप्रार्थितो वपुरलंकृतये तया तां नैच्छत् स तां विहसितुं पुरतः सखीनाम्।
आम्रेड़ितः पुनरिमां विदधन्निषिद्ध–स्तत्स्पर्शसम्भदज–विभ्रमयानयोचे।।७८५।।

(गोविं० १५/२७)

मया किं भूषायै त्वमसि रमण ! प्रार्थित इह त्यज व्यर्थां श्रान्तिं विरम नहि भूषा मम मुदे।
न चाहं शक्तालंकरणचयभारस्य वहने दुनोत्युद्घूर्णा मां क्षणमवसरं देहि शयितुम।।७८६।।

(गोविं० १५/२८)

इति गदितमरन्दं प्रेयसीवक्त्रपद्मात् दरहसित सुरम्यन्मीलितोन्मीलिताक्षात्।
हरिरथ स निपीयास्पष्ट वर्णात्तदासी–दुदितमदन–मत्तः सस्मितो विस्मितश्च।।७८७।।

(गोविं० १५/२६)

शिरोत्तंसादि–चरणांगुलीयान्त–विभूषणैः।
विभूष्य तां हरिः पश्चात्तयासीतैर्विभूषितः।।७८८।।

(समाहर्त्तुः)

तावत्तयोः सेवनमात्र–सौख्याः प्रतीक्षमाणाः समयं बहिष्ठाः।
सेवोपचारान्वित–पाणिकञ्जाः, कुञ्जालयं ता विविशुः प्रियाल्यः।।७८६।।

(गोविं० १५/३०)

---

(७८५) इसके पश्चात् श्रीराधारानी अपने अंगों को विभूषित करने के लिए श्रीकृष्ण से निवेदन करने लगीं लेकिन जब वे उन्हें अलंकृत करने लगे तब वे अपनी अनिच्छा प्रगट करने लगी और श्रीकृष्ण के स्पर्श जनित हर्ष से 'विभ्रम भाव' को प्रकट करती हुई उन्हें निषेध करने लगीं।

(७८६) हे रमण ! मैंने क्या भूषण आदि धारण कराने की आपसे प्रार्थना की है ? आप इस श्रम का त्याग करो मुझे क्षमा करो। अब यह वेशभूषा मुझे रुचिकर नहीं है क्योंकि मैं अलंकारों का भार वहन करने में असमर्थ हो गयी हूँ।

(७८७) इस प्रकार श्रीकृष्ण तृष्णातुर होते हुए प्रेयसी के हास्य रोदनवश सुरम्य और अस्फुट वचनामृत रुपी मधु को पान कर उन्मत्त हो गये। वह ईषत् हंसते हुए विस्मित से हो गये।

(७८८) तब श्रीहरि ने शिरोभूषण से लेकर चरणों के भूषणों तक श्रीराधिकाजी को विभूषित कर दिया और तत्पश्चात् श्रीराधा ने भी श्रीकृष्ण को इसी प्रकार नखशिख पर्यन्त विभूषित कर दिया।

(७८६) श्रीराधाकृष्ण की सेवा ही एक मात्र जिनका सुख है, ऐसी सेवा परायणा प्रिय सखी सकल सेवा के समय की प्रतीक्षा करती हुई कुंज के बाहर खड़ी थीं। अब वे उनकी सेवोपयोगी ताम्बूल आदि वस्तुएं हाथों में ग्रहण करती हुई कुंज भवन के भीतर आ गई।

ताम्बूल–शीतलजलामलगन्ध–मालैः पादाम्बुजादि–मृदुमर्दन–बीजनादैः।
ताभिर्निषेवितपदौ प्रणयोन्मदाभि–रामोदमापतुरलं विगतश्रमौ तौ।।७६०।।

(गोवि० १५/३१)

साकूत सस्मित दृशा प्रियमीरयन्ती कान्ताब्रवीत् प्रिय ! न शर्म लभे विना याः।
कुञ्जेषु कञ्जवदना मदविह्वलांगयः सख्यः स्वपन्ति रमणानय ताः प्रबोध्य।।७६१।।

(गोवि० १५/३२)

तदनिच्छन्नर्मणासौ प्रियया मुहुरर्थितः।
निर्ययौ ता रमयितुं मत्तेभ इव पद्मिनीः।।७६२।।

(गोवि० १५/३३)

कृष्णश्चक्रे मनसि ललितां यामि किंवा विशाखा–मादौ चित्रामिति स निखिला भावयंस्ताः प्रियालीः।
गच्छन् हर्षाद्युगपदखिले प्राविशत् कुञ्जवृन्दे आत्मानं ते निज विरचिते जीवदेहे यथैकः।।७६३।।

(गोवि० १५/३४)

तासां कुञ्जेषु सर्वासां तेन लीला मनोहरा।
स्वप्नजागरयोरासीद् यूथेशाया यथा पुरा।।७६४।। (गोवि० १५/३५)

---

(७६०) इन सखियों ने श्रीराधाकृष्ण के प्रणय से उन्मत्त होकर ताम्बूल, सुशीतल जल, सुनिर्मल गन्ध, माला, चरण कमलों का मृदु मार्जन, चंवर व्यजन आदि द्वारा सेवा करके आनन्दमय राधाकृष्ण को विगतश्रम किया।

(७६१) तदनन्तर श्रीराधारानी ने अपने किसी एक अभिप्राय के साथ मृदु हँसते हुए नयनभंगी द्वारा निज प्रियतम को प्रेरित करते हुए कहा– हे प्रियतम ! जिनके बिना मुझे सुख प्राप्त नहीं होता वे सब पंकज नयना सखी सकल मधुपान करके बिह्वलांगी होकर कुंजों में शयन कर रही हैं हे रमण ! आप उनको जगाकर ले आओ।

(७६२) यद्यपि श्रीराधा को छोड़कर सखीगणों के साथ श्रीकृष्ण की रमण करने की अभिलाषा नहीं होती तथापि प्रियतमा के परिहास छल से पुनः पुनः प्रार्थना करने पर मदमत्त हस्ति जैसे कमलनियों के साथ (कमलिनी अर्थात् हस्तिनी) बिहार करने के लिए गमन करता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण समस्त सखीवृन्दों के साथ बिहार करने के लिए चल पड़े।

(७६३) श्रीराधा की कुंज से बाहर आकर श्रीकृष्ण विचार करने लगे– पहले क्या ललिता के पास जाऊँ अथवा विशाखा के या चित्रा के, इस प्रकार सब सखियों का विचार करते–करते जिस प्रकार समस्त जीवों की देह में एक आत्मा रुप से एक समय में प्रवेश करने में समर्थ हैं उसी प्रकार श्रीकृष्ण एक साथ एक समय सब कुंजों में प्रविष्ट हुए।

(७६४) अब जिस प्रकार यूथेश्वरि श्रीराधा के साथ स्वप्न और जागरण में श्रीकृष्ण के साथ एक प्रकार की विलासादि लीला हुई थी उसी प्रकार श्रीकृष्ण समस्त सखियों के साथ विभिन्न कुंजों में मनोमुग्ध कारिणी लीला प्रगट करने लगे।

आलीमल्लीमतल्लीस्ता दोर्युद्धे तत्कृते मिथः।
जिगाय युगपत् सर्वाः श्रीकृष्णो मल्लतल्लजः।।७६५।।

(गोवि० १५/३६)

स्वाधीनकान्तकरकारितभूरिभूषा संच्छादितांग–रतिलक्षणसञ्चयापि।
प्रौढ़स्मराहव–विमर्दनसूचकांगी भूयोऽतिमार्जित–समाप्तमखस्थलीव।।७६६।।

(गोवि० १५/३८)

स्वालीं प्रति प्रणयरोष विभंगूरभ्रूर्लज्जाविनम्रवदना स्खलितांघ्रिपाता।
आयास विश्लथभुजार्द्धनिमीलिताक्षी सालीततिस्तत इतो मिलिताभ्युपेत्य।।७६७।।

(गोवि० १५/३६)

उपालिप्सुरालीः पुनरुपसृता वीक्ष्य पिहित–स्मिता चिल्लीवल्लीं दर चटुलयन्त्याह सुतनुः।
अहो! कष्टं किं वः क्षतमजनि बिम्बाधरकुचे भुजंग मृग्यत्यः कमविशत वा गह्वरवरम्।।७६८।।

(कृ० भा० १६/५)

---

(७६५) प्रशस्त मल्ल श्रीकृष्ण ने और प्रशस्त मल्ल स्वरुपिणी सखियों को सुख प्रदान करने के लिए परस्पर बाहु युद्ध द्वारा एक साथ सबको परास्त कर दिया।

(७६६–६७) जिस स्थान पर यज्ञ होता है यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् उस स्थान को पुनः मार्जित किया जाता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण के साथ विलास के अन्त में स्वाधीन कान्त के कर कमल द्वारा पुनः वसन, भूषण आदि यथा स्थान सुसज्जित कर दिये जाने एवं अपने अंगों के रतिचिह्न आदि आच्छादित करने पर भी सखीगणों के प्रगाढ़ कन्दर्प युद्ध से अंगों में मर्दन आदि चिह्न प्रकाशित हो रहे थे एवं वे अपनी सखी श्रीराधा के प्रति प्रणय क्रोध से भ्रूभंगी करते हुए, लज्जा से, अधोवदन होती हुई स्खलित गति से, शिथिल होते हुए अंगों से, अधखुले से नेत्रों से आकर श्रीराधा के साथ मिलित हुईं।

(७६८) श्रीराधा सखी वृन्द के अंगों में रतिचिह्न देख एवं उन्हें उपालम्भ देने के भाव से अपने पास आते हुए देखकर समुदित होते हुए अपने मृदु हास्य को कुछ दबाकर भौहें कुटिल करके रसमय शब्दों का प्रयोग करते हुए कहने लगीं– हे ललिते! हाय!हाय! बड़े कष्ट की बात तुम्हारे बिम्बाधर एवं पयोधर कैसे क्षत हुए? तुम सबने क्या किसी भुजङ्ग के पीछे किसी गहवर में प्रवेश किया था।

भुजंगं स्वाधीनं सुमुखि ! जनतां दंशयसि यत् तदास्तां ते ख्यातं ब्रजभुवि यशो मा हस पुनः।
अहञ्चेद्व्यारव्यास्ये किमपि चरितं तत् सपदि ते गिरं तां ह्रीर्देवी विरमयितुमाविर्न भविता।।७६६।।

(कृ० भा० १६/६)

इत्येव यावल्ललिता वभाषे, मंध्येसभंतावदुपेत्य कृष्णः।
प्राहालयो वचमि चरित्रमस्या,-श्चित्रं यदेवाद्यतनं सुरम्यम्।।८००।।

(कृ० भा० १६/७)

सख्यास्तवानंगरणोत्सवेऽधुना ननर्त्त मुक्तालतिका स्तनोपरि।
उत्प्लुत्य यस्याः सखि ! नायकश्चलो धीरं मुहुर्मे प्रजहार कौस्तुभम्।।८०१।।

(उ० ५/५०)

मनोरागं दत्वा चरणदलरागो मृगदृश-स्त्वया दत्तो वक्षःस्थलमलति यः कौस्तुभ इव।
रसं दत्त्वानीता त्वदधरपुटेनेक्षणमसी समं त्वद्वैदग्ध्यं तद्वयववैदग्ध्यमपि च।।८०२।।

(उ० ८/३१)

---

(७६६) ललिताजी कहने लगी – हे श्रीराधे ! जिस भुजंग ने हम सबका दंशन किया है वह तो तुम्हारे ही अधीन है तुम उसे जिसको दंशन करने के लिए भेजोगी वह उसी का दंशन करेगा। तुम्हारा यह यश ब्रजभूमि में विख्यात है अतः अब और वृथा परिहास मत करो। राधे ! हम यदि तुम्हारे किसी चरित की व्याख्या करें तो साक्षात् लज्जा देवी ही प्रगट होकर उन वचनों को स्थगित कर देगी।

(८००) ललिता के इस प्रकार कहने पर रसिक मुकुटमणि श्यामसुन्दर ने सभा में आकर कहा– हे सखीगणों श्रीराधा का आज का सुरम्य चरित चित्र मैं वर्णन करता हूँ आप सुनो।

(८०१) आज अनंगोत्सव में तुम्हारी इस सखी के उच्च वक्षस्थल पर मुक्तालता ने नृत्य किया उसके बीच में जो मध्यमणि है उसने उच्छलित होकर सुधीर कौस्तुभमणि को प्रहार किया अतएव हे सखि ! तुम सब बुद्धिमती हो। अब तुम्हीं विचार करो (जो प्रहार करे उसे शत–शत् प्रहार करना चाहिए।)

(८०२) श्रीललिताजी कहने लगीं– हे माधव ! तुमने श्रीराधिका को अपने मन का राग (अनुराग, प्रेम) प्रदान किया और इनके पादपल्लव का राग बदले में ग्रहण किया जो अभी भी तुम्हारे वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि के समान उज्ज्वलित होकर शोभा पा रहा है और तुमने अपने अधरों का ताम्बूल रस उनके नयनों में समर्पित किया और इनके नयनों की उज्ज्वल कालिमा को स्वयं ग्रहण किया अतः तुम्हारी वैदग्धी और तुम्हारे अधर पुटों की रस वैदग्धता दोनों ही समान है।

अथ सखीमप्याह –

नैरञ्जन्यमुपेयतुः परिगलन्मोदाश्रुणी लोचने स्वेदोद्धूत–विलेपनं किल कुचद्वन्दं जहौ रागिताम्।
योग्योत्सुक्यमगादुरः स्फुरदिति प्रेक्ष्योदयं संगिनां राधे ! नीविरियं तव श्लथगुणा शंके मुमुक्षां दधे।।८०३।।

(उ० ११/७१)

पूर्णं प्रमोदोत्तरलेन राधे ! श्यामं रसानां निधिमिन्दुभाजम्।
सव्येन नेत्राञ्जलिना पिबन्ति त्वमुन्मनाः कुम्भभवायितासि।।८०४।।

(उ० ७/४६)

चित्रं धनिष्ठे ! तनुवाससोऽपि, चीनस्य पीनस्तनि संगमेन।
लिप्तेव ते लोहित–चन्दनेन, मूर्त्ती र्विदूना सखि ! लोहितासीत्।।८०५।।

(उ० १०/४०)

कचास्तव सुकुञ्चिता मुखमधीरदीर्घेक्षणं कठोरकुचभागुरः क्रुशिमशालि मध्यस्थलम्।
नते शिरसि दोर्लते करजरत्नरमौ करो विधूनयति राधिके ! त्रिजगदेष रूपोत्सवः।।८०६।।

(उ० ४/८)

---

(८०३) अब वृन्दाजी कहने लगी– राधे ! निरन्तर आनन्दाश्रु विगलित होने से तुम्हारे दोनों नेत्र अंजनशून्य हो गये हैं। स्वेद बिन्दुओं से धुलकर तुम्हारा वक्षस्थल स्वच्छ होकर योग के लिए (श्रीकृष्ण संग के लिए) उत्कंठित हो उठा है अतएव ऐसा मालूम होता है कि नेत्रों को एवं वक्षस्थल को अपने गुणों का त्याग करते हुए देख तुम्हारी नीवी भी मानों गुण (बन्धन) का त्याग कर मुक्ति प्राप्त करना चाहती है।

(८०४) श्रीललिताजी कहने लगीं– राधे ! आनन्दरुपी तरंगों से युक्त इन श्याम वर्ण वाले रसनिधि (समुद्र) को तुमने अपने बायें नेत्र की अंजलि द्वारा पान कर लिया है। फिर तुम क्यों उन्मना हो ? तुम साक्षात् अगस्त्य की तरह हो अन्यथा इतनी शक्ति और किसमें हो सकती है?

(८०५) इसके पश्चात् ललिताजी धनिष्ठा की ओर लक्ष्य करके राधारानी की अप्रस्तुत प्रशंसा करने लगी – हे पीनस्तनी धनिष्ठे ! बड़े आश्चर्य की बात है ? कि तुमने इतना सूक्ष्म वस्त्र परिधान कर रखा है इसी से ही क्या व्यथित होकर तुम्हारा ये कोमल अंग लाल चन्दन के समान हो गया है। हाय ! अब ऐसा वस्त्र कभी मत पहनना।

(८०६) श्रीकृष्ण कहने लगे– श्रीराधे ! तुम्हारे जैसी रुपवती कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। तुम्हारे रुपोत्सव ने त्रिभुवन को कम्पित कर दिया है। तुम्हारे केश सुकुंचित, वदन कमल में दीर्घ नेत्र शोभित, वक्षस्थल पर कठोर स्तनयुगल, मध्यदेश अतिशय क्षीर्ण, स्कन्ध देश झुके हुए, दोनों भुजाओं के आगे करकमल जिनमें रत्नों के समान नखपंक्ति विराज रही है अतएव हे राधे! तुम्हें और रत्न भूषणों की क्या आवश्यकता है ?

तड़िदतिचलतां ते किं दृगन्तादपाठीद्–विधुमुखि ! तड़ितो वा किं तवायं दृगन्तः ?
ध्रुवमिह गुरुताभूतत्वदृगन्तस्य राधे ! वरमतिजविनां मे येन जिग्ये मनोऽपि।।८०७।।

(उ० ४/२२)

सुवदने ! वदने तव राधिके ! स्फुरति केयमिहाक्षर–माधुरी ?
विकलतां लभते किल कोकिलः सखि ! ययाद्य सुधापि मुधार्थताम्।।८०८।।

(उ० ४/२७)

तिर्यक्क्षिप्तचलदृगञ्चलरुचिर्लास्योल्लसद्भ्रूलता कुन्दाभ–स्मितचन्द्रिकोज्वलमुखी गण्डोच्छलत्कुण्डला।
कन्दर्पागमसिद्धमंत्रगहनामर्द्धं दुहाना गिरं हारिण्यद्य हरेर्जहार हृदयं राधा विलासोर्मिभिः।।८०६।।

(उ० ४/४१)

भ्रुवोर्विक्षेपस्ते कवलयंति मीनध्वज धनुः–प्रभारम्भं रम्भाश्रियमुपहसन्त्यूरुयुगलम्।
कुचद्वन्दं धत्ते रथचरणयूनोर्विलसितं वरोरूणां राधे ! तरुणि–मणि चूड़ामणि रसि।।८१०।।

(उ० ५/२६)

---

(८०७) यह सुनकर श्रीराधिका श्रीकृष्ण की ओर कुटिल कटाक्ष निक्षेप करने लगीं जिसे देखकर श्रीकृष्ण कहने लगे– हे विधुमुखि ! विद्युत जो अतिशय चपल दिखायी देती है इसने क्या तुम्हारे नेत्रांञ्चलों से चांञ्ल्य का अध्ययन किया है अथवा विद्युत से ही तुम्हारे दृगाञ्चलों ने पाठ पढ़ा है ? जो भी हो मेरा तो यही निश्चय है कि तुम्हारे दृगांञ्चल ही अध्यापक हैं क्योंकि इन्होंने मेरे वेगशाली मन को विजित कर लिया है।

(८०८) यह सुनकर श्रीराधिका प्रियतम को अस्फुट मधुर स्वर में कुछ कहने लगीं– जिसे सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे– हे श्रीराधे ! तुम्हारे शोभन दन्त पंक्ति से युक्त मुखार विन्द से जो अक्षर माधुरी स्फुरित हो रही है वह कोकिलाओं को भी आकुल कर देने वाली है। प्रियतमे ! मैं अधिक और क्या कहूँ ? इसने अमृत को भी विफल कर दिया है।

(८०६) श्रीराधिका श्रीकृष्ण के प्रति पुनः कटाक्ष पात करने लगी, तब उनकी कोई सखी किसी दूसरी सखी से कहने लगी– सखी ! श्रीराधा के दृगांञ्चल इस प्रकार तिरछे और चञ्चल होकर चलते हैं भ्रूलता मानों लता ही नृत्य कर रही हो, हास्य माधुरी मानों कुन्द पुष्प तुल्य, कपोलों पर कुण्डल दोलायमान, और वदन चन्द्र से ऐसे वाक्य निकलते हैं जिनके सामने कामदेव के समस्त बाण असफल हो जाते हैं, वक्षस्थल पर मनोहर हार जिनकी अपूर्व शोभा और विलास की तरंगों से श्रीहरि का हृदय भी हरण हो जाता है।

(८१०) श्रीकृष्ण कहने लगे – हे राधे ! तुम्हारी भ्रूभंगी की कितनी अपूर्व शक्ति है जिससे कन्दर्प के धनुष की प्रतिभा भी ग्रस्त हो जाती है और तुम्हारे उरु युगल की शोभा के सामने रम्भा की श्री भी फीकी मालूम होती है। तुम्हारे स्तनयुगल चक्रवाक मिथुन के विलास को धारण कर रहे हैं, अतएव हे राधे ! तुम वरोरु रमणीयों में चूड़ामणि हो।

तां तथापि कृतभूरि–विलम्बा–मम्बुभिर्भृत–कराम्बुजलिम्वाः।
ताः समं सरसचारुविलासा, निर्भयोऽभिषिषिचुः कृतहासाः।।८२४।।

(कृष्णा० ४/१३६)

आननैः सरसिजैः कुचकुम्भै, श्चक्रवाकमिथुनैर्गतदम्भैः।
नाभिभिर्घनरस भ्रमिगर्त्तै, मैत्रुवास सुषमा–परिवर्त्तैः।।८२५।।

(कृष्णा० ४/१४०)

आत्तपाणिरितरेतरमासा, मावलि कनकजाल विलासा।
आववार हृदयेशममन्दं, चन्द्रिकाततिरिवाम्बुदवृन्दम्।।८२६।।

(कृष्णा० ४/१४१)

बन्धमेत्य स तदन्तरवर्त्ती, भ्रूविभंग–वरनर्त्तकनर्त्ती
सुभ्रुवां नयन विद्रवशूरै, र्बन्धभंगमकरोज्जवलपूरैः।।८२७।।

(कृष्णा० ४/१४२)

ताः समेत्य रभसादविदूरं, वारिभिः, सिषिचुरञ्जलिपूरम्।
पाणिरुर्द्धनयनः कृतहर्षं, शेक एष सुदृशाञ्जलवर्षम्।।८२८।।

(कृष्णा० ४/१४३)

---

(८२४) इस पर भी विलम्ब हो रहा है यह देखकर हस्तकमल में जल लेकर हँसते–हँसते उन रमणीय, चारु, विलासमयी गोपियों ने निर्भीक होकर एक साथ उनके अंग में जल छिड़कना शुरु किया।

(८२५) उनके मुख में और कमल में, उन्मुक्त स्तनयुगल में और चक्रवाक में, नाभि में एवं जल के आवृत्त में, परस्पर सुषमा का परिवर्तन होने से मित्रता स्थापित हो गयी।

(८२६) अन्योन्य एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए ये गोपीगण एक स्वर्ण के जाल सा रचना करती हुई ऐसे शोभा पाने लगीं मानों ज्योत्सना राशि ने मेघपुंज का आवरण कर लिया। इसी प्रकार इन्होंने भी प्राणेश्वर का वेष्टन कर लिया।

(८२७) बन्धन प्राप्त होकर श्रीकृष्ण ने उस स्थान पर खड़े होकर ही अपनी कटाक्ष भंगी रुप श्रेष्ठ नट को इस प्रकार नृत्य कराया जिससे ब्रजसुन्दरियों के बन्धन को काटने के लिए महावारुण अस्त्र की भांति जल सिंचन द्वारा वे इस बन्धन से मुक्त हो गये।

(८२८) उन सब गोपियों ने निकट आकर एक साथ अपनी अंजलियों में जल भर भर कर श्रीकृष्ण पर छिड़कने लगीं, और वे आनन्द के साथ हाथों से अपने नेत्रों को बन्द करके उनका जलवर्षण सहन करने लगे।

ग्रीवान्तसंयमित–केलिविमुक्तकेशाः संवस्त्रिताभिनवशुक्लसुचीनचेलाः।
सेवापरालिनिचयैरवतारिताति–भारांगभूषणचयाः सुदृशो वभूवुः।।८१५।।

(गोवि० १५/४४)

उदत्सुधांशु–शतपुष्करनिन्दिकान्तिः प्रोद्यद्विभाकर–विकस्वर–पुष्कराक्षः।
कन्दर्प सौमनसपुष्कर जित्क टाक्षः श्रान्ति प्रशान्ति कर पुष्कर–केलि लोलः।।८१६।।

(गोवि० १५/४५)

संवेष्टितः सकर पुष्करिणीभिराभिः कृष्णः प्रियादयित–पुष्करिणीं जगाहे।
श्रान्तः श्रमाकुलित–पुष्करिणीघटाभिः स्वैरी वनेचरमदोत्कट–पुष्करीव।।८१७।।

(गोवि० १५/४६)

नेत्रोत्पलास्य–कमलालकलोलभृंगा वक्षोज–कोकयुगला तनुदोर्मृणाला।
कृष्णक्षिमत्तगजयोर्जलकेलितुष्ट्यै गोपीततिः प्रथमतः सरसी तदासीत्।।८१८।।

(गोवि० १५/४७)

---

(८१५) प्रथम जलक्रीड़ा की उचित वेशभूषा समस्त गोपियों ने धारण कर ली अर्थात् उन्होंने अपने केशों को ग्रीवा के समीप बांध लिया। सबने अति सूक्ष्म नये शुक्ल वस्त्र पहन लिये एवं जलक्रीड़ा के लिए सेवा परायणा सखियों ने उनके अंग से जो भारी–भारी भूषण वह सब उतार दिये जिससे वे सुलोचना गोपांगनाएं अतिशय शोभा पाने लगीं।

जलकेलि :–

(८१६–१७) जिनकी अंग कान्ति शत् शत् चन्द्रों से मण्डित आकाश का तिरस्कार करती है जिनके नेत्र कमल सूर्य की किरणों से विकसित हुए कमल की भांति, जिनके कटाक्ष पात्र कामदेव के पुष्प खड्ग को भी तिरस्कार करती है, जो जलक्रीड़ा के लिए सतृष्ण हैं ऐसे श्रीकृष्ण पुष्करिणी (हस्तिनी) रुपा गोपांगनाओं से वेष्टित होकर परिश्रान्त, स्वेच्छा विहारी, बनचारी, मदमत्त, उत्कट पुष्कर (गजराज) के समान कमल श्रेणी विराजित सरोवर में अवगाहन करने लगे। यह सरोवर श्रीराधा कुण्ड प्रियतमा श्रीमती राधारानी का अत्यन्त प्रिय है अतः सबने मिलकर उसमें प्रवेश किया।

(८१८) जलकेलि में प्रथम श्रीकृष्ण के नयन युगल रुपी मदमत्त गजराजद्वय जलक्रीड़ा का आनन्द करने के लिए मानों समस्त गोपियां ही सरोवर की भांति शोभा पाने लगीं। जिसमें उनके नेत्र और मुख ही कमल, अलकावलि भ्रमर पंक्ति, स्तन युगल चक्रवाक, देहलता और भ्रूलता ही मानों मृणाल की भांति शोभा पा रही थी।

भीरुस्वभावादजलावगाहाः, कश्चित्तटस्थाः सलिलैर्निषिच्य।
बलाद् गृहीत्वा वसनेऽपयान्ती, र्निन्युर्हसन्त्यः सलिलान्तरन्याः।।८१६।।
(गोवि० १५/४८)

काश्चिद् स्वजानूद्वयसे स्थिता जले भीत्योरुदघ्ने प्रियसेकतो पराः।
स्वनाभिमात्रे सलिले स्थितो हरिः सर्वान्यसिञ्चद्विहसन् बलाज्जलैः।।८२०।।
(गोवि० १५/४६)

ताः परस्पर–विषक्त–शरीराः केलिलोलमनस्त्वतिधीराः।
कृष्णसन्निधिवियोगभीताः, पर्युऽपर्युऽपरिचेलुरभीताः।।८२१।।
(कृष्णा० ४/१३६)

कापि कृष्णकृत–पुष्पविभूषा, हानये धृतनिमज्जनदोषा।
कूलमूलमवलम्बितुकामा, तस्थूषी विरुरुचेवर रामा।।८२२।।
(कृष्णा० ४/१३७)

तां विलोक्य सुमुखीमथ कूले, स्वाभिलाष–रभसेष्वनुकूले।
सत्वराः प्रणयतोऽतिविचित्रा, ह्युत्सुका विचकर्षुर्मृगनेत्राः।।८२३।।
(कृष्णा० ४/१३८)

---

(८१६) भीरु स्वभाव युक्ता कतिपय ब्रजसुन्दरी सरोवर के जल में अवगाहन न करके तीर पर ही खड़ी हो गयी, जल के बीच में खड़ी हुई अन्य कुछ ब्रजांगनाएं उनके अंगों पर जल छिड़कने लगी तो वो जब भागने लगीं तब इन जल में खड़ी हुई गोपियों ने हँसते–हँसते बलपूर्वक उनका वस्त्र पकड़कर उनको जल में ले आयी।

(८२०) कुछ गोपांगनाएं जानुपरिमित जल में अन्य कुछ व्रजांगनाएं प्रियतम श्रीकृष्ण से जल सिंचन के भय से उरु परिमित जल में खड़ी हो गयीं। श्रीकृष्ण नाभि पर्यन्त जल में खड़े होकर हँसते–हँसते उन समस्त प्रियाओं के ऊपर बलपूर्वक जल छिड़कने लगे।

(८२१) गोपीगण उस समय केलिविलास के लिए चंचल मना होने पर भी अत्यन्त धैर्य पूर्वक चुपचाप खड़ी रहीं। गुरुजनों का भय न होने पर भी पीछे कहीं श्रीकृष्ण का वियोग न हो जाय, इस आशंका से भयभीत होती हुई परस्पर मिलकर ऊपर आने लगीं।

(८२२) कोई–कोई वरांगना गोपी श्रीकृष्ण उसके फूलों के भूषण नष्ट कर देंगे इस आशंका से जल में न उतरकर किनारे पर ही खड़े रहने का संकल्प करके शोभा पाने लगीं।

(८२३) अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए किनारे पर खड़ी हुई उन सुमुखि को हरिण नयना कुछ अन्य गोपियों ने अति विचित्र प्रेम से उत्सुक होकर शीघ्र ही जल में खींचने लगीं।

तां तथापि कृतभूरि–विलम्बा–मम्बुभिर्भृत–कराम्बुजलिम्वाः।
ताः समं सरसचारुविलासा, निर्भयोऽभिषिषिचुः कृतहासाः।।८२४।।

(कृष्णा० ४/१३९)

आननैः सरसिजैः कुचकुम्भै, श्चक्रवाकमिथुनैर्गतदम्भैः।
नाभिभिर्घनरस भ्रमिगर्त्तै, मैत्त्रुवास सुषमा–परिवर्त्तैः।।८२५।।

(कृष्णा० ४/१४०)

आत्तपाणिरितरेतरमासा, मावलि कनकजाल विलासा।
आववार हृदयेशममन्दं, चन्द्रिकाततिरिवाम्बुदवृन्दम्।।८२६।।

(कृष्णा० ४/१४१)

बन्धमेत्य स तदन्तरवर्त्ती, भ्रूविभंग–वरनर्त्तकनर्त्ती
सुभ्रुवां नयन विद्रवशूरै, र्बन्धभंगमकरोज्जवलपूरैः।।८२७।।

(कृष्णा० ४/१४२)

ताः समेत्य रभसादविदूरं, वारिभिः, सिषिचुरञ्जलिपूरम्।
पाणिरुर्द्धनयनः कृतहर्षं, शेक एष सुदृशाञ्जलवर्षम्।।८२८।।

(कृष्णा० ४/१४३)

---

(८२४) इस पर भी विलम्ब हो रहा है यह देखकर हस्तकमल में जल लेकर हँसते–हँसते उन रमणीय, चारु, विलासमयी गोपियों ने निर्भीक होकर एक साथ उनके अंग में जल छिड़कना शुरु किया।

(८२५) उनके मुख में और कमल में, उन्मुक्त स्तनयुगल में और चक्रवाक में, नाभि में एवं जल के आवृत्त में, परस्पर सुषमा का परिवर्तन होने से मित्रता स्थापित हो गयी।

(८२६) अन्योन्य एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए ये गोपीगण एक स्वर्ण के जाल सा रचना करती हुई ऐसे शोभा पाने लगीं मानों ज्योत्सना राशि ने मेघपुंज का आवरण कर लिया। इसी प्रकार इन्होंने भी प्राणेश्वर का वेष्टन कर लिया।

(८२७) बन्धन प्राप्त होकर श्रीकृष्ण ने उस स्थान पर खड़े होकर ही अपनी कटाक्ष भंगी रुप श्रेष्ठ नट को इस प्रकार नृत्य कराया जिससे ब्रजसुन्दरियों के बन्धन को काटने के लिए महावारुण अस्त्र की भांति जल सिंचन द्वारा वे इस बन्धन से मुक्त हो गये।

(८२८) उन सब गोपियों ने निकट आकर एक साथ अपनी अंजलियों में जल भर भर कर श्रीकृष्ण पर छिड़कने लगीं, और वे आनन्द के साथ हाथों से अपने नेत्रों को बन्द करके उनका जलवर्षण सहन करने लगे।

वारिवर्ष–रभसेन विहसतः, सुभ्रुवामपघनोऽथ समस्तः।
एक एव किल किन्तु न जग्लौ, हर्षतो वदनबिम्व इव ग्लौः।।८२६।।

(कृष्णा० ४/१४४)

तं सिषेच करपंकजकोषैः, साम्बुभिः समणि कंकणघोषैः।
वारुणास्त्रमेव तत् कुसुमेषो, रत्यसह्यमभवद्विजिगीषोः।।८३०।।

(कृष्णा० ४/१४६)

अम्बुदस्य कुतुकाज्जलयन्त्री, भूतमञ्जलिपुटं विनियन्त्री।
अक्षिपज्जलभरं कराभ्यां, दीर्घधारमतिचारुतराभ्याम्।।८३१।।

(कृष्णा० ४/१४७)

हृत्पतेरुरसि सा जलधारा, पेतुषी विरुरुचेऽलमुदारा।
मन्मथस्य गुरुदीर्घशलाका, कापि शक्तिरिव रुद्धपताका।।८३२।।

(कृष्णा० ४/१४८)

शश्लथे भगवती वनमाला, हारयष्टिपतत् सुविशाला।
एक एव बलवान् प्रियदेहे, कौस्तुभः परिभवं स विषेहे।।८३३।।

(कृष्णा० ४/१४६)

(८२६–३०) तदनन्तर श्रीकृष्ण के वारिवर्षण से ब्रजसुन्दरियों के सकल अंग व्याकुल हो गये किन्तु एक मात्र मुखारविन्द ही चन्द्रमा की तरह आनन्द के कारण म्लान नहीं हुआ। मणिमय कंकणों की झंकार करते हुए कर कमल की अंजलि भकर जब राधिका श्रीकृष्ण पर जल छिड़कने लगी तब मानों वह कामदेव के वारुणास्त्र की तरह विजय की इच्छा रखने वाले श्रीकृष्ण के लिए अत्यन्त असह्य हो गया।

(८३१) कौतुक वश श्रीराधा अपनी अंजलिपुट को ही मानों मेघ के समान जलयन्त्र बनाकर अत्यन्त चारुतर अपने कर कमलों के नीचे के भाग से जल की स्थूलधारा का वर्षण करना आरम्भ कर दिया।

(८३२) प्राणनाथ श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर यह मनोज्ञ जलधारा पड़कर उनकी कान्ति को अत्यन्त दीप्तिमय बनानेलगीं और उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों कामदेव के कोई पताका शून्य अति दीर्घ शलाका मुक्त शक्ति उनको विद्ध कर रही है।

(८३३) श्रीकृष्णचन्द्र की वनमाला शिथिल हो गई। सुविशाल हार की लड़ी गिर गयी किन्तु प्रिय देह में एकमात्र बलवान कौस्तुभ ने ही इस प्रकार किंचित विचलित हुए बिना सहन कर लिया।

सह्यतामयमयं मम पाथः–सेक इत्यथ निगद्य स नाथः।
प्रेयसी–वदन एव सहर्षः, सस्मितं सरसमञ्जूरवर्ष।।८३४।। (कृष्णा० ४/१५०)

पाणिपद्मकृतलोचनरोधा, कृष्ण–कीर्ण सलिलैः कृतबाधा।
अञ्जसाऽसहत खञ्जननेत्रा, प्रेमिणि मतिरतीव विचित्रा।।८३५।। (कृष्णा० ४/१५१)

अथैत्य मधुसूदने धयति ता बलात् पद्मिनी–रपांगशरपञ्जरान्तरमपि प्रविश्यौजसा।
सझकृंति–मणिमयाभरणमाददाने मृगी–दृशां कलकलेऽप्यलं शिखिपिकैः प्रवृद्धीकृते।।८३६।।
(कृष्णा भा० १४/४०)

कुचान् विगतकञ्चूकान् नखरविक्षतान् दोर्द्वयैः पिधाय तिमितायतालकलिपि–प्रलिप्तानना।
निबध्य शशिशेखरान् विसमिषोग्रपाशैर्वभा–वनंगपृतनेव सा न खलु पद्मिनि संहतिः।।८३७।।
(कृ० भा० १४/४३)

ततः श्वसित–सञ्चलच्चलदल–च्छदाभोदरा गिरा स्खलित गद्गदाक्षरभृतैत्य नान्दीमुखीम्।
जगाद् किमपि प्रियपतिहृतोत्तरीयावला–ततिर्विगतभूषणाप्यतनुमाधुरीं विभ्रती।।८३८।।
(कृ० भा० १४/४२)

---

(८३४) तब श्रीकृष्ण बोले – 'हे प्रिये ! अब मेरे जल सिंचन को सहन करके दिखाओ' ऐसा कहकर आनन्द पूर्वक हँसते–हँसते प्रेयसी के मुखारविन्द पर ही रसमय मनोज्ञ जल वर्षण करना आरम्भ कर दिया।

(८३५) श्रीकृष्ण द्वारा फेंकी गई जलधारा से पीड़ा का अनुभव होने पर भी खंजन नयना श्रीराधा हस्त कमल द्वारा अपने नेत्रों को बन्द करके उसे अनायास ही सहन करने लगी। अहो! प्रेमिका की मति अत्यन्त विचित्र है।

(८३६) तदनन्तर पद्मिनी श्रीराधा आदि गोपांगनाओं के कटाक्षरुपी बाणों के पिंजरे में बंधे होने पर भी बलपूर्वक वे मधुसूदन, उनका मधुपान करने लगे और उनके समस्त मणिमय आभरणों को लूटने लगे तब अलंकारों की झंकार होने लगी। जिससे श्रीराधा आदि गोपीगण 'कोई मेरा हार चला गया' 'कोई मेरा बाजूबन्द चला गया' 'मेरी किंकिनि गई' और 'कोई मेरा वलय ले गया' मुझे बहुत पीड़ा हो रही है, इस प्रकार कहकहकर उच्च कोलाहल करने लगीं। जिसे सुनकर कोकिल, मयूर आदि भी उच्च स्वर करने लगे और यही कोलाहल अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो गया।

(८३७–३८) श्रीकृष्ण ने ब्रजरमणियों के उत्तरीय वसन कंचुकी और अन्यान्य आभरण हरण कर लिये जिससे वे एक अनिवर्चनीय माधुरी को प्राप्त हुए। इनका मन्द पवन से हिलते हुए पीपल के पत्र के समान उदर अतिशय सुशोभित होने लगा और ये लज्जावश विगत कंचुकी, हरिनरवक्षत अपने बाहुयुगल द्वारा वक्षस्थल का आवरण करने लगी। इनके मुखों पर भीगी हुई अलकावलि का मानों लेप हो गया जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा मानों शिवलिंग समूह को कामदेव के भयंकर पाश से बाँधकर मानों कामदेव की सेना ही शोभा पा रही हो। ये सब इसी अवस्था में नान्दीमुखी के पास आकर गदगद् वचनों से कहने लगीं–

क्लिन्नातिसूक्ष्मवसनान्तरुदीर्णतत्तदंगालि–सौष्ठव–सरित्सुषमाप्सु तासाम्।
मग्नं हरेर्लसति नेत्रमदेभयुग्मं तस्यापि तासु दयिता दृगिभीघटापि।।८३९।।

(गोवि० १५/५०)

राजीव रक्तोतत्पल–पुण्डरीक–कह्लार–नीलोत्पलकैरवाणाम्।
स्रवन्मरन्दैश्च पतत्परागैः सौरभ्यभाज्यम्भसि ता विजह्रुः।।८४०।।

(गोवि० १५/५२)

व्यातुक्षी–प्रधनं तदा समभवत्ताभिः समं श्रीहरे–र्यत्रासां मृदुसेचनैः स विदधे प्रोत्साहवृद्धिं क्षणम्।
सिञ्चन्त्यः परितो निरन्तरजलासारैरमूं ता व्यधुर्भीत्याधोवदनं करांगुलिदलै रुद्धाक्षिनासाश्रुतिम्।।८४१।।

(गोवि० १५/५५)

जलक्रीड़ाकाले कमलिन्येकविपिने निलीना श्रीराधा यदधिकमलं चुम्बति हरौ।
स्ववक्त्राब्जभ्रान्त्या हसितमथ नालं स्थगयितुं हसित्वा कान्तेनाध्रियत हसिताली–परिकरा।।८४२।।

(वृन्दा० ३/३६)

---

(८३९) तदनन्तर जल से भीगी हुई उन सभी ब्रजसुन्दरियों के भीगे हुए वस्त्रों के भीतर से सुस्पष्ट अंग माधुरी रुप सरिता की शोभा रुपी जल में श्रीकृष्ण के नयन रुपी दो मदमत्त हस्ति मगन होकर पान करने लगे और दूसरी ओर श्रीकृष्ण के भीगे हुए वस्त्रों के अंग से लग जाने से उनके भीतर से निकलती हुई देह कान्ति रुपी सरिता का शोभा रुपी जल को गोपीगणों की दृष्टि रुपी हस्तिनी मग्न होकर पान करने लगीं अर्थात् दोनों ही परस्पर भीगे हुए अंगों की माधुरी का पान करने लगे।

(८४०) अब कमल रक्तोत्पल, श्वेत कमल, कहलार, नीलकमल, कैरव आदि से विगलित मकरन्द और पुष्प धूलि (पराग) से सुरभित जल में गोपांगनाएं विहार करने लगी।

(८४१) उस समय ब्रजांगनाओं के साथ श्रीकृष्ण का महान जलयुद्ध आरम्भ हो गया। जिसमें श्रीकृष्ण कुछ क्षण अपनी प्रियाओ पर मृदु–मृदु जल सिंचन करते हुए उनके उत्साह की वृद्धि करने लगे।

तब प्रियागणों ने भी निरन्तर श्रीकृष्ण पर जलधारा का वर्षण किया और वे भी श्रीकृष्ण द्वारा अविरत जलधारा से अभिषिक्त होती हुई भय के कारण हाथ की उंगलियों से अपने–अपने नेत्रयुगल नासिका और कर्ण युगल के सहित मुख को आच्छादित करके नीचे कर लिया।

(८४२) जलक्रीड़ा के समय श्रीराधा एक स्वर्ण कमल के वन में जाकर छिप गई और जब श्रीहरि उनका अन्वेषण करते हुए श्रीराधिका के सुन्दर वदन कमल के भ्रम से अन्यान्य कमलों को जाकर चुम्बन करने लगे। तब श्रीराधा और अधिक अपनी हँसी को रोक न सकीं, और सखीं और समस्त परिकर भी हँसने लगे और श्यामसुन्दर ने भी हँसते–हँसते जाकर प्रियतमा श्रीराधा को पकड़ लिया।

सखीभिः सम्भूय स्वकरकमलद्वन्द्वकलितैर्जलै सेकं राधा बहु विदधती नागरमणेः।
सुधापूर्णान् वर्णानमितवदनेन्दोरलमलं जितोऽस्मीत्याकर्ण्याहसदुपरता यत्र किमिति।।८४३।।
(वृन्दा ५/४)

राधे ! निजकुण्डपयसि तुंगीकुरु रंगम् किञ्च सिञ्च पिच्छमुकुटमंगीकृतभंगम्।।
अस्य पश्य फुल्लकुसुमरचितोन्नतचूड़ा भीतिभिरति नीलनिविड़कुन्तलमनुगूढा।।

धातु रचित–चित्रवीथिरम्भसि परिलीना मालाप्यतिशिथिलवृत्तिरजनि भृंगहीना।
श्रीसनातन–सुमणि रत्नमंशुभिरपि चण्डम् भेजे प्रतिबिम्ब भावदम्भात्तव गण्डम्।।८४४।।
(स्तु० गीता० ४२)

काचिदाह– चूड़ापश्चादपसृतवती कौस्तुभोबिम्बदम्भाद् गण्डे तेऽसौ शरणमभजत् कुण्डले कम्पलोले।
लीनाञ्चासीत्तिलकमलिके छिन्नभिन्नास्य माला तस्माद्युद्धाद्विरम सखि ! मा कातरं पीड़यामुम्।।८४५।।
(गोवि० १५/६८)

---

(८४३) अब श्रीराधा समस्त सखियों के साथ एकत्र मिलकर नागर शिरोमणि श्रीकृष्ण के अंग पर अपने कर कमलों में भरकर जलराशि द्वारा सींचने लगी और श्रीकृष्ण ने अपने वदन चन्द्र को नीचे झुका लिया और कहने लगे– बस और नहीं और नहीं मैंने पराजय स्वीकार कर ली। श्यामसुन्दर के इन सुधा पूर्ण वचनों का श्रवण करके श्रीराधारानी जल छिड़कना बन्द करके अपूर्व मोहन रुप से हँसने लगीं।

(८४४) तब कोई सखी श्रीराधिका को कहने लगीं– हे श्रीराधिके ! आप अपने कुण्ड के जल में सम्यक् रुप से विनोद करो। पराजय स्वीकार करके पलायमान होते हुए शिखपिच्छधारी श्रीकृष्ण पर जल छिड़कने से अब क्या लाभ है ? इनके विकसित फूलों से निर्मित मस्तक का चूड़ा भय से मानों नील केशों में छिप गया है इनके गैरिक आदि धातु से चित्रित तिलकावलि कुण्ड के जल से धुल गई है और कण्ठ की पुष्पमाला भी शिथिल हो गई है और भौंरे भी उस पर अब नहीं बैठ रहे हैं और श्रीकौस्तुममणि अपनी किरणों द्वारा अति प्रकाशित होती हुई देखो तुम्हारे गण्डस्थल में प्रतिबिम्बित हो रही हैं।

(८४५) हे राधे ! अब युद्ध को विराम दो। देखो श्रीकृष्ण का चूड़ा पीछे की तरफ गिरा जा रहा है और कौस्तुभमणि ने प्रतिबिम्ब के छल से तुम्हारे गण्डस्थल की शरण ले ली है, इनके कानों के कुण्डल कांप रहे हैं, ललाट का तिलक, ललाट पर ही विलीन हो गया है, गले की माला भी छिन्न–भिन्न हो गयी है अतएव हे सखि ! अब श्रीकृष्ण अतिशय कातर हो गये हैं अब इन्हें और अधिक पीड़ित न करो।

हरि हरिदयितानां गात्रसौरभ्यशैत्यै–रधिकसुरभिशीतं तोयमासीत् सरस्याः।
असित–सितपिशंगैः कर्वूरं चांगरागै–र्भवति हि गुणसंगान्निर्मलानां गुणाप्ति।।८४६।।
(गोवि० १५/६१)

एवमेव विरते जलयुद्धे, मन्मथस्य रभसे प्रतिबुद्धे।
आहवः समजनिष्ट स पद्मा, पद्मि पद्मनयनावलि सद्मा।।८४७।।
(कृष्णा० ४/१५२)

आलिभिः समवचित्य वितीर्णैः, पंकजैः करतलेऽनुपशीर्णैः।
उद्भुजा दरविकस्वरकक्षं, सा जघान हृदये कमलाक्षम्।।८४८।।
(कृष्णा० ४/१५३)

यद् यदुत्क्षिपति पद्ममुदारा, बल्लभोरसि सुजातविकारा।
तत्तदेव स करेण गृहीत्वा, तां निहन्ति कुतुकेन हसित्वा।।८४६।।
(कृष्णा० ४/१५४)

एवमेवमुभयोः करसंगे, वर्द्धितच्छवि गतागतरंगे।
पंकजं जयति तत्र सुपीव, प्रेमहेमपटवास–तुरीव।।८५०।। (कृष्णा० ४/१५५)

(८४६) श्रीकृष्ण और कृष्ण प्रियाओं के अंग की सुगन्धि और शीतलता से सरोवर का जल अतिशय सुरभित, शीतल और श्याम (मृगमद के रंग से) शुक्ल, चन्दन, कपूर आदि से और कुंकुम आदि के रंगों से मिलकर विविध रंगयुक्त हो गया क्योंकि गुणी व्यक्तियों के सम्पर्क से निर्मल वस्तु ही गुणों को प्राप्त होती है (जैसे निर्मल स्फटिक मणि पद्मराग आदि मणियों के संग लाल रंग धारण कर लेती है।)

(८४७) इस प्रकार जल युद्ध के विराम प्राप्त करने पर मन्मथ सम्बन्धी आनन्द जाग्रत हुआ तब कमल नयना ब्रजसुन्दरियों ने श्रीकृष्ण के साथ परस्पर कमलों का युद्ध (एक दूसरे को कमलों से मारना) प्रारम्भ कर दिया।

(८४८) सखीगणों ने विकसित कमलों का चयन करके श्रीमती राधारानी के हाथ में दिये और उन्होंने अपनी बाहु को ऊँचा करके कमलनयन श्रीकृष्ण के वक्षदेश पर उन्हें फैंकने लगीं।

(८४६) सरला श्रीराधा महाविकार ग्रस्ता होकर प्रियतम के वक्ष को लक्ष्य करके जो जो कमल फेंकती वे सब श्यामसुन्दर अपने हाथ में ग्रहण करके कौतुक पूर्वक हँसते–हँसते पुनः श्रीराधा पर ही फैंकने लगे।

(८५०) इस प्रकार कमलों की शोभा दोनों के हाथों का संग पाकर इधर–उधर जाती हुई अपनी कान्ति का वर्द्धन करते हुए सर्वोत्कर्ष रुप से विराजने लगी तब ऐसा प्रतीत होने लगा कोई प्रेम रुपी तन्तुवाय स्वर्ण पट्ट की साड़ी को बुनने के अभिप्राय से अपना तन्तु यन्त्र चला रहा है।

तावतां जलरुहामनुयायी, प्रोल्लसत्परिमलव्यवसायी।
स द्वयोरिव कटाक्षशरौघः, पुप्लुवेऽलिनिकरोऽयममोघः।।८५१।।

(कृष्णा० ४/१५६)

दोर्लते विलुलिते घनसान्द्रा, श्वासपालिरथ दृक च सतन्द्रा।
सुभ्रुवः स्तनतटी च सकम्पा, वर्धते तदपि केल्यनुकम्पा।।८५२।।

(कृष्णा० ४/१५७)

प्रोज्झ्य् पंकजमलिर्वदनेऽस्याः पादसीम्नि शफरी सवयस्या।
निष्पपात युगपद् यदि दूना, सा भियास दयितोरसि लीना।।८५३।।

(कृष्णा० ४/१५८)

आलयस्तु सममेत्य तमेताः, पंकजैः परित एवमभीताः।
जघ्नुरुन्नतभुजाः सविलासं, ताञ्च तञ्च परिहास–विकाशम्।।८५४।।

(कृष्णा० ४/१५९)

तत्सखीजन–सरोरुहवर्षं, हन्त ! सा च स च सस्मितहर्षम्।
पद्मिनीदल–मृणालवराभ्यां, प्राक्षिपत् करतले विधृताभ्याम्।।८५५।।

(कृष्णा० ४/१६०)

---

(८५१) फैंके जाने वाले सभी कमलों के पीछे उनकी सुगन्धि से लुब्ध होकर आनन्द से उन्मत्त हुए सफल काम भ्रमर युगल किशोर की मानों सुन्दर कटाक्ष पंक्ति की तरह इधर–उधर उड़ने लगे।

(८५२) सुन्दरी श्रीराधा की बाहुलता झुक गयी, श्वास जोर–जोर से चलने लगी, नेत्र युगल परिश्रान्त होकर आलस्य युक्त हो गये, वक्षस्थल कम्पित होने लगा लेकिन फिर भी 'केलि तृष्णा' बढ़ने लगी।

(८५३) जब एक भ्रमर कमल का त्याग करके श्रीराधारानी के चरण कमलों में पड़ने लगा उसी समय कुछ मछलियाँ भी उनके चरणों का आश्रय लेने लगीं, तब वह भयभीत होकर प्रियतम की वक्षस्थल में विलीन हो गयीं अर्थात् भयभीत होकर राधारानी ने श्यामसुन्दर का दृढ़ता से आलिंगन कर लिया।

(८५४) तत्पश्चात् सब सखियों ने निर्भीक होकर मिलकर उनका वेष्टन कर लिया और विलास युक्त भुजा उठा उठा कर परिहास करती हुई श्रीराधा और श्रीकृष्ण दोनों की ओर कमल फैंकने लगी।

(८५५) आहा ! यह दोनों युगल–किशोर हँसते हुए आनन्द पूर्वक अपने हाथों में कमल पत्र और मृणाल को लेकर सखीजनों द्वारा की जाने वाली पद्मवर्षा का निवारण करने लगे।

मुख्यया व्यतनि युद्धविसर्गः, किं करिष्यति सखीजनवर्गः।
इत्यनर्त्ति दयितस्य सपक्षैः, पक्षिभिर्जलचरैर्धृतपक्षैः।।८५६।।

(कृष्णा० ४/१६१)

तामुरोद्वयसो वारि निमग्नां, वीक्ष्य कृष्ण सविधे मृदुभुनाम्।
प्राप कोकमिथुनं निजगोत्र, भ्रान्तितः स्तनयुगान्तिकमत्र।।८५७।।

(कृष्णा० ४/१६२)

तद् विलोक्य दयितः करकोषे–णामृषद्वलति मानसतोषे।
अप्यधत्त कुचमण्डलमेषा, स्वस्तिकेन धृतभूषणवेषा।।८५८।।

(कृष्णा० ४/१६३)

कण्ठमर्पयति चारुमृणालं, बल्लभे सुवलितं सुविशालम्।
दोर्लते पुलकिते विधुमुख्याः प्रेम्ण एव महतीयमभिख्या।।८५६।।

(कृष्णा० ४/१६४)

वेष्टयन्त परितो भवदाल्य, स्तवञ्च तिष्ठ सखि ! मामनुपाल्य।
आनयध्वमभितो मृगयित्वा, मां निमग्नमिह साधु गृहीत्वा।।८६०।।

(कृष्णा० ४/१६५)

---

(८५६) यूथेश्वरि श्रीराधा ने ही जब इस कमल युद्ध का त्याग कर दिया तब अन्य सखियाँ और क्या करतीं ? अर्थात् उन्होंने कमल फैंकना बन्द कर दिया और अब श्रीकृष्ण के पक्षपाती जलचर पक्षियों ने पंख फैलाकर नृत्य करना आरम्भ कर दिया।

(८५७) श्रीकृष्ण के समीप वक्षस्थल पर्यन्त जल में निमग्न श्रीराधा को कुछ झुके हुए देखकर चक्रवाक अपनी ही जाति के चक्रवाक युगल समझकर भ्रमित होते हुए उनके निकट आ गये।

(८५८) यह देखकर श्रीकृष्ण अतिशय सन्तुष्ट होते हुए अपने कर कमल द्वारा उन दोनों चक्रवाक का लालन करने लगे, तब श्रीराधारानी ने संकुचित होकर स्वस्तिक रुपी भूषण रचना करके अपने वक्षस्थल को ढक लिया।

(८५६) प्रियतम श्रीकृष्ण ने एक गोलाकार सुन्दर विशाल मृणाल को लेकर श्रीराधा के कण्ठ देश में अर्पित कर दिया जिससे विधुमुखी श्रीराधा की बाहुलता पुलकित हो उठी। अहो ! प्रेम के राज्य की कुछ इस प्रकार की ही विचित्रता है।

(८६०) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी को कहने लगे हे सखि ! तुम्हारी सखीजन मुझे चारों ओर से घेरकर खड़ी हो जायं और तुम भी निरन्तर मेरे पास ही रहना। मैं जल में डूबूँगा और तुम सब मेरा अन्वेषण करके मुझे पकड़ कर दिखाना।

सुभ्रूवामथ तथा स्थितवत्या, मावलौ प्रियगिरा रसवत्याः।
निर्ममज्ज दयितोम्बुनि रस्यः, पश्यतो विधुमुखीनिकरस्य।।८६१।।

(कृष्णा० ४/१६६)

ताः परस्पर–पराचितहसता, श्चन्द्रिकावलयजालवदस्ताः।
मण्डलीविदधिरे क्रमह्रस्वां, तं विवेकतुमुपसर्पणतः स्वाम्।।८६२।।

(कृष्णा० ४/१६७)

ता उपर्युपरि लग्नशरीरा, ह्रस्वमण्डलतया रसधीराः।
पाणिभिः सरसिजैरिव लोले, रैजयन्त सलिलान्यकरालैः।।८६३।।

(कृष्णा० ४/१६८)

ताः क्रमेण सविधं विधुमुख्याः, प्राप्तवत्य उदितोत्सवमुख्याः।
लेभिरे न रमणं यदि रामा, स्तस्थूरेव हसितैरभिरामाः।।८६४।।

(कृष्णा० ४/१६६)

तास्तथा स्थितवतीर्विहसन्ती, र्मध्यगा विधुमुखी कलयन्ती।
आह वः कतमयैव स वामः, प्रत्तमन्तरमतो स जगाम।।८६५।।

(कृष्णा० ४/१७०)

---

(८६१) तदनन्तर रसवती श्रीराधा के इंगित को पाकर और उनके वचनों के अनुसार सब व्रजसुन्दरी उसी प्रकार उनको वेष्टन करके खड़ी हो गयीं लेकिन इनके बीच में से ही प्रियतम श्रीकृष्ण जल में डुबकी मारकर निकल गये।

(८६२–६३) समस्त गोपीजन उस समय एक दूसरे के हाथ पकड़े हुए ज्योत्सनाजाल की तरह स्थित श्रीकृष्ण को ढूंढने के लिए श्रीराधारानी के निकट जाने के लिए क्रमशः छोटा फिर उससे बड़ा फिर उससे बड़ा मण्डल बनाकर वे समस्त रस पण्डिता गोपीगण एक दूसरे के अंग से ठसकर जुड़ी हुई अपने सुकोमल और चंचल हस्त कमलों से जल को कंपाने लगीं।

(८६४) इस प्रकार वे गोपीगण महा आनन्दोत्सव करते–करते क्रमशः विधुमुखि श्रीराधा के निकट ही आ गयीं जब उन सब रमणियों को प्रियतम श्रीकृष्ण का संधान न हो सका तो वे सभी हास्य से शोभित होती हुई खड़ी हो गयीं।

(८६५) इस अवस्था में उन सबको खड़े और हँसते देखकर मध्यस्थिता विधुवदना श्रीराधा पूछने लगीं बोलो तो तुममें से किसने उन्हें नीचे से भागने का स्थान दिया ? और वे कुटिल कहाँ से भागे हैं ?

नो मया न च मया न मयापि, प्रत्तमन्तरमयं तु तथापि।
कुत्र वा सखि ! कयाप्युत रीत्या, प्रापलायत तवैव हि भीत्या।।८६६।।

(कृष्णा० ४/१७१)

तत्त्वमेव सखि ! वेत्सि नितान्तं, नो वयन्त्वपगतं तव कान्तम्।
गोपयस्यपि कथं त्वदधीना, मादृशीःप्रति विलास नवीना।।८६७।।

(कृष्णा० ४/१७२)

इत्यमूभिरुपहस्य विनुन्ना, सा तिलार्धविरहेऽप्यतिखिन्ना।
विस्मिता स्थितवती कृतचिन्तं, न्यक्षिपद्दिशि दिशि स्वदृगन्तम्।।८६८।।

(कृष्णा० ४/१७३)

गुञ्जितेन कृतवाग् व्यवसायः, पुञ्जितो मधुलिहां समुदायः।
व्याजहार नीलनिवन लीनं, लीलया कुतुकिनं तमदीनम्।।८६९।।

(कृष्णा० ४/१७४)

तास्तथैव कृतमण्डल बन्धं, तत्पलायनभियाऽप्रतिबन्धम्।
सत्वरास्तमभितः परिव्रवुः, कां श्रियञ्च परमां न विवव्रुः।।८७०।।

(कृष्णा० ४/१७५)

---

(८६६) तब वे सब सखीगण कहने लगीं– 'हमने तो स्थान नहीं दिया' मैंने भी नहीं, मैंने भी नहीं, किन्तु वह नागर तुम्हारे भय से कहाँ किस तरह भाग गये हैं।

(८६७) हे सखी ! तुम निश्चय ही उनके तत्व को जानती हो। हम तुम्हारे भागे हुए प्रियतम के विषय में कुछ भी नहीं जानती। तुम नवविलसित कान्ता हो और वे एकमात्र तुम्हारे ही अधीन हैं फिर तुम हम जैसी अनुगता सखियों से क्यों गोपन कर रही हो ?

(८६८) इस प्रकार सखीगण द्वारा चलायमान एवं उपहास किये जाने पर श्रीराधा प्रियतम का तिलार्द्ध विरह सहन करने से दुखिता और विस्मिता होते हुए चिन्तापूर्वक इधर–उधर देखने लगीं।

(८६९) तब गूँजने के छल से ही मानों वाक्यों का उच्चारण करता हुआ मधुकरों के पुंज ने नलिनीवन में छिप हुए लीला कौतुकी प्रसन्न वदन श्रीकृष्ण का संधान बता दिया।

(८७०) तब सब सखियों ने उस कमल वन के निकट जाकर पूर्व की भाँति मण्डलीबन्धन बना लिया जिससे कि अब वे वहाँ से भाग न सकें। अहो ! तब कितने सुन्दर शोभा विस्तार पाने लगे।

आवृतः स परितोऽयममूभिः, र्जित्वरीभिरिव काम–चमूभिः।
आप तुष्टिमथ दृष्ट्यरविन्द, स्यन्दमान करुणामकरन्दः।।८७१।।

(कृष्णा० ४/१७६)

पद्मिनीवनविहारिणमेकं, किं नु वेष्टयथ मामतिरेकम्।
निर्जिता अपि ह्रियं न लभधेव, खेलितुं पुनरपि प्रयतधेव।।८७२।।

(कृष्णा० ४/१७७)

इत्युदार–मधुरं मधुरञ्जि, व्याहरन्तमबलागणगञ्जि।
सस्मथं सकुतुकं सविरोषं, सुभ्रुवो जगदुरेनमदोषम्।।८७३।।

(कृष्णा० ४/१७८)

पद्मकेलि–समरं विरहय्य, त्वं सरोरुहवनं प्रपलाय्य।
प्राप्तवानसि जितोऽस्यवलाभि, र्लज्जसे न हि कलाकुशलाभिः।।८७४।।

(कृष्णा० ४/१७६)

वारिमज्जनमिषेण हि मूर्त्तं, धूर्त्त भावमवलम्ब्य मुहूर्त्तम्।
वर्त्मनाथ कतमेन कथं वा, निर्गतोऽसि ह्रियमेषि न किं वा ?।।८७५।।

(कृष्णा० ४/१८०)

---

(८७१) काम सेना की तरह जयशीला सखीगणों द्वारा चारों ओर से घिरे हुए श्रीकृष्ण के नेत्र कमलों से उस समय करुणारुपी मधु झरने लगा और उससे वे बहुत अधिक सुखी हुए।

(८७२) वे कहने लगे– पद्मिनी वन में बिहार करते हुए अकेले मुझे आकर तुमने क्यों घेर लिया है। पराजित होकर भी क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती ? अब खेलने के लिए क्या पुनः चेष्टा कर रही हो।

(८७३) श्रीकृष्ण के प्रिय मधुसिक्त साथ ही तिरस्कार सूचक वाक्यों को सुनकर ब्रज सुन्दरीगण हँसती–हँसती कौतुक एवं रोष से भरे हुए वचन उन निर्दोषी कृष्ण को कहने लगीं।

(८७४) तुम पद्मकेलि युद्ध त्याग करके भागकर यहाँ कमलवन में आकर पकड़े गये हो और हम सब चतुरा अबलाओं द्वारा पराजित हो ही गये हो अतः तुम्हें ही लज्जा आनी चाहिए।

(८७५) जल में डुबकी लगाने के छल से एक मुहूर्त में ही धूर्तता के साथ न जाने कहाँ से तुम भागकर यहाँ आ गये हो! ओ हो तुम्हें तो बिल्कुल लज्जा नहीं है।

वेत्तु कोऽत्र कथयिष्यिति कस्मै, युज्यते कथयितुं न परस्मै।
योऽभवत् परिभवो भवतीभ्य, स्तां न्यवेदयंनलिनिभ्यः।।८७६।।

(कृष्णा० ४/१८१)

एक एष वहवो हि भवत्यः, खेलने परिभवोऽस्य हि सत्यः।
इत्युवाच सुमुखि यदि मुख्या, प्रेयसो व्यजनि काचिद्भिख्या।।८७७।।

(कृष्णा० ४/१८२)

एहि सुन्दरि ! ममासि सपक्षा, वेत्सि मेऽन्तरममूर्न विपक्षाः।
पूजयामि भवतीमिति कृष्ण, स्तामभूषयदतीव सतृष्णः।।८७८।।

(कृष्णा० ४/१८३)

बीजकोषशकलैरवतंसः, सच्छदैश्चिकुर–चारुवतंसः।
केशरैश्च कुटिलालकशिल्पं, तेन तेन उरुवाच्छमनल्पम्।।८७९।।

(कृष्णा० ४/१८४)

शैवलेन मणिकाञ्चीरुदारः, सन्मृणाल–शकलैरपि हारः।
गण्डमण्डलमकारि सरागै, र्मण्डितं कमलषण्ड–परागैः।।८८०।।

(कृष्णा० ४/१८५)

(८७६–७७) श्रीराधा कहने लगीं– 'इस पराभव की बात को कौन समझेगा ? और किसको जाकर ये कहेंगे ? किसी अन्य के पास जाकर कहना भी उचित नहीं हैं तुम सबसे जो इनकी पराजय हुई है ये यहाँ आकर इन नलिनियों के पास निवेदन कर रहे हैं देखो ! यह अकेले हैं और तुम सब बहुत हो तो क्यों न खेल में तुमसे पराजित होंगे ?' इस प्रकार यूथेश्वरि सुमुखि श्रीराधा के मुख से परिहासोक्ति सुनकर प्रियतम श्रीकृष्ण ने कुछ अपूर्व सुख का अनुभव किया।

(८७८) तब श्रीकृष्ण बोले– हे सुन्दरि ! एक तुम ही मेरी सपक्षा हो और तुम मेरे अन्तर की सब जानती हो। ये विपक्षागण मेरे मन के भाव को कुछ भी नहीं समझती। आओ मैं तुम्हारी ही पूजा करुँगा ऐसा कहकर अति तृष्णा परायण श्रीकृष्ण उनको सज्जित करने लगे।

(८७९) श्रीकृष्ण ने कमलों के बीज कोष द्वारा उनके कर्ण भूषण तैयार किये, उत्तमोत्म पत्रावली द्वारा मनोज्ञ केशों का चूड़ा निर्माण किया और बहुत ही भावपूर्वक कमलों के पराग द्वारा कुटिल अलकावलि को अनेक प्रकार की शिल्प रचना द्वारा सजाया।

(८८०) शैवाल द्वारा मणि कांची की तरह अति उत्कृष्ट मेखला की रचना की और उत्तम मृणाल खण्ड द्वारा हार तैयार किया और कमलों के सुन्दर पराग द्वारा कपोलों को विभूषित किया।

पाणिना पयसि पाणितलस्थे, ताड़िते कलरवैरवतस्थे।
तैरकारि जलमण्डूकवाद्यं, ताभिरात्मजयडिण्डिमवाद्यम्।।८८१।।

(कृष्णा० ४/१८६)

हारवल्लिषु वभौ गुणनाश, स्तत्रबन्धरहितः कचपाशः।
ते रदच्छदपुटाः क्षतरागाः, सर्वलेपरहिताः स्तनभागाः।।८८२।।

(कृष्णा० ४/१६१)

लोचनं विगताञ्जनमासीत् किंकिणि किमपि मौनमयासीत्।
प्राप नीविरपि मोक्षपरत्वं पश्य कृष्ण जलकेलिमहत्वम्।।८८३।।

(कृष्णा० ४/१६२)

व्रीड़येव परया तनुलग्नं, त्यागभीतिवशतोऽतिविरुग्नम्।
निर्गलज्जललवैरतिदीनं, रोदितीव सुदृशामथ चीनम्।।८८४।।

(कृष्णा० ४/१६३)

पाण्डिमानमगमत्तनुशोभा, लोचनं विकचकोकनदाभाः।
तच्च तच्च सुदृशामतिरम्यं, हृत्पतेः समभवन्ननु काम्यम्।।८८५।।

(कृष्णा० ४/१६४)

---

(८८१) यह देखकर सब गोपियों ने हाथ में जल लेकर दूसरे हाथ से उसके ऊपर जोर से आघात करते हुए एक प्रकार की कलरव ध्वनि करके अपनी जयसूचक डिम्डिम वाद्यसुरु "श्रेष्ठ 'जल मण्डूक वाद्य' करना प्रारम्भ किया।

(८८२–८३) आहा ! श्रीकृष्ण चन्द्र के जलकेलि की महिमा देखो जिस प्रकार तीनों गुणों से रहित, निर्बन्ध, निराग, निरंजन, निर्लेप और नीरव होकर मोक्ष प्राप्ति की योग्यता होती है उसी प्रकार इन गोपियों की दशा हुई, जैसे हार आदि का गुण नाश (टूटना), केश कलाप बन्धन शून्य, अधर आदि का राग (लालिमा) दूर होना, वक्षस्थल का अनुलेपन दूर होना, नयनों का अंजन विगलित होना, किंकिणि आदि का मूक होना और नीवी आदिका बन्धनच्युत होना। (एक जलकेलि द्वारा ही गोपियों की देह में मुक्ति के समस्त लक्षण प्रकाशित हो गये।)

(८८४) ब्रज सुन्दरियों के अति सूक्ष्म वस्त्र त्याग के भय से अति दुखित एवं लज्जित होते हुए ही मानों उनके देह में लगे हुए झरते हुए जल बिन्दुओं के छल से अति दीन हीन होकर रोदन करने लगे।

(८८५) उनकी देह कान्ति पाण्डुवर्ण (फीकी) की हो गयी। नेत्र खिले हुए लाल कमल की तरह होने पर भी उनका यह अति रमणीय स्वरूप प्राणेश्वर श्रीकृष्ण को अतिशय रुप से सन्तुष्ट करने लगा।

आलिपालिरथ वारिणि राधा, कृष्णयोः प्रणयत् क्षतबाधा।
वारिखेलनमखेऽवभृताख्यं, स्नानमारभत दीव्यदभिख्यम्।।८८६।।

(कृष्णा० ४/१६६)

चारुभिः करसरोरुह–कोषै, निक्कणत्कनक–कंकणघोषैः।
क्षालयन्त्य उचित प्रणयार्द्राः, स्वेदशीकरभरैरपिसार्द्राः।।८८७।।

(कृष्णा० ४/१६७)

पद्मरेणुदल–केशरनाले, राविलम्बरपुरपूर्वमरालैः।
तत्तयोर्विदधिरेऽथ रमण्यो, हारि वारिकरि–वारकरिण्योः।।८८८।।

(कृष्णा० ४/१६८)

गन्धतैल–मिलनव्यवसायैः सप्रबन्ध शुभगन्धकषायैः।
केशशोधन साध्यत पूर्वं, गात्र शुद्धिरथ ताभिरपूर्वम्।।८८९।।

(कृष्णा० ४/१६९)

सेवालीभिः कृष्ण–कृष्णप्रियास्तास्तैलैर्गन्धोद्वर्त्तनैः सेवितांगाः।
प्रेमणान्योन्यं स्नापयित्वा प्रहर्षात् स्नात्वोत्तस्थू नीरतस्तीर्थतीरे।।८९०।।

(गोवि० १५/९३)

---

(८८६) तदनन्तर वे सब सखीगण युगल प्रेम में विभोर होती हुई समस्त श्रान्ति को विस्मृत हो गई और उसी जल में केलि यज्ञ की समाप्ति पर दिव्य शोभा सम्पन्न 'अवमृत स्नान' (यज्ञोपरान्त स्नान) के लिए प्रस्तुत हुई।

(८८७–८८) तब महाप्रणयवती और स्वेद बिन्दुओं से युक्त देह वाली ब्रजरमणीगण, जलहस्ति और जलहस्तिनियों की तरह विलास परायण युगल किशोर की देह को कमल के पराग, दल, केशर, नाल आदि द्वारा मलिन देखकर अपने स्वर्ण कंकणों की झंकार करने वाले सुचारु कर कमलों को किंचित वक्र करके उनकी देह को सुचारु रुप से जल को धोकर अपूर्व रुप से सुन्दर बना दिया।

(८८९) उन्होंने अति उत्तम सुगन्धि युक्त रसों के साथ सुगन्धित तेल मिलाकर प्रथम उनके केशों को सुलझाया और फिर अपूर्व रुप से उनकी देह का मार्जन किया।

(८९०) सेवा परायणा समस्त सखीगनों ने श्रीकृष्ण और कृष्ण प्रियाओं के अंग को सुगन्धित तेल और उबटन द्वारा मार्जित करके उन्हें स्नान कराया और सबने भी प्रेमपूर्वक एक दूसरे को आनन्द से स्नान कराकर जल से बाहर घाट पर आ गयीं।

गौरांगीणामंगलग्नाम्बरान्ता, द्वारां धारा निष्पतन्त्यो विरेजुः।
यद्वत् सौवर्णाचल क्षुद्रशृंग–श्रेणीलग्नाच्छारदाम्भोदवृन्दात्।।८६१।।
(गोवि० १५/६४)

विस्रस्तकुन्तलततेः शिखराद्गलन्तस्तासां गुणग्रथितःमौक्तिकपाणितुल्याः।
अन्तर्हृदीशितुरलं जलबिन्दवोऽमी एकावलीनिचयतामुपलभ्य रेजुः।।८६२।।
(गोवि० १५/६५)

स्वप्नेऽपि दुर्लभविलोकलवस्य तस्य दिष्ट्याप्त–विघ्न रहितेष्टसुसंगमस्य।
चित्रं चिरान्मधुरिमामृत मापिबन्त्य–स्तृष्णाभिवृद्धिमगमन् द्विगुणां मृगाक्ष्यः।।८६३।।
(गोवि० १५/६६)

आलीचयेन परिमार्जित देहकेशश्चीनांशुकैः परिहितोद्गमनीयचेलः।
कृष्णश्च कृष्णरमणीनिचयः ससभ्यः श्रीपद्ममन्दिरमितो द्रुतमारुरोह।।८६४।।
(गोवि० १५/६६)

पद्म मन्दिर के दक्षिण में मणि वेदी पर वेशभूषा आदि :–

(८६१) स्वर्ण वर्ण पर्वत के छोटे से शिखर देश से लगा हुआ कोई शरत्कालीन श्वेतवर्ण का मेघ हो उससे गिरने वाली जलधारा के समान गौरांगी ब्रजांगनाओं के अंग रुपी स्वर्ण पर्वत से लगे हुए श्वेत वर्ण का मेघ रुपी वस्त्र से गिरती हुई जलधारा शोभा पाने लगी।

(८६२) और स्नान से बाहर आयी हुई ब्रजांगनाओं की बिखरी हुई केश राशि के अग्रभाग से सूत्र में गुथी हुई मोतियों की माला के समान गिरने वाले जल बिन्दु मानों प्राणेश्वर श्रीकृष्ण के वक्षस्थल में सुशोभित इकलड़ी मोतियों की माला के समान शोभा पाने लगी।

(८६३) आहा ! क्या ही आश्चर्य है ? कि जो ब्रजगोपीजन स्वप्न में भी श्रीकृष्ण के दर्शन लेश मात्र के लिए भी सुदुर्लभ मानती थीं आज भाग्य से वही श्रीकृष्ण का वांछित निर्विघ्न संग उन्हें प्राप्त हुआ है और वे सब श्रीकृष्ण के माधुर्यामृत का दीर्घ काल तक पान कर रही है लेकिन फिर भी उनकी तृष्णा द्विगुणित होकर बढ़ती ही जा रही है।

(८६४) तत्पश्चात् सेवापरायणा सखियों ने सूक्ष्म वस्त्र से श्रीकृष्ण एवं उनकी प्रियाओं के देह और केश पाश का मार्जन कर दिया और उन्हें परिधेय वस्त्र पहना दिये और सब मिलकर वृन्दा आदि सखियों के सहित श्रीराधाकुण्ड के तट से नैऋत कोण में स्थित श्रीपद्म मन्दिर नामक कुंज में आ गये।

अनल्पैराकल्पैः कुसुमरचितैर्भूषणचयै–र्निविष्टं तं याम्ये कमलगृहसत्कुट्टिमवरे।
निजप्राणप्रेष्ठं प्रणयपरिपाटीघटनया स्वयं श्रीराधालीनिचयसहिता मण्डयति सा।।८६५।।

(गोविं० १५/१००)

धूपैरागुरवैर्विशुष्कसुरभीन् श्रीकंकती–शोधितान् मल्लीगर्भक–वेष्टितान् स्वदयितस्योद्यम्य षद्धवकचान्।
जाती रंगण–यूथिका–बकुल सद्‌गांगेययूथीकृतै–र्गुच्छोत्पल्लवकेतकीदल–लसचाम्पेयवर्हान्वितैः।।८६६।।

(गोविं० १५/१०१)

गुञ्जामौक्तिकमालयुग्म विलसत्पार्श्वद्वयैर्माल्यकै–रुर्द्धोर्द्धक्रमवेष्टितां स्तवकयुक्पिच्छैर्लसच्छेखराम्।
मूले स्थूलतमां सुसूक्ष्मशिखरां कृष्टालिवृन्दां व्यधाच्चूड़ां चामरडामरीमलिकगां राधा जगन्मोहनीम्।।८६७।।

(गोविं० १५/१०२)

यस्यां लग्ना न दृगलिघटा निर्जिहीतेंऽगनानां या संलग्ना हृदयकमले जातु नैतज्जहाति।
यस्याच्छ्‌छाया भ्रमयति सकृद्वीक्ष्यमाणापि कृष्णं कार्ष्णि चूड़ा विलसति जगत् सा पिबन्ती स्वधाम्ना।।८६८।।

(गोविं० १५/१०३)

---

(८६५) तदनन्तर अपने प्राण प्रियतम श्रीकृष्ण को उन्होंने पद्म मन्दिर के दक्षिण दिशा में स्थित सुन्दर मणिवेदी के ऊपर विराजमान किया और सब सखियों के साथ मिलकर श्रीराधा प्रीतिपूर्वक विशेष परिपाटी का प्रदर्शन करती हुई फूलों से बनाये हुए भूषणों द्वारा उन्हें विभूषित करने लगीं।

(८६६–६७) श्रीराधारानी ने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के केशों को अगरु, धूप की सुगन्धि से शुष्क किया और फिर कंघी द्वारा उनको सुलझाया तत्पश्चात् मल्लिका के फूलों की माला से उन्हें वेष्टन करके और जाती, रंगण, जूही, बकुल, सोनजुही के गुच्छे और सुन्दर सुन्दर पत्तों और केतकी के दलों से, सुन्दर चमेली के गुच्छों से एवं मयूर पिच्छों से यथाक्रम मालाओं द्वारा ऊपर से क्रमशः सूक्ष्म करते हुए चूड़ा की रचना की। इसके दोनों ओर गुंजा और मोतियों की माला झूल रही थी और इसकी सुगन्धि से समस्त भ्रमर आकृष्ट होकर इसके ऊपर आने लगे, इस प्रकार चंवर की तरह त्रिजगत के मन को मोहित करने वाला यह चूड़ा शोभा पाने लगा।

(८६८) अहा ! श्रीकृष्ण के इस चूड़ा से ब्रजांगनाओं के नेत्र पंक्ति रुप अलि माला संलग्न होकर कभी भी दूर हटना नहीं चाहती और यह चूड़ा गोपियों के हृदय में बसकर कभी उसका परित्याग करना नहीं चाहता और अधिक क्या ? जिसकी छाया को एक बार देखकर श्रीकृष्ण भी उद्भ्रान्त हो जाते हैं ऐसा श्रीकृष्ण का माधुर्य मण्डित चूड़ा जगत को वशीभूत करके शोभा पा रहा है।

यत्कौंकुमं ललित—तिलकं ललाटे सृष्टं हरेः शशिनिभं मदबिन्दुमध्यम्।
श्रीखण्डबिन्दु—निचितं वहिरेतदासां हृत्खण्डने मदन हाटकचक्रमासीत्।।८९९।।

(गोवि० १५/१०४)

भक्तिच्छदैरन्वितां यां सुर्चच्चां चित्रा चक्रे कौंकुमीं तत्तनौ सा।
लावण्योर्मी चञ्चलास्मारयत्तां नृत्यद्गोपी कृष्णयुग्मानि रासे।।९००।।

(गोवि० १५/१०५)

चित्राथ चित्रमकरोन्निजमित्रगात्रे मैत्रीपवित्रचरिताम्बुदजैत्रकान्तौ।
यत्तत् सखीनयन—खञ्जन—बन्धनाय कन्दर्प—शाकुनिक—विस्तृतजालमासीत्।।९०१।।

(गोवि० १५/१०६)

नानावर्ण सुगन्धपुष्पपटलैर्दीव्यद्दलैः पल्लवैः कृल्प्तैः कुन्डलहारकंकण—लसन्मञ्जीर—काञ्च्यङ्दैः।
ताभिर्याभरणैर्मुदा प्रियतनौ श्रीवेष भंगीकृता सैवासां नयनैण—बन्धन विधौ कामस्य पाशयते।।९०२।।

(गोवि० १५/१०७)

पौष्पैराभरणैश्चाथ राधा काण्डपटावृता।
आलीभिर्भूषिताल्यश्च सेविकालीचयैः क्रमात्।।९०३।। (गोवि० १५/१०८)

---

(८९९) अब श्रीललिताजी श्रीकृष्ण के ललाट के बीच मृगमद का बिन्दु और उसके बाहर चारों ओर चन्दन के बिन्दु इस प्रकार चन्द्रमा के समान कुंकुम के तिलक की रचना की। यह तिलक ब्रजांगनाओं के हृदय को खण्डित करने वाला कामदेव का मानों स्वर्ण चक्र ही बन गया।

(९००) तत्पश्चात् चित्राजी ने श्रीकृष्ण के अंग पर भक्तिच्छेदयुक्त जो कुंकुम की चर्चा चित्रित की वह लावण्य की तरंगों से चंचल होकर उनकों रासलीला में गोपियों के मध्य में श्रीकृष्ण की मूर्ति का स्मरण कराने लगी अर्थात् कुंकुम रेखाओं के मध्य में से जो श्रीकृष्ण अंग की कान्ति झलक रही थी वही मानों कृष्ण और कुंकुम रेखा गोपी स्मृति कराने लगी।

(९०१) तदनन्तर मित्र भाव से विशुद्ध चरित्रा चित्रा सखी ने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के नवजलधर निन्दित कान्ति युक्त अंग पर जो चित्र रचना की वह श्रीराधा के नयन रुपी खंजनों को बांधने के लिए कन्दर्प रुपी व्याध के सुविस्तृत जाल स्वरुप ही बन गयी।

(९०२) और भी नाना रंगों की सुगन्धित कुसुमों की कलियां पुष्प और पुष्पों के पत्तों से बने हुए कुण्डल, हार, कंकण, नुपूर, कांची, वलय आदि भूषणों द्वारा ब्रजसुन्दरीगण ने प्रियतम श्रीकृष्ण के श्रीअंगों को जिस प्रकार सुन्दर रुप से विभूषित किया वह कला तो उनके नयनरुप हरिणों को बांधने के लिए कन्दर्प के पाश की तरह ही बन गयी।

(९०३) तदनन्तर सखियों ने श्रीराधारानी को कालानुरुप वसन से आवृत करके फूलों के भूषणों द्वारा उन्हें सजाया और सेवा परायणा सखियाँ अन्य सखियों को भी क्रमानुसार विभूषित करने लगीं।

अशोकैर्वाणैः सद्विचकिला शिरीषैर्मरुवकैः सरोजैः कुन्दाद्यै रचितबहुभूषाकृतिभरैः।
मणीन् जेतुं शीलैः करचरणवक्षः प्रभृतिषु सुकेली राधां दास्युरुगुणवती भूषितवती।।६०४।।

(चै० १०/१६)

वासितानि पटवासविमर्दै, निर्भरं तनुसुखानि तनूनि।
अंशुकानि दधिरे मदिराक्ष्यो, मन्मथानि किमु शुद्ध य शांसि।।६०५।।

(चै० १०/१६)

अंशुकाञ्चल–लसन्निविड़ोरु, सुभ्रुवां कनकसौभग–कम्रः।
मन्मथस्य नगरी सपताक, स्तम्भदम्भमवहत् सविशेषम्।।६०६।।

(चै० १०/१७)

गन्धवासित–सितांशुकखण्डकै, र्मार्जनाय समलंकतगर्भः।
राजति स्म सुदृशां कचपाशः, कौमुदीमिव पिबंस्तिमिरौघः।।६०७।।

(चै० १०/१८)

मृष्टमुक्तचिकुरा वलयन्ती, चारुवामकरजैरलकाग्रम्।
दर्पणार्पित–विलोचनलक्ष्मीः, कापि कामनगरीव रराज।।६०८।।

(चै० १०/१६)

---

(६०४) अशोक बाण (नील झिण्टी), मल्लिका, शिरीष, मरुवक, कमल कुन्द आदि फूलों से जो अलंकार बनाये वह अपनी शोभा और उज्ज्वलता से मणि माणिक्य को भी फीका कर रहे थे। इन सब अलंकारों से महागुणवती दासियाँ शोभन लीलामयी श्रीराधिका के कर, चरण, वक्ष आदि समस्त अंगों को विभूषित करने लगीं।

(६०५) मदिराक्षी ब्रजांगना सुगन्धित चूर्ण आदि के विमर्दन से अंगों को सुवासित करके अतिशय सुखप्रद सूक्ष्म वसन धारण कराकर मानों कन्दर्प राजा के विशुद्ध यश राशि को ही धारण करा दिया।

(६०६) सुलोचना ब्रजांगनाओं के कनक कान्तिमय सुन्दर वस्त्रों से सुशोभित स्थूल उरुदेश मानों मन्मथ नगरी की पताका युक्त स्तम्भ के सदृश शोभा को वहन करने लगीं।

(६०७) सुगन्धित शुभ्र वस्त्र द्वारा सुकेशी रमणियों के केश कलाप मार्जित होते हुए उनका मध्य देश इस प्रकार शोभा पा रहा था मानों तिमिर राशि ज्योत्सना का पान कर रही हो।

(६०८) कोई गोपांगना अपने सुमार्जित केश कलाप को खोलकर और अपने नेत्रों की शोभा को दर्पण में देखते हुए अपने मनोहर बायें हाथ के नखों से अलकावलि को और ललाट के ऊपर आये हुए छोटे–छोटे चूर्ण कुन्तलों को सँवारती हुई काम नगरी के समान शोभा पाने लगी।

सत्प्रसाधनिकया लघुहेलं, मुष्टिमुक्तचिकुरा वरनारी।
अन्वलिप्त वपुरुत्तमसान्द्रैः, कुंकुमच्छिदुर–चन्दनपंकैः।।६०६।।

(चै० १०/२०)

सान्द्रचन्द्रमृगनाभि–विभिन्नः, कौंकुमेन च रसेन विमुग्धः।
आदधे वपुषि मुग्धवधूभि, श्चन्द्रपंक, इव चन्दनपंकः।।६१०।।

(चै० १०/२१)

भूषणस्य च विभूषणमंग तत् किमेभिरिति कापि वरांगी।
नाभजत् किमपि किन्त्वनुभेजे, केवले सदनुलेपनचेले।।६११।।

(चै० १०/२२)

स्पर्शन, व्यवधिरेव किमन्य, न्मा वृथाः सुतनु तत्तनुबाधाम्।
इत्यदः प्रियसखीवचनान्ते, नानुलेपमपि काचिदियेष।।६१२।।

(चै० १०/२३)

लोचनद्वयरुचैव समीपं, प्राप्तया श्रवणयोरतिशोभा।
जायते किममुनेति कयाचि–न्नादधे कुवलयस्य वतंसम्।।६१३।।

(चै० १०/२४)

---

(६०६) और कोई एक परमासुन्दरी ब्रजवाला उत्तम कंघी द्वारा अपने केशों को सुलझाकर उन्हें खोलकर अत्यन्त सुन्दर शोभायुक्त उत्कृष्ट कुंकुम युक्त चन्दन पंक द्वारा अपने अंगों का विलेपन करने लगी।

(६१०) अन्यान्य मुग्ध ब्रजवधूगण कर्पूर, मृगमद युक्त कुंकुमरस विशिष्ट अति मनोहर चन्दन पंक को सुधाकर खण्ड की तरह अपने अंगों पर लेपन करने लगीं।

(६११) 'अंग तो भूषण के भी विभूषण हैं (अर्थात् भूषणों को भी शोभा प्रदान करने वाले है) तो और भूषणों को धारण करने की क्या आवश्यकता है' ऐसा कहकर कोई उत्तमांगी ब्रजांगना कुछ भी भूषण न धारण करके केवल अनुलेपन और वसन मात्र ही धारण किया।

(६१२) 'यह अनुलेपन तो केवल स्पर्श में (श्रीकृष्ण मिलन में) व्यवधान मात्र है इससे अधिक और क्या है ? अतएव हे सखी इसे लगाकर श्रीकृष्ण सुख में बाधा उत्पन्न मत करो' ऐसा कहकर किसी प्रिय सखी ने अनुलेपन धारण की भी इच्छा नहीं की।

(६१३) 'समीपवर्ती नयन युगलों की शोभा से ही इन कानों की अतिशय शोभा हो रही है अतएव कुण्डल धारण की क्या आवश्यकता है ?' ऐसा विचार कर किसी ब्रजसुन्दरी ने नील कमलों के कर्णभूषण धारण नहीं किये।

मुक्तमुक्तमपि कैशिकमेत–च्छोभते यदपि मुग्धसखीभिः।
स्वीयशिल्पकलनादिव युक्त्या, बन्धनं तदपि चारु वितेने।।६१४।।

(चै० १०/२५)

दर्पणस्य खलु दर्पणमेत, ल्लोच्यतां कथमिति प्रवरांगी।
अंगमैक्ष्यत सविभ्रममंगे, स्वच्छमच्छतरहाटकगौरे।।६१५।।

(चै० १०/२६)

ताश्च ताश्च सुदृशे मिथोमिथः, स्व स्व वेश–कृति चातुरीमथ।
संविधाय पुनरेव संहताः, प्रेयसो निकटमेव संश्रिताः।।६१६।।

(कृष्णा० ४/२०६)

कौमुदी–कुमुदिनि–कुमुद्वती, शीतला–शशिकला–कलावती।
रूपमञ्जरीरनंगमञ्जरी, केलिमञ्जरीरशोकमञ्जरी।।६१७।।

(कृष्णा० ४/२१३)

वन्य भोजन–विधानकौशले, पण्डितामृगदृशो ह्ययनाविले।
अन्वतन्वत तमुद्यमंतया, वृन्दया परिजनैः समेतया।।६१८।।

(कृष्णा० ४/२१४)

---

(६१४) किसी गोपांगना ने देखा कि केश खुले होने पर भी इनकी अत्यन्त शोभा हो रही है लेकिन फिर भी उसने यह विचार कर कि अपने शिल्प कौशल का प्रदर्शन करना चाहिए अतः अत्यन्त कुशलता पूर्वक सुन्दरी सखीगणों के साथ अपने केशों को सुन्दर रुप से गूँथा।

(६१५) 'यह अंग निश्चय ही दर्पण का भी दर्पण अतः दर्पण में अब क्या देखना है' ऐसा विचार कर कोई ब्रजसुन्दरी हावभाव के साथ अपनी निर्मल स्वर्ण वर्ण अंग में अपने अंगों का दर्शन करने लगी।

(६१६) तदनन्तर वे सब सुन्दरीगण परस्पर एक दूसरे के वेश विन्यास आदि को चतुराई पूर्वक सम्पादित करती हुई पुनः सब मिलकर प्रियतम श्रीकृष्ण के पास आकर उपस्थित हुईं।

वन भोजन :–

(६१७–१८) कौमुदी, कुमुदिनी, कुमुदवती, शीतला, शशिकला, कलावती, रुपमंजरी, अनंग मंजरी, केलि मंजरी, अशोक मंजरी, आदि सुन्दर वन भोजन प्रस्तुत करने में सुचतुरा, मृगनयना गोपीजन सपरिकर समागता श्रीवृन्दा आदि सहित वन भोजन की तैयारी करने लगीं।

मातुलंगकरसैरथ युक्तः, सारशुद्ध–मथितैरभिषिक्तः।
ईर्ष्ययेव न परस्परसक्तः, सूक्ष्मशुभ्रमृदुलागुणपृक्तः।।६१६।।

(कृष्णा० ४/२१५)

भव्यनव्यविलसन्मृदमत्र, श्रेणिका–विवरवासपवित्रः।
प्रातरेव भवानहृत–सद्यः, क्षालितान्ननिकरो निरवद्यः।।६२०।।

(कृष्णा० ४/२१६)

मांसलानि शशिमांस–महांसि प्राप्तसार–घनसार–रजांसि।
स्वादुनिर्जित–सुधाम्बुनिधीनि प्रापितानि ललितानि दधीनि।।६२१।।

(कृष्णा० ४/२१७)

पक्व चिक्कण–सुदाड़िमबीजै–स्तदरसैरमृतसौभगबीजैः।
तालशस्यवलयैरतिनव्यै, स्तदरसैरपि सुधारसभव्यैः।।६२२।।

(कृष्णा० ४/२१८)

बीजलांगलिफलोच्चय–गर्भैः, कोमलैः शशिमयूख सगर्भैः।
तालबीज–जठरांकुरमूलै–श्चारु–कोमलतया जित तूलैः।।६२३।।

(कृष्णा० ४/२१९)

स्निग्ध भासुर–कशेरुकराजै–र्बीजकोषभव–निस्तुषबीजैः।
नागरंग फलकोष–समूहैः, पीलूभिश्च रसभारदुरुहैः।।६२४।। (कृष्णा० ४/२२०)

(६१९–२०) तदनन्तर उन्होंने नीबू के रस से युक्त, नवनीत और विशुद्ध घोल से अभिषिक्त और ईर्ष्यावश ही मानों जो परस्पर मेल नहीं होता, ऐसा सूक्ष्म शुभ्र, मृदु एवं अप्राकृत गुणों से युक्त अन्नादि भक्ष्य द्रव्यों को लाकर रखा। उत्तमोत्तम नवीन मिट्टी के पात्रों में रखे हुए पवित्र और प्रातः काल से जिनको घर से लायीं हैं लेकिन फिर भी वे तत्काल सद्य पाक किये हुए के समान निर्दोष पदार्थों को प्रस्तुत किया।

(६२१) उन्होंने अत्यन्त लाभदायक, पुष्टिदायक (शीतल सुस्वादु) चन्द्र किरण खण्डवत् उज्ज्वल अति उत्तम कर्पूर मिश्रित सुधा समुद्र से भी मधुर सुललित दधि राशि को उपस्थित किया।

(६२२–२४) वृन्दाजी आदि वन देवियों ने उन्हें नये नये पलाश पत्तों से बने हुए दोनें लाकर उपहार में दिये जो कि मरकत मणि के वर्ण से भी सुन्दर प्रतीत हो रहे है। ये समस्त दोनें पके हुए सुन्दर अनार के बीजों से एवं उनके अमृत के समान मधुर रस से पूर्ण थे। कुछ दोनों में तालफल और कुछ दोनों में सुधा रस के समान उत्तम ताल का रस, कुछ दोनों में कोमल बीजपुर और कुछ में नारियल के चन्द्राकार श्वेत खण्ड जो कि रुई से भी अधिक कोमल थे। कुछ दोनों में तालबीज के अंकुर और कुछ में उनकी स्निग्ध उज्ज्वल बड़ी–बड़ी केशर, कुछ में कमल के छिलके रहित बीज, कुछ में नारंगी और कुछ दोनें महारसमय पीलू फलों से परिपूरित थे।

आममिष्ट–सहकारफलानां, खण्डकैः सुललितैः सुरसानाम्।
गोस्तनीफलचयैश्च सुपाकैः, स्वादुगन्धलहरीकृतसेकैः।।६२५।।

(कृष्णा० ४/२२१)

उद्यदंकुरकणैरतिमुद्‍गैः, सार्द्रकैः सलवणैरपि मुद्‍गैः।
भास्वदिक्षुशकलैरपि शीर्णैः, कोमलैः सरसता–परिपूर्णैः।।६२६।।

(कृष्णा० ४/२२२)

पूरिता नव–पलाश–पलाशै, र्निर्मिता मरकत–प्रतिकाशैः।
द्रोणयाः परिजनैः सह भव्या, वृन्दयोपजिहिरे वनदेव्या।।६२७।।

(कृष्णा० ४/२२३)

भोक्तुं तान्युपविष्टासौ, शुभ्रपुष्पांशुकासने।
सव्ये श्रीसुबलस्तस्य दक्षिणे मधुमंगलः।।६२८।।

(गोवि० १५/१११)

उपविष्टा पुरो राधा, तानि वृन्दायुतालिभिः।
आनीयानीय दत्तानि तेभ्यः, परिविवेश सा।।६२६।।

(गोवि० १५/११२)

सम्भृता विशद–काचघटीषु, स्फटिकीषु सुतटीषु पुटीषु।
आरराज सा रसाल–रसौघः, सौरभस्य लहरीभिरमोघः।।६३०।।

(कृष्णा० ४/२२४)

(६२५–२७) कुछ दोनों में अपक्व सुरसाल आमफल के खण्ड और कुछ में उनका मधुर रस, कुछ दोनों में सुगन्धि युक्त बड़े–बड़े सुपक्व अंगूर फल एवं अंकुर कणायुक्त अदरख और लवण से युक्त मूँग और जो अत्यन्त आनन्द दायक ऐसे कोमल सरस ईक्षु (गन्ना) के उज्जवल खण्ड, से समस्त दोनें परिपूर्ण थे।

(६२८) अब श्रीकृष्ण इस समस्त भक्ष्य–द्रव्यों का भोजन करने के लिए शुभ्र वर्ण फूलों के आसन पर जो कि वस्त्र से ढका हुआ था, विराज गये उनके बांयें सुबल और दायें मधुमंगल।

(६२६) तब श्रीराधा सखियों सहित सामने बैठकर वन देवी वृन्दाजी द्वारा बार–बार लाकर दी गयी समस्त वस्तुएं श्रीकृष्ण, सुबल और मधुमंगल को परोसने लगीं।

(६३०) शुभ्र कांच मय छोटे–छोटे घटों में जिनके किनारे अत्यन्त सुन्दर रुप से बने हुए थे, और स्फटिक मणि से निर्मित कटोरियों में आम का रस डालकर श्रीकृष्ण को देने लगीं जिसकी सुगन्धि से चारों दिशाएं आमोदित हो उठीं।

सुप्रपानकरसाश्च सुशीताः, शुद्धसार घनसार परीताः।
रेजुरल्पमरिचाः सुसिताभिः, भूरिभिर्विलुलिताश्च सिताभिः।।६३१।।

(कृष्णा० ४/२२५)

नारिकेलवलयाःकृतशंखा–कारचारव उदार सुपुंखाः।
मिष्टता–परिमल–व्ययशंका, श्चारुचेलपिहिता विकलंकाः।।६३२।।

(कृष्णा० ४/२२६)

ऐकमेकमखिलस्यवस्तुनः, स्वादुमोदपरभागवास्तुनः।
ईषदीषदुपगृह्य पाणिना, सा ददौ प्रियकरे स्मितानना।।६३३।।

(कृष्णा० ४/२२७)

चारुकत्तरिकयोत्तमोत्तमं, सा निकृत्त्य सहकारमक्लमम्।
पाणिना प्रणयि–पाणिपंकजे, दत्तमोदमतुलं च सस्वजे।।६३४।।

(कृष्णा० ४/२२८)

उत्तमोत्तममवेक्ष्यपाणिना, सा रसालफलमम्बुजानना।
संनिगाल्य परिपूर्य सत्पुटी, रानिनाय पुरतोऽस्य पौरटी।।६३५।।

(कृष्णा० ४/२२९)

सिताभिः क्षीरसारैश्च, कृतान् श्रीराधिकालये।
नारंगरुचकाम्रादिफलाकार–विकारकान्।।६३६।। (गोवि० १५/१२७)

फल पुष्पयुतान् वृक्षान् शर्करापाक–निर्मितान्।
बिल्वदाड़िमसीर्याम्रनारंग–रुचकादिकान्।।६३७।। (गोवि० १५/१२८)

---

(६३१) शुद्ध उत्कृष्ट कर्पूर मिश्रित अल्प मिर्च (काली मिर्च) युक्त प्रचुर मात्रा में चीनी द्वारा मिलाकर सुशीतल पेय (शर्बत) इत्यादि श्रीकृष्ण के सामने रखे।

(६३२) सुन्दर नारियल को शंख के आकार के गोल–गोल अमनियाँ करके उसे पुंजीभूत करके रखा। उसकी मिठास और सुगन्धि नष्ट न हो इसलिए एक सुन्दर वस्त्र से ढक दिया।

(६३३) श्रीराधा मधुर रस और सुगन्धि युक्त समस्त वस्तुओं में से प्रत्येक का थोड़ा–थोड़ा भाग लेकर हँसती हुई प्रियतम के कर कमल में देने लगी।

(६३४–३५) सुन्दर कटारी से उत्तम रुप से अनायास आम को अमनियां करके प्रियतम के हस्तकमल में देती हुई अतिआनन्द को प्राप्त हुई। उन्होंने उत्तम–उत्तम आम निकालकर अपने हाथ से उनका रस निकाल कर स्वर्णमय उत्तम पात्रों को पूर्ण करके श्रीकृष्ण के सम्मुख रखा।

(६३६–३७) और श्रीराधारानी अपने भवन से जो खोवा, चीनी से बने हुए कोई नारंगी के, कोई आम के आकार के लड्डू इत्यादि तथा चीनी के पाक में डालकर बनाये गये फल पुष्प के आकार वाले बेल, अनार, नारियल, आम, नारंगी और वृक्षाकार साँचे में ढालकर तैयार किये गये सन्देश इत्यादि।

कृष्णपञ्चेन्द्रियाहलादिगुणान् गेहे तया कृतान्।
लड्डूकानि चन्द्रकान्ति–गंगाजलमुखानि च।।६३८।।

(गोवि० १५/१२६)

पनसाम्रादिकरसान् मधुचन्द्रसितान्वितान्।
कर्पूरामृतकेल्यादिन्यानीतानि प्रियालीभिः।।६३६।।

(गोवि० १५/१३१)

पर्यवेशयदेतानि सर्वाणि राधिका क्रमात्।
ताभ्यां सह हरिस्तानि बुभुजे कमलेक्षणः।।६४०।।

(गोवि० १५/१३२)

वटुर्निन्दन् प्रशंसंश्च भक्ष्याणि च तदर्पिकाः।
सर्वास्ता हासयामास सनर्ममुखवैकृतैः।।६४१।।

(गोवि० १५/१३४)

यदयदेव दयिताकरकोषे, सा ददाति सुषमाकृतपोषे।
तत्तदैव वुभुजे स सहासः, प्रेम सत्प्रकटयन् सविलासः।।६४२।।

(कृष्णा० ४/२३०)

एवमेव स समाप्य कानन प्रीतिभोजनमथाम्बुजाननः।
आचचाम बहु वामलोचनः, पुण्डरीकदल दीर्घलोचनः।।६४३।। (कृष्णा० ४/२३१)

(६३८–४०) श्रीकृष्ण की पंचैन्द्रियों को आनन्द देने वाले गुणों से युक्त चन्द्रकान्ति और गंगाजल नाम के लड्डू और मधुर कर्पूर और चीनी से मिश्रित कटहल, आम का रस, कर्पूर केलि, अमृत केलि इन समस्त मिष्ठानों को सखियों ने लाकर राधारानी के सम्मुख रखा और राधारानी उन सबको यथाक्रम परिवेशन करने लगी। श्रीकृष्ण सुबल और मधुमंगल के साथ इन सब पदार्थों का भोजन करने लगे।

(६४१) मधुमंगल इन सब भक्ष्य पदार्थों में किसी की निन्दा और किसी की प्रशंसा करते हुए उन सब द्रव्यों को लाने वाली सखियों की और परिवेशन करने वाली राधारानी को 'यह वस्तु स्वादिष्ट है और यह स्वादिष्ट नहीं है' 'यह सखी निपुण है यह अनिपुण है' इस प्रकार परिहास वचन बोलते हुए और कुछ मुख की आकृति बनाते हुए सबको हँसाने लगे।

(६४२–४३) प्रियतमा श्रीराधा ने जो–जो वस्तु श्रीकृष्ण के सुन्दर कर कमल में दी वह सब उन्होंने हँसते–हँसते महान प्रेम को प्रकट करते हुए विलास पूर्वक भोजन किया इस प्रकार पद्म वचन अति सुन्दर दीप्तिमान कमल दल के समान विशाल नेत्रों वाले श्यामसुन्दर ने वन भोजन को प्रीति पूर्वक समाप्त करके आचमन किया।

सोऽधिवास्य वदनं मुखवासै, श्चारु सारघनसार–विलासैः।
इच्छया मणिशिलोपरि कुञ्ज, द्वारि भूरुहतत्रे प्रससञ्ज।।६४४।।

(कृष्णा० ४/२३२)

यातस्ततः स हरिरम्बुज–मन्दिरान्तः शेतेऽत्र सत्कुसुमकल्पित–तल्पमध्ये।
ताम्बूलदान–पदलालन–बीजनाद्यै–स्तत्र प्रियालिभिरमूं तुलसी सिषेवे।।६४५।।

(गोवि० १५/१३६)

ताम्बूलवीटिकामश्नन् तत्पद्मयाम्य–कुट्टिमे।
शेते शीतलशैय्यायां सुबलेन समं वटूः।।६४६।।

(गोवि० १५/१३७)

कृष्ण भुक्त–परिशिष्टमभीष्टं, प्रेमतोऽत्तुमनसामतिमिष्टम्।
प्राप्य योग्य परिवेशन–कालं, सुभ्रवां हृदयमास विलोलम्।।६४७।।

(कृष्णा० ४/२३३)

मुख्यया सति कियत्युपभुक्ते, ऽस्माभिरत्तुमुचितं हि विविक्ते।
इत्यवेत्य हृदयं स्वसखीनां सा जगाद् सुदती सुमुखीनाम्।।६४८।।

(कृष्णा० ४/२३४)

---

(६४४) सुचारु अति उत्तम कर्पूर द्वारा सुगन्धित मुख वास (ताम्बूल आदि) द्वारा सुवासित वदन श्रीकृष्ण कुंज के द्वार पर वृक्ष के नीचे मणि शिला के ऊपर प्रसन्न होकर विराज गये।

(६४५–४६) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने पद्म मन्दिर के भीतर जाकर शैय्या पर शयन किया जहाँ तुलसी प्रिय सखियों के साथ ताम्बूल, पाद सम्वाहन, चंवर व्यजन आदि द्वारा उनकी सेवा करने लगीं। सुबल और मधुमंगल ने भी ताम्बूल चर्वण करते–करते पद्म मन्दिर के दक्षिण की ओर कक्षों में जाकर शीतल शैय्या पर शयन किया।

(६४७) तत्पश्चात् परम अभीष्ट अत्यन्त मिष्ठ श्रीकृष्ण के भोजन के पश्चात् अवशिष्ट प्रसाद को प्रेम से भोजन करने की अभिलाषा ने सखीगनों के हृदय को परिवेशन के समय ही चंचल बना दिया था।

(६४८) यूथेश्वरियों में प्रधानतमा श्रीराधा के भोजन करने के पश्चात् 'हमें एकान्त में भोजन करना चाहिए' ऐसा अपनी सखियों (मंजरी वर्ग वृन्दा आदि सेवा परायणा सखीगण) के हृदय में भाव उत्पन्न हुआ है ऐसा जानकर सुदन्ति श्रीराधा कहने लगीं–

अश्नुमः सह वयं त्वमनन्दे, साधु साध्वि ! परिवेशय वृन्दे !
आलिभिर्निहि बिना प्रतिपत्तूं, शक्तिरस्ति मम किं पुनरत्तूम्।।६४६।।

(कृष्णा० ४/२३५)

मण्डलेन कुतुकाद्युपविष्टा स्वासु सादरमसावुपदिष्टा।
पर्यवेशयदनुक्रमपाली, राधिकां प्रथमतोऽथ तदालीः।।६५०।।

(कृष्णा० ४/२३६)

वृन्दया प्रतिजनं रसयित्वा, तत्क्रमेण परिवेशितमत्वा।
ता विदुः प्रियतमाधरसीधू–स्पर्शतः प्रकृतितोऽप्यतिसाधु।।६५१।।

(कृष्णा० ४/२३७)

सौहृदेन हृदयं रसयित्वा, ताः क्रमेण सकलं तददित्वा।
साधु धौतवदना मुखवासं, भेजुरात्तघनसार–विलासम्।।६५२।।

(कृष्णा० ४/२३८)

अथोत्फुल्ला ययुः सर्वाः श्रीपद्ममन्दिरान्तरम्।
तल्पे राधा सखीपालिः परितः समुपाविशत्।।६५३।।

(गोवि० १५/१४०)

ताम्बूल चर्वितं ताभ्यः श्रीहरेस्तुलसी ददौ।
नान्दीमुख्यै धनिष्ठायै कुन्दवल्लयै च वीटिकाः।।६५४।। (गोवि० १५/१४१)

---

(६४६) हे उत्तम साध्वी वृन्दे ! हम सब सखियाँ एक साथ भोजन करेंगी तुम सब परिवेशन करो। सखियों के बिना मेरी कुछ भी करने की शक्ति नहीं है फिर भोजन की तो बात ही क्या है ?

(६५०–५१) तब सब सखीगण कौतुक वश मण्डली बांधकर बैठ गईं और वृन्दादि सखीगण प्रथम श्रीराधारानी को और फिर क्रमानुसार बैठी हुई सखी मण्डली को परिवेशन करने लगी। वृन्दाजी ने प्रत्येक सखी को आस्वादन कराया और उस सब सामग्री का भोजन करके इन सबको ही अनुभव हुआ कि प्रियतम श्रीकृष्ण के अधर रस का स्पर्श प्राप्त करके यह समस्त पदार्थ स्वभाव से भी अधिकतर सुस्वादु हो गये हैं।

(६५२) श्रीराधारानी ने सखीवृन्द के साथ सौहार्द भाव से मन को आनन्दित करती हुई क्रमानुसार सभी वस्तुओं का भोजन करके उत्तम रुप से मुख धोकर कर्पूर आदि द्वारा सुवासित ताम्बूल का सेवन किया।

(६५३–५४) इसके पश्चात् सबने आनन्द से उत्फुल्ल होकर पद्म मन्दिर में प्रवेश किया। श्रीराधारानी शैय्या पर बैठ गयीं और समस्त सखियां उनके चारों ओर बैठ गयीं तब तुलसी मंजरी ने श्रीराधा और उनकी सखियों को श्रीकृष्ण का चर्वित ताम्बूल दिया एवं नान्दीमुखी धनिष्ठा और कुन्दलता को पान की बीरी प्रदान कीं।

ततः सा तुलसी रूपमञ्जरी च वनेश्वरी।
भक्ष्याण्युर्वरितान्यादुः सेविकालिचयैः समम्।।६५५।।
(गोवि० १५/१४२)

तासु भुक्त्वागतास्वत्र सख्यस्ततपूर्व कुट्टिमे।
निर्गत्य सुषुपुः सर्वा नान्दीमुख्यादयश्च ताः।।६५६।।
(गोवि० १५/१४३)

ततः श्रीराधिका ताभ्यो ददौ ताम्बूलचर्वितम्।
वृन्दायै वीटिकां सा च तामदन्ती वहिर्ययौ।।६५७।।
(गोवि० १५/१४४)

कृष्णः कान्तां तां समाकृष्य ह्रीणां हासं हासं यत्नतः स्वाननाब्जात्।
ताम्बूलीयं चर्वितं तन्मुखाब्जे न्यस्यन् ह्रस्यन् शाययामास पार्श्वे।।६५८।।
(गोवि० १५/१४५)

श्रीरूपमञ्जरी मुख्य–सखीभिर्वीजनादिभिः।
सेवितौ तौ क्षणं तत्र निद्रासुखमवापतुः।।६५६।। (गोवि० १५/१४६)

अथ क्षणात्तौ प्रतिलब्धबोधावुत्थाय तल्पोपरि सन्निविष्टौ।
पूर्वं प्रबुद्धा प्रसमीक्ष्य सख्यो ययुः सखीभ्यां सह तत्समीपम्।।६६०।। (गोवि० १६/१)

(६५५) तदनन्तर तुलसी रुप मंजरी, वृन्दा देवी और सेवा परायणा अन्यान्य सखीगणों के साथ अवशिष्ट समस्त भक्ष्य पदार्थों का भोजन करने लगीं।

(६५६) इसके पश्चात् सबने आचमन किया और नान्दीमुखी आदि सखी वृन्द ने पद्म मन्दिर से बाहर आकर पूर्व दिशा की ओर कक्षों में आकर शयन किया।

(६५७) तदनन्तर श्रीराधारानी ने रुप मंजरी आदि मंजरियों को चर्वित ताम्बूल प्रदान किया और वृन्दाजी को पान की बीरी प्रदान की और वृन्दा जी उस बीरी को भक्षण करते–करते बाहर आ गयी।

(६५८–५६) तब श्रीकृष्ण ने हँसते–हँसते लज्जित श्रीराधारानी को यत्नपूर्वक अपने पास लाकर अपने मुख कमल से चर्वित ताम्बूल उनके मुख कमल में प्रदान करते हुए आनन्द पूर्वक उन्हें अपने पास शयन करा लिया एवं श्रीरुप मंजरी आदि प्रधान मंजरी गण के चंवर व्यजन द्वारा सेवित होते हुए वे दोनों पद्म मन्दिर में कुछ समय के लिए निद्रा का सुख प्राप्त करने लगे।

शुक सारिका का पाठ :–

(६६०) तदनन्तर श्रीराधाकृष्ण कुछ क्षण पश्चात् ही जागकर पलंग पर बैठ गये। पूर्व से ही जागी हुई सखीवृन्द श्रीराधाकृष्ण को बैठे हुए देखकर धनिष्ठा कुन्दलता आदि के सहित उनके निकट आ गयीं।

वृन्दाप्यायात् स्वशिष्यौ सा बालौ विद्याविशारदौ।
कलोक्ति–मञ्जुवाक् संज्ञौ गृहीत्वा सारिकाशुकौ।।६६१।।

(गोवि० १६/२)

ततस्तौ पठतो नम्रौ जय वृन्दावनेश्वर !
जय वृन्दावनेशानि ! जयताल्यः ! प्रसीदत।।६६२।।

(गोवि० १६/३)

राधाङ्गिगिंगिताभिज्ञा वृन्दा विज्ञा समादिशत्।
पठेति कीरं कीरोऽपि पपाठानन्दयन् सभाम्।।६६३।।

(गोवि० १६/४)

गुणैः स्वैर्हीना मे यदपि कविता नाति मधुरा सतां स्वाद्याथाप्यच्युत–गुणयुतत्त्वेन भविता।
अयः शस्त्री स्पृष्टा मृगयुगृहगा स्पर्शमणिना सुवर्णत्वं प्राप्ता भवति महतां भूषणकृते।।६६४।।

(गोवि० १६/५)

जय श्रीमद्वृन्दावन–मदन नन्दात्मज विभो प्रियाभीरीवृन्दारिकनिखिलवृन्दारकमणे !
चिदानन्दस्यन्दाधिक–पदारविन्दासव नमो नमस्ते गोविन्दाखिलभुवनकन्दाय महते।।६६५।।

(आ० ५/१२)

(६६१–६२) अब वृन्दाजी अपनी शिष्या विद्या विशारद कलोक्ति और मंजुवाक् नाम की दो सारिका और शुक शिशु को लेकर राधारानी के पास आयीं। वह सारिका और शुक अति विनीत भाव से पढ़ने लगे हे वृन्दावनेश्वरि ! आप की जय हो। हे वृन्दावनेश्वर आपकी जय हो ! हे सखीगण ! आपकी जय हो ! आप हमारे प्रति प्रसन्न हों। यह कहकर स्तोत्र पाठ करने लगे।

(६६३) तदनन्तर विज्ञा वृन्दा देवी श्रीराधारानी के संकेत को जानकर अपने शुक को पढ़ो– ऐसा कहकर आदेश दिया और शुक आदेश पाकर सखीवृन्द को आनन्दित करता हुआ पढ़ने लगा।

(६६४) यद्यपि मेरी कविता अतिशयमधुर नहीं है और लालित्य आदि गुणों से रहित हैं तथापि श्रीकृष्ण के गुणों से युक्त होने पर साधुगणों के लिए आस्वादन करने योग्य होगी इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्यों कि धातुओं में हीन गुणों से युक्त शस्त्र (छुरी) व्याघ के द्वारा स्पर्श किये जाने पर भी दैव–वश यदि स्पर्श मणि (पारस) का संग प्राप्त कर ले, तो वह महत् जनों के भूषण के योग्य बन जाती है।

(६६५) अयि विभो ! श्रीवृन्दावन मदन नन्दनन्दन आपकी जय हो ! प्रियतमा गोपीजन ही आपको सुरांगना सदृश हैं। आप समस्त देवताओं में शिरोमणि हैं। हे गोविन्द ! निखिल विश्व के आप ही बीज स्वरूप हो, आप अति महान हो आपको बारम्बार हमारा नमस्कार है।

सूत्रामरत्नदलिताञ्जनमेघपुञ्ज–प्रत्यग्रनीलजलजन्म–समानभासम्।
सुस्निग्धनीलघन–कुञ्चितकेशजालं राजन्मनोज्ञ–शितिकण्ठ शिखण्डचूड़म्।।६६६।।

रोलम्बलालित–सुरद्रुमसूनकल्पि–तोत्तंसमुत्कच–नवोत्पलकर्णपूरम्।
लोलालकस्फूरितभालतल–प्रदीप्त गोरोचनातिलकमुच्चलचिल्लिमालम्।।६६७।।

आपूर्णशारदगतांकशशांकविम्ब, कान्ताननं कमलपत्रविशालनेत्रम्।
रत्नस्फुरन्मकरकुण्डलरश्मिदीप्त, गण्डस्थलीमुकुरमुन्नतचारुनासम्।।६६८।।

सिन्दूरसुन्दरतराधरमिन्दुकुन्द–मन्दार–मन्दहसितद्युतिदीपितांशम्।
वन्य प्रवाल कुसुमप्रचयावकृल्प्त–ग्रैवेयकोज्जवल–मनोहर–कम्बुकण्ठम्।।६६९।।

मत्तभ्रमद्भ्रमरजुष्ट–विलम्बमान–सन्तानक–प्रसवदाम–परिष्कृतांसम्।
हारावली–भगणराजितपीवरोरो–व्योमस्थली–ललितकौस्तुभभानुमन्तम्।।६७०।।

---

(६६६) आपकी कान्ति नीलकान्त मणि दलित–अंजन, मेघ पुञ्ज एवं नवीन नीलपद्म सदृश है। आपके केशजाल सुचिक्कण कृष्ण वर्ण घने और घुंघराले, आपका चूड़ा अत्यन्त मनोहर, मयूर पिच्छों से शोभा पा रहा है।

(६६७) भ्रमर कुल सेवित कल्प वृक्ष के फूलों से बने हुए आभूषण धारण किये हुए, नवीन नील कमल के कुण्डल, चंचल अलकावलि से सुशोभित ललाट मण्डल जिस पर गोरोचन का तिलक झलक रहा है और दोनों भ्रूलता नृत्य कर रही हैं।

(६६८–७०) आपका मुखमण्डल कलंकरहित, शारदीय चन्द्र सदृश मनोहर और नेत्र युगल कमल पत्र की तरह विशाल दर्पण के समान अत्यन्त निर्मल गण्डस्थल, मणिमग्र मकर कुण्डलों द्वारा उद्भासित हो रहे हैं। आपका नासिका उन्नत और अत्यन्त मनोहर, अधर सिन्दूर से भी अधिक सुन्दर लालिमा युक्त, सर्वांग चन्द्र कुन्द कुसुम मन्दार फूलों के समान शुभ्र ईषत् हास्य से उज्ज्वल, कण्ठ नवपल्लव और पुष्पों से बनी हुई माला से सुशोभित, दोनों स्कन्ध चंचल उन्मत्त भ्रमरों से गुनगुनाती हुई चरणों तक लम्बी 'सन्तानक फूलों' की माला से सुशोभित हैं और हारावली में जड़े हुए रत्न ताराओं के समान तथा वक्षस्थल रुपी गगन मण्डल पर मनोहर कौस्तुभ मणि सूर्य के समान देदीप्यमान हो रही है।

श्रीवत्सलक्षण–सुलक्षितमुन्नतांस–माजानुपीन–परिवृत्त–सुजातबाहुम्।
आबन्धुरोदरमुदारगभीरनाभिं भृंगांगनानिकरवञ्जुल–रोमराजिम्।।६७१।।

नानामणि–प्रघटितांगदकंकणोर्मि–ग्रैवेयसारसन–नूपूर–तुन्दबन्धम्।
दिव्यांगराग परिपिञ्जरितांगयष्टि–मापीतवस्त्रपरिवीत–नितम्बबिम्बम्।।६७२।।

चारुरूजानुमनुवृत्त–मनोज्ञजंघम् कान्तोन्नत–प्रपद–निन्दितकूर्मकान्तिम्।
माणिक्यदर्पण–लसन्नखराजिराजद्–रत्नांगुलिच्छदनसुन्दर–पादपद्म्।।६७३।।

मत्स्यांकुशारदरकेतुयवाब्ज बज्रसंलक्षितारुणकरांघ्रितलाभिरामम्।
लावण्यसारसमुदाय–विनिर्मितांग–सौन्दर्यनिर्जित–मनोभवदेहकान्तिम्।।६७४।।

आस्यारविन्द–परिपूरितवेणुरन्ध्र–लोलत्करांगुलि–समीरित–दिव्यरागैः।
शश्वद्द्रवीकृत–विकृष्टसमस्तजन्तु–सन्तानसन्ततिमनन्तसुखाम्बुराशिम्।।६७५।।

(क्र० ३/७–१६)

(६७१–७२) श्रीवत्स चिह्न द्वारा आपको भली प्रकार पहचाना जा सकता है आपके ऊँचे कन्धे आजानुलम्बित भुजाएं, गोलाकार पुष्ट एवं अति सुन्दर हैं। अधर ईषत् उन्नतानत नाभिस्थल प्रशस्त एवं गंभीर रोमावली भ्रमर श्रेणीं की तरह सुन्दर अंगद, कंकण, मुद्रिका, रसना, नुपूर एवं तुन्दबंध अर्थात् सुवर्ण की डोरी में विविध मणियों द्वारा निर्मित कमर की पेटी, श्रीअंग पर दिव्य अंगराग और नितम्ब पर सुन्दर पीत वस्त्र परिवेष्टित है।

(६७३) उरु एवं जानु मनोहर जंघा सुन्दर और अनुवृत्त (पुष्ट) मनोहर, उन्नत चरणाग्र भाग कूर्म के अपेक्षा भी उत्कृष्ट, नखराशि माणिक्य निर्मित दर्पण से भी अधिक शोभा शालिनी ऐसे नखों की पंक्ति से शोभित होती हुई चरणों की उंगलियाँ भी मानों रत्नों के पत्र के समान चरणों को प्रकाशित कर रहीं हैं।

(६७४) अतिशय अरुण वर्ण के चरणों के तलों में मत्स्य, अंकुश, चक्र, शंख, ध्वज, यव, पद्म और वज्र के चिह्न विराजित होने से उनके दर्शन अत्यन्त मनोहर हो रहे हैं। लावण्य के सार सर्वस्व से निर्मित समस्त अंगों के सौन्दर्य से आप कन्दर्प की देह कान्ति को भी जय कर रहे हो।

(६७५) हे नाथ ! आप अनन्त सुखों के सागर स्वरूप हैं। आप अपने मुखकमल से परिपूरित वंशी के रन्ध्र समूहों पर उंगलियों को चलाते हुए जो दिव्य रागों का गान करते हैं, उसके द्वारा समस्त जीव जन्तुओं की वंशावलि पर्यन्त द्रवीभूत और आकृष्ट हो जाते हैं।

वन्दे ब्रजेन्द्रसूनूं तं राधासंगविहारिणम्।।६७६।।

शारिका प्राह–

सुस्निग्धदीर्घ घनकुञ्चितकेश पाशं मन्दभ्रमद्भ्रमरकावलिभव्यभालम्।
सुभ्रूलतं स्वलकमुन्नतचारुनासं घ्रेयं भविष्यति कदास्य तदास्यपदमम्।।६७७।।
(आ० ११/२६८)

माधुर्य सिन्धुमधि यस्य भवेन्निपातस्तत् केवलं मधुरिमाणमुरीकरोति।
उष्णीष सीमनि सहेलगता मुरारे–गोच्छन्दरज्जुरपि मज्जति रम्यतायाम्।।६७८।।
(आ० ११/२६६)

रत्नोल्लसन्मकरकुण्डलताण्डवेन विभ्राजमानतममस्य कपोलबिम्बम्।
ताम्बूलगन्धि–रदनच्छदबन्धुजीवै–र्धन्याः परं प्रमुदिताः परिपूजयन्ति।।६७६।।
(आ० ११/३००)

श्रीवत्सकौस्तुभरमा–वनमालिकानां लक्ष्मीभरेण परयापि च हारभासा।
विभ्राजमान–परिणाहममुष्य वक्षः का नाम वामनयनेच्छति न प्रवेष्टुम्।।६८०।।
(आ० ११/३०१)

---

(६७६) श्रीराधा के संग विहार परायण श्रीब्रजेन्द्रनन्दन को मैं वन्दना करता हूँ।

(६७७) सारिका पढ़ने लगी– जिनके घन कुंचित केश सुस्निग्ध और दीर्घ जिनके सुन्दर ललाट पर अलकावलि मन्द–मन्द हिल रही है उन श्रीकृष्ण की सुन्दर भ्रूलता सुशोभन घुँघराली अलकावलि उन्नत चारु नासिका से अतिशय शोभा प्राप्त मुख कमल कब हमारे घ्राण का विषय होगा ? अर्थात् उस मुखारविन्द की सुगन्धि हमें कब प्राप्त होगी ?

(६७८) माधुर्य सागर में जो गिर जाता है वही मधुर स्वरूप प्राप्त कर लेता है इसी प्रकार श्रीकृष्ण की पाग में विलासयुक्त रीति से बंधी हुई गऊओं को बांधने की पीत पट्ट की डोरी जिसके अग्रभाग में मोतियों का गुच्छ शोभायमान है वह भी बहुत सुन्दर प्रतीत हो रही है।

(६७६) रत्नों से जटित अत्यन्त उज्जवल कुण्डल झूलते हुए श्रीकृष्ण के कपोलों पर अतिशय रुप से शोभा प्राप्त कर रहे हैं, ऐसे कपोलों की ब्रजसुन्दरीगण परम आनन्दित होकर अपनी ताम्बूल राग युक्त अधर रुपी बन्धुजीव (बान्धुनी) पुष्पों द्वारा पूजा करती है।

(६८०) ऐसी कौन सी रमणी है ? जो श्रीवत्स, कौस्तुम, स्वर्ण रेखारुप लक्ष्मी चिह्न, बनमाला से अतिशय सुशोभित एवं हारावली से अत्यन्त दीप्तिमान श्रीकृष्ण के विशाल वक्षस्थल में प्रवेश करने की इच्छा न करे।

जानुद्वयी लवणिमामृत मुद्दिधीर्षोः पार्श्वस्थयोर्मदमनोभव नागयूनोः।
शुण्डाद्वयीव भुजयोर्द्वितयीयमस्य कस्या विलोड़यति हन्त न हृत्तड़ागम्।।६८१।।
(आ० ११/३०२)

आवेल्लितं सुवलितावलिभिर्वलीभि–र्मुष्टि प्रमेयमपि पुष्टमिवौजसा यत्।
लग्नं मुहुस्तदवलग्नममुष्य नोऽन्तर्हा हन्त ! तत् कृशमिदञ्च कृशीकरोति।।६८२।।
(आ० ११/३०३)

लावण्यकल्पतरु–कोटर–कल्पनाभी–निर्यत्तनुभ्रमरराजिवान्मुखीयम्।
रोमावलिर्मलिनिमानमहो वहन्ती हा हन्त ! कालभुजगीव ददंश हृन्नः।।६८३।।
(आ० ११/३०४)

शोणारविन्दरुचिनिन्दकमंघ्रियुग्मं वज्रांकुशध्वज–सरोरुह लक्ष्मलक्ष्मि।
मञ्जीररत्नकिरणोल्लसदंगुलीकं वक्षस्तटीमहह भूषयिता कदा नु।।६८४।।
(आ० ११/३०५)

---

(६८१) घुटनों के लावण्य रुपी अमृत को उठा लेने की इच्छा वाले मदमत्त कन्दर्प युगल रुपी दो युवक हाथियों की सूंड के समान श्रीकृष्ण की दोनों आजानुलम्बित भुजाएं, हाय ! किस सुन्दरी रमणी का हृदय रुपी तड़ाग चंचल नहीं कर देंगी।

(६८२) श्रीकृष्ण का कटि देश जो रेखाओं से युक्त है, और एक मुट्ठी परिमाण होने पर भी पुष्ट होता हुआ शोभा पा रहा है। हाय हाय ! कृष्ण का वह कटि देश पुनः हमारे हृदय में लग्न होता हुआ स्वयं कृश होता हुआ हमारे भी हृदय को कृश बना रहा है, अर्थात् उत्कण्ठा बढ़ाकर विरह जन्य कृशता उत्पन्न कर रहा है।

(६८३) श्रीकृष्ण का नाभिदेश मानों लावण्य रुपी कल्पतरु की कोटर के समान हैं। अहो ! इस नाभि देश से निकलती हुई सूक्ष्म भ्रमरों की श्रेणी की तरह श्याम वर्ण की रोमावली श्रीकृष्ण के हृदय पर्यन्त सीधी जाती है हाय हाय ! यह तो काल भुजंगी की तरह हमारे हृदय को दंशन कर रही है।

(६८४) श्रीकृष्ण के चरण–युगल लाल कमलों की कान्ति की अपेक्षा भी अधिकतर कान्ति युक्त वज्र, अंकुश, ध्वज कमल आदि चिह्नों से अतिशय शोभा प्राप्त कर रहे हैं। नूपुरों के रत्नों की किरणों से चरणों की उंगलियाँ शोभा पा रही हैं। अहो ! श्रीकृष्ण के ये चरण युगल हमारे वक्ष स्थल को कब विभूषित करेंगें ?

शुकः प्राह–

चक्रार्द्धेन्दुयवाष्टकोण–कलसैश्छत्र–त्रिकोणाम्बरै–श्चाप–स्वस्तिक–बज्र–गोष्पद–दरै–मीनोर्ध्वरेखांकशैः।
अम्भोज–ध्वज–पकव–जाम्बवफलैः सल्लक्षणैरंकितं जीयाच्छ्रीपुरुषोत्तमत्व–गमकैः श्रीकृष्णपादद्वयम्।।६८५।।
(गोवि० १६/६)

वन्दे कृष्णपदारविन्दयुगलं यस्मिन् कुरंगीदृशां वक्षोज प्रणयीकृते विलसति स्निग्धोअंगरागः स्वतः।
काश्मीरं तलशोणिमोपरितनः कस्तूरिकां नीलिमा श्रीखण्डं नखचन्द्र कान्तिलहरी र्निव्याजमातन्वते।।६८६।।
(आ० १/१)

शोणस्निग्धांगुलिदलकुलं जातरागं परागैः श्रीराधायाः स्तनमुकुलयोः कुंकुम–क्षोदरूपैः।
भक्तश्रद्धामधुनखमहःपुञ्ज–किञ्जल्कजालं जंघानालं चरणकमलं पातुः नः पूतनारेः।।६८७।।
(आ० १/२)

लीढ़ानेव पथश्चकोरयुवतीयूथेन याः कुर्वते सद्यः स्फाटिकयन्ति रत्नघटितां याः पादपीठावलीम्।
याः प्रक्षालित्मृष्टयोर्जललव–प्रस्यन्दशंकाकृतस्ताः कृष्णस्य पदाब्जयोर्नखमणिज्योत्सनाश्चिरं पान्तु नः।।६८८।।
(चन्द्रो० ७/१५)

---

(६८५) शुक कहने लगा– चक्र, अर्द्धचन्द्र, यव, अष्ट कोण, कलश, छत्र, त्रिकोण, आकाश, धनुष, स्वस्तिक, वज्र, गोष्पद, शंख, मीन उर्ध्व रेखा, अंकुश, पद्म, ध्वज और पक्व जम्बू फल ये सब चिह्न पुरुषोत्तम भगवान के भगवत् स्वरूप के परिचायक हैं। इन सब चिह्नों से अंकित श्रीकृष्ण के चरण युगल सर्वोत्कृष्ट रुप से विराजमान हो रहे हैं।

(६८६) मैं श्रीकृष्ण के चरण युगल की वन्दना करता हूँ। ये पाद पद्म युगल हरिण लोचना ब्रजसुन्दरियों के वक्षस्थल के प्रेमास्पद हैं। इसीलिए इनमें ब्रजांगनाओं का स्वभाविक अंगराग प्रगट हो रहा है, जैसे चरण तलों की लालिमा, वक्षस्थल के अग्रभाग पर लगा हुआ कुंकुम, चरण युगलों के ऊपरी भाग की नीलिमा, वक्षस्थल के नीचे कस्तूरी की चित्रावली और चरणों के नख चन्द्रों की कान्ति मानों इन गोपियों के वक्षस्थल के मध्य भाग में लगे हुए चन्दन के समान शोभा का विस्तार कर रही है।

(६८७) पूनताबधकारी श्रीकृष्ण के चरणकमल अपनी सम्वाहन (दबाना) सेवा प्रदान कर हमारी रक्षा करें। अहो ! इन चरण कमलों के माधुर्य का वर्णन कैसे किया जा सकता है। लाल–लाल रंग की चिकनी उंगलियाँ मानों इसकी (चरणों की) पंखुड़ियाँ हैं। राधारानी के वक्षोजयुगल पर लिप्त कुंकुमराग रुपी परागराशि द्वारा ही इन चरणों को लालिमा प्राप्त हुई है। भक्तगणों की श्रद्धा ही इसका मधु है। नखों से निकलने वाली ज्योति की किरणें ही इसकी केशर है, और जानु ही इन कमलों की दो नाल के समान है।

(६८८) जो चकोरों को आकर्षण करने वाले हैं और जिनकी किरणों को वे चकोर मानों लेहन (चाटना) कर रहे हैं और जो रत्न जटित पाद पीठों को मानों स्फटिकमय कर देते हैं जिनके दर्शन करने से ऐसा प्रतीत होता है मानों वे प्रक्षलित होकर उनमें से जलकण झड़ रहे हैं। श्रीकृष्ण के चरण कमलों की नख–मणि ज्योत्सना हमारी चिरकाल तक रक्षा करे।

चन्द्रेन्दीवरचन्दनेन्दुनलदाच्छीतं लसत्सौरभं राधायाः स्तनसंगलोलुपतमं तत्पाणि–संलालितम्।
तच्छ्रीकुंकुमचर्चितं सुललितं शोभालि–लीलास्पदं तच्छ्रीकृष्णपदाम्बुजं भवतु नः सम्वाहनीयं सदा।।६८६।।

(गोवि० १६/१८)

गुल्फौ बकारेर्लसतोऽतिचिक्कणौ लावण्यभंगोच्छलितौ सुवर्त्तुलौ।
कलिन्दकन्यातनुवीचिनिर्झरा–दर्द्धोदितेन्दीवरकोरकाविव।।६९०।।

(गोवि० १६/२०)

मरकतमणिरम्भास्तम्भसम्भेदि धात्रा भुवनभवनमूलस्तम्भतां लम्भितं यत्।
युवति–निचयचेतः पीलूनीलाश्मकीलं प्रणयतु हरिजंघायुग्ममहो–विघातम्।।६९१।।

(गोवि० १६/२५)

माधुर्यलक्ष्म्या रुचिरासनद्वयं लावण्यवल्लया गुरुपर्वयुग्मकम्।
शोभाश्रियोलंकृति पेटिकायुगं जानुद्वयं भाति मनोहरं हरेः।।६९२।।

(गोवि० १६/२६)

---

(६८६) श्रीकृष्ण के चरण कमल चन्द्र, नीलकमल, चन्दन, कर्पूर (खस) नलद आदि शीतल वस्तुओं से भी अधिक शीतल, श्रीराधारानी के वक्षस्थल का संग प्राप्त करने के लिए अतिशय लोलुप, श्रीराधारानी के कर युगल द्वारा संलालित उनके कुच कुंकुम से चर्चित निखिल शोभा के सहित लीला देवी के आश्रय, ऐसे सुन्दर और सौरभ युक्त श्रीकृष्ण के चरण कमल हमारे लिए सदा ही संवाहन करने योग्य हों अर्थात् ऐसे चरण कमलों के संवाहन का सौभाग्य हमें सदा ही प्राप्त हो।

(६९०) जिनमें लावण्य की तरंगे उच्छलित हो रही हैं ऐसी सुन्दर गोलाकार सूर्य तनया श्रीयमुना की स्वल्प तरंगों के निर्झर में आधे खिले हुए दो नीलकमल की कलियों की तरह अत्यन्त चिकने, बकरिपु श्रीकृष्ण के गुल्फ द्वय (पिंङली) शोभा पा रहे हैं।

(६९१) मरकत मणि से निर्मित केले के खंभे के धैर्य का भेदन करने वाले श्रीकृष्ण के जंघा युगल को मानों विधाता ने त्रिभुवन रुपी गृह को मूल स्तम्भ रुप में स्थापित किया हो और जो युवती वृन्द के चित्तरुपी हाथी को बाँधने के लिए मानों स्तम्भ के समान हैं, श्रीकृष्ण की ऐसी दोनों जंघाऐं हमारे पाप समूह का विनाश करें।

(६९२) श्रीकृष्ण के सुन्दर जानु युगल मानों माधुर्य रुपी लक्ष्मी के दो सुन्दर आसन हैं अथवा लावण्य रुपी लता के दो स्थूल खण्ड हों, अथवा शोभा सम्पति रुपी अलंकारों को रखने के दो सम्पुट हों।

रम्योरुपर्वद्वयमद्‌भुतं हरेर्माहेन्द्रनीलं लघुसम्पुटद्वयम्।
असंख्य गोसंख्य–कुलांगनाततेस्ते चित्तचिन्तामणयोऽ मान्ति यत्।।६६३।।

(गोवि० १६/२६)

उरुद्वयं सुवलितं ललितं वकारेः पीनं सुचिक्कणमधः क्रमकार्श्ययुक्तम्।
कन्दर्पवृन्दवरनर्त्तक–लास्यरंग लावण्यकेलिसदनं हृदि नश्चकास्तु।।६६४।।

(गोवि० १६/३१)

रम्भालिगर्वभरदारण सन्निवेशे मत्तेभहस्त–मदमर्दन–मार्दवे ये।
श्रीराधिकाकरभ–सन्तत सेव्यमाने केनोपमान्तु करयो हरिसक्‌थिनी ते।।६६५।।

(गोवि० १६/३४)

विस्तीर्णपीनमतिसुन्दर–सन्निवेशं रासस्थलं स रतिकाम नटार्वुदानाम्।
आभीरधीररमणी–कमनीय शोभं श्रीश्रोणिमण्डलमलं विलसत्यघारेः।।६६६।।

(गोवि० १६/३५)

कटीरबिम्बं लसदूर्द्धवकाय–तमालनीलाश्मकृतालवालम्।
कृष्णस्य लावण्यजलालिखेलतकाञ्ची–मराली–वलितं विभाति।।६६७।। (गोवि० १६/३६)

---

(६६३) श्रीकृष्ण के अत्यन्त आश्चर्यमय, रमणीय, उरुप्रदेश मानों दो इन्द्रनील मणि से निर्मित छोटे–छोटे सम्पुट हों, लेकिन आश्चर्य का विषय यह है कि असंख्य गोपांगनाओं के चित्त रुपी चिन्तामणि सब इसी में समा जाते हैं।

(६६४) बकरिपु श्रीकृष्ण के जो स्थूल सुगठित उरुद्वय हैं वे अत्यन्त मनोहर और चिकने तथा क्रमानुसार नीचे की ओर कृशतायुक्ता हैं। ये निखिल कन्दर्प रुपी उत्कृष्ट नटों के नृत्य के स्थान स्वरूप हैं। लावण्य के क्रीड़ागृह रुपी यह उरु युगल हमारे हृदय में सदा ही प्रकाशित हों।

(६६५) कदलीखण्ड के गर्व को विनाश करने में सुनिपुण श्रीकृष्ण के उरुयुगल अपनी कोमलता में मदमत्त गजराज का भी मद मर्दन करते हैं और जो श्रीराधा के हस्त युगल द्वारा निरन्तर सेव्यमान हैं ऐसे श्रीकृष्ण के उरु द्वय की कवि किस वस्तु से उपमा करें।

(६६६) जो अतिशय विस्तीर्ण हैं साथ ही स्थूल और सुन्दर रचना युक्त है, रति के सहित कामरुपी नट के विलास स्थल हैं अथवा साक्षात् रासस्थली ही है इसीलिए सुधीरा गोपरमणियों के अत्यन्त अभिलषित हैं ऐसी मनोहारिणी शोभा से युक्त श्रीकृष्ण के नितम्बमण्डल विलसित हो रहे हैं।

(६६७) सुन्दर ऊपर की देह रुपी तमालवृक्ष के नीचे जो सुन्दर मरकतमणि के आलवाल (जल सिंचन के लिए वृक्ष के चारों ओर गोलाकार स्थान) स्वरूप और श्रीकृष्ण के लावण्य रुपी जल में खिलने वाली क्षुद्र मणि घंटिका रुपी हंसिनियों से परिवेष्टित श्रीकृष्ण का कटि प्रदेश शोभा पा रहा है।

दृष्टवा बकारेरवलग्न–सौष्ठवं निजावलग्नस्य कुकीर्त्ति–शंकया।
दुर्गासु दुर्गाजनकस्य भूभृतो दरीषु पारीन्द्रगणा विलिल्यरे।।९९८।।

(गोवि० १६/४४)

श्रीकृष्ण विग्रहतमालसुरद्रुमेऽस्मिन् शोभामरन्दभृतनाभि–सुकोटरोऽस्ति।
लोभाद्वधूद्रगलिपालिरिह प्रविष्टा यत् सा पुनर्नहि निरेति रसे निमग्ना।।९९९।।

(गोवि० १६/४६)

लवणिम–मधु पीत्वा नाभिपद्मान्मुरारे–ब्रजयुवति–जनानां नेत्रभृंगार्भकालिः।
उदर–नलिनपत्रे या पपातोच्चलन्ती तनुरुह–ततिदम्भात् सैव शेते प्रमत्ता।।१०००।।

(गोवि० १६/४६)

ह्रदयुच्छलत्तनुरुहच्छलनिःसृतश्री–नाभिह्रदानुपतितादिरसप्रवाहम्।
अल्पोच्चपार्श्वयुगलं दरनिम्णमध्यं मध्ये मनो मम हरेरुदरं चकास्तु।।१००१।।

(गोवि० १६/५२)

राधाचित्तमराल–दृक्शफरिका–शश्वद्विलासास्पदं काञ्चीसारसपालि–निस्वनि–तटं लोमालि–शैवालकम्।
लावण्यामृत–पूरितं त्रिवलिका सूक्ष्मोभि–विभ्राजितं, श्रीनाभिनलिनं लसत्यघरिपोः श्रीतुन्दसत्पल्वलम्।।१००२।।

(गोवि० १६/५३)

---

(९९८) सिंह सकल श्रीकृष्ण की कटि की शोभा का दर्शन करके अपनी कटि की जो प्रसिद्ध कीर्त्ति है उसका अपयश न हो जाय इस भय से मानों पार्वती के पिता गिरिराज हिमालय की दुर्गम कन्दराओं में जाकर छिप गये हैं।

(९९९) श्रीकृष्ण के देह रुपी तमाल कल्पवृक्ष के शोभा रुपी मकरन्द से पूर्ण नाभिरुपी कोटर में लोभवश समस्त गोपांगनाओं के नेत्ररुपी भ्रमर प्रविष्ट होकर मानों रस में डूब गये और अब वे बाहर नहीं निकल पा रहे हैं।

(१०००) ब्रज सुन्दरियों के नयन रुपी भ्रमर शिशुगण श्रीकृष्ण की नाभि कमल से लावण्य रुपी मधु का पान करके प्रमत्त होकर मानों उदर रुपी कमल पत्र पर जा रहे हैं। इन भ्रमर शिशुओं की पंक्ति ही मानों रोमावली के रुप में वहाँ शयन कर रही हैं।

(१००१) ह्रदय से निकली हुई रोमावली नाभि ह्रद तक जाती हुई ऐसी प्रतीत हो रही है मानों श्रृंगार रस का प्रवाह ही हो जिसके दोनों किनारे कुछ ऊँचे उठे हुए और मध्य देश कुछ नीचा श्रीकृष्ण का ऐसा उदर देश हमारे ह्रदय में प्रकाशित हो।

(१००२) जो श्रीराधारानी के मन रुपी हंस और नयन रुपी मछली के निरन्तर विलास का स्थान है जिनके तट प्रदेश पर किंकिणि रुपी सारस गणों के मधुर शब्द से मुखरित जिसमें रोमावली रुपी शैवाल और लावण्य के अमृत प्रवाह से प्रवाहित त्रिवल्ली रुपी छोटी–छोटी लहरों से शोभित नाभि ही जिसमें पद्म सदृश है ऐसा श्रीकृष्ण का उदर रुपी क्षुद्र सरोवर शोभा पा रहा है।

रेखास्वरूप–रमयाश्रितवामभागं श्रीवत्स–सच्छवि–विराजित–दक्षिणांशम्।
कण्ठस्थ–कौस्तुभ–गभस्ति विराजमानम् शश्वद्विलास–ललितं वनमालिकायाः।।१००३।।
(गोवि० १६/५५)

श्रीवल्लवीहृदयदोहदभाजनं श्रीराधामनोनृप–हरिन्मणिसिंहपीठम्।
त्रैलोक्ययौवतमनोहर–माधुरीकं वक्षःस्थलं सुविपुलं विलसत्यघारेः।।१००४।।
(गोवि० १६/५६)

मुक्तावली–सुरधुनी–तनुरोमराजि–भास्वत्सुता–तरलकान्ति–सरस्वतीनाम्।
संगेन मंगलकरं त्रिजगज्जनानां कृष्णस्य नौमि तमुरःस्थल तीर्थराजम्।।१००५।।
(गोवि० १६/५७)

पीनायतौ लवणिमोच्छलितौ सुवृत्तौ पद्मादि विश्वरमणी–कमनीय शोभौ।
पीनस्तनीहृदयदोहदभाजनं तौ श्रीमद्भुजौ मनसि मे स्फुरतामघारेः।।१००६।।
(गोवि० १६/६३)

(१००३–४) जिसके वामभाग में रेखा स्वरूप में लक्ष्मी जी ने आश्रय लिया है और जिनके वामभाग में स्वर्ण रेखा स्वरुप में विराजमान है और जिनके दायीं ओर श्रीवत्स का चिह्न शोभा दे रहा है जिनका कण्ठ स्थल कौस्तुभ मणि की किरणों से प्रकाशित हो रहा है, जहाँ निरन्तर वनमाला झूल रही है, और जो ब्रजसुन्दरियों की अभिलाषा का आधार स्थल है, और जो श्रीराधारानी के हृदय रुपी राजा के बैठने के लिए नीलकान्त मणि से बने हुए सिंहासन के समान है और जो त्रिभुवन की युवतियों के माधुर्य का एक मात्र स्थान है, ऐसा सुन्दर विशालतम अघरिपु श्रीकृष्ण का वक्षस्थल शोभा पा रहा है।

(१००५) श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर मुक्ताओं की माला मानों गंगा श्यामवर्ण की रोमावली मानों यमुना और हार के मध्य के अरुण मणि की कान्ति ही मानों सरस्वती है। इस प्रकार इन तीन श्रेष्ठ नदियों के संगम से समस्त भुवन का मंगल करने वाला तीर्थराज स्वरूप, श्रीकृष्ण का वक्षस्थल है इसकी हम वन्दना करते हैं।

(१००६) श्रीकृष्ण की जो स्थूल, लम्बी लावण्य का उच्छलन करती हुई सुगठित भुजाएं हैं, उनकी लक्ष्मी आदि समस्त रमणियां वांञ्छा करती हैं, और सुशोभन विशाल वक्षस्थल वाली ब्रजांगनाओं के हृदय की वासनाओं को पूर्ण करने के जो आधार हैं ऐसे सुन्दर श्रीहरि की भुजाएं हमारे हृदय में स्फूर्ति प्राप्त करें।

रत्नस्तम्भौ ब्रजमृगदशां चित्तदोलोत्सवस्य श्रीराधाया रतिजयकलातोरणोत्तानदण्डौ।
दैत्येन्द्रानां परिभवमहायज्ञ नीलेन्द्रयूपौ शुण्डे–काम–प्रमदकरिणोः कृष्णबाहूस्मरामः।।१००७।।
(आ० ८/६)

शंकार्धेन्दुयवांकुशैररिगदाच्छत्रध्वजस्वस्तिकैर्यूपाब्जासिहलैधर्नुः परिघकैः श्रीवृक्षमीनेषुभिः।
नन्द्यावर्त्तचयैस्तथांगुलिगतैरेतैर्निजैर्लक्षणैर्भातः श्रीपुरुषोत्तमत्व–गमकैः पाणी हरेरंकितौ।।१००८।।
(गोवि० १६/६७)

हस्तौ स्वभावमृदुलावपि कर्कशौ तौ शौरेर्महापुरुषलक्ष्मतयोचूरेके।
तन्नानृतं यदि तदा कमठी कठोर–गोपीस्तनानिश–विमर्दनमत्र हेतुः।।१००६।।
(गोवि० १६/६८)

अनंगशर–जर्जर–ब्रजनवीनरामालिह्रद्–विशल्यकरणौषधि–प्रथमपल्लवौ सन्तमौ।
रसोच्छलित राधिकोरसिज–हेमकुम्भद्वयी–विभूषण–नवाम्बुजे ब्रजविधोः करौ दीव्यतः।।१०१०।।
(गोवि० १६/६६)

(१००७) ब्रजसुन्दरियों के चित्त रुपी झूले के रत्नमय स्तम्भ द्वय स्वरूप, श्रीराधा के रति विजय विदग्धता की पताका के दण्डस्वरूप दैत्यराजों के पराभव रुपी महायज्ञ की इन्द्रनील मणि निर्मित यूप (लकड़ी का स्तम्भ) सदृश एवं मदमत्त काम रुपी हाथी की सूंड के समान श्रीकृष्ण की दोनों भुजाओं का हम स्मरण करते हैं।

(१००८) शंख, अर्धचन्द्र, यव, अंकुश, चक्र, गदा, छत्र, ध्वज, स्वस्तिक, यूप, कमल, तलवार, हल, धनुष, परिघ, अर्गल, श्रीवृक्ष (बिल्ववृक्ष), मीन (मत्स्य), ईषु (वाण) ये अठारह चिह्न और उंगुलियों के अग्रभाग में नन्द्यावर्त्त (चक्र) ये उन्नीस चिह्न पुरुषोत्तम भगवान के भगवत्ता के प्रतीक हैं। इनसे अंकित दोनों करतल द्वय शोभा पा रहे हैं।

(१००६) श्रीकृष्ण के कर युगल स्वभावतः कोमल होने पर भी महापुरुषों के लक्षण स्वरूप अतीव कर्कश हैं– यह बात कुछ कवियों द्वारा इसी प्रकार वर्णन की गयी है। यह मिथ्या तो नहीं है सत्य बात तो यह है कि कच्छपी की तरह कठोर वक्षस्थल वाली ब्रजांगनाओं के स्तनों का विशेष रुप से मर्दन करने के कारण ही यह इतने कठोर हैं।

(१०१०) जो कर युगल कन्दर्प शर से जर्जरित ब्रजयुवतियों के ह्रदय के लिए विषल्य करणी (घाव को दूर करने वाली औषधि) के प्रथम पल्लव के समान और जो नाना प्रकार के रसों से उच्छलित श्रीराधारानी के स्वर्ण कुम्भ के समान वक्षस्थल के भूषण स्वरूप, नूतन दो कमलों के समान श्रीवृन्दावन चन्द्र के यह दोनों कर कमल शोभा पा रहे हैं।

श्रीकामांकुश तीक्ष्णश्रृंगमुकुटैः पूर्णेन्दुसन्मण्डलैः श्लिष्टान्योन्यमिलद्दलावलिशिरःपश्चाद्विभागे क्वचित्।
अब्जे चेदभविष्यतां विकसितश्यामाम्बुजान्तर्गते श्रीपाण्योरूपमां तदात्र कवयोऽदास्यन्नमूभ्यां हरेः।।१०११।।
(गोवि० १६/७०)

वृषभ–ककुदनिन्दिस्कन्धयोस्तुंगतांसत् पुरुषवरतयैवेत्याहुरेके बकारेः।
मम तु मतमिदं श्रीराधिकादोर्मृणाली–सततमिलनमोदात् फुल्लतैवात्र हेतुः।।१०१२।।
(गोवि० १६/७१)

अंसौ हरेरुल्लसतः समुन्नतौ मन्ये लसत्कौस्तुभ–कण्ठमाधुरीम्।
द्रष्टूं सदोद्ग्रीविकयोत्सुखेन तां पार्श्वद्वयेनोन्नमितौ स्वमस्तकौ।।१०१३।।
(गोवि० १६/७२)

ऊर्द्धवे सुविस्तृतमधः क्रमःकार्श्यर्ययुक्तं माधुर्यभूमिभुज आसनमैन्द्रनीलम्।
लावण्यपूरवहनाद्दरनिम्नमध्यमिष्टं दृशां मृगदृशां हरिपृष्ठमीड़े।।१०१४।।
(गोवि० १६/७३)

सुस्थूलमूलाद्दरकार्श्यमञ्जुला, स्वमाधुरीसिंहशिरोधि–दर्पह्वत्।
श्रीकेशजूटस्य विलासखट्टिका, सुवर्त्तूला भाति मुकुन्दकन्धरा।।१०१५।। (गोवि० १६/७४)

(१०११) यदि कोई लालकमल खिले हुए नीलकमल के मध्य में रखा हुआ हो और उसके आगे के सब दलों पर मानों काम के अंकुश रुपी तीखे सींगों वाले मुकुट जो कि पूर्णचन्द्र के मण्डल से सुशोभित हों इस प्रकार की सुषमा वाले कमल से भले ही श्रीकृष्ण के कर कमल की कवि उपमा प्रदान कर सकें।

(१०१२) वृषभ (बैल) के कन्धों के ऊपर स्थित ककुद (ऊँचा सा उठा हुआ मांस पिण्ड) से श्रीकृष्ण के कन्धों की तुलना की जाती है। यह सत्पुरुषों के उत्तम चिह्न मानकर उचित ही है, किन्तु हमारे मत से तो श्रीराधा की भुजा रुपी मृणाली के निरन्तर मिलन के आनन्द से संजात प्रफुल्लता ही श्रीकृष्ण के कन्धों के ऊँचा होने का मुख्य कारण है।

(१०१३) श्रीकृष्ण के दोनों कंधों के ऊँचा होने का कारण हमारी समझ में तो यह आता है, सुन्दर कौस्तुभ मणि से युक्त कण्ठ की प्रसिद्ध माधुरी का दर्शन करने के लिए ग्रीवा से ऊँचे उठकर उत्सुक होकर मानों दोनों ओर से अपना मस्तक ऊँचा उठा रहे हैं।

(१०१४) मृगाक्षी ब्रजसुन्दरियों के नेत्रों को प्रीति दान करने वाले श्रीकृष्ण के पृष्ठ देश की हम वन्दना करते हैं। वह ऊपर से सुविस्तृत और नीचे से क्रमशः कृश होती हुई माधुर्य रुपी राजा के लिए मानों इन्द्रनील मणि के आसन स्वरूप है। और वह अत्यन्त लावण्य के भार को वहन करने से नीचे से कुछ झुकते हुए परम आश्चर्य रुप को धारण कर रही है।

(१०१५) श्रीकृष्ण के सुन्दर स्थूल और नीचे से लेकर कुछ कृश होती हुई, मनोहारिणी ग्रीवा अपनी माधुर्य से सिह की ग्रीवा के दर्प को भी चूर्ण करती हुई और श्रीकेशपाशों के विलास खट्टिका होकर शोभा पा रहे हैं।

पिकतत–शुषिरालीनादनिन्दिस्वरोमि–स्त्रिभुवनजन–नेत्रानन्दिरेखात्रयश्रीः।
नवनवनिजकान्त्या भूषित श्रीमणीन्द्रो विलसति बकशत्रोः कण्ठनीलाश्मकम्बूः।।१०१६।।
(गोवि० १६/७५)

कण्ठोहरेर्लसति कौस्तुभराजहंस–लीलामृताक्षयसरः सततं यतोऽस्मात्।
लावण्यनर्मकवितावरगानसम्पद्–दिव्यापगाः प्रतिदिशं किल निः सरन्ति।।१०१७।।
(गोवि० १६/७६)

नासाहन्वधरोष्ठगण्डचिबुकश्रोत्रादि–दीव्यदलं श्रीदन्तावलिकेशरं स्मितमधुभ्राज्युल्लसत्सौरभम्।
श्रीनेत्रद्वयखञ्जनं भ्रमरिकेर्भ्रूभृंगिकाल्यावृतं श्रीजिह्वादभुत्–कर्णिकं विजयते श्रीकृष्णवक्त्राम्बुजम्।।१०१८।।
(गोवि० १६/७७)

बन्धूके मुकुरौ सुकुन्दकलिकापाल्यो नटत्खञ्जना–वर्द्धेन्दुं तिलपुष्पकं स्मरधनुर्लोलालिमालामपि।
पूर्णेन्दौ यदि तत्कलंकमुदपास्यैतान्यधास्यद्विधिः श्रीकृष्णस्य कवीश्वरा मुखमुपामास्यंस्तदैवामुना।।१०१६।।
(गोवि० १६/७६)

(१०१५) बकारिपु श्रीकृष्ण का कण्ठ मानों इन्द्रनीलमणि से निर्मित शंख के समान और श्रीयुक्त सर्वश्रेष्ठ कौस्तुभ को भी अपनी कान्ति से भूषित कर रहा है और जिसका स्वर समस्त कोकिलाओं की ध्वनि, वीणा वाद्य, वंशी आदि का वाद्य, भ्रमरों की झंकार आदि सबकी निन्दा करता हुआ शोभा पा रहा है, और त्रिभुवन के नेत्रों को आनन्द देने वाले तीन रेखाओं की शोभा से युक्त है।

(१०१६) श्रीकृष्ण का कण्ठ कौस्तुभ रुपी राजहंस के विलास के लिए अक्षय अमृत सरोवर की भांति शोभा पा रहा है, क्योंकि इस सरोवर से लावण्यमयी हास परिहास युक्त कविता स्वरूप वाक्य और उत्कृष्ठ गान रुपी दिव्य नदियाँ निकल रही हैं।

(१०१७) श्रीकृष्ण की नासिका, हनु, अधरोष्ठ, गण्डस्थल, चिबुक, कर्ण, प्रभृति आदि जिसके सुन्दर पत्र हैं, दन्तावलि जिसकी केशर है, सुमधुर हास्य ही जिसका मधु है, जिसकी सौरभ चारों ओर छिटक रही है, सुन्दर नेत्र युगल ही जिस पर दो पक्षी (खंजन) हैं, भ्रू रुपी भ्रमरों के साथ छोटी–छोटी घुंघराली अलकावलि रुपी भ्रमरिकाओं से समावृत, सुन्दर रसना ही जिसकी कर्णिका, इस प्रकार की शोभा से युक्त अभूत पूर्व श्रीकृष्ण का वदन कमल सर्वोत्कृष्ट रुप से विराज रहा है।

(१०१६) विधाता यदि पूर्ण चन्द्र के कलंक को दूर करके उस पर बान्धुली के फूल, दर्पण, सुन्दर कुन्द कलिकाएं, नृत्य करते हुए खंजन अर्द्ध चन्द्र तिल कुसुम, काम का धनुष एवं चंचल अलि माला रख दें तब भले ही कविगण उस पूर्ण चन्द्र के साथ श्रीकृष्ण के मुख की तुलना दे सकें।

उदञ्चदतिमञ्जुलस्मितसुधोर्मि–लीलास्पदं तरंगित–वरांगनास्फुरदनंगरंगाम्बुधिः।
दृगिन्दुमणिमण्डली–सलिलनिर्झरस्यदनो मुकुन्द मुखचन्द्रमास्तव तनोतु शर्माणि नः।।१०२०।।
(गोविन्दविरुदावली २६)

कामं कामपयोनिधिं मृगदृशामुद्भावयन्निर्भरं चेतःकैरव–काननानि मिनामत्यन्तमुल्लासयन्।
रक्षः कोककुलानि शोकविकलान्येकान्तमाकल्पय–न्नानन्दं वितनोतु वो मधुरिपोर्वत्रापदेशः शशी।।१०२१।।
(ज० १/३)

बाल्ये जनन्या करलालने य दंगुष्ठसंगाद्दरनिम्नमध्यम्।
अधोऽगुलिद्वन्द्वकृतोन्नतेश्च स्वल्पोन्नताग्रांशममेयशोभम्।।१०२२।। (गोवि० १६/८०)

नीलोत्पलस्योदयदिन्दूकान्ति–फुल्लैकपौरस्य दलोपमर्दि
लावण्यवन्योच्छलितं मनोज्ञं तच्छ्रीहरेः श्रीचिबुकं चकास्ति।।१०२३।।
(गोवि० १६/८१)

श्रीकर्णभूषणभराद्दरदीर्घरन्ध्रं विश्वांगना नयन–मीन–मनोजजालम्।
गोपीमनोहरिणबन्धन–वागुरा यत् श्रीराधिका–नयनखञ्जन–बन्धपाशः।।१०२४।।
(गोवि० १६/८४)

गान्धर्विका–सपरिहास–सगर्वनिन्दा–खञ्जद्वचोऽमृत–रसायन–पानलोलम्।
शोणान्तरं सुरुचिरं समसन्निवेशं तन्मे हृदि स्फुरतु माधव कर्णयुग्मम्।।१०२५।।
(गोवि० १६/८५)

(१०२०) हे मुकुन्द ! जो हास्यरुपी अमृत तरंगों की खान है, जिसके उदय होने से ब्रजरमणियों का अनंग समुद्र उच्छलित होता है और और जिसके दर्शन से भक्तगणों के नेत्र रुपी चन्द्रकान्त मणि से जलबिन्दु झरने लगते हैं। इस प्रकार का आपका मुख चन्द्र हमारे लिए मंगल विस्तार करे।

(१०२१) जिससे कुरंग नयना गोपांगनाओं का अनंग सागर उच्छलित होता है और जो योगियों के चित्त रुपी कुमुद कानन को अतिशय हर्षित करते हैं और जिससे राक्षस रुपी चक्रवाक शोकाकुल हो जाते हैं मुरारि का वह मुख चन्द्र हमारे सबके आनन्द का विस्तार करे।

(१०२२–२३) बाल्यकाल में माता यशोदा ने अपनी उंगुली के स्पर्श से जिसको कुछ ऊँचा कर दिया ऐसा आगे से कुछ ऊँचा अपरिमित शोभायुक्त एवं चन्द्र कान्ति से जिसके निकट का एक दल प्रफुल्लित हो गया हो, लावण्य वन्या से उच्छलित और मनोहर श्रीकृष्ण का सुन्दर चिबुक जो नीलकमल दल का भी तिरस्कार कर रहा है ऐसा कान्तियुक्त श्रीहरि का चिबुक शोभा पा रहा है।

(१०२४–२५) सुन्दर कर्णभूषणों के भय से जिनके छिद्र कुछ बड़े और विश्व के समस्त रमणियों के नेत्र रुपी मत्स्यों को बांधने के लिए कामदेव के जालस्वरुप, ब्रजसुन्दरियों के नयन रुपी मृग को बाँधने के लिए वागुरा (मृगबन्धनी), श्रीराधारानी के परिहास युक्त गर्व और निन्दा युक्त वक्र वचनों को सुनने के लिए अत्यन्तचंचल ऐसे कुछ लालिमा युक्त (मध्य में) समानाकार मनोहर श्रीकृष्ण के कर्णयुगल हमारे हृदय में निरन्तर स्फूर्ति को प्राप्त हों।

कृष्णस्य पूर्णविधुमण्डलसन्निवेशं राधाधरामृत रसायन–सेकपुष्टम्।
गण्डद्वयं मकरकुण्डलनृत्यरंगम् भातीन्द्रनीलमणिदर्पणदर्प हारि।।१०२६।।
(गोवि० १६/८६)

उष्ठोपरि श्वसन–निर्गमनाल्पनिम्नं बन्धूकजिच्छविदरोच्छवसितोष्ठमध्यम्।
श्रीश्यामिमारुणिमयोमिलन–प्रदेशे स्तोकोन्नतायत–मनोहरसीमशोभम्।।१०२७।।
(गोवि० १६/८८)

बिम्बातिमञ्ज्वधर–मध्यगताल्परेखं स्वं पश्यता मितररागहर–स्वभावम्।
शश्वन्निजामृत–सुवासितमञ्जुवंशी–सूक्ष्मायतध्वनिभिराहृतविश्व चित्तम्।।१०२८।।
(गोवि० १६/८६)

सर्वस्वरत्नपिटको ब्रजसुन्दरीणां जीवातुसीधूचषकं वृषभानुजायाः।
तच्छ्ररलसद्दशनलक्ष्मणलक्षितं श्रीकृष्णाधरोष्ठमनिशं हृदि मे चकास्तु।।१०२६।।
(गोवि० १६/६०)

(१०२६) पूर्ण चन्द्र के मण्डल के समान जिसकी रचना, श्रीराधारानी के अधरामृत रुपी रसायन के अभिषेक से परिपुष्ट एवं मकराकृति कुण्डलों के नृत्य करने के लिए रंगभूमि स्वरुप ऐसे श्रीकृष्ण के गण्डयुगल इन्द्रनीलमणि के दर्पण का गर्व हरण करते हुए शोभा पा रहे हैं।

(१०२७–२६) नासिका की वायु के निकलने से उसके वेग से होठ का ऊपर का भाग कुछ नीचा और मध्य भाग किंचित उठा हुआ कुछ श्याम और लालिमा के मिलने से थोड़ा उन्नत, आयत सुन्दर शोभा वाली विम्बाफल से भी अधिक मनोहारिणी सुषमा जिनके बीच में हल्की सी रेखा विद्यमान है, और दर्शकगणों के अधरों के अतिरिक्त अन्यन्त्र जो अनुराग है, उसको हरण करना ही जिनका स्वभाव है, तथा अपने अधरामृत से अभिषिक्त मनोहर वंशी की सूक्ष्म और दूर तक विस्तार प्राप्त ध्वनि द्वारा जो समस्त विश्व के प्राणियों के चित्त को आकृष्ट करते हैं, ब्रजांगनाओं की समस्त सम्पत्ति को रखने के लिए जो रत्न पिटारी के समान हैं, और श्रीवृषभानु नन्दिनी राधिका के जो जीवातु अर्थात् जीवन धारण के उपाय स्वरुप, अमृत पान के पात्र और उनके दशन चिह्नों द्वारा लक्षित होकर शोभा पा रहे हैं। ऐसे श्रीकृष्ण के अधरोष्ठ हमारे हृदय में सदा–सदा के लिए विराजमान हों।

स्वाकारसौष्ठव–विनिन्दितकुन्दवृन्द–सत्कोरकान् शिखरहीरकमौक्तिकानाम्।
शोभाभिमानभर–खण्डनकान्तिलेशान् वामभ्रुवामधरबिम्बशुकायमानान्।।१०३०।।

(गोवि० १६/६१)

जात्यैव पक्त्रिमसुदाड़िमबीजमञ्जून् शश्वत् प्रियाधर–रसास्वादनेन शोणान्।
कान्तोष्ठशोणमणि भेदन कामटंकान् श्रीमन्मुकुन्द–दशनान्–सुभगाः स्मरन्ति।।१०३१।।

(गोवि० १६/६२)

प्रपन्नजनता–तमःक्षपण–शारदेन्दुप्रभा ब्रजाम्बुजविलोचना–स्मरसमृद्धि सिद्धौषधिः।
विडम्बित–सुधाम्बुधि–प्रबलमाधुरी–डंबराविमर्त्तु तव माधव ! स्मितकड़म्बकान्तिर्मुदम्।।१०३२।।

(गोविन्दविरुदावली १६)

अन्तःप्रेमघृतस्मितोत्तममधु नर्मेक्षरैः संयुता शब्दार्थोभयशक्तिसूचित–रसादीन्दूल्लसत्सौरभा।
आभीरीमदनार्कतापशमनी विश्वैकसन्तर्पणी सा जीयादमृताब्धिदर्पदमनी वाणी–रसाला हरेः।।१०३३।।

(गोवि० १६/६६)

अर्वाङ्मुखेन्द्रमणिसृष्टतिलप्रसनू–कान्तिः स्मराशुगविशेष इवेन्द्रनीलः।
नीलाश्मकृक्तशुकचञ्चुविनिन्दि–रोचिः श्रीनासिकोच्चशिखरा विलसत्यघारेः।।१०३४।।

(गोवि० १६/६७)

(१०३०–३१) श्रीकृष्ण की दन्तावलि अपने सौन्दर्य से कुन्द की कलियों को परास्त करती हुई, पके हुए अनार के दानों की तरह और मणि, हीरे, रत्न एवं मोतियों के सौन्दर्य के अभिमान को अपनी कान्ति के लेश द्वारा खण्डन कर रही है तथा सुन्दर भौंहों वाली ब्रजसुन्दरियों के बिम्बाध ार का आस्वादन करने के लिए शुक पक्षी के सदृश है और जन्म से ही पके हुए अनार के बीजों की तरह मनोहर है। निरन्तर प्रियतमा श्रीराधा के अधरों का रसास्वादन करने के कारण कुछ ललिमायुक्त और उनके अधरों का खण्डन करने के लिए टंक (पाषाण को खण्डित करने वाला यन्त्र) छैनी स्वरुप श्रीकृष्ण की सुन्दर दन्तावलि का सौभाग्यशाली जन ही स्मरण करते हैं।

(१०३२) हे माधव ! भक्तगणों के हृदय के अन्धकार को नाश करने वाली ब्रजरमणियों के हृदयस्थ काम (प्रेम) को वर्द्धन करने वाले एवं सुधा समुद्र के माधुर्य का तिरस्कार करने वाली चन्द्रकान्ति के समान आप की स्मित कान्ति (मृदुहास्य) हमारे असीम आनन्द का वर्द्धन करे।

(१०३३) जो अन्तःकरण स्थित प्रेम रुपी घृत, मृदु हास्य रुपी उत्तम मधु परिहास रुपी शर्करा द्वारा संयुक्त शब्द एवं अर्थ रचना के रस द्वारा कर्पूर युक्त और सुगन्धित एवं जो ब्रजसुन्दरियों के कन्दर्प रुपी सूर्य के ताप का नाश करने वाली विश्व को एक मात्र तृप्ति देने वाली श्रीकृष्ण की वह वाणी रुपा शिखरनी (एक प्रकार का रसाल पेय) जय युक्त हो।

(१०३४) जो उल्टे इन्द्रनील मणि निर्मित तिल पुष्प के समान कान्ति युक्त और जो इन्द्रनीलमणि से बने हुए काम के वाण की तरह और जिसकी शोभा नीलमणि से रचित शुक के चोंच से भी सुन्दर है ऐसी श्रीकृष्ण की उच्च नासिका शोभा पा रही है।

अत्यायते सुविपुले मसृणे सुशोणे सुस्निग्धपीनघनचञ्चलपक्ष्मरम्ये।
तारुण्यसारमदघूर्णनमन्थरे च नेत्रे हरेर्मम हृदि स्फुरतां सदा ते।।१०३५।।

(गोवि० १६/१०२)

क्षीराब्धे कति वीचयः कति दलद्रक्तोत्पलानां दल–द्रोणीसञ्चयवृष्टयः कति मधुन्मत्तालिविञ्छलयः।
हेलोदञ्चदवाञ्चतोर्नयनयोः कृष्णस्य नीलेक्षण–व्यापारे कति नोन्मीषन्ति विविधज्योतिर्विलासच्छलात्।।१०३६।।

अजर्जर पतिव्रता–हृदयबज्रभेदोद्धुराः कठोरवरवर्णिनीनिकर–मानवर्मच्छिदः।
अनंगधनुरुद्धत–प्रचल–चिल्लिचापच्युताः क्रियासुरघविद्विषस्तव मुदं कटाक्षेषवः।।१०३७।।

(गोविन्दविरुदावली १३)

साध्वीस्वधर्म–दृढवर्मविभेददक्ष–कामेषुतीक्ष्णकठिना विलसन्त्यघारेः।
स्वप्नेऽपि दुर्लभसमस्तदरिद्रगोष्ठी–वाञ्छाभिपूरणवदान्यवराः कटाक्षाः।।१०३८।।

(गोवि० १६/१०२)

या विश्वयौवत–विलोलमनःकुरंगा–नाविध्य घूर्णयति नर्त्तन–मार्गणैः स्वैः।
सा भ्रूलता मुररिपोः कुटिलापि कीर्त्याकन्दर्पपुष्पतृणतां तृणतां निनाय।।१०३९।।

(गोवि० १६/१०३)

(१०३५) जो अति विस्तृत, विशाल, चिक्कन (चमकीले), सुस्निग्ध, स्थूल, चंचल और घनी पक्ष्म (पलकों के रोएं) से युक्त होने से मनोहर और जो तारुण्य रस से उत्पन्न हुए मद के कारण घूर्णायमान हो रहे हैं ऐसे श्रीकृष्ण के नेत्र युगल हमारे हृदय में निरन्तर स्फूर्ति को प्राप्त हों।

(१०३६) श्रीकृष्ण के नेत्र युगल जिस समय प्रियाजी के साथ विलास करते हुए उनके माधुर्य का दर्शन करते हैं तब ये नेत्र कुछ श्वेत, रक्त, श्याम, प्रभा का विस्तार करते हुए मानों क्षीरसागर में तरंगें उठ रही हों और उसके अन्तर्गत लाल कमल के दल बिन्दु वर्षा कर रहे हों और उस पर मधुमत्त भ्रमर विलास कर रहे हों। इस प्रकार शोभा पाते हैं।

(१०३७) अघासुर संहारी श्रीहरि के कटाक्ष रुपी बाण तुम्हारे असीम आनन्द का विधान करें, जो काम के धनुष की भांति उद्धत और भ्रू रुपी धनुष से निकल कर दृढ़ता से पातिव्रत्य धारण करने वाली सुन्दरी ब्रजरमणियों के हृदय रुपी वज्र का भेदन करने में और उनके मान रुपी कवच का छेदन करने में समर्थ वो तुम्हारी रक्षा करें।

(१०३८) जो साध्वीगणों के धर्म रुपी दृढ़ कवच को भेदन करने में दक्ष हैं, जो काम के बाणसे भी अधिक तीक्ष्ण हैं और स्वप्न में भी दुर्लभ हैं एवं दीन–हीन जनों की इच्छा पूर्ण करने के लिए जो परम उदार हैं, ऐसे श्रीकृष्ण के नेत्रों के कटाक्ष, विलास को प्राप्त हो रहे हैं।

(१०३९) श्रीकृष्ण की भ्रूलता विश्व की युवतियों के चंचल मन रुपी मृग को अपने नृत्यरुपी बाण द्वारा विद्ध करके घूर्णित कर देती है यह कुटिल भ्रूलता कामदेव के पुष्प धनुष की शोभा को भी तृण तुल्य कर देती है।

चिल्लीलतालकवरूथक–रम्यपार्श्वं कृष्णाष्टमीशशिनिभं गिरिधातुचित्रम्।
राधा मनोहरिणबन्धनकामयन्त्र–काश्मीरचारुतिलकं हरिभालमीडे।।१०४०।।
(गोवि० १६/१०५)

श्लाघ्यायतो भ्रमरगञ्जनचिक्कणाभः सूक्ष्म सुकुञ्चिततरोऽतिघनः समग्रः।
कस्तूरिकायुग–सितोत्पलगन्धहृद्यः कामध्वजासित–सुचामरचारुशोभः।।१०४१।।
(गोवि० १६/१०७)

चूड़ाद्विफाल कबराधर्कजूटवेणी–जूटादिकालकृतबन्धविशेषरम्यः।
यो हृत्सुधारुचि कुरंगति राधिकायाश्चिते स नः स्फुरतु केशव–केशपाशः।।१०४२।।
(गोवि० १६/१०८)

आरक्तदीर्घनयनो नयनाभिरामः कंदर्पकोटिललितं वपुरादधानः।
भूयात् स मेऽद्य हृदयाम्बुरुहाधिवर्त्ती वृन्दाटवी–नगर–नागरचक्रवर्ती।१०४३।।
(प० ८६)

अनंगरसचातुरी–चपल–चारुनेत्राञ्चल–श्चलन्मकरकुण्डल–स्फुरितकान्ति–गण्डस्थलः।
ब्रजोल्लसित–नागरीनिकर–रासलास्योत्सुकः स मे सपदि मानसे स्फुरतु कोऽपि गोपालकः।।१०४४।।
(प० ६६)

(१०४०) भ्रूलताओं और छोटी–छोटी अलकावलियों से जो दोनों ओर से मनोहर है और जो कृष्ण पक्ष की अष्टमी के चन्द्रमा के समान है तथा गैरिक आदि धातुओं से चित्रित है, जो राधारानी के मन रुपी हरिण को बन्धन करने के लिए कामदेव के यन्त्र के समान है, जिस पर सुन्दर कुंकुम (केसर) का बिन्दु शोभा पा रहा है ऐसे श्रीकृष्ण के ललाट को हम नमन करते हैं।

(१०४१–४२) जो केशपाश प्रशंसा के योग्य हैं, भौरों से भी अधिक श्याम, चिक्कण कान्ति युक्त, सूक्ष्म, अतिशय घुँघराले, घने, समान, कस्तूरी लिप्त नीलकमल जैसी सुगन्धि वाले कन्दर्प की ध्वजा पर कृष्ण वर्ण के चँवर से भी अधिक शोभा सम्पन्न और जो किसी समय जूड़े के रुप में और किसी समय बीच में दो भागों में विभाजित करके दोनों ओर के केशों को फैलाकर कभी बीच में आधा जूड़ा या वेणी की तरह बाँधकर कभी आधे केश मुक्त आधे केश बाँधकर अतिशय सुन्दर रुप से अनेक प्रकार से जिन्हें सजाया जाता है जो श्रीराधारानी के हृदय रुपी चन्द्र में कुरंग मृग की भांति श्रीकृष्ण के केशपाश हमारे चित्त में स्फुरित हों।

(१०४३) ईषत लाल वर्ण दीर्घ नेत्रों वाले, नयनाभिराम कोटि–कोटि कामदेवों की अपेक्षा भी अतिशय सुन्दर शरीर धारी वृन्दावन वर नागर नागरेन्द्र शिरोमणि श्रीश्यामसुन्दर हमारे हृदय कमल में विराजमान हो।

(१०४४) कन्दर्प रस चातुर्य विशिष्ट जिनकी मनोहर चित्तवन अतिशय चपल और जिनके गण्डस्थल चंचल मकराकृत कुण्डलों की कान्ति से प्रतिबिम्बित हो रहे हैं और जो आनन्द स्वरुपिणी ब्रज नागरी समूह के साथ रास विलास करने के लिए समुत्कण्ठित हो रहे हैं, ऐसे कोई गोपाल मेरे मानस में स्फुरित हों।

सान्द्रानन्दघनं घनाघनघटास्निग्धोज्ज्वलश्यामल–ज्योत्सनाजालजटालमालय इव प्रेम्णां त्रिलोकी श्रियः।
कृष्णस्यांगमनंगसंगरलसद्गोपाङ्गनापाङ्गक–व्यासंगेन तरंगितं मम मनः संगित्वमंगीक्रियात्।।१०४५।।

(अ० ६/८)

अपारमाधुर्यसुधार्णवानि, नानांगभूषाचय–भूषणानि।
जगद्दृगासेचनकानि शौरे, वर्ण्यानि नांगानि सहस्रवक्त्रैः।।१०४६।।

(गोवि० १६/१०६)

इतीरयित्वा विरते शुकेशे ससारिके गद्गद्रुद्धकण्ठा।
तद्वाक्सुधाम्भोधिनिमग्नचित्ता क्षणं सभा सा स्तिमिता तदासीत्।।१०४७।।

(गोवि० १६/११०)

श्रीराधया प्रेरितयाथ वृन्दया, संलालितः स्वास्थ्यमुपागतः शुकः।
दिष्टश्च कृष्णस्य गुणानुवर्णने, सशारिकः प्राह सभां स नन्दयन्।।१०४८।।

(गोवि० १७/१)

कविभिरनवगाहयं तं महद्भिर्वराकोऽप्यहमजित–गुणाब्धिं जिह्वया लेढूमीहे।
यदपि फलमभेद्यं लांगलीयं सुपक्वं स्पृशति तदपि चंचवा तन्मुहुर्लुब्धकीरः।।१०४९।।

(गोवि० १७/२)

(१०४६) और अधिक क्या कहें! असीम माधुर्य सीमा के सिन्धु, त्रिजगत के नेत्रों को आनन्द से सींचने वाले श्रीकृष्ण के अंग जो कि समस्त भूषणों के भी भूषण स्वरुप हैं उनका सहस्र मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

(१०४७) इस प्रकार सारिका से शुक प्रेम से गद्गद होकर अर्थात् रुद्धकण्ठ होकर श्रीकृष्ण के अंगों का वर्णन करने से विरत हो गया। शुक की वाक्यसुधा से निमग्न चित्त वाली सखीगण भी क्षण काल के लिए स्तब्ध होकर आनन्द में डूब गयीं।

(१०४८) तदनन्तर श्रीराधा की प्रेरणा से वृन्दा देवीजी द्वारा लालित होकर शुक कुछ स्वस्थ हुआ और पुनः श्रीकृष्ण गुणानुवर्णन का आदेश पाकर सभा को आनन्दित करते–करते सारिका के साथ कहने लगा।

(१०४९) महा महा कविगण भी जिन श्रीकृष्ण के गुणों के समुद्र की थाह नहीं पाते हैं ऐसे श्रीकृष्ण के गुणों का अति क्षुद्रमय अपनी जिह्वा से आस्वादन करने की वासना करता हूँ ठीक उसी तरह जैसे कोई पके हुए नारियल के फल को अपनी चोंच से भेदन करने में असमर्थ होते हुए भी लोभी शुक उस फल का पुनः पुनः अपनी चोंच से स्पर्श करता है।

इहानिनीषामि करेण भास्करं मूर्ध्ना विभित्सामि सुमेरु पर्वतम्।
दोर्भ्याम् तितीर्षामि महार्णवं यतो गुणान् विवक्षामि हरेरपत्रपः।।१०५०।।(गोवि० १७/३)

या या याता हरिगुणलवस्पर्शपूता रसज्ञा सा सा जातु स्पृशति नतरां क्वापि वार्त्ता तदन्याम्।
माकन्दीय–प्रथममुकुलास्वादपुष्टान्यपुष्ट–श्रेणी या सा रसयति कथं कुटम्लं पेचुमर्दम्।।१०५१।।
(गोवि० १७/४)

यदुक्तं गर्गेण ब्रजपतिपुरस्तेऽस्य हि शिशोर्गुणैस्तैस्तैः साम्यं लभत इह नारायण इति।
गुणानामानन्त्यं परमशुभता गोकुलविधोर्महत्त्वं गाम्भीर्यादिकमपि च तेनैव कथितम्।।१०५२।।
(गोवि० १७/५)

स्वभक्ते वात्सल्य–प्रणयवशतादेगुणतते–रनन्तत्वात् संख्या दनुजजयिनो नैव घटते।
बहुत्वात् पाल्यानामनिशमुरुवृत्तेः समुदया–दिहाप्यैकैकस्यापि हि सम्यंङ् न गणनम्।। (कथनम्) १०५३।।
(गोवि० १७/६)

रूपं भूषणभूषणं नववयः कैशोरमध्यस्थिरं वीर्यं कन्दुकिताद्रिशीलममलं लीला जगन्मोहिनी।
औदार्यं स्वसमर्पणावधिदया यस्याखिल–प्लाविका कीर्त्ति विश्वविशोधनी कथमसौ कृष्णोऽस्तु वर्ण्यः क्षितौ।।१०५४।।
(गोवि० १७/७)

(१०५०) मैं कितना निर्लज्ज हूँ जो श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन करने की इच्छा करता हूँ। यह इच्छा तो सूर्य को हाथ से पकड़ कर नीचे लाने की तरह अथवा सुमेरु पर्वत को मस्तक से भेद करने की तरह अथवा दोनों हाथों से तैरकर समुद्र को पार करने की भांति ही है।

(१०५१) और जो जिह्वाएं श्रीकृष्ण गुण वर्णन करते–करते पवित्र हो गयीं हैं, वे जिह्वाएं कभी भी श्रीकृष्ण गुणों के अतिरिक्त अन्य वार्ता करने में रुचि नहीं लेती, क्योंकि जिस प्रकार कोकिलाएं आम्र के मुकुलों का आस्वादन करके पुष्ट होकर क्या कभी नीम के फल का आस्वादन करने में प्रसन्न हो सकती हैं।

(१०५२) ब्रजराज श्रीनन्द महाराज के सामने श्रीगर्गाचार्य महाराज ने कहा था कि यह शिशु अपने गुणों में श्रीनारायण के समान देवतुल्यता प्राप्त करेगा। और उन्होंने यह भी कहा था कि इन गोकुलचन्द्र श्रीकृष्ण के गुणों का अन्त नहीं है, और इनके महत्व, गाम्भीर्य और परम मंगल प्रभाव के विषय में भी उन्होंने बताया था।

(१०५३) इसके अतिरिक्त दनुजजयी श्रीकृष्ण के भक्त वात्सल्य, प्रणय वशता आदि गुण समूह अनन्त होने के काण उनकी कोई संख्या नहीं है, क्योंकि श्रीकृष्ण के भक्त तो बहुत हैं उनमें से एक भक्त में भी जितने गुण हैं उनमें से एक गुण का भी सम्यक् रुप से वर्णन नहीं हो सकता।

(१०५४) जिनका रुप भूषणों का भी भूषण है जिनकी नवीन अवस्था मध्य कैशोर लेकिन फिर भी कन्दुक केसमान गिर्राज गोवर्धन को धारण करने का जिनका पराक्रम और जिनके जग–मोहनी लीला सुन्दर शील स्वभाव और जो अपने भक्तों को अपनी आत्मा तक का दान कर देते हैं ऐसी उदार जिनकी कीर्ति समस्त विश्व को परम पवित्र एवं रस में निमग्न करने वाली है, ऐसे श्रीकृष्ण के गुणों का कौन वर्णन कर सकता है।

श्रीकृष्णास्याखिलांगान्मृगमदरस–संलिप्तनीलोत्पलानां कक्षभ्रूश्रोणिकेशादगुरुरसलसत्पारिजातोत्पलानाम्।
श्रीनासानाभिवक्त्रात् करपदनयनाच्चेन्दुलिप्ताम्बुजानां सत्सौरभ्यामृतोर्मिः प्रसरति जगदाप्लावयन्ती समन्तात्।।१०५५।।
(गोवि० १७/६)

लावण्यवन्योच्छलितेऽघविद्विषो राधात्ममूर्त्तिं प्रतिबिम्बितां हृदि।
दृष्ट्वांगनां स्वं प्रतिकुर्वतीं परां निश्चित्य रोषाद्विमुखी स्म वेपते।।१०५६।।
(गोवि० १७/१४)

श्रीराधयानन्य समोर्धवया हृतं मनो हरेर्धावति नापरांगनाम्।
सरोजिनी–सन्मधुलम्पटः सदा बल्लीं परामिच्छति किं मधूव्रतः।।१०५७।।
(गोवि० १७/१५)

उष्णो रविः शीतल एव चन्द्रः सर्वंसहा भूश्चपलः समीरः।
साधुः सुधीरोऽम्बुनिधिर्गभीरः स्वभावतः प्रेमवशो हि कृष्णः।।१०५८।।
(गोवि० १७/१६)

गम्भीरोऽपि स्थिरमतिरपि क्षान्तिपूर्णः सुशीलः श्रीकृष्णोऽयं सुखमयवपुः सत्रपो निर्विकारः।
श्रीराधायः प्रणयविवशस्तन्मुखालोकजातै–र्भावैर्लोला मदनविकलः संभ्रमाद् वभ्रमीति।।१०५९।।
(गोवि० १७/१७)

(१०५५) श्रीकृष्ण के सर्वांग से मृगमदलिप्त नीलकमल की, कक्ष, भ्रू, नितम्ब, केश से अगरु रस लिप्त पारिजात और कमल उत्पल, श्रीनासिका, नाभि, मुख, कर, पद, नेत्र से कर्पूर लिप्त कमल की उत्तम सुगन्धि की अमृत मय तरंगे जगत को आप्लावित करके चारों ओर फैल रही है।

(१०५६) और अधरिपु श्रीकृष्ण के अतिशय लावण्य युक्त वक्षस्थल में श्रीराधा अपने प्रतिबिम्ब का दर्शन करके "अपनी मूर्ति का अनुकरण करने वाली कोई अन्य नायिका श्रीकृष्ण के वक्षस्थल में विराज रही है" ऐसा विचार करती हुई रोष के कारण मुख फिरा कर काँपने लगती है।

(१०५७) श्रीकृष्ण का अनन्य समोर्ध (जिनके समान कोई अन्य नहीं है फिर उनसे अधिक होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है) श्रीराधा के द्वारा चित्त अपहृत हो गया है अब उनका चित्त किसी अन्य नायिका के प्रति आकृष्ट नहीं होता, क्योंकि भ्रमर कमल का मधुपान करके सर्वदा उसी के प्रति आसक्त होता हुआ कभी भी किसी अन्य लता की इच्छा नहीं करता।

(१०५८) जिस प्रकार रवि स्वभाव से ही उष्ण, चन्द्र, स्वभाव से ही शीतल, पृथ्वी स्वभाव से ही सर्वसहा, वायु स्वभाव से ही चंचल, साधु गण स्वभाव से ही सुधीर, समुद्र स्वभावतः गम्भीर, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी स्वभाव से ही प्रेम के वशीभूत हैं।

(१०५९) श्रीकृष्ण गम्भीर, स्थिर मति, क्षमापूर्ण, सुशीतल, सुखमयवपु, लज्जाशील एवं निर्विकार होकर भी प्रणय विवश श्रीराधा मुख के दर्शन से उत्पन्न भाव समूह से चञ्चल और मदन विकल होते हुए संभ्रम से उनका चित्त भ्रमित होने लगता है।

प्रस्वेदोत्पुलकादरोक्त्यमृतसत्सौरभ्यमन्दस्मितैः पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धकुसुमान्याजहूराराधने।
कृष्णस्य ब्रजसुभ्रूवस्त्विह परीरम्भादिलीलामृतं नैवेद्यञ्च तथा सुधाधररसस्ताम्बूलमासामभूत्।।१०६०।।
(गोवि० १७/१६)

वदान्येशस्तृष्णानिचयचितचित्तैः करुणराड् विपन्नैः कन्दर्पो युवति–निकरैर्मृत्युररिभिः।
अधीशः सद्भक्तैः सहजनिजबन्धूर्ब्रजजनैः प्रतीतः कृष्णोऽसाविति विविधलोकैर्बहुविधः।।१०६१।।
(गोवि० १७/२०)

साम्मुख्यात् श्वपचो द्विजोऽस्ति विमुखश्चेद् यस्य विप्रोऽन्त्यजो यत्प्रेमाप्यमृतायते प्रणयिनां ह्रीकालकूटन्नपि।
कीर्त्तिः कृष्णरुचीन् करोति विशदीकुर्वत्यशेषान् जनान् इन्दुर्यद् विरहेग्निरग्निरमृतं कृष्णाय तस्मै नमः।।१०६२।।
(गोवि० १७/२१)

कामोत्पत्तिर्धृतिधनहृतिः संह्रीतिर्लोकभीते–र्धर्मोच्छित्तिः कुवलयदृशामाहृतिः पत्युरंकात्।
कम्पोद्भूतिः स्थिरमनु चरे स्तब्धिरप्यापगानां या सा जीयान्मधुर–मुरली काकली गोकुलेन्दोः।।१०६३।।
(गोवि० १७/२५)

(१०६०) ब्रजसुन्दरीगण श्रीकृष्ण की आराधना करते समय अपने स्वेद द्वारा पाद्य, पुलकावलि द्वारा अर्घ्य, सादर वचनों द्वारा आचमन, अपने अंग की सुन्दर सुगंध से गन्ध मृदुहास्य रुपी कुसुम अर्पण करती हैं। आलिंगन आदि अमृतमय सुरत लीला द्वारा नैवेद्य और सुधामय अधर रस द्वारा ताम्बूल अर्पण करती हैं।

(१०६१) श्रीकृष्ण भिन्न–भिन्न भाव के जनों के समक्ष विभिन्न रुप से ही प्रतीत होते हैं, जिनके हृदय में अनेक प्रकार की तृष्णाएं व्याप्त हैं ऐसे विषयी जनों के लिए वे प्रचुर दान करने वाले उदार शिरोमणि और जो विपदा से ग्रस्त दुःखी हैं उनके लिए श्रेष्ठ दयालु रुप में, युवतियों के समक्ष साक्षात् कामदेव रुप में, शत्रुओं के समझ साक्षात् मृत्यु रुप में, सदभक्तों के निकट इष्टदेव के रुप में और ब्रजवासी जनों के साथ तो उनके अपने सजातीय बन्धु के समान प्रतीत होते हैं।

(१०६२) जिन श्रीकृष्ण के प्रति उन्मुख होने से (भजन करने से) चाण्डाल भी ब्राह्मण तुल्य हो जाता है और ब्राह्मण भी यदि श्रीकृष्ण के विमुख हो तो वह चाण्डाल के समान ही होता है। जिनका प्रेम उनके प्रणयीजनों के लिए लज्जा तीव्र विष के समान होती हुई भी अमृत के समान प्रतीत होती है। जिनकी कीर्ति सकल लोक को निर्मल करने वाली (उज्ज्वलें) होते हुए भी श्रीकृष्णमय (मलिन) बना देती है और जिनके विरह में चन्द्रमा अग्नि तुल्य, अग्नि चन्द्र सदृश प्रतीत होती हैं, ऐसे सब गुणों के भूषण स्वरुप श्रीकृष्ण को हम नमस्कार करते हैं।

(१०६३) गोकुलचन्द्र श्रीकृष्ण की मुरली का सूक्ष्म मधुर स्फुट स्वर जययुक्त हो, ये ध्वनि कुवलयलोचना ब्रजांगनाओं के हृदय में काम की उत्पत्ति करने वाला बीज यही है। उनके धैर्यरुपी धन को हरण करने का यही मूल कारण है। उनकी लोक लज्जा को नाश करने वाली, कुल धर्म का छेदन करने वाली और पतियों को निकट से उनको आकर्षण करने में समर्था, स्थावर आदि को कम्पित करने वाली और जंगम अर्थात् जो चलने वाले हैं उनको स्तब्ध कर देने में समर्थ हैं।

नादव्याजात् क्षिपसि कठिने गारलीमामृतीं वा धारां वंशि ! प्रणय सखि ! नो जीवनं वा मृतिं वा।
ताभ्यां नान्यां वितर विषमां हा दशामत्यसह्यां गोप्यः कृष्णप्रणयविकला वंशिकामित्थमाहुः।।१०६४।।
(गोवि० १७/२७)

सौन्दर्य पदयोः सरोजवदहो कान्तं यथेन्दुर्मुखं रम्या भ्रूभ्रमरावलीव मधुरः पीयूषतुल्योऽधरः।
लोलाब्जेन समे चले सुनयने शुभ्रा रदाः कुन्दवत् कंसारेरमृतं यथा सुलपितं ज्योत्स्नेव हासद्युतिः।।१०६५।।
(गोवि० १७/३४)

श्रीपाणी नवपल्लवेन सदृशौ पूर्णेन्दुतुल्या नखा गण्डौ दर्पणवद्द्युतिर्नवघनश्यामा च यस्यांगनाः।
दृष्ट्वाम्भोरुहदर्शमास्यमलिसञ्चारं चरन्त्यूत्तृषः साधौ चन्द्रति यः सुतीयति नतान् कुञ्जेषु सौधीयति।।१०६६।।
(गोवि० १७/३५)

यो दैत्येष्वशनीयतीह रमणीवृन्दे मनोजायते दाता–येन समः क्वचिन्नहि न यत्तुल्योऽस्ति शूरः क्वचित्।
यल्लीला सदृशी क्वचिन्नहि न येनास्ते समानोऽपि वा चुम्बन्त्याननपद्मेणनयना यस्यैष कृष्णोऽवतु।।१०६७।।
(गोवि० १७/३६)

(१०६४) ब्रजसुन्दरीगण श्रीकृष्ण प्रेम में विकल होकर वंशी के प्रति कहती हैं– हे प्रिय सखी ! हे कठिने वंशिके ! तुम अपनी ध्वनि से अमृत बरसा रही हो अथवा विष की धारा क्योंकि ये दोनों ही हमको जीवन और मरण दोनों ही प्रदान करने में समर्थ हैं किन्तु हाय ! बड़े कष्ट का विषय है कि तुम इससे भी अधिक कोई और असह्य दशा हमको प्रदान मत करना।

(१०६५) क्या आश्चर्य है ! कंस रिपु श्रीकृष्ण के चरण युगल का सौन्दर्य कमल सदृश वदन चन्द्रसदृश, कमनीयभौंहे भ्रमरावली के समान मनोहर, अधरामृत तुल्य सुमधुर, सुन्दर और चपल नेत्र दो चंचल कमलों के समान, दन्तावलि कुन्दकुसुम सदृशशुभ्र, मधुर वाक्य अमृत तुल्य तथा हास्य किरणें ज्योत्सना के समान हैं।

(१०६६) और जिनके सुन्दर कर कमल दो नवीन पल्लवों के समान, नख पूर्ण चन्द्र तुल्य, गण्डस्थल दर्पणवत्, अंग कान्ति नवजलधर के समान और जिनके कमल सदृश वदन का दर्शन करके नारीगण भ्रमरिकाओं के समान अत्यन्त तृष्णा कुल हो जाती हैं और जो साधुओं के लिए चन्द्र के समान (शीतल) और जो अपने प्रणतजनों के प्रति सन्तान के समान एवं वृन्दावन की कुंजों को जो राज सदन के समान आचरण करते हैं।

(१०६७) इस प्रकार जो दैत्यगणों के प्रति वज्र के समान, और रमणीवृन्द के प्रति कन्दर्प के समान आचरण करते हैं जिनके समान जगत में कोई दाता नहीं है और न ही जिनके समान कोई पराक्रमी है। जिनकी लीला जैसी और किसी की लीला नहीं है और जिनके समान कहीं और कोई भी नहीं है। जिनका मृगाक्षी रमणियाँ वदन कमल का चुम्बन करती है ऐसे श्रीकृष्ण हमारी रक्षा करें।

एवं हि कृष्णस्य गुणा अनन्ता लीलाऽप्यनन्ता महिमाऽप्यनन्तः।
तत्तत्कणस्पर्शनमात्मवाचां विशुद्धये तद्गणनाशयालम्।।१०६८।।

(गोवि० १७/४८)

इत्थं हरेस्तद्गुणवर्णनाम्बुधौ निमज्जनोन्मज्जनफुल्लमानसौ
सारीशुकौ स्वेप्सितमीश्वरौ निजावयाचतां तद्गुणवर्णननैः पुनः।।१०६९।।

(गोवि० १७/४९)

जय जय नन्दात्मज जय वृन्दा–वनरसकन्दातुलगुणविन्दाधिकतरनन्दच्चिन्मकरन्द–स्वपदारविन्द–द्वयकुरुविन्द–प्रभनखचन्द्रावलिभिरतन्द्रामलरुचिसान्द्राकृतिभिरलं द्रावितनिजलोक–व्यतिकरशोक–स्फुरदस्तोक–प्रथितश्लोक श्रीधरधीर ब्रजवरवीर प्रकटाभीर–श्यामशरीर।।१०७०।।

(गोवि० १७/७०)

(१०६८) इस प्रकार श्रीकृष्ण के गुण अनन्त, लीला अनन्त और महिमा भी अनन्त अतएव इन गुणों की लीला और महिमा का लेशमात्र स्पर्श करके अपनी वाणी को ही विशुद्ध करने के लिए ही प्रयास है वस्तुतः उनके गुणों की गणना कौन कर सकता है ?

(१०६९) इस प्रकार सारिका और शुक दोनों श्रीकृष्ण के गुण और रुप वर्णन के समुद्र में डूबते और तैरते हुए बारम्बार प्रफुल्लित होते हुए अपने इष्ट श्रीराधाकृष्ण के समीप आकर अपनी अभीष्ट प्रार्थना करने लगे।

(१०७०) हे नन्दनन्दन ! आपकी जय हो ! आप दोनों समस्त रसों के मूल कारण स्वरुप अथवा आप वृन्दावन विषयक रस प्रदान करने में सबके प्रति सुखप्रद ! आपके पदारविन्द युगल अतुलनीय गुण समूहों से विभूषित अत्यधिक सुन्दर एवं समृद्धि युक्त चिद्रुप मकरन्द विशिष्ट। इन चरण युगल का नख रुपी चन्द्र श्रेणी पद्मरागमणि के समान प्रभायुक्त और अत्यन्त अद्भुत, अखण्ड निष्कलंक, निविड़ कान्ति से सुशोभित। आप अपने निजजनों के हृदय में अपने चरण कमलों की नख रुपी चन्द्र मण्डली द्वारा उनके शोक को अतिशय रुप से दूर कर देते हैं। आपका प्रचुर विख्यात यश सर्वत्र फैल रहा है। आप असीम सौन्दर्य और सम्पत्ति को धारण करने बाले हैं, धीरु स्वभाव वाले हैं ब्रजमण्डल में श्रेष्ठ वीर हैं और श्याम गोप शरीर धारण करके विराज रहे हैं आपकी जय हो।

जय जय वंशी वाद्य विशारद शारद–सरसीरुह–परिभावक–भावकलित–लोचन सञ्चारण चारण सिद्धव धूधृति हारक। हारकलाप–रुचाञ्चित–कुण्डल कुण्ड–लसद्गोवर्धनभूषित भूषित भूषण–चिद्घन विग्रह विग्रह खण्डित–खल वृषभासुर भासुर–कुटिल–कचार्पितचन्द्रक चन्द्रकदम्वरुचाभ्यधिकानन कानन कुञ्जगृहस्मर संगर संगरसोद्धूर– बाहुभुजंगम्। जंगम–नवतापिञ्छनगोपम–गोपमनीषितसिद्धिषु दक्षिण दक्षिण पाणिग–दण्डसभाजित भाजित–कोटिशशांकविरोचन रोचनया कृत चारुविशेषक शेष कमल भव–सनक सनन्दन–नन्दन गुण मां नन्दय सुन्दर।। वीर।।१०७१।।

(गोविन्दविरुदावली ३७)

(१०७१) हे वंशी वाद्य विशारद ! आप शरद्कालीन कमल की निन्दा करने वाले नयन कमलों का संचालन करते हुए सिद्ध चारण बंधुओं के धैर्य का हरण कर लेते हो। आपकी मणि मुक्ताओं से खचित हार आदि भूषणों में प्रतिबिम्बित होते हुए कानों के कुण्डल अतिशय शोभा पा रहे हैं। राधाकुण्ड से शोभित गोवर्धन की उपत्यकाओं में आप विहार करते हैं, आपका रसमय और ज्ञानमय कलेवर अखिल भूषणों का भूषण है। आपने युद्ध करके दुष्ट वृषभासुर का संहार किया, आपके उज्जवल घुंघराले केश मयूर पिच्छ द्वारा सुशोभित, आपकी मुखचन्द्र कोटि चन्द्रों की अपेक्षा सुन्दर, आप श्रीवृन्दावन की निकुंजों में अनंग युद्ध करने में सुनिपुण, आपकी सुन्दर बाहु भुजंग के समान आलिंगन आदि सम्भोग प्रसंग में पराक्रम शाली हैं। आप श्रीवृन्दावन में जब इधर–उधर विहार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई तमाल वृक्ष विचरण कर रहा हो, और ब्रजवासियों की मनोभिलाषा को पूर्ण करने में आप अतिशय उदार हैं। आपने दक्षिण हाथ में गौएं चराने के लिए दण्ड धारण कर रखा है और अपनी श्रीअंग की कान्ति से कोटि–२ चन्द्र सूर्य को परास्त करने वाले हैं, आपके ललाट पर गोरोचन का तिलक शोभा पा रहा है। आपकी दया और क्षमा आदि गुणों का ब्रह्मा, अनन्त, सनक सनन्दन और देवगण गान करके प्रसन्न होते हैं। अतएव हे वीर ! हे सुन्दर ! आप दर्शन देकर हमको भी आनन्दित करें।

तं जय केशव केशवलस्तत वीर्य–विलक्षण लक्षण–बोधित केलिषु नागर नागरणोद्धत गोकुलनन्दन नन्दनतिव्रत–सान्द्रमुदर्पक दर्पकमोहन हे सुषमानव मानवतीगण–माननिरासक रासकलाश्रित, सुस्तनगौरव गौरवधूव्रत कुञ्जशतोषित तोषितयौवत, रूपभरादिक राधिकयार्चित भीरुविलम्बित लम्बित शेखर, केलिकुलालस लालसलोचन रोषमदारुण–दारुणदानव, मुक्तिदलोकन लोकनमस्कृत गोपसभावक भावक शर्मद हन्त कृपालय पालय मामपि।। वीर।।१०७२।।

(गोविन्दविरुदावली ३६)

(१०७२) हे केशव आपकी जय हो ! ब्रह्मा, शिव और अनन्त आदि देव भी आपकी स्तुति करते हैं। आपके बल, वीर्य, अप्राकृत और आपके चरण कमलों में ध्वज, वज्र, अंकुश आदि विशेष चिह्न होने के कारण जगत आपको भगवान मानता है। आप केलि कला में प्रवीण, कालिय नाग के साथ युद्ध करने में उद्धत, आप गोकुल का आनन्द करने वाले और आप अपने पिता नन्द महाराज की भक्ति में परायण, भक्तों को प्रगाढ़ आनन्द देने वाले कन्दर्प का मोहन करने वाले हैं। ब्रज की नव रमणीया जब प्रणयकोपवश मानवती हो ज़ाती हैं तो आपके श्रीअंगों की अपूर्व शोभा का दर्शन करके तत्क्षण मान का परित्याग कर देती हैं। सुन्दर वक्षस्थल वाली गौरांगी गोपिकाओं से परिवृत्त होकर आप रास क्रीड़ा करते हैं एवं आप शत् शत् कुंजों में अवस्थान करते हुए ब्रजरमणियों द्वारा परितोषित होते हैं। ब्रजरमणियों में श्रीराधिका आपकी विशेष प्रीति का सम्पादन करती हैं। आप ललितादि सखीगणों के सहित रासस्थल में नृत्य करते हैं और नृत्य करते–करते आपके सिर से मुकुट भी शिथिल हो जाता है। रास के परिश्रम से आपके नेत्र युगल आलस्य पूर्ण हो जाने से श्रीराधा उनका पुनः पुनः दर्शन करने की लालसा करती हैं। हे लोक नमस्कृत आपके सकोप दृष्टिपात से क्रोध परायण मदमत्त दानव गण भी मुक्ति प्राप्त करते हैं। आप समस्त गोपगणों की रक्षा करने वाले और भक्तों को आनन्द देने वाले हैं। हे करुणानिधान ! आप कृपा करके हमारी भी रक्षा करिये।

वरसीमन्तरसामृत–सारिणिधृत–सिन्दूर–सुरेखाम्।
श्रीवृषभानुकुलाम्बुधि–सम्भव–सुभग–सुधाकरलेखाम्।
स्मरति मनो मम निरवधि राधाम्।
मधुपतिरूपगुण–श्रवणोदित–सहजमनोभववाधाम्।। ध्रूं।
सुरुचिर–कबरीविराजित–कोमलपरिमल–मल्लिसुमालाम्।
मदचलखञ्जन–खेलनगञ्जन–लोचन कमल विशालाम्।।
मदकरिराज–विराजदनूत्तम–चलितललित–गति भंगीम्।
अति सुकुमार–कनक नवचमपक–गौरमधुरमधुरांगीम्।।
मणि केयूर–ललित वलयावलि–मण्डितमृदुभुजबल्लीम्।
प्रतिपदमद्भुत–रूपचमत्कृति–मोहन युवति मतल्लीम्
मृदुमृदुहासललितमुखमण्डल–कृतशशिबिम्ब विड़म्बाम्
किंकिणिजाल–खचितपृथुसुन्दर–नवरसराशि–नितम्बाम्।।
चित्रित कञ्चुलिका–स्थगितोद्भट–कुचहाटकघटशोभाम्।
स्फुरदरुणाधर–स्वादुसुधारस कृतहरिमानसलोभाम्।।

श्रीराधारानी का रुप वर्णन :–

(१०७३) मेरा मन निरवधि श्रीराधा का स्मरण करता है जो अपनी श्रेष्ठ माँग रुपी क्षुद्र रसामृत नदी सिन्दूर की सुन्दर रेखा धारण करती हैं, और जो वृषभानु कुलरुपी समुद्र से अत्यन्त कमनीय चन्द्रलेखा की भाँति अवतरित हुई हैं। श्रीकृष्ण के रुप, गुण श्रवण से स्वभावतः ही श्रीराधिका के ह्रदय में कन्दर्प पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। उनकी अति सुन्दर वेणी में कोमल सुगन्धित मल्लिका की सुन्दर माला सुशोभित है। उनके विशाल नयन कमल मदमत्त चंचल, खंजन की क्रीड़ा को भी तिरस्कृत कर रहे हैं।

श्रीराधिका की अत्यन्त मनोहर चाल मदमत्त गजराज की गति के समान अति उत्तम शोभा पा रही है। उनके सुकुमार सुमधुर अंग नवीन स्वर्ण चम्पक के समान गौरवर्ण वाले हैं। उनकी कोमल भुजा रुपी लताएं मणिमय केयूर मनोहर वलय समूह द्वारा मण्डित हैं। पद पद पर अद्भुत और चमत्कारी रुप द्वारा वे युवती वृन्द को मोहित कर देती हैं। श्रीराधिका मृदु–मृदु हास्य युक्त रमणीय मुख मण्डल द्वारा चन्द्र मण्डल का भी तिरस्कार करती हैं और उनका नव रस राशि स्वरुप, स्थूल, सुन्दर नितम्ब देश किंकिणि जाल से बँधा हुआ है।

उनके श्रेष्ठ स्तन युगल रुपी सुवर्णघटद्वय की शोभा चित्रित कंचुलिका द्वारा आवृत हो रही है। वे अपने सुन्दर अरुण वर्ण अधरों के मधुमय सुधारस द्वारा श्रीहरि के मन में लोभ उत्पन्न

सुन्दरचिबुक–विराजितमोहन–मेचकबिन्दुविलासाम्।
सकनकरत्नखचितपृथुमौक्तिक रुचिरुचिरोज्ज्वलनासाम्।।
उज्ज्वलरागरसामृतसागर सारतनुं वररूपाम्।
निपतित–माधवमुग्धमनोमृग–नाभिसुधारसकूपाम्।।
नूपुरहार–मनोहरकुण्डल कृतरुचिमरुणदुकलाम्।
पथि पथि मदन मदाकुल–गोकुलचन्द्रकलितपदमूलाम्।।
रसिक सरस्वति–गीतमहादभुत राधारूपरहस्यम्।
वृन्दावन–रसलालस–मनसामिदमुपगेयमवश्यम्।।१०७३।।

(सं० २३ क० ए०)

सुभगशिखरलक्ष्मी कोटिकामयैकपादा धृतनखमणिचन्द्रज्योतिरामोदमात्रा।
अतिमधुरचरित्रानंगलीलाविलासा मम हृदि रसमूर्त्तिः स्फूर्त्तिमायातु राधा।।१०७४।।

नवरसमदघूर्णन्माधव–प्राणकोटि–प्रियनखमणिशोभा सर्वसौभाग्यभूमिः।
स्फुरतु हृदि सदा मे कापि काश्मीररोचिर्व्रजनगरकिशोरीवृन्द–सीमन्तभूषा।।१०७५।।

करती है। श्रीराधिका के सुन्दर चिबुक पर मनोमुग्ध कर श्याम बिन्दु शोभा पा रहा है एवं उनकी सुन्दर नासिका सुवर्ण में रत्न जटित स्थूल मुक्ता की कान्ति से मनोहर और उज्जवल शोभा पा रही है। वे उज्जवल राग (अनुराग) रुप रसामृत सागर के सार स्वरुप से निर्मित श्रीअंग द्वारा साक्षात् आनन्द स्वरुपिणी ही है। उनकी नाभि रुप सुधारस कूप में माधव का मुग्ध मनोमृग निपतित हो रहा है। नुपूर, हार और मनोहर कुण्डल धारण करके उनकी शोभा से उनकी अंग कान्ति अधिकतर उज्ज्वल हो रही है। और उन्होंने अरुण वर्ण वसन परिधान कर रखा है। गोकुल चन्द्र मदनमद से व्याकुल होकर उनका पग–पग पर ध्यान करते हुए आश्रय ग्रहण करते हैं। वृन्दावन के रस से जिनका चित्त लालसान्वित रहता है ऐसी श्रीराधारानी के रहस्यमय अद्भुत रुप और गुणों का गान करना रसिक सरस्वती (प्रबोधानन्द सरस्वती) के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(१०७४) जिनके एक मात्र चरण सौभाग्यवती सुन्दरीगणों की शिरोमणि कोटि–कोटि लक्ष्मियों की भी कामना के योग्य जो अपने नखमणी रुपी चन्द्र की ज्योति द्वारा साक्षात् आनन्द मात्र को ही धारण करती है जिनका चरित्र अत्यन्त मधुर और जिनका लीला विलास समस्त प्रेममय साक्षात् रस की मूर्ति, वे श्रीराधा मेरे हृदय में स्फुरित हों।

(१०७५) जिनके नखमणि की शोभा नवरसमद से सर्वदा घूर्णितचित्त वाले माधव को कोटि–कोटि प्राणों की अपेक्षा भी अधिक प्रिय हैं, जो निखिल सौभाग्यों की आधार भूता हैं ऐसी कोई अनिवर्चनीया कुंकुम तुल्य गौर कान्ति ब्रजनगर स्थित किशोरी वृन्द में शिरोमणि श्रीराधिका हमारे हृदय में निरन्तर स्फुरित हों।

गोविन्द प्राण सर्वस्व–नखचन्द्रैकचन्द्रिका
कापि प्रेमरसोदारा किशोरी मम जीवनम्।।१०७६।।

(सं० २६)

चेतः कामपि कुन्दसुन्दर–सुधानिःस्यन्दि–मन्दस्मित–ज्योतिर्मोहनवक्त्रचन्द्रविगलत्प्रेमामृताम्भोनिधिम्।
प्रत्यंगोच्छलितानुराग–सहजानंगोत्सवैकावधिं श्रीवृन्दावनचन्द्र–दुर्मद–मनश्चौरीं किशोरीं स्मर।।१०७७।।

(सं० २७)

पुनः कृष्णेगितज्ञास्ताः श्लोकैरेकैकशः पृथक्।
वयस्यां वर्णयामासुः प्रेम्णा तां ललितादयः।।१०७८।।

(गोवि० ११/५०)

शंखार्धेन्दुयवाब्ज–कुञ्जररथैः सीरांकुशेषुध्वजैश्चाप स्वस्तिक–मत्स्यतोमरमुखैः सल्लक्षणैरंकितम्।
लाक्षावर्मितमाहवोपकरणैरेभिर्विजित्याखिलम् श्रीराधाचरण द्वयं सुकटकं साम्राज्यलक्ष्म्या वभौ।।१०७९।।

(गोवि० ११/५१)

(१०७६) जिनके मुखचन्द्र की केवल एक किरण कर्णिका का गोविन्द के प्राण सर्वस्व स्वरुप है, और जो प्रेम रस में सर्वोत्तमा हैं अथवा जो प्रेम रस प्रदान करने में परम उदार शिरोमणि है ऐसी कोई अनिवर्चनीया किशोरी राधिका हमारा जीवन है।

(१०७७) हे मन जिनके कुन्द कुसुम की भाँति सुन्दर सुधा बरसाने वाला मन्द हास्य ज्योति द्वारा उद्भासित मोहन वदनचन्द्र से प्रेमामृत सागर प्रवाहित हो रहा है और जो प्रति अंग से उच्छलित होने वाले अनुराग और स्वभाविक अनंगोत्संव की एक मात्र सीमा हैं, श्रीवृन्दावन चन्द्र के दुर्मद चित्त को चुराने वाली ऐसी कोई अनिवर्चनीया किशोरी श्रीराधिका का तुम स्मरण करो।

सखीगणों द्वारा श्रीराधा के अंग–प्रत्यंग का वर्णन :–

(१०७८) अब श्रीकृष्ण के इंगित को जानने वाली लालतादि सखीगण श्रीराधारानी के अंग प्रत्यंग का एक एक श्लोक द्वारा प्रेम से वर्णन करने लगीं।

(१०७९) श्रीराधारानी के सुन्दर नुपूर द्वय द्वारा शोभित पदयुगल, शंख, अर्धचन्द्र, यव, पद्म, हस्ति, रथ, सीर, अंकुश, वाण, ध्वज, धनु, स्वस्तिक, मत्स्य एवं तोमर आदि उत्कृष्ट लक्षणों से अंकित एवं यावक रुपी कवच से आवृत्त होकर इन सभी युद्ध के उपकरणों द्वारा मानों विश्व राज्य को विजय करते हुए साम्राज्य शोभा से शोभित हो रहे हैं।

यत्कान्त्या लवणाच्छिया किशलये या पल्लवाख्यां न्यधात् पद्माख्यां नलिने निधाय मलिनीभावं निशाकोकवत्।
शोकात् कोकनदाभिधां विलपनै रक्तोत्पले चेत्यसौ सा राधा भुवि तत्पदद्वयमिदं केनोपमेयं भवेत्।।१०८०।।
(गोवि० ११/५२)

अपूर्वा श्रीराधाचरणनखचन्द्रावलिरियं सदा पूर्णा भान्ति हरिहृदि निरंकारुणरुचिः।
समुत्फुल्लं तस्येन्द्रियकुमुदवृन्दं विदधति हठाच्चन्द्रावल्या विरचयति या विस्मृतिमपि।।१०८१।।
(गोवि० ११/५३)

तारुण्ये नवभूपतौ श्लथनये राधावपुःपत्तने वक्षोजद्वयदस्युना सजघनेनाक्रम्ये मध्यं बलात्।
पौष्कल्यं निखिलं कृतं त्रिवलिभिः फुत्कारभीत्या गुणैर्बद्ध्वा स्थापितमित्यवेत्य भयतो गुल्फौ निलीय स्थितौ।।१०८२।।
(गोवि० ११/५४)

अस्या मिषात् प्रसृतयोर्मदनाय हैमालानद्वयं विधिरदादमुनार्थितः किम् ?
यत् कृष्णचित्तमदमत्तगजं स चास्मिन् तन्माधुरी–सुदृढशृंखलया बवन्ध।।१०८३।।
(गोवि० ११/५६)

(१०८०) जो अपने चरण युगल की कान्ति द्वारा नवीन कोमल पत्र की शोभा को तिरस्कृत कर रही है और किसलय को मानों केवल पल्लव नाम ही प्रदान करती हुई (तुच्छ बना रही है), और नलिन को मलिन करने वाली, तथा रात्रि के समय विरह से शोकाकुल होने वाला कोक अर्थात् चक्रवाक की तरह लाल कमल को भी कोकनद का नाम प्रदान करने वाली ऐसी श्रीराधिका रानी के चरण युगल की उपमा इस जगत में किसके साथ दी जा सकती है।

(१०८१) आहा ! श्रीराधारानी की यह नखरुपी चन्द्रावलि अत्यन्त आश्चर्यजनक है, क्योंकि यह अकलंक है और अरुण कान्ति युक्त है। यह नख चन्द्रावलि श्रीकृष्ण के हृदय को पूर्ण रुप से प्रकाशित करती हुई उनके हृदय रुपी कुमुद को प्रफुल्लित करने वाली तथा वहाँ से बलपूर्वक चन्द्रावलि को विस्मृत करा देने वाली है।

(१०८२) तारुण्य रुपी नये राजा के अधिकार प्राप्त कर लेने से समस्त नीतियां शिथिल हो जाने के कारण श्रीराधिका के देह रुपी देश के स्तन और जघन रुपी दोनों दस्युओं ने मध्य देशपर बलपूर्वक आक्रमण करके उसकी समस्त स्थूलता का हरण कर लिया और वो चीत्कार न करें इस भय से मध्य देश को त्रिवलि रुप रज्जु से बाँधकर रख दिया– ऐसा जानकर भय से दोनों गुल्फ (पिण्डली) छिपाकर बैठ गये।

(१०८३) और भी मदन द्वारा प्रार्थना किये जाने पर विधाता ने क्या उसको श्रीराधिका के विस्तृत जंघास्थल पर स्वर्ण निर्मित दो करि–बन्धन–स्तम्भ प्रदान किये है क्योंकि मदन ने श्रीराधिका की जंघा युगल की माधुरी रुप सुदृढ़ श्रृंखला द्वारा श्रीकृष्ण के चित्त रुपी हाथी को बाँध रखा है।

स्वस्थित्यैव स्तम्भित–स्वर्णरम्भा–स्तम्भारम्भे दीव्यतोऽस्याः सुजंघे।
धात्रानंगोष्णार्त्तकृष्णेभशीतच्छायाशालास्तम्भतां लम्भिते ये।।१०८४।।

(गोवि० ११/५५)

जानुद्वयं न तदिदं वृषभानुजायाः कामस्य ते कनक सम्पुटिके सुगुप्ते।
यत् कृष्णचित्त–वररत्नमनेकयत्नेः संमुष्य सोऽयमनयोर्मुमुदे निधाय।।१०८५।।

(गोवि० ११/५७)

त्वचि कठिन–करेभ्यः पद्मिनां भीः करेः स्याज् जलमय कदलीनां ह्रीश्च काण्डादसारात्।
हरि करभविलासायासलभ्ये तदस्या निरुपममधुरे ते सक्थिनी केन तुल्ये।।१०८६।।

(गोवि० ११/५८)

राधाश्रोणिरियं समा न पुलिनैः सत्या कवेर्गीरियं यद्वेणी यमुना तदेव पुलिनं काञ्ची मरालीततिः।
नोचेत्तत्र हरेर्मनोनटवरः श्रीरासलास्यं कथं स्वाभिर्वृत्तिसखीनटीभिरनिशं कुर्वन्न विश्राम्यति।।१०८७।।

(गोवि० ११/६०)

(१०८४) आहा ! ये अपने स्थिति से सुवर्ण कदली और स्तम्भ से आडम्बर को (गर्व को) निरस्त करते हैं। और जो कन्दर्प रुपी ग्रीष्म काल से पीड़ित कृष्ण हस्ति को सुशीतल छाया देने वाले विधाता द्वारा बनाये हुए राधा रुपी ग्रह के खम्भ सदृश है। ऐसे श्रीराधारानी की सुन्दर जंघाए प्रकाशित हो रही हैं।

(१०८५) वृषभानु नन्दिनी श्रीराधिका के यह दोनों जानु (घुटने) नहीं है यह तो कन्दर्प के गोपनीय दो सुवर्ण सम्पुट हैं। इन दोनों सम्पुटों में उस मदन राज ने श्रीकृष्ण के हृदय रुपी रत्न को अपहरण करके इनमें स्थापित करके अत्यन्त आनन्द का अनुभव किया।

(१०८६) श्रीकृष्ण के कर युगल के अधोभाग विलास प्रयत्न हेतु अर्थात् श्रीराधारानी के उरुद्वय को धारण करके उनकी मृदु सेवा करने की इच्छा, इसका कवि किस वस्तु से तुलना कर सकते हैं क्योंकि कठिन त्वचा वाले हाथी की सूंड से तुलना करने में भय होता है, और जलमय कदली से तुलना करने में भी लज्जा होती है क्योंकि वह भी सारहीन है अतः श्रीराधारानी के निरुपम सुमधुर उरु युगल की किसके साथ तुलना की जा सकती है ?

(१०८७) 'श्रीराधारानी का नितम्ब देश यमुना पुलिन के समान है' कवियों का यह वाक्य सत्य ही है क्योंकि श्रीराधा के नितम्ब मध्य में लटकती हुई वेणी यमुना के समान हैं और नितम्ब देश पुलिन उस पर झूलती हुई कांची हंस श्रेणी यदि यह पुलिन सदृश न हो तो श्रीकृष्ण का मन रुपी नटराज वहाँ अपनी मनोवृत्ति रुपी नटिनी सखियों के साथ निरन्तर सुन्दर रास नृत्य करते हुए कभी भी परिश्रान्त नहीं होता।

वीर्योन्मत्तैर्मदकरितनुस्थूलताहस्तकुम्भैर्मैत्रीं कृत्वा शठगुरु–नितम्बोरुवक्षोजचौरैः।
पौष्कल्यं मे हृतमिति भयक्रोधशोकादिवास्या दुस्थं मध्यं त्वरितमकरोत् सिंहमध्येन सख्यम्।।१०८८।।
(गोवि० ११/६१)

अस्या नितम्बस्तनयोर्दरिद्रयोः सन्धिं विधायाहृतमध्यसम्पदोः
पश्चात् विधिर्वीक्ष्य कलिं प्रलुब्धयोश्चकार सीमां त्रिवलिच्छलेन किम्।।१०८९।।
(गोवि० ११/६२)

चलदलदलजालेकम्पदं हैमदीव्यत्–कमलवनदलालौ जाड्यदं निर्जयेन।
तिलकितमिव रोमश्रेणि–कस्तूरिकाभिस्तदिदमुदरमस्या भाति साम्राज्यलक्ष्म्या।।१०९०।।
(गोवि० ११/६५)

अस्यालसत्तनुवनीमनु भाति काम–गम्भीरवेदि–गजराट् यदिहास्य भाति।
कुम्भौ मिषेण कुचयोर्हरिपाणिजन्मकामांकुशक्षतशतौ मदलेपचित्रौ।।१०९१।।
(गोवि० ११/३१)

(१०८८) "शठगुरु नितम्ब, उरु और स्तन रुपी चोरों ने क्रमशः हाथी की देह की स्थूलता सूंड और कुम्भ स्थल (मस्तक) के साथ मित्रता करके मानों उनकी स्थूलता का हरण कर लिया है" इस प्रकार भय, क्रोध और शोक के वश में होकर श्रीराधारानी का कटि देश दुःखित होकर हाथी को मारने में समर्थ सिंह के मध्य देश से शीघ्र ही मित्रता कर ली है।

(१०८९) श्रीराधिका का नितम्ब और स्तन पहले तो दोनों दरिद्र दशा में थे फिर दोनों ने परस्पर में सन्धि करके श्रीराधारानी की कटि देश की सम्पद का हरण कर लिया तथापि यह दोनों लुब्ध चित्त होकर सम्पत्ति (स्थूलता) को बाँटने के लिए कलह ही करते रहे तब विधाता ने इन दोनों की कलह देखकर उसे निवृत्त करने के लिए त्रिवली रुपी सीमा का निर्धारण कर लिया।

(१०९०) चलदल अर्थात् पीपल दल समूह को पराजित करके उसको भी कम्पित करने वाले एवं सुवर्ण तुल्य सुन्दर कमल के दल को भी परास्त करके जो जड़ बना देता है ऐसा श्रीराधारानी का उदर रोमावलिरुपा कस्तूरी से तिलकान्वित होता हुआ साम्राज्य शोभा को प्राप्त हो रहा है।

(१०९१) आहा ! श्रीराधारानी के इस मनोज्ञ देह रुपी कानन में काम रुपी गंभीर वेदी हाथी विराजमान है जिसमें स्तनयुगल रुपी कुम्भद्वय हरि (सिंह) के पाणि (पंजों) से क्षत–विक्षत (मृगमद लेप द्वारा चित्र विचित्र) होते हुए भी (व्यथा का अनुभव न करते हुए शोभा पा रहे हैं।)

भृंगाराम्भोजमाला–व्यजन–शशिकला कुण्डलच्छत्रयूपैः शंख श्रीवृक्षवेद्यासन–कुसुमलता चामर–स्वस्तिकाद्यैः।
सौभाग्यांकेरमीभिर्युतकरयुगला राधिका राजतेऽसौ मन्ये तत्तन्मिषात् स्वप्रियपरिचरणस्योपचारान् विभर्त्ति।।१०६२।।
(गोवि० ११/६६)

श्रीकामांकुश–तीक्ष्णचारुशिखरैमाणिक्य पूर्णेन्दुभिः शिलष्टाग्रार्धविभाग–गन्धफलिकाश्रेणीदलैः शोभिते।
पद्मे चेदभविष्यतां क्वचिदपि श्रीराधिकाहस्तयो–रौपम्यं जितपल्लवाब्जचययोः सम्प्राप्स्यतां ते तदा।।१०६३।।
(गोवि० ११/६७)

राधाकराब्जनखरा मुखरा बकारे–र्वक्षस्तटी गरुड़रत्न–कवाटिकायाम्।
उत्कीर्णचित्र–करणाय रतीशकारोष्टंकाः सुसूक्ष्मनिशिताः स्फुटमुल्लसन्ति।।१०६४।।
(गोवि० ११/६८)

मूलेऽधोवदनं वराटकयुगं चाग्रेम्बुजे विभ्रती नैते स्वर्णमृणालके रतिपतेर्येपाशतामागते।
कृष्णोत्फुल्लतमालवेष्टनपटू विल्वत्कुचाधःफले राधाबाहुलते इमे करयुगश्रीपल्लवे दीव्यतः।।१०६५।।
(गोवि० ११/६६)

(१०६२) झारी (जलपात्र), कमल, माला, व्यजन, चन्द्रलेखा, कुण्डल, छत्र, यूप, शंख, विल्व वृक्ष, वेदी, आसन, कुसुम, लता, चंवर, स्वस्तिक यह समस्त सौभाग्य चिह्व जिनके कर युगल में अंकित हैं ऐसी श्रीराधिका शोभित हो रही हैं मानों उक्त चिह्वों को अपने हाथों में धारण करके अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की परिचर्या के उपकरणों को धारण किये हुए हों।

(१०६३) सुन्दर काम के अंकुश से भी जिसका अग्रभाग तीक्ष्ण और मनोहर है, एवं मणियुक्त पूर्णचन्द्र जिसके आगे के अर्द्धभाग में संयुक्त है, ऐसे चम्पक की कलियों से यदि कमलद्वय शोभा पाते हों तो पल्लव और कमल की शोभा को जय करने वाले श्रीराधिका के कर कमलों से उसकी समानता हो सकती है।

(१०६४) श्रीराधारानी के कर कमल के सुतीक्ष्ण नख–समूह श्रीकृष्ण के वक्षस्थल रुपी इन्द्रनीलमणि निर्मित क्षुद्र कवाट को उत्कीर्ण चित्र करने के लिए शिल्पकारी मदन के धार वाले पाषाण विदारक अस्त्र के समान शोभा पा रहे हैं।

(१०६५) श्रीराधारानी के भुजायुगल के मूल देश में (नीचे अग्रभाग में) करतल रुपी कमल युगल को धारण कर रही हैं। वस्तुतः यह दोनों भुजा स्वर्ण मृणाल नहीं हैं, यह तो काम देव के पाश के समान हैं। (क्योंकि भुजाओं से ही वे श्रीकृष्ण का आलिंगन करती हैं) श्रीराधिका के ये बाहुयुगल श्रीकृष्ण रुपी तमाल तरु को वेष्टन करने के लिए सुदक्ष लता पाश स्वरुप हैं। इनके अधोभाग में बिल्व फल के समान स्तनयुगल और हस्तद्वय रुपी पल्लव शोभा पा रहे हैं।

स्मरजयलिपियुक्ता हाटकी पट्टिकेयं किमु विधृतमनोभू–शस्त्रिक स्वर्णपीठम्
मदनभुजगपाशाधारतूनं नु हैमं नहि लसति विराजद्वेणि राधासुपृष्ठम्।।१०६६।।
(गोवि० ११/७२)

सहजविनतमंसद्वन्द्वमस्याः कवीन्द्रा गिरिधरकर–शश्वद्भारतो नम्रमाहुः।
मम तु मतमनच्चैरप्यदः सर्वमुच्चैः शिरसगणमतीत्योद्भ्याति तत्सौभगेन।।१०६७।।
(गोवि० ११/७३)

सौन्दर्य लक्ष्मीरिह काव्यलक्ष्मीः संगीतलक्ष्मीश्च हरेर्मुदेऽस्ति।
पूर्णेति धातुर्गणनात्तु रेखात्रयेण कण्ठः किमु भात्यमुष्याः।।१०६८।।
(गोवि० ११/७४)

व्यर्थीकृता स्वरगुणैगहनं पिकाली भेजे सुधा च कटुतां जड़तां ततश्रीः।
यस्य श्रिया दरततिश्च समुद्रमस्याः केनोपमान्तु कवयस्तमिमं सुकण्ठम्।।१०६९।।
(गोवि० ११/७६)

(१०६६) यह क्या कामदेव को जय करके विजयलिपि युक्ता सुवर्ण पट्ट है अथवा कामदेव की शस्त्र युक्त स्वर्ण पीठ है अथवा काम रुपी नागपाश को रखने वाले तून (बाणाधार) नहीं, यह सब कुछ भी नहीं, यह तो वेणी से झूलती हुई पीठ ही शोभा पा रही है।

(१०६७) श्रीराधारानी के स्कन्ध द्वय स्वभाव से ही विशेष रुप से झुके हुए हैं, लेकिन श्रेष्ठ कवियों का कहना है – कि निरन्तर गिरधर श्रीकृष्ण के हाथों का भार वहन करने के कारण ही यह झुक गये हैं, लेकिन मेरा तो मत यह है कि श्रीराधा के स्कन्ध द्वय नम्र होते हुए भी निरन्तर श्रीकृष्ण के कर कमलों का भार वहन जन्य सौभाग्य पाकर इस जगत एवं पर जगत की समस्त सौभाग्य गर्विता सुन्दरी गणों का अतिक्रमण करके विराज रहे हैं।

(१०६८) आहा ! श्रीराधारानी के कण्ठ में तीन लक्ष्मी, सौन्दर्य लक्ष्मी, काव्य लक्ष्मी, संगीत लक्ष्मी, ये श्रीकृष्ण को आनन्द देने के लिए विराजमान हैं। और विधाता ने इनकी गणना करने के लिए ही मानों राधारानी के कण्ठ में इन तीन रेखाओं की रचना की है।

(१०६९) श्रीराधारानी के सुन्दर कण्ठ के स्वर को सुनकर कोकिल समूह अपने स्वर को व्यर्थ मानती हुई वन में चली गयीं। अमृत कटु हो गया, वीणा वाद्य की सुश्राव्यता (सुन्दर ध्वनि) रुपी सम्पत्ति जड़ता को प्राप्त हो गयी। और जिसकी शोभा को देखकर समुद्र में चले गये ऐसे कण्ठ की उपमा कवि किसके साथ करें।

यो बालार्कविकाशि–सुप्तमधुप स्वर्णाम्बुजैकच्छदो विश्राम्यत्पिक–हेममन्दिरगवाक्षाधो विटंकोऽपि यः।
तौ राधामदबिन्दु चारुचिबुकं दृष्टवा स्वसाम्यौत्सुकौ श्रीकृष्णांगुलि–संगसौभगगुणैर्न्यक्कृत्य विभ्राजते।।११००।।

(गोवि० ११/७७)

बन्धोर्हरेर्जीवतयास्य तत्ता प्रेम्णो वहिर्बिम्वतया तथास्य।
राधाधरौष्ठाविति बन्धुजीव–बिम्बौ स्वयं तन्नहि साम्यमाभ्याम्।।११०१।।

(गोवि० ११/८१)

कुन्दाकृति हरिरुचिर्विचित्रा, श्रीराधिकायारदकीरराजिः।
या नित्य कृष्णाधरबिम्बमात्रा, स्वादेन लेभे शिखरच्छवित्वम्।।११०२।।

(गोवि० ११/८१)

श्रीकृष्णसत्कीर्त्यभिधाननाम्णोः सुनव्ययूनोर्मिथुनस्य धात्रा।
हिन्दोललीलाभिरतस्य चक्रे राधा–रसज्ञारुणवस्त्रदोला।।११०३।।

(गोवि० ११/८४)

(११००) प्रभात कालीन सूर्य की किरणों से विकासशील सुवर्ण के एक दल कमल पर एक भ्रमर शयन कर रहा हो अथवा हेम मन्दिर में स्थित गवाक्ष के नीचे पिंजड़े में एक कोकिला विश्राम कर रही हो। इन दोनों के श्रीराधिका के कस्तूरी बिन्दु युक्त सुचारु चिबुक से तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि श्रीराधारानी का चिबुक श्रीकृष्ण के उंगुली के संग रुपी सौभाग्य को पाकर इन दोनों की शोभा को तिरस्कार कर रहा है।

(११०१) बन्धुवर श्रीकृष्ण के जीवन स्वरुप होने के कारण श्रीराधारानी के अधर बन्धु जीविता एवं श्रीकृष्ण के प्रेम के प्रतिबिम्ब स्वरुप होने के कारण श्रीराधारानी के होठों की बिम्बता प्रकाशित हो रही है इसलिए उनके अधरोष्ठ ही जब बन्धुजीव और विम्ब हो गये तो बन्धुजीव कुसुम और बिम्बाफल के साथ उनकी तुलना कैसे हो सकती है।

(११०२) श्रीराधारानी की दन्तावलि रुपी शुक श्रेणी कुन्दों के पुष्पों के समान एवं हीरे की कान्ति के समान विचित्र वर्ण वाली है जो कि नित्य ही श्रीकृष्ण के अधर रुपी बिम्बाफल का आस्वादन करने से पके हुए अनार के दानों की शोभा को प्राप्त हो रहे है।

(११०३) श्रीकृष्ण की सत्कीर्ति और उनका नाम रुपी सुन्दर युवक, युवती को झूला झूलने की अभिलाषा का दर्शन करके विधाता ने श्रीराधा के रसना रुपी अरुण वस्त्र के झूले का विधान ही मानो कर दिया है।

पीयूषाब्धितरंग–वर्णमधुरं नर्मप्रहेलीमयं शब्दार्थोभयशक्ति–सूचित–रसालंकारवस्तुध्वनि।
भृंगीभृंग–पिकीपिक–ध्वनिकलास्वाध्यापकं राजते श्रीकृष्ण श्रवसो रसायनमिदं श्रीराधिका भाषितम्।।११०४।।
(गोवि० ११/८५)

प्रेमाज्यनर्मालि–सितारसावलीमाध्वीकमन्दस्मितचन्द्र–संयुता।
अस्या मृषेर्ष्यामरिचान्वितादभुता वाणी–रसालोल्लसतीश–तृप्तिदा।।११०५।।
(गोवि० ११/८६)

हरेर्गुणालीवरकल्पवल्ल्यो राधाह्वदाराममनु प्रफुल्लाः।
लसन्ति या याः कुसुमानि तासां स्मितच्छलात् किन्नु बहिः स्खलन्ति ?।।११०६।।
(गोवि० ११/८८)

हरिनयन–चकोर–प्रीतये राधिकाया मुखशशिनमपूर्वं पूर्णमुत्पाद्य धाता।
नयनहरिणयुग्मं न्यस्य तस्मिन् सुलोलं न्यधित तदवरोद्धुं पार्श्वयोः कर्णपाशौ।।११०७।।
(गोवि० ११/९२)

चन्द्रः कलंकी क्षयताति विह्वलस्तत्पादघातैर्मलिनं तथाम्बुजम्।
सुनिर्मलं सन्ततपूर्णमण्डलं, केनोपमेयं वद राधिकाननम्।।११०८।। (गोवि० ११/९३)

(११०४) जो सुधा सागर की तरंगों के समान वर्णों के प्रयोग से मनोहर, जो परिहास और वाक् चातुरीमय शब्द और अर्थ दोनों द्वारा रस, अलंकार, वस्तु ध्वनि युक्त और जो भ्रमरी–भ्रमर, कोकिल–कोकिला की ध्वनि के भी मानों अध्यापक हैं, ऐसे श्रीराधारानी के वाक्य श्रीकृष्ण के दोनों कानों के रसायन स्वरुप हैं।

(११०५) और जिसमें प्रेम रुपी घृत, परिहास रुपी चीनी, रस रुपी मधु, मन्द हास्य रुपी कर्पूर, मिथ्या ईर्ष्या मिर्च से युक्त श्रीराधा की अद्भुत वाणी रुपी रसाल पेय श्रीकृष्ण को परम तृप्ति प्रदान करने वाला है।

(११०६) श्रीराधा के हृदय रुपी कुसुम उद्यान में श्रीकृष्ण के गुणावलि रुप जो जो श्रेष्ठ कल्प लताएं प्रफुल्लित होकर शोभा पा रही हैं उनकी लताओं के पुष्प ही श्रीराधा के हास्य रुप में बाहर प्रगट हो रहे हैं।

(११०७) श्रीकृष्ण के नयन रुपी चकोरों की प्रीति के लिए विधाता ने श्रीराधा का अपूर्व और अखण्ड मुख रुपी चन्द्रमा का निर्माण किया और उसमें नेत्र रुपी दो चंचल हरिणों को स्थापित कर दिया और वे कहीं भाग न जायें, इसलिए मुख के दोनों ओर दो कान रुपी पाश का निर्माण कर दिया।

(११०८) चन्द्र कलंक युक्त है, क्षय रोग से आक्रान्त होकर विकल हो रहा है और चन्द्र कि किरणों का स्पर्श पाकर मलिन हो रहा है तो फिर सुनिर्मल और सदा परिपूर्ण श्रीराधा के मुखमण्डल की किसके साथ उपमा की जा सकती है ?

राधाया जितहेमदर्पणमदं गण्डद्वयं सुन्दरं लावण्यामृतपूर्णितं हि कणकक्षौन्यां सरोयुग्मकम्।
यत्ताटंकसुवर्णपद्ममलिकं कस्तूरिकाचित्रसच्छैवालं मकरीविलास–वलितं कृष्णाति तृष्णाहरम्।।११०९।।
(गोवि० ११/९४)

अमुष्याः श्रीनासा तिलकुसुमतूणो रतिपते–रधोवक्त्रं पूर्ण कुसुमविशिखैश्चित्रमृगयोः।
मुखद्वारा तस्मात् स्मितचयमिषात्ते निपतिताः शरव्यत्वं येषामलभत हरेश्चित्तहरिणः।।१११०।।
(गोवि० ११/९८)

राधाया नयनाञ्जनाधररुचा व्याप्तं नु गुञ्जायते नासामौक्तिकमेतदित्यविदुषां काव्यं ममैतन्मतम्।
शश्वत्कृष्णविराजि रागि हृदयश्वासानिलैर्भावितं तत्तद्वर्णतयाशु तत्परिणतं तेषां हि तत्तद्गुणैः।।११११।।
(गोवि० ११/९९)

नयनयुगविधाने राधिकाया विधात्रा जगति मधुरसाराः सञ्चिताः सद्गुणा ये।
भुवि पतित–तदंशैस्तेन सृष्टान्यसारैर्भ्रमरमृगचकोराम्भोजनीलोत्पलानि।।१११२।।
(गोवि० ११/१००)

(११०९) श्रीराधिका के दोनों गण्डस्थल स्वर्ण दर्पण के गर्व को खण्डन करने वाले अत्यन्त कमनीय हैं। ये दोनों गण्डस्थल मानों सुवर्णमयी पृथ्वी पर लावण्य अमृत से पूर्ण दो सरोवरों के समान हैं। इनमें कर्ण भूषण रुपी दो सुवर्ण कमल की कलिका झूल रही हैं और जो कस्तूरी की पत्रावली है वही मानों शैवाल है, और जो मकरी के विलास से युक्त यह श्रीकृष्ण की तीव्र पिपासा को दूर करने वाला है।

(१११०) श्रीराधिका की मानों नतमुख (उल्टा) तिल के कुसुम की भांति मानों तून (बाणाधार) जिसमें मानों अद्भुत व्याध रुपी रतिपति मदन के बाण रखे हुए हैं ऐसी नासिका रुपी बाणाधार से मुख के द्वारा मृदु हास्य के छल से जो बाण निकलते हैं वे श्रीकृष्ण के मन रुपी मृग को अपना लक्ष्य बना लेता है।

(११११) श्रीराधिका के नासाग्र मुक्ता (बेसर) का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह मानों गुञ्जा फल के समान एक ओर से लाल और एक ओर से कृष्ण वर्ण है। कविगण इसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह मोती नेत्रों के अंजन एवं अधरों की कान्ति से लाल और काले इन दो रंगों की कान्ति से युक्त है किन्तु मेरे मत से श्रीकृष्ण के कृष्ण वर्ण और उनके अनुराग की लालिमा, जो उनके हृदय में निरन्तर विराजमान है और ऐसे हृदय से निकलने वाले विश्वास की वायु से भावयुक्त होकर यह मुक्ता लाल और काला यह दो रंगों में परिणित हो गया है।

(१११२) एवं विधाता ने श्रीराधिका के नेत्र युगलों का निर्माण करने के लिए जगत के समस्त मधुर सार और गुण युक्त पदार्थों का संचय करके उनका सारभाग ग्रहण करके श्रीराधिका के नेत्रों का निर्माण किया और उसके पश्चात् जो असार अंश भूमिपर गिरा उसके द्वारा भ्रमर मृगलोचन, चकोर, कमल, मीन, और उत्पल इन सब की सृष्टि की।

राधाक्षिपद्मयधाम्नि तिष्ठतः सदा सृजन्तौ भ्रमर–प्रजापती।
प्रजावलीं मानसिकीं यतोऽसकौ कटाक्षधारामिषतो निरेत्युत।।१११३।।

(गोवि० ११/१०३)

भ्रुवौ तिरःप्रसारिन्यौ विष्णुक्रान्तालते ध्रुवम्।
अस्याः कृष्णे ययोर्भातः कुसुमे नेत्रयोर्मिषात्।।१११४।।

(गोवि० ११/१०४)

राधालिकं चिल्ल्यलकालि मञ्जुलं नवेन्दुलेखा–मदहारि दीव्यति।
उपर्यधः षट्पदपालि–वेष्टित यथा नवं काञ्चनमाधवीदलम्।।१११५।।

(गोवि० ११/१०६)

सीमन्तरेखाञ्च्यरुणाम्बरावृतं सैन्दूरमस्यास्तिलकं विभाति।
करावगुण्ठाभिधमुद्रयावृतं ताम्रार्घ्यपात्रं सशिखं स्मरस्यवा।।१११६।।

(गोवि० ११/१०८)

अलकमधुपमाला भाति या राधिकाया मुखकमलमधुली–पानलुब्धोपरिष्टात्।
नयन हरिणयुग्मारोधनायाघशत्रोमर्दनमृगयुनासौ लम्भिता वागुरात्वम्।।१११७।।

(गोवि० ११/१११)

(१११३) श्रीराधा के नेत्र कमलों में जो भ्रमर के समान दो तारिकाएं वो मानों प्रजापति के समान नेत्रों से मनोवृत्ति रुपी प्रजा का सृजन करते हैं क्योंकि इन्हीं नेत्रों से कटाक्ष के छल से उनकी मनोवृत्ति रुपी प्रजावली बाहर प्रकाश पाती है।

(१११४) श्रीराधिका की भ्रूद्वय वक्रभाव से फैलकर मानों अपराजिता लता के समान है जिसके दो कृष्ण वर्ण के कुसुम नेत्रों के रुप में शोभा पा रहे हैं।

(१११५) स्वर्ण वर्ण की माधवी लता के पत्रों के ऊपर और नीचे भ्रमरों के परिवेष्टित हो जाने से जिस प्रकार शोभा होती है उसी तरह राधारानी का ललाट देश भ्रूलता और घुंघराली अलकावलि के मध्य नवोदित चन्द्रलेखा के गर्व का खण्डन करता हुआ शोभा पा रहा है।

(१११६) सीमन्त (माँग) की रेखा से युक्त और अरुण वर्ण के वसन से समावृत श्रीराधिका का सिन्दूर रचित तिलक अवगुण्ठन की कर मुद्रा से युक्त मानों कामदेव के ताम्रमय अर्घ्यपात्र के समान शोभा पा रहा है।

(१११७) श्रीराधिका के घुंघराली अलकों रुपी भ्रमर श्रेणी मुख कमल के मधुपान से लुब्ध होकर उसके ऊपर ही निवास करती है यह देखकर प्रतीत होता है मानों कन्दर्प रुपी व्याध ने श्रीकृष्ण के नेत्र रुपी हरिण को बांधने के लिए भ्रमर श्रेणी रुपी जाल बिछा दिया हो।

राधामनोवृत्ति–लतांकुरागताः कृष्णस्य ये भावनया तदात्मताम्।
सूक्ष्मायताः प्रेमसुधाभिषेकतस्ते निःसृताः केशमिषाद्बहिर्ध्रुवम्।।१११८।।

(गोवि० ११/११२)

रत्नावलीकान्ति–सरस्वतीयुता मुक्ताप्रसूनावलि–गंगयान्विता।
निजश्रियासौ यमुनायिता स्वयं वेणी त्रिवेणीव वभौ नतभ्रुवः।।१११६।।

(गोवि० ११/११५)

विलासविस्रस्तमवेक्ष्य राधिका–श्रीकेशपाशं निजपुच्छपिञ्छयोः।
न्यक्कारमाशंकय ह्रियेव भेजिरे गिरिं चमर्यो विपिनं शिखण्डिनः।।११२०।।

(गोवि० ११/११६)

राधायाः कुंकुमानां परिमलविततिर्निर्जिहीतेऽखिलांगा–न्नाभिभ्रूकेशनेत्रादगरुमृगमदालिप्तनीलोत्पलानाम्।
वक्षः क्षोत्रास्य–नासाकरपदयुगलादिन्दुलिप्ताम्बुजानां कक्षश्रेणीनखेभ्यो मलयजरस–संसिक्त सत्केतकीनाम्।।११२१।।

(गोवि० ११/११७)

कृष्णेन्द्रियाऽलादिगुणैरुदारा, श्रीराधिका राजति राधिकेव।
सर्वोपमानावलिमर्दिशीला–न्यंगानि वांगानि च भान्त्यमुष्याः।।११२२।। (गोवि० ११/११८)

(१११८) श्रीराधिका की मनोवृत्ति रुपी लताओं के अंकुर श्रीकृष्ण की भावना से काले रंग को प्राप्त होकर उनकी प्रेम सुधा से अभिषिक्त होकर सूक्ष्म और लम्बे होकर केशों के रुप में बाहर प्रगट हो गये हैं।

(१११६) नत भौहों वाली श्रीराधारानी की वेणी में रत्न माला की कान्ति सरस्वती, मोतियों और पुष्पों की माला गंगा, और वेणी की कान्ति ही स्वयं यमुना, इस प्रकार श्रीराधा की वेणी गंगा–यमुना–सरस्वती से मिलकर त्रिवेणी के समान शोभा पा रही हैं।

(११२०) श्रीराधिका के सुन्दर केशपाश विलास के कारण बिखरे हुए देखकर अपने पंखों और पिच्छ का तिरस्कार होने की आशंका से लज्जावश चमरीगण (गाय चमरी) और मयूर सकल कानन में प्रवेश कर गये।

(११२१) श्रीराधारानी के सुन्दर सकल अंगों से कुंकुम की सुगन्धि निकल रही है। नाभि, भ्रू, केश, नयन से अगरु, मृगमद लिप्त नीलकमल श्रेणी की सुगन्ध, वक्ष, कर्ण, नासिका, वदन और चरण युगल से कर्पूर लिप्त कमल श्रेणी की, कक्ष, नितम्ब और नख–सकल से चन्दन सिक्त केतकी, की सुगन्ध निकल रही है।

(११२२) श्रीकृष्ण की समस्त इन्द्रियों को आह्लाद देने वाले सौन्दर्य और माधुर्य आदि से भूषित श्रीराधिका के ही समान हैं। चन्द्र, कुमुद, मृणाल, कमल और स्वर्ण आदि जितने भी उपमान वस्तुएं हैं, उन सब के अहंकार का मर्दन करने वाले श्रीराधारानी के अंग–प्रत्यंग राधारानी के अंगों के समान ही शोभा पा रहे हैं।

पातिव्रत्यं क्व नु परवधूत्वापवादः क्व चास्याः प्रेमोद्रेकः क्व च परवशत्वादिविघ्नः क्व चायम्।
क्वैषोत्कण्ठा क्व नु बकरिपोर्नित्यसंगाद्यलब्धिर्मूलं कृष्ट्वा कषति हृदयं कापि शल्यत्रयी नः।।११२३।।

(गोवि० ११/१२१)

का कृष्णस्य प्रणयजनिभूः श्रीमती राधिकैका कास्य प्रेयस्यनुपमगुणा राधिकैका न चान्या।
जैह्म्यं केशे दृशि तरलता निष्ठुरत्वं कुचेऽस्याः वांच्छापूर्त्त्यै प्रभवति सदामुष्य राधैव नान्या।।११२४।।

(गोवि० ११/१२२)

न दीक्षास्याः शिक्षाश्रवण–पठने वा गुरुमुखात्तथापीयं राधा त्रिजगदबला विस्मयभुवाम्।
कलाम्भोधेः शौरेरपि परमसन्तोषणकृतां कलानामाचार्या ब्रजमृगदृशामप्यजनि सा।।११२५।।

(गोवि० ११/१२५)

प्रजागर स्वप्नसुषुप्तिवषु श्री, गान्धर्विकायाः सततं हि नान्या।
मनोवपुर्वागखिलेतन्द्रियाणां, कृष्णैकतानत्वमृतेऽस्तिवृत्तिः।।११२६।।

(गोवि० ११/१२६)

(११२३) श्रीराधारानी का पातिव्रत्य, गुण कहाँ और उनका परवधू रुप अपवाद ही कहाँ ? अर्थात् श्रीराधारानी का पातिव्रत्य इतना सर्वोच्च है जिसमें परवधू रुपी अपवाद की सम्भावना ही नहीं है। श्रीराधारानी का प्रेमोद्रेक ही कहाँ और उसमें परवशता आदि विघ्न ही कहाँ ? अर्थात् उनका प्रेम इतना महान है जिसमें किसी विघ्न की सम्भावना ही नहीं है। उनकी उत्कण्ठा ही कहाँ और श्रीकृष्ण के साथ मिलन की दुर्लभता ही कहाँ ? अर्थात् जहाँ अत्यन्त तीव्र उत्कण्ठा होती है वहाँ कृष्ण मिलन दुर्लभ नहीं होता। इस प्रकार यह तीन कोई अद्‌भुत शूल मेरे हृदय को वेदना दे रहे हैं।

(११२४) श्रीकृष्ण के प्रणय की उत्पत्ति का स्थान कौन सा है ? इसका एक ही उत्तर है श्रीमती राधिका। श्रीकृष्ण की प्रियतमा कौन है ? इसका भी एक ही उत्तर है अनुपम गुणा एक श्रीराधिका और कोई नहीं। इनके केशों की कुटिलता, नेत्रों की चंचलता, स्तनों की कठोरता, यही तीनों (अवगुण होते हुए भी) सदा श्रीकृष्ण की अभिलाषा पूर्ति करने में (सुख देने में) समर्थ हैं।

(११२५) इन श्रीराधिका ने गुरुमुख से न तो कोई दीक्षा ली है और न कला इत्यादि की कोई शिक्षा श्रवण या पठन किया है तथापि यह त्रिभुवन की समस्त रमणियों को विस्मृत करने वाली अखिल कलाओं की निधि है। श्रीकृष्ण को जो कि समस्त कलाओं के गुरु है, परम संतोष देने वाली ब्रजरमणियों की समस्त कलाओं की आचार्या हैं।

(११२६) जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों दशाओं में श्रीराधा के तन, मन और वचन तथा समस्त इन्द्रियों की वृत्तियां श्रीकृष्ण में ही निरन्तर एक तान (एकाग्र) रहती हैं और कहीं भी नहीं।

शफरमृगचकोरीखञ्जनाम्भोजभृंगी–निकरमदनवाणश्रेणी–नीलोत्पलानि।
हरिधृति–धनचौरे राधिकायाः प्रवीणैः सहजनयनलीलानर्त्तनैर्निर्जितानि।।११२७।।
(गोवि० ११/१२७)

गीर्भूलीला युवतिषु वरैः सद्गुणैः सारभूतास्ताभ्यः सा श्रीस्तत इह महाप्रेमगोपांगनास्ताः।
ताभ्यश्चन्द्रावलि–मुख लसद्यूथनाथा अमूभ्यः श्रीराधास्यां यदिह नितरां सोऽपि कृष्णः सतृष्णः।।११२८।।
(गोवि० ११/१२८)

चन्द्रावली प्रणय–रूप–गुणैः प्रयत्नाद्व्यक्तीकृतैर्व्यरचयत् स्ववशं बकारिम्।
श्रीराधिका तु सहजप्रकटैर्निजैस्तैर्व्यस्मारयत्तमिह तामपि हा कुतोऽन्याः।।११२९।।
(गोवि० ११/१३१)

विनाप्याकल्पैः श्रीवृषरविसता कृष्णसविधे मुदोत्फुल्लाभावाभरणवलितालीः सुखयति।
विना कृष्णं तृष्णा कुलित हृदयालंकृतिचयैर्युताप्येषा म्लाना मलिनयति तासां तनुमनः।।११३०।।
(गोवि० ११/१३४)

कृष्णाः पुरः स्फुरति पार्श्वयुगे च पश्चाच्चित्तस्य वृत्तिषु दृशोर्विषये च शश्वत्।
श्रीगण्डयोश्च कुचयोस्तरले यतोऽस्याः श्रीराधिका तदिह कृष्णमयीति सत्यम्।।११३१।।
(गोवि० ११/१३५)

(११२७) श्रीकृष्ण के धैर्य रुपी धन का अपहरण करने के विषय में निपुणा श्रीराधा के स्वाभाविक नेत्र युगल का लीला–विलास (नेत्र संचालन) मछली, मृग, चकोरी, खंजन, भ्रमरिका तथा कामदेव के बाण समूह और नील कमल की श्रेणी को भी परास्त करता है।

(११२८) युवती गणों के मध्य में उत्कृष्ट गुणों वाली सरस्वती, भूदेवी, लीला देवी आदि शक्तियां श्रेष्ठ हैं। उनकी अपेक्षा लक्ष्मी और उनमें भी ब्रजमण्डल के महाप्रेममयी गोपांगनाएं, उनमें भी श्रेष्ठ चन्द्रावली आदि प्रमुख यूथेश्वरीगण और सर्वाधिक श्रेष्ठा श्रीराधिका जिनके प्रति निरन्तर श्रीकृष्ण सतृष्ण रहते हैं।

(११२९) चन्द्रावली जो अति प्रयत्नपूर्वक अपने प्रणय रुप और गुणों को व्यक्त करके उनके द्वारा श्रीकृष्ण को अपने वशीभूत करती हैं, किन्तु श्रीराधा अपने स्वभाव सिद्ध प्रेम और गुणों द्वारा श्रीकृष्ण को अपने वशीभूत करके अन्य नारियों की तो क्या यहाँ तक चन्द्रावली पर्यन्त को भी विस्मृत करा देती हैं।

(११३०) श्रीकृष्ण के समीप श्रीवृषभानु नन्दिनी श्रीराधा आभूषणों से रहित भी परम हर्ष से उत्फुल्लित होती हुई भाव रुपी अलंकारों से अलंकृता होकर उन्हें सुख प्रदान करती हैं और श्रीकृष्ण के विरह में वही श्रीराधा अलंकारों से विभूषित रहने पर भी स्वयं म्लान होकर अपनी सखियों के तनमन को भी मलिन कर देती है।

(११३१) श्रीराधिका के सामने दोनों ओर पीछे मन की समस्त वृत्तियों में नेत्रों के सामने अपने दोनों गण्ड स्थल की शोभा में वक्षस्थल में हार के मध्य मणि में सर्वत्र ही श्रीकृष्ण स्फुरित होते रहते हैं अतः इस संसार में श्रीराधिका ही कृष्णमयी हैं यह कथन सत्य है।

कृष्णस्य सौन्दर्यभरैर्विनिर्जितः कामोऽस्य किञ्चित् प्रतिकर्त्तुमक्षमः।
राधामिह प्रीतिमतीं विनिर्णयं स्तां बाधतेऽसौ तदगोचरेऽबलाम्।।११३२।।
(गोवि० ११/१३६)

स्पृशति यदि मुकुन्दो राधिकां तत्सखीनां भवति वपुषि कम्प–स्वेदरोमाञ्चवाष्म्।
अधरमधु मुदास्याश्चेत् पिबत्येष यत्नाद्–भवति वत तदास्यां मत्तता चित्रमेतत्।।११३३।।
(गोवि० ११/१३७)

इयं कृष्णादंकस्रजमुरुमुपादाय रुचिरां वदान्यास्मै राधा रुचिरमणिमालामिह ददौ।
निपीयास्याः कृष्णस्त्वधरमधु–दन्तक्षतमदाद्–गृहीत्वाभ्यामाल्योदरतदवलोकं तनुमदुः।।११३४।।
(गोवि० ११/१३६)

दृष्ट्वा राधां निपुणविधिना सुष्ठु केनापि सृष्टां धाता ह्रीणः सदृशमनया यौवतं निर्मिमित्सुः।
सारं चिन्वन्नसृजदिह तत् स्वस्य सृष्टेः समास्या नैकाप्यासीदपि तु समभूत् पूर्वसृष्टिर्निरर्था।११३५।।
(गोवि० ११/१४३)

(११३२) श्रीकृष्ण के अतिशय सौन्दर्य से मदन पराजित होकर श्रीकृष्ण का कुछ भी अपकार करने में असमर्थ होने के कारण श्रीकृष्ण के विरह में अबला श्रीराधा में श्रीकृष्ण की अतिशय प्रीति को देखकर उन्हें पीड़ा प्रदान करता है।

(११३३) श्रीकृष्ण यदि श्रीराधा का स्पर्श करते हैं तब उनकी सखियों के शरीर में कम्प, स्वेद, रोमांच, अश्रु आदि सात्विक भावों का उदय हो जाता है। आहा ! यदि श्रीकृष्ण श्रीराधा का अधरमधु हर्ष पूर्वक पान करते हैं तो उनकी सखियों में मत्तता उत्पन्न हो जाती है (तादात्म्य भाव के कारण) यही आश्चर्य है।

(११३४) यह परम उदारा श्रीराधा श्रीकृष्ण से मनोहर उत्कृष्ट नख चिह्न रुपी पुष्प माला (आलिंगन रुपी माला) ग्रहण करके उनको सुन्दर मणिमाला अर्थात् दन्ताघात रुपी माला प्रदान करती हैं, एवं श्रीकृष्ण भी उनका अधर मधु यत्नपूर्वक पान करके उनको दन्तक्षत प्रदान करते हैं। और समस्त सखीगण युगल की यह लीला अवलोकन करके उनको अपना तनमन सर्वस्व अर्पण कर देती हैं।

(११३५) किसी एक निपुण विधाता द्वारा सुन्दर से निर्माण की गई श्रीराधा का दर्शन करके विधाता ने लज्जित होकर उनके जैसी युवतियों का निर्माण करने की इच्छा से अपनी सृष्टि के समस्त सार वस्तुओं का संग्रह करके उन सुन्दरियों का निर्माण किया लेकिन श्रीराधिका के समान एक भी नहीं बन सकी, बल्कि उनकी पूर्व सृष्टि सब निरर्थक ही हो गयी।

राधागुणानां गणनातिगानां वाणीवचःसम्पदगोचराणाम्।
न वर्णनीयो महिमेति यूयं, जानीत तत्तत्कथनैरलं नः।।११३६।।
(गोवि० ११/१४५)

इत्थं सालंकार–काव्यैः सहासं कृष्णः कान्तां वर्णितांगीं सखीभिः।
पश्यन् फुल्लत्संकुचद्भुग्ननेत्रां नेत्रश्रुत्योस्तृप्तिमुच्चैरवाप।।११३७।।
(गोवि० ११/१४६)

वृन्देंगितेन सारिका पुनराह :–

क्षितौ शोणेऽम्बुजे तदुपरि नवौ हेमकदली–तरु नीचीनाग्राविह कनकसिंहासनमिदम्।
ततः शून्यं तस्योपरि सुमिलितं कोकमिथुनं ततःश्चन्द्रस्तस्मात्तम इति विधेः का नु घटना।।११३८।।
(आ० ८/२३)

राकानेकविचित्रचन्द्र उदितः प्रेमामृतज्योतिषां वीचीभिः परिपूरयेदगणितब्रह्माण्डकोटीर्यदि।
वृन्दारण्यनिकुञ्ज–सीमनि तदाभासः परं लक्ष्यते भावेनैव यदा तदैव तुलये राधे! तव श्रीमुखम्।।११३९।।
(रा० १२६)

(११३६) श्रीराधिका के असंख्य गुणगणों की महिमा का कभी भी वर्णन नहीं किया जा सकता, यह तो आप सब जानते हैं अतः इन गुण समूहों का कथन मेरे लिए आवश्यक नहीं है, और दूसरों का तो क्या कहना। यह गुण साक्षात् सरस्वती की वाक्य सम्पत्ति के भी अगोचर है अर्थात् सरस्वती भी इनका वर्णन नहीं कर सकती।

(११३७) इस प्रकार सखीगण ने हास्य युक्त, अलंकार युक्त, काव्य रचना द्वारा श्रीराधिका के विग्रह का वर्णन किया जिसे सुनकर अत्यधिक उल्लसित, लज्जा से संकुचित और क्रोध से नेत्रों को कुटिल करती हुई परम प्रियतमा श्रीराधा श्रीकृष्ण के नेत्र और श्रवणों को अत्यन्त सुख प्रदान करने लगी, और सखी भी उसे सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं।

(११३८) श्रीवृन्दाजी के इंगित को पाकर पुनः सारिका कहने लगी :– विधाता की एक विचित्र घटना देखो! देखो दो लाल कमल उस पर अधो मुख (उल्टा) नव कनक कदली के दो स्तम्भ उसके ऊपर स्वर्ण का सिंहासन, उसके ऊपर शून्य तदुपरि मिलते हुए चक्रवाक युगल, उनके ऊपर पूर्णचन्द्र, तत्पश्चात् अंधकार पुंज विराज रहे हैं।

(११३९) हे श्रीराधे! एक समय में विचित्र बहुत से चन्द्र उदय हों और उनकी प्रेमामृत ज्योति की तरंगों से यदि अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड परिपूर्ण होते हों तथापि इस श्रीवृन्दावन की निकुंज सीमा में आपके श्रीमुख माधुरी की तुलना में लेश मात्र भी नहीं हो सकता। अतएव केवल भाव के द्वारा ही हम आपके श्रीमुख की तुलना कर सकते हैं।

कालिन्दीकूल–कल्पद्रुमतलनिलये प्रोल्लसत्केलिकन्दा वृन्दाट्व्यां सदैव प्रकटतररहोवल्लवीभावभाव्या।
भक्तानां हृत्सरोजे मधुर–रससुधास्यन्दिपादारविन्दा सान्द्रानन्दाकृतिर्नः स्फुरतु नवनव–प्रेमलक्ष्मीरमन्दा।।११४०।।

(रा० १२७)

वेणुः करान्निपतितः स्खलितं शिखण्डं भ्रष्टञ्च पीतवसनं व्रजराजसूनोः।
यस्याः कटाक्षशरपात–विमूर्च्छितस्य तां राधिकां परिचरामि कदा रसेन।।११४१।।

(रा० ३६)

श्रीराधिके तव नवोद्गमचारुवृत्त–वक्षोजमेव मुकुलद्वय–लोभनीयम्।
श्रोणीं दधद्रसगुणैरुपचीयमानं कैशोरकं जयति मोहनचित्तचौरम्।।११४२।।

(रा० ४५)

गौरांगे म्रदिमा स्मिते मधुरिमा नेत्राञ्चले द्राघिमा वक्षोजे गरिमा तथैव तनिमा मध्ये गतौ मन्दिमा।
श्रोण्याञ्च प्रथिमा भ्रुवोः कुटिलिमा बिम्बाधरे शोणिमा श्रीराधे हृदि ते रसेन जड़िमा ध्यानेऽस्तु मे गोचरः।।११४३।।

(रा० ७५)

गात्रे कोटितडिच्छवि प्रविततानन्दच्छवि श्रीमुखे बिम्बोष्ठे नवविद्रुमच्छवि करे सत्पल्लवैकच्छवि!।
हेमाम्भोरुह कुटनालच्छपि कुचद्वन्द्वेऽरविन्देक्षणं वन्दे तन्नवकुञ्जकेलि मधुरं राधाभिधानं महः।।११४४।।

(रा० ६६)

(११४०) जो यमुनातीरवर्ती कल्पतरु तलस्थित भवन में विलास करने वाली वृन्दावन में सर्वदा विराजमाना, सुगोप्या, गोपीजनों के भाव से विभाविता एवं भक्तगणों के हृदय कमल में मधुर रस की वर्षा करने वाले चरण कमल की शोभा से युक्त सान्द्रानन्द की मूर्ति सर्वोत्तमा नित्यनव प्रेम लक्ष्मी श्रीराधा हमारे हृदय में स्फुरित हों।

(११४१) जिनके कटाक्ष शर घात से मूर्च्छित नन्दनन्दन के हाथ से वेणु गिर जाती है मोर मुकुट स्खलित हो जाता है, पीत वसन भ्रष्ट हो जाता है ऐसी श्रीराधिका की कब मैं प्रेमपूर्वक सेवा करुँगी।

(११४२) हे श्रीराधिके ! आपके नवोदित सुन्दर वर्तुल (गोलाकार) स्तन मुकुलद्वय द्वारा लोभनीय, जघन मण्डल विशिष्ट श्रीकृष्ण के नित्य सेवा आदि गुणों द्वारा वर्द्धित एवं विश्व मोहन को भी मोहित करने वाली आपकी किशोरावस्था की जय हो।

(११४३) हे श्रीराधे ! आपके गौरांग की कोमलता, मृदु हास्य की मधुरिमा, नेत्रों की विशालता, वक्षोज की स्थूलता, कटि देश की कृशता, मन्द–मन्द पद विन्यास, नितम्ब की पृथुलता, भ्रूद्वय की कुटिलता, बिम्बाधर की लालिमा और आपके हृदय में रस द्वारा जड़िमा, मेरे ध्यान गोचर हो।

(११४४) जिनके श्रीअंग में कोटि विद्युत की छवि श्रीमुखारविन्द पर विस्तृत (फैली हुई) आनन्द की छवि विम्बाधर पर जब विद्रुम की छवि, हस्तद्वय में सुन्दर नवीन पल्लव की छवि, स्तन युगल में स्वर्ण कमल कलिका की छवि, ऐसी प्रफुल्लित नील कमल के समान नेत्रों वाली नव कुंज केलि से मधुर कान्तिमयी श्रीराधिका के ज्योतिर्मय स्वरुप की हम वन्दना करते हैं।

चन्द्रास्ये हरिणाक्षि देवि सुनसे शोणाधरे सुस्मिते चिल्लक्ष्मीभुजबल्लि कम्बुरुचिर–ग्रीवे गीरान्द्रस्तनि !
भञ्जन्मध्य–वृहन्नितम्ब–कदली खण्डोरुपादाम्बुज–प्रोन्मीलन्नखचन्द्रमण्डलि ! कदा राधे ! मयाराध्यसे ?।।११४५।।
(रा० ११७)

भ्रमदभ्रूकुटिसुन्दरं स्फुरितचारुबिम्बाधरम् ग्रहे मधुरहुकृतं प्रणयकेलि कोपाकुलम्।
महारसिकमौलिना सभयकौतुकं वीक्षितं स्मरामि तव राधिके ! रतिकलासुखं श्रीमुखम्।।११४६।।
(रा० १२०)

चलत्कुटिलकुन्तलं तिलकशोभि–भालस्थलं तिलप्रसव–नासिकापुट–विराजिमुक्ताफलम्।
कलंकरहितामृतच्छवि–समुज्ज्वलं राधिके तवातिरतिपेशलं वदनमण्डलं भावये।।११४७।।
(रा० १८६)

लसद्दशनमौक्तिकप्रवर–कान्तिपूरस्फुर–न्मनोज्ञनवपल्लवाधर–मणिच्छटा–सुन्दरम्।
चरन्मकरकुण्डलं चकितचारुनेत्राञ्चलं स्मरामि तव राधिके ! वदनमण्डलं निर्मलम्।।११४८।।
(रा० १८५)

(११४५) हे चन्द्रानने ! हे हरिणाक्षी ! हे देवी ! हे सुनासिके ! हे अरुणाधरे ! हे सुस्मिते ! हे सुन्दर लावण्य युक्त भुज वल्ली विशिष्टे ! हे कस्तूरी की पत्रावली से चित्रित ग्रीवा वाली ! हे गिरीन्द्रस्तनि ! हे क्षीण मध्ये ! हे वृहन्नितम्बे ! हे कदली खण्ड के समान उरु शालिनी ! हे चरण कमलों की शोभा से उज्ज्वल नखचन्द्रा वली भूषिते ! हे राधे ! मैं आपकी आराधना करूँगी।

(११४६) हे श्रीराधिके ! मैं आपके सुन्दर भौहों वाले एवं चारु बिम्बाधरों की शोभा वाले, मधुर हास्य युक्त, प्रणय केलि से कुपित हुए, रसिकेन्द्र मौलि श्रीकृष्ण द्वारा भय पूर्वक एवं कौतुक के साथ अवलोकन करते हुए रतिकला सुख से सुमधुर श्रीमुखारविन्द का स्मरण करती हूँ।

(११४७) हे श्रीराधिके ! आपके मुख मण्डल पर घुंघराली अलकावलि कम्पित हो रही है। ललाट पर तिलक सुशोभित है। तिल कुसुम के सदृश नासिका के अग्रभाग में बेसर का मोती झूल रहा है ! कलंक रहित (चन्द्र) अमृत छवि से समुज्ज्वल, रति के आवेश से अत्यधिक लावण्य युक्त मुख मण्डल का मैं स्मरण करती हूँ।

(११४८) हे श्रीराधिके ! आपका श्रीमुख मण्डल जिसमें मुक्ता के समान दन्त पंक्ति की कान्ति झलक रही है, नव पल्लव के समान अरुण अधरों की छटा से जो अत्यन्त मनोहर है, और जिसमें मकराकृति कुण्डलों की छवि प्रतिबिम्बित हो रही है, एवं जिसमें चकित, चारु, नेत्रांचल चंचल हो रहे हैं (ऐसे वदन मण्डल का) मैं स्मरण करती हूँ।

उन्मीलन्मुकुटच्छटा–परिलसद्दिक्चक्रवालंस्फुरत–केयूरांगद–हार–कंकण घटा–निर्धूत–रत्नच्छवि।
श्रोणीमण्डल–किंकणी–कलरवं मञ्जीरमञ्जुध्वनि–श्रीमत्पादसरोरुहं भज मनो राधाभिधानं महः।।११४६।।

(रा० १२१)

मल्लीदामनिबद्धचारुकबरं सिन्दूररेखोल्लसत् सीमन्तं नवरत्नचित्रतिलकं गण्डोल्लसत्कुण्डलम्।
निष्कग्रीवमुदारहारमरुणं विभ्रद्दुकूलं नवं विद्युत्कोटिनिभं स्मरोत्सवमयं राधाख्यमीक्षे महः।।११५०।।

(रा० १३०)

शुद्धप्रेमविलावैभवनिधिः कैशोरशोभानिधि–र्वैदग्धीमधुररांगभंगिमनिधिर्लावण्यसम्पन्निधिः।
श्रीराधा जयतान्महारसनिधिः कंदर्पलीलानिधिः सौन्दर्यैकसुधानिधिर्मधुपतेः सर्वस्वभूतो निधिः।।११५१।।

(रा० २४५)

श्रीगोपेन्द्रकुमारमोहन–महाविद्येस्फुरन्माधुरी–सारस्फार–रसाम्बुराशि–सहजप्रस्यन्दि–नेत्राञ्चले!
कारुण्यार्द्रकटाक्षभंगि–मधुरस्मेराननाम्भोरुहे हा हा स्वामिनि राधिके! मयि कृपादृष्टिं मनाक्निक्षिप।।११५२।।

(रा० १८६)

(११४६) जिनके देदीप्यमान मुकुट (चन्द्रिका) की छटा से चारों दिशाएं शोभित हो रही हैं जिनके केयूर, अंगद हार, कंकण (चूड़ी) आदि रत्नों की छवि को भी निरस्तर (फीकी) कर रही हैं। जिनके नितम्ब देश पर किंकणी की कलध्वनि श्रीचरण कमलों में नुपूरों की मधुर ध्वनि हो रही है। हे मन ! ऐसी श्रीराधा नामक दिव्य ज्योतिर्मयीमूर्ति का भजन करो।

(११५०) जिनकी मल्लिका–माला से बंधी हुई सुन्दर वेणी, सिन्दूर की रेखा से उज्जवल मांग (सीमन्त), जिनके ललाट पर नवरत्नों का विचित्र तिलक, कुण्डलों से सुशोभित गण्डस्थान, स्वर्ण पदक से सुशोभित ग्रीवा, विशाल हार प्रभात कालीन सूर्य के समान अरुण वर्ण का दुकूल कोटि–कोटि विद्युत के समान श्रीअंग की प्रभा ऐसी अनंगोत्सव से उल्लसित राधा नामक ज्योतिर्मय स्वरुप का दर्शन करने की मैं अभिलाषा करती हूँ।

(११५१) अप्राकृत प्रेम विलास के वैभव की निधि, कैशोर शोभा की निधि, विदग्धता से मधुर अंगों की भंगिमा के चातुर्य की निधि, लावण्य के वैभव की निधि, समस्त रसों की निधि, कन्दर्प लीला की निधि, सुधा की निधि और श्रीकृष्ण के सर्वस्व की निधि स्वरुपा श्रीराधा की जय हो।

(११५२) हे श्रीनन्दनन्दन को मोहित करने वाली महाविद्या स्वरुपिणी ! हे उच्छलित माधुर्यसार का विस्तार करने वाली रस समुद्र को प्रवाहित करने वाली नेत्रांचल स्वरुपिणी ! हे करुणा से आर्द्र कटाक्ष भंगीयुक्ते ! हे मधुर मृदुहास्य युक्त वदन कमले ! हे स्वामिनी ! हे श्रीराधिके ! मेरे प्रति कृपा करके ईषत् कृपा दृष्टिपात करो।

सखीनां वर्णनमाह—

काञ्ची—मञ्जीर—केयूरक—वलयघटा—रत्नताटंकरम्याः श्रीमन्नासाग्र—लोलन्मणि—कनकलसन्मौक्तिकाश्चित्रशाटीः।
सुश्रोणीश्चारुमध्या रुचिरकुचतटीः कञ्चुकोद्भासिहारा लोलद्वेण्यग्रगुच्छाः स्मर कनकरुचीरालिकाराधिकायाः।।११५३।।

(वृन्दा० ३/४०)

गोरोचना—रुचि—मनोहर कान्तिदेहां मायूरपुच्छतुलितच्छविचारुचेलाम्।
राधे ! तव प्रियसखीं च गुरुं सखीनां ताम्बूलभक्तिललितां नमामि।।११५४।।

(सा० च० २/२३ क)

सौदामिनि—निचयचारुरुचिप्रतीकां तारावली—ललितकान्तिमनोज्ञचेलाम्।
श्रीराधिके तव चरित्र गुणानुरूपां सद्गन्धचन्दनरतां कलये विशाखाम्।।११५५।।

(सा० च० २/२३ ख)

सारिका द्वारा सखीगणों के स्वरुप का वर्णन :—

(११५३) पुनः सारिका सखीगणों के स्वरुप का वर्णन करने लगी :— जिनके अंग मेखला, नुपूर, केयूर, वलय, रत्नकुण्डल आदि द्वारा रमणीय है। सुन्दर नासाग्र में मणिजटित कनक युक्त मुक्ता झूल रहा है। विचित्र साड़ी पहिन रखी है। कटि देश अति सुन्दर, नितम्ब शालिनी, रुचिर वक्षोज युगल, उन पर कंचुकी जिस पर मनोहर हार की छटा विस्तीर्ण हो रही है। वेणी के अग्रभाग में गुच्छे (मुक्ता आदि) लटक रहे हैं, ऐसी स्वर्ण कान्ति वाली सखीगण का हम स्मरण करते हैं।

(११५४) जिनकी कान्ति गोरोचन सम मनोहर।
शिखि पिच्छ तुल्य कान्ति वसन सुन्दर।
सखी श्रेष्ठा ताम्बूल सेवा रता।
बन्दौ राधे ! तब प्रिय सखी श्रीललिता।।

(११५५) सौदामिनी—सम सुन्दर वदन।
तारावली कान्ति समचारु पट्ट वसन।
राधे ! तव सुचरित्र गुण अनुरुपा।
तव सेवा—रत चित्त सदा आनन्द स्वरुपा।
सद् गन्ध चन्दन आदि सेवा परायणा।
श्रीविशाखा जू की सदा करुं वन्दना।।

सद्रत्नचामरकराम्बर–चम्पकाभां चासाख्यपक्षरुचिरच्छविचारुचेलाम्।
सर्वान् गुणान् तुलयितुं दधतीं विशाखां राधेऽथ चम्पकलतां भवतीं प्रपद्ये।।११५६।।
(सा० च० २/२३ ङ.)

काश्मीरकान्ति–कमनीयकलेवराभां सुस्निग्धकाचनिचयप्रभचारुचेलाम्।
श्रीराधिके ! तव मनोरथवस्त्रदाने चित्रां विचित्रहृदयां सदयां प्रपद्ये।।११५७।।
(सा० च० २/२३ ग)

सच्चन्द्रचन्दन–मनोरमकुंकुमाभां पाण्डुच्छवि–प्रचुरकान्तिलसद्दुकूलाम्।
सर्वत्र कोविदतया महितां रसज्ञां राधे भजे प्रियसखीं तव तुंगविद्याम्।।११५८।।
(सा० च० २/२३ छ)

नृत्योत्सवां हि हरिताल समुज्जवलाभां सद्दाड़िमी कुसुमकान्ति–मनोज्ञचेलाम्।
वन्दे मुदा रुचि विनिर्जितचन्द्रलेखां श्रीराधिके ! तव सखीमहमिन्दुलेखाम्।।११५९।।
(सा० च० २/२३ घ)

(११५६) सुरत्न चाँवर कर चम्पक वर्णा।
चाषपिच्छ मुग्ध छवि सुचारु वसना।
हे राधे ! विशाखा सम सर्व गुणयुता।
सरन गहूँ श्रीचम्पक लता।।

(११५७) काश्मीर गौरांगी स्निग्ध काच प्रभाम्बरा।
श्रीराधिके ! तब वस्त्र सेवा मनोहरा।
दयादि अशेष गुण विचित्र हृदय।
श्रीचित्रा सखी का हम करें आश्रय।।

(११५८) सुकर्पूर चन्दन कुंकुम सम शोभा।
जिनका पाण्डुवर्ण दिव्य वसन मन लोभा।
विख्याता, पूजिता सर्व सेवा विज्ञा।
भजौ राधे ! प्रिय सखी श्रीतुंग विद्या।।

(११५९) हरिताल सम उज्ज्वल श्रीअंग वर्ण।
दाड़िम कुसुम कान्ति सम पट्ट वसन।
चन्द्र लेखा तुल्य कान्ति नृत्य सेवा परा।
वन्दौ राधे ! तव सखी श्रीइन्दुलेखावरा।।

सत्पद्मकेशर–मनोहरकान्तिदेहां प्रोद्यज्जवाकुसुमदीधितिचारुचेलाम्।
प्रायेण चम्पकलताधिगुणां समानां राधे ! भजे प्रियसखीं तव रंगदेवीम्।।११६०।।
(सा० च० २/२३ च)

प्रोत्तप्तशुद्धकनकच्छविचारुदेहां प्रोद्यत्प्रवालनिचय–प्रभचारुचेलाम्।
सर्वालि जीवन–गुणोज्जवलभक्ति दक्षां श्रीराधिके ! तव सखीं कलये सुदेवीम्।।११६१।।
(सा० च० २/२३ ज)

वसन्तकालोद्भवकेतकीतति–प्रभाविड़म्ब्युद्भट–कान्तिडम्बराम्।
विनिन्दितेन्दीवर–भास्वराम्बरा–मनंगपूर्वां प्रणमामि मञ्जरीम्।।११६२।।
(सा० च० २/२४)

किशोरवयसः स्फुरपुरटरोचिषो मोहिनीः सुचारुकृशमध्यमाः पृथुनितम्ब–वक्षोरुहाः।
सुरत्नकन काञ्चितस्फुरित नासिकामौक्तिकाः सुवेणीः पटभूषणाः स्मरत राधिका–किंकरीः।।११६३।।
(वृन्दा० २/५८)

(११६०) सुपद्म केशर मनोहर देह कान्ति।
जवा–पुष्प–वर्ण सम वसन सुभांति।
सुशीला सम गुणा श्रीचम्पक लतिका।
भजौ राधे ! तव सखी (रंगदेवी) श्रीरंग देविका।।

(११६१) तप्त शुद्ध हेम कान्ति सुन्दर वरना।
प्रवाल सम द्युति मनोज्ञ वसना।
सर्व सखीगण प्राण सम प्रियतमा।
सर्व गुण समुज्ज्वल भक्ति परायणा।
श्रीराधिके ! तव सहचरी श्रीसुदेवी।
वन्दना करुँ मैं सदा भक्तिभरी।।

(११६२) बसन्त ऋतुजात केतकी दल कान्ति।
प्रभा निन्दित जिनकी देह द्युति।
इन्दीवर विनिन्दित उज्ज्वल वसन।
श्रीअनंग मंजरी को करें नमन।।

(११६३) जिनकी किशोर अवस्था, सुन्दर स्वर्ण वर्ण, मोहनी मूर्ति, अति सुन्दर कृश कटि, स्थूल नितम्ब एवं स्तन युगल, नासिका में स्वर्ण जटित मुक्ता, दोलायमान, मस्तक पर सुन्दर वेणी, सुन्दर रेशमी वसन और मनोहर अलंकारों से सुशोभिता ऐसी श्रीराधिका की किंकिणियों का हम स्मरण करते हैं।

सुरम्या दोर्वल्लीवलयगण–केयूर–रुचिराः क्वणत् काञ्चीमञ्जीरक–मणिसुताटंक–ललिताः।
लसद्वेणी वक्षोरुह–मुकुलहारवलिरुचः स्मरानन्यप्रेमाः कनकरुचि–राधांघ्रयनुचरीः।।११६४।।
(वृन्दा० २/५६)

तड़ितप्रीभाहरांगकान्तिका लसत्सुतारकावली–वराम्बरा सुदक्षिणा च मार्दवान्विता।
त्रयोदशाब्दमासषड् दिनत्रयाद्यसद्वया लवंगमञ्जरी कदा मम प्रयाति दृक्पथम्।।११६५।।

गोरोचनारुचिरभासि–शिखिपिल्छवस्त्रा सार्द्धत्रयोदश–शरद्वयसान्विता सा।
श्रीरूपमञ्जरीरसौ वरवाम्यरम्या मध्या ममाक्षियुगलं किमलंकृषीष्ठ।।११६६।।

तारावली सुवसना तड़िदाभदेहा वर्षत्रयोदशकषष्ट्यऽसद्वयस्था।
सा दक्षिणा मृदुतया वलिता निजेश–सेवापरां विरचयेद्रति मञ्जरी माम्।।११६७।।

विद्युद्वरांगसुषमा सुजवाप्रसून–वस्त्रा धृतप्रखरता खलु दक्षिणा सा।
यस्यास्त्रयोदशशरत्प्रमितं वयश्च मासैकयुक् कृपयताद्गुणमञ्जरी माम्।।११६८।।

(११६४) जो परम रमणीय भुजलता में सुन्दर बलय, केयूर आदि भूषिता मुखरित, मेखला और नुपूर तथा मणिमय सुन्दर कुण्डल आदि भूषणों से सुशोभिता, जिनके मस्तक में वेणी शोभा पा रही है, वक्षस्थल पर हारावली की कान्ति प्रतिबिम्बित हो रही है। जो अनन्य प्रेममयी ऐसी स्वर्ण वर्णा श्रीराधारानी की दासीगण का हम स्मरण करते हैं।

(११६५) मंजरीगण का वर्णन :– जिनकी अंग कान्ति विद्युत की प्रभा को भी तिरस्कार करने वाली है और जिनके श्रेष्ठ वसन तारका वली के समान शोभा पा रहे है। जो स्वभाव से सुदक्षिणा, मृदुभाव शीला जिनकी अवस्था तेरह वर्ष छः महीने ३ दिन है ऐसी श्रीलवंग मंजरी कब हमारी नयनगोचर होंगी।

(११६६) जिनकी कान्ति गोरोचन के समान गौर वर्ण मोर के पंखों के समान वस्त्र तेरह वर्ष छः महीने, जिनकी अवस्था अत्यन्त मनोहर, वामा मध्य स्वभावा, ऐसी श्रीरुप मंजरी जी हमारे नेत्रों को कब आनन्दित करेंगी।

(११६७) जिनके वस्त्र तारावली के समान मनोहर, देह कान्ति विद्युत प्रभा के समान, जिनकी अवस्था तेरह वर्ष दो महीने, जो दक्षिणा और मृदु स्वभाव शीला ऐसी श्रीरति मंजरी हमको कब अपने प्राणेश्वर युगल की सेवा में नियुक्त करेंगी।

(११६८) जिनकी श्रेष्ठ अंगों की सुषमा विद्युत प्रभा के समान और खिले हुए जवां पुष्प के समान वस्त्र, स्वभाव से दक्षिणा और प्रखर भाव धारिणी, तेरह वर्ष एक मास की अवस्था, ऐसी श्रीगुण मंजरी जी कब हम पर कृपा करेंगी।

फुल्लचम्पकरुचिः सुदक्षिणा, चासपक्षवसना समार्दवा।
सा त्रयोदशशरद्वया मया, द्रक्ष्यते किमिह रागमञ्जरी सदा।।११६९।।

स्वर्णकेतकीप्रसूनकान्तिनिन्दिगौरभा वाम्यमार्दवान्विता च भृंगरोचिरंशुका।
द्वादशाब्दरुद्रमासतिथ्याहाढ्यसद्वया मय्यलं कृपाकुलास्तु सा विलासमञ्जरी।।११७०।।

प्रतप्तहेमांगरुचिं मनोज्ञां शोणाम्बरां चारुसुभूषणाढ्याम्।
श्रीराधिकापादसरोजदासीं तां मञ्जुलालीं नियतं स्मरामि।।११७१।।

(सा. च. २/२४)

विशुद्धहेमाब्ज–कलेवराभां काचद्युतिचारुमनोज्ञचेलाम्।
श्रीराधिकाया निकटे वसन्तीं भजाम्यहं कस्तूरिमञ्जरीं ताम्।।११७२।।

(सा० च० २/२४)

सुरम्यचपलावलीरुचिर–भावृता वाससा लसद्भ्रमररोचिषावलितमार्दवा दक्षिणा।
द्विमास–वियुत–त्रयोदशशरद्वयस्था सदा कदा कनकमञ्जरी किल कृपां विधत्ते मयि।।११७३।।

(११६९) प्रफुल्लित चम्पा के समान कान्ति, चाष पक्षी के समान वसन, सुदक्षिणा, मृदुभाव शीला, तेरह वर्ष अवस्था ऐसी श्रीराग मंजरीजी को हम सदा देखने की इच्छा करते हैं अथवा उनका हम कब दर्शन कर सकेंगे।

(११७०) जिनकी गौर वर्ण अंग कान्ति स्वर्ण केतकी कुसुम की कान्ति को निन्दा करने वाले अर्थात् उससे भी सुन्दर गौर वर्ण वसन धारिणी, वामा मृदु भावाश्रिता, बारह वर्ष ग्यारह महीने पन्द्रह दिन की अवस्था, ऐसी श्रीविलास मंजरी हमारे प्रति कब अतिशय कृपालु होंगी।

(११७१) तपे हुए सोने के समान अंग कान्ति सुन्दर लाल वस्त्र धारिणी, सुन्दर भूषणों से विभूषिता, श्रीराधारानी के चरण कमलों की सेविका, ऐसी श्रीमंजुलाली मंजरी जी का हम सदा स्मरण करते हैं।

(११७२) जिनकी अंग की कान्ति शुद्ध स्वर्ण कमल के समान स्वर्ण वर्ण, मनोज्ञ वसन, कांच के समान सुन्दर, श्रीराधारानी के निकट चन्दन सेवा परायणा कस्तूरी मंजरी जी को हम सदा भजते हैं।

(११७३) जिनकी सुरम्य विद्युत के साथ मनोहर कान्ति, भ्रमर के समान सुन्दर श्याम वस्त्र, दक्षिण मृदु स्वभाव, बारह वर्ष दस मास की अवस्था ऐसी श्रीकनक मंजरी कब मुझ पर कृपा करेंगी।

गोरोचनासंयुतचन्दनश्रीबिड़म्बनीया निजदेहकान्त्या।
रसादिवेला मम मञ्जरीक्षां विन्देत् कदा जम्बूनिभांशुका सा।।११७४।।

गांगेयचाम्पेयतडिद्विनिन्दि, रोचिः प्रवाहस्नपितात्मवृन्दे।
बन्धूकबन्धुद्युतिदिव्यवासो, वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम्।।११७५।।

(सा० च० २/२४)

अथ प्रीतेश्वरी कीरमादाय वत्सला करे।
अपाठयल्लालयन्ती तद्वत् कृष्णाश्च शारिकाम।।११७६।।

(गोवि० १८/१)

स्तुहि कीराभीरवीरं नीरदालिशरीरभम्।
गिरीन्द्रधारिणं धीरं सरस्तीरकुटीरगम्।।११७७।।

(गोवि० १८/२)

वद शुकसद्गुणमणिनिकराकर, तरुणीमादक–मधुमधुराधर।
सुन्दर शेखर शुचि रस सागर, ब्रजकुलनन्दन जय वरनागर।।११७८।।

(गोवि० १८/३)

(११७४) जो अपनी देह की कान्ति द्वारा गोरोचन युक्त चन्दन की शोभा को भी तिरस्कृत करती हैं और जामुन के समान नील वस्त्र धारण किये हुए है ऐसी रस वेला मंजरी कब हमारे दृष्टि गोचर होंगी।

(११७५) हे वृन्दे ! आप अपने परिकर को सुवर्ण चम्पक और विद्युत विनिन्दित अपनी कान्ति द्वारा स्नान कराती हैं। आपके दिव्य वसन बान्धुली पुष्प के समान कान्ति वाले है। आपके चरणारविन्दों की मैं वन्दना करती हूँ।

(११७६) इसके पश्चात् श्रीराधा प्रीति और स्नेह युक्ता होकर शुक को अपने कर कमल पर लेकर लालन करते–करते पाठ कराने लगीं और उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी सारिका को हाथ में लेकर पढ़ाने लगे।

(११७७) श्रीराधा शुक को कहने लगीं – हे शुक ! तुम मेरे कुण्ड के तीर पर निकुंज में विराजमान गोवर्धन धारी नवनीरद वर्ण, गोप किशोर वीर श्रीकृष्ण का स्तव करो।

(११७८) हे शुक ! बोलो हे श्रीकृष्ण ! आप प्रशस्त गुण समूहों की खान हो ! तरुणीवृन्द को मदमत्त करने वाले मधु की अपेक्षा भी मधुर अधरों से सुन्दर श्रृंगार रस के सागर हे वर नागर! हे ब्रजकुलनन्दन आपकी जय हो।

अघ–बक–शकटक–दवभयहरण, नवदलकमलज मदहरचरण।
चरणजलज–नत जनचय–शरण, पठ खग ! जय जय धरवरधरण।।११७९।।

(गोवि० १८/४)

स्तुहि सारि ! मनोहारिवारिजालिजिदाननाम्।
जगन्नारी–गर्वहारिगुणोदारां मम प्रियाम्।।११८०।।

(गोवि० १८/८)

नागरि नगधरनागर–हृदय–मरालिकेऽसि राधिके धन्या।
त्रिजगतत्तरुणीश्रेणी–कलासु शिष्यायते यत्ते।।११८१।।

(गोवि० १८/६)

गुणमणिखनिरुद्यत् प्रेमसम्पत्सुधाब्धिस्त्रिभुवनवर साध्वी वृन्दवन्द्येहितश्रीः।
भुवनमहित–वृन्दारण्य राज्यांधिराज्ञी विलसति किल सा श्रीराधिकेह स्वयं श्रीः।।११८२।।

(गोवि० १८/१०)

द्राक्षादाड़िमबीजानि वृन्दयोपहृतान्यथ।
एतावादयतामीशौ स्वहस्तेनातिवत्सलौ।।११८३।। (गोवि० १८/२४)

(११७९) हे शुक ! पढ़ो अघासुर, बकासुर, शकटासुर और दावानल के भय से ब्रज की रक्षा करने वाले आपके चरण कमल नवीन दलों से शोभित सहस्र दल कमल के गर्व को हरण करने वाले प्रणतजनों के आश्रय स्वरुप हे गोवर्धन धारी आपकी पुनः पुनः जय हो।

(११८०) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण श्रीराधिका के सौन्दर्य और सद्गुणों का आस्वादन करने के लिए सारिका को पढ़ाने लगे – श्रीकृष्ण ने कहा – हे सारि ! जिनका वदन कमल मनोहर कमल और चन्द्र श्रेणी को तिरस्कार करता है और जिनके उदारगुण जगत की नारियों के गर्व को खण्डित करते हैं ऐसी हमारी प्रियतमा श्रीराधिका की स्तुति करो।

(११८१) हे नागरी श्रीराधिके ! आप धन्य हो क्योंकि आप गिरिराज को धारण करने वाले नागर श्रीकृष्ण के हृदय सरोवर में हंसिनी के समान विहार करती हो और कामकला में त्रिभुवन की तरुणीगण आपकी शिष्या के समान हैं।

(११८२) जो समस्त गुणों की खान हैं और स्वयं प्रकट प्रेम सम्पत्ति रुपी सुधा की समुद्र, त्रिभुवन की प्रधान सती नारियां जिनकी सच्चरित्र की वन्दना करती है, जो जगत् के पूज्य वृन्दावन राज्य के राजाधिराज की महारानी, ऐसी स्वयं लक्ष्मी स्वरुपिणी श्रीराधिका इस श्रीवृन्दावन में विलसित हो रही हैं।

(११८३) **पाशा (अक्ष) क्रीड़ा :–** इसके पश्चात् श्रीवृन्दा देवी जी ने अंगूर और अनार के दाने लाकर अत्यन्त वात्सल्यमय श्रीराधाकृष्ण के कर कमल में स्थित शुक–सारि को भोजन कराने लगी।

ततः सारी कीरपाली द्यूतकेलीच्छयेरितौ।
ययतुस्तौ हरित्कुञ्जं सुदेवी–सुखदाभिधम्।।११८४।।

(गोवि० १८/२५)

सीधुपा–जलखेलन दोला, दोलनादि–कुतुके बलवत्वात्।
एष एव नलिनीरिव पद्मी यद्विजित्य सखि ! नः प्रजगलभे।।११८५।।

(कृ० भा० १५/१)

तद्वलोपधिकतः स्फुटमन्य, धीप्रधानमधुना ललिते त्वम्।
खेलनं विमृश यत् प्रभविष्य, त्यस्यगर्वचुलुकीकरणेद्राक्।।११८६।।

(कृ० भा० १५/२)

द्यूतकेलिजयकैरवचान्द्र, ज्योतिरेव सखि ! राजसि राधे !
किं दूनोतु परिभूति–तमिर्स्रं, नित्यमेव धृतगर्वततीर्नः।।११८७।।

(कृ० भा० १५/३)

इत्थमालिकृतमन्त्रणयोचे राधया प्रियतम प्रभविष्णो।
पाशकजि–चतुरिमणि जिगीषानर्त्तकीं न किमुरीकुरुषे त्वम्।।११८८।।

(कृ० भा० १५/४)

(११८४) तदनन्तर द्यूत क्रीड़ा की इच्छा से श्रीराधाकृष्ण सारि–शुक का लालन करते–करते सुदेवी सुखद नामक हरित कुंज में जा पहुँचे।

(११८५–८६) श्रीराधिका ललिताजी को कहने लगी – सखी ललिते ! मधुपान, झूलन, जलकेलि आदि लीलाओं में कौतुक पूर्वक जैसे गजेन्द्र नलिनी समूह को परास्त कर देता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने हमको परास्त करके अपने चातुर्य को प्रकाशित किया अतएव हे बुद्धिमती ललिते ! जहाँ बल प्रयोग की आवश्यकता हो ऐसे खेल से अब हमें प्रयोजन नहीं है। अब किसी ऐसे खेल का विचार करो जिससे हम श्रीकृष्ण के गर्व को चूर्ण कर सकें।

(११८७) श्रीललिताजी कहने लगीं – हे राधे ! पासे खेलने की लीला में आप विजय रुपी कुमुद श्रेणी के लिए साक्षात् चन्द्र ज्योति स्वरुपिणी हो अतएव हे गर्व धारिणी ! इस लीला में आपको पराजय रुपी अन्धकार दुखित नहीं कर सकेगा।

(११८८) इस प्रकार सखियों के साथ मंत्रणा करके श्रीराधा श्रीकृष्ण के प्रति कहने लगीं– हे प्रियतम ! हे पराक्रम शालिन ! पाशक युद्ध के चातुर्य रुपी रंगस्थल में आप अपनी जिगीषा (विजय की इच्छा) रुपी नर्तकी को अंगीकार क्यों नहीं करते हो।

सत्यमालि ! हृदि नर्त्तयसे तां किन्तु मत्करतलाम्बुजपट्टे।
यर्हि वत्स्यति नृपो जयनामा सा ह्रियैष्यति तदा निलयं द्राक्।।११८६।।

(कृ० भा० १५/५)

इत्यधारि–गदितं मदिराक्षी, चिल्लिवल्लि–दरवेल्लितभंगया।
सावधीर्य्यसपरिच्छदसारी, रानिनाय तरसैव सुदेव्या।।११९०।।

(कृ० भा० १५/६)

तत्र काचिदथ बिम्बफलोष्ठी, मण्डलस्य दयितस्य च गोष्ठी।
अक्षखेलन–विहारविदग्धा, चारुमन्मथविकार–विमुग्धा।।११९१।।

(कृष्णा० ४/२३६)

गोपराज–युवराज–समाजः सोऽभिराम–रमणीमणि राजः।
कुञ्जसीमनि मणीन्द्रशिलायां, शोभते स्म तरुमूलगतायाम्।।११९२।।

(कृष्णा० ४/२४०)

वृन्दया निजगदे हरिरासा, मिंगितं सममवेत्य सुभासा।
दर्शयस्व निजकौशलमक्ष, क्रीड़ने सनिपुणं नलिनाक्ष।।११९३।। (कृष्णा० ४/२४१)

(११८६) श्रीकृष्ण कहने लगे – हे सखि राधे ! सत्य तो यह है कि आप भी अपने हृदय में विजयैच्छा रुपी नर्तकी को नचा रही हो किन्तु जब मेरे कर तल रुपी कमलासन पर जय नामक नृपति आकर विराजमान होगा तब तुम्हारी ये जिगीषा नर्तकी लज्जा से न जाने कहाँ जाकर छिप जायेगी।

(११९०) मदिराक्षी (सुन्दर नेत्रों वाली) श्रीराधिका श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर अपनी भ्रूलता को तिरछी करके अवज्ञा करती हुई सुदेवी जी को समस्त साजसज्जा सहित (पाशा क्रीड़ा की सामग्री) गोटी आदि लाने को कहा।

(११९१) इसके पश्चात् उस स्थान पर प्रियतम श्रीकृष्ण की ब्रजगोपियों के साथ एक गोष्ठी हुई जिसमें सभी सदस्य पासा क्रीड़ा में निपुण और सुचारु मन्मथ विकारों से विमुग्ध (रसिक हृदय) थे।

(११९२) वहाँ कुंज के बाहर वृक्ष के नीचे इन्द्रनीलमणि की शिला के ऊपर अति रमणीय रमणी शिरोमणि ब्रजगोपियों के साथ गोपराज नन्दन श्रीकृष्ण विराजमान होते हुए शोभा का विस्तार करने लगे।

(११९३) श्रीराधा आदि गोपियों के इंगित को भली प्रकार समझकर सुन्दर कान्ति वाली श्रीवृन्दा जी श्रीहरि को कहने लगी – हे पद्मनयन ! पासे खेलने की निपुणता के साथ अपने कौशल का प्रदर्शन करो।

पश्य शारिफलकं कृतशिल्पं, पट्टकाञ्चनगुणैरविकल्पम्।
शारयो मरकतैस्तपनीयै–र्निर्मिताः सुवलिताः कमनीयैः।।११६४।।
(कृष्णा० ४/२४२)

दन्तिदन्तकृत–शिल्पसुघट्टे, स्वंकिते सुभग–पाशकपट्टे।
किं न खेल शतरंगमुताहो, सारिमेव परिघायतवाहो।।११६५।।
(कृष्णा० ४/२४३)

तन्निशम्य रमणो लसद्धसः, शारीखेलनमुरीचकार सः।
व्याजहार च तदुद्यमवत्यः, सन्तु रन्तुमुपयान्तु सुदत्यः।।११६६।।
(कृष्णा० ४/२४४)

नान्द्यमूद्वनपया सह साक्षिण्यक्षकेलि, सभिकाऽजनि कौन्दी।
ईष्टदायमुपदेष्टुमुदञ्च–द्वागराजत वटुर्ललिता च।।११६७।।
(कृ० भा० १५/७)

पाणिशोणजलजोदररंगे, झंझणद्वलयमुच्छलदंगयाः।
यर्हि पाशक–कुशीलवयुग्मं, लब्धनृत्यमधिभूमि चुकूर्दे।११६८।। (कृ० भा० १५/८)

तर्हि कक्षकुचयोरुरुरोचि, वीचिमज्जितदृशोऽपि बकारेः।
पाशकग्रहणचापलचातु, र्यापि नेषदपि भंगकलंकम्।।११६९।। (कृ० भा० १५/९)

(११६४) यह देखो ! सारिफलक (बिसात) यह रेशम और स्वर्ण डोरी से कितनी सुन्दर शिल्प कला द्वारा बनाया गया है और यह गोटी भी कितनी सुन्दर मरकत और स्वर्ण द्वारा निर्मित सुन्दर गोलाकार है।

(११६५) हे आजानुलम्बित श्रीकृष्ण ! हाथी दाँत से सुन्दर शिल्प कला से निर्मित सुन्दर चिह्नों से भूषित यह पाशक पट्ट सामने रख दिया है फिर बड़े आश्चर्य की बात है ? कि शतरंग को (शत शत रंग अर्थात् विनोद के साथ) क्यो नहीं खेलते हो ?

(११६६) यह सुनकर रमण श्रीकृष्ण ने हँसते–हँसते पासा खेलना स्वीकार किया और कहने लगे– तो फिर सुन्दरीगण आओ मेरे साथ खेलने के लिए प्रस्तुत हो जाओ।

(११६७) पासा खेलने में एक ओर श्रीकृष्ण दूसरी ओर श्रीराधा। श्रीकृष्ण के पक्ष में नान्दीमुखी और श्रीराधा के पक्ष में श्रीवृन्दाजी साक्षिणी। सभी का अर्थात् चाल बताने वाली कुन्दलता। श्रीकृष्ण के पक्ष में मधुमंगल और श्रीराधा जी के पक्ष में ललिताजी ईष्टदाय अर्थात् उपदेशक।

(११६८–६९) प्रथम श्रीराधिका के करतल रुपी अरुण कमल रुपी रंग भूमि पर पाशिक रुपी नट नाचते–नाचते भूमि के ऊपर कूदने लगे। तब उनकी हाथों की चूड़ियां नृत्योपयोगी वाद्य बजाने लगी। उससे श्रीराधारानी के कक्ष और वक्षोजयुगल की अपरिसीम शोभा की तरंगों में श्यामनागर के नयन डूब गये किन्तु अतिशय अभ्यास के कारण पासे चलाने की चतुराई में उनकी कोई त्रुटि नहीं हुई इसी कारण उनको सभा में लज्जित नहीं होना पड़ा।

कर्हिचिद्दशदशेति कदाचित् सा विदुर्विदुरिति प्रसरद्गीः।
पातयन्त्यलघुदायमभीष्टं, मूर्त्तिमत्यजनि किं न जयश्रीः।।१२००।।

(कृ० भा० १५/१०)

यत् प्रिये दश दशेति निकामं, प्रार्थनं तदुपहासकरं ते।
वित्तिरेव पतिता स्मर तावद्–देवेन् तव कुतो जयवार्त्तां।१२०१।।

(कृ० भा० १५/११)

सारिका गमयितुं निजकोष्ठे–ष्वप्रभुः स्वतनुशृंखलिताः स्वाः।
घातयंश्चरविधिं विमृशंस्ताः, खेलति स्म हरिरात्तीजिगीषः।।१२०२।।

(कृ० भा० १५/१२)

ईष्टदाय–पतनेन सुधीः सा, राधिका यदि जिगाय तदा तम्।
आलयो विहसितुं प्रखरत्वं, लेभिरेऽतिमृदवोऽपि नितान्तम्।।१२०३।।

(कृ० भा० १५/१३)

कौस्तुभं पणितमानय तस्या, प्यानये विनिमयेन विचित्राम्।
कंकणालिमथवामुमनेक–क्षालनैः प्रियसखीहृदि धास्ये।।१२०४।। (कृ० भा० १५/१७)

(१२००) श्रीराधिका किसी समय 'दश–दश' इस प्रकार की ध्वनि करती करतीं पाशे फैंकने लगीं और किसी समय 'विदु विदु' बोलकर पासे फेंकती हुई अपने अभीष्ट दाव के पड़ जाने से मूर्तिमती जय श्री के समान शोभा पाने लगीं।

(१२०१) जब श्रीराधा दशदश कहकर पासो को चलाने लगीं उस समय श्रीकृष्ण कहने लगे– हे प्रिये ! इस समय खेल में तुम्हारा वित्ती नामक दाव पड़ा है दश दाव तो पड़ा नहीं अतएव बार–बार दशदश कहकर प्रार्थना करती हुई अपना उपहास क्यों करा रही हो। इस खेल में आपकी विजय होने वाली नहीं।

(१२०२) श्रीराधारानी ने अपनी मुट्ठी में गोटियां बन्द करके रख लीं। श्रीकृष्ण राधारानी की मुट्ठी से अपनी मुट्ठी में गोटियां लेने में जब समर्थ नहीं हुए तो चर विधि का विचार करके अपनी गोटियों को राधारानी की गोटियों से बजाते हुए जीतने की इच्छा से खेलने लगे।

(१२०३) अपनी चाल चलने में सुचतुरा श्रीराधिका ने श्रीकृष्ण को परास्त कर दिया, यह जानकर मुदुल स्वभावा होते हुए भी सखीवृन्द उनका प्रखरता के साथ उपहास करने लगीं।

(१२०४) इस प्रकार खेल में श्रीकृष्ण अपनी कौस्तुभमणि को हार गये। सखीयाँ कहने लगीं– 'यह कौस्तुभ अनेक रमणियों के वक्षस्थल का स्पर्श पा चुका है इसे हमारी प्रिय सखी कैसे अपने हृदय पर धारण करेंगी ? तब एक उपाय है इस कौस्तुभ के विनिमय में इनका कंकण ले लिया जाये अथवा कौस्तुभ को ही बहुत बार धोकर शुद्ध करके प्रिय सखी के वक्षस्थल पर पहिना दिया जाय।

काननं नहि गवामिदमेत, न्मारणं न बक–वत्स–बकीनाम्।
अक्षदेवनमिदन्तु सभायां, स्याद् विदग्धजनबुद्धि–परीक्षा।।१२०५।।

(कृ० भा० १५/१८)

इत्थमालि–खरधार–सरस्व–त्यस्तपाटवतरुर्वटुरुचे।
तस्य कर्णमनुसंश्रृणुषे तत्, कौस्तुभं मम समर्पये हस्ते।।१२०६।।

(कृ० भा० १५/१९)

चेत्स्वकृत्यमिषतोऽपसृते मय्या–क्रमं कमपि हन्त ! विधित्सेत्।
एककेऽपि भवति ब्रजरामा–संहतिर्ब्रजपुरन्दरसूनौ।।१२०७।।

(कृ० भा० १५/२०)

तन्निवेद्य निखिलं ब्रजराज्ञीं मङ्क्षु तद्विकट शासन–पाशैः।
ह्री–तमिस्र–कुहरेऽद्य निबध्यै, वाश्वमूर्न किमु पातयितास्मि।।१२०८।।

(युग्मकम्) (कृ० भा० १५/२१)

धिग् धिया रहित ! किं त्वमभैषी–रस्मि जिष्णुरधुनैव विजिष्ये।
माति मौग्ध्यमय–चेष्टितभंगया ख्यापयाज्ञतम ! मत्परिभूतिम्।।१२०९।।

(कृ० भा० १५/२२)

(१२०५–८) वे मधुमंगल से कहने लगीं– अरे वटु ! तुम्हारे सखा के गौरव से तुम्हारे पैर भूमि का स्पर्श नहीं करते। आज इस पासा क्रीड़ा में तुम्हारे सखा का गौरव कहाँ गया ? अरे मूढ़ ! यह गौचारण का वन नहीं है और ना ही यह बकासुर, वत्सासुर, पूतना आदि का हनन है। इसका नाम पासा क्रीड़ा है। यहाँ विदग्ध जनों की बुद्धि की परीक्षा होती है इस प्रकार सखीगणों की खर स्रोत युक्ता सरस्वती नदी रुपा वाणी से मधुमंगल की चतुराई रुपी वृक्ष समूल उत्पाटित हो गया तब वह भयभीत होकर श्रीकृष्ण से कहने लगा– हे सखे ! यह कौस्तुभ मेरे हाथ में दे दो मुझे कुछ कार्य है, उसके लिए मैं तो जा रहा हूँ तुमको अकेला पाकर यह ब्रजरमणियां यदि आक्रमण करें तो मैं जाकर ब्रजराज महिषी से इनको दण्ड दिलवाऊँगा और उनके शासन रुपी पाश से बाँधकर इनको लज्जा रुपी अन्धकार कुहुर में डाल दिया जायेगा।

(१२०९) यह सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे– अरे निर्बुद्धि! तुझे धिक्कार है। व्यर्थ में ही क्यों भयभीत हो रहा है ? अभी देखो मैं इन सबको जीत लेता हूँ। अत्यन्त मूर्खो की तरह व्यवहार करके मेरे पराभव की घोषणा मत करो।

किं हित–प्रकथनेऽप्यतिकुप्य–स्यस्तु कौस्तुभहृतिस्तव हस्तात्।
याम्यहं युवतिपाल्यपि रंकी–कृत्य नृत्यमपि कारयतु त्वाम्।।१२१०।।

(कृ० भा० १५/२३)

चिल्लिकोण–धुवनेन मुकुन्दः स्वीयपक्षगमिता एव सभ्याः।
प्राह पश्य मयैव जिताना, मप्यतिप्रखरतां चपलानाम्।।१२११।।

(कृ० भा० १५/२४)

यद्यजेष्यदबलाततिरेषा, किं व्यधास्यदिति बोद्धूमनीशः।
विस्मितोऽस्म्यथ जगाद विशाखा, त्वद्भ्रुवे नम इति प्रहसन्ती।।१२१२।।

(कृ० भा० १५/२५)

वैरिणी भवति या कुलधर्म, ध्वंसिकापि सुहृदालिरिवाद्य।
तद्वचोऽप्यनृतयन्त्यूदगान्नो, धिन्वती सदसि कुञ्चितकोणा।।१२१३।।

(कृ० भा० १५/२६)

(१२१०) इन वचनों को सुनकर मधुमंगल क्रुद्ध होकर कहने लगा– हे कृष्ण! तुम हित की बात कहने पर भी क्रोधित हो रहे हो। अब तुम्हारे हाथ से यह कौस्तुभ छिन जाने दो मैं तो जा रहा हूँ। यह ब्रजगोपियां तुमको निर्धन बनाकर नचा देंगी। इस प्रकार कहकर जब जाने के लिए प्रस्तुत हुआ तब सबने मधुमंगल को समझा बुझाकर जाने नहीं दिया।

(१२११) श्रीकृष्ण ने भ्रूभंगी करते हुए सभ्या (वृन्दा, कुन्दलता नान्दीमुखी आदि) को अपने पक्ष में हुआ जानकर मिथ्या कहने लगे– हे सभ्यागण ! इन ब्रजबालाओं को मैंने परास्त कर दिया है फिर भी इनकी प्रखरता तो तुम देखो।

(१२१२–१३) सभ्यागण कहने लगी – हे कृष्ण ! यदि तुम जीत गये थे तो जब ये गोपिकाएं मधुमंगल का उपहास कर रहीं थी उस समय तुम क्यों चुप रहे। श्रीकृष्ण ने कहा परास्त होकर ही जब ये इतनी चतुराई प्रगट कर रही हैं यदि जीत जातीं तब ये क्या करतीं ? यह समझने में असमर्थ होकर ही मैं विस्मित होकर चुपचाप रहा। इसके पश्चात् हँसते–हँसते विशाखाजी कहने लगी– आपकी इस कुटिल भ्रू को नमस्कार है। अर्थात् आपने तिरछी भौहें नचाकर सभ्यागण को अपना पक्षपाती बना लिया है और अपनी जय की घोषणा कर रहे हो। और आपकी तिरछी चितवन रुपी रमणी ने हमारे कुलधर्म को ध्वंस कर दिया और वह हमारी वैरिणी ही बनी हुई थी, लेकिन इस समय आपके ही वचनों को मिथ्या प्रतिपादन करती हुई वह हमारी प्रिय सखी के समान हमें सुख देने वाली बन गयी है।

देहि कौस्तुभमिति स्फुटनान्दी, वाक्यतो मधुभिदि त्रपमाणे।
कुन्दबल्ल्यमुमघान्तक–कण्ठाद्, राधिकोरसि दधौ स्मयमाना।।१२१४।।

(कृ० भा० १५/२५)

कृष्ण ! पश्य कुचमध्यगतं स्वं बिम्बितं मणिवरे विलसन्तम्।
हन्त ! यत्त्वमदधाः स इदानीं, त्वां दधाति मणिराट् प्रणयेन।।१२१५।।

(कृ० भा० १५/२८)

धन्य धन्य ! सुषमामय ! कृष्ण–स्त्वं तवास्मि महसां प्रतिबिम्बः।
यत्र राजसि ममात्रतु वाञ्छै–वैतुमित्यगभृदुन्नदृगासीत्।।१२१६।।

(कृ० भा० १५/२६)

राधिकाप्यरमावाञ्चितवक्त्रा, वीक्ष्य भान्तमिममात्कुचान्तः।
कञ्चुकं ह्रियमपि द्विषती सा, न्दजाड्य जलधौ निममज्ज।।१२१७।।

(कृ० भा० १५/३०)

(१२१४) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण के पक्ष की साक्षिणी नान्दीमुखी कहने लगी– हे ब्रजयुवराज! इस बार आपकी पराजय हो गयी है अतः श्रीराधिका को कौस्तुभ प्रदान करो।' इस बात से मिथ्या चतुराई प्रकट करने वाले श्रीकृष्ण लज्जित हो गये और हँसते हुए कुन्दलता ने श्रीकृष्ण के कष्ठ से कौस्तुभ मणि को उतार कर श्रीराधा के वक्षस्थल पर धारण करा दी।

(१२१५) उसी समय सामने बैठे हुए श्रीकृष्ण का प्रतिबिम्ब श्रीराधा के वक्षस्थल पर स्थित कौस्तुम में पड़ने लगा। इस शोभा को देखकर कुन्दलता कहने लगी– हे कृष्ण ! तुम मणि श्रेष्ठ कौस्तुम में प्रतिबिम्बित होते हुए श्रीराधा के वक्षस्थल पर कैसी सुन्दर शोभा पा रहे हो ? हे प्रेम सिन्धो ! देखो इतने दिनों तक तुमने जिस मणि को अपने वक्षस्थल पर धारण किया आज वही मणि श्रेष्ठ श्रीराधा के वक्षस्थल के मध्य में विराजमान होकर प्रणय पूर्वक तुमको ही अपने ऊपर धारण कर रही है।

(१२१६) श्रीकृष्ण कौस्तुभ में अपने प्रतिबिम्ब की शोभा देखकर मोहित होकर कहने लगे– "हे मेरे प्रतिबिम्ब तुम ही साक्षात् कृष्ण हो। मैं ही तुम्हारी कान्ति का प्रतिबिम्ब हूँ जहाँ इस समय विराज रहे हो वहाँ अवस्थान करने की मेरी सदा ही इच्छा रहती है।" ऐसा कहते–कहते गिरधारी के नयनों से जल बिन्दु गिरने लगे।

(१२१७) श्रीराधिका भी सखियों से अलक्षित भाव से थोड़ा नीचे मुख करके अपने वक्षस्थल स्थित कौस्तुभ में प्राण नाथ का प्रतिबिम्ब देखकर कंचुकी और लज्जा दोनों से द्वेष करती हुई (अर्थात् इन दोनों से वाधा हो रही है) आनन्द जनित जड़ता के समुद्र में डूब गयीं।

हारितमणिरपि श्रीकृष्णः पुनराहः –
स्ताद्विवतीय इतरः पण एते, मामकी मुरलिका ललिता ते।
आददानि जितकाशिनि जित्वा, निर्जितः परिददानि हसित्वा।।१२१८।।
(कृष्णा० ४/२४७)

सा।ह नाहमसमञ्जसं वृणे वंशिका–ललितयोः कृते पणे।
काष्ठिका मणिशलाकयोः कथं साम्यमत्र कुरु नो मनोरथम्।।१२१९।।
(कृष्णा० ४/२४८)

कस्त्रुतीयपणतां गमिष्यती त्याह तत्र कतमा कलावती।
तामुवाच परिहस्य राधिका, त्वं ममास्य वरहारयष्टिका।।१२२०।।
(कृष्णा० ४/२४९)

आह काचिदथ वच्मि चतुर्थं, सत्पणं यमुपलभ्य कृतार्थम्।
स्वं वपुः सफलमेव भवन्तौ, मङ्क्ष्यतः सुखनिधिं प्रविशन्तौ।।१२२१।।
(कृष्णा० ४/२५०)

कृष्ण आह वद सापि जगाद, श्रूयतां सुमुखि ! मे प्रियवादः।
चुम्बनानि तव विच्युतदम्भाः, प्रेयसोऽस्य शतशः परिरम्भाः।।१२२२।।
(कृष्णा० ४/२५१)

(१२१८–१९) अपनी मणि का हरण हो जाने से श्रीकृष्ण पुनः कहने लगे – 'अब दूसरा दावं मेरी मुरली और आपकी ललिता होंगी' हे जय गर्विते ! आपको जीतकर मैं आपकी ललिता को ग्रहण करुँगा और यदि मैं पराजित हो जाऊँगा तो हँसते–हँसते अपनी मुरली दे दूंगा। श्रीराधा कहने लगी– ऐसा असमान दाव मैं स्वीकार नहीं करती। कहाँ एक काष्ठ खण्ड और कहाँ मणिशलाका। कहाँ वंशी और कहाँ ललिता। ऐसा मनोरथ आप कभी मत करना।

(१२२०) इनके बीच में एक कलावती सखी कहने लगी– तीसरे दाव का क्या निर्णय हुआ? श्रीराधारानी उसी का परिहास करते हुए बोलीं– तीसरे में तुम ही मेरा दाव (पण) और उनकी (श्रीकृष्ण) हार लता।

(१२२१) इसके पश्चात् कोई एक सखी बोली– 'चौथे दाव के विषय में मैं एक बड़ी सुन्दर बात बताती हूँ। इस दाँव को जीतकर आप दोनों अपनी–अपनी देह को ही कृत–कृतार्थ और सफल समझोगे और सुख समुद्र में ही प्रवेश कर जाओगे।'

(१२२२) श्रीकृष्ण कहने लगे– अच्छा बताओ तो। तब वह सखी कहने लगी– हे सुमुखि! मुझसे एक प्रिय वार्ता सुनो– आपका दाव तो हो चुम्बन और इन प्रियतम का दाव दम्भ रहित (निष्कपट) शत् शत् आलिंगन'' बस यही दाव लगाओ।

तां जगाद कुपितेव तदा सा, भ्रुकुटि–कुटिलयालिकभासा।
खेल निस्त्रपमनेन पणेन, त्वं कलावति ! समं रमणेन।।१२२३।।

(कृष्णा० ४/२५२)

भद्रमुक्तमनया पणकार्ये कुप्य मा कुरु विचारणमार्ये !
कल्पितस्तव पणोऽतिलघीयान् बल्लभस्य तु पणोऽतिगरीयान्।।१२२४।।

(कृष्णा० ४/२५३)

त्वं जितातिलघु दास्यसि जित्वा, लपस्यसे प्रचुरमेव हसित्वा।
ज्ञायतामुभयथैव भवत्या लाभ एव परमः शुभवत्याः।।१२२५।।

(कृष्णा० ४/२५४)

साऽथ शारिफलके यथा स्थलं, कौतुकादुभयशारि–मण्डलम्।
अंगुलीयक–मणीन्द्ररञ्जितं, न्यास हाससुधया परिप्लुतम्।।१२२६।।

(कृष्णा० ४/२५६)

सोपगृह्य वर–पाशकपाट्या, द्वन्द्वमिन्दुवदना परिपाट्या।
पातय प्रथममित्यनुदात्त, प्रोढ़ि वल्लभ–करे समधत।।१२२७।।

(कृष्णा० ४/२५७)

(१२२३) तब श्रीराधा कुपित होकर भृकुटी कुटिल करके भी उज्ज्वल मुखारविन्द से (अर्थात् भीतर से प्रसन्न होते हुए) कहने लगीं– हे कलावती ! तुम ही ऐसे दाव लगाकर इनके साथ निर्लज्ज होकर खेलो।

(१२२४) तब किसी अन्य सखी ने कहा– हे पूज्य श्रीराधे ! इस कलावती ने अच्छा ही कहा है। इस दाव पर आप क्यों क्रोध कर रही हैं ? जरा विचार कर तो देखो! आपका दाव बहुत छोटा है प्रियतम का दाव बहुत बड़ा है।

(१२२५) आप पराजित होकर अति सामान्य ही दोगी और जीत जाने पर हँसते–हँसते बहुत अधिक और बड़ी वस्तु प्राप्त करोगी। इसलिए यह निश्चय करके जान लो कि दोनों ओर ही कल्याणमयी आपका ही लाभ है।

(१२२६) तब श्रीराधा ने शरि फलक (बिसात) पर कौतुक वश गोटियां रख दीं। यह गोटियां उनकी उंगुलियों में स्थित मणियों की छटा से और हास्य सुधा से उज्जवल हो उठी।

(१२२७) इसके पश्चात् चन्द्र वदना श्रीराधा पासे की गोटियों को परिपाटी से ग्रहण करके प्रियतम के हाथ में देती हुई धीरे से प्रगल्भता पूर्वक कहने लगीं– पहले आप दाव चलो।

पाशकोत्किरण जातविलासः, कृष्णबाहु वलयः स चकास।
तं निरीक्ष्य सुदतीं हृदि मुग्धा, माह काचन सखी सुविदग्धा।।१२२८।।

(कृष्णा० ४/२५८)

खेल खेल सुभगे ! जयशाली, माऽस्तु हारहरणे वनमाली।
कौस्तुभं जय सुरञ्जय चाली, मण्डलं विजय कौशलपाली।।१२२६।।

(कृष्णा० ४/२५६)

योऽपतत् प्रथमपाशकदायः, प्रेयसः स विजय व्यवसायः।
सा तमन्यथयितुं समुदस्य, प्रापयत् करतलं पुनरस्य।।१२३०।।

(कृष्णा० ४/२६०)

भूय एव रमणो न्यपीपतत्, पाशकं तदनुरूपमेव तत्।
शारी–सञ्चरणमप्यचीकरत्, दर्पमम्बुजदृशोऽप्यसीरत्।।१२३१।।

(कृष्णा० ४/२६१)

हृदायाक्ष–हृदयज्ञविद्यया, दीव्यतोनिजनिजैकवेद्यया।
नो जयो न च पराजयस्तयो, रास खेलन कलाविहस्तयोः।।१२३२।।

(कृष्णा० ४/२६२)

बुद्धिपूर्वमथ सा पराज़यं, स्वीचकार स च लब्धवान् जयम्।
हारमाहरति जीवितेश्वरे, सा स्वयं व्यतरदग्रतः करे।।१२३३।। (कृष्णा० ४/२६३)

(१२२८–२६) पासो की ऊपर की ओर फैलती हुई किरणों से श्रीकृष्ण के दोनों हाथ और भी अधिक प्रकाशित हो उठे जिनको देखकर सुदंती (सुन्दर दन्त पंक्ति वाली) श्रीराधा मोहित हो गयीं। यह देखकर कोई सुचतुर सखी उनको कहने लगी– हे सुभगे ! खेलो खेलो बनमाली कहीं जीत कर तुम्हारा हार न ले जाय। आप इनके कौस्तुभ को जय करो अपने विजय कौशल का प्रदर्शन करके सखी मण्डली को प्रसन्न करो।

(१२३०) प्रियतम श्रीकृष्ण का पहला ही जो दाव पड़ा उससे ही उनकी जीत निश्चित हो गयी। लेकिन उसको अन्यथा करने के अभिप्राय से पासों को उठाकर पुनः श्रीकृष्ण के हाथ में दिये।

(१२३१) प्रियतम श्रीकृष्ण ने पुनः पासे चलाये लेकिन पूर्ववत् इस बार भी उन्हीं की जीत हुई। अब उन्होंने गोटी चलायी और कमलनयना राधा के दर्प को चूर्ण किया।

(१२३२) अपनी अपनी विजय की अभिलाषा रखने वाले पासा खेलने की कला में प्रवीण युगल किशोर पासा खेलते हुए दोनों में से किसी की भी जय अथवा पराजय नहीं हुई।

(१२३३) तब श्रीराधारानी ने बुद्धि पूर्वक (इच्छा पूर्वक) पराजय स्वीकार कर ली। श्रीकृष्ण की विजय ही निर्धारित हो गयी और प्राणनाथ श्रीकृष्ण जब हार हरण करने की चेष्टा करने लगे तो स्वयं ही श्रीराधारानी ने हार निकालकर उनके आगे रख दिया।

साक्षमाक्षिपदुञ्चित–कक्षं, प्राणनाथ विजये कृतलक्षम्।
तन्निरीक्ष्य हृदये नीलनाक्षः क्लिद्यति स्म विगलज्जयपक्षः।।१२३४।।

(कृष्णा० ४/२६४)

सा द्वितीय–पणभाव–शंसिकां, तं विजित्य विचकर्ष वंशिकाम्।
यच्छति स्म ललिता–कराम्बुजे, सा च तं निजतयैव सस्वजे।।१२३५।।

(कृष्णा० ४/२६५)

सोऽपि वारमपरं जयशाली, खेलनं व्यरचयद्वनमाली।
या तृतीयपणतामगमत्तां, संज्जिगाय गुणगौरवमत्ताम्।।१२३६।।

(कृष्णा० ४/२६६)

तां हृतां समवलोक्य समस्ताः सस्वनं जहसुरुढ़मुदस्ताः।
साह मा हसत पाशकदेव्याश्चातुरीमनुभविष्यथ भव्याः।।१२३७।।

(कृष्णा० ४/२६७)

ताः समूचुरनयोचितमुक्तं खेलने तव मनोऽनभियुक्तम्।
एष पाशकविलास–सुपर्वा वुत्क्रमेण सखि ! जेष्यति सर्वाः।।१२३८।।

(कृष्णा० ४/२६८)

(१२३४) प्राणनाथ श्रीकृष्ण को विजयी होते देखकर श्रीराधारानी ने भुजा उठाकर पासा चलाया जिसको देखकर पद्म लोचन श्रीकृष्ण अपने को पराजित होते देखकर हृदय में कुछ दुख का अनुभव करने लगे।

(१२३५–३६) इस दाव को राधारानी ने जीतकर दूसरे दाव पर लगी वंशी को छीनकर ललिताजी के करकमल में दे दी। ललिताजी ने इस वंशी को अपना सा समझकर आलिंगन किया। श्रीकृष्ण पुनः खेल में जीत गये और तीसरे दाव पर लगी गुण गौरवमत्ता कलावती को प्राप्त कर लिया।

(१२३७) कलावती को हरण करते देखकर सब गोपियां हँसती हुई अत्यधिक आनन्द प्रकट करने लगी तब कलावती कहने लगी– सखियों तुम हँसो मत। इस पाशक देवि (खेल) की चतुरता अभी तुम सबको अनुभव हो जायेगी।

(१२३८) तब सखियाँ कहने लगीं– हाँ सखी यह कलावती ठीक ही कह रही है। खेल में तुम्हारा मन नहीं था। यह पाशिक विलास रुपी देवता विपरीत क्रम से सब को ही जय कर लेगा।

वृन्दया निजगदे विजितायां त्वद्विधेन मुरली–दयितायाम्।
नानुशोचति सखि ! स्मितशाली राजते भृशमसौ वनमाली।।१२३६।।

(कृष्णा० ४/२६६)

त्वादृशः प्रकटयन्तु न तापं स्वालीलम्भनमतीव दुरापम्।
न्यायतो जितमुपेत्य गभीराः शेवधिं विधुरयन्ति न धीराः।।१२४०।।

(कृष्णा० ४/२७०)

वंशिकातिसुलभ्येयमटव्यां, नेदृशी गुणवती तु पृथिव्याम्।
इत्युदीरयथ चेद्विजहीमा, माग्रहः कथमवस्तुनि भूमा।।१२४१।।

(कृष्णा० ४/२७१)

कृष्णपक्ष–पतिता त्वममन्दे, ज्ञायसे सततमेव हि वृन्दे।
तेन पश्यसि न भद्रमभ्रदं, वासरेऽपि पिहितेक्षणमुद्रम्।।१२४२।।

(कृष्णा० ४/२७२)

हेलयानवहितैव सखी मे, हन्त खेलितवती परिणामे।
तेन हारितवती वरहारं, प्रेयसीमपि सखीमनुवारम्।।१२४३।।

(कृष्णा० ४/२७३)

(१२३६–४०) तब वृन्दाजी ने कहा– हे सखि ! जब तुमने इनकी प्रिया मुरली को जीता था तब तो यह बनमाली बिन्दुमात्र भी दुखी नहीं हुए, वरन् मृदु मधुर हास्य करते हुए ही विराजे रहे अतएव हे सखीगण ! अब तुम अपनी सखी की प्राप्ति के लिए कोई संताप प्रकट मत करना और यह कार्य अत्यन्त कठिन ही समझना। देखो गंभीर चित्त धीर व्यक्ति न्याय से पराजित होकर रत्नों के लिए भी शोक नहीं करते।

(१२४१) यदि कहो कि यह वंशी (बांस) तो वन में अनेक मिल जाती है और कलावती जैसी गुणवती इस पृथ्वी पर कहाँ है ? तो तुम इस वंशी को परित्याग करके दिखाओ इस तुच्छ वस्तु के लिए तुम्हारा इतना बड़ा आग्रह क्यों है ?

(१२४२–४३) तब ललिताजी ने कहा– हे प्रखरे वृन्दे ! तुम जो कृष्ण का पक्ष लेकर (कृष्ण अर्थात् अन्धकार का पक्ष) कह रही हो यह तो हम सदा से जानती हैं इसीलिए तुम दिन के समय भी आंखे बन्द करके अच्छा बुरा कुछ भी नहीं देख पा रही हो। अहो ! असावधानी से खेल में पहले हमारी सखी ने उत्तम हार को पराजित कर दे दिया अब प्रिय सखी को भी हार जायेंगी?

इत्युवाच ललिता यदि विज्ञा, साऽपि पाशक—कलाहृदयज्ञा।
अक्षयुग्मकमुदस्य कराग्रे, णाभ्युदास दयिता दयिताग्रे।।१२४४।। (कृष्णा० ४/२७४)

तत्र तत् प्रववृतेऽक्षखेलनं, प्रेयसो विरहिता वहेलनम्।
यत्र कोऽपि सभिको मनोभव, स्तत्र को रसकलापराभवः।।१२४५।।
(कृष्णा० ४/२७५)

यच्चतुर्थपणतामुपनीतं, चुम्बनप्रमुखमत्यविगीतम्।
तद्विजेतुमपि लम्भितलज्जा, सा तथापि विजयाय सुसज्जा।।१२४६।।
(कृष्णा० ४/२७६)

यं येमिच्छति हृदा कुतुकाय, प्रेयसी समपतत् स स दायः।
एवमेव रमणोऽपि सखेल, स्तेन तत्र स रराज सहेलः।।१२४७।। (कृष्णा० ४/२७७)

सा भुजावलयमुन्नयन्ती, पाशकोत्किरणमारचयन्ती।
आत्मनोऽभिमतदायमनल्प, प्रौढ़ितो दश दशेति जजल्प।।१२४८।।
(कृष्णा० ४/२७८)

मा ब्रवीर्दश दशेत्यलमुग्रे, कृष्ण माकलय भोगिनमग्रे।
पूर्वमेव सखि ! येन सुदष्टं, त्वन्मनस्त्वदधरच सुकष्टम्।।१२४६।। (कृष्णा० ४/२७६)

(१२४४) बुद्धिमती ललिताजी के इस प्रकार कहने पर पासा खेलने में चतुरा श्रीराधारानी ने भी उस समय दोनों पासे अपने हाथ में उठाकर प्रियतम के आगे फैंके।

(१२४५) तब फिर दोनों प्रिया प्रियतम सावधानी पूर्वक पासा खेलने लगे। जिस स्थान पर कोई अनिर्वचनीय कामदेव ही उस क्रीड़ा का अध्यक्ष हो वहाँ पर क्या कोई रस कला का पराभव हो सकता है ?

(१२४६) अब यहाँ अति अनिन्दनीय चुम्बन आदि चौथे दाव का समय उपस्थित हुआ। उस दाव में विजय प्राप्त करने पर भी राधारानी को लज्जित भी होना पड़ेगा तथापि श्रीराधारानी विजयी होने के लिए सुसज्जित हो गयीं।

(१२४७) कौतुक वश जिस जिस दाव की इच्छा कर रही थी वही वही दाव पड़ने लगा, इसी प्रकार रमण श्रीकृष्ण भी सावधानी पूर्वक खेलते—खेलते आत्म गर्व प्रगट करते हुए शोभित हो रहे थे।

(१२४८—४६) श्रीराधा अपनी भुजाओं को ऊँचा करके पासे को अपनी किरणों से प्रकाशित करती हुई अपने अभीष्ट दाव को प्राप्त करने की इच्छा से बड़ी गम्भीरता पूर्वक पुनः दश दश (अर्थात् दस का दाव) इस प्रकार कहने लगीं, तब किसी सखी ने कहा — हे सखि ! पुनः पुनः दश दश इस प्रकार मत कहो अपने समक्ष श्रीकृष्ण भोगी को (भोगी के दो अर्थ एक विलासी दूसरा विषधर सर्प) अवलोकन करो देखो सखि ! पहले से ही इन्होंने तुम्हारे मन और अधरों को अत्यन्त कष्ट प्रदान करके अच्छी प्रकार दंशन किया।

यद् विषस्य विभवः परिसर्पी, सालिचिल्लिलतिकावरसर्पी
हन्त ! पूर्वमनया दलितांगः, किं करिष्यति स कृष्णभुजंगः।।१२५०।।

(कृष्णा० ४/२८०)

इत्युदारललितावचनान्ते, तत्प्रतिप्रसवभाषिणि कान्ते।
आलयो विजहसुः सदभिख्या, चाजिह्राय नतमुख्यथ मुख्या।।१२५१।।

(कृष्णा० ४/२८१)

सा तथाप्यसति ह्रीपरिरम्भे, खेलितुं प्रतिभया विजजृम्भे।
पातयन्त्यभिमतानथ दायान्, जेतुमेव विदधे व्यवसायान्।।१२५२।।

(कृष्णा० ४/२८३)

देवनैरकृत–सन्धित–सन्धं, तस्य पाशकगति–प्रतिबन्धम्।
तत् परं विधुमुखी पणसिद्धिं, सस्वनं प्रविदधे द्विगुणर्द्धिम्।।१२५३।।

(कृष्णा० ४/२८४)

व्यूहबन्धमथ भेत्तूमशक्त, स्तामथ भ्रमयितुं व्यतिषक्तः।
स स्मितेन मृदुना वचसा च, क्षोभयन्मधुरमन्दमुवाच।।१२५४।।

(कृष्णा० ४/२८५)

(१२५०–५१) तब ललिताजी कहने लगी– अहो ! हमारी सखी की भ्रूलता रुपी महासर्पिणी विद्यमान है। कृष्ण सर्प की सर्व व्यापक विषशक्ति को इन्होंने पहले से ही नष्ट कर दिया है। अब यह कृष्ण भुजंग और क्या कर लेंगे ? ललिताजी के इस प्रकार मनोहर वाक्यों का श्रवण करके उसके प्रत्युत्तर स्वरुप प्राणकान्त श्रीकृष्ण ने जो कहा उससे सब सखीगण तो हँसने ही लगीं और उनमें प्राधाना श्रीराधा अवनत मस्तक होकर लज्जित होती हुई अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुई।

(१२५२) लज्जा को किसी प्रकार दूर करके श्रीराधा ने अत्यन्त प्रतिभापूर्वक खेलना प्रारम्भ किया और अपने अभीष्ट दान प्राप्त करने के लिए चेष्टा करने लगीं।

(१२५३) चन्द्रमुखी श्रीराधा ने सावधानी पूर्वक इस प्रकार खेलना प्रारम्भ किया जिससे श्रीकृष्ण पाशक गति (गोटी चलाना) एक दम रुक गया। तब उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रतिबन्धन के लिए द्विगुणतर दाव की वृद्धि कर ली।

(१२५४) व्यूह बन्धन भेद करने में असमर्थ श्रीकृष्ण ने श्रीराधा को भ्रम में डालने की विशेष चेष्टा करके ईषत् हास्य करते हुए मृदु वाक्यों से उनके चित्त को क्षुभित करते हुए कहने लगे–

यच्चतुर्थपणतामुपनीतं, चुम्बनप्रमुखमत्यविगीतम्।
तत्र जेतुमुभयोरभियोग, स्तुल्य एव खलु तत्फलभोगः।।१२५५।।

(कृष्णा० ४/२८२)

तावकस्य किमु मामकस्य वा, वृद्धिकर्मणि पणस्य सोत्सवा।
त्वं वभूविथ विचार्य चेतसा, ब्रूहि सुन्दरि ! विधूत–साध्वसा।।१२५६।।

(कृष्णा० ४/२८६)

सा ममर्ष मनसोभयथा मे ब्रीड़हेतुरतुलः परिणामे।
आलयोऽपि विहसन्ति मिथो मामप्ययं हसितवान् गुणभूमा।।१२५७।।

(कृष्णा० ४/२८७)

इत्यचिन्तित–समागतचिन्ता, सावहित्थमथ माधवकान्ता।
तद्वचोऽश्रुतमिवाभिनयन्ती, खेलितुं प्रववृते विहसन्ती।।१२५८।।

(कृष्णा० ४/२८८)

निक्वणत्कनककंकणभाजा, पाणिना विकसदास्य सरोजा।
अक्षमाक्षिपदनाकलयन्ती सा विदुर्विदुरिति प्रवदन्ती।।१२५९।।

(कृष्णा० ४/२८९)

(१२५५) चौथा दाव जो कि चुम्बन का निर्धारित हुआ था ऐसी अनिन्द्य वस्तु को जीतने के लिए दोनों का ही समान रुप से अभियोग था और फल की प्राप्ति भी दोनों को समान रुप से थी।

(१२५६) श्रीकृष्ण कहने लगे – हे सुन्दरि ! तुम विचार करके निःसंकोच होकर बताओ कि इस दाव में तुम स्वयं को अथवा मुझे ही दाव में जिताने के लिए उत्साह प्रकट कर रही हो।

(१२५७) यह बात सुनकर श्रीराधा मन में विचार करने लगीं – अरे ! दोनों ओर परिणाम में तो मुझे ही असीम रुप से लज्जित होना पड़ेगा। सखीगण भी परस्पर हँसेगी और यह गुणनिधि तो उपहास करेंगे ही।

(१२५८) इस प्रकार अत्यन्त चिन्ता में पड़कर श्रीराधा भवज्ञा पूर्वक (जैसे कोई बात सुनी ही न हो) हँसते–हँसते खेलने में प्रवृत्ता हुई।

(१२५९) प्रस्फुटित पद्म वदना श्रीराधा न देखकर ही विदुः विदुः (यह जान लिया है) इस प्रकार बोलती हुई अपने कंकणों की झंकार करतीं हुई पासे चलाने लगीं।

सख्य ऊचुरयि ते मनोरथं, चुम्बनादि–पणवृद्धि–सत्पथम्।
के विदुर्नहि वयं तु मा तप, किं विदुर्विदुरिति त्वमालप।।१२६०।।

(कृष्णा० ४/२६०)

सा सखीनिकरभाषितभंगी–माकलय चलरज्यदपांगी।
वक्रया प्रियगिरापि च विद्धा, खेलने समभवद्भ्रमवद्धा।।१२६१।।

(कृष्णा० ४/२६१)

आत्मनैव कृतपाशकबन्धं, सा स्वयं विरचितान्नुसन्धम्।
खेलनभ्रम–हतक्रमरीत्या, निर्विभेद नियतेरिव गत्या।।१२६२।।

(कृष्णा० ४/२६२)

तद्विलोक्य दयितः सदुदार, स्तं पणं त्रिगुणितं स चकार।
आलयस्तमवदन् जहि गर्वं जेष्यति प्रियसखी मम सर्वम्।।१२६३।।

(कृष्णा० ४/२६३)

सा पुनः प्रववृते जयकामा, खेलितुं स्मितमुखी वररामा।
नाग्रहो जयफले खलु तादृक्, सुभ्रुवो विजय एव हि यादृक।।१२६४।।

(कृष्णा० ४/२६४)

सा न तं स च न तामथ जेतुं संवभूव जगतीजयकेतुम्।
चित्रमेतदति यद्विजितोऽभू–देक एव सभिकः स मनोभूः।।१२६५।। (कृष्णा० ४/२६५)

(१२६०) यह बात सुनकर सखीगण कहने लगीं– देखो सखि चुम्बन रुपी दाव को बढ़ाकर उसको जीतने की तुम्हारी मनोवासना को किसने जान लिया है ? हम तो कुछ भी नहीं जानतीं, दुख मत करना, तुम जो 'विदुः विदुः' जान लिया है जान लिया है कहकर क्यों शोर मचा रही हो?

(१२६१) सखी समूह की वाक्यभंगी (परिहास) को सुनकर राधारानी के नेत्रों के कोर चंचल हो उठे और प्रियतम की वक्रोक्ति से विद्ध होकर खेलने में भ्रान्त चित्त हो गयीं।

(१२६२) उन्होंने स्वयं ही बिना आनुसन्धान के (अनवधानतावश) भाग्य की गति से चलते हुए मानों खेल का क्रम भंग करके भ्रमपूर्वक अपना बनाया हुआ व्यूह बन्धन स्वयं ही तोड़ डाला।

(१२६३) ऐसा देखकर उन महाउदार प्रियतम ने अपने दाव को त्रिगुणित कर दिया तब सखीगण कहने लगीं– देखो गर्व मत करना हमारी प्रिय सखी सब जीत लेंगी।

(१२६४) वररामा (श्रेष्ठ रमणी) श्रीराधा विजय की कामना से पुनः खेलने में प्रवृत्त हो गयीं। अहो ! इन सुन्दरियों को विजय प्राप्त करने का जितना आग्रह है उतना विजय के फल का नहीं।

(१२६५) श्रीराधा भी उन जगत की जय पताका स्वरूप श्रीकृष्ण को एवं श्रीकृष्ण भी जगत की जय पताका स्वरुपिणी श्रीराधा को जीतने में समर्थ नहीं हो सके यह कोई अति विचित्र बात नहीं है। यहाँ तो एकमात्र इस द्यूत क्रीड़ा के अध्यक्ष मदन की ही पराजय हुई।

द्वौ कलारस–कलापविदग्धौ द्वौ पुरुप्रणय कौशलमुग्धौ।
द्वौ सुमंगलगुणावलि नद्धौ द्वौ परस्पर मनोरथ सिद्धौ।।१२६६।।

(कृष्णा० ४/२६६)

वाधको व्यजनि कालविलम्बः, खेलनेऽस्ति नतरामवलम्बः।
इत्युभावसति पर्यवसाने, खेलनं जहतुरव्यवधाने।।१२६७।।

(कृष्णा० ४/२६७)

तावदेत्य वनदेव्यथ काचित् प्राह सूर्यसदने जटिलागात्।
तास्ततो निखिलकेलिमुदस्य, त्रस्तनेत्रमगुरन्तिकमस्याः।।१२६८।।

(कृष्णा० १५/५३)

किं स्नुषे ! क्व नु विलम्बमकार्षीः स्नातुमद्य यदगां सुनद्याम्।
किं न कुन्दलतिकामिह वीक्षे सा गता नम पुरोहितहेतोः।।१२६९।।

(कृष्णा० १५/५४)

नैति किं चिरमियं कलयारा, दागतां सहपुरोधसमेनाम्।
विप्रवेशधर–कृष्णसमेता, सा गताथ निजगाद च वृद्धाम्।।१२७०।।

(कृष्णा० १५/५५)

(१२६६) दोनों ही समस्त कला विद्या में विदग्ध, दोनों ही प्रणय परिपाटी की कुशलता से मुग्ध, दोनों ही महामंगल गुणावलि से युक्त (अथवा एक दूसरे के गुणों से आसक्त चित्त) दोनों ने ही परस्पर अनेक प्रकार की लीला के मनोरथों से महासिद्धि का लाभ किया।

(१२६७) अहो तब काल का बिलम्ब ही बाधक होकर उपस्थित हो गया। अब और खेलने का समय नहीं है इसलिए खेल समाप्त न होने पर भी वे सब शीघ्र ही खेल को त्यागने के लिए बाध्य हो गये।

(१२६८) **सूर्य मन्दिर में गमन :–** इसी समय एक वनदेवी ने आकर कहा– सूर्य मन्दिर में जटिला आ गयी है। इस बात के श्रवण मात्र से ही ब्रजसुन्दरीगण ने समस्त खेल परित्याग करके भयभीत नेत्रों से त्रस्त होकर जटिला के पास गमन किया।

(१२६९–१२७०) जटिला श्रीराधिका को देखकर पूछने लगीं– हे वधू ! इतना विलम्ब कहाँ हुआ ? श्रीराधा कहने लगी– हे आर्य ! 'मानसी गंगा के पवित्र जल में स्नान करने गयी थी' जटिला – कुन्दलता क्यों नहीं दिखायी दे रही है। श्रीराधा – वह हमारी सूर्य पूजा के लिए पुरोहित को लेने गयी है। जटिला – अभी तक क्यों नहीं आ रही हैं ? श्रीराधा– आर्ये ! यह देखो कुन्दलता पुरोहित को साथ लेकर उपस्थित हो गयी है। अब यहाँ विप्र वेशधारी श्रीकृष्ण के साथ कुन्दलता ने आकर वृद्धा जटिला को कहा–

नाद्य कोऽपि चिरमार्गणतोऽपि, प्राप्यते द्विजसुतो निजगोष्ठे।
किन्त्वयं मधुपुरीभव आगा–दत्र गर्ग कलिताखिलविद्यः।।१२७१।।

(कृष्णा० १५/५६)

एनमेव बहुवर्णिनमत्र, स्तौति पण्डिततिर्मतिमन्तम्।
तन्मयाग्रहशतैरिह नीतं तं पुरोहिततया वृणु वध्वाः।।१२७२।। (कृष्णा० १५/५७)

तं जरत्यवददद्य कृतार्थै, वाभवं भवदवेक्षणमात्रात्।
विप्रवर्य ! परिपूरितकामां, मद्वधूं कुरु समर्च्चय मित्रम्।।१२७३।।

(कृष्णा० १५/५८)

तदा राधा विशाखामाह –
सहचरि ! हरिरेष ब्रह्मवेशं प्रपन्नः किमयमितरथा मे विद्रवत्यन्तरात्मा।
शशधरमणिवेदी स्वेदधारां प्रसूते न किल कुमुदबन्धोः कौमुदीमन्तरेण।।१२७४।।

(ल० २/१२)

राधाकर्णे विशाखाह –
ब्रधनोपास्तिविधौ तव प्रणयितापूरेण वेशं गते क्ष्मादेवस्य कथं गुणोऽप्यघरिपौ द्रागस्य सञ्चक्रमे ?
बुद्धि पश्य विवेक–कौशलवती दृष्टिः क्षमोद् गारिणी वागेतस्य मृगाक्षि ! रुढ़विनया मूर्त्तिश्च धीरोज्ज्वला।।१२७५।।

(उ० १/३०)

(१२७१–१२७३) हे आर्य ! आज बहुत देर तक खोजने पर भी हमारे गोष्ठ पर एक भी विप्र कुमार नहीं मिला। बड़ी कठिनाई से मथुरा निवासी समस्त विद्याओं में निपुण इन गर्ग शिष्य ब्रह्मचारी जी को लेकर आयी हूँ। हे आर्य ! यह बहुवर्णि (उत्कृष्ट ब्रह्मचारी, बहुरुपी अथवा बहुत वर्णों वाले) मूर्तिमान वटु है और पण्डितजन इनकी प्रशंसा करते हैं। मैं अत्यन्त आग्रह करके इनको यहाँ लेकर आयी हूँ तुम इन्हें वधू के पुरोहित रुप में वरण करो। जटिला विप्रवेशी कृष्ण को कहने लगी– हे विप्रवर, मैं आज आपके दर्शन से कृतार्थ हो गयी आप मेरी बहू से सूर्य पूजा करवा दो।

(१२७४) तब श्रीराधा विशाखा से कहने लगी– सहचरी यह साक्षात् हरि ही ब्राह्मण का वेश धारण करके आये हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो मेरी अन्तरात्मा क्यों द्रवीभूत हो रही है ? देखो कुमुद बन्धु चन्द्र की ज्योत्सना के बिना कभी भी चन्द्रकान्त निर्मित वेदी द्रवीभूत नहीं होती।

(१२७५) श्रीविशाखा श्रीराधा के कान में कहने लगीं– हे मृगाक्षी ! तुम्हारे ही प्रेम के वशीभूत होकर श्रीकृष्ण सूर्योपासना कराने के लिए ब्राह्मण का वेश धारण करके आये हैं देखो ! कितने आश्चर्य की बात है ! कि अकस्मात् इनकी देह में कैसे ब्राह्मणों के गुण दिखायी देने लगे हैं। इनकी कैसी विवेक से गम्भीर दृष्टि मानों क्षमागुण को उद्‌गीर्ण कर रही है, विनय से युक्त वचन और मानों मूर्तिमान धैर्य गुण के आश्रय स्वरुप ही प्रतीत हो रहे हैं।

धीरतारनयनः सितवासा, दर्भसम्वलित–पुस्तकपाणिः।
सामगान–मधुरस्वरकण्ठो, मूर्तीमान् स इवैष तदोचे।।१२७६।।

(कृ० भा० १५/५६)

वर्णिनो यदपि नोचितमेव, स्त्रीविलोकनमथाप्यतिसाध्वीम्।
कारये स्तृततनूमिट्टकाम, प्रांशुमद्यजनमद्य तु वृद्धे।।१२७७।।

(कृ० भा० १५/६०)

पूजारम्भेऽवदत् कृष्णो वध्वास्ते नाम किं वद।
राधेति वृद्धयोक्तेऽसौ सचमत्कारमाह ताम्।।१२७८।।

(गोवि० १८/६५)

सेयं गुणवती यस्याः साध्वीत्वं श्रूयते पुरे।
धन्या त्वं यत्स्नुषा सैषेत्युक्त्वा राधामथाब्रवीत्।।१२७९।।

(गोवि० १८/६६)

नावृतः कारयेत् कर्म तद् भास्वद्तनुक्रतौ।
वृणु मां स्त्री न मे स्पृश्या स्पृशन्ती मां कुशैः पठ।।१२८०।। (गोवि० १८/६७)

(१२७६) इसके पश्चात् जिनके नेत्रों के तारे गम्भीर हैं, हाथ में कुशा, और पुस्तक, सामगान परायण ही मूर्तिमान होकर समस्त जनों के नयनों के समक्ष उपस्थित विप्रवेशी श्रीकृष्ण कहने लगे–

(१२७७) हे वृद्धे ! यद्यपि ब्रह्मचारियों के लिए स्त्रियों का दर्शन करना उचित नहीं है तो भी मैं अति साध्वी वस्त्र से आवृत्त तन वाली आपकी बहू का समस्त कामनाओं को पूर्ण कराने वाली सूर्य की पूजा करा दूँगा।

(१२७८) पूजा के आरम्भ में श्रीकृष्ण जटिला से पूछने लगे– आपकी बहू का क्या नाम है? वृद्धा ने कहा – 'राधा' यह नाम सुनकर श्रीकृष्ण चमत्कृत होते हुए वृद्धा से कहने लगे–

(१२७९) क्या यह वही गुणवती है ? इस ब्रजमण्डल में जिसके सतीत्व गुणों की प्रशंसा होती है। यही वो राधा आपकी पुत्रवधू है इसलिए आप धन्य हैं। ऐसा कहकर श्रीराधा के प्रति कहने लगे–

(१२८०) "पुरोहित को वरण किये बिना कोई भी पूजा कार्य नहीं करना चाहिए" यह वेद का वाक्य है। अतएव इस सूर्य पूजा रुपी महायज्ञ में मेरा वरण करो किन्तु मैं स्त्रीजनों का स्पर्श नहीं करता अतएव तुम कुशा द्वारा मेरा स्पर्श करके मन्त्र पाठ करो (इस श्लोक का श्लेषार्थ :– इस काम यज्ञ में वस्त्रादि द्वारा आवृत होकर कर्म नहीं करना चाहिए अतः तुम वस्त्र त्यागकर निखिल ललनाओं के प्रति मेरा कामातुरा होकर कुश अर्थात् अंकुश सदृश तीक्ष्ण नखों द्वारा पठ अर्थात् आचरण करो।)

जगन्मंगलकृदगोत्रं शुचिवित्प्रवरं शुचिम्।
भवन्तं विश्वशर्माणं पुरोहिततया वृणे।।१२८१।।

(गोवि० १८/६८)

श्रीभास्वतेऽतनुतमः संहन्त्रेत्यनुरागिणे।
पुरः सतैऽस्मै मित्राय पद्मिनीबन्धवे नमः।।१२८२।।

(गोवि० १८/६६)

मण्त्रेणानेन पाद्यादीन् मित्राय त्वं समर्पय।
स्वञ्च गौरांशुकः स्यात्ते यथा कामप्रदो वशः।।१२८३।।

(गोवि० १८/७०)

अर्चितार्चाधुना धन्ये त्वमर्घ्यं कुरु भावता।
अम्बरोद्भासिने गाढ़मुदा राजीवबन्धवे।।१२८४।।

(ल० २/१४)

(१२८१) "जगन्मंगलकृदगोत्रं शुचिवित्पवरं शुचिम्। भवन्तं विश्वशर्माणं पुरोहिततया वृणे" जगन्मंगलकारी श्रीभगवान ही जिनका गोत्र विशुद्ध ज्ञानशाली श्रेष्ठ शुद्ध चित्त वाले विश्व शर्मा (अपना नाम) मुझ पुरोहित का वरण करती हूँ (श्लेषार्थ :– श्रीकृष्ण के पक्ष में जगत का मंगल करने वाला जिनका नाम श्रृंगार रस वेत्ताओं में प्रवर विश्वशर्मा अर्थात् विश्व का कल्याण करने वाले पुरोहित अर्थात् हितकारी, ऐसे श्रीकृष्ण का मैं वरण करती हूँ।)

(१२८२) जो अंधकार का नाश करने वाले सायं और प्रभात के समय अरुण वर्ण कमलिनी के बन्धू मित्र नामक सूर्य भगवान को मैं नमस्कार करती हूँ (श्रीकृष्ण के पक्ष में – श्री अर्थात् स्वर्ण रेखा रुपी लक्ष्मी की कान्ति से युक्त तनुहीन कन्दर्प जनित 'तम' अर्थात् दुख का हरण करने वाले अतिशय अनुराग युक्त, पद्मिनी स्त्रियों के बन्धू अर्थात् पति ऐसे श्रीकृष्ण को जो सामने स्थित है पुरोहित को नमस्कार करते हैं।) तदन्तर पुरोहित रुपी श्रीकृष्ण ने कहा – राधे ! तुम इस मन्त्र द्वारा मित्र अर्थात् प्रियतम श्रीकृष्ण के पाद्य आदि (अपनी आत्मा, शरीर) समर्पण करो। जिससे गौर किरण वाले सूर्य तुमको अभीष्ट वर प्रदान करेंगे श्लेषार्थ – पीताम्बर धारी मुझको अपनी आत्मा समर्पित करो। मैं तुमको कंदर्प विलास का सुख प्रदान करुंगा।

निभृतमरतिपुञ्जभाजि राधे ! त्वदधरवर्द्धितचपले चलाक्षि !
चटुलय कुटिलां दृगन्तभंगी–मयि कृपणे क्षणमो नमः सवित्रे।।१२८५।।

(ल० २/१३)

संप्रति कन्याराशे रुपभोगं कुर्वते पुरःस्थाय।
मित्राय चित्रमर्घ्यं कुरु सुस्मित पुण्डरीकेण।।१२८६।।

(ल० २/१५)

राधिका दृगन्तेन हरिं पश्यतिं कृष्णाः –सवितुः समाप्तिमाप्तः पूजाविधिरेष सुष्ठुकल्याणि!
इष्टं नन्दय देवं सराग सुमनोवराञ्जलिना।।१२८७।।

(ल० २/१६)

राधिका बन्धूक–कुसुमाञ्जलिं क्षिपतिः–पत्युरस्तु कृपया तव भास्वद् यागतोऽयुतगवाप्तिरमुष्याः।
कल्पतानवरतं चिरमायु–र्वृद्धिरित्यमुमयाचत वृद्धा।।१२८८।।

(कृ० भा० १५/८४)

एवमस्त्विति वदत्यद्यशत्रा, वेत्य तत्र मधुमंगल ऊचे।
सूर्यसूक्तमहमेव पठामी, त्यक्षिपद्दृशमशेष निवेद्ये।।१२८६।।

(कृ० भा० १५/६५)

(१२८५–८७) पुनः पुरोहित रुपी श्रीकृष्ण बोले– हे धन्ये ! प्रतिमा की पूजा तो हो गयी अब भक्तिपूर्वक गगन में उद्भासित होने वाले (श्रीकृष्ण पक्ष में पीताम्बरधारी) पद्मबन्धू सूर्य (जीवन बन्धू मुझे) अर्घ्य प्रदान करो। श्रीकृष्ण ने (पुरोहित) कहा – राधे ! तुम्हारे अधरों की शोभा देखकर चपलता वश मैं निरन्तर क्लेश भोग करता हूँ अतः हे चंचलाक्षि मेरे जैसे दुखित जन के प्रति कुटिल कटाक्ष पात करके धन्य करो इति सूर्य को नमस्कार तब कुन्दलता ने कहा– "इस समय आश्विन में सूर्य कन्या राशि का भोग कर रहे हैं अतः विकसित कमल द्वारा इनको अर्घ्य प्रदान करो" श्लेषार्थ सम्प्रति कन्या समूह का भोग करने वाले सम्मुखस्थ श्रीकृष्ण को हास्य कमल द्वारा अर्ध्य प्रदान करो।

(१२८८) तब श्रीराधा नेत्रकोण द्वारा श्रीकृष्ण का अवलोकन करने लगीं। श्रीकृष्ण ने कहा– कल्याणि ! सूर्यदेव की पूजा विधि पूर्वक सम्पन्न हो गयी अब तुम लाल फूलों की अंजलि (अनुराग युक्त भावों द्वारा) से इष्टदेव को आनन्दित करो। श्रीराधा ने अंजलि प्रदान की।

(१२८६) इस प्रकार रसिक श्रीकृष्ण द्वारा श्रीराधा को मित्र पूजा (सूर्य पूजा) करा देने से जटिला अत्यन्त प्रसन्न हुई और कहा– हे विप्रवर्य ! आपकी कृपा से मेरा अत्यन्त प्रिय पुत्र (श्रीराधा का पति) अयुत संख्यक गौउवों को प्राप्त करे, और अनवरत चिरायु को प्राप्त करें, यही प्रार्थना है।

मूर्खलम्पटसख ! त्वमिहागाः किं, वटूः प्रतिदिनं पुनरेषः।
पूजयिष्यति वधूमतिसौम्यः, श्याम इत्यवदज्जरतीतम्।।१२६०।।

(कृ० भा० १५/६६)

कृष्णः – साम्प्रतं श्रृणु सतीकुल वर्य्ये ! भास्वते नम इतीह पठन्ती।
उत्थिता कृत परिक्रमणा त्वं क्षौणिलग्नशिरसा प्रणमामुम्।।१२६१।।

(कृ० भा० १५/६८)

सा तथा विदधाति।
नैवेद्ये दक्षिणात्वेन राधा स्वर्णांगुलीयके न्यस्तेऽग्रे वृद्धया भक्त्या स्मेरस्तामाह माधवः।।१२६२।।

(गोवि० १५/७३)

नाद्मोऽन्यदेवताशेषं वयमेकान्तिवैष्णवाः।
नान्यवर्णार्थमादद्यां शुक्लवृत्तिरहं वटुः।।१२६३।।

(गोवि० १८/७४)

सर्वज्ञो गर्गशिष्योऽस्मि ज्योतिः सामुद्रकादिवित्।
गुर्वो मे दक्षिणा प्रीतिर्युष्माभिर्व्रजवासिभिः।।१२६४।।

(गोवि० १८/७५)

(१२८६) श्रीकृष्ण ने एवमस्तु कहकर आशीर्वाद दिया, फिर मधुमंगल "मैंने सूर्यसूक्त का पाठ किया है" इस प्रकार कहते हुए विविध नैवेद्यों के ऊपर दृष्टि डालने लगा।

(१२६०) तब वृद्धा जटिला ने कहा– 'रे मूर्ख ! रे लम्पट मित्र तू यहाँ क्यों आया है ? यही श्याम वर्ण का सौम्य वटु मेरी बहू को प्रतिदिन पूजा करायेगा।'

(१२६१) विप्रवेशी श्रीकृष्ण श्रीराधिका को कहने लगे– हे सतीकुल चूड़ामणि ! 'भास्वते नमः' इस मंत्र का पाठ करके उठकर परिक्रमा करके पृथ्वी पर सिर लगाकर नमस्कार करो।

(१२६२) श्रीराधिका ने ऐसा ही किया। तदनन्तर वृद्धा जटिला नैवेद्य और दक्षिणा स्वरूप में श्रीराधा की दो स्वर्ण की अंगूठियाँ पुरोहित के आगे भक्ति पूर्वक अर्पण की। श्रीकृष्ण हँसते हुए जटिला को कहने लगे–

(१२६३) हम तो एकान्त विशुद्ध वैष्णव हैं अतएव किसी अन्य देवता का प्रसाद नहीं भक्षण करते और मैं तो शुद्ध चित्त ब्राह्मण लक हूँ। अन्य जाति का अन्न एवं अर्थ ग्रहण नहीं करता।

(१२६४) और कहने लगे– मैं र्गाचार्य का शिष्य हूँ। ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्रों का पण्डित हूँ अतः सर्वज्ञ हूँ और आप ब्र ासियों की जो मेरे प्रति स्वभाविक प्रीति है वही मेरी सबसे बड़ी दक्षिणा है।

वृद्धायां कर्णलग्नायां कौन्द्याः सा हरिमव्रवीत्।
वृद्धा त्वां याचते वध्वाः करं वीक्ष्य फलं वद।।१२६५।।

(गोवि० १८/७६)

हरिस्तामाह नास्माकं ललनांगप्रदर्शनम्।
कार्यं तथापि वः प्रीत्या वशः पश्यामि दूरतः।।१२६६।।

(गोवि० १८/७७)

त्वमेवास्याः करौ साध्व्याः प्रसारय पुरो मम।
कौन्द्या तथा कृते सोऽभूत् कम्पाश्रुपुलकान्वितः।।१२६७।।

(गोवि० १८/७८)

आच्छाद्य विस्मयेनात्महर्षमाहाद्भुतं त्विदम्।
यान्यस्याः शुभचिह्नानि तैरियं स्यात् स्वयं रमा।।१२६८।।

(गोवि० १८/७९)

अस्याः प्रसाददृष्टिश्चेद्वयं स्मः पूर्णसम्पदः।
यत्रास्याः स्थितिरत्रैव ससम्पत् सर्वमंगलम्।।१२६९।।

(गोवि० १८/८०)

(१२६५) तब वृद्धा जटिला ने कुन्दलता के कान में कुछ कहा– और कुन्दलता श्रीकृष्ण को कहने लगी– हे वटु ! यह वृद्धा जटिला आपसे निवेदन करती है कि आप इनकी बहू श्रीराध ा का हाथ देखकर कुछ फल का विचार करके बोलो–

(१२६६) ब्राह्मण रुपी श्रीकृष्ण कुन्दलता को कहने लगे– स्त्रियों के अंगों को देखना हमारा कर्तव्य नहीं है वो भी तुम्हारी प्रीति के वशवर्ती होकर मैं दूर से इनका हाथ देख दूंगा।

(१२६७) 'अब तुम ही इस पतिव्रता का हाथ मेरे सामने खुलवा दो' ऐसा सुनकर कुन्दलता ने श्रीराधा का हस्त प्रसारित करवाया जिसे देखकर श्रीकृष्ण अश्रु कम्प और पुलक से युक्त हो गये।

(१२६८) श्रीकृष्ण श्रीराधा के हस्त दर्शन से उत्पन्न आनन्द जनित भावों को विस्मय पूर्वक आच्छादित करते हुए बोले– 'यह बड़े आश्चर्य की बात है इस वधू के हाथ में जितने शुभ चिह्नों का दर्शन कर रहा हूँ उससे यह निश्चित होता है कि यह स्वयं लक्ष्मी है।

(१२६९) 'इस वधू की यदि कृपा दृष्टि हो जाय तो हम सब सर्व सम्पति से पूर्ण हो सकते हैं और जहाँ ये वास करेगी वहाँ पर सब सम्पति और मंगल विराजमान होंगे'।

सूनोस्ते नाम किं ब्रूहीत्युक्त्या वृद्धयोदिते।
तन्नाम्नि गणयित्वाह हरिस्तामतिविस्मितः।।१३००।।

(गोवि० १८/८१)

वर्त्तन्ते वहवो विघ्ना वृद्धे ! ते तनयायुषि।
अस्याः साध्व्याः प्रभावेण प्रभवन्ति न ते क्वचित्।।१३०१।।

(गोवि० १८/८२)

तच्छ्रुत्वा नन्दिता वृद्धा राधिकारत्नमुद्रिकाम्।
अमूल्यां पुरतस्तस्य दधार पारितोषिकम्।।१३०२।।

(गोवि० १८/८३)

तावदेत्याह सुबलो विश्वशर्मन् हरिर्युवाम्।
पयःफेन फलादीनां भोजनाय प्रतीक्षते।।१३०३।।

(गोवि० १८/८४)

नादिम विप्रेतरान्नादि गार्ग्या चास्मि निमंत्रितः।
यामि शीघ्रं गृहाण त्वं नैवेद्यं मधुमंगल।।१३०४।।

(गोवि० १८/८५)

(१३००) तत्पश्चात् जटिला को कहा – अपने पुत्र का नाम बताओ। जटिला ने पुत्र का नाम बताया– श्रीकृष्ण ने उस नाम से गणना करके अत्यन्त विस्मित होकर जटिला से कहा–

(१३०१) "वृद्धे ! तुम्हारे पुत्र की परमायु में बहुत विघ्न है किन्तु इस पतिव्रता वधू के प्रभाव से वे समस्त विघ्न कुछ भी दुष्प्रभाव नहीं कर पायेंगे"।

(१३०२) यह सुनकर वृद्धा आनन्दित हो गयीं और श्रीराधा की रत्न जटित अमूल्य रत्ना मुद्रिका ब्राह्मणरुपी श्रीकृष्ण को पारितोषिक प्रदान किया।

(१३०३) इसी बीच सुबल ने आकर कहा– हे विश्व शर्मण दुग्ध फेन, फल आदि भोजन करने के लिए श्रीकृष्ण तुम्हारी और मधुमंगल की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

(१३०४) 'यह सुनकर विश्व शर्मा कहने लगे– मैं ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी अन्य जाति का अन्न आदि भोजन नहीं करता। गार्गी (गर्गाचार्य जी की कन्याएं) ने मेरा आज निमन्त्रण किया है। मैं शीघ्र ही वहाँ जा रहा हूँ। मधुमंगल तुम ये नैवेद्य ग्रहण करो"।

मधुः प्राह देहि वृद्धे ! स्वस्तिवाचन–दक्षिणाम्।
आकृष्य साप्यदात्तेस्मै स्वांगुलेः स्वर्णमुद्रिकाम।।१३०५।।

(गोवि० १८/८६)

वटुस्तां प्राप्य हृष्टः सन् कफोणिं वादयन्मुहुः।
नैवेद्यमञ्चले बद्धा तां प्रशंसन्ननर्त्त सः।।१३०६।।

(गोवि० १८/८७)

वृद्धया प्रार्थितः कृष्णं जगाद मधुमंगलः।
अगृहीते दक्षिणार्थे त्वया न ब्रतपूर्णता।।१३०७।।

(गोवि० १८/८८)

कृपया तद्गृहाणेमं स्वार्थश्चार्थेन तेन चेत्।
विप्रेभ्यः क्लृप्स्यते सोऽयं व्रतिन्या भविता शुभम्।।१३०८।।

(गोवि० १८/८९)

स्वीकृतस्ते मया दोषो नेत्युक्त्वा स्वाञ्चले हसन्।
बवन्ध मुद्रिके ते द्वे निषिद्धोऽप्यमुना मुहुः।।१३०९।। (गोवि० १८/९०)

जगाद कृष्णं जटिला वटो ! यदैवायाति गोष्ठं मम भाग्यतो भवान्।
तदा मयास्या रविपूजने गुरुर्वतोऽस्ति ते भूरि ददामि दक्षिणाम्।।१३१०।।

(गोवि० १८/९१)

(१३०५–६) तब मधुमंगल ने कहा 'वृद्धे तुम मुझे स्वस्ति वाचन की दक्षिणा प्रदान करो। वृद्धा जटिला ने अपनी अंगुली से सोने की मुद्रिका उतार कर मधुमंगल को दे दी। मधुमंगल सोने की अंगूठी प्राप्त करके आनन्दित होकर बार–बार कक्ष वादन करते–करते अपने दुपट्टे में नैवेद्य को बाँध लिया और वृद्धा की प्रशंसा करते–करते नृत्य करने लगा।

(१३०७) दक्षिणा ग्रहण करने के लिए वृद्धा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर मधु मंगल श्रीकृष्ण को कहने लगा 'यदि तुम दक्षिणा का धन ग्रहण नहीं करते तो इसका व्रत (पूजा) पूर्ण नहीं होगा।

(१३०८) अतएव कृपा करके इस दक्षिणा के धन को ग्रहण करो और यदि धन से तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है तो ब्राह्मण को दान कर दो इससे इन व्रतकारिणी वधू का भी मंगल होगा।

(१३०९) श्रीकृष्ण के पुनः पुनः मना करने पर भी मधुमंगल मैं तुम्हारे दान को स्वीकार करता हूँ। ऐसा कहकर हँसते–हँसते दोनों अंगूठियां अपने दुपट्टे में बांध लीं।

(१३१०) तब जटिला ने श्रीकृष्ण को कहा – वटु हमारे सौभाग्य से जब भी आप इस गोष्ठ में आयें तो मैं अपनी वधू से सूर्य पूजा कराने के लिए आपको ही वरण करूंगी और प्रचुर रूप से दक्षिणा भी प्रदान करूंगी।

इत्युक्त्वा जटिला हृष्टा नत्वादित्यं द्विजौ च तौ।
कृतार्थं स्वं मन्यमाना ताभिः सा चलितालयम्।।१३११।।

(गोवि० १८/६२)

यान्ती विवर्त्य सहसालपनच्छलेन ग्रीवां मुहुर्ललितयानुगया मुरारेः।
वक्त्राब्जसारघमपांगतरंगभंगया राधा पिबन्त्यपि न तृप्तिमवाप दीना।।१३१२।।

(गोवि० १८/६३)

हृदय दयित लीला स्निग्धदुग्धैः प्रपूर्णा तनुकनकघटी या सुभ्रुवोऽस्याः सखीणाम्।
नयनमुदमतानीत् साशु वैरस्यमाप्ता विरहविष–विवर्णा नेत्रसन्तप्तयेऽभूत।।१३१३।।

(गोवि० १८/६४)

कान्तासंगेन्दु–संफुल्लः कृष्णो नीलोत्पलप्रभः।
विच्छेदार्कोदये म्लायन् क्षणादन्य इवाभवत्।।१३१४।।

(गोवि० १८/६५)

सखिभ्यां सहितः सोऽथ विमनाः स्वसखीनगात्।
तेऽह्मपूर्विकया हृष्टा आलिंगन्तस्तमब्रुवन्।।१३१५।। (गोवि० १८/६६)

(१३११) ऐसा कहकर जटिला ने आनन्दित होकर सूर्य देव को तथा उन दोनों ब्राह्मणों को (विश्वशर्मा और मधुमंगल) प्रणाम करके अपने को कृतार्थ मानती हुई श्रीराधा आदि सखीगण सहित घर की ओर जाने लगीं।

(१३१२) तत्पश्चात् श्रीराधा घर को जाते–जाते पीछे चलने वाली ललितादि सखियों के साथ बातचीत के छल से पुनः पुनः मुख मोड़कर श्रीकृष्ण के मुखकमल का मधु अपने नेत्रों के कटाक्षों द्वारा पान करती हुई भी तृप्त नहीं हुई बल्कि दीन सी होकर रह गयी।

(१३१३) सुन्दर भौहों वाली श्रीराधा के श्रीअंग रुपी क्षुद्र स्वर्ण घट में श्रीकृष्ण का लीलामृत रुपी स्निग्ध, दुग्ध परिपूर्ण था जिसका सखी सकल नेत्र युगलों द्वारा आनन्द पूर्वक आस्वादन कर रहीं थीं वहीं श्रीअंग रुपी घट अब विरस होकर विरह विष से विवर्ण होता हुआ सखी वर्ग के नेत्रों को संताप प्रदान करने लगा।

(१३१४) इधर नीलकमल सी कान्ति वाले श्रीकृष्ण भी प्रियतमा श्रीराधा के मिलन रुपी चन्द्रोदय से पहले तो प्रफुल्लित हो रहे थे और अब विरह रुपी सूर्य के उदय होने से क्षणकाल मे ही म्लान होकर अन्य प्रकार के रुप वाले हो गये।

(१३१५) तदनन्तर सुबल और मधुमंगल सहित श्रीकृष्ण उदास होकर अपने समस्त सखाओं के पास पहुँचे और सखा भी "यह हमारा सखा श्रीकृष्ण आ गया हम इसको पहले जाकर छूयेंगे" ऐसा कहकर आनन्द पूर्वक श्रीकृष्ण को कहने लगे।

अस्मान् हित्वा तव गतवतस्त्वद्वियोगासहिष्णून काठिन्यं न स्फुटभवगतं व्याकुलैर्दीन–चित्तैः।
अन्वेष्टुं त्वां प्रतिजिगमिषून् यत्वमागाः क्षणार्द्धात्तेन ज्ञातं प्रियसख ! परं प्रेमकौमल्यमेव।।१३१६।।
(गोवि० १८/६७)

सोऽयं राधासहचर–हरेः स्फीतमध्याह्न लीलापीयूषाब्धिर्विलसति महान् दुर्विगाहोऽत्यपारः।
भाग्यं तन्मे यदिह विलसच्छ्रीलरूपानुकम्पा–वात्यानीता तदनुकणिकाप्यस्पृशन्मां तटस्थम्।।१३१७।।
(गोवि० १८/६८)

इति श्री श्री भावनासार–संग्रह मध्याह्न लीलास्वादनं नाम चतुर्थः संग्रहः।।४।।

❖

(१३१६) भैया कृष्ण ! "हम तुम्हारा वियोग सहन नहीं कर पा रहे थे। तुम हमको छोड़कर चले गये तो हमें ऐसा अनुभव हुआ कि तुम बहुत कठोर चित्त वाले हो। हमने व्याकुल होकर तुम्हारा अन्वेषण करने के लिए और तुम्हारे निकट आने के लिए इच्छा की तो तुम क्षणार्द्ध में ही तुम आ गये तो हे प्रिय सखे ! हमने तुम्हारे हृदय की प्रेम की कोमलता का अनुभव किया"।

(१३१७) श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण की मध्याह्न लीला रुपी अमृत का सागर रुप से शोभा पा रहा है। किसी अन्य के लिए इसमें अवगाहन करना अत्यन्त कठिन है। यह अपार है हमारा सौभाग्य है कि श्रीश्री रुप गोस्वामी जी की कृपा रुपी वायु से इस अमृत सागर की एक कर्णिका का मेरे जैसे तटस्थ (अर्थात् तीर स्थित अथवा श्रीकृष्ण लीला विषय में उदासीन या अनभिज्ञ) पामर जीव को स्पर्श करने का भाग्य प्राप्त हुआ है (यही उनकी कृपा है)।

इति श्री श्री भावना सार–संग्रह की मध्याह्न लीला स्वादन नाम का चतुर्थ संग्रह।

❖

पंचम संग्रहः

अथ अपराह्न लीला

परावृत्तिं गोष्ठे वृजनृपतिसूनोर्विपिनतो महानन्दाम्भोधेः सपदि जनयित्रीं स्वहृदये।
स्मरण श्रीगौरांगे नटति वलते निःश्वसिति च क्षणं मुह्यन् सर्वान् विवशयति यस्तं भज मनः।।१।।

श्रीराधां प्राप्तगेहां निजरमणकृते कृल्पतनानोपहारां (क्लृप्त) सुस्नातां रम्यवेषां प्रियमुखकमलालोकपूर्णप्रमोदाम्।
कृष्णां चैवापराह्ने बृजमनुचलितं धेनुवृन्दैर्वयस्यैः श्रीराधालोकतृप्तं पितृमुखमिलितं मातृमृष्टं स्मरामि।।२।।
(गोवि० १६/१)

(१) श्रीगौरचन्द्र :–

तब अपराह्न लीला सुमिरण करै, श्रीगौरचन्द्र चित्त आनंद भरै।
धेनुगण प्रियसखावृन्द सहित, वन सो ब्रज प्रवेश करै आनंद चरित।।
नटवरवेष वनमाला चूढ़ाते मयूरपिच्छ, कर्णयुगले शोभे अशोक गुच्छ।
गौरज धूसरित श्रीमुखकमल, पराग भूषित मानो नीलकमल।।
अधरे मुरली धरि बजाय मधुर, सखागण दल श्रृंग नाना वाद्य करै।
उर्ध्वपुच्छ करि धेनु जाय सब वृजे, हम्बा हम्बा ध्वनि मानो जलद गरजै।।
अट्टालिका चढ़ि राधा देखैं श्रीकृष्ण, नाना भावयुक्त तन मत अति तृष्णा।
यह लीला गौरचन्द्र करै स्मरण, बृज रुप गुण लीला विभावित मन।।
स्तम्भ कम्प अश्रु घर्म पुलक हुंकार, आनंद तरंग उठै शत शत धार।
भक्त गण सह लीला करै प्रकट, ऐसे प्रभु को भजौ मन निष्कपट।।

(२) मूलसूत्र :–

सब धेनु संग सब सखागण, वृजराज कुमार वृज करै आगमन।।
मुरली बजाय करै बृजवासी आकर्षण, गौपद धूलि व्याप्त सकल गगन।।
गृहकर्म त्यागि वृद्ध बालक युवतिगण, श्रीकृष्ण दर्शन हेतु उत्कंठित मन।।
श्रीराधिका गृह फिरै स्नानादि करै, शोऽष श्रृंगार सब आभूषण धरै।।
श्रीकृष्ण भोजनहित नाना पाक करै, दर्शन हित सखी संग गमन करै।।
बृजराजहारे सब बृजवासीजन, श्रीकृष्ण दर्श लागि उत्कंठित मन।।

अथ प्रेम्णः स्थेमन्यपि समजनि स्थैर्यरहिता प्रिया प्रेयस्यक्षणोरमलकमलद्वन्द्वमहसोः। तटात् स्वस्यावासात् प्रवसति विदूरे दवथनो बलादाक्रम्यास्या हृदयनगरीं भेत्तुमविशन्।।३।।

(कृ० भा० १६/१)

सखीसंघाश्वासौषधमपि निरोजो विदधतीं दधाना स्वप्राणप्रियविरहजां संज्वररुजम्। क्षणार्धं कल्पानां शतममनुतेयं गुरुगृहं निरम्भस्कं कूपं ह्रियमशनिजं जलपटलम्।।४।।

(कृ० भा० १६/२)

श्रीकृष्ण सब कह मिलै यथाक्रम, दरश परश स्मित अवलोकन।।
गोपवृद्ध सबको नमस्कार करैं, तन मन वचन सौं सत्कार करैं।।
पितृ–भातृ वन्द सबकौ नमस्कार करै, प्रियागण प्रति प्रेमकटाक्ष विनय करै।।
बृजवासी जन निज भाव अनुसार, यथोचित करै श्रीकृष्ण सत्कार।।
गौशाला ते प्रवेश करांय धेनुगण, पिता आज्ञा अनुसार कहै गृहे गमन।।
बलदेव सग स्नान भोजन करि, माता आज्ञा लै गौशाला जान श्रीहरि।।
धेनु दुग्ध दोहन करै हर्ष सहित, पुनः गोष्ठ फिरै लइया सखा सब।।
कृष्ण अवशिष्ट भोजन सह सखीगण, करै राधा, विराजै अट्टालिका हर्ष मन।।
तब श्रीराधा निज गृह अन्तर जांय, निज प्रियतम निमित्त नाना द्रव्य बनांय।।
स्नान श्रृंगार सुन्दर भांति करै, आनंदित मन श्रीकृष्ण दरशन करै।।
अपराह्ने श्रीकृष्ण जब फिरै बृजपुरी, सखा और धेनुगण लैके आगे करि।।
श्रीराधामुख दरशन करै अति हरषित, आनन्द जल सों नयन पूरित।।
पिता आदि गुरुजन संगा सुमिलन, मातृगण प्रेमे बहु करै लालन।।

(३) अब श्रीराधा प्रियतम के निवास गृह सदृश एवं अमलकमलयुगलसदृश अपने नेत्रों के तट से प्रियतम के दूर चले जाने पर अपने प्रेम को अस्थिर एवं निःसत्व समझकर धैर्य रहित हो उठीं, और फिर विषाद रुपी दावानल उनकी हृदयनगरी पर बलपूर्वक आक्रमण करके उन्हें तापित करने लगा।

(४) श्रीराधा के प्राण प्रियतम के विरहज्वर से आक्रान्त होने पर सखीगण नाना प्रकार के आश्वासन वचनों से उन्हें मानो औषधि प्रदान करने लगीं लेकिन सब व्यर्थ। अतः क्षणकाल उनको शतकल्प के समान और गुरुगृह निर्जनकूप के समान एवं लज्जा बज्र निर्मित अतिकठिन जाल के समान प्रतीत होने लगी।

अवितथमसौ किं द्राधीयान् गमिष्यति वासरः सुमुखि ! स निशारम्भः किंवा समेष्यति मंगलः ?
स्मितमुखशशी गोधूलीभिः करम्वित–कुन्तलः क्षपयति दृशामार्त्तिं यत्र बृजेश्वर–नन्दनः।।५।।
(उ० ४/१६)

तदालीनां पाल्या समुचित सपर्याकुलधियां द्रवैः पौनःपुण्यान्मलयजभवैर्लिप्तवपुषः।
स्तृतायाश्चाभीक्ष्णं विसकिसलयैः सैन्धवरसैः समीपेऽस्याः प्रायात् प्रणयविकला चन्दनकला।।६।।
(कृ० भा० १६/३)

कुतो वृन्दारण्यात् कथमिदमगा गोष्ठेमहिषी–निदेशात् कस्मात स त्वरितमशनीयोपह्वतये।
सुतस्यास्याः किं सम्प्रति स कुरुते कन्दुकततिव्यतिक्षेप ग्राहोत्तर विविधखेलां सवयसा।।७।।
(कृ० भा० १६/४)

अरे किं श्रीदामन् ! वदसि मम दोरर्मलत्तटीलोठीघट्टप्रघट–निपिष्टाखिलतनो।
विरम्यार्जेनाम्नोऽप्यपसर मदाडम्बरलव–स्फुटत्कर्णोऽभ्यर्णाद् यदि सपदि शं वांछसि भृशम्।।८।।
(कृ० भा० १६/५)

---

(५) श्रीराधिका अपनी सखियों के प्रति कहने लगीं– हे सुमुखि ! यह इतना बड़ा दिन क्या व्यर्थ ही जाएगा ? अथवा जिस समय बृजेन्द्रनन्दन, गौरज से विभूषित कुन्तलों से युक्त सुस्मितमुखारविन्द से इन नेत्रों के ताप को दूर करते हुए पधारेंगें। वह मंगलमय अपराह्न काल कब होगा ? श्रीराधा की इस प्रकार विरह दशा देखकर अति व्याकुल ह्वदय सखीगण उनकी परिचर्या करने लगीं।

(६) तब श्रीराधारानी की प्रिय सखीयाँ उनकी सेवा के लिए व्याकुल हो उठीं। उन्होंने चन्दन का लेप उनके श्रीअंगों पर किया लेकिन वे जितनी बार लेप करतीं वह धूलि की तरह सूख जाता तब वे कर्पूर सुवासित मृणाल एवं कमलपत्रों से श्रीराधारानी के अंगों को आच्छादित करने लगीं। इसी समय श्रीराधाप्रेम से विकल चन्दनकला नाम की एक सखी उनके समीप उपस्थित हो गयी।

(७) उसे देखकर सखीगण पूछने लगीं– 'हे चन्दनकले ! तुम कहाँ से आयी हो ? चन्दनकला ने कहा – 'वृन्दावन से'। सखीयाँ पूछने लगी– "किसलिये" ? चन्दनकला ने कहा– "बृजेश्वरि की आज्ञा से"। सखियों ने कहा– "कैसी आज्ञा" ? चन्दनकला ने कहा – "श्रीकृष्ण के निमित्त श्रीराधा द्वारा बनायी गयी" भोजन सामिग्री लेकर आवो"। सखीवृन्द कहने लगीं– "श्रीकृष्ण वृन्दावन में क्या कर रहे हैं ?" चन्दनकला ने कहा– सखाओं के साथ गेंद को फैंकना फिर ग्रहण करना इस प्रकार विविध खेल खेल रहे हैं।

(८) श्रीदामा के कुछ अहंकार वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे, "अरे श्रीदामा– तू क्या कह रहा है' मेरे आडम्बर लव मात्र (जोर से चिल्लाकर डराना) से तुम्हारे कान फटने लगते है और मेरी भुजा रुपी अर्गल मानो लोढ़ा के समान उससे तुम्हारे सकल अंग पिसने लगते हैं अब यदि अपना मंगल चाहते हो तो कुश्ती का नाम सुनकर भाग जाओ।

जयश्रीः श्रीदाम्नि प्रथितमहसां धाम्नि सहसा व्यराजीद्राजिष्यत्यवकलय राजत्यपि सदा।
तवैवांसः साक्षीभवति तदपि त्वं भजसि किं मुखाटोपी कोपी स्वमहिमर्विलोपी चपलताम्।।६।।
(कृ० भा० १६/६)

बकीं मण्त्रैर्विप्रा निधनमनयन् यः पुनरघस्तदन्तस्त्वं सर्वे वयमपि न किं हन्त! ययमि।
बकः कैर्वा गण्यो गिरिरपि तदेष्टः स्वयमहो वियत्यस्थादस्तौजसि भवति गर्वः कथमभूत्।।१०।।
(कृ० भा० १६/७)

पिण्डीशूरस्त्वमिह सुबलं कैतवेनाबलांग जित्वा दामोदर! युधि वृथा मा कृथाः कत्थितानि।
माद्यन्नेष त्वदलघुभुजासर्पदर्पापहारी मन्द्रध्वानो नटति निकटे स्तोककृष्णः कलापी।।११।।
(भ० र० ४/३/१२)

धृताटोपे गोपश्वरजलधिचन्द्रे परिकरं निबन्धत्युल्लासाद् भुजसमरचर्या समुचितम्।
सरोमाञ्चं क्ष्वेड़ानिविड़ मुखबिम्बस्य नटतः सुदाम्नः सोत्कण्ठं जयति मुहुराहोपुरुषिका।।१२।।
(भ० र० ४/३/१६)

---

(६) यह सुनकर श्रीदामा कहने लगा– ''प्रसिद्ध प्रभाव वाले श्रीदामा की ही सदा जीत होती आई है। अब वर्तमान में भी श्रीदामा ही विजयी है और भविष्य में भी श्रीदामा की ही जय होगी। इस विषय में तुम्हारे कंधे ही साक्षी है तब भी तुम अपनी महिमा का लोप करने वाली बड़ी–बड़ी शेखी बखान करके चपलता कर रहे हो।

(१०) हे कृष्ण ! तुम असुर संहार करने का गर्व व्यर्थ ही करते हो क्योंकि ब्राह्मणों ने ही अपने मंत्रों द्वारा बकी का वध किया। यदि कहो कि मैंने अघासुर के उदर में प्रवेश किया तो क्या हमने उसके भीतर प्रवेश नहीं किया ? और बकासुर की कौन गिनती करता है ? यदि कहो कि गिरिराज धारण किया तो सुनो 'गिरिराज तो वृजवासियों की पूजा ग्रहण कर स्वयं ही आकाश में उठ गये फिर तुम किस लिये इतना गर्व करते हो'।

(११) हे दामोदर ! तुम तो केवल भोजनमात्र पटु हो। तुमने छलपूर्वक निर्बल सुबल को युद्ध (कुश्ती) में परास्त कर दिया बस अब ज्यादा अपने यश का बखान मत करो। तुम्हारी विशाल सर्प का दर्प हरण करने वाली भुजाओं के सामने बेचारा गम्भीर स्तोककृष्णा रुप मयूर मत्त होकर नृत्य करता है।

(१२) गोपेश्वर श्रीकृष्ण रुपी जलधि को चन्द्र के समान उल्लसित करने वाले, उनके साथ बाहुयुद्ध में सगर्व कमर बांधकर रोमांच और उत्कण्ठा के साथ नृत्य करते हुए, पुनः पुनः सिंहनाद युक्त मुख की आकृति बनाते हुए ऐसे श्रीदामा के अनुपम अहंकार की जय हो।

शुण्डाकारं प्रेक्ष्य मे बाहुदण्डं मा त्वं भैषीः क्षुद्ररे भद्रसेन।
हेलारम्भेनाद्य निर्जित्य रामं श्रीदामाहं कृष्णमेवाह्वमेय।।१३।।

(भ० र० ४/३/२०)

स इत्थं तत्प्राणार्बुदनियुत–निर्मञ्छय्किरणो रणोत्साहं साहंकृतिभणित–पीयूषपृषतैः।
समं मित्रैर्द्वित्रैरुपसरिदमन्दं विपुलयन् क्षणं निन्ये मूर्त्तप्रणयरस एव प्रणयिभिः।।१४।।

(कृ० भा० १६/८)

समजनि समयो ब्रजाय गन्तुं, विरमत सम्प्रति काननेऽभिरन्तुम्।
रमयत सुरभीगणावहारं ध्वनयत वेणुविषाणमत्युदारम्।।१५।।

(कृष्णा० ५/८)

अथ कतिचन रौहिणेयमुख्याः सहज–परस्पर निर्व्यलीक सख्याः।
ध्वनितदविषाणवेणुनादा, ब्रजगमनाय वभूवुरप्रमादाः।।१६।।

(कृष्णा० ५/६)

अयि शबलि पिशंगि कालि नीले हरिणि विलोहिनि धूमले सुशीले !
इत इत इत याम धाम दूराद्–विरमत काननचार–कामचारात्।।१७।।

(कृष्णा० ५/१०)

---

(१३) हे क्षुद्र भद्रसेन ! मैं श्रीदामा हूँ। मेरी हाथी की सूड़ के समान भुजाओं को देखकर तुम भयभीत मत होना। आज मैं अनायास बलराम पर विजय प्राप्त करके कल श्रीकृष्ण का आह्वान करुंगा।

(१४) हे प्रियसखीगण ! जो (श्रीदामादि मित्र) अपने अरबों–खरबों प्राणों को न्यौछावर करते है जिनकी नखमणि किरणों पर, ऐसे सखाओं के अहंकार विस्तार करने वाले वचन रुपी अमृत बिन्दुओं द्वारा अपने रणोत्साह को बढ़ाते हुए, यमुना तट पर अपने दो तीन प्रणयी मित्रों के साथ मूर्तीमान प्रणय रस के समान श्रीकृष्ण ने कुछ क्षण अवस्थान किया।

(१५) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने सखाओं से कहा– 'भैय्या, अब बृज में जाने का समय हो गया है और अधिक वन में विहार मत करो। धेनुवृन्द को गोष्ठगमन के लिए आवाहन करो और अपने–अपने वेणु, सिंगा आदि बजाओं।

(१६) तब श्रीबलराम प्रमुख – परस्पर सहज निष्कपट सख्य भाव वाले गोप बालक सकल पत्र, सींगें, वेणु आदि बजाकर बृज को जाने के लिए सावधान हो गये।

(१७) हे शबलि ! पिशंगि ! काली ! नीले ! हे हरिणि ! विलोहिनि ! धूमले ! सुशीले ! इधर आओ ! इधर आओ ! हम सब घर को जा रहे हैं। अब और दूर वन की ओर मत जावो।

इति कलमृदुना रवेण वेणो, र्विधूत–वधूवलमान मानरेणोः।
उपययुरनुकल्पतचारुहम्बा, रवमथ धेनुगणा वनावलम्बाः।।१८।।

(कृष्णा० ५/११)

मदकल–करिकुम्भ–पीवराधो, वरभर–निर्भर–मन्थरस्य साधोः।
क्षुरखर–खुरतोदतोऽपि भिन्ना, सुरभिगणस्य बभूव भूः प्रसन्ना।।१९।।

(कृष्णा० ५/१२)

सुलभतर–तृणांकुरोपभोगा, दतिशयपूरित–चारुकुक्षिभागाः।
अशकल–कलसोधसोऽतिकाया–श्चलनमकुर्वत नैचिकी–निकायाः।।२०।।

(कृष्णा० ५/१३)

सह सहचर मण्डलैः किशोरौ, करिकलभाविन चारुनीलगौरौ।
वनपरिसरतः प्रयातवन्तौ, वभतुरम् सहजौ त्रिलोककान्तौ।।२१।।

(कृष्णा० ५/१४)

अलिततिरघवैरिणोऽनुकूले, कमलधिया निपपात पादमूले।
विरह विधूरितात्मनोऽत्युदारा–ञ्जनमलिनेव वनश्रियोऽश्रुधारा।।२२।।

(कृष्णा० ५/१५)

---

(१८) इस प्रकार जब बृजवधुओं के मान को रेणु के समान उड़ाने वाली वेणु की मधुर ध्वनि उठी तो वन में विचरण करने वाली धेनुगण सुन्दर हम्बा ध्वनि करते–करते निकट आ गयीं।

(१९) मत्त हस्तियों के कुम्भ (माथा) से भी भारी उधस (स्तन के ऊपर के भाग) के महाभार से अत्यंत धीमी और सुन्दर धेनुगणों के खुरों के प्रखर आघात से पृथ्वी क्षतविक्षत होकर भी अति प्रसन्न हो उठी।

(२०) अति सुलभ तृणों का भोजन करके गउओं के उदर अच्छी तरह पूर्ण हो गये थे और उनके स्तन कलश की तरह स्थूल हो गये थे। ऐसी सुन्दर विशाल देह वाली उत्तम गौ समूह बृज की ओर चलने लगीं।

(२१) ये किशोरयुगल (श्रीकृष्ण बलराम) भी सखाओं सहित वनप्रदेश से घर की ओर चल पड़े। दोनों ही हस्तीशावक (हाथी के बच्चे) की तरह सुन्दर नील–गौर वर्ण, और सहज ही त्रिभुवन सुन्दर कान्ति का विस्तार करने लगे।

(२२) भ्रमर समूह सर्वतापहारी श्रीकृष्ण के रसमय चरणों को कमल समझ कर उन पर आने लगे मानो तो विरह व्याकुलता वनलक्ष्मी की अंजन युक्त अश्रुधारा ही गिर रही हो।

कलमधुरतेरैः स्वरैः शकुन्ताः, प्रियविरहज्वरवेगजातचिन्ताः।
पलकरनिभैर्गरुद्मिरन्त व्र्यथमरुदन्निव वर्ष्म ताड़यन्तः।।२३।।

(कृष्णा० ५/१६)

अनिमिषमसकृद्विलोकयन्त्यः पुनरवलोकनमर्थमर्थयन्त्यः।
प्रियविरहरुजेव कातरांगय्–श्चलनयना व्यवतस्थिरे कुरंगयः।।२४।।

(कृष्णा० ५/१७)

प्रियतममनुगच्छतामुदारा, भुवि लुलुठु शिखिनां कलापभाराः।
नवविरहरुजेव जातमोक्षा वत विपिनश्रिय एव केशपक्षाः।।२५।।

(कृष्णा० ५/१८)

सरसि सरसि सारसादिपाथश्चरपतग–प्रकरैरसेविनाथः।
पथि पथि परितः प्रयाणभाग्भिः सकरुणवाष्पभरेण रुद्धवाग्भिः।।२६।।

(कृष्णा० ५/१६)

हरिहलधर–पालिताग्रमूला, सुरभिततिश्चलिता ब्रजानुकूला।
मरकत–रजत–द्विवर्णधारां, व्यजयत रुप्यमयीं तरीमुदाराम्।।२७।। (कृष्णा० ५/२०)

(२३) पक्षि–गण प्रियतम के विरह ज्वर से चिन्तातुर होकर अपने चंचल हाथों के समान पंखों से अपनी देह को ताड़न (पीटना) करते हुए, कल–कल ध्वनि से सबके अन्तर में व्यथा उत्पादन करते हुए क्रंदन करने लगे।

(२४) हरिणीगण प्रियतम श्रीकृष्ण के विरह से कातरांगी होकर अपने अपलक चंचल नेत्रों से उनको निहारती हुईं पुनर्वार उनकी कृपावलोकन रुपी धन की याचना करती हुई खडी रह गयीं।

(२५) प्रियतम श्रीकृष्ण का अनुगमन करने वाले मयूर गणों के पिच्छ (पूंछ) भूमितले इधर–उधर लोटने लगे मानों श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुलता वनलक्ष्मी के केश खुलकर धरती पर पड़ रहे हैं।

(२६) सारस आदि जलचर पक्षी पथ स्थित सरोवरों में खड़े होकर मानो प्राणनाथ श्रीकृष्ण की सेवा कर रहे हैं और वे आंसुओं से भरे रुंधे हुए कण्ठस्वर से श्रीकृष्ण के चारों ओर उड़–२ कर चलने लगे।

(२७) श्रीहरि एवं हलधर जिनके अग्र एवं पश्चात् भाग को लालन–पालन कर रहे हैं ऐसी गौवे बृज की ओर चलने लगीं। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मरकत (नील) एवं रजत (चांदी–जैसे सफेद) वर्ण के दो कर्णधारों वाली कोई अतिसुन्दर रुप्यमयी (शुभ्रवर्ण) नौका की शोभा को परास्त करके घर को जा रहे हो।

तदपि तदितरांग–संगमार्थं स्वयमिव रेणुमयं वपुः कृतार्थम्।
क्षितिरधृत पुरुस्पृहा विपश्चित् क्व नु सुखसम्पादि तृप्तिमेति कश्चित्।।२८।।

(कृष्णा० ५/२३)

उपचितमति–मन्दवातधूतै–रलककुलं कमलेक्षणस्य पूतैः।
अलिततिमिव कौसुमैः परागैर्व्यजयत गोखुररेणुभिः सुरागैः।।२९।।

(कृष्णा० ५/२४)

सितसिचय–सुचारुमौलिबन्धः, सुरभिरजः कणजाल–सुप्रबन्धः।
बहिरुपसरदन्तरस्थकेश, द्युतिरुद्भाद्दलचुम्बितैक देशः।।३०।।

(कृष्णा० ५/२५)

उरसि च शुशुभेऽस्य वैजयन्ती, सुरभि–रजःकणसञ्चयैर्जयन्ती।
कुसुम सुषमयैव संहसन्ती, निजमिव चारुपरागमुत्किरन्ती।।३१।।

(कृष्णा० ५/२६)

अपि सुरभिरजः कणाभिभूतः पुरु शुशुभेऽस्य स कौस्तुभेऽतिपूतः।
तरुण–किरण–कन्दलीं स्वकीयां पुनरपि निर्मलयन्निवाद्वितीयाम्।।३२।।

(कृष्णा० ५/२७)

---

(२८) तथापि (श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श पाकर भी) और अधिक सौभाग्य चाहने वाली यह धरणी, श्रीकृष्ण एवं गोगणों के अन्यान्य अंगों का स्पर्श पाने की लालसा से ही मानों अपनी देह को रेणुमय बनाकर कृतार्थ कर रही है। (अर्थात् रेणु रुप में उड़ कर अन्य अंगों पर गिरकर उनका स्पर्श पा रही है।)

(२९) कुसुम के पराग से जैसे भ्रमर शोभा पाते हैं वैसे ही श्रीकृष्ण की अलकें मृदुमन्द वायु से उठी पवित्र गोखुरों की रेणु द्वारा रंजित होकर उससे भी अधिक शोभा को धारण कर रही थीं।

(३०) श्रीकृष्ण के शिरोभाग पर श्वेत वस्त्र खण्ड की सुन्दर पगड़ी बंधी हुई है उस पर गउओं के खुरों की रज अच्छी तरह पड़ रही है। भीतर के केशसमूह बाहर की ओर फैल कर शोभा पा रहे हैं। इस पगड़ी के बीच–बीच में तमालपत्र एवं पुष्पों के गुच्छ सुन्दर शोभा पा रहे हैं।

(३१) उनके वक्षस्थल पर गौरज से धूसरित वैजयन्ती माला शोभा पा रही है और वह मानो कुसुमों की शोभा का परिहास करती हुई अपने मनोहर पराग को चारों ओर विखेर रही थी।

(३२) गौखुर रज कणों से अच्छी तरह परिव्याप्त यह अति पवित्र प्रसिद्ध कौस्तुभ भी अत्यंत शोभा पा रही है मानो तो यह अपनी अद्वितीय किरणमाला को पुनः निर्मल करने की चेष्टा कर रही है।

इति प्रेष्ठोदन्तामृतसरिति तत् प्राणशफरी ररक्षेयं क्षिप्त्वा प्रथममुपकण्ठे विलुठतीः।
सुतस्नेहक्लिन्ना–ब्रजपति–गृहिण्या अभिमते प्रवृत्तां चक्रे तामथ धृतमुदं मोदकविधौ।।३३।।
(कृ० भा० १६/६)

कदलकुसुम–मासक्षोद–सत्सीरिशस्येर्मरिच–सुघनदुग्धैः सच्चर्तुजातचन्द्रैः।
कृत इह घृतपक्वो यः पतेत्खण्डपाके वटकममृतकेलिं सा व्यधात्तं प्रियेष्टम्।।३४।।
(गोवि० १६/५०)

सामिक्षैः शालिचूर्णैर्दधिमरिचसिता–नारिकेलार्द्रशस्येर्जात्येला–सल्लवंगामृतकदलफलैः फेनितैः पिष्टमुद्गैः।
सृष्टः पक्वो घृते यः प्रपतति समधौ दुग्धपूरे प्रगाढे सेन्दौ कर्पूरकेलिं तमिह सुवटकं सा व्यधात् स्वप्रियेष्टम्।।३५।।
(गोवि० १६/५१)

ग्रन्थिवद्वटिकालिस्तैर्द्रव्यैः सृष्टा तु या पतेत्।
पञ्चामृते व्यधात्तां सा पीयूषग्रन्थिपालिकाम्।।३६।।
(गोवि० १६/५२)

सक्षीरसारशशितण्डुल–नारिकेल–जातीलवंगमरिचैः ससितैः सुपिष्टैः।
रम्भैलया च घृतभावनया भवेद् या सा तामनंगगुटिकां विदधे प्रियेष्टाम्।।३७।।
(गोवि० १६/५३)

---

(३३) चन्दनकला ने श्रीराधा की प्राण रुपी मछली जो कि कण्ठागतप्राणा (विरह से अत्यंत व्याकुला) हो रही थी उसे प्रियतम श्रीकृष्ण की वार्त्ता रुपी अमृतनदी में डुबा दिया और फिर पुत्रस्नेह व्याकुला ब्रजेश्वरी का श्रीकृष्ण के लिए मोदक आदि निर्माण करने का आदेश सुना कर उन्हें प्रसन्न हृदय से उस कार्य में प्रवृत्त कराया।

(३४) पके हुए केले, आटा, उर्द की दाल का आटा, उत्तम नारियल, काली मिर्च, घना दूध, एलायची, लौंग, जायफल, कर्पूर मिलाकर घी में पका कर फिर उसे चीनी में पाक कर अमृतकेलि नामक मिठाई श्रीराधा ने श्रीकृष्ण के लिये बनाकर तैय्यार की।

(३५) छैना, चावल का आटा, दही, काली मिर्च, शक्कर, नारियल का चूर्ण, जायफल, इलायची, लौंग, पका केला, पिसी हुई मूंग की दाल (फैना कर) घी में पका कर, मधु एवं कर्पूर युक्त, गाढ़े–२ दूध में डालकर 'कर्पूरकेलि' नामक 'बड़ा' श्रीराधारानी ने अपने प्रियतम के लिए तैय्यार किया।

(३६) इसके पश्चात् श्रीराधा ने छैना आदि द्रव्यों से ग्रंथिबद्ध करके बड़ा बनाकर पंचामृत (दधि, दुग्ध, धृत, मधु, चीनी) में डुबोकर पीयूष ग्रंथि नामक मिष्ठान्न तैय्यार किया।

(३७) दूध की मलाई में चीनी मिलाकर उसमें चावल, नारियल, जायफल, लवंग, कालीमिर्च, आदि पीस कर मिलाकर, केला और इलायची मिलाकर घी में पकाकर 'अनंग गुटिका' नाम श्रीकृष्ण का प्रिय 'अनंग बड़ा' तैय्यार किया।

कदलमरिचदुग्धैः खण्डगोधूम–पक्व–प्रकटित–वटकोऽयं भूरिजातीफलाढ्यः।
नवविधु–मधुमध्ये यो विलासं विधत्ते रचित इह तयासौ सीधुपूर्वो विलासः।।३८।।

(गोवि० १६/५४)

उपायनामिति पञ्चकं सत् श्रीराधिकया स्वीयधियाकृतं यत्।
कृष्णस्तदेतत् प्रणयी सतृष्णाः, सुधां विनिन्दन् परमत्ति नन्दन्।।३६।।

(गोवि० १६/५५)

तेषु व्रजे प्रसिद्धानि त्रीण्यन्तिमयुगञ्च यत्।
रहोभक्ष्यं निशायां तन्मधुपाने विदंशवत्।।४०।।

(गोवि० १६/५६)

लवंगैलेन्दुमरिचैः संयुतैः शर्कराचयैः।
चक्रे गंगाजलाख्यानि लड्डूकान्नपराणि च।।४१।।

(गोवि० १६/५७)

तैस्तैर्युतैः क्षीरसारैस्तथा लांगलि–सस्यकैः।
अन्यान्यप्याज्यभृष्टैः सा सरैश्च सरपूपिकाः।।४२।।

(गोवि० १६/५८)

---

(३८) इसके अतिरिक्त केला, दूध एवं चीनी मिलाकर उसमें कालीमिर्च डालकर तथा आटे में पकाकर जिसमें सुन्दररुप से जायफल और कर्पूर डाला हो ऐसे 'सीधुविलास' नामक बड़ा बनाकर तैय्यार किया।

(३६) श्रीमती राधारानी द्वारा अपनी बुद्धिपूर्वक बनाये गये 'अमृतकेलि' आदि पांचों द्रव्य, श्रीकृष्ण अत्यंत तृष्णा एवं प्रतिपूर्वक, अमृत से भी अधिक सुस्वाद एवं उत्तम जानकर भोजन करते हैं।

(४०) उक्त पांचों द्रव्यों में से अमृतकेलि आदि प्रथम तीन बृज में सुप्रसिद्ध हैं और बाकी दो 'अनंग गुटिका' एवं 'सीधूविलास' रात्रिकाल में एकान्त में मधुपान के पश्चात् अत्यंत सुस्वादु भोजन करने योग्य पदार्थ हैं।

(४१) इसके पश्चात् श्रीराधारानी ने लौंग इलायची, कर्पूर, कालीमिर्च आदि मिलाकर चीनी डालकर अनेक प्रकार के लड्डुओं का निर्माण किया।

(४२) और लौंग, इलाचयी, कर्पूर, चीनी मिलाकर दूध की मलाई, नारियल की गिरी सब मिलाकर घी में पकाकर अनेक प्रकार के लड्डू बनाये और मलाई के पूए तैय्यार किये।

साऽथ स्नातुनुलिप्तारुण रुचिसिचया बद्धेवेणिः सुचित्रा श्रीसिन्दूरेन्दुभाला मृगमदचिबुका मालिनी साब्जहस्ता।
नासाग्रान्दोलिमुक्ताञ्जनयुतनयनोत्तंसिनी बद्धनीवी राधा ताम्बूलवक्त्रासुकुसुमचिकुरा भाति यावोज्जवलाघ्रिः।।४३।।

(गोवि० १६/५६)

चूड़ारत्नललाटिके सुवलयांश्चक्रीशलाकायुगं काञ्चीकुण्डलकंकणांघ्रिकटकान् पादांगुरीयान्यपि।
ग्रवेयं पदकांगदानि विविधान् हारांस्तथा मुद्रिकां मञ्जीराविति रत्नभूषणचयं राधा वभौ विभ्रती।।४४।।

(गोवि० १६/६०)

अयं यामो यामो भवति दिवसान्तः कथमिमं नयामो योऽशाम्यन्नहि युगसहस्रैरपि गतैः।
विधात्रा किं सृष्टो मम हृदय कुल्माषदलन–प्रवृत्तेनैवासो कठिनतरलोठः शठधिया।।४५।।

(भा० १६/१२)

वामबाहुकृतवामकपोलो, वंल्गितभ्रूरधरार्पित वेणुम्।
कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं, गोप्य दूरयति यत्र मुकुन्दः।।४६।।

(भा० १०/३५/२)

उत्कंठिता श्रीमती राधारानी का श्रृंगार एवं सखीसह वार्तालाप :–

(४३) इसके पश्चात् श्रीराधारानी स्नान करके कस्तूरी आदि लेपन करके अरुण वस्त्र पहनकर, वेणी बनाई, अंगों पर पत्रावलि रचना की, ललाट पर सिन्दूरबिन्दु पूर्णचन्द्र वत तिलक बनाया, चिबुक पर मृगमद बिन्दु, माला धारण की, हस्तकमल में पद्म धारण किया, नासिका में बेसर, नेत्रों में अंजन, शिरोभूषण, कटि में लहंगा, मुख में ताम्बूल की लालिमा, केशों में फूलमाला, चरणों में उज्ज्वल आलता (यावक) धारण कर अत्यंत शोभा को प्राप्त हुई।

(४४) ललाट पर चूड़ारत्न, हाथों में चूड़ी, चक्रीशलाका युगल, करधनी, कुण्डल, कूड़ले, चरणों में तोड़िया बिछिया, गले में कण्ठा, पदक, बांहों में बाजूवन्द, विविध हार एवं अंगूठी, नूपुर तथा अन्यान्य रत्नाभूषण धारण कर श्रीराधा शोभा पाने लगीं।

(४५) इस प्रकार अपनी वेशभूषा का दर्शन कर श्रीराधा श्रीकृष्ण दर्शनार्थ व्याकुल हो उठीं और अपनी सखी को कहने लगीं– अरी सखी यह याम दिन का चतुर्थ भाग क्या यम ने अपने अधिकार में ले लिया हैं जोकि यह समय सहस्र–२ युग की भांति कट नहीं रहा। हे प्राण सखि ! मेरे हृदय रुपी घुने हुए चावल को चूर्ण करने के लिए विधाता ने मानो इस शेषयाम (समय) को कठिन लोड़ा के समान बना दिया है।

(४६) हे सखिगण ! इस अपराह्न काल में प्यारे श्रीकृष्ण अपनी भुजा पर वाम कपोल रखकर भ्रूयुगल नचाते–नचाते, कोमल उंगलियों द्वारा अधरस्थित वंशी के छिद्रों को दबाते हुए वन से घर को आ रहे होगें।

हरेर्वक्त्रं वेणुध्वनि–मिषतया वर्षति सुधां पिबत्येतां गव्या यदनु रसनाकर्णयुगलम्।
अहासीत् प्रस्तब्धा निजविषयमन्या तु रसना किमेतत् किं नैतद्भवति किमिवैतत् किमिति वा।।४७।।
(गोपा० पू० १७/४६)

गवामस्माकञ्च श्रवणमनु वेणोः समदशा यदप्येषा जाता तदपि किल भेदो विलसति।
अमूस्तद्वक्त्रेन्दूं सपदि कलयन्ति प्रतिपदं वयं नैतद्विद्मः क्व भवति युगे तस्य कलनम्।।४८।।
(गोपा० पू० १७/४७)

आश्चर्यं सखि ! कृष्णसार–दयितावृन्दं मिलद्भर्तृकं जात्या मूढ़मपि व्यतीत्य भवतीरप्येवमीहां दधे।
श्रुत्वा वेणुफलं हरिं प्रति गतिस्तद्रूपतश्चित्रता तस्यार्च्यचनमुल्लसत् प्रणयतस्तत्रापि नेत्राञ्चलैः।।४६।।
(गोपा० पू० १७/५१)

वयं जात्या नार्यः पुरुगुणवतामादृततमा–स्तथा भर्त्तारस्तत् प्रणयनयसिद्धब्रजभुवः।
हरिण्यो नेदृश्यस्तदपि पतिभिस्तं ययुरहो ! धिगस्मान् दुष्पपुण्या दधिम नहि तासामपि तुलाम्।।५०।।
(गोपा० पू० १७/५२)

---

(४७) हे सखिगण ! श्रीकृष्ण का मुखारविन्द वंशीध्वनि के छल से अमृत की वर्षा कर रहा है। जिसे धेनुवृन्द अपने कर्णयुगलों से पान कर रहीं हैं उनके कान ही उनकी रसना बन कर आस्वादन कर रहे हैं और रसना ने पूरी तरह से स्तब्ध होकर सब तृणादिक भोजन करना परित्याग कर दिया है। अहा यह कैसा अमृत है ? और क्या यह आस्वादन योग्य है ? यह अमृत पान क्यों हो रहा है ? इससे क्या होगा ? मानों रसना स्तब्ध होकर यह विचार रही है।

(४८) सखि ! यद्यपि वंशीध्वनि श्रवण करके धेनुगण की एवं हमारी समान ही दशा ही हो रही है लेकिन फिर भी इसमें बहुत भेद है। ये धेनुगण सतत श्रीकृष्ण के मुखकमल का दर्शन करने में समर्थ हैं लेकिन हम नहीं जानतीं कि किस युग में हमको श्रीकृष्ण के दर्शन होंगें।

(४६) हे सखि ! देखो कितने आश्चर्य की बात है यह हरिणिगण अपने पति कृष्ण सार हरिण के साथ मिलकर, मूर्ख जाति होते हुए भी, तुम सब के भाग्य का अतिक्रमण करके, श्रीकृष्ण के निकट, उनकी वंशीध्वनि को सुनकर, चली जाती हैं और इतनी तन्मय हो जातीं हैं कि अपने प्रेम भरे नेत्रों के कटाक्ष से मानों उनकी अर्चना ही कर रही हों।

(५०) हे सखिगण ! हम जाति से नारी हैं और अनेक गुणी जन हमारा सम्मान भी करते हैं। हमारे पति भी श्रीकृष्ण प्रेम की रससिद्धा इस बृजभूमि में वास करते हैं। यह हरिणिगण तो इस प्रकार नहीं है अर्थात् तुच्छपशु जाति हैं लेकिन फिर भी ये अपने–अपने पतियों के साथ मिलकर श्रीकृष्ण के निकट गमन करतीं हैं अतः हम जैसी पापीयसी नारियों को धिक्कार है ! जो कि हम इनके समान योग्य की भी तुलना नहीं कर सकती।

द्वीपिन्यः श्रवणेन वेणुरणितेः स्तम्भं गताः सभ्रमाः फुल्लत्पूरतया स्फुरद्घनरसा हंसादिगीः शिञ्जताः।
उन्मर्याद–दशामिता मुररिपुं दूरेऽभिसृत्यागता भंगालोलभुजैः सरोजवलयस्तस्यांघ्रियुग्मं दधुः।।५१।।
(गोपा० पू० १७/५७)

नद्यः सिन्धुपतिव्रता हरि हरि प्रत्यक्त–मर्यादिकास्तं विद्रुत्य मिलन्ति चेदहह ! का दीनास्तदानीं वयम् ?
किन्तु स्वैरममूरुदूढ़सुकृता नास्मासु तत्तुल्यता स्वल्पापीति निवृत्तिरेव सुखतो युक्ताथवा दुःखतः।।५२।।
(गोपा० पू० १७/५८)

मुरारेरम्भोदः सुहृदिति न वा केवलरुचा स्वसादृश्यात् किन्तु व्यतिकृतहितत्वादपि सदा।
असौ मल्लारेण प्रवलयति तं वेणुजनुषा स चायं छायाभिः प्रशमयति तापं तदुपरि।।५३।।
(गोपा० पू० १७/५९)

हंहो ! पश्य जडोऽपि वारिदचयः सर्वोपरि स्थायऽपिच्छायाभिः स्वरसैश्च तं परिचरत्यन्तश्चप्रेमतः।
कष्टं सुष्ठु वयं तदेकशरण–प्राणस्थितिम्मन्यता गण्यास्तस्य विना तु सेवनममुर्जीवाम धिग् जीवितम्।।५४।।
(गोपा० पू० १७/६०)

---

(५१) हे सखि ! यह नदियाँ वेणु ध्वनि श्रवण करके स्तम्भित हो जातीं हैं। इनमें भँवर पड़ने लगते हैं जिससे प्रवाह प्रफुल्लित हो जाता है हंसादि जलचर पक्षियों की ध्वनि में ये शब्द करने लगतीं हैं इस प्रकार प्रेम की उन्मादि दशा को प्राप्त होकर श्रीकृष्ण के चरण कमलों को प्राप्त करके अपनी तरंग रुपी भुजाओं द्वारा कमल रुपी उपहार लेकर उनके चरणों में अर्पित करतीं हैं।

(५२) हाय हाय समुद्र की पतिव्रता नारियाँ ये नदियाँ, यदि अपनी मर्यादा को लाँघकर शीघ्र जाकर श्रीकृष्ण से मिलन प्राप्त कर लेती हैं तो फिर हम जैसी दुःखिनी नारी और कौन हो सकती है? मालूम होता है कि इन नदियों ने कोई बड़ा पुण्य किया है जो कि इनसे भी हमारी कुछ भी तुलना नहीं हो सकती, अतएव चाहे परिणाम सुख हो या दुःख हो इससे निवृत्त होना ही उचित है।

(५३) देखो सखि ! केवल अंग की कान्ति के सादृश्य के कारण ही ये मेघ श्रीकृष्ण के मित्र नहीं है बल्कि परस्पर एक दूसरे के हितकारी भी हैं। देखो श्रीकृष्ण वंशी में मल्हार राग गाते हैं तो ये मेघ प्रबल होकर बरसते हैं और ये मेघ भी उनके ऊपर छाया प्रदान करके उनके ताप का नाश करते हैं।

(५४) हे सखि ! देखो यह मेघ सकल जड़ होते हुए भी एवं सबके ऊपर रहते हुए भी केवल हृदय में प्रेम भरा होने के कारण छाया और अपना रस (जल) बरसाकर श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं। अहो ! कितने दुःख की बात है कि हम एक मात्र (श्रीकृष्ण की) शरण ग्रहण किये हुए उनके लिए ही जीवन धारण किये हैं किन्तु उनकी सेवा के बिना जी रहीं हैं। हमारे जीवन को धिक्कार है।

वेणोः पुण्यमतीव हन्त ! यदसावस्त्री च तस्याधरं गोपीणां स्वमपि ह्रियं परिहरन् शश्वत् पिबन्नर्दति।
तृप्त्या छर्दिनिभादमुष्य रणितान्नद्योऽपि फुल्लन्त्मूर्यदवंश्या नगजातयोऽपि मधुभिर्वाष्पं मदाधिभ्रति।।५५।।
(गोपा० पू० १७/६४)

याचेऽहं वंशदेहं न तु कुलजवधूदेहमाद्ये हि कृष्णास्तृष्णग्भावेन सज्जन् बहुरुचि विहरेद्‌दुर्लभः स्यात् परत्र।
वंशीभावे चिदंश–प्रशमनवशता–विस्मृतात्मा यदि स्यां तेन ज्ञायेय सेयं मम विरहद्युतादारुतामागतेति।।५६।।
(गोपा० पू० १७/६५)

गण्डं चुम्बसि कुण्डलस्थ–मकरी ! त्वं तस्य वंशि ! त्वमप्यास्यं लेक्षि तथांगमंगमसकृन्माले ! त्वमालिंगसि।
तदयुक्तं यदतीत–सर्वाविधिका यूयं वयन्तु स्फुटं हा तत्तद्विधिभाग् विचारहतकेनाभीप्सिताद् वञ्चिताः।।५७।।
(गोपा० पू० १७/६६)

इति क्लिद्यनेत्रां विधुरवदनां मङ्क्षुललिता समारोह्य क्षोभं न्यगदद‌गदंकार–चरिता।
त्वमुत्तीर्ण राधे ! कटुतरमभूः खेदजलधिं दिशं पश्य प्राचीं विशति सखि ! गोधूलिरधुना।।५८।।
(गोपा० पू० १६/१३)

---

(५५) अहो सखि ! इस वेणु ने बहुत पुण्य किये हैं। यह पुरुष होकर भी लज्जा परित्याग करके गोपियों के धन श्रीकृष्ण का अधरामृत बारम्बार पान कर रहा है। जब बहुत पीने से इसकी तृप्ति हो जाती है तब मानो वमन तुल्य इसका उच्छिष्ठ नदियां भी पान कर प्रफुल्लित हो जाती हैं और फिर उनके जल से सिंचित वृक्ष भी पुलकित होकर मधु के रुप में हर्ष से मानों अश्रु बहा रहे हैं।

(५६) इसलिये सखि मैं तो बांस रुप में जन्म लेने की याचना करती हूँ किसी उच्चकुल की नारी देह नहीं चाहती क्योंकि बांस से बनी वंशी को श्रीकृष्ण बड़े प्रेम के साथ बजाते रहते हैं। कुलवधू रुप में यह भाग्य प्राप्त करना दुर्लभ है। यदि कहो कि बांस की वंशी बनकर मैं जड़ हो जाऊंगी और मुझ में चैतन्यांश नहीं रहेगा मैं मानवी हूँ यह भी ज्ञान नहीं रहेगा तो भी क्या वे सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण तो यह जान लेंगें कि यह मेरे विरह में तप कर काष्ठ वन गयी है।

(५७) पुनः श्रीराधा कहने लगीं – हे कृष्ण के कुण्डलों में स्थित मकरी ! (मकर कुण्डल) तुम श्रीकृष्ण के कपोलों का चुम्बन कर रही हो, हे वंशी ! तुम भी उनके अधरों का लेहन (चाटना) कर रही हो, हे वनमाले! तुम भी उनके हृदय का आलिंगन कर रही हो, यह उचित ही है। क्योंकि तुम सब दोषों से परे हो। किन्तु हाय हमको ही विधि ने हतभागिनि बना दिया जो कि अपनी अभिलाषा को प्राप्त करने से वंचित हैं।

(५८) इस प्रकार कह कर श्रीराधा क्रंदन करने लगीं उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली, वदन म्लान हो गय, उनकी यह दशा देखकर श्रीकृष्ण की विरह–व्याधि की औषधी के समान श्रीललिता शीघ्र ही उनको अट्टालिका के ऊपर ले गयीं और कहने लगीं– हे सखी ! तुम्हारा यह कटु समुद्र के समान दुःख जल्दी ही शान्त होगा उधर देखो पूर्व दिशा की ओर गोधूलि दिखायी देने लगी है।

न गोधूलिर्भद्रे ! अनुभव भवतीदं विधुरजो दृशं तृप्तां दूराद्विशति किमवादीः सखि ! दिशम्।
यदेतत् कण्ठान्मे शमित–दवथु प्राणपतगान् हृदानिन्ये मन्ये तदयि ! मृतसञ्जीवनमिदम्।।५६।।
(कृ०भा० १६/१४)

मदर्थं त्वत्प्रेयोवदन–नलिनस्वेदकणिका हरन् शैत्यामोदी विपुलकरुणः प्राच्यपवनः।
अहो ! भाग्यं स्पृष्ट्वा सपदि ललिते ! जीवयति मां जगत्प्राणो नाम्ना भवति गुणतोऽप्येष नितराम्।।६०।।
(कृ०भा० १६/१५)

स्मरन्मां दीनां स व्रजतिलकसूनुः किमधुना पुरोगाः कृत्वा गा द्रुततरमुपैति प्रणयवान्।
कथं वास्य द्रौत्यां भवतु समदोक्षालसगतेः कथं वा स्फारत्वं त्यजतु स दवीयान् वनपथः।।६१।।
(गोपा० पू० १६/१६)

मुखाब्जं विभ्राणो विमलतिलकं वेल्लदलकं रणद्भृंगस्तोमस्ततुलसीकास्रक् परिमलः।
श्रितप्रेंखत्पिल्छारुण–दरनतोष्णीष–सुषम धुवन् वाधां राधे ! त्वरितमधुनैवैष्यति स ते।।६२।।
(गोपा० पू० १६/१७)

---

(५६) गोधूलि को देखकर परमानन्दिता श्रीराधा कहने लगी – हे भद्रेललिते ! तुम्हारा भ्रम है यह गोधूलि नहीं है यह तो तापितनेत्रों को शीतल करने वाली कर्पूरधूलि है, क्योंकि यह धूलि दूर से ही नेत्रों में प्रवेश कर उन्हें शीतल कर रही है। हे सखि ! क्या यह कोई प्राण संजीवनी औषध है ? जो मेरे प्राणरुपी पक्षी जो कि कण्ठागत हो रहे थे उन्हें पुनः हृदय में स्थापित कर मेरी प्राण रक्षा कर रही है।

(६०) इसी समय पूर्व दिशा से स्वाभाविक शीतलवायु बहने लगी, उसका शीतल स्पर्श पाकर श्रीराधिका यह अनुभव करने लगीं कि इस वायु ने श्रीकृष्ण के मुखारविन्द के स्वेद का स्पर्श प्राप्त किया है अतः वह कहने लगीं– हे ललिते ! इस वायु ने तुम्हारे प्रियतम के वदन की स्वेदकणिकाओं का स्पर्श किया है अतः यह शीतल एवं आमोद प्रदान कारिणी अत्यंत करुणाशील है। इसने मुझे जीवन प्रदान किया है तभी तो इसका एक नाम 'जगतप्राण' है। सचमुच यह गुणों में भी जगत की प्राण तुल्या है।

(६१) हे सखि ! प्रेमसिन्धु बृजराजकुमार श्रीकृष्ण, अपने विरह में दीना मेरा स्मरण करके, गौसमूह को अग्रवर्ती करके शीघ्रता से आवेंगें। किन्तु हाय ! वे शीघ्र कैसे आ सकते हैं क्योंकि मदमत्तवृषभराज की तरह उनकी स्वाभाविक मन्थर गति है और इतनी दूर वन का रास्ता भी कैसे समीप आ सकता है अतः हे सखि प्राणों के बचने की तो कुछ अशा हुई परंतु विलम्ब न सह सकने के कारण लगता है कि ये प्राण इस अभागिनि की देह में नहीं रह सकेंगें।

(६२) इस प्रकार श्रीराधा को अत्यंत विरह व्याकुला देखकर श्रीललिता कहने लगीं– सखि राधे ! तुम इतनी दुःखी क्यों हो रही हो ! देखो– तुम्हारे यह प्रियतम सुन्दर तिलक सुशोभित चंचल अलका मण्डित मुखकमल वाले, गले में तुलसी की सुगन्धित माला जिस पर भ्रमरगण गुंजार कर रहे हैं, अरुण वर्ण की कुछ माथे पर झुकी हुई पगड़ी, जिस पर मयूरपिच्छ धारण किये हुए, तुम्हारे समस्त दुःख को दूर करने के लिए शीघ्र ही आ रहे हैं।

मुरलीनिनदादुत्थित–मदना, गद्गदगदना ब्रजविधु–वदनाः।
सुशिखर–रदनाः श्लथितच्छदना, ययुरपकदनाः सदनात् सदनात्।।६३।।

(गोवि० १६/८६)

किंचिच्च काश्चित्त्वनपेक्षमाणाः सम्भ्रान्ति–विघ्नाकलिताः स्खलत्यः।
धावन्ति तस्यां दिशि यत्र धेनु, हाम्वारवा वेणुनिनाद मिश्राः।।६४।।

(भाग० २/६/५०)

काश्चिद्विपर्यऽग् धृतभूषणा ययुः काश्चिच्चय नीवी–कच–बन्धनाकुलाः।
अन्या गृहान्तस्तरुभावमाश्रिताः काश्चिच्च भूमौ न्यपतन् विमोहिताः।।६५।।

(भाग० २/६/५१)

मोहं गताः काश्चन नीयमाना, धृत्वाश्रुलालार्दमुखाः सखीभिः।
यान्तीतराः प्रेमभराकुलास्तं पश्यैतमित्यालिभिरुच्यामानाः।।६६।।

(भाग० २/६/५२)

गवां हाम्वारावैः सुललिततरं मोहमुरली–कलं लीलागीत–स्वरमधुर–रागेण कलितम्।
जगद्वैलक्षण्याचित–विविधभंगी विलसितं व्रजस्थानां तेषां सपदि परमाकर्ष–वलितम्।।६७।।

(भाग० २/६/४६)

---

(६३) तदनन्तर दाड़िम्बबीज दशना, चन्द्रवदना बृजललनागण, वंशीध्वनि श्रवणकर, श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा से प्रेमव्याकुलता, गद्गद भाषण करती हुई, अस्तव्यस्त वस्त्रादि धारण कर विरह दुःख को शांत करती हुई अपने–२ घरसे निकल पड़ीं।

(६४) कुछ अन्य ब्रजांगना अत्यंत सम्भ्रम पूर्वक विघ्नों की कुछ भी परवाह न करती हुई, वेणुनाद एवं धेनु हम्बारव मिश्रित ध्वनि को श्रवण कर उसी दिशा की ओर धावमान हो उठीं।

(६५) कोई–कोई गोपी उलटे–पलटे वस्त्राभूषण धारण कर चल पड़ी, किस के नीवीबन्ध व केश ही खुल गये और वह व्याकुल हो उठी। कोई तो घर में ही स्तब्ध (तरुभव) को प्राप्त हो गयी और कोई–२ मूर्च्छित होकर भूमि पर ही गिर पड़ीं।

(६६) किसी–किसी बृजसुन्दरी को मूर्च्छित एवं अश्रुमुख से फेन निकलती हुई अवस्था में कुछ अन्य सखियां सम्हालती हुई ले जाने लगीं एवं किसी प्रेम के भार से व्याकुला (श्रीराधिका) को अन्यान्य सखियाँ दर्शन करती हुई कहने लगी।

(६७) हे सखि – देखो श्रीनन्दनन्दन आ रहे हैं क्योंकि गउओं की ललित हम्बा–२ ध्वनि हो रही है और मोहन मुरली ध्वनि में सुन्दर स्वरालाप युक्त जगत विलक्षण विविध भंगी विलास से बृजवासियों को आकर्षित करते हुए श्रीकृष्ण वन से आ रहे हैं।

इतो वंशीध्वानात् कलय सखि ! राधे कलकलं ब्रजे रामाराजेरुदितवितनोर्निर्जिगमिषोः।
तदग्रे स्वारामे कुसुमभिषतो यामो जरतीं प्रतार्येत्युत्कण्ठा चुलुकित धृतिः सा द्रुतमगात्।।६८।।
(कृ० भा० १६/१६)

त्वया दत्तेनालं श्रवणमनु पुष्पेण यदिह स्वयं दूराद्वंशीध्वनिरस–वतंसोऽलगदयम्।
पतामि त्वत्पादे सखि ! बकुलमाले ! जहिहि मां मितो गत्वा कृष्णाम्बुदघनरसैः स्यां शिशिरता।।६९।।
(कृ० भा० १६/२०)

प्रियस्निग्धश्यामाञ्जनरस इतेऽग्रे विपिनतः समेत्येतं धास्ये निजनयनयोः संज्वरहरम्।
किमानैषीर्भस्मत्वमिदमऽहानज्मि न दृशा वनेनेति श्यामा त्वरितमुपराधं वनमगात्।।७०।।
(कृ० भा० १६/२१)

विलम्बं नो भद्रे ! कुरु जहिहि चन्द्रावलि ! रुजं न धन्ये ! मान्थर्य्यः कलय कमले ! याव सदनात्।
कथं पालि ! क्लाम्यस्युपसर हरेरंगसुषमा मृते जीवेत्यालो व्रजमृगदशां सम्भ्रममधुः।।७१।।
(कृ० भा० १६/२२)

---

(६८) सखि राधे ! सुनो यह श्रीकृष्ण की वंशी बज रही है इसे सुनकर ब्रज रमणीगण प्रेम व्याकुलित होकर कल–कल ध्वनि करती हुई घर से बाहर जाने की इच्छा कर रही हैं। चलो इनसे पहले ही हम कुसुमचयन करने के छल से वृद्धा (सास) को प्रतारित (छलपूर्वक) कर अपने बगीचे में चलें। यह सुनकर श्रीराधा सखियों के साथ शीघ्र ही उद्यान को चल पड़ीं। दूसरी ओर वंशीध्वनि के कानों में प्रवेश करते ही बकुलमाला नामक सखी जोकि श्यामला की वेषभूषा कर रहीं थी उनको श्यामला कहने लगी– हे सखि मेरे कानों में फूलों के आभूषण मत पहनाओं इन कानों में तो श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि रुपी आभूषण पहन लिया है। हे सखि – मैं तुम्हारे चरणों में पड़ती हूँ। मुझे छोड़ दो, मैं कृष्ण नव घन के रस से स्वयं को शीतल करुँगी।

(७०) मेरे नेत्रों में अंजन मत लगाओ क्योंकि मेरे ताप को हरण करने वाले मेरे प्रियतम रुपी श्याम अंजन वन से आ रहे हैं। मैं उन्हीं को अपने नेत्रों में धारण करुंगी। तुम इस अंजन रुपी भस्म को लाकर क्यों मेरे नेत्रों में लगा रही हो इस प्रकार वेषभूषा को त्यागकर श्रीश्यामला श्रीराधा के निकट गमन करने लगी।

(७१) श्रीकृष्ण के यावट ग्राम के निकटवर्ती होने पर यूथेश्वरि गणों की सखियाँ उनको कहने लगीं– हे भद्रे ! अब अधिक विलम्ब मत करो। हे चन्द्रावलि ! व्याकुलता परित्याग कर शीघ्र ही श्रीकृष्ण के दर्शन करो। हे धन्ये ! अब मन्थरता (धीरे–धीरे चलना) त्याग करो। हे कमले ! तुम घर से शीघ्र दौड़ चलो। हे पालि ! अब क्यों दुःख कर रही हो। शीघ्र ही चलो श्रीहरि के सौन्दर्यामृत द्वारा जीवित होओ। यह रुप बृज की मृगनयना बंधुओं के लिए मधु तुल्य है।

अग्रे धूलिभरो गवां खरखुरक्षुण्णः क्षमयास्ततो हम्बेत्युच्च–गभीरचारनिनदस्तासामथो मण्डलम्।
तस्यान्ते मुरलीरवस्तदनु च प्रेंखोलि–नीलं महः पश्चात् कृष्ण इति क्रमाद् ब्रजपुरीपत्योरभूद् गोचरः।।७२।।
(आ० ११/६८)

धेनूनामथ वत्सत्सलतया जातत्वरामूधसा माहारस्य च गौरवाल्लघुतरामाविभ्रतीनां गतिम्।
श्रीकृष्णस्य विलासवेणुनिनदैरामोद–घूर्णदृशां हम्बेति श्रुतिरम्यगद्गद्गिरां श्रेणी ब्रजं प्राविशत्।।७३।।
(आ० ११/६६)

मुक्ते नन्दिनि चन्दिनीन्दुतिलके कस्तूरि कर्पूरिके पिंगे रंगिणी धूमले धवलिके किञ्जल्किके रंगिणि।
श्यामे केतकि चन्द्रिके शबलिके काश्मीरिके चम्पिके हीत्येहीति ततान तानमधुरं गान मुरल्या हरिः।।७४।।
(आ० ११/२६)

गत्वा पुरःस्त्रिचतुराणि जवात् पदानि पश्चाद् विलोकयति हन्त ! तिरः शिरोधि।
वत्सोत्करादपि बकीमथने–गरिष्ठ–प्रेमानुबन्धविधुरं पथि धेनुवृन्दम्।।७५।।
(ल० १/२६)

तत्र स्फोर सरसि मुरली–निस्वनैः स्तम्भयन् गा यूथान् यूथान् पृथगरचयत् पाययित्वाथ पाथः।
नानारंगैः स्वहृदिमणिभिर्यान्ति माला तयासौ नानावर्णानगणयदपि स्वान् हरिर्धेनुयूथान्।।७६।।
(गोवि० १६/७७)

---

(७२) तदनन्तर सबसे आगे गउओं की प्रखर खुरों से उड़ती हुई वृज धूलि तत्पश्चात् उच्च गम्भीर, मनोहर हम्बा–२ ध्वनि, तत्पश्चात् मुरली ध्वनि और उसके पीछे चलती हुए नील कान्ति फिर श्रीकृष्ण इस प्रकार यह सब क्रम से नन्दमहाराज एवं श्रीयशोदामाता के नेत्रों एवं कानों में गोचर होने लगा।

(७३) धेनुगण अपने बछड़ों के वात्सल्य भाव उमड़ने से जल्दी चलने की इच्छा होते हुए भी, स्तनों में दूध भार एवं आहार से भारी पेट होने के कारण मन्द गति से ही चल रहीं थीं। श्रीकृष्ण विलासगति से वेणुनाद कर रहे थे, वंशीनाद को सुनकर आनंद से उनके नेत्र घूम रहे थे। इस प्रकार वे कानों को मधुर लगने वाला गद्गद् स्वर युक्त हम्बारव करते–करते गोष्ठ में प्रवेश करने लगीं।

(७४) ही ! ही ! मुक्ते ! नन्दिनी ! चन्दिनि ! इन्दुतिलके ! कस्तूरी ! कर्पूरिके ! पिंगे ! रंगिणि ! धूमले ! धवलिके ! किञ्लल्किके ! श्यामे ! केतकी ! चन्द्रिके ! शबलिके ! काश्मीरिके ! चम्पिके ! ही ! ही ! इस प्रकार गउओं का नाम मुरली में पुकारते हुए मुरली में तान लेने लगे।

(७५) धेनुवृन्द आगे दो चार पग रखते ही मुड़ कर ग्रीवा वक्र कर श्रीकृष्ण का दर्शन कर लेतीं है। इनका अपने बछड़ों के प्रति अत्यंत वात्सल्य होने पर भी श्रीकृष्ण के प्रति स्नेह विशेष अधिक है। कहीं यह स्नेह अंग भंग न हो जाये इस भय से वे पथ में ही व्याकुल हो रहीं हैं।

(७६) तदनन्तर श्रीकृष्ण ने वन में एक विस्तृत सरोवर के किनारे मुरली ध्वनि करके गउओं को रोक दिया फिर उन्हें जलपान कराया। तत्पश्चात् अपने वक्षस्थल में जो नाना रंगों की मणिमाला पहने थे उसके द्वारा नाना रंगों की गउओं की यूथ अनुसार गिनती की।

संख्यापूर्त्तौ भवति मुदितः स्वस्य किंवा सखीनां संख्यान्यूने सपदि स गवां वेणुसंकेतनादैः।
तत्तन्नाम्ना स्वगणवियुताः शीघ्रमाहूय गास्ता स्तत्तद्यूथे चलति घटमंश्चालयंस्तान् ब्रजाय।।७७।।

(गोवि० १६/७८)

गोधूलीधूम्रकम्रालकसदलिकस्तिर्यगुष्णीषवन्धप्रेंखोलत् कैंकिरात–स्तवक–नवकलं वर्हिवर्हं दधानः।
आवल्गकुण्डलश्रीदिनकर–किरण क्लान्त कर्णोत्पलान्त–निर्यत्किञ्जल्कलेशच्छुरित–लघुतरस्विन्न–गण्डान्त लक्ष्मीः।।७८।।

(आ० १३/१४४)

मन्दप्रस्थान–लीलामदमधुर–रणन्मञ्जुमञ्जीर–नाद–श्रेणी संवाद्यमान–श्रुतिमृदुमुरलीस्वान–निष्णातकर्णः।
अग्रे कृत्वाग्रजातं सहचरनिकरं पृष्ठतः पार्श्वतश्च प्रेमानन्दस्तनूमानिव नयनवतां स व्रजं प्राविवेश।।७९।।

(आ० १३/१४५)

श्रीकृष्णागमनोत्सवस्य कथनं सायाह्न एवाग्रतः संधत्ते तदनन्तरं बहुतरीकुर्वन्ति गोधूलयः।
सत्यं सत्यमितीव तद्दृढ़तरीकुर्वन्ति धेनुस्वना–स्तत्रैवावसरे मनोमृगदृशां मुष्णाति वेणुस्वनः।।८०।।

(आ० १३/१४६)

---

(७७) गिनती करते समय श्रीकृष्ण अपनी एवं अपने मित्रों की गउओं की संख्यापूर्ण हो जाने से प्रसन्न हो जाते हैं और कम होने पर पुनः मुरली बजाकर उनके नाम लेकर सब गउओं को अपने यूथ में मिलाकर घर की ओर प्रेरित करते हुए स्वयं भी पीछे–पीछे चल पड़ते हैं।

(७८) उस समय गोधूलि द्वारा धूसरित मनोहर अलकें श्रीकृष्ण के ललाट पर शोभा पाने लगीं। टेढ़ी पाग में गुँथा हुआ अत्यंत कौशल से निर्मित अशोक गुच्छ, चूड़ा पर मयूर पिच्छ एवं कानों में झूलते हुए कुण्डलों की शोभा से वे अत्यंत सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। सूर्य की किरणों से कुछ म्लान हुए कानों में कमल के फूल, उनसे जो पराग झड़ गया उससे उनकेधर्माक्त (पसीने से युक्त) गण्डस्थल (गालों के ऊपर का भाग) लिप्त होकर अत्यंत शोभा को प्राप्त हो रहे थे।

(७९) मन्द–मन्द गति से मद–मन्थर चलते हुए श्रीकृष्ण अपने मनोहर नुपूरों की ध्वनि के साथ स्वरों को मिलाकर मुरली बजा रहे थे, उसमें ताल का कोई दोष न हो जाय इसमें उनके कान सावधान थे। पीछे एवं दोनों ओर सखागण तथा आगे श्रीबलराम जी के साथ नेत्रधारी जनों को प्रेमानन्द प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण ने ब्रज में प्रवेश किया।

(८०) सबसे प्रथम दिनान्तकाल ने श्रीकृष्ण के आगमन उत्सव को सूचित किया, फिर तभी श्रीकृष्ण के घर लौटने की चर्चा करने लगे तो गौधूलि दर्शन कर यह चर्चा और बढ़ गयी, फिर गउओं के हम्बा ध्वनि ने तो 'सत्य सत्य ही श्रीकृष्ण आ रहे हैं इसे अधिक दृढ़ कर दिया। इसी अवसर पर श्रीकृष्ण की वेणुध्वनि ने बृजलताओं के मनोरत्न को हरण कर लिया।

बल्गाद्वल्गुवतंसमंसविगलन्मन्दारमालामिलद् रोलम्बद्रुतिलम्बमा–सुमनोधूलिभिराधूसरः।
लीलाबन्धुरकन्धराञ्चलचलच्छ्रीकौस्तुभं भ्राजते धावन् धूतधरं धराधरधरो धाराधर श्यामलः।।८१।।

(अ० ६/५)

तं गोरजश्च्छुरित कुन्तलबद्धबर्हवन्य प्रसून–रुचिरेक्षणचारुहासम्।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरुपगीतकीर्ती गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः।।८२।।

(भा० १०/१५/४२)

इतोहम्बाहम्बाध्वनिभिरुपगोष्ठं निजसुतान् ह्वयन्तीर्धावन्तीरखिलसुरभीर्वीक्ष्य सहसा।
बलः श्रीदामादैः सह सहचरैः सत्वरगति–र्विषादाब्धेरम्बाः प्रथममुदहार्षीत् पुरि विशन्।।८३।।

(कृ० भा० १६/२३)

अथ मणि–बलभीतलस्थितानां शुचिरस–सूत्सुकचेतसां वधूनाम्।
नयन–मधुकरावली ललम्बे, प्रियवदनाम्बुरुहे श्रियोऽवलम्बे।।८४।।

(कृष्णा० ५/३६)

---

(८१) नवीन मेघ के सदृश श्यामल, गोवर्धनधारी श्रीश्यामसुन्दर अपने चरणों से धरणी को कम्पित करते हुए धावित हो रहे हैं। शिर पर स्थित मयूरपिच्छ, आभूषण थर–थर कर हिल रहे हैं। कंधों पर से खिसलती हुई मंदार पुष्पों की माला, जिस पर भ्रमरगण उड़–२ कर पड़ रहे है उसके पराग से श्याम शरीर धूसरित हो रहा है और धावमान होने से ऊँचे कन्धों का स्पर्श करतीं हुई कौस्तुभ मणि की शोभा तो देखो कैसी झलमल कर रही है।

(८२) गउओं के खुरों से उड़ी हुई धूलि से श्रीकृष्ण की अलकावली धूसरित हो रही थी। उनके केशपाश में मयूरपिच्छ एवं वन के कुसुम लगे हुए थे। नेत्र युगल अत्यन्त मनोहर एवं वे अत्यन्त सुन्दर रूप से हंसते हुए वंशी वादन कर रहे थे जिसे सुनकर उनका दर्शन करने की लालसा से उत्सुक नेत्रों वाली गोपिकाएं दर्शन करने को उनकी ओर दौड़ पड़ीं।

(८३) श्रीकृष्ण का अपनी प्रेयसी वर्ग के साथ मिलन का अवसर देखकर श्रीबलराम एवं श्रीदाम आदि नन्दीश्वरपुर में प्रवेश करने का कोई बहाना सोचने लगे। इधर गोष्ठ को निकट देख गउए हम्बा–२ करती अपने बछड़ों को बुलाती हुई दौड़ने लगीं। मानो उनको सम्हालने के लिए ही शीघ्र नन्दीश्वर में प्रवेश कर अपनी माताओं को जो कि विरह सागर में डूब रहीं थी, उबारने लगे।

(८४) तदनन्तर मणिमय चन्द्रशाला स्थित दीर्घकाल तक समुत्सुकचित्त वाली गोपियों की नेत्र रुपी मधुकर श्रेणी सौन्दर्य निधान श्रीकृष्ण के मुखकमल का आश्रय करने लगी।

प्रियतम–मुखबद्धलक्ष्याः कमलदृशां सरसत्रपाः कटाक्षाः।
कुवलयदलवर्षवत् प्रतीताः, सममनुपेतुरुपर्यपर्युपेताः।।८५।।

(कृष्णा० ५/३७)

तदपि तदवघातजातशातः सुमधुरिमास्य मुखाद् य उत्पपात।
कमपि तमयमेव वेद ताश्च, प्रविदुरसौ प्रविवेद मन्मथश्च।।८६।।

(कृष्णा० ५/३८)

मदमदिरदृशां कटाक्षपाताः, सितविशिखा इव दुःसहावघाताः।
प्रतिनयननिपात–मध्याभग्ना, अपि विभिदुः प्रियमग्रभागलग्नाः।।८७।।

(कृष्णा० ५/३९)

अयमयमितरेतरावलोकः, प्रणयसुधा–मुधुरिमणि सातिरेकः।
इतरजनधिया क्षणं व्यनंश्रीत् स्फुरदनुरागरसो न तु व्यरंसीत्।।८८।।

(कृष्णा० ५/४०)

इतः प्रेंखत्प्रान्तप्रमदमदभारालसदृशा कृशांगीरानंगीष्वतिरभसघूर्णासु विकिरन्।
चलद्दामारामानुपमसुमनः कन्दुकपरि–ग्रहोद्वेपक्षेप–प्रचित–नवलावण्यजलधिः।।८९।।

(कृ० भा० १६/२४)

(८५) कमल के समान नेत्रों वाली समस्त बृजगोपियों के रसीले एवं लज्जायुक्त कटाक्ष, प्रियतम के मुखकमल पर मानों नीलकमलों की वर्षा करने लगे अर्थात् कटाक्ष एक के ऊपर एक वर्षा के समान पड़ने लगे।

(८६–८८) इन कटाक्षों के घात (चोट) से श्रीकृष्ण के मुखारविन्द की जो एक अनुपम माधुरी प्रकाशित हुई वे स्वयं उसे समझ सके और गोपियों ने उसे अच्छी प्रकार समझा लेकिन विशेष रुप से इसे जाना–मन्मथ ने। मदमत्त खञ्जन नेत्रा गोपियों ने अपने जो नेत्रों से कटाक्ष वाण चलाये वे सूक्ष्मवाण की भांति श्रीकृष्ण के लिए भले ही असह्य थे और उनके नेत्रों के कटाक्ष वाण ने उन्हें बीच में ही खण्डित भी किया फिर भी वे उनके वक्षस्थल को भेद कर गये। अहा! इन दोनों के परस्पर दर्शन से प्रणयसुधा माधुरी निरन्तर वृद्धि को ही पाने लगी। भले ही क्षणकाल को गुरुजनों की आशंका के भय से वे विरत होती लेकिन उनका निरन्तर बढ़ता हुआ अनुराग रस उनको इससे रोक नहीं सका।

(८९) अब श्रीकृष्ण यावट ग्राम के भीतर आ गये। धीरे–२ चलते हुए वे अपनी मदमत्त, अलसयुक्त, चंचल कटाक्षों द्वारा विरह से क्षीण हुई बृजसुन्दरियों को प्रेम के आवर्त्त में डुबाने लगे। उनकी वन माला झूलने लगी और वे अपने मन रुपी फूलों की गेंद को फैंक कर मानों गोपियों के मन रुपी गेंद को वापस लेकर खेलने लगे। इससे उनके अंगों में मानो लावण्य का जलधि उच्छलित होने लगा।

रुचाध्वानं नीलोत्पलवनमयीकृत्यद्दगलि–व्रजानां कान्तालेर्मधुर–रसमत्रं विरचयन्।
ब्रज–मन्दं मन्दं मुखर–रसनानूपूरमलञ्च्कार श्रीकृष्णः प्रियसखवृतो गोकुलभवम्।।६०।।
(कृ० भा० १६/२५)

अलं ह्रदिम्भेन प्रकटय चलदभृंगविकसद्दृगब्जं देवाग्रे पशुपतिरसावेति वरदः।
अनेनैतत्पूजां वितनु वितनुद्रोहपटल–प्रशान्त्यै विद्धीमं क्षणमुखति राधेति शुभदम्।।६१।।
(कृ० भा० १६/२६)

त्वमेवामु श्यामे ! त्वरितमुपधाव प्रकटित–द्युतिं ह्रद्याम्भोजस्तवकमुपनीयार्हण–कृते।
मुहूर्त्तेऽस्मिन् कामं सुमुखि ! यदि सम्पादयति ते महेशोऽयं मज्जाम्यमृतजलधौ तत् स्वयमहम्।।६२।।
(कृ० भा० १६/२७)

मृषा मा त्वं वादीः कलय ललिते ! वल्लिपटलीः समुत्फुल्लास्त्यक्त्वा मधुकरयुवा घूर्णति कुतः ?
सखि श्यामे ! सत्यं न्यपतदतुलामोदसरितो भ्रमौ यन्मालन्यास्तदयमित इष्टै न चलितुम्।।६३।।
(कृ० भा० १६/२८)

---

(६०) श्रीकृष्ण के अंग की कान्ति द्वारा बृज का पथ इस प्रकार विकसित हो गया मानो नीलकमल ही बिछे हो और उस पर ब्रजांगनाओं के नेत्र रुपी भ्रमर स्वच्छन्द रूप से मधुर रस का आस्वादन करने लगे। मानो पथ में मधुर रस का छत्र खुल गया हो। श्रीकृष्ण मन्द–मन्द गति से चलने लगे। उनके नुपूर उच्च स्वर से बज रहे थे जिसे सुनकर ब्रजांगना मोहित हो रहीं थीं।

(६१) श्रीकृष्ण के यावट के उद्यान के समीप देखकर श्यामला कहने लगी– सखि राधे ! अब अधिक लज्जा का दम्भ (नाटक) मत करो। वरद पशुपति (एक अर्थ में शिवजी दूसरे अर्थ में श्रीकृष्ण) तुम्हारे सामने आ गये है। अपने नेत्र के चंचल तारों रुपी नयन कमल इन पर फैंक कर इनकी पूजा करो। इस प्रकार ये पशुपति पूजा पाकर तुम्हारे ऊपर जो काम द्रोह कर रहा है उसे शान्त कर देगें। हे सुन्दरि ! इस प्रकार का शुभ क्षण सहसा प्राप्त नहीं होता।

(६२) श्रीराधा कहने लगीं– हे सखि श्यामले ! तुम अपने ह्रदय में उत्पन्न कमल कलिका युगल (स्तनद्वय) उपहार देकर इस महेश (महान ईश्वर अथवा शिव) की पूजा करो। यह महेश पूजा पाकर इसी क्षण तुम्हारी काम (अभिलाषा) पूर्ण कर देंगें और फिर मैं यह देखकर अमृत समुद्र में निमग्न हो जाउंगी।

(६३) यह सुनकर परिहास पटु श्यामला मानो ललिता को साक्षी करते हुए कहने लगी– हे सखि ललिते! तुम सत्य बताओ देखो यह मधुकर युवा (पक्षान्तर में श्रीकृष्ण) समुत्फुल्ला लताओं (अन्यान्य गोपिका) का परित्याग करके क्यों इधर उधर मत्त होकर घूम रहा है ? ललिता कहने लगी, सखि सत्य कह रही हो, यह मधुकर युवा मालती की अतुल परिमल सुगंध सरिता के घूर्णावर्त्त में डूब चुका है। अब कहीं चलने में असमर्थ है।

यदेत्थं संलापः प्रणयसरसी–धोरणिरिव श्रुती कृष्णस्यारादशिशिरयदानन्द–पृषतैः।
तदा श्रीराधास्यं मदिरघृतलास्यं दरदृशो–रवाप्याग्रं तस्य द्रुतमधिलतं निह्नुतिमगात्।।६४।।
(कलापकम्) (कृ० भा० १६/२६)

पिपासार्त्तौ हा मे दृगनघचकोराविह सुधामुपेतामालक्ष्योन्नत–विवृतचञ्चू अभवताम्।
अरे धातर्धिक् त्वां बलदघ ! यदाभ्यां सपदि तां प्रदायैवाहार्षीरिति हृदि तदोचे गिरिधरः।।६५।।
(कृ० भा० १६/३०)

विमुञ्च त्वं लज्जे ! क्षणमपि दृशः कोणमपि मे यथा ते नैवास्यं सकृदपि विलिह्यामघरिपोः।
प्रसीदानन्दाभ्र ! त्वमपि नहि रुन्धी मम तनो नमस्ते मां मा कम्पय चरणयोस्तेऽस्मि पतिता।।६६।।
(कृ० भा० १६/३१)

इति प्रेम्णा प्रोच्य स्वगतमतिघ्रार्ष्ट्यं पुनरिदं कथं कुर्य्यामित्थं व्यमृशदपि यावद्वरतनुः।
विकृष्याल्यस्तावत् पटिमभरतो बल्लिकुहरा–दुपानीय प्रेष्ठानन–चकितदृष्टिं व्यधुरिमाम्।।६७।।
(कृ० भा० १६/३२)

---

(६४) श्रीराधा एवं श्यामला के इस प्रकार के वार्तालाप मानो प्रणय सरिता की धोरणी (जल निकलने वाली बड़ी नाली) के समान, दूर से सुनते हुए श्रीकृष्ण के कानों को सुशीतल करने लगा, इसी समय नृत्य करते हुए, मदमत्त खंजन युगल की तरह राधा के नेत्रयुगलों बाला मुखारविन्द एक बार श्रीकृष्ण के नयनगोचर हुआ और पुनः वह कुसुमितलता के पीछे छिप गया।

(६५) श्रीराधा मुखकमल को न देखकर खेद करते हुए अपने मन में कहने लगे– हाय ! हाय ! मेरे पिपासार्त्त नयन रूपी चकोरयुगल को सामने चन्द्रोदय दिखाकर, जब वे उसकी सुध ापान करने के लिए अपनी चोंच खोल ही रहे थे, तभी अरे महापराधी विधि ! तुझे धिक्कार है, तुमने सामने से तत्क्षण चन्द्र का अपहरण कर दिया।

(६६) इधर लज्जावती श्रीराधिका भी अपने मन ही मन कहने लगी– हे लज्जे ! मैं तुम्हें अपने सब अंगों को छोड़ कर जाने के लिये नहीं कहती केवल एक क्षण के लिए मेरे नयन के कोण को छोड़ दो बस मैं उसी से एक बार श्रीकृष्ण वदन का लेहन (दर्शन) कर लूंगी। हे आनंद मेघ (अश्रु) तुम भी मुझ पर प्रसन्न होओ। मेरे मार्ग को मत रोको (अश्रुयुक्त नयनों से दर्शन में बाधा पड़ती है। हे अतनु ! (काम अथवा प्रेम का वेग) तुम भी मेरे अंगों को कम्पित मत करो। मैं तुम्हारे चरणों में पड़ती हूँ।

(६७) इस प्रकार जब श्रीराधा प्रेमपूर्वक अपने मन में ही कह रहीं थी तब सोचने लगीं कि अब इन लताओं की ओर से कैसे मुख बाहर कर श्रीकृष्ण दर्शन की धृष्टता करुँ। इतने में ही सहचरीगण अत्यंत चतुराई के साथ उनको लताओं से बाहर खींचते हुए "कुलवती नारियों को इस प्रकार निर्जन स्थान पर रहना उचित नहीं है" ऐसा कहते हुए श्रीराधा को श्रीकृष्ण चकित नेत्रों के सामने ले आयीं।

तां दृष्ट्वा सुबलस्तं प्रत्याह–

स्नाता नासाग्रजाग्रन्मणिरसितपटा सूत्रिणी बद्धवेणी सोत्तंसा चर्चितांगी कुसुमित–चिकुरा स्रग्विणी पद्महस्ता।
ताम्बूलास्योरुबिन्दुस्तवकित चिबुका कज्जलाक्षी सुचित्रा राधालक्तोज्जवलांघ्रिः स्फुरति तिलकिनि षोऽशाकल्पिनीयम्।।६८।।
(उ० ४/६)

दिव्यश्चूड़ामणीन्द्रः पुरटविरचिताः कुण्डलद्वन्द्व–काञ्ची–निष्काश्चक्रीशलाकायुगवलयघटाः कण्ठभूषोर्मिकाश्च।
हारास्तारानुकारा भुजकटकतुलाकोटयो रत्नकृल्प्तास्तुंगा पाद्दांगुरीयच्छविरिति रविभिर्भूषणैर्भाति राधा।।६६।।
(उ० ४/१०)

भ्रूवल्लीवलनैः कयापि नयनोन्मेषैः कयापि स्मितज्योत्सनाविच्छुरितैः कयापि निभृतं सम्भावितस्याध्वनि।
गर्भोद्भेद–कृतावहेल–ललितश्रीभाजि राधानने सातंकानुनयं जयन्ति पतिताः कंसद्विषो दृष्टयः।।१००।।
(प० २५६)

---

(६८) तब श्रीराधा को देखकर सुबल श्रीकृष्ण से कहने लगा– सखे ! श्रीवृषभानुनन्दिनी की शोभा का दर्शन करो, ये स्वयं स्नाता, नासिका के अग्रभाग में श्रेष्ठ मणि धारण किये, नीलवसन परिधान, नीवी, मस्तक पर वेणी, कानों में कुण्डल, समस्त अंगों में चन्दनादि चर्चा, केशों में कुसुम गूंथे हुए है, गले में नाना हार, हाथ में कमल, मुख में ताम्बूल, चिबुक पर कस्तूरी बिन्दु, नयन युगल में उज्ज्वल कज्जल, गण्डस्थल पर मकरी चित्र लेखन एवं पत्रादि रचना, चरणों में आलता और ललाट में सिन्दूर तिलक इन सोलहों श्रृंगार से युक्ता श्रीराधा की कैसी मनोहर शोभा हो रही है।

(६६) और भी देखो– श्रीराधा के ललाटाग्र में चूड़ामणि, कानों में स्वर्ण कुण्डल, नितम्ब में करधनी, गले में स्वर्ण पदक (पैंडल) कानो के ऊपरी भाग में स्वर्ण शलाका समान हार, भुजा में वलय, गले में गुलबन्द, अंगुठियों, तारावली के समान हार, भुजा में अंगद (बाजूबंद) चरणों में रत्नमय नूपुर एवं चरणों की उंगलियों में बिछिया आदि बारह आभरण धारण कर श्रीराधा क्या ही अद्भुत विशाल शोभा को धारण कर रही है।

(१००) श्रीकृष्ण विभिन्न गोपिकाओं द्वारा पथ में, किसी ने भ्रूभंगिमा द्वारा, किसी ने विकसित नेत्रों द्वारा इंगित कर, किसी ने हास्य ज्योत्सना प्रकाशित कर, समादर को प्राप्त किया। श्रीराधारानी के मुखारविन्द जो कि गर्व भरा सहज शोभा से मन को हरण कर रहा था के प्रति श्रीकृष्ण की जो अनुनय युक्त सातंक दृष्टि पड़ी उसकी जय हो।

अपांगाभ्यां यूनोर्नभसि यमुना धातृतनया—रसैरेकीभूता सुरसरिद्युता चित्रमुदगात्।
निमग्नौ यत्रैतद्धृदकरिणौ द्रागुभयतः प्रवाहायामास्तां विकचकमलालीक्षण ततौ।।१०१।।

(कृ० भा० १६/३३)

श्रीराधिकापांगविलोकनेषुणा संस्पृष्टमर्मास यथाकुलोऽभवत्।
नान्यांगनाश्रेणिकटाक्षपत्रिभिः संभिन्न सर्वावयोप्यसौ तथा।।१०२।।

(गोवि० १६/६२)

यद्वत् सुनिर्वृतिमाप स राधिकाया वक्त्रेन्दुमन्दहसितामृतलेशसेकात्।
तद्वन्न गोप—सुदृशां वदनेन्दुवृन्द—प्रोद्यत्स्मितामृतझर प्रकरावगाहात्।।१०३।।

(गोवि० १६/६३)

ततो निष्पन्दांगम् रसिकमिथुनं तत् प्रियसुहृद्गणो वर्त्मप्रान्तादितरजनशंकाकुलमनाः।
विकृष्यारात्ततत्पुरसरणिमानीय रभसात् प्रबुद्धं प्रत्याशासित हृदयकार्षीत् पटिमभिः।।१०४।।

(कृ० भा० १६/३४)

---

(१०१) श्रीराधा चकित नेत्रों से श्रीकृष्ण का दर्शन करने लगीं और श्रीकृष्ण भी राधावदन दर्शन कर रहे थे इससे एक ओर श्रीकृष्ण के अरुण नयनों के कटाक्षों से मानो अरुणवर्णा सरस्वती का रस प्रवाह एवं दूसरी ओर श्रीराधा के कज्जलयुक्त स्वाभाविक श्याम नेत्रों के कटाक्ष रूपी यमुना मिलकर दोनों के कटाक्षों की श्वेत गंगा प्रवाहित होने लगी जिसमें श्रीराधाकृष्ण दोनों के हृदय रुपी ऐरावत मानों डूबने लगा। इस त्रिवेणी का दोनों ओर जो प्रवाह बह रहा था उसमें सहचरी गणों के मन रूपी कमल विकसित हो, विराज रहे थे। यह बड़ा ही आश्चर्य है।

(१०२) श्रीराधारानी ने कटाक्ष रुपी वाणों द्वारा, जिस प्रकार श्रीकृष्ण के मर्मस्थानों को विद्ध किया और वे व्याकुल हो उठे, अन्यान्य गोपिकाओं के कटाक्षों द्वारा उनके सर्वांग विद्ध होने पर भी वे उस प्रकार व्याकुल नहीं हुए (यहाँ मर्मस्थानों के विद्ध होने का अभिप्राय श्रीराधारानी के प्रेम की अधिकता ही समझनी चाहिए।)

(१०३) इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण ने, श्रीराधारानी के मुखचन्द्र के मन्द हास्य रुपी अमृत के लेशमात्र अभिषेक से जिस प्रकार शान्ति लाभ की उतनी समस्त ब्रजसुन्दरीगण के हास्यामृत प्रवाह में अवगाहन करके भी नहीं प्राप्त कर सके।

(१०४) इस प्रकार पथ में रसिक युगल प्रेम में विभोर होकर दोनों अंग निष्पन्द हो गये। यह देखकर श्रीललितादि सखी श्रीराधा को अपने घर ले जाने के लिए तथा उधर सुबल आदि सखा श्रीकृष्ण को अपने घर की ओर ले जाने के लिए उनकी मूर्च्छा को दूर करते हुए तथा चतुराई के साथ पुनः मिलन का आश्वाशन देकर, प्रस्तुत करने लगे।

जनन्या वात्सल्यं तनुमदिव पित्रोः किमसवो बहिष्ठाः श्रीकृष्णः स्वसदनमियायेति विदुषी।
विशाखा प्राहैषीत् सपदि तुलसीमञ्जरिमथ ब्रजेश्वर्यै दातुं तदभिमत–पीयूषवटिकाः।।१०५।।

(कृ० भा० १६/३५)

बलात् पाणि नीव्यामहह मम धित्सत्ययमयम् विशाखे ! त्वं वीथ्यां कलयसि किमेतत् कुतुकिनि।
यदुच्चैः क्रोशन्तीमपि न हि जहात्येष वत मां सतीनां मूर्द्धन्यां तदिह कथयार्यां द्रुतमितः।।१०६।।

(कृ० भा० १६/३६)

प्रलाप्यैवं राधा दरविकसिताक्षी समुदित–क्लमा प्रस्विन्नांगी विततदवथुर्वेपथुमती।
तनूं वीक्ष्य स्वीयां कुसुमशयन–न्यस्तसुषमां विलक्षालीराह स्मरपरिभवाद्गद्गदगिरा।।१०७।।

(कृ० भा० १६/३७)

क्व मे प्रयान् वीथ्यां चकर किमहं निष्कुटभवं किमेतद्वेश्माहो सखि ! गुरुपुरस्थं भवति किम् ?
इयं सन्ध्या प्रातः किमजनि किमाहोस्विदभवन्निशीथः किं निद्राम्यहह किमु जागर्मि वद तत्।।१०८।।

(कृ० भा० १६/३८)

---

(१०५) तत्पश्चात् माता यशोदा के मूर्तिमान वात्सल्य के समान एवं माता पिता के बाहर स्थित प्राणों के समान ही मानो श्रीकृष्ण ने अपने भवन में गमन किया। इधर विशाखाजी तुलसी मंजरी को नन्दालय में भेजती है जिससे वह यशोदाजी के पास श्रीकृष्ण की प्रिय 'पीयूषवीटिका' (मिष्ठान्न) भेजती हैं।

(१०६) श्रीकृष्ण के नयनों से दूर जाने पर श्रीराधा गृह मन्दिर में जाकर उनके विरह में उन्माद दशा को प्राप्त हो गयीं। वे रोते–रोते कहने लगीं– विशाखे ! यह धृष्ट रमणी लम्पट देखो बलपूर्वक मेरा मार्ग रोक कर मेरी नीवी का आकर्षण कर रहा है, तुम क्या कौतुक देख रही हो। मैं उच्च स्वर से चिल्ला रही हूँ फिर भी मुझ सती शिरोमणी नारी को यह त्याग नहीं रहा, सखि तुम शीघ्र जाकर आर्या को शीघ्र बुला कर लाओ।

(१०७–८) इस प्रकार विलाप करते श्रीराधारानी का अंग स्वेद से भीग गया। वे क्लान्तियुक्ता तथा अत्यंत विरहतापिता कांपते–२ अपने नेत्रों को कुछ थोड़ा सा खोलकर कुसुम शैय्या पर अपने को देखकर विस्मित होकर कुछ संकुचित हुई। गद्गद् वाक्यों से सखीगण को कहने लगीं– "हे सखि ! मेरे वे प्रियतम कहाँ है ? इस मार्ग में पड़ी मैं क्या कर रही हूँ ? यह गृह क्या मेरे प्रियतम की पुष्प वाटिका में स्थित है ? या कि यह गुरुजन पुर (श्वसुरालय) है ? इस समय संध्या है ? या कि प्रातःकाल अथवा अर्धरात्रि का समय है ? मैं क्या निद्रा में हूँ या जागरित हूँ ? यह सब मुझे बताओ" यह सुनकर प्रेमोन्मादिनी श्रीराधा को सखी कहने लगीं।

त्वमारामाद्धामाम्बुजमुखि ! समायाः प्रियतमो रहःकुञ्जे स त्वामरमयदथागात् स्वभवनम्।
चिरात् खेदं पित्रोर्भृशमुपशयमय्यैष्यति पुनर्विधुः स त्वन्नेत्रोत्पल–युगविकाशार्थमधुना।।१०६।।
(कृ० भा० १६/३६)

यत् प्रागासीद्व्रजपुरसरोजीवनाद् विच्युतं द्रागुग्रैस्तापैर्विरह–रविणोत्पादितान्तर्विदारम्।
कृष्णाम्भोदे मिलति रभसादेतदानन्दधारा–सारैः पूर्णं त्वरितमभवत् फुल्लपंकेरुहास्याम्।।११०।।
(कृ० भा० १६/४०)

इति श्री श्री भावनासार–संग्रहे आपराह्विक–लीलास्वादनो नाम पञ्चमः संग्रहः।।५।।

❖

---

(१०६) हे कमलवदने ! तुम अभी–२ पुष्पोद्यान से घर को आई हो। तुम्हारे प्रियतम बृजचन्द्र कुंज में तुम्हारे साथ एकान्त में विविध विलास करके अपने भवन को गये हैं। पितामाता का अपने विरह से उत्पन्न खेद शान्त करके तुम्हारे नेत्र रुपी कमलों को पुनः विकसित करने के लिए वे फिर शीघ्र ही तुमसे मिलेंगें।

(११०) जो ब्रजपुर रुपी सरोवर जीवन विहीन (जल विहीन अथवा जीवन रुपी श्रीकृष्ण से बिछुड़ कर) हो गया था। जो विरह रुपी सूर्य के उग्र ताप से मानो जिसका हृदय ही विदीर्ण हो गया था। इस समय श्रीकृष्ण रुपी जलधर के आगमन से वह आनन्द के जल से परिपूर्ण हो गया और उसमें स्थित सभी कमल खिल कर हास्य करने लगे।

इति श्रीश्री भावना सार संग्रह की अपराह्न लीला आस्वादन नामक पंचम संग्रह।

❖

षष्ठ संग्रहः

अथ सायाह्न लीला

सायन्तनीं कृष्ण–मनोज्ञलीलां स्नानाशनाद्यां हि मुहुर्विचिन्त्य।
स्वभक्तमध्येऽनुकरोति नित्यं तां यो मनस्तं भज गौरचन्द्रम्।।१।।

सायं राधां स्वसख्या निजरमणकृते प्रेषितानेकभोज्यां सख्यानीतेश–शेषाशन–मुदितहृदं तां च तं च ब्रजेन्दुम्।
सुस्नातं रम्यवेशं गृहमनु जननी–लालितं प्राप्तगोष्ठं निर्व्यूढोस्त्रालिदोहं स्वगृहमनु पुनर्भुक्तवन्तं स्वरामि।।२।।
(गोवि० २०/१)

द्वौ भास्वन्तौ विधुरतुलयत् पद्मिनी–नित्यबन्धू कृष्णस्तत्रावनिमयमयात् पाण्डवं रवं लघिष्ठः।
धातैवाप प्रथितमधिकं किन्तु मौढ्यं स एकः को वा हैमं गणयति सुधीः सर्षपार्द्धेन सार्धम्।।३।।
(कृ० भा० १७/१)

(१) सायंकाले श्रीकृष्ण लीला मनोहर, सुमरि श्रीगौरचन्द्र प्रेम विभोर।
भक्तगणमध्य करै सोइ अनुकरण, भावोन्मत्त होय करै नाम संकीर्त्तन।।
कदम्बकेशर तुल्य पुलक शरीर, सुरधनी धारा वत नयन को नीर।
हुंकार गर्जन सात्विक भाव विभूषण, सोई गौरचन्द्र चरण भजो मोर मन।

(२) सायंकाल होय सुखी, श्रीराधिका विधुमुखी, निज सखी गण संगे।
परम प्रेम से भरि, प्राण प्रियतम लिये, भोजन सामग्री भेजें रंगे।।
श्रीकृष्ण भोजन करैं, अवशिष्ट प्रसाद उठाय, लावै सखि श्रीराधिका पास।
सोई राधा ग्रहण करै, परम आनंद भरैं, बैठे सब सखिगण साथ।।
पुनः श्रीकृष्ण स्नानादि करैं, सुन्दर वेष सजैं, मातागण कर बहु लालन।
मिष्ठान्न पक्वान्नादि, आनन्द भोजन करैं, चलैं पुनः करन गोदोहन।।
गौदोहन करैं, सुकौतुक खेल खेलैं, पुनः निज भवन करैं प्रत्यावर्तन।
सबको सुख देवैं, अन्न व्यंजनादि पावैं, यह सायं लीला करौ स्मरण।।

(३) श्रीकृष्ण को गोष्ठ प्रवेश करते देखकर गगन स्थित विमानचारिणी देवांगनाएं कहने लगीं– हे सखि ! श्रीकृष्ण और सूर्य दोनों ही पद्मिनि गण के नित्य बन्धु हैं (यहाँ सूर्य के पक्ष

उद्यन्नक्तन्दिवमपि जगल्लोचनानन्द–धारा–निर्माणार्थं स्थिरचरततेः प्रेमधर्म–प्रकाशी।
माधुर्याब्धिमृदुलकिरणो गोपरार्धप्रचारी हारी लोकान्तरसुतमसामभ्रविभ्राजित–श्रीः।।४।।
(कृ० भा० १७/२)

कष्टाम्भोधेः परमतरणिर्भीरुहृच्चक्रेवाक–द्वन्द्वस्यारात् कर–वितरणेना वनेर्भाग्यराशिः।
मित्रश्चित्रातुलगुणखनिः किं गवाधीश्वराशा–पूर्त्यै गच्छन् हतभगदृशो हा जिहासत्ययं नः।।५।।
(कृ० भा० १७/३)

में कमलिनी और कृष्ण के पक्ष में पद्मिनि नारी गोपीगण) अतएव विधाता ने इन दोनों को उठाकर तराजू में तोला तो सूर्य हल्के प्रकाश वाला एवं लघु होने के कारण आकाश में उठ गया और श्रीकृष्ण प्रकाश एवं गौरव में भारी होने के कारण धरती पर रह गये (तराजू का) यही नियम है कि भारी वस्तु नीचे रह जाती है और हल्की वस्तु ऊपर को उठ जाती है अतः विधाता ने मानो तौल कर यह सिद्ध किया कि श्रीकृष्ण गौरव में विशिष्ठ है और सूर्य लघु गौरव वाला है अतः ऊपर आकाश में उठ गया) लेकिन सखि ! इन दोनों की तुलना करके विधाता ने अपनी मूढ़ता ही प्रकाशित की है क्योंकि ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो कि आधे सरसों के दाने के साथ सुवर्ण की तुलना करे।

(४–५) हे सखि ! विधाता की यह भी अज्ञता ही है कि जिन दोनों के गुण एक समान नहीं हैं ऐसे श्रीकृष्ण और सूर्य की समान तुलना की है। देखो सूर्य केवल दिन में उदय होता है और श्रीकृष्ण दिन रात दोनों समय उदित हैं। सूर्य केवल नेत्रों को प्रकाश ही देता है और श्रीकृष्ण नेत्रधारियों के नेत्रों को आनंद धारा में डुबा देते हैं। सूर्य केवल मात्र मनुष्यों के वर्णाश्रम धर्म का प्रकाश करता है और श्रीकृष्ण स्थावरजंगम के प्रेमधर्म का प्रकाश करते हैं। सूर्य प्रखर किरण वाला है, श्रीकृष्ण के तेज की किरणें कोमल हैं। सूर्य सहस्र किरण वाला है, श्रीकृष्ण असंख्य अनन्त किरणों (गुणों) का प्रचार करने वाले हैं। सूर्य केवल लोकों के बाहरी अंधकार को दूर करता है और श्रीकृष्ण लोकों (मनुष्यों के) भीतर बाहर (अन्तःकरण की वासनाओं) का तम हरण करने वाले हैं। सूर्य की शोभा मेघों से ढक जाती है लेकिन श्रीकृष्ण की कान्ति मेघ की निन्दा करती है। श्रीकृष्ण भीरु हृदया रमणीगण के स्तन रूप चक्रवाक युगल की अपने हस्तकमल द्वारा व्यथा सम्पूर्ण रुप से मिटा देते है जबकि यह सूर्य चकवा चकवी के दिन का विरह ही नष्ट करता है रात को नहीं। और भी देखो सूर्य उदय होता है तो दिन का तो भाग्य उदय होता है, परन्तु अस्त हो जाने से रात्रि पुनः अन्धकारमय (भाग्यहीन हो जाती है) लेकिन श्रीकृष्ण तो दिवा निशि अपने चरणयुगल से इस पृथ्वी का स्पर्श करके उसका भाग्य वर्धन कर रहे हैं। यह सूर्य दिन के अंतिम भाग में गवाधीश्वर (वरुण, पश्चिम दिशा) की आशा पूर्ण करने के लिये गमन करता है और यह निरुपम गुणों की खान श्रीकृष्ण सायंकाल गवाधीश्वर युगल (ब्रजराज और ब्रजेश्वरि) की आशा पूर्ण करने को गमन करते हैं लेकिन हाय हम हत भागिनि हैं जो कि हमारे नेत्रों से दूर चले जाते हैं।

इत्थं स्वःस्त्रीजन–कलकलैलार्घवं स्वं विवस्वान् मेने श्रोत्रामृतमिव कृती यत्तदाशानुगामी।
मूढाऽमंस्तात्मनि वरुणदिङ्नागरी सौभगं यन्मन्ये तेनाप्रकटयदिदं हन्त ! मिथ्यानुरागम्।।६।।
(कलापकम्) (कृ० भा० १७/४)

कृष्णोऽगच्छद्यदनुविशिखं हर्म्यगस्त्रीजनेऽश्रुस्तिम्यत् पुष्पाञ्जलिकिरि दरोदञ्चयन् लोचनान्तम्।
स्वःसुन्दर्यः पुलकि–तनवोऽमंसत स्वस्वभाग्यं तेन स्थाने क्वचन सुदृशां मुग्धता दोग्धि मुदम्।।७।।
(कृ० भा० १७/५)

याते पित्रोर्नयन–पदवीं तत्पुरान्तः प्रविष्टे तद्वात्सल्यामृतजलनिधौ मज्जति श्रीमुकुन्दे।
तं ज्ञातक्ष्णोरविषयमभूद्भानुरंगारतुल्यास्तत्प्राप्त्यर्थं किमनु लवणाम्भोधिमासीन्निमङ्क्षुः।।८।।
(कृ० भा० १७/६)

तद्विश्लेषज्वरशमलवेऽप्यक्षमायर्ह्यभुवन् गान्धर्वाया विस–किसलयोशीरचन्द्राम्बूजाद्याः।
काप्यागत्य व्यधित ललितादेशतस्तर्हि तस्यास्तद्वृन्तान्तामृत–रसपृषत्सेचनं कर्णरन्ध्रे।।९।।
(कृ० भा० १७/७)

---

(६) इस प्रकार देवांगनाओं की कलकल ध्वनि द्वारा अपनी लघुता को सुनकर भी सूर्य उसे कर्णामृत के समान अनुभव करने लगा। लेकिन पश्चिम दिशा रूपी नागरी ने गलती से यह समझ लिया कि श्रीकृष्ण ही उसकी ओर आ रहे हैं तो वह मिथ्या अनुराग प्रकट करने लगी (सायंकाल पश्चिम दिशा अरुण हो जाती है) यद्यपि यह उसकी मूढ़ता ही थी।

(७) श्रीकृष्ण जिस गली से निकले वहाँ के भवनों पर चढ़ी हुई रमणीगण अपने नेत्रों के जल से भीगी पुष्प वर्षा करने लगीं। श्रीकृष्ण भीगे हुए पुष्पों के स्पर्श से जब ऊपर को नेत्र उठाकर देखते तो देवांगना गण 'मानो श्रीकृष्ण हमको ही देख रहे हैं' समझ कर पुलकित हो अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगती। इसमें उनका कोई दोष नहीं है कभी–२ सुनयना गणों की मुग्धता ही आनन्द प्रदान करती है।

(८) इस प्रकार मुकुन्द अपने पितामाता के अंतःपुर में प्रवेशकर मानो उनके वात्सल्य रूपी अमृत समुद्र में डूब गये। इधर सूर्य श्रीकृष्ण को अपने नेत्रों से ओझल हुआ जान विरह में अंगारे के समान हो गया और उनको प्राप्त करने की इच्छा से मानो लवण समुद्र में जाकर डूब गया।

(९) इधर श्रीराधारानी के विरह ज्वर को लव मात्र भी शान्त करने में जब मृणाल, कमलपत्र, मलयज चन्दन, कर्पूर कमल आदि समर्थ नहीं हुए उस समय नन्दीश्वर से एक सखी (तुलसी मंजरी) आकर श्रीललिताजी के आदेश से श्रीकृष्ण के वृतान्त रूपी अमृतबिन्दु उनके कानों में सिञ्चन करने लगी।

संज्ञां लब्ध्वा हरिणनयना सम्भ्रमादुत्थितोचे तप्ताश्रान्तं श्रवणमरुभूरालि ! धन्या ममाभूत्।
अस्यां स्वप्नेऽन्वभवमधुनापूर्वपीयूष वृष्टिं धिन्वत्येषा तदिह सखि ! मां शीतलीवोभवीति।।१०।।
(कृ० भा० १७/८)

आयातेयं सुमुखि ! तुलसीमञ्जरी गोष्ठ राज्ञा गेहात् सख्युस्तव यदवदद्वृत्तमस्मादजागः।
इत्युक्त्याल्या वद पुनरपीत्यम्बुजाक्ष्यादिदेश प्रेयः सायन्तन–गुणकथां प्राह मध्येसभं सा।।११।।
(कृ० भा० १७/९)

तातस्याक्ष्णोः पदमुपययावादितो गोपुराग्रे कृष्णो दोर्भ्यां पुलकिततनोरुद्गृहीतोऽथ सद्यः।
निष्पन्दस्योरसि चिरमयं भ्राजते स्म स्थिरांगः कैलासान्तः सरसि विकशन्नीलपद्मं यथैकम्।।१२।।
(कृ० भा० १७/१०)

उष्णीषाग्रं दरविघटयन्नश्रुभिः सिच्यमानं शीर्षं जिघ्रन् पिहितमकरोदास्यमस्य ब्रजेशः।
मन्ये चन्द्रं विमलशरदम्भोद आवृत्य तस्य ज्योत्सनाजालैः स्वमलमकरोदात्मतापापनुत्यै।।१३।।
(कृ० भा० १७/११)

---

(१०) श्रीराधा उसे सुनकर चेतन होकर सम्भ्रम से उठ बैठीं और कहने लगीं– हे सखि! आज मेरे तपे हुए कान रूपी मरुभूमि धन्य हो गयी मैं ऐसा अनुभव कर रही हूँ मानो मेरे कानों रूपी मरुभूमि में किसी ने स्वप्न में अमृत वर्षा कर दी हो।

(११) यह सुनकर ललिताजी कहने लगीं– हे सखि ! यह तुलसी मंजरी ब्रजेश्वरी के भवन से आयी है। इसने जो ब्रजराजकुमार की वार्ता रूपी अमृत से धीरे–२ तुम्हारे कानों को सींचा उसी से तुम चेतन होकर बैठ गयी हो। तब श्रीराधारानी कहने लगी– तुलसी ! तुमने जिसकी बात सुनाकर मुझे चेतन किया है उन प्राणेश्वर की मधुर लीला का वर्णन करो। श्रीराधा का आदेश पाकर तुलसी मंजरी श्रीकृष्ण की सायं गुण कथा, सखियों की सभा में वर्णन करने लगी।

(१२) हे सखि ! श्रीराधे ! गोष्ठ से भवन अग्रवर्ती आंगन में आते हुए श्रीकृष्ण को देखकर ब्रजराज श्रीनन्द महाराज अपनी दोनों भुजाओं को फैलाकर उनको अपनी गोद में ले लिया और उनका शरीर पुलकित होकर निष्पन्द (जड़) हो गया। उस समय पिता के वक्षस्थल से चिपके हुए श्रीकृष्ण ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो कैलाश पर्वत के मध्यवर्ती सरोवर में कोई अनुपम नीलकमल विकसित हो रहा हो।

(१३) बृजाधीश्वर श्रीनन्दमहाराज ने अपने प्राणाधिक पुत्र की पगड़ी को थोड़ा सा ऊँचा उठाकर उनका मस्तक सूंघा, उनके आंसुओं से, आपके प्राणनाथ का मस्तक भीग गया। फिर बृजराज ने अपना मुख श्रीकृष्ण के मुख पर रख कर उसे ढक दिया, जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो जल के अभाव में कोई सूर्य के ताप से तपा हुआ शरत काली शुभ्र मेघ चन्द्र की चन्द्रिका द्वारा अपना ताप दूर करने के लिये चन्द्र को आवरण करके अपने को अलंकृत कर रहा हो।

यान्ती गेहादजिरमजिराद् गेहमायान्त्यथो या शुष्यद्वक्त्रानयदतिरुजैवान्तिमं याममह्नः।
सा गोष्ठेशा तरणितनये नेत्रयुग्मात् कुचाभ्यां जह्नोः कन्ये असृजदिव तं प्रेक्ष्य सूनुं समीपे।।१४।।
(कृ० भा० १७/१२)

नांकेकर्त्तुं वलित–जड़िमा सनकण्ठी न वार्त्तां प्रष्टुं नापीक्षितुमपि यदि प्राभवत् साश्रुपूर्णा।
दीपावल्या कलित–ललितारात्रिकं राममातै–वास्याः क्रोड़े करधृतमुपावेशयत्तर्हि कृष्णम्।।१५।।
(कृ० भा० १७/१३)

किं वात्सल्यामृतजलनिधिं जन्मभूमिं विधुस्ता–मध्यास्ताहो ! किम् निजरखनिं प्रेममाणिक्यराजः।
किं कस्तूरीद्रवचिततनोः स्नेहपीयूषपुत्र्याः कुक्षेर्भूया हरिमणिरभादर्पितः साधु धात्रा।।१६।।
(कृ० भा० १७/१४)

यावन्मामाकलय जननीत्याक्षिधारां स्वहस्ते–नोन्मृज्यास्याः स मुदमतनोन्नीति–हंसीतड़ागः।
गोधूलीनां ततिमधितनु क्षालयदिभः पयोभिः स्तन्येरेव व्यरचि रुचिरं लालनं तस्य तावत्।।१७।।
(कृ० भा० १७/१५)

---

(१४) हे सखि गोष्ठेश्वरि श्रीयशोदारानी जो अपने पुत्र को वन से लौटकर आने में विलम्ब होता हुआ देखकर घर से आंगन और आंगन में घर की ओर बार–२ गमनागमन कर रहीं थीं और अपने पुत्र के अनिष्ट की आशंका से जिनका मुख सूख रहा था, जो अत्यंत दुःख के साथ दिन के अंतिम प्रहर को बिता रहीं थी वे हठात् प्राणप्यारे पुत्र को नेत्रों के सामने देखकर नेत्रों से दो यमुना की एवं स्तनों से दो गंगा की धारा बहाने लगीं।

(१५) श्रीब्रजेश्वरि यशोदा रानी जड़ की तरह हो गयी अतः न तो वे अपने पुत्र को गोद में ले सकीं, रुद्धकण्ठ हो जाने से न कुछ बोल पाईं, एवं अश्रुयुक्त नेत्र हो जाने से उनको देखने में भी असमर्थ हो गयीं तब बलदेव जननी श्रीरोहिणी जी ने दीप से आरती कर के श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ कर उनको उनकी माता की गोद में बैठा दिया।

(१६) हे सखि राधे ! जननी की गोदी में बैठे हुए श्रीकृष्ण ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो अपनी जन्मभूमि सदृश वात्सल्यरूपी–अमृत सरोवर की गोद में मानो चन्द्र ही विराजमान हो अथवा प्रेम रूपी माणिक्यराज अपनी खान में बैठा हो, अथवा स्नेह रूपी अमृत को कस्तूरी आदि द्रव द्वारा श्याम वर्ण का बनाकर उसकी मूर्ती (पुतली) तैयार करके पुनः उसके पेट पर किसी हरिमणि (इन्द्रनीलमणि) को विधता ने सुन्दर रूप से सजा दिया हो।

(१७) जननी की गोद में विराजमान होने पर भी जब माता की जड़िमा दूर नहीं हुई तब मातृवत्सल ब्रजचन्द्र श्रीहरि बोले, "हे माता मैं तो तुम्हारी गोद में बैठा हूँ तुम मुझे न देखकर केवल नेत्रों से अश्रुधारा को पौंछते हुए उनको परमानन्द प्रदान किया। माता भी अपने पुत्र के अंग पर लगी गोधूलि को अपने वक्षसील के दूध द्वारा धोते–२ उनका लालन करने लगीं।

आनन्दोर्मिष्वनुपरमणीष्वप्यमुं चेतयन्ती कृत्ये प्रावर्त्तयदभिमते यर्हि वात्सल्य–लक्ष्मीः।
तर्ह्येवासौ स्वतनय–तनुं पाणिनामृज्य दासीरस्याभ्यंग–स्नपनलपनोन्मार्जनादौ न्ययुंक्त।।१८।।
(कृ० भा० १७/१६)

वत्स! स्वच्छप्रणय! सदने वर्त्तते या निषन्नामन्ये नास्यां तव दरदयाप्युद्भवेदाकुलायाम्।
यातस्तात! स्वकुलकमल! त्वं वनं यत् स्मृतेरप्येनां संगे न हतजननीमानयस्ये कदापि।।१६।।
(कृ० भा० १७/१७)

अह्नि प्राप्तेऽप्युपरममिहात्यान्तदैर्ध्यैऽपि जात त्वं नायासि स्वगृहमदराम्रेड़ितोऽपि स्वपित्रा।
क्षामो व्यामोहयसि यदमून् क्षुत्पिपासासहः स्वद्रष्ट्न बन्धूंस्तदलमसुभिर्मातुरेतैः कठोरैः।।२०।।
(कृ० भा० १७/१८)

अम्बावेहि त्वमतिचटुलं प्लावितं खेलनाब्धौ वालालीर्भिमम सवयसं स्वं च न स्मर्तुमीशम्।
शिष्टोऽस्म्येको न यदिममितोऽवारयिष्यं तदायं नैष्यत् सम्प्रत्यपि गृहमिति प्राह राज्ञीं वटुः सः।।२१।।
(कृ० भा० १७/१६)

---

(१८) तब जननी की आनन्द तरंग शान्त नहीं होती हुई देखकर मानो वात्सल्यलक्ष्मी ने जननी को यथायोग्य कार्य में नियुक्त कर दिया उस समय ब्रजेश्वरि अपने पुत्र के श्रीअंग को अपने हस्तकमल द्वारा पौंछने लगीं और दासीगण को भी उन्हें स्नान–मार्जन आदि सेवाओं में नियुक्त कर दिया।

(१६) स्नेह से आर्द्रहृदया जननी कहने लगी, "हे वत्स, हे स्वच्छप्रणय (शुद्ध प्रेम जानने वाले) तुम्हारे गौचारण के लिये वन में जाने पर मैं तुम्हारे लिये अत्यंत व्याकुल हो जाती हूँ। हे चन्द्रवदन! मुझ पर तुम्हें जरा सी भी दया नहीं आती। हे तात, हे हमारे कुल के कमल! तुम एक दिन भी तो अपनी हतभाग्या अपनी जननी को वन में संग लेकर नहीं जाते।

(२०) हे करुणाशील हृदय वाले गोपाल इतना बड़ा ये दिन किसी तरह बीतता है और फिर भी तुम अपने पिता के बार–२ बुलाने पर भी घर को नहीं आना चाहते। क्षुधा पिपासा से तुम्हारा यह शरीर कितना दुर्बल होता जा रहा है जिसको देखकर तुम्हारी सभी बन्धुगण (आत्मीयजन) अत्यन्त व्याकुल अवस्था को प्राप्त हो रहे हैं। तुम्हारी यह दशा देखकर यह कठोर प्राण, क्यों धारण कर रही हूँ अर्थात् मेरे जीवन का क्या लाभ है।

(२१) जननी के इस प्रकार वचनों को सुनकर मधुमंगल कहने लगा, हे माता! हमारा यह अति चंचल सखा श्रीकृष्ण वालाली (सखा मण्डली, दूसरे अर्थ में सखीगण) के साथ खेलों में इतना डूब जाता है कि अपने को ही भूल जाता है फिर तुम्हारा स्मरण भला कैसे करेगा। इन सब में एक मैं ही समझदार हूँ। यदि मैं इनको नहीं समझाऊँ तो संध्याकाल तक यह खेलप्रिय श्रीकृष्ण घर को लौटकर न आए।

तथ्यं व्रूषे कथमपि न ये मन्यमाना निषेधं वाला एव प्रखरनखराः प्रत्यहं बाहुयुद्धे।
नीलाम्भोजादपि मृदु वलादंकयन्त्यस्य गात्रं तत् किं कुर्वे चपलतनये नात्र कोऽप्यस्त्युपायः।।२२।।

(कृ० भा० १७/२०)

इत्थं तत्संलपितमपि तत्राहमाकर्णयन्ती कृत्यं तात्कालिकमकरवं यत्तयादिष्टमिष्टम्।
रोहिण्यागादथ रसवतीं पौर्णमासी किलिम्बा–धात्रीगार्ग्यादिभिरपि सहालालयत् स स्वसूनुम्।।२३।।

(कृ० भा० १७/२१)

क्षणमजिरतले विलम्बमाना, ब्रजपतिपत्न्यतियत्न–सावधाना।
सुत–परिचरणाय वालभृत्यान् समुपदिदेश निसर्गचारुकृत्यान्।।२४।।

(कृष्णा० ५/४८)

अहरत कतमः प्रकृष्टतुष्टी रसिकवरस्य विषाण वेणु यष्टिः।
उदहृत वनमालिकामथान्यः समकृषदाभरणानि कोऽपि धन्यः।।२५।।

(कृष्णा० ५/४९)

उदहरवतार्य मौलिबन्धं, मृदुतर–कञ्चुकमञ्चित–प्रबन्धम्।
अवयव–वलयादतिवसारः, सुरभिः रजांस्यपसारयाञ्चकार।।२६।। (कृष्णा० ५/५०)

(२२) श्रीवृजेश्वरि जी ने कहा, हे वत्स ! मधुमंगल ! सत्य ही कह रहे हो। मै। प्रतिदिन इस कृष्ण के अंगों में नखक्षत के चिह्न देखती हूँ। प्रखर नखों वाले बालमण्डली (सखा, सखी दोनों अर्थ में) मना करने पर भी नहीं मानते। वे प्रतिदिन बाहुयुद्ध (कुश्ती) द्वारा नीलकमल से भी कोमल अंग वाले मेरे बालगोपाल के अंग पर नखों का चिह्न अंकित कर देते हैं। मैं क्या करूं इस चंचल पुत्र की निर्विघ्न कहाँ रक्षा करुँ ?

(२३) इतना कहकर तुलसी मंजरी श्रीराधारानी को कहने लगीं– हे सखि राधे ! मैं इस प्रकार बृजरानी के आदेश से श्रीकृष्ण के अंगों को झाड़पौंछ कर तैल आदि लगाना यह सेवा करने लगी। फिर श्रीरोहिणी माता ने रसोई बनाने के लिए रसोईघर में प्रवेश किया। इधर श्रीयशोदाजी पौर्णमाशी, किलिम्बा, मुखरा और गार्गी आदि सभी मिलकर श्रीकृष्ण का लालन करने लगीं।

(२४) श्रीयशोदारानी कुछ क्षण भवन के चबूतरे पर प्रतीक्षाकर, अति यत्न एवं सावधानी के साथ, स्वभाव से ही सेवापरायण बालसेवकगणों को अपने पुत्र की परिचर्या करने का सम्यक उपदेश देने लगीं।

(२५) तदनुसार किसी सेवक ने बड़े आनन्द के साथ रसिकवर श्रीकृष्ण के हाथ से, सींगा वेणु और छड़ी आदि ले लिये, अन्य किसी ने वनमाला उतार ली, और किसी अन्य धन्य भाग्य वाले सेवक ने उनके अंग से गहने उतार लिये।

(२६) अति श्रेष्ठ एक दास ने सिर पर बंधी पगड़ी उतारी और बगलबन्दी की गांठे धीरे–२ खोलीं, फिर अंग पर लगी गौरज को धीरे–२ पौंछ दिया।

वसनमितर आशु लम्भयित्वा, मुखपदपद्मधावयन्मुदित्वा।
कचभरमथ कंकती–मुखेन, प्रचुरमशूशुद्धुदुद्यता सुखेन।।२७।।

(कृष्णा० ५/५१)

कृतिभिरवयवोऽस्य चारुशीलैः सुरभि–सुराग–सुपक्वव्यितैलेः।
प्रणयपटुभिरभ्यमर्दि दासै–मृदुतरमानरवमूर्द्धमन्दहासैः।।२८।।

(कृष्णा० ५/५२)

मसृणघुसण गन्ध सारचूर्णै–र्घनघनसार–रजोभरेण पूर्णैः।
अकृत–तनुविरुक्षणं च कश्चित् प्रणयविलास–कलावशो विपश्चित्।।२६।।

(कृष्णा० ५/५३)

अकृत कचविशोधने प्रकर्ष, सुरभितरामलकी कषायघर्षम्।
घनतर–घनसार–सारगन्धै, रपघनसेकमकल्पयत् कवन्ध्यैः।।३०।।

(कृष्णा० ५/५४)

मृदुसित सिचयाञ्चलावलीभिर्ममृजुरथांगकमंगर्माजनीभिः।
कचभरमपि निर्जलीचकार स्तिमितपटेन निपीड्य कोऽप्युदारः।।३१।।

(कृष्णा० ५/५५)

---

(२७) अन्य एक सेवक ने एक छोटे से वस्त्र से आनन्दपूर्वक श्रीकृष्ण के मुख एवं चरण कमलों को पौंछ दिया एवं महासुख का अनुभव करते हुए कंघी लेकर उनके केशों को ठीक से सम्हार दिया।

(२८) पुण्यवान, सुन्दरचरित्र वाले, प्रेमिक दासगणों ने मृदुमन्द हंसते हुए, सुगन्धी, सुन्दररंग वाले सुपक्वदिव्य तैल से श्रीकृष्ण के नख से मस्तक पर्यन्त समस्त अंगों को अच्छी तरह मृदु–२ रूप से मालिश कर दी।

(२६) कर्पूर मिश्रित, कुंकुम एवं चन्दन के अति स्निग्ध कोमल चूर्ण द्वारा किसी प्रेमकला रस में चतुर सेवक ने अंगों को स्निग्ध कर दिया।

(३०) किसी सेवक ने केशों को धोने के लिये सुगन्धित आंवले के रस को अच्छी तरह मींड (मलकर) कर मुलायम बना लिया फिर घने चन्दन की सुगन्धि युक्त जल से उनके प्रति अंग का अभिषेक (स्नान) कराया।

(३१) तत्पश्चात् एक उदार सेवक ने कोमल श्वेत वस्त्रखण्ड तथा कोमल अंगमार्जनी (झांवा) द्वारा उनके अंगों को स्वच्छ बनाया तथा एक गीले वस्त्र को निचोड़कर उनके केशों के जल को सुखाया।

स्तिमितवसनमाशुहापयित्वा, पटमपरं मृदुपीतमापयित्वा।
अतिमृदुलमतीव दर्शनीयं व्यधितमहोरसि पीतमुत्तारीयम्।।३२।।

(कृष्णा० ५/५६)

अकृत कचकलापमम्बुरिक्तं, पुनरपि कंकतिका–मुखोपरक्तम्।
शिरसि च मृदुसूक्ष्मचारुशुभ्रां कचभर वेष्टनिकां चकार दभ्राम्।।३३।।

(कृष्णा० ५/५७)

अलिखदलिकमध्यमत्युदारं, तिलकमनिन्दितगन्ध–गन्धसारम्।
अलिपत घनसार–सारितांके, र्वपुरघनैर्हरिचन्दनस्य पंकैः।।३४।।

(कृष्णा० ५/५८)

अथ मणिमय–मण्डनानि गात्रे, न्यधित यथासमयानिचारुचित्रे।
चरणयुगमकल्पयत् सुधौतं, मणिमय–काञ्चन–पट्टिकोपनीतम्।।३५।।

(कृष्णा० ५/५६)

लघुललितमहो विशन् स सद्म, प्रियसख–पाण्यवलम्बि–पाणिपद्मः।
परिहृतमणिपादुको विनम्र, पितरमवन्दत भक्तिभाव कम्रः।।३६।।

(कृष्णा० ५/६०)

---

(३२) फिर एक दास ने श्रीकृष्ण के अंग से भीगे वस्त्र उतरवाये और एक कोमल पीताम्बर धारण करया तथा उनके विशाल वक्ष पर एक अति सुन्दर पीला दुपट्टा धारण करा दिया।

(३३) पुनः किसी दास ने श्रीकृष्ण के घने–२ केशों को सुखया और कंघी से सुलझाकर उन्हें सुन्दर रूप से सजाया, फिर सिर पर एक कोमल, सूक्ष्म, शुभ्र (सफेद) छोटी सी पहाड़ी बांध दी अथवा पहना दी।

(३४) तत्पश्चातृ किसी सेवक ने ललाट पर दिव्य गन्ध से युक्त चन्दन से अति सुन्दर तिलक रचना कर दी तथा कर्पूर मिश्रित हरिचन्दन का पतला लेप श्रीकृष्ण के श्रीअंगों पर कर दिया।

(३५) फिर किसी सेवक ने श्रीकृष्ण के अति सुन्दर विचित्र शोभा वाले श्रीअंगों में समयोचित अलंकार पहना दिये और सुन्दर रूप से स्वच्छ श्रीचरण युगलों में स्वर्णपादुका धारण करा दी।

(३६) तदनन्तर अहो ! प्रिय सखा के दाहिने हाथ में अपने वाम हस्तकमल को अर्पण कर के (पकड़कर) श्रीकृष्ण धीरे–२ सुन्दर रूप से (मनमोहन चाल) अपने कक्ष में प्रवेश कर रहे हैं। उन्होंने अपनी मणिमय पादुका उतारीं और अति विनय एवं भक्ति भाव से भरकर अपने पिता की वन्दना की।

दृढ़तरमुपगूह्य तेन हर्षे, प्रसरणमीयुषि शिंघिता स शीर्षे।
अभजत वरमासनं स तेना, प्युपविशतानुमतः शनैरनेनाः।।३७।।

(कृष्णा० ५/६१)

चिरमुपचरितः स चैवमेव, स्वपरिजनैर्विरराज रामदेवः।
पितरमवननाम सोऽप्यमन्द प्रणयवशादुपगूह्य चाननन्द।।३८।।

(कृष्णा० ५/६२)

ब्रजपति–तनयद्वय–द्वितीया–शनसमयोचित–पाक पालनीया।
अघरिपुजननीं पुरोगमाता–मजनिपचेतिजगादराममाता।।३९।।

(कृष्णा० ५/६३)

ब्रजपति–गृहिणींगित–प्रणुन्ना–नवनवदासदासिकाः प्रसन्नाः।
व्यधिषत–मणिपीठपात्र–भृंगा–रकमुचित–स्थलसंगि जातरंगाः।।४०।।

(कृष्णा० ५/६४)

सार्द्धं मित्रैः सपदि विहितस्नानभूषानुलेपं रामं कृष्णं वटुमपि सुखेनोपवेश्य व्रजेशा।
आदाविष्टं सुरभि–शिशिरं पानकं पाययित्वा नानाभेदं त्रिविधमथ सा भोजयामास भक्ष्यम्।।४१।।

(कृ० भा० १६/२३)

(३७) अत्यंत आनन्द में भरकर नन्दमहाराज ने उनका गाढ़ आलिंगन किया और मस्तक सूंघा फिर आसन पर विराजमान होकर श्रीकृष्ण को भी बैठने की अनुमति प्रदान की तथा वे आनन्द चरित श्रीहरि श्रेष्ठ आसन पर विराज गये।

(३८) अपने परिचारकों द्वारा ठीक इसी प्रकार से बहुत समय तक सेवित होकर (जिस प्रकार दासों ने श्रीकृष्ण की सेवा स्नान, श्रृंगार किया) श्रीबलराम जी ने भी आकर पिता को प्रणाम किया और नन्द महाराज ने उनका भी प्रचुरवात्सल्य भाव से विभोर होकर आलिंगन किया और परमानन्द को प्राप्त हुए।

(३९) श्रीनन्दमहाराज के दोनों पुत्रों श्रीकृष्ण बलराम के लिये द्वितीय बार भोजन निमित्त समयोचित रसोई बनाने वाली माता रोहिणी ने यशोदाजी के सम्मुख आकर कहा कि रसोई का सामान बनकर तैयार हो गया है।

(४०) तब माता यशोदाजी के इंगित को पाकर प्रेरित हुई नव–२ दासियों ने प्रसन्न चित्त से कौतुक के साथ उचित स्थानों पर मणिमय आसन, पात्र, और झारी आदि में जल रख दिया।

(४१) शीघ्र ही स्नान, आभूषण, अनुलेपन आदि धारण करके अपने मित्रवृन्दों के साथ श्रीकृष्ण, श्रीबलराम, मधुमंगल आ गये। श्रीवृजेश्वरि माता यशोदा ने सबको यथास्थान सुखपूर्वक बैठाया। प्रथम उनको जो रुचिकर मीठा सुगन्धित शीतल पेय पान कराया फिर नाना प्रकार के त्रिविध प्रकार के भक्ष्य (खाने योग्य) चोक्ष्य (चूसने योग्य) लेध्य (चटनी आदि) द्रव्यों का भोजन कराया।

एतद्वोऽतिप्रियमिति यदा सीधुकेल्यादि तेभ्यो युष्मत्पक्वं वटकपटलं पञ्चभेदं ददौ सा।
सस्नौ पञ्चेन्द्रियमपि–तदैवाशु तेषां प्रमोदै–स्तत्सौरभ्य म्रदिम–सुरसाख्यान्–रूपामृताब्धौ।।४२।।

(कृ० भा० १६/२४)

एतद्गन्धोऽप्यनुभवथं यस्य भाग्योदयासीत् तस्मै स्वर्गो जननि ! किमितो रोचते वा पवर्गः ?
धिग् धातारं यदयमुदरं नैव चक्रे विभुं मे ये मा देहीत्यभिदधति तान् सागसोऽत्र व्रवीमि।।४३।।

(कृ० भा० १६/२५)

हसन्तो हासयन्तस्ते मधुमंगलनर्मभिः।
भुक्त्वा पीत्वा मुदाचाम्य क्षणं तल्पे विशश्रमुः।।४४।।

(गोवि० २०/१५)

प्रथमविधृत–वेशभूषणानां, कृतपरिवर्त्तनमन्यथाकृतानाम्।
समयसमपरिग्रहं विधाय, प्रयततेङ्घ्रिसरोज–धावनाय।।४५।।

(कृष्णा० ५/७२)

---

(४२) भोजन कराते समय माता यशोदा उनको कह रहीं थीं 'हे' बलदेव ! हे मधुमंगल ! हे कृष्ण ! हे बालकगण ! यह पदार्थ तुमको अति प्रिय हैं' ऐसा कहते हुए हे सखि राधे ! तुम्हारी प्रस्तुत की हुई सीधुकेलि आदि पांच प्रकार के बड़ों वाले मिष्ठान्न बहुत प्यार से उनको प्रदान किये (खिलाये)। उनको पाने से उन सबकी पाँचों इन्द्रियाँ, रूपामृत सागर में नेत्र, गुणकीर्तन रूप अमृत सागर में वाणी, सुगन्ध ग्रहण रूपी अमृत सागर में नासिका, सुस्वादु ग्रहण में रसना, कोमलता का अनुभव करके स्पर्श द्वारा हस्तद्वय मानों पाँचों अमृत के सागर में डूब गयीं।

(४३) भोजन करते–२ परिहास पटु वटु कहने लगा, हे जननी ! इन लड्डुओं की सुगन्धी भी जिनके भाग्य में होती है उनको स्वर्ग और मुक्ति तुच्छ प्रतीत होती है। हे माता ! जिस विधाता ने मेरा पेट बहुत बड़ा सा नहीं बनाया उसको धिक्कार हैं और जो व्यक्ति भोजन करते समय 'बस और मत दो' ऐसा कहते हैं वे तो अपराधी ही हैं।

(४४) अन्यान्य सभी सखाओं ने भोजन किया, जल पिया और सहर्ष आचमन करके कुछ समय शैय्या पर जाकर विश्राम किया।

(४५) तत्पश्चात् उनकी पहले धारण की गयी वेषभूषा अस्तव्यस्त हो गयी अतः उसे बदलकर पुनः समयोचित अन्य वस्त्राभूषण धारण किये और चरण कमल प्रक्षालन (दासों द्वारा अति यत्नपूर्वक कराये।)

अथ सुखमुखवास वासितास्यः, स्फुरदमृतद्रवमुग्धमन्दहास्यः।
सुविहितपितृमातृवन्दनान्तः स वहिरभूदघमर्दनोऽगनान्तः।।४६।।

(कृष्णा० ५/७३)

अमृतकरकदम्बकापवाद, क्षम मधुराननमण्डलप्रसादः।
सहचरकृत–सद्गुणानुवादः प्रियमणिपादुकयोपगूढपादः।।४७।।

(कृष्णा० ५/७४)

दासा भृंगार–ताम्बूलपात्र–व्यजनपाणयः।
निर्योग–पाशवेत्रादिधारिणस्ते तमन्वयुः।।४८।।

(गोवि० २०/२३)

विदधदनुचरांस–सीम्नि वामं, भुजभपरेण करेण चाभिरामम्।
प्रिय सहचरदत्त–नागवल्ली, च्छदनमदनप्रविवेश घोषपल्लीः।।४६।।

(कृष्णा० ५/७५)

इत्येतस्या मुखविधुवरादञ्चलग्रन्थितश्च प्राप्त्यै राधासहसवयसा प्रेयसस्तैरभीष्टैः।
लीलाफेलामृतरसभरैः श्रावणी–रासनीभ्यां मुद्भ्या सिक्तानकृत शिशिरान् निम्नगाभ्यामिवासून।।५०।।

(कृ० भा० १७/२७)

श्रीकृष्ण की गौदोहन लीला एवं श्रीराधारानी द्वारा श्रीकृष्ण का अधरामृत प्रसाद ग्रहण करना

(४६) तदनन्तर श्रीकृष्ण ने सुखद मुखवास (पान, इलायची, लवंग आदि) द्वारा मुख सुवासित किया और अमृत रस से झरते हुए मुख से मृदुहास्य करते–२ बाहर आंगन में जाकर अपने माता पिता की चरण वन्दना की।

(४७) उनके मनोहर मुखारविन्द की प्रसन्नता के आगे कोटि–२ चन्द्र भी लज्जित हो रहे थे। सखावृन्द उनीक कल्यानमयी गुणावली का गान करने लगे। उन्होंने चरणों में मणिमय पादुका धारण की।

(४८) इधर दासगण जलपात्र, पानपात्र, व्यजन, निर्योगपाश (गाय के पैर बांधने की डोरी) वेत्र आदि लेकर श्रीकृष्ण के पीछे–२ चलने लगे।

(४६) श्रीकृष्ण ने बांयी भुजा अपने प्रिय सखा के कंधे पर रक्खी हुई थी और दायीं भुजा द्वारा अपने प्रिय सखा द्वारा दी गयी पान की बीरी को आरोगते हुए गौशाला में प्रवेश किया।

(५०) इतना कहते हुए तुलसी मंजरी ने अपने अंचल की गांठ खोलकर श्रीकृष्ण के भोजन का अवशिष्ट (बचा हुआ प्रसादी) कुछ प्रसाद दान किया। श्रीकृष्ण के अधरामृत के रस को श्रीराधा और उनकी सब सखियों ने ग्रहण किया। श्रीकृष्ण की लीलामृत को सुनकर इनकी श्रवणेन्द्रिय एवं प्रसाद को ग्रहण कर रसनेन्द्रिय को अत्यंत आनन्द प्राप्त हुआ। मानो ये दो अमृत की नदियों में डूब गयीं।

निःसृत्यासावथ गुरुपुरोदेत्य कासारतीरं तत्रोद्यानान्तरगत वरक्षौममारुह्य सालिः।
वक्त्रज्योत्सनामधयदपराऽलक्षिता यन्मुरारे–स्तेनाविन्दन् मुदमुदययिनीं चाक्षुषीमप्यपाराम्।।५१।।
(कृ० भा० १७/२८)

आस्योदञ्चत् कुटिलचिकुराच्छादकोष्णीराजे मुक्तामुक्ता दर चलति किं कानकी सूत्रपंक्तिः।
किं वा चन्द्रोपरि घनतमोग्रासकोद्यदद्युरत्न–द्योते विद्युल्लसति चपला भावलि–प्रोतमूला।।५२।।
(कृ० भा० १७/२९)

धर्मध्वान्तं ब्रजकुलभुवां भिन्दती स्वैर्मयूरवै–रेते गण्डद्वयमनुचले कुण्डले नाघशत्रोः।
अग्रे स्थातुं तरणियुगलं नेशमेवाननेन्दोः पार्श्वद्वन्दं भजति नटनैः प्राणनार्थं यदस्य।।५३।।
(कृ० भा० १७/३०)

कन्दर्पो यत् स्वमकरयुगं कर्णनद्धं व्याधान्नो विध्यन्नस्येक्षणशितशरैर्वाढमेकाग्रचित्तः।
तत्रोत्तंस–स्तवदलिघटा–झंकृतित्रस्तमेतद्–यत्नान्मौग्ध्यादपसृतिकृते हन्त ! किंवा विधत्ते।।५४।।
(कृ० भा० १७/३१)

---

(५१) श्रीकृष्ण गौदाहन करने के लिये गौशाला में आ गये हैं। यह वार्ता श्रवण करके श्रीराधा सायंकालीन स्नान के बहाने गुरुगृह (ससुराल) से निकलकर पावन सरोवर के तीर पर स्थित उद्यान में आ गयीं। वहाँ एक अपूर्व अट्टालिका पर सखियों के साथ विराजमान होकर, अन्य जनों की दृष्टि से अलक्षित (कोई अन्य जन न देख सकें) रहकर श्रीकृष्ण चन्द्र के मुख की चन्द्रिका को चकोरी के समान पान करने लगीं जिससे इनके नेत्रों को अपार आनन्द की प्राप्ति हुई।

(५२) श्रीराधिका, श्रीकृष्ण के मुखारविन्द का दर्शन कर उसकी शोभा का वर्णन करने लगीं– हे सखि ! इस नवनागर के मुख के ऊपर स्थित कुटिल अलकों को ढकते हुए सुन्दर पाग है उस पर मुक्ताओं से बंधे हुए सोने की लड़ियों वाला तुर्रा क्या सुन्दर हिल रहा है। हे सखि मानो तो चन्द्र के ऊपर घने अंधकार को नाश करने वाली सूर्य की किरणें जिनके नीचे तारे गुंथे हुए हो, ऐसी कोई विद्युत शोभा पा रही हो।

(५३) हे सखि ! जो अपनी कान्ति द्वारा बृजकुलललनाओं के धर्म (कुलमर्यादा) रूपी अंधकार का नाश कर रहे हैं ऐसे श्रीकृष्ण के गण्डस्थल पर झूलते हुए ये कुण्डलद्वय हैं। सखि ये कुण्डलद्वय नहीं ऐसा लगता मानो श्रीकृष्ण के वदन चन्द्र के सामने आने में असमर्थ होते हुए, नृत्य द्वारा उनको प्रसन्न करने के लिए उनके दोनों ओर दो सूर्य ही हों।

(५४) हे सखि ! प्रियतम श्रीकृष्ण के कानों में जो मकराकृति कुण्डल हैं इन पर बैठकर तो मानो कामदेव ही, श्रीकृष्ण के कटाक्ष रूपी तीखे वाणों द्वारा हमारे मन को विद्ध कर रहा है, लेकिन वाण छोड़ते समय कुसुमित चूड़ा पर गुनगुनाते हुए भ्रमरों की झंकार से कहीं उसकी एकाग्रता नष्ट हो जाय और भय से उसका आसन (मकरकुण्डल हिल जाय) हिलने से उसका लक्ष्य कहीं चूक न जाय इसीलिये उसने अपने आसन मकरकुण्डलों को मानों श्रीकृष्ण के कानों से बांध दिया है।

स्वच्छं स्निग्धं नयनयुगलं प्राप ये हन्त ! कान्ते ते तारे सम्भृतमदभरे चंचले द्रागभूताम्।
ताभ्यां ये वा जनिषत सुतास्ते जनान्तापुरेभ्यः कृष्ट्वा कृष्ट्वा धृतिकुलवधुंदूषयन्ते कटाक्षाः।।५५।।

(कृ० भा० १७/३२)

सर्वाशोद्यत्तरसि दृशि यद्दस्यवोऽनंगनद्यां हर्षोत्सुवयाधृतिमदमुखाः सन्ति सञ्चारिणोऽमी।
तारा—नाम्नीं हरिमणिमयीं नावमाश्रित्यलोलां तद्रामाणां नयन वणिजां लुण्ठनायेति विद्मः।।५६।।

(कृ० भा० १७/३३)

नैतन्मन्दस्मित मुदयते शोणबिम्बाधरोष्ठात् बन्धूकाभ्यां जगदलिकृते च्योतते नो मरन्दः।
लक्ष्मीभूते मम सखि ! दृशौ वैद्रम—स्मारयन्त्रोन्मुक्तं पश्य प्रविशति बलात् किन्तु कार्पूरनीलम्।।५७।।

(कृ० भा० १७/३४)

निर्वण्यैवं प्रियमुखविधुं तां ह्रियेवोर्म्मिमध्ये हर्षामभोधेः सपदि विशती चेतयन्ती विशाखा।
प्रोचे पश्य प्रियसखि ! हरेर्दोहलीलां यदर्थं सायं श्वश्रुगिरमतिकटुं वेत्सि पीयूषकल्पम्।।५८।।

(कृ० भा० १७/३५)

---

(५५) हे सखि ! और एक कौतुक की बात सुनो, श्रीकृष्ण के नेत्र युगल बड़े ही स्वच्छ और स्निग्ध हैं किन्तु इन दोनों को जो तारा नामक रमणी प्राप्त हुई है वह मदमत्तता के कारण बड़ी चंचल है। अतएव उसके जो कटाक्ष नामक पुत्रगण उत्पन्न हुए हैं वे माता (तारा) के दोष से बड़े ही उद्दण्ड हैं। वे रमणियों के अंतःपुर में प्रवेश कर धृतिरूपी (धैर्य) कुलवधुओं का अपहरण कर उनको दूषित कर देते हैं।

(५६) हे सखि जरा देखो तो सही, इन नटनागर की दृष्टि तो मानो कोई कामदेव की नदी है जिसका सब ओर प्रवाह है और इसमें जो तारा नाम की नील मणिमयी नौका है उसमें हर्ष, औत्सुक्य, धैर्य, मद आदि सब ओर डकैती डालने वाले दस्युगण बैठे हुए हैं। बृजसुन्दरियों के चंचल नेत्र रूपी व्यवसायी वर्ग का तो वे सर्वस्व ही लूट रहे हैं ऐसा ही अनुभव हो रहा है।

(५७) हे प्रियसखि ! देखो इन मोहन नागर के लाल—२ बिम्बाफल सदृश ओष्ठद्वय इनसे जो मन्द—२ स्मित निकल रहा है वह तो मानो जगत रूपी भ्रमर के लिए मानो बन्धुक (लाल रंग का फूल) कुसुम युगल से मकरन्द झर रहा हो लेकिन मुझे तो ऐसा अनुभव हो रहा है मानो किसी विद्रुममणि से बनी हुई कन्दर्प की पिचकारी से कर्पूर का जल ही मेरे नेत्रों में प्रवेश कर रहा है।

(५८) इस प्रकार प्रियतम के मुखचन्द्र का वर्णन करते—२ लज्जापूर्वक हर्ष समुद्र की तरंगों में श्रीवृषभानु नन्दिनी डूबने लगीं। श्रीविशाखा ने तभी उनको चेत कराते—२ कहा— हे प्रिय सखि! श्रीकृष्ण की दोहन लीला का अवलोकन करो। जिनका दर्शन करने के लिए सायंकाल सास की अति कटु वाणी को भी आप अमृतसदृश ही मान लेती हैं।

विकसित कुमुदेक्षणा त्वरा या, विगलित—भास्करनिष्क—शुद्धकाया।
तमभजदथ सौभगादसूक्ष्मी, भवदनुरागरसा प्रदोषलक्ष्मीः।।५६।।

(कृष्णा० ५/१६)

परित उपपतत्सु पक्षिलक्षे—ष्वपरिमिते स्वकुलाय—केलिवृक्षे।
अनुभवनतलं ज्वलत्सु दीपे—ष्वकिरणधूसरिते दिशां समीपे।।६०।।

(कृष्णा० ५/७७)

दिशि विदिशि रुवत्सु तर्णकेषु प्रतिरुवतीषु च वत्सलासु गोषु।
प्रसरति च गवां द्वितीयदोहे मतिमति गोपकुले निरस्तमोहे।।६१।।

(कृष्णा० ५/७८)

तमुपनतमभीक्ष्य दिव्यरूपैः, सुरभिरुतैश्चलमंगल—प्रदीपैः।
सुरभिगृहरुचो भवन्नुलूला—रवरसना—चलनादिवानुकूलाः।।६२।।

(कृष्णा० ५/७६)

अथ हरि—हरिदंगनाभिरामं, हरिमवलोकितुमुत्सुकेव कामम्।
लघुतरमुदनीनमत् सरागं, हिमकिरणाननमुन्महःपरागम्।।६३।। (कृष्णा० ५/८०)

---

(५६) हे सखि ! ये देखो खिले हुए कुमुदरूपी नेत्रों वाली, अस्त को जाते हुए सूर्य रूपी हार को खोलकर (उतारकर) मानो हल्के शरीर से शीघ्र चल कर आती हुई प्रदोष रूपी लक्ष्मी, महा अनुराग से भरी हुई (संध्याकालीन लालिमा) सौभाग्य से भरकर श्रीकृष्ण की सेवा में तत्पर हो गयी हो।

(६०) असंख्य घौंसले वाले वृक्षों में चारों ओर से लाखों—२ पक्षी उड़—२ कर आने लगे। प्रति घर में दीपक जल गये हैं। दिशाओं में सूर्य का प्रकाश बहुत हल्का पड़ गया है अतः वे धूसरित (धुंधली) हो गयी हैं।

(६१) चारों दिशाओं में बछड़ों ने रम्भाना शुरु कर दिया है। गउओं के दुहने का दूसरा समय (संध्या) आ गया है। उदार स्वभाव वाले गोप गण भी मानो मोह से रहित हो गये है।

(६२) श्रीकृष्ण को समीप आया देखकर मानो गौशाला की शोभा रूपी रमणी चंचल प्रदीप रूपी रसना से और गउओं के उच्चनाद रूपी ध्वनि से (हुल हुल करती हुई) मानो उनकी आरती उतार रही हैं।

(६३) इधर देखो पूर्व दिशा रूपी कामिनी अति सुंदर रूप वाले श्रीहरि को देखने के लिये अत्यंत उत्कंठिता होकर, अनुराग से भरकर और ऊपर की ओर अपनी कान्ति की किरणों को फैलाती हुई अपने चन्द्र रूपी मुख को मानो धीरे—२ बाहर निकाल रही है।

विघटयदिन सर्वतो विसारां, तिमिरपटीमवगुण्ठन–प्रकाराम्।
मुखमिह हरिदिग् विलासवत्या, विधुरुदियाय चिराभिलाषवत्याः।।६४।।

(कृष्णा० ५/८१)

शशधर–धवलासु तासु गोषु, स्फटिकघटाचटुलासु कौमुदीषु।
असितखुरविषाण कान्तिभेदा, दुदयति गोधनीधीर्विधूतखेदा।।६५।।

(कृष्णा० ५/८२)

तुलित–रजतशैल–गण्डशैलः, सुखमकरोच्छयनं स्वतन्त्रलीलः।
वृष वृषभगणस्तु तत्र सायं, गृहमुनिवत् स यतस्ततोऽनपायम्।।६६।।

(कृष्णा० ५/८३)

ललितमखिलगोगृहांगनेषु स्फटिकमहापृथुदण्डमण्डितेषु।
पदकृत–मणिपादुकः सगोष्ठ–श्रियमभिवीक्ष्य मुमोद मुद्वरिष्ठः।।६७।।

(कृष्णा० ५/८४)

उत्कर्णानां धवलि ! शवलीत्येवमाहूयते या सा गोर्हम्वेत्युदितविदितोल्लंघ्य सर्वाः समीपम्।
आयाताश्रुतिस्तमितनयना पाणिना मृष्टपृष्ठा कण्डूयाभिर्दर गिरिभृता प्रीणितादौ भूव।।६८।।

(कृ० भा० १७/३६)

---

(६४) चारों दिशाओं के अंधकार रूपी अवगुण्ठन वस्त्र को दूर करता हुआ पूर्व दिशा रूपिणी चिर अभिलाषिणि विलासिनी रमणी के मुख की भांति यह जगत में चन्द्र उदित हुआ है।

(६५) यदि काले–२ खुरों और सींगों की काली कान्ति न होती तो चन्द्रमा की तरह सफेद गउओं में तथा स्फटिकमणि के समान चन्द्रमा की कान्ति में कोई भेद ही पता नहीं चलता। अर्थात् गोधन को चांदनी और चांदनी को गउवें समझ कर सभी संशय में पड़ जाते।

(६६) कैलाश के छोटे से पर्वत खण्ड के समान प्रतीत होते हुए एवं स्वाधीन चित्त वाले, उत्तम–उत्तम बैल, बृज में जिस स्थान पर संध्या हो गयी वहीं पर मुनिगणों के समान जहाँ तहाँ सुखपूर्वक निर्विघ्न सो गये हैं।

(६७) स्फटिकमणि से बने हुए मोटे–२ खम्भों से बनी हुई समस्त गौशाला के प्रांगण में आनन्दनिधि श्रीकृष्ण मणिमय पादुका धारण करके अतिसुन्दररूप से गोष्ठ के सौन्दर्य का दर्शन करते हुए आनन्द को प्राप्त कर रहे हैं।

(६८) हे सखि ! देखो श्रीकृष्ण बुलाएगें इस आशा में यह समस्त गउए उत्कंठित हो रही हैं। इनमें धवली, शबली इन नामों को लेते हुए श्रीकृष्ण जिन गउओं को बुलाते हैं वे ही धेनु हम्बा–२ ध्वनि करते–२ अन्यान्य गउओं को लाँघकर कर, श्रीकृष्ण के पास आकर खड़ी हो जाती हैं। श्रीकृष्ण अश्रु से स्तिमित नत्रों वाली उन–२ गउओं की पीठ को अपने हस्तकमल से स्पर्श करते–२ उसे धीरे–२ खुजलाकर सुखी करते हैं।

उद्यत्पार्ष्णिः प्रपदयुगलालम्बितष्मो धिजानु न्यस्तेऽमत्रे सखि ! मणिमये बिम्बितश्रीमुखेन्दुः।
गोतुन्दस्पृग्दर शिथिलितोष्णीष–निर्यन्मदालि–श्रेणीजिष्णुद्युति मदलकस्त्यक्तलास्येक्षणाब्जः।।६६।।
(कृ० भा० १७/३७)

ईष्ट्वा क्षोणीं प्रथमपयसो धारया ताभिरेव द्वित्राभिः स्वांगुलिकुलमथोधोञ्चलीं चोन्दयित्वा।
तां तेनैवान्नमदवनमत् पाणिपद्मं दधानो दोहन्त्यन्तः शनशनशनद् घस्मघस्मेति घोषैः।।७०।।
(कृ० भा० १७/३८)

उद्यत्कर्णाः शशिमुखि ! परास्तत्र सोत्कण्ठयन् गाः सद्यः प्रोद्यत्तदमलकणैश्चित्रितस्वोरुजंघः।
ग्रीवाभ्ङ्गंगोदितरुचि गवा तर्णकेनापि साश्रैर्नेत्रै पीतद्युतिनवसुधो दोग्धिं दुग्ध प्रियस्ते।।७१।।
(कृ० भा० १७/३६)

मुञ्चोपेहि त्वरय नय मे देहि याहीति गावो नानावर्णाः परमविशदा दुह्यमानाश्च गावः।
तत्रत्या– या गिरिधरतनोः श्यामला याश्च गावस्ता दुष्पारा इह परिमिताः किं कवेर्मान्ति गावः।।७२।।
(कृ० भा० १७/४०)

---

(६६) इधर और देखो सखि ! बृजयुवराज गउओं का दोहन कर रहे हैं। चरणों के अग्रभाग भूमि पर रखे हुए, मणिमय दोहनी अपनी दोनों घुटनों पर रक्खे हुए, जिसमें उनका श्रीमुख प्रतिबिम्बित हो रहा है, धेनु के पेट का स्पर्श होने से उनकी पगड़ी थोड़ी शिथिल हो गयी है। उसमें से भ्रमरों की तरह अलकावली बाहर निकल रही है और कमल से नेत्रों ने चंचलता त्याग दी हैं।

(७०) गौदोहन करते समय प्रथम दो तीन दूध की धार धरती पर गिराकर धरणी पूजाकर, फिर दो तीन धार द्वारा अपनी उंगली सब आद्र तथा गौ के थनों को भी आद्र किया। फिर ऊंचे नीचे अपने हाथों द्वारा, उंगलियों से थनों को दबाकर दोहनी में शन शन शब्द करते हुए पुनः धम धम शब्द द्वारा अन्य गोपालों को दोहन की समाप्ति का संकेत बता दिया।

(७१) सखि ! देखो स्वच्छ दुग्ध के छींटों से श्यामसुन्दर के उरु एवं जङघा चित्रित हो गये हैं। गउए तथा बछड़े ग्रीवा घुमाकर सजल नेत्रों से श्रीकृष्ण की कान्ति रूपी नवीन अमृत का पान कर रहे हैं। हे सखि ! आपके प्रियतम दूध दुह रहे हैं, अच्छी तरह देखो।

(७२) छोड़ दो, इधर आओ, शीघ्र करो, ले जाओ, दो, लो, नाना वर्णों वाले (अक्षर) विषद शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। इसी प्रकार धेनु सब भी नाना वर्णों (रंग) की एवं दुष्पार है। गिरिधारी श्रीकृष्ण की श्याम गोगण (कान्ति) भी परम विशद एवं दुष्पार (अतुलनीय) जिसकी महा–२ कवि भी वाणी से पार नहीं पा सकते।

वत्सा निपीयोदरपूरमुच्चकै–स्तृप्तिं गता गोपगणा यथेप्सितम्।
दुग्ध्वा निवृत्ताश्च गवां तथाप्यहो नोधः पयःपूर्त्तिरवाप हीनताम्।।७३।।

(गोवि० २०/३२)

कृष्णाननाब्जार्पितनेत्रचेतसां गवां स्वयं संस्रवददौधसं पयः।
गोपाः स्तनाधो धृतकुम्भसञ्चयैः संभृत्य निन्युः पुरतो ब्रजेशितुः।।७४।।

(गोवि० २०/३३)

प्रवेश्य गोपैर्निजमातृ–लालितान् वत्सालयं वत्सगणान् बलान्वितः।
गास्तायथास्थान मसौ निवेश्य च, ब्रजाधिपस्यागमदन्तिकं हरिः।।७५।।

(गोवि० २०/३४)

प्रस्थाप्य दुग्धानि गृहं स भारिकै, र्गवालयद्वार्षू नियुज्य किंकरान्।
समं सुताभ्यां सुहृदाञ्चसञ्चयै, राजा ब्रजस्या ब्रजदात्म–मन्दिरम्।।७६।।

(गोवि० २०/३५)

दुग्ध्वा कृष्णः प्रियसखदृशा सूच्यमानां कदाचिद् राधां याति प्रणयभरतः कर्हिचित् स्वालयाय।
ग्रीष्मे सायं सरसि रसिकस्तापशान्त्यै कदापीत्येवं लीलामृत–जलनिधौ तस्य मज्जन्ति धन्याः।।७७।।

(कृ० भा० १७/४७)

इति श्री श्रीभावनासार–संग्रहे सायन्तनलीला–स्वादनं नाम षष्ठः संग्रहः।।६।।

---

(७३) समस्त गौवत्सगण पेट भर कर दूध पीकर परम तृप्ति को प्राप्त हो गये। गउओं का दोहन समाप्त हो गया। गोपगणों ने दोहन कार्य छोड़ दिया। फिर भी गउओं के स्तन उसी तरह भारी पहले की तरह स्थूल (मोटे) ही रह गये। यही बड़े आश्चर्य की बात है।

(७४) इसके पश्चात् गोपगणों ने श्रीकृष्ण के मुखारविन्द पर अपने नेत्र और चित्त को अर्पन करने वाली गउओं के स्तनों से स्वयं ही निकलते हुए दूध से घड़ों को भर–२ कर नन्दमहाराज के आगे ला–लाकर रख दिया।

(७५) तदनन्तर श्रीकृष्ण ने बलरामजी के साथ गोपगणों द्वारा अपनी माताओं द्वारा लालित बछड़ों को वत्सालय में तथा गउओं को यथास्थान प्रवेश कराकर स्वयं नन्द महाराज के पास गमन किया।

(७६) अब श्रीनन्दबाबा ने भारवाहकों द्वारा दूध के समस्त कलश भवन में भेज दिये। गौशाला के द्वार पर सेवकों की गौरक्षा के लिए नियुक्ति कर, अपने दोनों पुत्रों और मित्रों के साथ अपने मन्दिर (घर) में आगमन किया।

युगल मिलन :–

(७७) इस प्रकार गौदोहन समाप्त कर श्रीकृष्ण चन्द्र ने अपने प्रियमित्र द्वारा नेत्र के इशारे से सूचित कर श्रीराधिका को उद्यान की अट्टालिका में मिलने का संकेत किया और प्रेमपूर्वक वहाँ प्रस्थान किया। किसी दिन अपने घर को भी चले जाते हैं। कभी–२ ग्रीष्मकाल में पावन सरोवर के जल में स्नानार्थ जाने के बहाने से वहाँ श्रीराधारानी से मिलन हो जाता है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण लीला के अमृत रस में बड़भागी जनगण मग्न होकर रहते हैं।

इति श्रीश्री भावना सार संग्रह की सायंकालीन लीलास्वादन नामक षष्ठ संग्रह समापन।

❖ श्री श्री गौरांग विधुर्जयति ❖

श्रीश्री भावना सार संग्रहः

सप्तम संग्रहः

अथ प्रदोष लीला

समुत्कण्ठासन्नाकलित हरिवार्त्तावत यथाभिसृत्यासौ राधा हरिमपि निकुञ्जे गतवती।
तथात्मानं मत्वा कटिनिहितपाणिर्विशति च स्खलन् गच्छन् गौरा नटति धृतकम्पाश्रु–पुलकः।।१।।

राधां सालीगणान्तामसितनिशायोग्यवेशां प्रदोषे दूत्या वृन्दोपदेशादभिसृत–यमुनातीर–कल्पाग–कुञ्जाम्।
कृष्णं गोपैः सभायां विहितगुणिकलालोकनं स्निग्धमात्रा यत्नादानीय संशायितमथ निभृतं प्राप्तकुञ्जं स्मरामि।।२।।
(गोवि० २१/१)

(१) श्रीगौरचन्द्र :–

पूर्वलीला गौरचन्द्र करै सुमिरन, अति उत्कण्ठा ते व्याकुलित तनु मन।
नयन कमल मकरन्द जल झरे, कदम्बकेशर जैसे पुलक शरीर।।
गद्गद्वाणी आधी–२ बात करै, बिलम्ब न करो सखि, चलो निकुंज कानने।।
चाल चलै जैसे महामत्त गजराज, गमन करय गौरचन्द्र नटराज।।
कबहुक रुद्ध गति कबहु धीरे धीरे, चलि चलि पहुँचे श्रीवास भवन।।
श्रीवास प्रांगन में अति दिव्य मण्डप, जहाँ जाय विराजै श्रीगौर द्विजवर।।
चतुर्दिक निज भक्तगण सब सोहैं, तारागण मध्य जैसे पूर्ण चन्द्र शोभे।।
अरे मन तोहि पुनः २ करौ निवेदन, ऐसे गौरचन्द्र लीला करौ रे स्मरण।।

(२) मूलसूत्र :–

शैय्या से पुनः उठ कृष्ण बलराम, राज सभा मध्य करै प्रस्थान।।
सब कैह यथायोग्य करैं सनमान, सिंहासन उपर बैठें आनन्द धाम।
सूत मागध पौराणिक वन्धुजन, निज–२ कला सब करैं प्रकटन।।
नानाविध कौतुक तहाँ करैं दर्शन, मनोहर गीत वाद्य कविता श्रवण।।
धन धान्य आदि पारितोषिक करै प्रदान, हर्षित चित्त सबको करैं सनमान।।
माता दासगण द्वारा रामकृष्ण को बुलाय, दुग्धपान करांय फेर शैय्या ते सुलांय।।
सेवा में नियुक्त करै सब दासगण, बृजरानी निजकक्ष करय गमन।।
श्रीकृष्ण चन्द्र प्रियाजी के प्रेम में उन्मत्त, वृन्दावन गमन करैं अति अलक्षित।।

अपि गुरुपुरमध्ये हक्कवाटावरुद्ध–स्वतनु–कनकवेश्माभ्यन्तर–स्वान्ततल्पे।
प्रियतममधिवेश्या रीरमद्या तदा तां सुरनथितुमथ राधामागतेन्दु प्रभोचे।।३।।

(कृ० भा० १८/६)

विधुररुचिरसि त्वं यं विना हन्त ! राधे ! विधुररुचिरभूत् स त्वामृतेऽन्यास्वथापि।
भवति हृदयहारी स त्रिलोक्यास्तवाहो भवति हृदयहारीभूततां लब्धू मुत्कः।।४।।

(कृ० भा० १८/७)

रचय सखि ! तदस्योदन्तपीयूषवृष्टि–रिति रहसि विशाखा–प्रार्थ्यमाना तदा सा।
यदवददिदमाली–संहते रहसारात् पपुरजरतृषस्ताः कर्णपाली चकोर्याः।।५।।

(कृ० भा० १८/८)

इत श्रीराधिका शैय्या से उठ बैठें, मुख प्रक्षालन करि आसन में बैठें।।
रात्रि जैसे तैसे श्वेत कृष्ण, सखिगण, श्रीराधिका को पहरांय वसन भूषण।।
श्रीकृष्ण दूतिका भेजे श्रीराधिका पास, संदेश लेके जाय पुनः कृष्ण पास।।
पुनः श्रीराधिका को अभिसार करांय, सखी संग गृह सों निकुंज लैं जांय।।
कभी राधा शीघ्र चलै कभी धीरे–धीरे, आय पहुंची श्रीयमुना के तीर।।
कल्पवृक्ष कुंज सब दिव्य रत्नमय, मणि मन्दिर शोभा न जाय वर्णन।।
सखीगण संग तहाँ प्रवेश करय, कुंज शोभा देखि आश्चर्य करैं।।
वृन्दावन आय पायं श्रीकृष्ण दरशन, परम आनन्द से भरय तनु मन।।
सखिगण संग कृष्ण करैं परिहास, राधिका सह नाना रस विलास।।
श्रीराधाकृष्ण मिलन अति मनोरम, स्मरौ नित मग्न होय अन्तर।।

श्रीइन्दुलेखा सखि द्वारा श्रीकृष्ण मिलन का समाचार आदि :–

(३) श्वसुरालय में अपने नेत्र रूपी किवाड़ों को बंद कर अपने शरीर रूपी कनक भवन में मन रूपी शैय्या पर प्राणप्रियतम को शयन करा श्रीराधा अपना समय व्यतीत कर रहीं थी, तभी उनको सुखी करने के लिये इन्दुप्रभा नामक एक सखी ने आगमन किया और कहने लगी।

(४) हे राधे ! तुम जिसके बिना विधुररुचि (फीकी कान्ति पड़ना अथवा पीला पड़ना) हो गयी हो, इस समय वह विधु (श्रीकृष्ण) भी तुम्हारे बिना अन्य किसी रमणी में रुचि नहीं रखते एवं वे तुम्हारे प्राणबल्लभ त्रिलोकी के हृदयहारी होते हुए भी तुम्हारे हृदय का हार बनने के लिये उत्कंठित हो रहे हैं।

(५) यह सुनकर विशाखा कहने लगीं– हे सखि ! इन्दुप्रभे ! उस नागर की कथारूप अमृत की वृष्टि करो। यह सुनकर इन्दुप्रभा जो वार्ता सुनाने लगीं उसे नूतन तृष्णा के साथ सखी समूह के कर्णकुहर रूपी चकवीगण पान करने लगीं (यहाँ यह आश्चर्य है कि वृष्टि के जल को चकोरी पान करने लगीं)।

गिरिधर–वलदेवालंकृतात्मद्विपार्श्वो ब्रजधरणि वरेण्यो भोजनोपविष्टः।
धनपतिरिव शोभामाप नन्दीश्वरान्तः पुरसदसि निधिभ्यां पद्मशंखाभिधाभ्याम्।।६।।
(कृ० भा० १८/६)

प्रतिरजनि निमण्त्र्यानीयमानैः सपुत्रैर्हरिवदनचकोरैः सादरैरावृतोऽसौ।
परित उपविशदभिः प्रेमभूभृदभिरुच्चैस्तुहिनगिरिरिवाभान्मूर्त आनन्दपुञ्जः।।७।।
(कृ० भा० १८/१०)

तुंगी सुभद्रजननी जननीतिविज्ञा विज्ञापिता ब्रजपया परिवेशनाय।
भोज्यं क्रमात् परिविवेश सरोहिणीका विप्रात्मज–स्वधव–देवर पुत्रकेभ्यः।।८।।
(गोवि० २०/४५)

सत्सौरभैः कनकवर्णघृताभिषिक्तैः स्तूपीकृतैर्विविधतेमन–पात्रयुक्तैः।
स्थालीर्भृताः सुमृदुलैर्विशदोदनैः सा सन्दानिकोपरि पुरो निदधे स्म तेषाम्।।६।।
(गोवि० २०/४६)

जेमत्सु तेषु परिवेशयति क्रमात् सा शेषाणि भूरिविधषड्रस तेमनानि।
संयाव–पायसलसद्वटकानपूपान् सद्माजनान्तरधृता मृदुरोटिकाश्च।।१०।।
(गोवि० २०/४७)

---

(६) हे सखि ! श्रीवृजराज नन्दमहाराज अपने बांये श्रीकृष्ण एवं दाहिने ओर श्रीबलदेव को बैठाकर श्रीनन्दीश्वरपुर में भोजन करने बैठ गये। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों धनपति कुवेर, पद्म और शंख दो निधि अपने दांये बांये रखकर शोभा पा रहे हो।

(७) दिन के समय गोष्ठ गमन की शीघ्रता में भोजन के समय किसी को निमंत्रण देना सुखकर नहीं यह समझकर श्रीनन्दमहाराज रोज रात्रि के समय अपने भाइयों को तथा उनके पुत्रों को भोजन के लिए बुला लेते हैं। वे सब उन्हें चारों ओर से घेर कर भोजन करने बैठ गये और श्रीहरि के मुखचन्द्र को चकोर के समान पान करने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा मानो प्रेम रूपी भूधर (पर्वतों) से घिरकर कोई एक महान आनन्द रूपी हिमाचल ही बैठा हो।

(८) तदनन्तर सब कार्यों की नीति में कुशल सुभद्रजजनी तुंगी माता को श्रीयशोदा जी ने परिवेशन (परोसना) करने को कहा उनकी बात सुनकर वे रोहिणी के साथ भोजन के सभी द्रव्य क्रमानुसार प्रथम ब्राह्मण कुमार, अपने पति, देवरगण और फिर अपने पुत्रों को परोसने लगीं।

(६) उन्होंने रोहिणी के साथ सुगन्धित, सोने जैसे रंग वाले घी से भीगे हुए, स्तूप (ऊँचा करके ढेर सा गोलाकार बना देना) के आकार में रक्खे हुए, सुकोमल, शुभ्रवर्ण, चावलों से थाली को भरकर, उसके चारों ओर नाना प्रकार के व्यंजनों की कटोरी रख कर सजा दी।

(१०) इसके पश्चात् नन्दमहाराज आदि सभी भोजन करने लगे, उन्होंने क्रम से शेष और जो व्यंजन थे उनको भी कटुतिक्त, खट्टे तथा षड रसों से युक्त अनेक पदार्थ, दलिया, खीर, दही बड़े, पूए तथा अन्यान्य पदार्थ, उत्तम पात्रों में सजाकर कोमल रोटी समूह भी परोसने लगीं।

यस्य यस्य प्रियं यद्यत्तज्ज्ञात्वाथ रोहिणी।
इंगितेन व्रजेश्वर्या तस्मै तत्तद्ददौ मुहुः।।११।।

(गोवि० २०/४८)

दुग्धं धनं शिखरिणीं मथितं रसालां सत् षाडवं दधिघनं बहुसन्धितानि।
पक्वाम्रसद्रसमपि ब्रजराजराज्ञी तेभ्यः क्रमेण परिवेशयति स्म शश्वत्।।१२।।

(गोवि० २०/४६)

सर्वं भोजयितुं समुत्सुकमनोवागृदृक् प्रकाशीकृतै–र्गढैर्मातृतते स्फुटैः पितृततेः स्नेहद्रवच्चेतसः।
वाष्पक्लिन्नतनोस्तदाग्रहशतैः कृष्णादयः प्रेरिताः संतृप्ता अपि ते मुहुबुभुजिरे नान्तं मुदं चाययुः।।१३।।

(गोवि० २०/५०)

द्वयं व्यस्तमभूत् प्रातराशात् सायन्तनाशने।
गाम्भीर्यं नर्मणि वटोर्गूढता मातुराग्रहे।।१४।। (गोवि० २०/५१)

अस्वाच्छन्द्यं यदपि लपितान्योऽन्यहासक्रियादौ कृष्णादीनामभवदशने लालने चापि मातुः।
प्रातर्भुक्तेस्तदपि शतधा सग्धितस्तातमुख्यैस्तेषां सौख्यं तदवकलनात् कोटिधासीच्च तस्याः।।१५।।

(गोवि० २०/५२)

---

(११) अब उन सभी गोपों में जिसको जो वस्तु प्रिय लगती है यशोदाजी के इंगित से रोहिणी उसे संभालकर वही–२ वस्तु पुनः पुनः उनको देने लगीं।

(१२) तत्पश्चात् घना (गाढ़ा) दूध, शिखरणी, मथित (गर्म दूध को मथकर निकाला गया फेन) रसाला, षाडव, गाढ़ा दही, नाना प्रकार के अचार, आमरस आदि उत्तम पदार्थ श्रीयशोदाजी स्वयं सबको परोसने लगीं।

(१३) श्रीनन्द महाराज आदि बड़े–२ गोप सकल पास ही बैठे होने से श्रीयशोदाजी आदि मातागण लज्जा के कारण जोर से बोलने में असमर्थ होते हुए भी, उत्कण्ठा वश (सब अच्छी प्रकार भोजन करें) छिप–२ कर मन, वाणी, नेत्रों के इंगित से श्रीकृष्ण तथा अन्य बालकों को समस्त पदार्थ भोजन कराने के लिए स्नेह से भरे हुए चित्त से एवं अश्रुओं से भीगे हुए शरीर से शत–२ बार आग्रह करने लगीं। उनके इतने आग्रह से प्रेरित होकर श्रीकृष्ण आदि बालकवृन्द भोजन से परितृप्त होकर भी पुनः खाने लगे जिसे देखकर उनके आनंद की सीमा नहीं रही।

(१४) प्रातःकालीन भोजन से सायंकालीन भोजन में, मधुमंगल के परिहास की गम्भीरता और माताओं के वचनों में गूढ़ता (छिप–२ कर धीरे–२ बोलना) यह दो बातें ही विपरीत थीं।

(१५) यद्यपि प्रातःकालीन भोजन से सायंकालीन भोजन में, परस्पर बातचीत, हंसना हंसाना आदि की स्वच्छन्दता कम थी और माताएं भी उतनी स्वच्छन्दता से लालन नहीं कर पा रही थी फिर भी पितृवर्ग के साथ बैठकर श्रीकृष्ण तथा अन्य बालकों को प्रातःकालीन भोजन से शतगुण सुख प्राप्त हुआ जिसे देखकर माताओं को भी कोटिगुण सुख प्राप्त हुआ।

वक्त्रेन्दोः स्मितसम्पदा ब्रजविधोस्तद्वाक्सुधाबिन्दुभि स्तत्सौरभ्य–विमिश्र–धूपविसरैस्तत्तालवृन्तानिलैः।
तच्छ्रीसग्ध्यमृताभिषिक्तमधुरैर्भोज्यैश्च संलेभिरे ते पञ्चेन्द्रियतृप्तिजामतितमां संभोजननीयां मुदम्।।१६।।
(गोवि० २०/५३)

पृथगथ परिचारकोपनीतैर्मणिकनकालुकया भृतैः सुशीतैः।
अतिसुरभितरैर्जलैः सरामः सहजनकः ससखः स चाचचाम।।१७।। (कृष्णा० ५/७१)

पितृ–पुर–सविधे पुरं यदीयं, बहुमणिकाञ्चन–मञ्जुरञ्जनीयम्।
उपवनमभितश्च यत्र दिव्यं, शयनगृहादि च यत्र नव्यभव्यम्।।१८।। (कृष्णा० ५/८६)

नवनव–तरुवीरुधावलीकं, कुसुमित–कुञ्जकुटीर निर्वलीकम्।
मणितट–सरसीविहारि–हंसं, यदुपवनं कलकोकिलावतंसम्।।१६।। (कृष्णा० ५/६०)

कुसुमदल–कुलावतंसमुक्ता, मयवलया दिवि भूषणोपरक्ताः।
मलयज–घनसार–पंकदिग्धाः, सितसिचयाः करिदन्तपत्रमुग्धाः।।२०।।
(कृष्णा० ५/६१)

स्मितभरदशनांशु–पुष्टदोषा–करकिरणाः प्रियसंगभावितोषाः।
रजनिषु घनचन्द्रिकाभिरामा, स्वभिसरणं रचयन्ति यत्र रामाः।।२१।।
(युग्मकम्) (कृष्णा० ५/६२)

---

(१६) तदनन्तर ब्रजचन्द्र श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र का सुमधुर हास्य, उनके वचनों के अमृतबिन्दु, उनके श्रीअंग की सुगन्धि को लेकर बहने वाली धूपयुक्त ताल के पंखे की हवा एवं सबका एक साथ भोजन करना तथा अमृत की भी निन्दा करने वाले समस्त भोज्य पदार्थों द्वारा श्रीनन्दमहाराज आदि पितृवर्ग सबकी, नेत्रकर्ण आदि पांचों इन्द्रियों परम आनन्द को प्राप्त हुई।

(१७) अब दासगण पृथक–२ स्वर्णझारी में शीतल, सुगन्धित जल लाये और पिता नन्दमहाराज अग्रज बलराम सहित सबने आचमन किया।

(१८) श्रीनन्दमहाराज के कक्ष के निकट ही श्रीकृष्ण का कक्ष है जोकि विविध मणि कंचन आदि से खचित अत्यंत सुन्दर एवं प्रीतिदायक है, उसके चारों ओर दिव्य–२ उपवन हैं जिसमें नवीन भव्य शयन कक्ष भी बना हुआ है।

(१६) यह उपवन नव–२ तरु लताओं से युक्त है और इधर–उधर कुसुमित कुंज कुटीर बनें हैं अतः उन्हें देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। मध्य में मणिमय तट वाले सरोवर जिनमें हंस विहार करते हैं तथा कल–२ नाद करने वाली कोकिलाए ही इस उपवन की भूषणस्वरूपा हैं।

(२०–२१) कुसुमों के दलों के भूषणों से जिन्होंने अपने शिरो भूषण (मुकुट) बनाये हैं, मोतियों के भूषणों से सुसज्जिता, चन्दन और कुंकुम के लेप से भूषिता, शुभ्रवस्त्र धारण किये, हाथीदांत से बने कुण्डलों से मनोहर, तथा दांतों की किरणों की छटा से चन्द्रिका को भी और अधिक शोभित रमणीगण इस उपवन में घनी चांदनी से युक्त सुन्दर रात्रियों में अभिसार करती हैं।

शयनसमय–सेवनावलम्बै–र्नवनव–सेवकसेविका–कदम्बैः।
निरवधि परिमृष्ट–सिक्तकृष्णा–गुरुगुरुधूप–सुधूपिताप्यनुष्णा।।२२।।

(कृष्णा० ५/६३)

सुरभिकुसुम–मालिका–कृताभि–र्नवनव–मण्डनिकाभिरुत्तमाभिः।
मणिकलश–शिखालसत्पताका–वलिभिरपि प्रियकान्ति–कन्दलीका।।२३।।

(कृष्णा० ५/६४)

विरजसगजदन्तशिल्पभाजा, मणिगण–काञ्चनखट्टयोत्तपूजा।
उपचित वपुषेव दुग्धफेनै मृदु कशिपूत्तम–सुन्दरोपधानैः।।२४।।

(कृष्णा० ५/६५)

शशधर मणिदण्डरुग्गवाक्षा–गतशशिरश्मिसिताभ्रधूलि–लक्षा।
प्रतिविलसति यत्र तल्पशाला, मणिमय–पञ्जर–मञ्जुकीरमाला।।२५।।

(कुलकम्) (कृष्णा० ५/६६)

शिशयिसुरथ तद्विलोभनीयं, वरपुररत्नमयत्न–शोभनीयम्।
न्यविशत सुकुमारदास–दासी, गणसहितोऽघनिहामहाविलासी।।२६।।

(कृष्णा० ५/६७)

---

(२२) यहाँ श्रीकृष्ण का शयन मन्दिर है। शयन के समय सेवापरायण नव–२ दास दासीगण उसे स्वच्छ, सिक्त (ग्रीष्म के समय जल छिरककर) धूप से सुवासित एवं शीतल कर देते हैं।

(२३–२६) सुगन्धित कुसुमों की मालाओं से बने हुए उत्तम नव नव आभूषण समूह द्वारा एवं मणिमय कलशों के ऊपर सुन्दर पताकाओं द्वारा सुसज्जित यह शयनमन्दिर नेत्रों को आनन्दित करने वाली शोभा का विस्तार कर रहा था। निर्मल, उत्तम, हाथीदांत से बने हुए नाना प्रकार की शिल्पकला से अति सुन्दर, दूध के फेन के समान कोमल बिछौना तथा उत्तम–२ तकियों से युक्त, मणिखचित स्वर्ण पलंग विराजमान जिसके चन्द्रकान्तमणि से बने हुए दण्ड (मसहरी के डण्डे) खिड़की से आती हुई शुभ्र चन्द्र की किरणें जिसमें लाखों–२ अभ्र (चमकीले अणु के समान बिन्दु) उड़–२ कर पड़ रहे थे और इस शयन मन्दिर में मणिमय खिड़कियों की पिंजरों में सुन्दर शुक आदि रक्खे हुए, इस प्रकार की शोभा से युक्त शयन मन्दिर में शयन करने की अभिलाषा से महाविलासी श्रीकृष्ण ने (उस सहज सुन्दर अति लोभनीय मन को मोहने वाली) श्रेष्ठ (नन्दीश्वरपुर में स्थित) सुन्दर दास दासियों के साथ प्रवेश किया।

अधिवलभि–वलक्षे सक्षणं पुष्पतल्पे रहसि स हसितास्यैरावृतः स्वैर्वयस्यैः।
यदवददवसादप्रस्तुतौ ते स्तुवानो मधुरिम्–गरिमाणं श्रूयतां तच्च राधे।।२७।।
(कृ० भा० १८/१५)

सरसमनुगवीनस्यापराह्ने भवद्भिः सममसम–महिम्नोऽप्यञ्जसा गच्छतो याः।
मम धृतिततिमद्यन्नद्य गोष्ठ–प्रदेशे कथय सुबल ! ता मां मोहइत्रियों रुचः काः।।२८।।
(कृ० भा० १८/१६)

अहह मधुरिमाब्धेः किं सुधा मथ्यमानात् किमिति ललितविद्युद्वीचयो वस्त्रपूताः।
किमु परिमल–नीवृन्मूर्त्ति साम्राज्यलक्ष्म्यः किमतनुविशिखानां राशयश्चाम्पकानाम्।।२९।।
(कृ० भा० १८/१७)

तदुपरि घुसृणाक्तं किं सरोजं प्रफुल्लं शुचिजलधिजनिर्वा क्षोभनः कश्चनेन्दुः।
मणिमय–मदिराभ्यां तस्य चांके नटद्भ्यां मम हगुपसरन्त्येवादिता पुच्छघातैः।।३०।।
(कृ० भा० १८/१८)

श्रीकृष्ण द्वारा श्रीराधा का वर्णन :–

(२७–२८) श्रीइन्दुरेखा कहने लगीं हे राधे ! आपके प्रियतम अति सुन्दर शुभ्र अट्टालिका में विराजित कुसुम शैय्या पर हंसते–२ मुख से, सखाओं से घिरे हुए शयन करने लगे लेकिन आपकी स्मृति आने से आपके विरह जन्य दुःख से आपके माधुर्य के गरिमा की प्रशंसा करते हुए कहने लगे। आप उसे सुनो –"हे सुबल ! आज अपराह्न काल में गौचारण से लौटते समय असीम महिमाशाली गोपगणों के पीछे–२ चलने वाले मेरे धैर्य को खण्डित कर जिसने मुझे मोहित कर दिया वह मनमोहिनी किसकी थीं।

(२९) हे प्राण प्रियतम सखे ! वह शोभा क्या माधुर्य के समुद्र को मथकर निकाली हुई सुधा थी अथवा वस्त्र से छानी हुई ललित सौदामिनी पटली की कोई तरंग थी, किंवा सुगन्ध रूपी किसी देश की मूर्तीमती साम्राज्यलक्ष्मी, अथवा चम्पक कुसुमों से बने कामदेव के वाणों की राशि थी, यह मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ।

(३०) भाई सुबल ! बड़े आश्चर्य क बात है ! उस शोभा राशि के ऊपर कुंकुम से रञ्जित एक एक कमल प्रफुल्लित हो रहा था मानो प्रथम रस जलधि में उत्पन्न कोई अनिर्वचनीय अकलंक पूर्ण चन्द्र ही उदय हो गया हो यह भी मैं स्थिर नहीं कर सका कि वह चन्द्र ही था या कुछ और था। उस अपूर्व वस्तु के पास जब मेरी दृष्टि पहुंची उस अपूर्व वस्तु के पास जब मेरी दृष्टि पहुंची। हाय ! हाय ! उसके ऊपर दो मणिमयमत्त खल्जन पक्षी नृत्य कर रहे थे (नेत्र) और वे अपनी पूंछ (कटाक्ष) द्वारा मेरे नेत्रों को प्रपीड़ित करने लगे।

किमिदमहह ! वस्त्वित्यूढ़—सम्भ्रान्तिमूढे तदनुभवलवस्यापंशमारब्ध—कामे।
मयि घनजलदाल्येवावृतं सद्य एव व्रतति—ततिषु लीनं प्राभवं तन्न लेढुम्।।३१।।

(कृ० भा० १८/१९)

सपदि नयनयुग्मोद्दिष्टवर्त्मातदागा—न्ममहृदयभटस्तन्मार्गणार्थं सर्मथः।
न पुनरयमिदानीं यत् परावर्त्तते तदवनभुवि—कुसुमेषोर्बन्धमापेति वुध्ये।।३२।।

(कृ० भा० १८/२०)

अघहर भवता यालोक्यते श्लाघ्यरूपा तदवधि धुतधैर्या सापि राधाधिधारा।
विविध—दवथुपात्री स्वाः सखी रोदयित्री विलुठति गलदक्ष्णोंधारया धौतगात्री।।३३।।

(कृ० भा० १८/२१)

अयमयमयते त्वां तन्वि ! धिन्वन् मुकुन्दो रसनिधिरथ स क्व क्वेति संलापशेषे।
प्रथमरजनिजातं ध्वान्तमालक्षयन्ती शमयति रुजमस्या व्रीड़याथावृतांगयाः।।३४।।

(कृ० भा० १८/२२)

---

(३१) हे प्राण सखा सुबल ! वह अद्भुत वस्तु क्या थी। उसको जानने के लिये मैं सम्भ्रम पूर्वक (ठिठक कर) खड़ा रह गया, बस इतने में ही घने बादलों में (नीली साड़ी) ढककर वह वस्तु लतापताओं में छिप गयी और मैं उसका कुछ भी आस्वादन नहीं कर सका।

(३२) हे सखे ! मेरा हृदय रूपी वीर सेनापति उस वस्तु का अन्वेषण करने के लिए गया और मेरे दोनों नेत्र उसे रास्ता दिखाते हुए आगे—२ चलने लगे। हे प्रिय वयस्य आज पर्यन्त मेरा हृदय सेनापति लौटकर नहीं आया। क्या उस वनप्रदेश में कन्दर्प रूपी दस्यु ने उसे बांध कर रख लिया है ? (तात्पर्य यह कि राधारानी के मुख कमल के दर्शन कर मेरे हृदय का ही मानो हरण हो गया।)

सुबल द्वारा राधारानी के विरह का वर्णन :—

(३३) श्रीकृष्ण के इस प्रकार कातर वचनों को सुनकर सुबल कहने लगा— हे अघहर (पापों का हरण करने वाले) तुमने जिसे देखा है ओर तीनों लोक जिसकी प्रशंसा करते हैं वह श्रीराधा ही हैं। उसने भी जब से तुम्हारे दर्शन किये है तब से धैर्य हीना होकर अत्यंत विरह व्यथा से पीड़ित होकर धरती पर लोट रही है। उनको इस प्रकार विरह वेदना से ग्रस्त तथा नेत्र की धाराओं से शरीर को भिगोते हुए देखकर उनकी सब सखियाँ भी रो रही हैं।

(३४) हे प्रिय मित्र ! श्रीराधा की इस प्रकार विरह—व्याकुलता को देखकर उनकी सखियाँ कहने लगीं— 'हे राधे ! हे कोमलांगी ! देखो वह मुकुन्द तुमसे मिलने आ रहे हैं।' यह सुनकर उनकी मूर्च्छा दूर हुई और वे संभ्रम के साथ उठकर पूछने लगीं— 'सखि कहाँ ! कहाँ मेरे जीवन के अवलम्ब वह रसनिधि कहाँ है ?' यह सुनकर अश्रुवदना सखिगण उनको प्रथम रजनी से जात अंधकार का दर्शन कराकर कहने लगीं— 'सखि ! यह देखो तुम्हारे जीवन बन्धु'। इस प्रकार सखीगण के वचनों से भ्रान्त हुई श्रीराधिका अंधकार को ही श्रीकृष्ण समझती हुई उस समय की विरह व्यथा को कुछ शान्त कर पायीं और लज्जा के कारण अपने अंगों को वस्त्रों से ढकने लगीं।

इति सुबल—वचोभिः कृष्णनेत्राम्बुजाभ्यां प्रणयिनि ! पृषता द्रागानुर्पूव्या निपेतुः।
हिमकर—करराजि—भ्रान्तितो भुक्तपूर्वां ववमतुरिव मुक्तां मञ्जुचञ्चु चकोरौ।।३५।।

(कृ० भा० १८/२३)

परिचरणपरां मां तस्थुषीं तत्र दृष्ट्वा न्यदिशदयममन्दोत्कण्ठया कुण्ठितास्यः।
उपसुरतरु राधा भानुपुत्र्यास्तटे मामभिसरतु रसेनेत्याशु तां ब्रूहि गत्वा।।३६।।

(कृ० भा० १८/२४)

अथ ब्रजेशा तुलसीं सहालीकां कृताग्रहा भोजयितुं धनिष्ठया।
अभाणि सेयं प्रथमं न राधिकां विनान्ति भोज्यं न जलं पिबत्यपि।।३७।।

(गोवि० २०/२१)

सा श्रुत्वा स्नेहरीतिं तां प्रीताहान्नं सतेमनम्।
ससखीवृन्द—राधार्थमाभ्यां प्रस्थापय द्रुतम्।।३८।।

(गोवि० २०/५८)

ततो धनिष्ठा हरिभुक्तशेषं सतेमनान्नं निभृतं निधाय।
ददौ तुलस्यै तत्सम्पुटेऽन्याद्वलाम्बया दत्तमपि स्फुटं सा।।३६।।

(गोवि० २०/५६)

---

(३५) इन्दुप्रभा इस प्रकार कहकर पुनः कहने लगीं— 'हे राधे ! सुबल के मुख से तुम्हारी इस प्रकार विरह वेदना की वार्ता सुनकर श्रीकृष्ण के नेत्रों रो स्थूल (मोटे—२) अश्रुबिन्दु गिरने लगे, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई सुन्दर चोंच वाले चकोर युगल ने चन्द्रकिरणों के भ्रम से जो मोती खा लिये थे अब उनको ही एक—२ कर वमन कर रहे हो।

(३६) हे श्रीराधे ! मैं तुम्हारे प्राण—प्रियतम के पास रहकर उनकी कुछ सेवा कर रही थी, मुझे देखकर वे अत्यंत उत्कंठित हो कहने लगे— 'हे सखि तुम शीघ्र जाकर श्रीराधा से कहना यमुनातट, कल्पतरु निकट, सहज अनुराग से भरकर वे शीघ्र ही अभिसार करें।

(३७) तदनन्तर कस्तूरी मल्जरी नामक सखी के साथ तुलसी को भोजन कराने के लिये श्रीयशोदाजी ने धनिष्ठा को कहा। तब धनिष्ठा, श्रीयशोदाजी को कहने लगी— यह तुलसी मंजरी, श्रीराधिका के बिना भोजन की तो बात दूर रही जल भी नहीं पान करती।

(३८) यशोदाजी तुलसी की इस स्नेह की रीति को सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुई और धनिष्ठा से कहने लगीं— धनिष्ठे ! तुम इस कस्तूरी और तुलसी द्वारा श्रीराधा और उनकी सखियों के लिए अन्नव्यंजन आदि भेज दो।

(३६) तब धनिष्ठा ने श्रीकृष्ण का अधरामृत प्रसाद एवं बलदेव जननी श्रीरोहिणी द्वारा प्रदत्त भोज्य पदार्थ एक बड़े से सम्पुट (कटोरदान) में रखकर तुलसी को प्रदान किया।

अन्नमादाय यातायां तुलस्यां सुबलाय सा।
धनिष्ठाख्यत् केलिकुञ्जं ददौ च वीटिका रहः।।४०।।

(गोवि० २०/६१)

ब्रजेशा भोजयित्वादौ दासीर्दासान् सगोपकान्।
सस्नुषाभिः सपुत्रीर्भियातृभिः सग्धिमाचरत्।।४१।।

(गोवि० २०/६०)

अथाययौ हरेः पिता बहिसभां ब्रजेशिता निजाग्रजानुजैर्युतः सुमुत्समुद्र–संप्लुतः।
सहाखिलव्रजप्रजास्तमागमन् गुणिव्रजा हरेर्विलोकनाशया समृद्धया सिताशयाः।।४२।।

(गोवि० २१/२)

श्रेणिमुख्यलोकविप्र–गोपवृन्दसंगिनः स्वस्वविद्ययाघवैरितोषणातिरंगिणः।
आययुः स्वगीतवाद्याहस्यलास्यनन्दिनः सूतवंश–शंसि–नृत्यगानकर्त्तृवन्दिनः।।४३।।

(गोवि० २१/३)

ते गोपराज्ञा मिलिता यथायथं सगौरवं सप्रणयानुकम्पितम्।
सम्मानितास्तेन मुदान्विताः स्थिताः कृष्णेक्षणोत्कण्ठितनेत्रचेतसः।।४४।।

(गोवि० २१/४)

---

(४०) तुलसी द्वारा प्रसाद लेकर जाते हुए धनिष्ठा ने चुपचाप सुबल द्वारा 'केलिकुल्ज' में संकेत की बात कर दी एवं गोपनीय रूप से पान की बीरी भी प्रदान की (श्रीकृष्ण के लिए)।

(४१) **श्रीयशोदाजी का सपरिकर भोजन :–** अब श्रीयशोदाजी ने पहले सब दास दासियों और समस्त गोपों को भोजन कराया फिर बहुओं कन्याओं, देवरानी आदि सबके साथ मिलकर स्वयं भोजन किया।

(४२) तत्पश्चात् श्रीकृष्ण के पिता श्रीब्रजेश्वर नन्द महाराज अपने बड़े और छोटे सब भाईयों के साथ आनन्द के सागर में मानो डूबे हुए बाहर सभा भवन में आये और ब्रजमंडल के प्रजागण भी समस्त गुनीजनों के साथ श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा से श्रीनन्दमहाराज के पास आये।

(४३) तत्पश्चात् श्रेणीमुख्य (तेल, तमोली, मर्दनिया, आदि विभिन्न छोटी बड़ी जाति) विप्र, गोपगणों के साथ सूत (पौराणिक) वंश का गान करने वाले (मागध) नर्त्तक, गायक, बन्दीगण, आदि सभी अपनी विद्या द्वारा अघारि श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट करने की उत्कण्ठा से गीत, वाद्य, हास्य, नृत्य करते हुए आनन्द से सभा में आकर उपस्थित हो गये।

(४४) वे सब श्रीनन्द महाराज के साथ मिले। उन्होंने सबको यथायोग्य गौरव, प्रणय, कृपापूर्वक सम्मानित किया। तब वे सब आनन्दित हो कर श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिए उत्कंठित चित्त होकर, नेत्रों द्वारा उत्सुकता प्रकट करने लगे।

शेते सुतः श्रमभराद्विहिताशनोऽसौ लोकास्तदीक्षणतृषो वत किं विधेयम्।
इत्थं विचिन्तयति गोपपतावकस्मात् कृष्णः स्वयं सखिकुलैः सहितः समायात्।।४५।।
(गोवि० २१/५)

स्वान्ताम्बुधिं नेत्रचकोरवृन्दं, रोमौषधीश्च स्मितकैरवालिम्।
संफुल्लयन् घोषकृतालयानां सभोदयाद्रावुदितो हरीन्दुः।।४६।।
(गोवि० २१/६)

विप्रान् गुरुन् स्वाञ्जलिबन्धवन्दनैः समान् सखींश्च स्मितमिश्रितेक्षणैः।
पाल्यांस्तथान्यान् सदयावलोकनैः सम्भाष्य तान् सोऽपि विवेश संगिभिः।।४७।।
(गोवि० २१/७)

वेदध्वानैर्जयजयरवैः पूर्ववंश्यानुवादै–स्ततल्लीलाविरुद–पठनैर्वादितैर्भूरिवादैः।
हर्षोद् घोषैः स्तुतिकलकलैः संगतानां जनानां घोषः कृष्णे व्यतनुततरा स्वस्य नाम्नो निरुक्तिम्।।४८।।
(गोवि० २१/८)

व्रजेन्द्रेणेरितः क्षत्ता लोकानुत्करचालनैः।
कोलाहलान्निवार्य्येतान् यथास्थानं न्यवेशयत्।।४६।। (गोवि० २१/६)

(४५) **श्रीकृष्ण का सभा में प्रवेश एवं कला कौशल का प्रदर्शन :–** श्रीनन्द महाराज विचार करने लगे। पुत्र श्रीकृष्ण भोजन करके थकावट के कारण शयन कर रहा है और इधर–हाय! श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए समस्त प्रजाजन उत्कण्ठित हो रहे हैं। अब क्या करना चाहिए। बृजराज इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि अकस्मात् श्रीकृष्ण स्वयं ही सभा के मध्य अपने सखाओं को संग लेकर उपस्थित हो गये।

(४६) उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो समस्त घोषनिवासी गोपगणों का ह्रदय एक समुद्र हो, नेत्र चकोर, रोम औषधी और हास्य रूपी कुमुदिनी को प्रफुल्लित करते हुए श्रीहरि रूपी चन्द, सभा रूपी उदयगिरि पर उदय हो गया हों।

(४७) श्रीकृष्ण ने सभा में आकर ब्राह्मण और गुरु जनों को हाथ जोड़कर प्रणाम किया, समवयस्क बन्धुओं का हंस कर अभिवादन और प्रतिपालनीय सेवक तथा अन्यान्य जनों के प्रति सकरुण दृष्टि से सम्भाषण करते हुए सभा में प्रवेश किया।

(४८) सभा में स्थित सभी व्यक्तियों की वेदध्वनि, जय जय ध्वनि, पूर्व पूर्व हुए वंशधरों के नाम कीर्तन, श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का गुणोत्कर्ष वर्णन, पाठ, भूरि–२ वाद्य, हर्ष ध्वनि, स्तुति जन्य उच्च ध्वनि, इन सबका कोलाहल (घोष) सुनकर श्रीकृष्ण को अपनी गोपबस्ती (घोष) का नाम सार्थक ही जान पड़ा। अर्थात् घोष में (आभीरों की बस्ती में) घोष (कोलाहल) हो रहा है।

(४६) श्रीबृजराज नन्द महाराज की आज्ञा पाकर, अग्रवर्ती वेत्रधारी दूत ऊँचे–२ हाथ उठाकर सब लोक कोलाहल निवारण कर उन्हें यथास्थान बैठाने लगा।

तेषूपविष्टेषु नृपेंगितेन ते, विचक्षणाः स्वस्वकलाःपृथक् पृथक्।
प्रदर्शयन्तः क्रमशः कलाविदः, सलालसान् सभ्यजनानतोषयन्।।५०।।

(गोवि० २१/१०)

छालियादिनृत्यमेकेऽन्ये लास्यं ताण्डवं परे।
नृसिंह–रामचरितरूपकाभिनयान् परे।।५१।।

(गोवि० २१/११)

विद्यां वंशनटीमन्ये सूत्रसञ्चारिकां परे।
नानेन्द्रजालान्यपरे निपुणाः समदर्शयन्।।५२।।

(गोवि० २१/१२)

श्रावयामासुरितरे पुण्याः पौराणिकी कथाः।
गीतानि विविधान्येके केचिद्वंशानुवर्णनम्।।५३।।

(गोवि० २१/१३)

चतुर्विधानां विद्यानां भेदानन्ये श्रुतिप्रियान्।
केचित् कृष्णस्य जन्मादिलीलाढ्यविरुदावलिम्।।५४।। (गोवि० २१/१४)

तेभ्यो ब्रजेशादिसभासदो ददु, र्वासो धनालंकरणान्यनेकधा।
ते तानि कृष्णेक्षणपूर्णमानसाः, स्वीचाक्रुराचारतया न तृष्णया।।५५।। (गोवि० २१/१५)

---

(५०) तब सबके यथास्थान बैठ जाने पर, चौसठ कलाओं में प्रवीण व्यक्ति, बृजराज के इंगित को पाकर अपनी–२ कला का पृथक–२ प्रदर्शन कराकर अतिशय लालसान्वित दर्शकों को सन्तुष्ट करने लगे।

(५१–५२) कोई–२ थाली पर खड़ा होकर नृत्य दिखाने लगा। कोई लास्य (स्त्रियों के हाव हाव युक्त नृत्य) कोई ताण्डव (पुरुषों का नृत्य) कोई–२ नृसिंह एवं रामचन्द्र के चरित्रों का अभिनय, कोई–२ बांस पर नृत्य, कोई सूत्र सञ्चारिका अर्थात् नासिका के छिद्र से धागा डालना और निकालना एवं अन्यान्य व्यक्ति भी नाना प्रकार की जादूगरी (इन्द्रजाल) दिखान लगे।

(५३–५४) कोई–२ व्यक्ति पुण्यमयी पौराणिक कथाएं सुनाने लगे तो कोई नाना प्रकार गान गाने लगे, कोई पूर्वजों के सुन्दर चरित्र का वर्णन करने लगे और कोई चतुर्विध विधाओं का एवं श्रुति प्रिय, वीणा, मृदंग, करताल, वंशी आदि वाद्यों को सुनाने लगे। कोई–२ श्रीकृष्ण की जन्मादि लीलायुक्त विरुदावली का श्रवण कराने लगे।

(५५) तत्पश्चात् श्रीनन्दमहाराज प्रभृति सभासदों ने परम सन्तुष्ट होकर उन सब गायक, वादक, नर्त्तक अदि जनों को बहुत–२ से वस्त्र, धन, भूषण, प्रदान किये किन्तु वे सब श्रीकृष्ण दर्शन से कृतकृत्य (पूर्ण मनोरथ) हो चुके थे अतएव उन्होंने वे सब औपचारिक रूप से ग्रहण किये न कि लोभ के वशीभूत होकर।

कृष्णाननेन्दोः स्मितकौमुदीं भृशं निपीय सभ्याक्षिचकोरसन्ततिः।
वमन्त्यपि स्वाश्रुमिषादतृप्तिभाक् पिवत्यहो ! प्रेमगति : सदुर्गमा।।५६।।
(गोवि० २१/१६)

तावद्व्रजेशा–प्रहितः स रक्तकः सभां समेत्याह नमन् ब्रजेश्वरम्।
ब्रजावनीशोत्कमना ब्रजेश्वरी दिदृक्षते श्रीयुतभर्त्तृदारकम्।।५७।।
(गोवि० २१/१७)

ततो व्रजेन्द्रेण कृताग्रहोत्करः सभ्यान्निजालोकवियोग–कातरान्।
सिञ्चन् सहार्द्रस्मितवीक्षणामृतैः कृष्णाः प्रपेदे निजमातृ–मन्दिरम्।।५८।।
(गोवि० २१/१८)

तावागतौ समधुमंगल–मित्रवृन्दौ माता सुतावथ निवेश्य सुमृष्टवेद्याम्।
दुग्धं घनं सशशिशर्करमीषदुष्णं स्तन्याश्रुसिक्तसिचयालमपाययत्तौ।।५६।।
(गोवि० २१/१६)

ततो गते मित्रगणे निजालयं सरोहिणीका जननी सुवत्सला।
आनीय शय्यानिलये निजे निजे वटुं वलं कृष्णमशीशयत् पृथक्।।६०।।
(गोवि० २१/२०)

---

(५६) उस समय श्रीकृष्ण चन्द्र की हास्यामृत ज्योत्स्ना का समस्त सभास्थित जनों के नेत्र रूपी चकोरवृन्द अतिशय रूप से पान कर रहे थे और अधिक पान करने से मानो उनको आनन्दाश्रुओं के रूप में वमन करने लगे लेकिन आश्चर्य का विषय यह है कि फिर भी वह रूप सुधा (ज्योत्सना) पान करते–२ उनको तृप्ति नहीं हो रही थी ओर वे अश्रु भरे नेत्रों से निरन्तर ही उस वदन चन्द्र को निहार रहे थे। अहो प्रेम की गति सचमुच सुदुर्गम है, अर्थात् इसे समझना अत्यंत कठिन है।

(५७) **श्रीकृष्ण का गृह आगमन, शयन एवं अभिसार :–** इतने में ही श्रीयशोदा माता द्वारा भेजे हुए रक्तक दास ने आकर बृजराज श्रीनन्द को नमस्कार करके कहा– हे बृजराज ! बृजेश्वरि अत्यंत उत्कंठिता होकर श्रीयुवराज (श्रीकृष्ण) के दर्शन की अभिलाषा कर रही हैं।

(५८) तदनन्तर श्रीकृष्ण श्रीबृजराज पिता के द्वारा आग्रह करने पर (घर जाने के लिए) इधर समस्त सभा स्थित जन मेरे वियोग में दुःखी होंगे 'ऐसा जानकर, उनके प्रति सुमधुर हास्य और अपने दर्शनामृत से उन्हें अभिषिक्त करते हुए अपनी माता के पास घर के भीतर चले गये।

(५६) तत्पश्चात् राम, कृण मधुमंगल आदि वयस्यों के साथ आते हुए देखकर माता यशोदा ने उन्हें एक सुन्दर स्निग्ध वेदी (सिंहासन) पर बैठया और फिर कर्पूर तथा मिश्रीयुक्त घना औटाया हुआ दूध पान कराया।

(६०) तदनन्तर मित्रमण्डली के अपने–२ घर चले जाने पर श्रीयशोदाजी रोहिणीजी दोनों वात्सल्यमयी माताओं ने रामकृष्ण और मधुमंगल को अपने–२ शयनगृह में ले जाकर अपनी–२ शैय्या पर पृथक–२ शयन कराया।

अतुलचतुरिमाणं तं जलालक्ष्यमानं गतमिव निजकान्तं विद्धि सौर्य्यास्तटान्तम्।
त्वमपि कियदशित्वा स्वान् गुरुन् वञ्चयित्वा द्रुतमभिसर रागादित्युदित्वैव सागात्।।६१।।

(कृ० भा० १८/२६)

अथागतासौ तुलसी तदन्नं, सख्यै समस्तं समदर्शयत् सा।
तद्गन्धवर्णानुभवेन चादौ नासादृशोस्तृप्तिरभूदमूषाम्।।६२।।

(गोवि० २०/६२)

तद्रूपमञ्जरी नीत्वा तुलस्या भोजनालयम्।
ससखीवृन्दराधायै पृथक् पात्रेष्वकल्पयत्।।६२।।

(गोवि० २०/६३)

अथाहूयाह जटिला विशाखां मत्सुतो गतः।
गोशालां शयितुं भुक्त्वा भोक्तुमाह्वय मे स्नुषाम्।।६४।।

(गोवि० २०/६४)

साह सास्ते गृहे सुप्ता श्रान्तारण्य–परिक्रमात्।
तत्रैवात्स्यति देह्यन्नं सा ददेऽन्नं सतेमनम्।।६५।। (गोवि० २०/६५)

---

(६१) हे श्रीराधे ! परम चतुर तुम्हारे प्राणबल्लभ अलक्षित रूप से (किसी को न पता चले) यमुनातटवर्ती संकेत स्थल पर चले गये हैं। यह आप जान लें। अतः अब आप भी कुछ भोजन करके अपने गुरुजनों की वंचना कर, अनुराग भरी अपने प्राणनाथ के समीप अभिसार करो। यह कहकर इन्द्रप्रभा नामकी सखि ने गमन किया।

(६२) **सखीगण सहित श्रीराधारानी का रात्रिकालीन भोजन :–** इधर श्रीतुलसी मंजरी ने आकर समस्त अन्नव्यंजनादि पदार्थ (जो नन्दालय से यशोदाजी ने दिये थे) श्रीराधारानी को दिखाये। उनकी सुगन्ध से एवं वर्ण को देखकर उन सबके प्रथम तो नासिका एवं नेत्र तृप्त हो गये।

(६३) तब श्रीरूपमंजरी जी ने वह सब भोज्य पदार्थ तुलसी से लेकर भोजनगृह में रक्खे, और फिर श्रीराधा तथा सब सखियों के लिए पृथक–२ पात्रों में परोस दिये।

(६४) इधर जटिला माता ने विशाखा को बुलाकर कहा– मेरा पुत्र अभिमन्यु भोजन करके शयन करने के लिये गौशाला में चला गया है। अब पुत्रवधू श्रीराधा को भोजन के लिये बुला लाओ।

(६५) विशाखा ने कहा– आपकी पुत्रवधू वनभ्रमण से अत्यधिक परिश्रान्त होकर गृह के भीतर ही शयन कर रही है। वह वहाँ पर ही भोजन करेंगीं। अतएव मुझे भोजन दे दो। यह सुनकर जटिला ने विशाखा को अन्नव्यंजनादि प्रदान कर दिये।

सापि हृष्टा तदानीय चाधाय भोजनालये।
श्रीराधामेत्य तस्यै तद्वार्त्तामावेदयन्मुदा।।६६।।

(गोवि० २०/६६)

ततः समेत्योपविवेश भोक्तुं, भृंगारपीठालिविराजिवेद्याम्।
सहालिपालिः प्रियभुक्तशेषं, राधा मरालीव सुधां समुत्का।।६७।।

(गोवि० २०/६७)

असख्ये ललिता सव्ये विशाखास्या उपाविशत्।
पुरतः पार्श्वतश्चान्या यथास्थानं सखीततिः।।६८।।

(गोवि० २०/६८)

ताभ्यः परिविवेशान्नं तुलस्या रूपमञ्जरी।
स्नेहेन मोहिनी यद्वद् देवताभ्योऽमृतं क्रमात्।।६९।।

(गोवि० २०/६९)

प्रणयिजन–विसृष्टं श्रीहरेर्भुक्तशिष्टं तदधरमधुमिष्टं तत्करेणाभिमृष्टम्।
निजनिखिलगणेष्टं राधया नेत्रदृष्टं मितमपि च तदासीदक्षयं वन्टेनन्नम्।।७०।।

(गोवि० २०/७०)

---

(६६) श्रीविशाखाजी ने भी वह सब सामान ग्रहण करके प्रफुलित मन से रसोईगृह में रख दिया और श्रीराधा के पास आकर उनको यह बात सहर्ष बता दी।

(६७) तत्पश्चात् भोजन के लिए उत्सुकचित्त होकर, आकर वेदी पर विराजित हो गयीं जहाँ जल की झारी और बैठने की पीढ़ी आदि सुशोभित थी। जिस प्रकार हंसिनी उत्कण्ठापूर्वक सुधापान करती है इसी प्रकार समस्त सखीवृन्द के साथ अपने प्रियतम का अधरामृत पान करने श्रीराधा बैठ गयीं।

(६८) श्रीराधा के दांये ललिता, बांये विशाखा, सामने तथा दोनों पार्श्व (तरफ) अन्यान्य सखीगण भी विराज गयीं।

(६९) पूर्वकाल में समुद्रमन्थन के पश्चात् श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार मोहिनी रूप धारण करके देवताओं को अमृत परोसा था, वैस ही श्रीरूपमंजरी जी तुलसी के साथ क्रमानुसार सखीवृन्द को वह सुधा की निन्दा करने वाले अन्नादि भोजन पदार्थ परोसने लगीं।

(७०) वह पदार्थ अल्प होने पर भी परिवेशन के समय अक्षय (अपरिमित) हो गया। क्यों न हो वह प्रणयीजन द्वारा प्रदत्त, श्रीकृष्ण के भोजन से अवशिष्ट (बचा हुआ अधरामृत) उनकी अधर सुधा के स्पर्श से सुमिष्ट (अत्यंत मीठा) उनके हाथों से स्पर्श किया गया, समस्त लोक जिसकी इच्छा करते हैं फिर राधारानी ने अपने नेत्र कमलों से जिसका अवलोकन किया हो वह अपरिमित हो गया तो इसमें आश्चर्य क्या ?

रमण–कवलशिष्टं सन्मृणालं मराल्यः किशलयदलमेण्यः श्रीमरन्दं भ्रमर्यः।
अमृतमिव चकोर्य्यश्चैन्दवं राधिकाद्या मुमुदुरधिकमन्नं प्राश्य कृष्णावशिष्टम्।।७१।।

(गोवि० २०/७१)

आचम्यास्वादयन्त्यस्ताः कृष्णताम्बूलचर्वितम्।
दासीभिः सेवितास्तृप्ताः पल्यंकेषु विशश्रमुः।।७२।।

(गोवि० २०/७२)

तुलसी रूपमञ्जर्य्यौ तत्तच्छेषान्नतेमनम्।
वृन्दायै मालती द्वारा प्रेषयामासतुर्मुदा।।७३।।

(गोवि० २०/७३)

ततस्ते भोजयित्वान्या वयस्या दासिका अपि।
सगणैः सह संहृष्टैः स्वेशाशेषानमादतुः।।७४।।

(गोवि० २०/७४)

तत्रेष्ट व्यञ्जनादीनामन्योन्य–परिवेशने।
भोजनादौ तयोरासीद् व्यतिदानकलिः क्षणम्।।७५।।

(गोवि० २०/७५)

---

(७१) हंसिनीगण जैसे अपने प्रिय (हंस का) अवशिष्ट मृणाल भोजन करती हों, हरिणीगण जैस किसलय (कोमलपत्ते) भोजन कर रही हों, भ्रमरीवृन्द जैसे सुन्दर पुष्पों का मकरन्द पान कर रहीं हों, चकोरीगण जैसे चन्द्र की सुधा का पान कर रही हों वैसे ही श्रीराधा तथा सखीवृन्द अपने प्रियतम श्रीकृष्ण का भोजनावशिष्ट परमानन्द पूर्वक भोजन करने लगीं।

(७२) इसके पश्चात् श्रीराधा तथा सखीवृन्द भोजन शेष करके श्रीकृष्ण का चर्वित ताम्बूल आस्वादन करती हुई दासीगणों द्वारा सेवित होकर, परम तृप्ति को लाभ कर अपने–२ पलंगों पर विश्राम करने लगीं।

(७३) इधर तुलसी और रूपमंजरी इन दोनों ने उनका अधरामृत उठा लिया और मालती सखी द्वारा वृन्दाजी को समीप आनन्दपूर्वक भेज दिया।

(७४) तब उन्होंने अन्यान्य सखि मंजरी, दासीगण को भी भोजन कराके अपनी स्वामिनी का अधरामृत अपने गण (परिकर) सहित हर्षपूर्वक भोजन किया।

(७५) भोजन करते समय अपनी–२ रुचि के व्यंजनादि एक दूसरे को परोसते एवं देते लेते समय क्षणकाल के लिए उनमें कलह (प्रेम का कलह) भी हुआ।

भुक्त्वाचम्य तदायाते राधायाश्चरणान्तिकम्।
ताम्बूलचर्वितं तस्या अश्नन्तौ तामसेवताम्।।७६।।

(गोवि० २०/७६)

अथात्र घोषेशसुतः सवित्र्यां, स्वं शययित्वा स्वगृहं गतायाम्।
क्षणं स विश्रम्य बहिः स्वदासान्, प्रस्थाप्य गेहाच्छयनादुदस्थात्।।७७।।

(गोवि० २१/१०२)

कीलयित्वा पुरोद्वारं दासान् प्रस्थाप्य तद्बहिः।
गन्तुमुत्कमनाः कुञ्जं पक्षद्वारेण निर्ययौ।।७८।।

(गोवि० २१/१०३)

अनाच्छन्नं हित्वा शशिकरचितं घोषवसतेः पुरोद्वारं सम्भावित–विविध–लोकागमगमम्।
सुखं पश्चात्सृत्या विटपिवृतया यामि विपिनं विचार्येत्थं गन्तुं पदयुगमधाद्यर्हि स पुरः।।७६।।

(गोवि० २१/१०४)

तदैव सा स्वे ब्रजभूरतर्कितं निधाय यन्त्रार्पित–यानसन्निभे।
मनोजवे हृत्कमले निनाय तं कुञ्जालय तन्मनसा सह द्रुतम्।।८०।।

(गोवि० २१/१०५)

---

(७६) भोजन के पश्चात् आचमन करके तुलसी और श्रीरूपमंजरी दोनों श्रीराधा के समीप गयीं वहाँ उनका प्रसादी ताम्बूल प्राप्त कर उसका भक्षण करते हुए उनकी सेवा करने लगीं।

श्रीकृष्ण का वृन्दावन अभिसार :–

(७७) इधर गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण को जब यशोदाजी शयन करा कर अपने कक्ष की ओर चलीं गयीं तो उन्होंने कुछ क्षण विश्राम करके दासगणों को अपने कमरे के बाहर भेज दिया और शैय्या से उठ बैठे।

(७८) "दास वृन्द को बाहर भेजकर कक्ष के मुख्य द्वार को भीतर से श्रृंखलाबद्ध करके, श्रीकृष्ण कुंजगमन के लिए उत्सुक मना होकर पीछे की खिड़की द्वार से बाहर निकल आये।"

(७६–८०) गोपबस्ती का मुख्य द्वार अनावृत एवं चन्द्रमा के प्रकाश से व्याप्त हो रहा है वहाँ पर लोगों का गमनागमन भी संभव है अतएव उस मुख्य पथ को छोड़कर श्रीहरि पीछे की वृक्षाच्छन्न मार्ग से चल पड़े। ज्यों ही इस प्रकार विचारकर श्रीकृष्ण ने पथ में चरण रक्खे श्रीब्रजभूमि यन्त्र से चलाये जाने वाले यान की भाँति मन की भाँति द्रुत गमन करने वाली बनकर अपने हृदय कमल पर श्रीकृष्ण को विराजमान करके उनके मन के साथ ही उनको कुंजभवन में लाकर उपस्थित कर दिया।

ज्योत्स्नापूर्णं तूर्णमुल्लध्य यत्नाच्छायाछन्नं वर्त्मगृहंस्तरुणाम्।
आयातोऽहं प्रेयसी सा गता मे किंवा नेत्थं कृष्ण आसीत्तदोत्कः।।८१।।

(गोवि० २१/१०६)

उत्थायाथ वरांगी दास्या स्थापितमग्रे।
अध्यास्तासनवर्यं सा नानामणिचित्रम्।।८२।।

(गोवि० २/५६)

अनुरागविहस्तचित्ता सा स्वसखीमाह–
महेन्द्रमणिमण्डली–मदविड़म्बि–देहद्युति–र्ब्रजेन्द्रकुलचन्द्रमाः स्फुरति कोऽपि नव्यो युवा।
सखि! स्थिरपतिव्रतानिकर–नीविबन्धार्गलच्छिदाकरण–कौतुकी जयति यस्य वंशी ध्वनिः।।८३।।

(ल० १/४६)

तस्योरस्तटमण्डलं धृतिनदीरोधक्रियापण्डितं वक्त्रेन्दुः कुलधर्म–पंकजवनी–संकोचदीक्षाव्रती।
दोर्यूपौ नितरामुदञ्चितचिरव्रीड़ाभिचाराध्वरौ हा कष्टं निखिलांगिला सखि! दृशोर्भंगीभुजंगीतुसा।।८४।।

(वि० २/४५)

---

(८१) मैं ज्योत्सनापूर्ण पथ को छोड़कर यत्नपूर्वक वृक्षों द्वारा आच्छादित मार्ग में चलकर यहाँ आ पहुँचा हूँ। मेरी प्रेयसी श्रीराधा आयी है या नहीं यह विचार करते हुए श्रीहरि उत्कंठित हो उठे।

(८२) इधर वरांगी श्रीराधिका शैय्या से उठकर दासी द्वारा स्थापित उत्तम मणिचित्रित आसन पर बैठ गयीं।

श्रीराधिका द्वारा श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन :–

(८३) तब श्रीराधिका अनुराग के कारण व्याकुलित होकर अपनी सखी से कहने लगीं– सखि! जिनकी अंगकान्ति इन्द्रनीलमणि के गर्व को भी परास्त करती है, ऐसे कोई बृजेन्द्रकुलनन्दन नवीन युवक है जिनकी वंशीध्वनि स्थिरपतिव्रताओं के नीवीबन्ध रूपी अर्गल को छेदन करने के लिए कौतुकी बनी हुई है (अर्थात् सहज ही पतिव्रताओं के धर्म को नष्ट कर देती है) और जय को प्राप्त हो रही है।

(८४) हे सखि! उनका वक्षस्थल रूपी तट प्रदेश धैर्यरूपी नदी को रोकने में दक्ष है (धैर्य नष्ट करता है) उनका वदनचन्द्र कुलधर्म रूपी कमलवन को नष्ट (संकुचित) करने की मानो दीक्षा ली हो और उनकी दोनों भुजाए मानो दो दीर्घाकार, युवतियाँ की लज्जानाश करने वाले अभिचार यज्ञ की यज्ञशाला के यूप (यज्ञ पशु को बांधने का काष्ठ) के समान हैं। हाय! कितने कष्ट का विषय है कि उनकी भ्रूभंगी रूपी सर्पिणी तो हमारी धैर्य लज्जा आदि सबका ग्रास करने को ही तुली है।

इन्द्रनीलमणिदर्पणदर्प–द्रोहदोहनमहः परिसर्पः।
कोटिचन्द्रमधुरो रविकोटि, ज्योतिरंगजित–मन्मथकोटिः।।८५।।

(कृष्णा० ४/३)

मेदुरो मृदुतरः सतरंगः, श्यामलः सतत–सौरभसंगः।
आयतः शमितलोचनताप, स्तस्य विस्फुरति केशकलापः।।८६।।

(कृष्णा० ४/४)

हेलया जित–सुधाकरबिम्बं, लीलया कृत–सरोरुहडिम्बम्।
आस्यमस्य सुषमाकृतदास्यं, राजते लवणिमामृतलास्यम्।।८७।।

(कृष्णा० ४/५)

चञ्चलालक–कुलाकुलसीमा, चारुचित्रतिलकेन सुषीमा।
तस्य सौभग–सुधारसवाटी, भाति भालमहसाः परिपाटी।।८८।।

(कृष्णा० ४/६)

चारुचापल–रुचामुपकर्त्री, कामकार्मुक–महः परिर्हत्री।
वक्त्रपद्ममधूपावलिरूपा, भ्रूलताऽस्य वलतेऽप्रतिरूपा।।८९।।

(कृष्णा० ४/७)

---

(८५) सखि उनके श्रीअंग की कान्ति से इन्द्र नीलमणि के दर्पण को दर्प को भी चूर–२ कर रही है और वे कोटि चन्द्र से भी सुमधुर, रवि कोटि से भी अधिक प्रकाशमान तथा कोटि मन्मथ के सौन्दर्य को भी परास्त करने वाले हैं।

(८६) उनके केश कलाप घने, स्निग्ध, कोमल और श्यामल तरंगों से युक्त हैं, लम्बे है, सतत सुगन्धित तथा नेत्रों को सदा ताप से शान्ति देने वाले हैं।

(८७) उनके मुखारविन्द ने अनायास ही चन्द्र पर विजय पा ली है और कमल को मानो भययुक्त (अपनी शोभा से फीका) कर दिया है। सुषमा ने स्वयं ही इनका दास्य स्वीकार कर लिया है। मानो लावण्यामृत उनके मुख पर लास्य (हावाभावमय नृत्य) कर रहा हो।

(८८) उनके ललाट की ज्योति अत्यंत उज्जवलता की परिपाटी युक्त, उस पर चंचल अलकावली परिव्याप्त तथा सुचारु विचित्र तिलक रचना से दर्शनीय वह तो मानो सौभाग्य रूपी अमृत रस का आलय (निवास स्थान) ही हो।

(८९) हे सखि ! श्रीकृष्ण के वदन कमल पर मधुकर श्रेणी के समान जो अतुलनीय भ्रूलता है वह चंचलता की कान्ति के साथ स्वाभिलाष प्रकट कर रही है और कामदेव के धनुष का प्रभाव ही मानो नाश कर रही है।

कारणेऽप्यसति कुनितकोणे, फुल्लकोकनद–सोदरशोणे।
निर्व्यलीक–करुणारसपूर्णे, पूर्णया मदमुदा घनघूर्णे।।६०।।

(कृष्णा० ४/८)

द्राधिमाणमनघं प्रथिमानं विभ्रती सुषमया वलमानम्।
पक्ष्मभिर्घनतरैः प्रतिभाते, लोचने अघरिपोः शुशुभाते।।६१।।

(कृष्णा० ४/६)

नासिकास्य तिलपुष्पसुशोभा, सौभगेन विहिताधिकलोभा।
भात्यधोमुख–मनोज–निषंगा, कीरसार–परिवार–विभंगा।।६२।।

(कृष्णा० ४/१०)

कर्णयोर्मकरकुण्डलहेला–ताण्डवाहित–कपोल सुखेला।
वक्त्र–तामरस–नव्यदलाभा, सा द्वयी जयति तस्य सुशोभा।।६३।।

(कृष्णा० ४/११)

लोलकुण्डलमणि–प्रतिबिम्बं, प्रेयसीगण–पणीकृतचुम्बम्।
भाति मन्दहसितोन्नतिकान्तं, गण्डमण्डलममुष्य नितान्तम्।।६४।।

(कृष्णा० ४/१२)

(६०–६१) जिनके नेत्रों के कोण अकारण ही संकुचित, प्रस्फुटित कमल की तरह लाल रंग के, निष्कपट करुणारस से परिपूर्ण एवं मत्तता रस से घन घूर्णाविशिष्ट–जो सुषमा मण्डित दीर्घता एवं विस्तृत (कान तक लम्बे) घनी–२ पलकों की शोभा से युक्त इस प्रकार अघनाशन श्रीकृष्ण के नेत्रयुगल शोभा को प्राप्त हो रहे हैं।

(६२) सखि ! श्यामसुन्दर की नासिका तिल पुष्प से भी अधिक शोभनीय एवं इसकी सुन्दरता अत्यंत लोभनीय है, अधोमुख (मुख नीचे की ओर हो) काम का तूणीर ही हो अथवा किसी सुन्दर शुक की चोंच हो इस प्रकार शोभा पा रही है।

(६३) श्रीकृष्ण के दोनों कानों में मकरकुण्डल इधर–उधर हिल रहे हैं, उनके नृत्ये से मानों वे कपोल प्रदेश पर खेल, खेल रहो हों और वे वदन कमल के मानों दो सुन्दर दल हों ऐसे श्रीहरि के कर्णयुगल की शोभा की जय हो।

(६४) हे सखि ! श्रीकृष्ण का गण्डमण्डल (कपोल का ऊपरी भाग) इस प्रकार शोभा का विस्तार कर रहा है मानों उसमें पड़ने वाला चंचल (हिलता हुआ) मणि कुण्डल का प्रतिबिम्ब, ऊँचा होकर, मृदु मन्द हंसते–२ अपने प्रेयसीगणों से चुम्बन का दाव (पण) लेने के लिये नितान्त आग्रह कर रहा हो।

सृक्वर्णेमधुरिमामृतकूपं, लेखया वहलयाऽप्रतिरूपम्।
बन्धुजीव–जय–गर्व–गरिष्ठं, तस्य राजति तरामधरोष्ठम्।।६५।।

(कृष्णा० ४/१३)

भाति पक्वयमजाम्बरशोभा, भावुकस्य चिबुकस्य सुशोभा।
निम्नमध्य–मधुरातिगभीरा, प्रेयसो लवणिमामृतधारा।।६६।।

(कृष्णा० ४/१४)

ज्योतिषा पुरु पराहतमुक्ताः, कुन्दकुटनामल–पराभव–शक्ताः।
अन्तरन्तरपि शोण–सुरेखा, निन्द्यमान शिखरौघ–मयूरवाः।।६७।।

(कृष्णा० ४/१५)

चारुपाकिम–सुदाड़िमबीजा, दभ्रविभ्रम–समाहितपूजाः
चिद्विलास–महसामिव सारा, भान्ति तस्य दशनाः स्मितपूराः।।६८।।

(युग्मकम्) (कृष्णा० ४/१६)

आननोदरमहो मधुरिम्णां काचिद्युद्द्युदिव दिव्य गरिम्णाम्।
पद्मगर्भभव–नव्यदलाभा, भाति तस्य रसनारुण शोभा।।६९।।

(कृष्णा० ४/१७)

---

(६५) हे सखि ! श्रीकृष्ण के अधरोष्ठ अत्यंत दीप्तिशाली हैं उन अधरों के प्रान्तभाग (किनारे) तो मानो माधुर्यामृत रस के कूप हैं। उसकी दृढ़तर रेखा अतुलनीय है वे बांधूली (लाल रंग का फूल) की शोभा को परास्त कर गर्व प्रकाश कर रहे हैं।

(६६) प्रियतम श्रीकृष्ण के मंगलमय चिबुक की शोभा तो देखो, पके हुए दो जामुन की तरह नीचे का और मध्य भाग कुछ गभीर (गहरा) है। मानो तो उसमें से लावण्यामृत की धारा बह रही हो।

(६७–६८) जिनकी ज्योति से मोतियों की लड़ियों की शोभा फीकी पड़ जाती है कुन्द कलिकाओं को भी जो परास्त कर रहे हैं, जिनके मध्य–२ में सुन्दर लाल रेखा हैं और जो 'शिखर' नाम मणि की किरणों की निन्दा करते हैं, उत्तम सुपक्व दाडिम बीज (अनार के दाने) तो मानो आदर से उनकी पूजा करते हैं एवं जो चिद्विलासमय ज्योति राशि के सार स्वरूप प्रतीत हो रहे हैं ऐसी मृदुमंदहास्य से सुशोभित, प्राणबल्लभ की दन्तपंक्ति की शोभा हो रही है।

(६९) हे सखि ! दिव्य गरिमा से युक्त, मुखमण्डल की कान्ति राशि की कोई अनिर्वचनीय महाशोभा के समान, कमल के भीतरी भाग में उत्पन्न कोई नवीनदल की प्रभाविशिष्ट अरुणवर्ण की रसना प्रकाश पा रही है।

अग्रतः क्रमसुशोभनपुष्टः, सुत्रिरेख–सुषमाधिकमिष्टः।
निन्दितेन्द्रमणि–कम्बुरकण्ठः, शोभतेऽस्य दयितस्य स कण्ठः।।१००।।

(कृष्णा० ४/१८)

श्रीवधूवसति–वास्तुवरः श्री, वत्स–कौस्तुभ महः प्रथित श्रीः।
वक्षसः परिसरोऽस्य विशालः, शोभते मणिकवाट–करालः।।१०१।।

(कृष्णा० ४/१६)

कन्धरामधुरिमश्रुतिहेतोतिहेतो, र्निम्नमध्यमतिसद्गुणसेतोः।
बाहुमूलपरिपुष्टि–गेरिष्ठं, चारुपार्श्वरुचि राजति पृष्ठम्।।१०२।।

(कृष्णा० ४/२०)

भाति तस्य तदलं गजशुण्डा, दण्डयोर्भरति यस्य वितण्डा।
जानुबिम्ब–परिचुम्बनशीलं दोर्युगं मणियुगोत्तमलीलम्।।१०३।।

(कृष्णा० ४/२१)

सप्रपञ्च–नखमण्डलधाम्ना, पञ्चशाखयुगलेनसुभूम्ना।
पञ्चपञ्चमणि–मण्डलचंचलत्, पञ्चशीर्ष भुजगाकृतिमञ्चत्।।१०४।। युग्मकम (कृष्णा० ४/२२)

---

(१००) हे सखि ! श्यामसुन्दर का कण्ठ ऊपर की ओर से क्रमशः सुशोभन एवं पुष्ट सुन्दर तीन रेखाओं की सुषमा से मण्डित, इन्द्रनीलमणिमय शंख की निन्दा करने वाला अतीव मनोज्ञ है।

(१०१) और हे सखि श्रीकृष्ण का वक्षस्थल तो मानो श्रीवधू के रहने का मन्दिर है जिसमें श्रीवत्स (शुक्लवर्ण दीक्षावर्त्त रोमावली विशेष) एवं कौस्तुभ की किरणों से छाये हु सौन्दर्य से युक्त यह तो मानो विशाल उत्तुंग मणि कवाट (किवाड़) की भांति शोभा का विस्तार कर रहा है।

(१०२) कंधों की मधुरिमा के प्रवाह से जिनका मध्य भाग पुष्ट हो रहा है, जो बाहुओं से लेकर परिपुष्ट होती हुई (चौड़ी) गौरवशाली हो रही है और जो दोनों पार्श्वदेश (पीठ के दोनों पास के भाग) की शोभा से भूषित है ऐसी अखिल कल्याण गुणों से युक्त श्रीकृष्ण की पीठ शोभा पा रही है।

(१०३–४) हे सखि ! श्रीकृष्ण की भुजाएं तो मानो हाथी की सूंड के साथ–साथ वितण्डा (विवाद) परायणं हैं अर्थात् उससे भी अधिक बलिष्ठ हैं और सुन्दर घुटनों का मानों चुम्बन कर रही हैं, (घुटनों तक लम्बी है) उत्तम मणिमय यूप (यज्ञपशु को बांधने का स्तम्भ) जैसी विस्तार कर रही है जिनके आगे हस्तकमलों के नखों की किरणें झिलमिल कर रहीं है तथा जिन हाथों की उंगलियों में पाँच रंग मणियों की अंगूठियाँ शोभा पा रही है (स्वर्ण, हीरा, पद्मराग, इन्द्रनील, मुक्ता) मानों पाँच सिर वाला सर्प (जिसके सिर पर मणि हो) ही हो, इस प्रकार दोनों भुजाएं कान्ति का विस्तार करती हुई शोभा पा रही हैं।

पिप्पलच्छद–परिच्छदविन्दे, बन्धुर–त्रिवलिशालिनि तुन्दे।
तस्या नाभिसरसी–सरसान्ते, कस्य मुह्यति न धीरतिकान्ते।।१०५।।

(कृष्णा० ४/२३)

नाभिकूपविवरात् समुदीर्णा, चारुलोम–लतिकारसपूर्णा।
सा वलिक्रम–पराक्रमभुग्ना, तस्य चेतसि न कस्य निमग्ना।।१०६।।

(कृष्णा० ४/२४)

इष्टमिष्टरुचि मुष्टि–विलग्नं, तस्य तद्विजयतामवलग्नम्।
यद्विलोक्य विहितव्यपसर्पः, शाम्भवस्य डमरोरपि दर्पः।।१०७।।

(कृष्णा० ४/२५)

उन्नतस्फिचि सवीचि–मरीचि, स्तोम कोमलिमकेलि–समीचि।
यन्नितम्बफलके सुविपञ्ची, स्वानजिज्जयति काञ्चन–काञ्ची।।१०८।।

(कृष्णा० ४/२६)

श्यामरामकदलीवरकाण्डे, पीनवृत्तघनताभिरखण्डे।
कोऽभजन्तुलनयैव जुगुप्सां, कस्तदूरमभि नेच्छति लिप्साम्।।१०९।।

(कृष्णा० ४/२७)

---

(१०५) हे सखि ! नाभि सरोवर के रसमय तट देश पर स्थित पीपल के पत्ते की शोभा को धारण करने वाले, कुछ ऊँची नीची तीन रेखाओं से युक्त पेट की सुन्दरता वाले रूप को देखकर किसकी बुद्धि मोह को प्राप्त नहीं हो जाएगी।

(१०६) और सखि ! नाभी रूपी कूपगर्त से उठने वाली रसपूर्ण सुचारु रोमलता, उदर की त्रिवली पर अपनां विक्रम प्रकाशित करती हुई (उसके ऊपर चढ़कर) वक्र हो रही है। अहो यह रोमलता किसके चित्त को रस में निमग्न नहीं कर रही ?

(१०७–१०९) सखि ! जिसके दर्शन से महादेव को डमरु का दर्प भी खण्डित हो जाता है, ऐसा सबको प्रिय, मधुर कान्ति से युक्त, मुट्ठी में आ जाने वाला (इतना कृश) श्रीकृष्ण का मध्य देश (कटि) विजय को प्राप्त हो रहा है। श्रीकृष्ण का उन्नत (ऊँचा) कटि देश के नीचे संयुक्त, तरंगायमान किरणों की कोमलता से केलिपरायण नितम्बदेश पर उत्कृष्ट वीणा की झंकार को परास्त करने वाली सुवर्ण काञ्ची (मेखला) विराज रही है और श्यामसुन्दर के उरु युगल स्थूल, गोलाकार एवं दृढ़ता अर्थात् शक्तिशाली है। श्यामरंग की रामकदली (केले के उत्तम स्तम्भ) के साथ जिसकी तुलना करके ब्रह्मा भी निन्दनीय हो गया, उनके प्रति किसके हृदय में लोभ नहीं होता।

पिण्डितो मधुरिमेव न चोच्चै, मांसलं सुवलितं न च नीचैः।
सम्पुटं रतिपतेरिव धाम्ना–मस्य जानु जयतान्मधुरिम्णा।।११०।।

(कृष्णा० ४/२८)

जानुतः क्षरदधोमुखधारा, माधुरीव परितः कृतचारा।
तस्य भाति मनसोऽप्यसुलङ्घा, मूलतः क्रमकृशा वरजङ्घा।।१११।।

(कृष्णा० ४/२९)

राजतोऽस्य घुटिके गुणसिन्धो, बुंद्बुदाविव महोरससिन्धोः।
कामकेलि–गुलिके इव दिव्ये, रम्यनीप–कलिके इव नव्ये।।११२।।

(कृष्णा० ४/३०)

माधुरी–सरिदधोमुखधारा, चारुवारिरुह कान्त्यनुकारा।
कौरविन्दमणिमण्डलभाभि, र्भूषिता नखमयूरवलताभिः।।११३।।

(कृष्णा० ४/३१)

अंकुशध्वजसरोज–र्यवाद्यै–र्लक्ष्मभिः परमलक्ष्मभिराद्यैः।
रञ्जिता जयति तस्य सुषीमा, सा द्वयी चरणयोः सुखसीमा।।११४।।

(युग्मकम्) (कृष्णा० ४/३२)

---

(११०) हे सखि ! श्रीकृष्ण के जानुयुगल (घुटने) तो मानों माधुर्य की खान है, मांसल एवं गोलाकार (कुछ मोटे) अतएव न अधिक ऊँचे न नीचे है अर्थात् कुछ उभरे हुए है मानो रतिपति कामदेव की तेजराशि के सम्पुट (डिब्बे) हो उनके माधुर्य की जय जयकार हो।

(१११) सखि ! श्यामसुन्दर के जानु नीचे से क्रमशः कृशता युक्त और उनके निकलने वाली माधुर्य की धारा चारों ओर बह रही है। उनकी अति उत्तम जङ्घा के दर्शन कर मन की गति का कहीं और जाना असंभव है।

(११२) सखि ! देखो गुणसिन्धु श्रीकृष्ण की गुलक द्वय (पिंडली) यह तो मानो उज्जवल रस सागर के बुद्बुद् हैं अथवा कामदेव की केलि (क्रीड़ा) की दो गुटिका हैं या किसी सुन्दर कदम्ब की दो नवीन कलि हैं।

(११३–१४) और हे सखि ! माधुर्य सरिता की मानो अधीमुखी धारा (नीचे की ओर बहने वाली) कमल की कान्ति जिसका अनुकरण कर रही है (जिसके सामने तुच्छ है) पद्मरागमणियों एवं श्रेष्ठ, अंकुश, ध्वज, पद्म, यव आदि चिन्हों द्वारा रञ्जित, मनोज्ञ एवं परम सुखदायक श्रीकृष्ण के श्रीचरणयुगल की जय हो।

ईदृशा पुरुषभूषणेन या, भूषयन्ति हृदयं न सुभ्रुवः।
धिक् तदीयकुलशीलयौवनं, धिक् तदीय—गुण रूप सम्पदः।।११५।।

(आ० ८/६०)

जीवितं सखि ! पणीकृतं मया, किं गुरोश्च सुहृदश्च मे भयम्।
लभ्यते स यदि कस्य वा भयं, लभ्यते न यदि कस्य वा भयम्।।११६।।

(आ० ८/६६)

मां धवो यदि निहन्ति हन्यतां, बान्धवो यदि जहाति हीयताम्।
साधवो यदि हसन्ति हस्यतां, माधवः स्वयमुरीकृतो मया।।११७।।

(आ० ८/६७)

व्रीड़ां विलोडयति लुञ्चति धैर्यमार्याभीतिं भिनत्ति परिलुम्पति चित्तवृत्तिम्।
नामैव यस्य कलितं श्रवणोपकण्ठे दृष्टः स किं न कुरुतां सखि ! मद्विधानाम्।।११८।।

(आ० ८/६८)

विलासचेष्टाः सखि ! केशिनाशिनो हलाहलाभाः प्रदहन्ति मे मनः।
कृन्तन्ति मर्माणि गुणा घुणा इव प्रेमा विकारी हृदि हृद्व्रणो यथा।।११९।।

(अ० ३/२१)

---

(११५) हे प्राणप्रिय सखि ! ऐसे सुन्दर पुरुषों में भूषणस्वरूप श्रीकृष्ण से जो सुन्दरी (सुन्दर भौंहों वाली) रमणी प्रीति कर मिलन को प्राप्त नहीं करती उनके तो कुल, शील, यौवन को धिक्कार है। उनके गुण तथा रूप दोनों सम्पदाओं को भी धिक्कार है।

(११६) सखि ! मैंने तो अपने जीवन को ही दाव पर लगा दिया है अर्थात् श्रीकृष्ण के मिलन बिना मैं जीवन धारण नहीं करुंगी। अब मुझे गुरुजनों अथवा अहृदजनों का कोई भय नहीं है। यदि मुझे श्यामसुन्दर प्राप्त हो जाते है तो मुझे किसी से क्या भय है और यदि प्राप्त नहीं होते तो भी किसी का क्यों भय करुँ ? (क्योंकि उनके बिना तो मेरा जीवन ही नहीं रहेगा अतः मेरा कोई क्या अनिष्ट कर सकता है।)

(११७) मैं अधिक क्या कहूँ मेरा यदि पति वध कर दें तो करें, बन्धु बान्धव मुझे भले ही त्याग दें, सज्जनगण मेरा उपहास करें तो कर लें, मैंने तो स्वेच्छापूर्वक माधव का वरण कर लिया है।

(११८) हे सखि ! जिसका नाम एकबार श्रवण के पास कोई सुना दे तो लज्जा (कुल की मर्यादा रूपी लाज) मथित (दूर भाग जाती है) हो जाती है, धैर्य और गुरुजनों के भय का नाश हो जाता है, चित्तवृत्ति का लोप हो जाता है। वह मेरे जैसी (प्रणयान्धा) रमणी के दृष्टिगोचर होकर मेरी क्या दशा करेंगें ?

(११९) हे सखि ! केशव की विविध विलासचेष्टा हलाहल विष की तरह मेरे चित्त को जला रहीं हैं। उनके गुणों का स्मरण करके मेरे मर्म स्थान घुन (जैसे लकड़ी में छेद कर देता है) की तरह जर्जर हो रहे हैं और उनका प्रेम तो हृदय में हृदव्रण (घाव) की भांति पीड़ा दे रहा है।

स्वामी कुप्यति कुप्यतां परिजना निन्दन्ति निन्दन्तु मा मन्यत् किं प्रथतामयञ्च जगति प्रौढो ममोपद्रवः।
आशास्यं पुनरेतदैव यदिदं चक्षुश्चिरं वर्धतां येनेदं परिपीयते मुररिपोः सौन्दर्यसारं वपुः।।१२०।।

(प० १७६)

अद्य सुन्दरि ! कलिन्द–नन्दिनि, तीरकुञ्ज भुवि केलि – लम्पटः।
वादयन्मुरलिकां मुहुर्मुहु र्माधवो हरति मामकं मनः।।१२१।।

(प० १६५)

एष स्थैर्यभुजंगसंघदमनासंगे विहंगेश्वरो व्रीड़ाव्याधिधुरा–विधूननविधौ तन्वंगि धन्वन्तरिः।
साध्वीगर्व भराम्बुराशि–चुलुकारम्भे तु कुम्भोद्भवः कलिन्दीतटमण्डलीषु मुरलीतुण्डाद्ध्वनिर्धावति।।१२२।।

(वि० १/३७)

श्रुणु सखि ! गुरुवोऽन्तः शेरते साम्प्रतं ते सदनमनुगवां सोऽप्यस्ति दूरेऽभिमन्युः।
स्मृतिमतिधृतिलज्जाः शाययित्वा स्वतल्पे तदभिसर रसेन स्वप्रियं केलिकुञ्जे।।१२३।।

---

(१२०) अतएव सुनो सखि ! मेरे स्वामी कोप करें तो भले ही करें, परिजन निन्दा करें तो करें, और मेरा मन यह गुरुतर उपद्रव (श्रीकृष्ण प्रेम) जगत के समक्ष कुछ अन्य विस्तार करें तो करता रहे (यहाँ राधारानी का श्रीकृष्ण प्रेम जग जनों की दृष्टि में पातिब्रत्य एवं कुल मर्यादा का लंघन होने के कारण ही इसे उपद्रव कहा है) परंतु मैं तो एक मात्र यही अभिलाषा करती हूँ कि मेरे नेत्र सदा वृद्धि को प्राप्त होते रहे जिनसे मैं सौन्दर्यसार श्रीकृष्ण की रूपसुधा का प्रेम पूर्वक पान करती रहूँ।

(१२१) सुनो सखि ! आज कालिन्दी तीरवर्ती कुंजभूमि पर केलि लम्पट माधव बारम्बार मुरली बजाकर मेरा मन हरण कर रहे हैं। श्रीराधा के इस प्रकार उत्कण्ठा भरे वचनों को सुनकर ललिता सखि कहने लगीं–

(१२२) हे सखि ! यह मुरली ध्वनि कालिन्दी तट से आ रही है इसको साधारण मत समझना, यह युवतीगणों के धैर्य रूपी भुजंग समूह का दमन करने में गरुड़ के समान, लज्जा रूपी व्याधि का नाश करने में धन्वन्तरि के समान और साध्वी रमणियों के गर्वातिशय सागर का शोषण करने में अगस्त के समान है।

(१२३) अतएव हे सखि राधे ! सुनो, इस समय तुम्हारे गुरुजन घर में भीतर सो रहे हैं, अभिमन्यु भी दूरवर्ती गौशाला में अवस्थान कर रहे हैं, अब तुम अपनी स्मृति, धैर्य, बुद्धि, लज्जा इन सबको इस शैय्या पर सुलाकर (अर्थात् इन्हें यही त्याग दो) अनुराग भरी केलिकुंज के प्रति अपने प्रियतम के निकट अभिसार करो।

अनुपद–वनमाल–प्रेमसन्दर्शिताधवा कुसुमशर–भटेनैवाभितः पाल्यमाना।
हृदि पुनरुपगूढोत्कण्ठयान्वाचलन्ती श्रमलवमपि राधे ! नाध्वनो ज्ञास्यसि त्वम्।।१२४।।

इन्दुस्तुन्दिल मण्डलः प्रथयते वृन्दावने चन्द्रिकां सन्द्रां सुंदरि ! नन्दनो ब्रजपते स्त्वद्वीथिमुद्वीक्षते।
त्वं चन्द्राञ्चित चन्दनेन खचिता क्षोमेण चालंकृता किं वर्त्मन्यरविन्दचारुचरणद्वन्दं न संधित्ससि।।१२५।।
(उ० ५/७४)

श्रीराधिकाप्यशकलेन्दु–करोज्ज्वलायां रात्राविहात्मरमणाप्ति–समुत्सुकासौ।
संकेतकुञ्जगमनत्वरिता सखीभिः शुक्लाभिसार–रचनां चतुराचचार।।१२६।।
(गोवि० २१/२३)

कदाचित्तामस्यामसितवदना सा मृगमदैर्विलिप्तांगी कालागुरुतिलकचित्रोत्पलकुलैः।
कृतोत्तंसा नाना–सितिमणिकृतालंकृतियुता निराबाधा राधा प्रियमभिसरत्यालि–सहिता।।१२७।।
(गोवि० २१/२५)

---

(१२४) हे सखि ! श्रीकृष्ण का प्रेम ही तुम्हारा पथ प्रदर्शित करेगा, कंदर्प रूपी योद्धा तुम्हारी दोनों ओर से रक्षा करेगा, तथा हृदय में भरी प्रगाढ़ उत्कंठा से पथ में चलते हुए तुम्हें लेशमात्र भी परिश्रम नहीं होगा।

(१२५) श्रीविशाखाजी कहने लगीं– हे सुन्दरि ! आज पूर्णचन्द्र उदय होकर वृन्दावन में अत्युज्जवल किरणों को प्रकाशित कर रहा है जिसे देखकर बृजराजनन्दन ऊँचे स्थान पर चढ़कर आपका पथ नहिार रहे हैं अतएव तुम अपने अंग पर कर्पूरयुक्त चन्दन का लेप कर शुभ्रवर्ण क्षोमवसन पहन कर उनके पथ की ओर अपने कमल से भी सुन्दर चरण बढ़ाकर उज्जवल रजनी निहार, अपने प्रियतम से मिलने के लिये समुत्सुक होकर, सखीगण के साथ शीघ्रता पूर्वक, चांदनी में जो उपयुक्त हो अर्थात् सब श्वेत वर्ण के वस्त्राभूषण धारण कर अभिसार के लिये प्रस्तुत हो उठीं।

(१२७) कभी–२ राधारानी कृष्णपक्ष की रात्रियों में काले रंग के वस्त्र पहनकर, मृगमद अंग में लेपकर, काले अगरु द्वारा तिलक एवं पत्रावली रचनाकर, नीलकमल की माला एवं कानों के कुण्डल, नाना प्रकार इन्द्रनीलमणि के अलंकार अपनी सखियों के साथ प्रियतम के समीप निर्बाध गति से अभिसार करती हैं।

मुक्ताजालैर्वलयरसना–दामहराद्यनागः क्षौमं ज्योत्सनापटलधवलं चन्दनेनांगरागः।
मल्लीमालाश्चिकुरनिकरे सौरभेणातिकान्ताः श्रीताड़ंकाः श्रुतिकिशलय प्रान्तयोः कान्तदान्ताः।।१२८।।
(कृष्णा० ६/१४)

हंसश्येनाप्रपदवसन प्रान्तभागैरकुण्ठैराच्छन्नभ्रूनयनमहसां क्लृप्तदीर्घावगुण्ठैः।
कर्पूराणां पथि पथि रजोवर्षणेनैव नासां चक्रुच्छाया–विसदृशतया चित्रमेतत्तदासाम्।।१२९।।
(युग्मकम्) (कृष्णा० ६/१५)

अत्यौत्सुक्यात्वरितगतयः श्रोणिभार–प्रथिम्ना मन्दं मन्दं रचितचरण–क्षेपमायासमूम्ना।
ज्योत्सनाजालं रजतलतिका वाटिकेति प्रतीत्या हस्तालम्बं क्वचन विदधुः श्रान्तिशान्त्यै सुरीत्या।।१३०।।
(कृष्णा० ६/१६)

उरुस्तम्भो गमनविरहं वेपथुर्गात्रलौल्यं हर्षाश्रुञ्च क्षिति परिचयाभावतः प्रातिकूल्यम्।
चक्रुस्तासां मलयजरसोल्लासनं रोमहर्षा रेर्जुज्योत्स्नाभिसरण–विधौ केवलं हासवर्षाः।।१३१।।
(कृष्णा० ६/१७)

(१२८–२९) आज ज्योत्सनामयी रजनी में श्रीराधा ने मोतियों के हार, चूड़ी और मेखला धारण की, ज्योत्सना की तरह शुद्ध शुभ्र वसन, चन्दन द्वारा अंगराग, अति सुन्दर सुगन्धित मल्लिकामाला केशों में एवं अतिसुन्दर हाथीदांत के कुण्डल, कर्णयुगल में धारण कर लिये। हंस के समान शुभ्र चरणों तक लम्बी ओढ़नी का घूंघट लम्बा सा लगाकर नेत्र एवं भौंहों की श्याम ज्योति को आच्छन्न कर लिया।पथ में कर्पूरधूलि की वर्षा सी हो रही थी अतः वहाँ पर इनकी छाया के साथ कोई भेद नहीं प्रतीत हो रहा था। यह कितने आश्चर्य की बात है।

(१३०) ये सब अति उत्कण्ठा से भरी शीघ्रगति से चलने की चेष्टा तो कर रहीं थीं, किंतु नितम्बभार के कारण श्रमित हो जाने से मृदुमन्थर गति से चरण पड़ रहे थे। कहीं–कहीं ज्योत्सनाजाल को ही रजतलता (सफेद फूलों की) वाटिका समझकर, श्रम निवारण करने के लिये मानों लता का सहारा लेने के लिये हाथ बढ़ाने लगती।

(१३१) कहीं–२ श्रीकृष्ण के विरह के आवेश में उनके उरु स्तम्भित हो जाने से गति रुक जाती थी और कहीं–२ मिलन का स्मरण कर गति चंचल हो उठती। कहीं आनन्दाश्रु नेत्रों में भर जाने से पथ न दीखने से प्रतिकूल दशा होती। कभी श्रीकृष्ण स्पर्श कर रहे है यह प्रतीती होने से रोमांच होता और मानो चन्दन की रस का प्रकाश हो इसी प्रकार ज्योत्सना रात्रि में अभिसार करते हुए केवल हास्य की वर्षा ही हो रही थी।

ज्योत्स्नाजाले निजनिजतनु–ज्योत्स्नयोल्लासयन्त्यः कृत्सना ज्योत्स्नान्तरमिव निजप्राणनाथं प्रयान्त्यः।
प्रत्यादिष्टाभिसरण–पथाः स्वानुरक्त्यैव दूत्या नैव ज्ञाता अपि शशिभृति स्वांशुजाल प्रतीत्या।।१३२।।
(कृष्णा० ६/१८)

श्रोणीभार प्रथिमनि समालम्बमानं विलम्बं राधा प्राणप्रियतमसखी–दत्तहस्तावलम्बम्।
नन्दं यान्ती प्रियगृहपथ दीर्घदीर्घ मृशन्ती खेदस्वेद–क्षुभिततनुका हन्त ! जग्लौ सुदन्ती।।१३३।।
(कृष्णा० ६/१६)

द्वित्रैः केलिसरोरुहं त्रिचतुरैर्धमिल्लमल्लीस्रजं कण्ठान्मौक्तिकमालिकां तदनु च त्यक्त्वा पदैः पञ्चषैः।
कृष्णप्रेम–विघूर्णितान्तरतया दूराभिसारातुरा तन्वंगी निरुपायमध्वनि परं श्रोणीभरं निन्दति।।१३४।।
(प० २११)

वृक्षच्छाये पथि पथि भिया वञ्चयन्ती स्वगम्यं स्थानं वंशीवटविटीपन शाखया लक्षयन्ती।
न्यस्य स्वीये हृदय–कमले सोह्यमाना निगूढं यण्त्राकारे बृजवनभुवा प्राप कृष्णासमीपम्।।१३५।।
(गोवि० २१/२६)

(१३२) ज्योत्सना रात्रि में फैली हुई चांदनी में अपनी देह कान्ति को मिलाकर चांदनी के समान वस्त्र पहन अपने प्राणनाथ के समीप सभी चल पड़ीं। चन्द्र की किरणों में अपनी देह की किरणों का अनुमान भ्रम होने से पथ की प्रतीती न होने पर भी, अनुराग रूपा दूती ने ही उनको रास्ते का ज्ञान करा दिया।

(१३३) अहो नितम्ब देश की गुरुता (भार) से, बिलम्ब होता हुआ देखकर, सुन्दर दंतपंक्ति वाली श्रीराधा अपनी प्राणप्रियतमा सखी का हाथ पकड़कर मृदुमन्दगति से प्रियतम के कुंजगृह की ओर गमन कर रही हैं, उस मार्ग को अतिदीर्घ (लम्बा) विचारकर, खेद के साथ स्वेद बिन्दुओं से अंग भीग जाने से ग्लानि का अनुभव करने लगीं।

(१३४) श्रीराधा श्रीकृष्ण प्रेम से अंतःकरण विघूर्णित होने से (प्रेमोन्मादिनी होकर) अभी बहुत दूर तक चलना है यह विचार कर कातर होकर दो तीन पग आगे रखकर क्रीड़ापद्म (हस्त स्थित कमल) परित्याग कर दिया, तीन चार पग और आगे चल केशों में गुंथी मल्लीमाला त्याग दी, पांच छः पग रखकर कण्ठ से मोती की माला उतार दी, यह सब छोड़कर भी जब वे चलने में असमर्थता अनुभव करने लगीं तो सुकुमारी अपने नितम्बभार की निन्दा करने लगीं।

(१३५) वृक्षों की छाया वाले पथ पर भयपूर्वक चलते–२ राधारानी, जहाँ जाकर पहुंचना है, उसको प्रकट करती हुई, वंशीवट के वृक्ष की शाखा से अपने लक्ष्य का अनुमान लगाकर गमन करने लगीं। तब वृन्दावन की भूमि (चिन्मय होने के कारण) ने अपने हृदय कमल पर उनको विराजमान करके मानो किसी यन्त्र से चलने वाले यान पर आरुढ़कर श्रीयमुना तट के निकट पहुंचा दिया।

श्रीगोविन्दस्थलाख्यं तटमिदममलं कृष्णसंयोगपीठं वृन्दारण्योत्तमांगं क्रमनतमभितः कूर्मपृष्ठस्थलाभं।
कुञ्जश्रेणीदलाढ्यं मणिमयगृहसत्कर्णिकम् स्वर्णरम्भा–श्रेणीकिञ्जल्कमेषा दशशतदलराजीवतुल्यं ददर्श।।१३६।।
(गोवि० २१/२८)

कल्पद्रुमैर्वाञ्छितदानकल्पै, रपारिजातैरपि पारिजातैः।
मन्दारवृक्षैरपि रांकदारैः सन्तानकैः सम्मदतानकैश्च।।१३७।।
(गोवि० २१/३३)

शश्वद्धरेश्चित शरीरचन्दनैर्यच्चन्दनैः श्रीहरिचन्दनैरपि।
महावदान्यैरितरैश्च भूरुहैर्व्याप्तं लताराजि–विराजितांगकैः।।१३८।।
(गोवि० २१/३४)

वल्ल्यः सर्वा यत्र ताः कल्पवल्ल्यो वृक्षाः सर्वे कल्पवृक्षा बकारेः।
गोपीनां चाभीष्टपूर्त्तौ समर्था जात्या या ये तादृशः किन्तु तास्ते।।१३९।।
(गोवि० २१/३७)

शाला भान्ति चरा स्तोये यत्र शाला स्थिराः स्थले।
रोहितोप्सुचरस्तीरे रोहितौ च चरस्थिरौ।।१४०।। (गोवि० २१/४६)

(१३६) अब श्रीराधिका सहस्र दल पद्माकृति श्रीगोबिन्द स्थल नामक परम मनोहर यमुना तट का अवलोकन करने लगीं। यही श्रीराधाकृष्ण का मिलन 'श्रीयोगपीठ' है और वृन्दावन का सर्वोत्तम स्थान जिसके चारों ओर क्रमशः नीचा कच्छप की पीठ के समान सहस्रदल कमल के समान, चारों ओर कुंजश्रेणी बीच में मणिमय मन्दिर ही जिसकी कर्णिका और सोने के रंग की कदली श्रेणी (केले के वन) ही जिसकी केशर रूप में नित्य विराजमान है।

(१३७–३८) यहाँ के समस्त वृक्ष कल्पवृक्ष की भांति अभीष्ट वस्तु प्रदान करने में समर्थ हैं। अपारिजात अर्थात् शत्रुगणों के निवारक पारिजात, दारिद्रनाशक मन्दारवृक्ष हैं और सम्मदतानक अर्थात् सबको आनन्द प्रदान करने वाले सन्तानक वृक्ष सब दुःखों को हरने में समर्थ हैं। श्रीहरि के श्रीअंग एवं मन को शीतलता प्रदान करने वाले चन्दन के समान हरिचन्दन वृक्ष एवं महावदान्य अर्थात् परम उदार लताओं तथा अन्य अनेक प्रकार के वृक्षों से यह योगपीठ सुशोभित है।

(१३९) इस स्थान की जितनी भी लता है सब कल्पलता और जितने भी वृक्ष हैं सब कल्पवृक्ष अतएव बकारि श्रीकृष्ण और ब्रजांगनाओं के सब प्रकार के अभीष्ट प्रदान करने में समर्थ होने पर भी जो वृक्ष एवं लता जिस जाति के हैं उनमें वही जाति के फलफूल लगे हैं।

(१४०) जिस स्थान पर जल में चंचल शाल (मत्स्यविशेष) और स्थल में शालगण (वृक्ष विशेष) और जहाँ जल में चंचल रोहित (मछली) और स्थल में चर रोहित मृग और स्थिर रोहितक (वृक्ष) वर्तमान हैं।

यत्कर्णहारि–हारीत–भरद्वाज–शुकोक्तिभिः।
वत्स–गालव–शाण्डिल्यान्वितं मुनिसदो यथा।।१४१।। (गोवि० २१/५५)

श्रुति–ऋतुवसुकोणैर्मण्डलांगेश्च कैश्चिद्विविधमणि–विचित्रैर्दिक्षु सोपान–युक्तैः।
गलहृदुदर–नाभिश्रोणिजानूरुदध्नैर्वलित–ललितामूला कुट्टिमैः सालवालैः।।१४२।।
(गोवि० २१/५६)

नीलरक्तमणिबद्धकुट्टिमाः, केचिदिन्दुमणिजालवालकाः।
नीलरक्तमणिजालवालकाः, कोऽपि चन्द्रमणिवद्धकुट्टिमाः।।१४३।।
(गोवि० २१/५७)

वृक्षा हैमा हरिमणिमयैः काञ्चनैरेन्द्रनीला वैदूर्य्याभाः स्फटिकमणिजैः स्फाटिकाः पद्मरागैः।
ग्लौकानतांग मरकतमयैस्तैश्च तेऽन्ये तथान्यैदीव्यन्त्यस्मिन् व्रततिवलयैः श्लिष्टशाखाः प्रफुल्लाः।।१४४।।
(सन्दानितकम्) (गोवि० २१/५८)

हरिमणिभुवि हैमा वै द्रुमा वैद्रुमाश्च स्फटिकमणिधरायां स्फाटिका स्वर्णभूमौ।
अरुणमणिधरायां शाक्रनीलाश्च यस्मिन् मरकतमणिधात्र्यां पाद्मरागा विभान्ति।।१४५।।
(गोवि० २१/५९)

---

(१४१) मुनिगणों के आश्रम जैसे हारीत, भरद्वाज और शुक नामक मुनियों के वाक्यों से कानों को मधुर लगने वाली ध्वनि होती है वैसे ही यहाँ शुक भारद्वाज, हारीत नामक पक्षीगणों की मधुर ध्वनि मन को हरण करती है और आश्रमों में जैसे वत्स, गालव, शाण्डिल्य नामक मुनि रहते हैं वैसे ही यहाँ इन नामों के पक्षी रहते हैं।

(१४२) वृक्षों के चारों ओर जल रोकने` आलवाल युक्त वेदिकाए जो कि कोई चार, छः तथा कोई अष्टकोण नाना मणिनिर्मित जिनके चारों ओर बनी हुई हैं यह कोई–२ गलदेश, वक्ष, उदर, नाभि, नितम्ब, जानु पर्यन्त ऊँची हैं अतएव बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं।

(१४३–४४) कहीं–२ वृक्षों के नीचे इन्द्रनीलमणि और लालरंग की मणि की वेदी है तो उसके आलवाल चन्द्रकान्तमणि द्वारा बंधी हुई है और कहीं चन्द्रकान्तमणि निर्मित वेदी और नील अथवा लाल मणि से आलवाल की रचना हो रही है और जो वृक्ष स्वर्ण वर्ण के है उनके नीचे वेदी स्वर्ण निर्मित हैं। वैदूर्यमणि सदृश वर्ण वाले वृक्षों की वेदी स्फटिक मणि और कहीं स्फटिक मणि सदृश कान्ति वाले वृक्षों की वेदी पद्मरागमणि की वेदी, कहीं पर वृक्षों का वर्ण चन्द्रकान्त मणि सा तो वेदी मरकत अर्थात् हरित वर्ण मणि से निर्मित। इस प्रकार जो वृक्ष जिस रंग का उसके भिन्नरंग की वेदी से युक्त और नाना प्रकार की लताओं से लिपटे हुए, प्रफुल्लित (सभी वृक्षों) योगपीठ मणि मन्दिर की शोभा बढ़ा रहे हैं।

(१४५) और इस योगपीठ की इन्द्रनीलमणिमय भूमि पर स्वर्ण वर्ण के वृक्ष, स्फटिक वर्ण की भूमि पर विद्रुम (मूंगे) वर्ण के वृक्ष, स्वर्ण वर्ण की भूमि पर स्फटिक वर्ण के, अरुण वर्ण की भूमि पर नीलमणिमय तथा मरकत मणि की भूमि पर पद्मरागमणि के रंग के वृक्ष शोभा पा रहे हैं।

स्वभावमालाकृतिपुष्पभाजां फलानि तासां रुरुचुर्लतानाम्।
कुष्माण्ड—तुम्बी—सदृशानि यत्र, श्रीकृष्णलीलोचित—वस्तुभाञ्जि।।१४६।।

(गोवि० २१/६२)

कुसुमरचितशय्योल्लोचभूसोपधानैः समधुचषक—ताम्बूलाम्बु—गन्धादिपात्रैः।
व्यजन—मुकुर—सिन्दूराञ्जनामत्रकैश्चान्वित—मणिनिचितान्तर्भूमयो भूरिचित्राः।।१४७।।

(गोवि० २१/६३)

कुसमितबहुवल्लीमण्डलैर्भित्तितुल्यैरुपरि च पटलाभैः श्लिष्टशाखासमूहैः।
निविऽदलफलानां छादिताः पादपानां मणिमयगृहतुल्या यत्र कुञ्जा विभान्ति।।१४८।।

(युग्मकम्) (गोवि० २१/६४)

कपोत—पारावत—कोकिलानां हारीत—कापिञ्जल—टैटिभानाम्।
मायूर—चाकोरक—चातकानाम् चाषलि—लावावलि—वर्त्तकानाम्।।१४९।।

(गोवि० २१/६६)

यच्छोकशारीतति—चाटकानां कालिंग—पादायुध—तैत्तिराणाम्।
व्याघ्राट—भाषावलि—कौकुमानां स्वनैर्विलासैः श्रुतिनेत्रहारि।।१५०।।

(गोवि० २१/६७)

---

(१४६) और इस योगपीठ के वृक्षों पर लिपटी समस्त लताओं पर स्वभाव से ही माला की भाँति आकृति वाले कुसुम लगे हैं उनसे ये परिपूर्ण हैं और उन पर कुष्माण्ड एवं तूंबी सदृश लगे हुए फल समूह, श्रीकृष्ण की लीला में सहायक सभी वस्तुएं (वस्त्रालंकार) आदि प्रदान कर देते हैं।

(१४७) इस योगपीठ में जितनी कुंज है सबकी भूमि नाना मणियों से निर्मित अनेक प्रकार के चित्रों से युक्त, यहाँ कुसुमरचित शैय्या, चन्द्रातप, भूषण, उपाधान (तकिये मधुपूर्ण पात्र, ताम्बूल, जल, गन्धादि के पात्र (इत्र चन्दन) व्यजन, चंवर, दर्पण, सिन्दूर, अंजन आदि पात्रों द्वारा अपूर्व रूप से शोभा पा रहीं हैं।)

(१४८) घने—२ दलों और फलों से युक्त वृक्षों की शाखाओं द्वारा जिसकी दीवार के समान और अनेक कुसुमित लता श्रेणी द्वारा ऊपर छत के समान एक दूसरे से (लतावृक्ष) लिपट जाने से कुंजों के मणिमय गृह की भांति शोभा पा रहे हैं।

(१४९—१५०) कपोत, परावत, कोकिल, हारीत, कपिञ्जल, टिट्टिभि, मयूर, चकोर, चातक, चाष, लाव, वर्तक, शुक, सारिका, चटक, कलिंग, मुर्गा (कुक्कुट) तीतर, भरद्वाज, भाष एवं कोंकुम नामक पक्षियों की ध्वनि तथा विहार से यह योगपीठ श्रवण तथा नेत्रों को अत्यंत आकर्षित कर रहा है।

विस्तीर्णा रत्नचित्रान्ता तदन्तःकनकस्थली।
निकुञ्जमण्डलैः कल्पद्रुमानामस्ति वेष्टिता।।१५१।।

(गोवि० २१/६८)

मध्ये विचित्रमणिमन्दिरमस्ति तस्याः कल्पद्रुमांकमनु कुट्टिमशोभिदिक्षु।
सोपानपालि–ललितं वलितं विदिक्षु सन्तानकाद्यपरवृक्ष–चतुष्टयेन।।१५२।।

(गोवि० २१/६९)

स्वकान्तिजालायत–लोलापक्षै, रुर्ध्वक्रमात् कुञ्चित पूर्वपादैः।
पश्चादधोन्यस्त–दरायतान्य, स्वीयाङ्घ्रियुग्मार्पित देहभारैः।।१५३।।

(गोवि० २१/७०)

माणिक्नेत्रै रविकान्तगात्रै, रुत्पुच्छकर्णैः कपिशोच्छढौघैः।
उडडीयमानैरिव रत्न–सिंहै, र्यदुह्यमानं वियतीव दिक्षु।।१५४।।

(गोवि० २१/७१)

सुचेलतूलीयुत–हेमकर्णिकं, खटायमानं मणिकान्ति–केशरम्।
यस्यान्तरष्टच्छद–पद्मसन्निभं, कृष्णस्य सिंहासनमस्ति काञ्चनम्।।१५५।।

(सन्दानितकम्) (गोवि० २१/७२)

---

(१५१) इस योगपीठ के मध्यभाग में कनकमय (सुवर्णमयी) भूमि है जिसके किनारे रत्नमय चित्रों से चित्रित है यह अत्यंत विस्तृत है। कल्पवृक्षों से निर्मित निकुंजों द्वारा यह परिवेष्टित (चारों ओर से घिरी हुई) है।

(१५२) और इस कनक स्थली के मध्यभाग में विचित्र मणिरचित–मन्दिर जोकि कल्पवृक्षों की निकुंजों द्वारा चारों ओर से वेष्टित है जिनके नीचे चारों दिशाओं वेदिकाओं द्वारा शोभित तथा सोपान श्रेणी (सीढ़ी) द्वारा मनोहर तथा चारों विदिक (कोण यथा ईशान, अग्नि, नैकृत एवं वायु) चार विशाल कल्पवृक्ष सन्तानक आदि (मन्दार, पारिजात प्रभृति) द्वारा परिवेष्टित हैं।

(१५३–१५५) यह मन्दिर सुवर्ण निर्मित अष्टदल कमलाकृति है। इसमें जो सिंहासन है उसके पायों में सिंह हैं जिन सिंहों की अंग कान्ति से जो किरणें निकल रहीं है वही मानों उनके पंखस्वरूप है तथा वे सिंह आगे के दोनों चरणों को कुछ संकुचित (समेटे हुए) और पीछे के दोनों चरणों को नीचे रखकर उस पर अपने शरीर का भार रखे हुए हैं। इन सिंहों के नयनयुगल माणिक्यमय, देह सूर्यकान्तमणिमय, कर्णयुगल एवं पूंछ ऊँचे उठी हुई, अंग की छटा कपिश अर्थात् पिंगलवर्ण और ऐसा प्रतीत होता है मानों सिंहासन को आकाश में उड़ाकर ले जावेंगें। (इस प्रकार सिंहासन के चारों पयों में चार रत्नसिंह हैं) और इसके ऊपर जो सिंहासन की कर्णिका है वह भी स्वर्णमयी है। उस पर सुन्दर वस्त्र की गद्दी बिछी है। इस सिंहासन पर जटित मणियों की कान्ति ही मानो कमल की केशर है। इस प्रकार की अपूर्व मनोहर शोभा से युक्त अष्टदल पद्माकृति यह सिंहासन है।

लघुरत्नालयस्वांकेः कुञ्जैः कल्पलतावृतैः।
अष्टभिः कल्पवृक्षाणां बहिर्यद्दिक्षु शोभितम्।।१५६।।

(गोवि० २१/७३)

वल्लीयुक्कल्पवृक्षाणि कुञ्जानां तद्बहिर्वहिः।
क्रमाद्द्विगुणसंख्यानां बहुर्भिमण्डलैर्वृतम्।।१५७।।

(गोवि० २१/७४)

भास्वता मृगपक्ष्यादि–मिथुनै रत्नचित्रितैः।
शून्यहेमस्थली प्रान्तभागेन तद्बहिर्वृतम्।।१५८।।

(गोवि० २१/७५)

तद्बहिः कदलीषण्डैः सफलैः शीतलच्छदैः।
वृतं नानाजातिभेदैः कर्पूराकर–वल्कलैः।।१५६।।

(गोवि० २१/७६)

तद्बहिर्वेष्टितं पुष्पोद्यनेनातिप्रथीयसा।
पृथक् तत्तपुष्पवाटी–वलितेन समन्ततः।।१६०।।

(गोवि० २१/७७)

तद्बहिर्भूरिभेदानां नम्राणां फलभारतः।
आराम–मण्डलैस्तैस्तैर्वेष्टितं फलभूरुहाम्।।१६१।। (गोवि० २१/७८)

(१५६–१५८) और इस मणि मन्दिर के बाहर छोटे–२ रत्नगृहों के समान कुंजे हैं जिनके चारों ओर कल्पलताएं छायी हुई हैं और आठों दिशाओं में आठ कल्पवृक्ष शोभा पा रहे हैं और फिर इन आठ कुंजों के बाहर क्रमशः दुगनी अर्थात् सोलह और उसके बाहर बत्तीस फिर चौसठ और इस प्रकार दुगनी होते–२ बहुत से मण्डलों (गोलाकार)से यह घिरा हुआ है। इनके बाहर पुनः प्रान्त भाग में मृगपक्षी आदि के मिथुन चित्र जोकि रत्नों से जटित हैं। इनसे दीप्तिशाली कनकभूमि चारों ओर परिव्याप्त है।

(१५६) इसके बाहर नाना प्रकार (जाति) केले के वृक्षों की श्रेणी चारों ओर लगी है। ये कदलीवृक्ष सर्वदा फलयुक्त रहते हैं इनके दल अत्यंत सुशीतल तथा इसकी वल्कल (छाल) से कर्पूर निकलता है अर्थात् यह कर्पूर की आकर (खान) है।

(१६०) इसके बाहर चारों ओर पुष्पों की वाटिकाओं से युक्त सुविस्तृत पुष्पों के उद्यान हैं।

(१६१) इस फूलों के वन के बाहर फलों का वन है जहाँ कि नाना प्रकार (अनेक जातीय) के फलों के वृक्ष जो फलों के भार से नीचे झुके हुए हैं, चारों ओर से परिव्याप्त हैं।

तयोर्मध्येऽरण्यदेवी कुञ्जदासीशतान्वितैः।
सेवोपकरणागार–निकरैः परितो वृतम्।।१६२।।

(गोवि० २१/७६)

बर्हिबहिः क्रमात्तस्माद्वृतम् तत्तल्लतायुतैः।
सान्तरालैः पृथक् तैस्तैः श्रेणीभूतैर्द्रुमण्डलैः।।१६३।।

(गोवि० २१/८०)

करलभ्य–हरित्पीतारुणच्छफल–गुच्छकैः।
तद्वर्हिर्वृतकण्ठानां पूगानां मण्डलैर्वृतम्।।१६४।।

(गोवि० २१/८१)

स्वपार्श्वयोः श्रीबकुलावलीभ्यां संच्छादितान्यत्रचितानि रत्नैः।
आमन्दिराद्यामुन–तीर्थगानि, चत्वारि वर्त्मानि विभान्ति यत्र।।१६५।।

(गोवि० २१/८५)

कल्पद्रुमाधःस्थित रत्नमन्दिरं गोपाल सिंहासनयोगपीठकम्।
यमागमज्ञाः प्रवदन्ति यं हरेः प्रियागणः केलि निकुञ्जमाह च।।१६६।।

(गोवि० २१/६४)

एवम्विधं तं स्थलराजल्लजं कन्दर्पलीलासुखसत्र–मन्दिरम्।
गोविन्द–संस्मारकमात्मनो गुणैर्वीक्ष्याप राधा ससखीततिर्मुदम्।।१६७।।

(युग्मकम्) (गोवि० २१/६५)

---

(१६२) इन फूलों और फलों के उपवनों के भीतर शतशत वनदेवी तथा कुंजदासियों के गृह समूह हैं जिनमें सेवा के विविध उपकरण (सामिग्री) रखे रहते हैं।

(१६३) इसके बाहर उपरोक्त समस्त लताओं से आवृत (कल्पलताओं) से लिपटे हुए घने–२ लगे हुए वृक्षों की श्रेणियाँ है, यह भी चारों ओर से परिव्याप्त हैं।

(१६४) इस मणिमन्दिर से आरम्भ करके श्रीयमुना तटवर्ती घाटों तक चारों दिशाओं से चार मार्ग शोभा पा रहे हैं। इन पथों के दोनों ओर अत्यंत सुन्दर बकुल श्रेणी परिवेष्टित है और मध्य के स्थान विविध रत्नों से जटित हैं।

(१६६–६७) कल्पवृक्षों के नीचे स्थित यह मणि मन्दिर आगमज्ञ पण्डितजनों द्वारा 'श्रीगोपालसिंहासन रूप योगपीठ' के नाम से वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण की प्रेयसीवृन्द इसे 'केलिकुंज' के नाम से पुकारती है, इस प्रकार का कंदर्प लीला सम्बन्धी आनन्द यज्ञ का यह मन्दिर अपने गुणों से (शोभा से) श्रीगोविन्द की स्मृति कराने वाला है। इस प्रकार के परमोत्कृष्ट स्थान के दर्शन कर श्रीराधिका तथा उनकी समस्त सखीवृन्द ने परम आनन्द प्राप्त किया।

तस्मिन् कुञ्जप्रवर–सविधे रत्नवेद्यां प्रकृष्ट–ज्योत्स्ना–स्नानस्तिमित–वपुषि स्वास्तरे सूपविष्टः।
आगच्छन्तीं पुर–परिसरे प्रेयसीं सालिवृन्दा प्रत्युद्गम्याभ्युपगमयितुं प्रेरयामास वृन्दाम्।।१६८।।
(कृष्णा० ६/२५)

निर्गच्छन्त्या द्रुतमथ तमाऽलोकि पूर्द्वार एव ज्योत्स्ना–मूर्तीर्विबुधलतिका–वाटिका जंगमेव।
तां प्राप्योपवन लतिकां राधिकां संप्रहर्षम् चक्रेऽन्योन्यद्युति वितरणेऽन्योन्यमेव प्रकर्षम्।।१६९।।
(कृष्णा० ६/२६)

चेतोमध्याद्वहिरिव गतं वीक्ष्य सा वीतबाधा कृष्णं बालाग्रहमथ पुनर्लब्धबोधेव राधा।
क्वाहं कस्मात् कथमहमहो केनवात्रोपनीता पन्थाः को वा मम समजनीत्याममर्श प्रतीता।।१७०।।
(कृष्णा० ६/२७)

सा तं दृष्ट्वा तदुपविपिनं तां निशां चन्द्रिकाभिः कान्ता तां तामपि गृहततिम् चारुकृल्प्तां लताभिः।
मैरानीतो गुरुगृह–गुहां हापयित्वा स्वदेह–स्तानस्तौषीन्मनसि मुदिता विस्मृताशेषदाहः।।१७१।।
(कृष्णा० ६/२९)

(१६८–१६९) इस प्रकार की कुंज श्रेष्ठ के समीप रत्नवेदी के ऊपर ज्योत्सनास्नात (खुली चांदनी छिटक रही है) एवं स्वच्छ सुन्दर आसन पर सुख से विराजे हुए श्रीकृष्ण ने अपने सम्मुख सखीवृन्द के साथ आती हुई अपनी प्रियतमा को देखकर प्रत्युद्गमन पूर्वक उनको अपने निकट लाने के लिये वृन्दा जी को भेजा। वृन्दाजी ने शीघ्रतापूर्वक बाहर जाकर पुरद्वार पर देखा मानो कोई जंगमा ज्योत्सना (चलती हुई चांदनी) की तरह शुभ्रदेह धारण किये कोई कल्पलताओं की वाटिका ही सामने उपस्थित हो। वृन्दाजी ने आनन्दित मन से उस उपवनलता स्वरूपिणि श्रीराधा को श्रीकृष्ण के समीप ले गयीं। एक दूसरे के सामने दोनों की कान्ति परस्पर मिलित होती हुई अत्यंत विस्तृत प्रकर्ण को प्राप्त हुई।

(१७०) अन्तर में जो श्रीकृष्ण स्वरूप स्फुरित हो रहा था अब सामने साक्षात् उनको पाकर उनके दर्शनों से श्रीराधारानी की विरह पीड़ा उसी प्रकार शान्त हो गयी जैसे किसी (बालाग्रह) स्त्री घात ग्रह से मुक्ति प्राप्त कर चेतन हो उठी हो। अब वे मन ही मन विचार करने लगीं, 'अहो! मैं कहाँ हूँ ? किस स्थान से, किस प्रकार, किसलिये इस स्थान पर, किस पथ से मैं आ गयी हूँ।

(१७१) श्रीराधा तब उन श्रीकृष्ण को, उस उपवन को, ज्योत्सना से परम रमणीय उस रात्रि तथा लता पता द्वारा सुन्दर रूप से परिवेष्टित उन सब निकुंज पुंज का दर्शन कर मन की समस्त व्यथा से मुक्त होकर उन सब सखीगण की स्तुति करने लगीं जो उनको गुरुजनगृह रूपी कारागार से मुक्त कराके उस स्थान पर लेकर आयीं हैं।

अध्वश्रान्ताः सुमृदुलतनुर्माधवी–मण्डपानां द्वारि द्वारि प्रतिजनममूः स्थापयित्वा समानाम्।
वृन्दा प्रत्यादिशदनुलतं पल्लवैर्वीजनार्थं ताः कुर्वत्यस्तदथ मुदिता मेनिरे स्वं कृतार्थम्।।१७२।।
(कृष्णा० ६/३०)

यावच्छ्रान्तिं व्यपनयति सा श्रेणिरेणीक्षणानां तावत् कृष्णो न खलु गतवानेव पारं क्षणनाम्।
प्रत्यासन्नो ललित–मुरलीपाणिरानन्दसिन्धुः स्वीयं वासो व्यजनमकरोत्तास्त्रपामावबन्धुः।।१७३।।
(कृष्णा० ६/३१)

अध्यासीनममुं कदम्बनिकटे क्रीड़ाकुटीरस्थली–माभीरेन्द्रकुमारमत्र रमसादालोकयन्त्याः पुरः।
दिग्धा दुग्धसमुद्रमुग्धलहरीलावण्यनिस्यन्दिभिः कालिन्दी तव दृक्तरंगितभरैस्तन्वंगि! गंगायते।।१७४।।
(उ० ११/३३)

जंघे स्थावरतां गते परिहृतस्पन्दा द्वयी नेत्रयोः कण्ठः कुण्ठितनिस्वनो विघटितश्वासा च नासापुटी।
राधायाः परमप्रमोदसुधया धौतं पुरो माधवे साक्षात्कारमिते मनोऽपि मुनिवन्मन्ये समाधिं दधे।।१७५।।
(उ० १२/३१)

---

(१७२) श्रीवृन्दाजी द्वारा श्रीराधारानी की परिचर्या एवं श्रीकृष्ण के साथ मिलन :– वृन्दाजी ने देखा कि इन सब अत्यंत कोमलांगी गोपिकाओं को इतनी दूर से आने से बहुत परिश्रम हुआ है तब उन्होंने एक जैसे माधवी मण्डपों के द्वार–द्वार पर प्रत्येक को बैठाकर, पल्लवों द्वारा हवा करने के लिये प्रत्येक लता को आदेश दिया। वृन्दाजी का आदेश पाकर वे सब लताएं उन्हें आनन्दित होकर हवा करने लगीं और स्वयं को कृत कृत्य मानने लगीं।

(१७३) मृगनयना गोपिकाएं जब तक अपने परिश्रम को शान्त कर रहीं थी, इधर श्रीकृष्ण भी अपनी कार्यकुशलता का परिचय यथेष्ट रूप से प्रदान करने लगे। आनन्द सिंधु श्रीकृष्ण ललित मुरली हाथ में लेकर उनके पास में गये और अपने पीताम्बर से उन्हें हवा करने लगे यह देखकर गोपिकाएं अत्यन्त लज्जा का अनुभव करने लगीं।

(१७४) फिर वृन्दाजी श्रीराधारानी को कहने लगीं हे कृशांगी! कदम्ब के समीप इस क्रीड़ा कुटीर में गोपेन्द्रनन्दन विराजमान हैं। आप सामने उनको प्रेमभरी चितवन से निहारो आपकी चितवन में तो मानों खीरसागर की लहरों का लावण्य स्रोत निकल रहा है जिसके सामने श्यामवर्ण की श्रीकालिन्दी भी गंगा के समान प्रतीत होने लगती है।

(१७५) (श्रीराधारानी जब श्रीकृष्ण दर्शन जनित आनन्द में डूब गयीं तो श्रीललिता उसका वर्णन करती हुई विशाखा से कहने लगीं–) सखि! देखो श्रीकृष्ण को अपने सामने पाकर श्रीराधा की जङ्घा स्थावरता (अचल हो गयी हैं) नेत्रयुगल निष्पन्दता (पलकें नहीं गिर रहीं) कण्ठ गद्‌गद्, नासिका से विघटित श्वास, मुनिजनों की भांति मन की समाधि धारण कर निष्चेष्ट सी हो गयीं हैं।

अनिशमनिमिषाभ्यां लोचनाभ्यामथैका मुखकमल–मधूलीभापिवत् प्राणबन्धोः।
अलभत न पिपासापारमेषा तथासी–दियमपि च नितान्तं पीयमानापि पूर्णा।।१७६।।

(आ० १६/६३)

तं कापि लोचनपथेन निवेश्य चित्ते तेनैव निर्गमनशंकनतो नतांगी।
तत्कालमेव विनिमीलित–लोचनैव रोमाञ्चिता विधुमुखी चिरमालिलिंग।।१७७।।

(आ० १६/६४)

काचित् काञ्चनमञ्जरीव विनमदगात्री मनोरागजै–रावेगैः पृथुवेपथुर्विरुरुचे कृष्णं विलोक्याग्रतः।
संग्रामोत्सव–कौतुकोत्सुकतया सद्यः प्रसूनायुधो गर्वेनैव चकार चम्पकधनुः कम्पस्य सम्पादकम्।।१७८।।

(आ० १६/६५)

अभ्युन्नीय परस्परांगुलि–दलव्यासंगिपाणिद्वयं लीलालस्य–विलुप्तये तनुलतामुल्लासयन्ती तिरः।
मूर्घ्नः सीमनि मण्डलीकृतमति स्मेरस्य हर्षोदाद–वक्त्रेन्दोः परिधीचकार भुजयोर्ययुग्मं चकोरेक्षणा।।१७९।।

(आ० १६/६६)

---

(१७६) इधर कोई एक गोपी प्राणबन्धु श्रीश्यामसुन्दर का मुखकमल मधु निरन्तर पान करने लगी किन्तु उससे उसकी पिपासा निरन्तर बढ़ती ही गयी और प्रियतम का मुखकमल मधु भी निरन्तर पिये जाने पर भी परिपूर्ण ही रहा (अर्थात् कम नहीं हुआ)।

(१७७) कोई–२ वामा गोपी उन प्रियतम श्रीकृष्ण को अपने नेत्रों के पथ से चित्त में प्रवेश करा, कहीं पुनः ये इसी पथ से निकल न जाय इस आशंका से तत्क्षण अपने नेत्र बंद कर लिये तथा रोमांचित कलेवर से दीर्घ समय तक उनका आलिंगन करने लगी।

(१७८) कोई कनकलता के समान गोपिका श्रीकृष्ण को सामने पाकर अनुराग के वेग के कारण हाथों को समेटकर शरीर को कुछ टेड़ा कर सिमिट कर प्रेम के कारण इस प्रकार कांपने लगी मानो फूलों के धनुष को धारण करने वाले कंदर्प ने संग्रामोत्सव के प्रारम्भ में कौतुक एवं उत्सुकता के साथ अपने चम्पकधनु को कम्पित किया हो।

(१७९) इधर कोई चकोरनयना गोपी मानो श्रीकृष्ण को मोहित करने (सुख देने) के लिए अपनी दोनों भुजाओं को ऊँचा उठा, हाथों की उंगलियों को परस्पर सम्मिलित किये हुए मानो आलस्य को दूर करने के लिये, शरीर रूपी लता को कुछ वक्र कर उल्लसित हो, मस्तक प्रान्त तक दोनों भुजाओं को गोलाकार मण्डल बनाकर, प्रियतम के मृदुहास्य युक्त वदन चन्द्र को निहारने लगी।

वामावाम–करांगुलीदलयुगेनातन्वती छोटिकां निर्याहीति ह्रियोपसारणविधेः संकेतमुद्रामिव।
इषन्निसरतेव दन्तमहसा सार्द्धं बहिर्निसृतौ तस्या एव हि वर्त्मकल्पनकृतारम्भेव जृम्भा व्यघात्।।१८०।।
(आ० १६/६७)

आनीय काप्युरसि पाणिदलेन वेणीमेणीदृगुन्नतपयोधरयोर्निवेश्य।
दोर्भ्यां निपीड्य निविडं विनिमीलिताक्षी रोमांच–कञ्चुकतनुश्चिरमालिलिंग।।१८१।।
(आ० १६/६८)

आघ्राय धूनितशिरः सरसं च वीक्ष्य व्याधुन्वती मधुकरीं पुरतः पतन्तीम्।
स्विद्यत्कपोल–फलका पुलकांकुरेण लीलारविन्दमरविन्दमुखी चुचुम्ब।।१८२।।
(आ० १६/६६)

काचिच्चकोर नयना नयनाञ्चलेन लीलालसेन दयिताननमीक्षमाणा।
आलीजनांसतट–वेल्लितबाहुवल्लिर्मूर्त्तेव सौभगमहाघन–मत्तताभूत।।१८३।।
(आ० १६/७०)

---

(१८०) कोई वामा गोपी (लज्जा दर्शन में बाधा दे रही है इसलिय) अपने बांये हाथ की मध्यमा उंगली एवं अंगूठे से चुटकी बजाते हुए 'चलो दूर हटो' इस प्रकार कहकर लज्जा को बाहर निकालने के लिये ही अपनी दंतावली की हल्की सी निकलती हुई किरणें, जोकि रत्न प्रदीप के समान प्रतीत हो रही थी, उन्हें दिखाकर उसको (लज्जा को) बाहर निकालने के लिए जृम्भा (जम्हाई) लेने लगी।

(१८१) कोई मृगनयना गोपी अपने हस्त रूपी कमलदल द्वारा अपनी वेणी को अपने वक्षस्थल पर लाकर उसे अपने उन्नत कुचयुगल पर धारण कर अपनी भुजाओं द्वारा उसका प्रगाढ़ आलिंगन करते हुए, नेत्र बंद करके, रोमांचित कलेवरा हो (श्रीकृष्ण मिलन सुख का अनुभव करने लगी)।

(१८२) कोई अरविन्द वदना व्रजसुन्दरी उल्लसित हो एवं श्रीकृष्ण माधुर्य से उत्पन्न विस्मय के कारण मानो सिर घूम रहा हो, इस प्रकार प्रेमोन्माद दशा में लीला कमल को सूंघती हुई, उस पर पड़ने वाली भ्रमरी को दांये हाथ से भगाते हुए, स्वेद से भीगे हुए कपोलों से पुलकित होती हुई उस लीलाकमल को (प्रियतम का कपोल मान) ही चुम्बन करने लगी।

(१८३) कोई चकोरेक्षणा गोपी लीलालास्ययुक्त (आनंद में नृत्य करते हुए) नेत्रों की कोर से प्रियतम के वदन चन्द्र को निहारते हुए, निकट में खड़ी सखी–जन के गले में अपनी बाहुलता डालकर इस प्रकार आनन्दमत्त होकर खड़ी हो रही थी मानो कोई सौभाग्य रूपी महाधन को प्राप्त कर मत्त हुई कोई मूर्ती ही हो।

दोर्भ्यां लसत्कनक–कंकणझंकृताभ्यामामोच्य कापि कवरीं पुनरावबन्ध।
धवान्तभ्रमादिह निलीय किमस्ति मानो नो वेति तं निरसितु तमिवान्वियेष।।१८४।।
(आ० १६/७१)

भुजाया वामाया कलमधुर–झंकारि वलय सलीलं धूतायाः करदल–कनीयोंगुलिकया।
वितन्वाना वामश्रुतिकुहर–कण्डूमथ परा व्यधात् कामक्रीड़ा–समरजय–घण्टाध्वनिमिव।।१८५।।
(आ० १६/७२)

करेणासव्येन प्रचलवलयालिध्वनिभृता व्यधूनात्तन्वंगी ललितमथ लीलासरसिजम्।
तदासीदेतस्याः कुसुमशर–संग्रामविजयी महानेवावर्त्तो नभसि नवलावण्य सरितः।।१८६।।
(आ० १६/७३)

मुदित–मदनमोदामर्षघर्माम्बुसिक्तं निजवपुरथ काचिदुत्तरीयाञ्चलने।
व्यजयत कृतहेलं लीलया वीजयन्ती स्मरसमरपताका मारुतेनाधुतेव।।१८७।।
(आ० १६/७४)

अन्तः प्रफुल्लदभिलाष–लताततीना–मौत्सुक्य–मारुतजवेन बर्हिर्विधूतैः।
पुष्पैरिव स्मितभरैर्विदधे विदग्धा कृष्णावलोकन–महोत्सव–पुष्पवर्षम्।।१८८।।
(आ० १६/७५)

---

(१८४) किसी बृजसुन्दरी ने सुन्दर सोने के कंकणों की झंकार करते हुए अपनी दोनों भुजाओं से अपनी वेणी को खोल दिया और पुनः उसको बांध लिया। (मन में विचारने लगी कहीं मान अंधकार युक्त स्थान को पाकर छिप गया हो, अतएव वेणी को खोलकर उसे दूर करने के लिए उसका अन्वेषण करने लगी।)

(१८५) अन्य कोई ब्रजवामा लीला विलास के साथ मधुर झंकार के साथ बांयी भुजलता को कम्पित करती हुई बांये हस्त कमल के दल स्वरूप कनिष्ठा उंगली द्वारा बांये कान में खुजली करने लगी मानों काम क्रीड़ा में विजय प्राप्त करके घण्टा ध्वनि करने लगी हों।

(१८६) इसके पश्चात् कोई कृशांगी गोपिका अपनी चंचल चूड़ियों की ध्वनि करते हुए दांये हाथ से एक सुन्दर लीला कमल को कम्पित करने लगी। उसका यह कम्पन ही मानों आकाश में स्थित नवीन लावण्य रूपी नदी में कन्दर्परण में विजय सूचक मानों एक महान आवर्त स्वरूप हो।

(१८७) कोई ब्रजललना प्रियतम श्रीकृष्ण के दर्शन जनित अतिशय आनन्द के कारण अपनी स्वेद से भीगे हुए शरीर को अपनी ओढ़नी द्वारा लीला विलास पूर्वक रोष से भरकर हवा करने लगीं वह इस प्रकार प्रतीत हो रहा था मानों हवा से हिलती हुई कन्दर्पयुद्ध पताका ही मानों उत्कर्ष को (विजय) प्राप्त हो रही हो।

(१८८) कोई विदग्धा रमणी अपने अन्तर में प्रफुल्लित अभिलाषा लता के उत्सुकता रूपी वायु के वेग से बाहर झड़ते हुए मृदु हास्य रूपी कुसुमों द्वारा श्रीकृष्ण दर्शन रूपी महोत्सव में पुष्प वर्षा कर रही हो।

आनन्दजैर्नवकुरंग–विलोचनाया वाष्पाम्बुभिर्नयनयुग्मकमापुपूरे।
कृष्णं विलोकयसि धन्यमसीति गाढं प्रेम्णा द्रुतेन मनसेव तदालिलिंगे।।१८६।।
(आ० १६/७६)

एकाञ्च काञ्चनमयप्रतिमायमानां स्तम्भः प्रियेक्षणकृतः सहसा व्यधत्त !
तामेव किं त्रिजगतीललनाललाम–सौभाग्यभार–गरिमैव परावभूव।।१६०।।
(आ० १६/७७)

आमूलतो मुकुलितेव कदम्बशाखा काचिद्वभूव विपुलैः पुलकैः किमस्याः।
वाणान् स्मरस्य विरहे हृदि सम्प्रविष्टान् श्रीकृष्णचुम्बकमणिर्वहिराचकर्ष।।१६१।।
(आ० १६/७८)

अम्भःकणाकुलित–काञ्चनपद्मिनीव सिष्वेद काचन चिराय चमूरुनेत्रा।
प्राणाधिनाथमुखचन्द्रविलोकनेऽस्य यत् स्यन्दते स्म वत मानसचन्द्रकान्तः।।१६२।।
(आ० १६/७६)

कृष्णं विलोक्य चलचारुचकोरनेत्रा सञ्चारि–चम्पकलतेव चिरं चकम्पे।
अस्याः प्रविश्य वपुषि स्मरसिन्धुरेन्द्रो हृदभूमिकम्पमिव मत्ततया व्यधत्त।।१६३।।
(आ० १६/८०)

---

(१८६) किसी नवीन मृगलोचना ब्रजगोपी के नयनयुगल श्रीकृष्ण दर्शनजनित आनन्द के अश्रु जल से परिपूर्ण हो गये। मानों उसके अन्तःकरण का प्रेम ही विगलित होकर नेत्रों से बाहर निकल रहा हो अतः वह अपने नेत्रों को धन्यवाद देती हुई मन से उनका आलिंगन करने लगी।

(१६०) श्रीकृष्ण दर्शन जनित आनन्द के कारण कोई ब्रजसुन्दरी जड़वत् कांचन प्रतिमा तुल्य होकर रह गयी है मानों त्रिभुवन की ललनाओं के सुन्दर सौभाग्य एवं भाव गरिमा ने उसे परास्त कर दिया हो जिसके कारण उसमें स्पन्दन की कोई सामर्थ्य न रही हो।

(१६१) कोई ब्रजगोपी सर्वांग पुलकावलि से विभूषित हो इस प्रकार शोभा पाने लगी मानों कोई आमूल मुकुलित कदम्ब शाखा हो और श्रीकृष्ण विरह जनित मदन बाण हृदय में प्रवेश कर गये हो जिन्हें श्रीकृष्ण रूपी चुम्बक मणि ने इसके समक्ष आकर बाहर खींच लिया हो।

(१६२) कोई मृगनयनी स्वेदकणों से भीगी हुई इस प्रकार शोभा पा रही थी मानों जल बिंदुओं से युक्त स्वर्ण कमलिनी हो क्योंकि उसकी मानसरूपी चन्द्रकान्तमणि प्राणनाथ श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र के दर्शन से जलकणों को क्षरण (झरना) करने लगी।

(१६३) श्रीकृष्ण का दर्शन करके कोई चारुचंचल चकोर नयना ब्रजरामा हिलती हुई चम्पक लता की भांति बहुत समय तक कम्पित होती रही, मानों कन्दर्प रूपी जलराज ने उसके शरीर में प्रवेश करके मत्तता के कारण उसके हृदय की भूमि में कम्पन्न उत्पन्न कर दिया।

वेणीं विमुच्य कुटिलां निजबाहुमूले काचित् कुरंगनयना भुजगीभ्रमेण।
वित्रास–विक्षुभित–नेत्रमरालितभ्रूः क्षिप्त्वोत्तरीयसहितामपसर्पमीये।।१६४।।

(आ० १६/८२)

अभिमुखमवलोक्य कापि भृंगं, करकमलेन सलिल मूद्धुनाना।
सललितमवगुण्ठनाञ्चलेन, व्यधित वधूरधरोष्ठ–संपिधानम्।।१६५।।

(आ० १६/८३)

भाववशीभूता पूर्वमागतमपि अनागच्छन्तमिव मन्यमानाह–
अत्रैवावसरेव्यजिज्ञपदितस्तं रूपमञ्जर्य्यमूः पूर्वस्या ककुभो विधुं वनतटाद्द्रागाजिहानं पुरः।
संभ्रान्ता वृषभानुजाह सुषमापूर्णः स एवैति नः शंके मोहयितैव मण्त्रवलभागाल्यः करोम्यत्र किं ? ।१६६।।

इत्युक्त्वैव शनैः ससम्भ्रमपदन्यासैः स्वमञ्जीरगीः सातंकैव कदम्बषण्डविटपैः स्वं निहुवानै व सा।
तिर्य्यग् ग्रीवमपांगमार्गगणं पश्चान्नुदन्तात्मनो रक्षाव्यग्रधियेव कुब्जिततनुः सद्माविशद्वाञ्जुलम्।।१६७।।

---

(१६४) किसी कुरंगनयना ने अपनी बाहु के ऊपर कुटिल वेणी को खोल दिया और पुनः सर्पिणी के भ्रम से भय विह्बल नेत्रों से भृकुटी चढ़ाते हुए अपने उत्तरीय के साथ उसे दूर फैंकते हुए भागने लगी।

(१६५) कोई ब्रजबन्धू एक भ्रमर को अपने सामने आते हुए देखकर लीलालास्य युक्त कर कमल द्वारा उसको दूर करते हुए घूंघट लगाकर अपने अधरोष्ठ आच्छादन करने लगी (इसी भाव को 'ललित अलंकार' कहा जता है जिसमें समस्त अंगों की भावभंगिमा सोकौमार्प भ्रू विलास की मनोहारता प्रकाशित होती है।)

(१६६) श्रीकृष्ण के पूर्व ही आगमन कर लेने पर भी, अभी वो नहीं आये। इस प्रकार चिन्ता करती हुई (राधारानी से) श्रीरूपमंजरी जी उन्हें दिखाने लगीं कि वह चन्द्र (श्रीकृष्ण) पूर्व दिशा की वनभूमि से सामने ही आगमन कर रहे हैं तब वृषभानु नन्दिनी सम्भ्रम चित्त से हर्ष और भय आदि जनित आवेग पूर्ण ह्रदय से कहने लगीं– हे सखिगण ! देखो वह सुन्दर मूर्ति श्रीकृष्ण आ रहे हैं। मुझे ऐसी शंका होती है कि वह मन्त्रवल से हम सबको मोहित कर देगें अतः अब क्या करना चाहिए ?

(१६७) ऐसा कहती हुई श्रीराधारानी धीरे–धीरे सम्भ्रम पूर्वक चरण रखती हुई अपने ही नूपुरों की ध्वनि से आतंकित होकर कदम्ब श्रेणी के शाखाओं के बीच अपने को छिपाकर वक्रग्रीवा करके पीछे की ओर नेत्रों के कटाक्ष बाण चलाती हुई अपनी रक्षा करने में व्यग्रचित्ता होकर शरीर को टेढ़ा करके सुन्दर लतागृह में प्रवेश कर गयी।

भावाविष्टत्वात् स्वसमीपात् गतामपि कान्तामबुद्ध्वा पृच्छति–
कृष्णोऽपि तासामवलोकजाता–नन्दोत्थ–भावालि–विभूषितांगः।
कान्तावलोकोत्तरलाक्षिचेताः कान्तामपश्यन्नवदत्तदालिः।।१६८।।

(गोवि० २१/१११)

वयस्या ! वः सख्यः क्व नु ? निजगृहे तद्विर हिताः कथं यूयं प्राप्ताः ? कुसुममवचेतुं रविकृते।
कुतस्तत्सौरभ्यं प्रसरति ? तदंगेन मिलिताच्छरीरादस्माकं वितथमिदमस्त्वेव वितथम्।।१६६।।

(गोवि० २१/११२)

तां विना न वने युष्मद्गतिः सम्माव्यते क्वचित्।
चन्द्रमूर्त्तिं विनाकाशे नेक्ष्यन्ते तन्मरीचयः।।२००।।

(गोवि० २१/११३)

नेयं चन्द्रतनुः किन्तु श्रीरियं वृषभानुजा।
यैकदेशस्थिता व्याप्नोत्यमुं त्वाभ्य स्वदीप्तिभिः।।२०१।।

(गोवि० २१/११४)

एवं नर्मालिभिस्तन्वन् वृन्दयासौ दृशेरितः।
कान्तासन्दर्शनोत्कण्ठः प्राविशत् स्वर्णमन्दिरम्।।२०२।।

(गोवि० २१/११५)

---

(१६८) इधर श्रीकृष्ण भी भावावेश में प्रियतमा श्रीराधा उनके समीप आ चुकी है या नहीं इस प्रकार विचार करते हुए समस्त सखीजनों के दर्शन जनित आनन्द से उत्पन्न हुए भावों का आस्वादन करते हुए प्रियतमा श्रीराधा के दर्शनार्थ चंचल नयन एवं उत्कण्ठित चित्त होकर सखीजनों से पूछने लगे :–

(१६६–२००) श्रीकृष्ण ने कहा– "हे सखिगण ! तुम्हारी सखी श्रीराधा कहाँ है ?" सखियों ने कहा "अपने घर" श्रीकृष्ण– "उनको छोड़कर तुम यहाँ कैसे आयीं ?" सखीगन – हम सूर्य पूजा के लिए पुष्प चयन करने आयी हैं। श्रीकृष्ण – "ऐसा है तो उनके अंग की सुगन्धि कहाँ से आ रही है ?" सखीगन – "हमारे अंग श्रीराधा के अंग से मिलित होने के कारण हमारे अंग से राधाअंग सौरभ निकल रही है।

(२०१) सखीगन कहने लगीं– यह चन्द्रवदना नहीं बल्कि वृषभानुजाश्री (अर्थात् वृषराशि के भानु से निकलने वाली कान्ति) जो एक स्थान पर रहकर भी चन्द्र और तुम्हें अपनी कान्ति से व्याप्त (फीका) कर रही हैं।

(२०२) इस प्रकार सखियों के साथ हास–परिहास करते हुए श्रीकृष्ण श्रीराधा दर्शन के लिए उत्कण्ठित होकर वृन्दादेवी के इंगित से स्वर्ण मन्दिर में प्रवेश कर गये।

राधाकान्त्युच्छलत्स्वर्णगेहकान्त्याखिले वृते।
पीताद्वैतेऽन्तरेऽपश्यत् सर्वं हेममयं हरिः।।२०३।।

(गोवि० २१/११६)

तावत् स्वकान्तिमिलनात् प्रोच्छलन्त्या तया त्विषा।
व्याप्तं सोऽपश्यदत्रत्यं सर्वं मरकतप्रभम्।।२०४।।

(गोवि० २१/११७)

पञ्चालिकान्तरेऽन्विष्य पश्यन्नपि मुहुः प्रियाम्।
स्तब्धां स्वालोकमुद्भीभ्यां मेने पञ्चालिका प्रियः।।२०५।।

(गोवि० २१/११८)

तां लालसा दयिता संगतये पुरस्ताद्–द्राग् वामतापसृतये च चकर्ष पश्चात्।
तावन्मुदोत्थ–जड़तैत्य निवार्य तां तां वामा सखीव निरुरोध हरेः पुरस्तात्।।२०६।।

(गोवि० २१/११६)

तां स्पृष्टुमुत्सुकतयेरितमन्तिकाप्तं तं स्तब्धताध्वनि रुरोध बलान्मुदोत्था।
तां लालसैत्य विनिवार्य हठात् प्रियां तं प्रापय तत्करमधारयदाशु सोग्रा।।२०७।।

(गोवि० २१/१२०)

---

(२०३) श्रीराधारानी को स्वर्ण कान्ति से उच्छलित स्वर्ण मन्दिर की समस्त वस्तुएं स्वर्ण वर्ण की दिखायी दे रही थी अतः श्रीकृष्ण उसमें स्वर्ण वर्णा राधारानी को नहीं देख पाये।

(२०४) इधर श्रीराधारानी भी अपनी कान्ति और श्रीकृष्ण की श्यामकान्ति दोनों के सम्मिलन से मन्दिर की सभी वस्तुएं मरकतवर्ण से रंजित हुई दिखने लगी।

(२०५) श्रीकृष्ण स्वर्ण प्रतिमाओं के बीच में राधारानी का बारम्बार अन्वेषण करने लगे (इस हेमाम्बुज कुंज के भीतर चारों ओर स्वर्ण प्रतिमाएं विराजमान हैं) यहाँ स्वयं श्रीराधारानी भी श्रीकृष्ण जनित आनन्द और भय से स्तब्ध सी होकर स्वर्ण प्रतिमा के समान ही प्रतीत हो रही थी अतः श्रीकृष्ण बारम्बार देखने पर भी राधारानी को भी स्वर्ण प्रतिमा ही समझने लगे।

(२०६) इस अवस्था में जड़ता को प्राप्त हुई श्रीराधारनी को श्रीकृष्ण के मिलन की लालसा मानों आगे की ओर खींचने लगीं और वामता उनको पीछे की ओर आकर्षित करने लगी। इस समय वामा सखी की भांति आनन्द जनित जड़ता ने राधारानी को उस स्थान से आगे जाने में असमर्थ कर दिया।

(२०७) श्रीराधा को स्पर्श करने के लिए श्रीकृष्ण उत्सुक होकर उनके समीप तो आ गये लेकिन उनको भी आनन्द जड़ता ने आकर रास्ते में ही रोक लिया अर्थात् वे भी श्रीराधारानी के समीप न पहुंच सके। तब मानों लालसारूपी सखी ने आकर स्तबधता को अकस्मात् निवारण किया और श्रीकृष्ण को श्रीराधा के निकट ले गयीं अर्थात् अति उग्र लालसा ने श्रीकृष्ण के हाथ में श्रीराधा का हाथ धारण करा दिया।

तत्स्पर्शतः पुलककम्पदृगम्बु–कीर्ण वैवर्ण्यघर्मजलभाक् तरलायताक्षी।
पश्यन्त्य मुं कुटिलचिल्लिलता–तिरोदृक्–प्रान्तेन सा प्रियकरात् स्वकरं चकर्ष।।२०८।।
(गोवि० २१/१२१)

स्मेरारुणान्तकुटिलाश्रुकलाञ्चि–पक्ष्म–हेलोल्लसच्चपल–लोचनमुत्स्मितार्द्रम्।
कण्ठाध्व–खञ्जित–सहुकृति–भर्त्सनोक्ति प्रेक्ष्यामितां मुदमवाप हरिः प्रियास्यम्।।२०६।।
(गोवि० २१/१२२)

नासा–रसज्ञा श्रुति नेत्र वर्ष्मभिर्लुब्धैः स्वतत्तद्विषये प्रियौमिथः।
तौ लुण्ठयामासतुरंग–नीवृतं प्रिया छलाच्छन्नमयं वलात् स्फुटम्।।२१०।।
(गोवि० २१/१२३)

गूढौ पुनः स्वर्णघटं विमोषितुं सरीसृपन्तं निजकञ्चुकान्तरे।
कामांकुशास्त्रं करत्तस्करं हरेः करेण सारुद्ब परं न वाञ्छितम्।।२११।।
(गोवि० २१/१२४)

इति सुमधुरलीलानन्द–सिन्धौ निमग्ने शिथिलित–तनुचित्ते प्रेयसि प्रेयसी सा।
प्रिय सह निजलीलालोकनायागताली–वलितमुदित–वाम्या कुट्टिमं प्राप गेहात्।।२१२।।
(गोवि० २१/१२५)

---

(२०८) इधर श्रीराधारानी ने श्रीकृष्ण के करकमल के स्पर्श को पाकर पुलककम्प, अश्रु, वैवर्य तथा स्वेद जल से व्याप्त, चंचल तथा विस्फारित नेत्रा होकर अपनी कुटिल भ्रूलताओं से कटाक्षपात करती हुई प्रियतम के हाथ से अपने हाथ को खींच लिया।

(२०६) श्रीराधारानी का मुखारविन्द जो कि ईषत् हास्य युक्त और नेत्र प्रान्त भाग में कुछ अरुण वर्ण, कुटिल, अश्रु से भीगी पलकों से युक्त, श्रीकृष्ण मिलन के लिए अति आसक्ति से युक्त, उल्लसित तथा चंचल मृदुस्मित सुशोभित, कण्ठ से निकलने वाले हुंकार शब्द जो कि बाहर निकलते–निकलते स्वरभंग होने के कारण आधे–अधे रुक जाते इस प्रकार भर्त्सना युक्त वचनों से परिपूर्ण प्रियतमा के मुखारविन्द को निहारकर श्रीकृष्ण अपार आनन्द का अनुभव करने लगे।

(२१०) श्रीराधाकृष्ण दोनों अपनी जिह्वा, कर्ण, नयन और देह इन समस्त इन्द्रियों से एक–दूसरे के गन्ध, रस, शब्द रूप और स्पर्श ने लुब्ध होकर एक दूसरे के अंगों को मानों लूटने लगे (आस्वादन करने लगे।)

(२११) तत्पश्चात् दो गुप्त स्वर्ण घटों की चोरी करने के लिए श्रीराधारानी की कंचुकी के मध्य काम अंकुश की भांति श्रीकृष्ण के हाथरूपी तस्करों ने जब प्रवेश किया तब श्रीराधारानी ने अपने हाथ द्वारा उनको रोकने की चेष्टा की किन्तु श्रीकृष्ण विषयक वासना को वह रोक न पायीं।

(२१२) इस प्रकार श्रीकृष्ण के सुमधुर लीलाजनित आनन्द सागर में डूबकर तन मन से शिथिल होकर श्रीराधा वामता के कारण अपनी सखियों के समीप (जोकि श्रीराधाकृष्ण की लीला दर्शन करने के लिए बाहर खड़ी थीं) बाहर जाकर वेदिका के ऊपर विराज गयीं।

हरिरपि रसभंगैः प्रापितस्तत्समीपं तदवकलनभीत्या सा निलिल्ये सखीषु।
स पुनरिह विचिन्वन् तासु तां तच्छलेन प्रणयकुटिलदृष्टी स्ताः स्पृशन्मोदमाप।।२१३।।

(गोवि० २१/१२६)

यदपि हृदि विवृद्धां काञ्चिदासां तयोस्तां न्यरुणदतिवलिष्ठा वामतैत्य प्रियायाः।
तदपि सुख–समृद्धिं प्रापतुस्तावुदग्रां प्रथयति हि सुखाब्धीन् वामतैवांगनानाम्।।२१४।।

इति श्री श्रीभावनासार–संग्रह प्रदोषलीलास्वादनं नाम सप्तमः संग्रहः।।७।।

❖

---

(२१३) इधर श्रीकृष्ण रसभंग होने के कारण उनके समीप जाकर उपस्थित होकर तब श्रीराधा "अब ये मरो स्पर्श करेंगे" इस भय से सखियों के बीच जा छिपी तब श्रीकृष्ण प्रियतमा श्रीराधा का अन्वेषण करते–करते इसी छल से प्रणय के वशीभूत हो कुटिल दृष्टि वाली समस्त सखियों के अंग का स्पर्श करते हुए परमानन्द को प्राप्त हुए।

(२१४) श्रीराधा और श्रीकृष्ण के मन में जो आशा (मिलन जनित) वृद्धि को प्राप्त हो रही थी राधारानी के अतिशय वामता ने आकर उसे निरोध किया लेकिन फिर भी इससे दोनों को अपार सुख समृद्धि ही प्राप्त हुई कारण कि रमणियों की वामता सुखसागर को वर्द्धित ही करती है।

।। इति श्रीश्रीभावनासागर संग्रह प्रदोष लीला आस्वादन नामक सप्तम संग्रह।।७।।

❖ श्री श्री गौरांग विधुर्जयति ❖

श्रीश्री भावना सार संग्रहः

अष्टम् संग्रहः

अथ नक्त लीला

श्री श्रीवासगृहे मुदापरिवृतो भक्तैः स्वनामावलीं गायद्भिर्गलदश्रुकम्प–पुलको गौरो नटित्वा प्रभुः।
पुष्पाराम–गते सुरत्नशयने ज्योत्स्नायुतायां निशि विश्रान्तः स शचीसुतः कृतफलाहारो निषेव्यो मम।।१।।

श्रीगौरचन्द्र की नक्त (रात्रि कालीन) लीला :–

गौरचन्द्र नित्यानन्द अद्वैत आचार्य।
गदाधर श्रीवासादि यत भक्तवर्य।।
श्रीवास प्रांगने आरम्भिल संकीर्तन।
बद्ध चतुर्दिके मण्डली करिया भक्तगण।।
मध्य नाचे गौरचन्द्र संगे गदाधर।
नित्यानन्द श्रीअद्वैत आचार्यवर।।
जय कृष्ण गोविन्द गोपाल वनमाली।
नामावली गाय सब देय करताली।।
ताथै ताथै बाजे मधुर मृदंग।
नूपुर ध्वनि अति अद्‌भुत तरंग।।

(१) नाना फूल वनमाला शोभे गौरअंग, नयनकमल बहै जान्हवी तरंग।।
कदम्ब कुसुम जिनी पुलकित अंग, स्वेद बिन्दु बिन्दु शोभे अति मनोरम।।
थर थर कांपै अंग जैसे पीपल पल्लव, बचन न आवै अति गद्‌गद् स्वर।।
क्षण अंग स्तम्भ होय क्षणे वैवर्ण्य क्षणे मूर्च्छा, क्षणे हुंकार गर्जन।।
क्षणे अट्टहास करै भूमि ते पड़ि जाय, सुवर्ण सम अंग धूलि ते लोटाय।।
चतुर्दिक भक्तगण हरि हरि उच्चारे, एवं विधि मिलि सब संकीर्तन करै।।
तब प्रभु विश्राम करै लैके भक्तगण, दासगण नानाविध करै सेवन।।
पाद सम्वाहन अरु ताम्बूल व्यजन, नानाविधि फल पक्वान्न करै भोजन।।
आचमन करि, करै ताम्बूल भोजन, पुनः पुष्पोद्याने जाय करै शयन।।
शयन करेन प्रभु श्रीशचीनन्दन, दासगण नानाविध करै सेवन।।
एवंविध गौरचन्द्र लीला करौ सुमिरण, पुनः राधाकृष्ण लीला करौ चिन्तन।।

तावुत्कौ लब्धसंगौ बहुपरिचरणैर्वृन्दयाराध्यमानौ गानैनर्म–प्रहेलीलपन–सुनटनै रासलास्यादि–रंगैः।
प्रेष्ठालीभिर्लसन्तौ रतिगतमनसौ मृष्टमाध्वीकपानौ क्रीड़ाचार्यौ निकुंजे विविध रतिरणोद्धत्य विस्तारवन्तौ।।२।।
(गोवि० २२/१)

वृन्दा सवृन्दाथ सहालिवृन्दौ, वृन्दावनेशावनुनाथ्य नाथौ।
तदालयालिन्दमनिन्दशोभं, पूर्णेन्दुकान्त्यज्ज्वलितं निनाय।।३।। (गोवि० २२/२)

मूलसूत्र :–

निकुंज मन्दिर में राधाकृष्ण परम उत्कंठित, मिले जाय दोनों सखिगण सहित।।
वृन्दादेवी संग सबवनदेवी गण, अति अनुराग भरि करै सुसेवन।।
छः ऋतु सुसेवित श्रीवृन्दावन, विहारार्थ दोनों जहाँ करै पदार्पण।।
श्रीराधिका को दांयो हाथ श्रीगोविन्द धरै, गजराज गति चलै धीरे धीरे।।
आगे आगे वृन्दादेवी करै गमन, दक्षिण में ललिता बांये विशाखा शोभन।।
ताम्बूल बीरी दुंहु करै समर्पण, चामर, व्यजन, करै अन्य सखीगण।।
कुसुम छड़ी लिये कोई चले आगे आगे, कोई पीछे पुष्प छत्र धरै अनुरागे।।
चतुर्दिक गान करै सब सखिगण, वन विहरै युगल आनंदित मन।।
वनक्रीड़ा करै सब हर्षित मन, जाय पहुंचे पुनः यमुनापुलिन।।
सखीगण चतुर्दिक मण्डली बंधन, मध्य नाचे राधाकृष्ण आनंदित मन।।
गान, वाद्य, नृत्य रास विलासादि करै, कान्तागण सह पुनः मधुपान करै।।
मधुपान मदोन्मत्त घूर्णित नयन, निकुंज मन्दिर जांय करै सब शयन।।
कान्तागण संग रति क्रीड़ा आदि करि, पुनः श्रीयमुना तट आये श्रीहरि।।
जलक्रीड़ा कर पहरै वसन भूषण, चन्दन सिंदूर, माला, केशर, अञ्जन।।
परस्पर मिलि सब धरावै श्रृंगार, पुनः भोजन करै नाना उपहार।।
भोजन करै पुनः करै आचमन, दिव्य कुसुम सेज पर करै शयन।।
सखीगण सब निज कुंज करै गमन, शयन करै सब आनंदित मन।।
दासीगण सब करै युगल सेवन, पादसम्वाहन करै चंवर व्यजन।।
एवंविध सुख सो दोनों करै जब शयन, निजस्थान जाय शयन करै दासीगण।।

(२) रात्रिकालीन लीला यह कर्ण रसायन, अति संक्षिप्त यहाँ करि है वर्णन।।
एक दिन (अष्ट प्रहर) लीला जो साधक करै, लीला सुमिरण कर प्रेमभक्ति पावै।।

(३) **रत्नमन्दिर के बरामदे में वृन्दा देवी द्वारा विविध प्रकार सुसेवा :–** तदनन्तर श्रीवृन्दा देवी उत्कृष्ट शोभा युक्त पूर्णचन्द्र की कान्ति से उज्ज्वलित रत्नमन्दिर के प्रांगण में सखीगणों के साथ श्रीवन्दावनाधीश्वर अधीश्वरी श्रीराधाकृष्ण को विनीत भाव से ले गयीं।

सा तत्र तौ पुष्पचितान्तरायां, सुचींनवस्त्रास्तरणान्वितायाम्।
कलिन्दकन्यानिल–शीतलायां, न्यवीविशत् काञ्चनवेदिकायाम्।।४।।

(गोवि० २२/३)

आवेशनादालिगणोपनीतै–र्विचित्रपुष्पाभरणैश्च माल्यैः।
ताम्बूल–गन्ध–व्यजनैः सुतोयैः सा तौ निजेशौ सगणौ सिषेवे।।५।।

(गोवि० २२/४)

तत् काननं तां रजनीं प्रियास्ताः कृष्णाञ्च तां तत्पुलिनानि तानि।
समीक्ष्य कृष्णो हृदि जातयामभवत् स प्रेरितो रासविलास–वाञ्छया।।६।।

(गोवि० २२/५)

सगणोऽरण्यविहृति–चक्रभ्रमण–नर्त्तनम्।
हल्लीसकं युग्मनृत्यं ताण्डवं लास्यमेककम्।।७।।

(गोवि० २२/६)

तत्तत्प्रबन्धगानञ्च सनृत्यं रतिनर्मणी।
जलखेलेत्यमून्येषु रासांगानि व्यधात् क्रमात्।।८।।

(गोवि० २२/७)

---

(४) और उस अलिन्द के मध्य भाग में फूलों से सजाये हुए सूक्ष्म वस्त्र द्वारा आच्छादित कलिन्द कन्या श्रीयमुना के जल स्पर्श से बहने वाली पवन द्वारा शीतल स्वर्ण वेदिका के ऊपर उन्हें विराजमान कराया।

(५) और पुनः शिल्पशाला से सखियों द्वारा लाये गये विचित्र फूलों के अलंकार माला, चन्दन, ताम्बूल, व्यजन, शीतल जल आदि द्वारा वृन्दादेवी उनकी सेवा करने लगीं।

(६) इधर श्रीकृष्ण इस प्रकार की (चाँदनी से उज्जवल) रजनी और इस प्रकार की (प्रेममयी) प्रियावर्ग और इस प्रकार का (अत्यन्त मनोरम) पुलिन देखकर हृदय में रासविलास की अभिलाषा करने लगे।

(७–८) **वनविहार एवं रास विलास की इच्छा से श्रीकृष्ण का मुरली वादन :–** श्रीकृष्ण वन विहार मण्डली बनाकर भ्रमण, नृत्य, हल्लीसक (केवल स्त्रियों द्वारा मण्डली नृत्य) युगल नृत्य (स्त्री पुरुष दोनों का एक साथ नृत्य) ताण्डव (पुरुष नृत्य) लास्य, (स्त्री नृत्य) एकक नृत्य, सब सखियों द्वारा रचित प्रबन्धगान, नृत्य, रति, परिहास, जलकेलि इत्यादि विविध प्रकार की रासलीला के अंगों का क्रमशः विधान करने की चेष्टा करने लगे।

ज्योत्स्नोज्जवलं मन्दसमीर–वेल्लितं, स्वसंगमोदीप्त–वसन्तजृम्भितम्।
नृत्यन्मयूरं पिकभृंग–नादितं, वनं समीक्ष्यात्र विहर्त्तुमैच्छत्।।६।।

(गोवि० २२/८)

वंशीगानेन तास्वेष ज्ञापयामास वाञ्छितम्।
तन्नाम्नैवानुगानेन स ताभिश्चानुमोदितः।।१०।।

(गोवि० २२/६)

कानने सुधांशु–कान्तिशुभ्रमञ्जुविग्रहे पुष्पिते समं त्वयाद्य मे प्रियालिवर्ग हे।
रन्तुमत्र–वाञ्छितानि चित्तवृत्तिरुदबहे–देवमस्तु कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कान्त हे।।११।।

(गोवि० २२/१०)

उत्थितः स रमणीगणसंगी, वृन्दयाप्यनुगतो मृदु गायन्।
प्रत्यगं प्रतिलतं प्रतिकुञ्जं, स प्रदक्षिणतया भ्रमति स्म।।१२।। (गोवि० २२/११)

हरिति हरिति हारी पूर्णयन् कर्णमोदं मदकल–कलकण्ठी–कण्ठनादौ जजृम्भे।
सुमधुरमधु–राजन्माधवीगन्धवन्धु–र्गतिमतनुत मन्दश्चान्दनो गन्धवाहः।।१३।।

(आ० १७/१०)

---

(६) तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ज्योत्सना से उज्जवलित, मन्द मन्द पवन से चंचल, अपने दर्शन से उद्दीप्त, बसन्त की शोभा द्वारा परिवर्द्धित, मयूरों के नृत्य से युक्त, कोकिल और भ्रमरों के निनाद से प्रतिध्वनित वन को देखकर उसमें विहार करने की वासना करने लगे।

(१०) तदनन्तर श्रीकृष्ण ने वंशीगान द्वारा गोपिकाओं को अपनी अभिलाषा से अवगत कराया और उन्होंने भी प्रत्युतर स्वरूप कृष्ण नाम युक्त गान द्वारा उनका अनुमोदन किया।

(११) हे प्रिय सखी पुष्पित एवं चन्द्रमा की किरण मालाओं से शुभ्र, मनोहर इस कानन में आज तुम जैसी प्रेयसीवर्ग के साथ मेरी चित्तवृत्ति नाना प्रकार रमण करने की अभिलाषा कर रही है। श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर सखीगण भी प्रफुल्लित होकर कहने लगी– हे कृष्ण ! हे कान्त! ऐसा ही होगा।

(१२) गोपियों द्वारा इस प्रकार का उत्तर सुनकर श्रीवृन्दावन चन्द्र अपनी प्रियागण के साथ उठकर मृदुस्वर से गान करते–करते प्रति वृक्ष प्रतिलता, प्रतिकुंज की प्रदक्षिणा करते–करते भ्रमण करने लगे।

(१३) **वनविहार के समय युगलरुप माधुरी** :– उस समय चारों दिशाओं में आनन्दोन्मत्त होकर कोकिलाओं के गान की मनोहर ध्वनि कानों को सुख देने लगी। सुमधुर बसन्त से उत्फुल्लित माधवी पुष्पों की गन्ध को बहन करने वाली मृदुमन्द मलय पवन चलने लगी।

कुसुमकुलमफुल्लं मल्लिका–वल्लिकानां मदमधुपयुवानोऽलंकृता झंकृतने।
उपरि परिपिवन्तो वादयन्ते स्म शंखानिव–निविड़निदाघश्री–विहारोत्सवस्य।।१४।।
(आ० १७/११)

सरसि सरसि सारं सारसामोदमीयु–र्मदकल–कलहंसाः सारसाः सारसाश्च।
विकच–कुमुदिनीनां मण्डले गन्धलुब्धा व्यधिषत रतिकेलिं चञ्चलाश्चञ्चरीकाः।।१५।।
(आ० १७/१२)

आनन्देन समन्ततो जय जयेत्युत्कीर्तितं पत्रिभिर्वलीभिः परितः स्मितं क्षितिरुहै रोमांचितं सर्वतः।
अन्योन्य–प्रियसंकथाकुलतया संयुक्तमेणीगणैः पुष्पाणां मकरन्दबिन्दुनिवहैः स्विन्नं धरण्यापि च।।१६।।
(आ० १७/१८३)

समेताभिस्ताभिः सह स हरिरान्दलहरी–हरिद्वृन्दाप्लावी स्मितमधुर–मुग्धास्यविधुभिः।
अकम्पाभिः शम्पाततिभिरिव सम्पालिततनु–र्धराधारो धाराधर इव नवीनो व्यहरत्।।१७।।
(आ० १७/१८६)

सोत्कण्ठैरुपगीयमानचरितः प्रेम्णा सुकण्ठीगणैः कण्ठेनापि च वेणुनापि च कलं गायन् क्रमेणैव सः।
मालामालुलितामलीन्द्रगरुतां वातैः पदालम्बिनीं विभ्राणः प्रतिभूरुहं प्रतिलतं बभ्राम दामोदरः।।१८।।
(आ० १७/१८७)

---

(१४) झंकार करते हुए मदमत्त मधुकर युवा मल्लिका लता की कलियों के ऊपर गान करते–करते ग्रीष्म ऋतु लक्ष्मी के विहारोत्सव पर मानों शंख बजा रहे हों (शंख के आकार की कलियों के ऊपर मुख रखकर गुनगुना रह थे।)

(१५) और मदोन्मत्त होकर कलकल करते हुए कलहंसगण और सुन्दर ध्वनि करते हुए सारस प्रति सरोवर पर बार–बार जाकर हर्षित हो रहे थे। प्रफुल्लित कुमुदिनी की गन्ध से लुब्ध चंचल भ्रमरगण रति केलि विधान करने लगे।

(१६) चारों ओर पक्षीगण आनन्द में भरकर जय जय ध्वनि उच्च स्वर में कीर्तन करने लगे, चारों ओर लताएं मृदुहास्य करने लगीं। समस्त वृक्ष चारों ओर रोमांचित हो उठे, मृगीगण परस्पर अपने प्रिय हरिणों से आलाप करती हुई व्याकुल हो उठीं और धरती भी पुष्पों के मकरन्द बिन्दुओं से मानों स्वेद युक्त हो उठीं।

(१७) चारों ओर आनन्द की तरंगों का विस्तार करने वाले श्रीहरि मृदु हास्य द्वारा अपने मनोहर मुखारविन्द से, ब्रजसुन्दरियों के साथ घिरे हुए इस प्रकार शोभा पा रहे थे मानों स्थिर सौदामिनी मण्डली से परिवेष्टित और सुरक्षित, भूतल स्थित कोई नवीन जलधर विहार कर रहा हो।

(१८) सुन्दर कण्ठ वाली रमणीगण प्रेम से भरकर उत्कण्ठा के साथ श्रीकृष्ण के चरित्र का गान करने लगीं! और उनके साथ दामोदर अपने कण्ठ द्वारा वेणु द्वारा समधुर गान करते–करते, श्रेष्ठ मधुकरों के पंखों से हिलती हुई और चरण पर्यन्त लम्बी माला धारण पूर्वक प्रत्येक वृक्षलता के नीचे भ्रमण करने लगे।

चित्रैः पत्रैर्नखविदलितैः कल्पयन् पत्रलेखां नानापुष्पैः स्वकर–विचितैः कञ्चुलीं निर्मिमाणः।
बल्लीखण्डैः स्तवकचटुलैः साधयन्नंगदादीन्यासान्तन्तेनेऽलक–ललिततां धूलिभिः कौसुमीभिः।।१६।।
(आ० १७/१६०)
हारं मल्लीकुसुम–निकरैः पत्रपाश्यां कदम्बैरुत्तंसञ्च स्थलसरसिजैर्गण्डशोभाञ्च लोध्रैः।
कुन्दैः कण्ठाभरण–रचनां केशरैः काञ्चिनमासां कुर्वन् स्वीधां युगपदनघां दर्शयामास शिक्षां।।२०।।
(आ० १७/१६१)
काचित् केशरकुटम्लं श्रवणयोः काचित् कचे केतकीं काचिद्वक्षसि तस्य मल्लिकुसुमैराकल्प्य हारोत्तमम्।
उष्णीषेऽकृत किस्किरातमपरा यूथीस्रजः खण्डकैः काचित् कंकणमंगदञ्च वकुलैः काचिच्च काञ्चीगुणम्।।२१।।
(आ० १७/१६२)
तेषु चारब्धे वनविलासे निराविलासे निरावरण–रणन्मदकल–कलकण्ठ– रोलम्बलम्बमान–कलझंकार–माधुरीधुरीणासु दिग्मण्डलीषु मदनमद–नमद्धियो धियोढकृष्णरतयो यूथश एव।।
(आ० १७/१६४)

---

(१६) श्रीश्यामसुन्दर अपने नखों से तोड़कर विचित्र मृदुल पत्रों द्वारा बृज सीमन्तीगणों को विभूषित करने लगे और अपने कर कमलों द्वारा नाना पुष्पों का चयन करके उनके द्वारा उनकी कंचुका का निर्माण करके, फूलोंके गुच्छों से शोभित लताखण्ड के समूह द्वारा अंगद आदि प्रस्तुत करके पुष्पों की धूलि द्वारा उनकी अलकावलि को सजाने लगे।

(२०) और भी श्रीकृष्ण ने एक साथ मल्लिका के कुसुमों द्वारा उनके हार, कदम्ब के फूलों द्वारा बन्दिनी, कुण्डल, स्थल (कमल), पद्म समूह द्वारा शिरोभूषण, लोध्रपुष्प द्वारा कपोलों के भूषण, कुन्द के पुष्पों द्वारा कण्ठाभरण एवं केशर अर्थात् वकुल पुष्प समूहों द्वारा उनकी कांची निर्माण करके अपनी निर्दोष कला का प्रदर्शन किया।

(२१) किसी ब्रजसुन्दरी ने श्रीकृष्ण के कानों में नागकेसर की कली और केशों में केतकी के पुष्प अर्पण किये। किसी ने मल्लिका पुष्पों द्वारा उत्तम हार बनाकर उनके वक्षस्थल में पहनाये और किसी श्रेष्ठ गोपी ने उनकी पाग में अशोक पुष्प गूँथ दिये। किसी ने जूही के गजरे बनाकर कंकण धारण कराये और किसी ने वकुल के पुष्पों द्वारा अंगद बनाकर और किसी ने उनकी करधनी बनाकर पहना दी।

पुन्नागेभ्यः कनकरुचिभिश्चीयमानैः परागैर्भृंगासंगादपि सुविशदां चन्द्रिकां मलापयद्भिः।
तत्राकालस्मररण इवोद्धूतधूली–प्रपूरै–र्झंकार क्षुभितवलयैरप्यधुः प्राणनाथम्।।२२।।
(आ० १७/१६५)

नानापुष्पैः स्वयमवचितैः कन्दुकान् कल्पयित्वां तैस्तेर्निघ्नन् युगपदभितो हन्यमानश्च ताभिः।
अक्षोभेण व्यजयत वधूयूथपानां स यूथं तत्पक्षीयैर्जय जय जयेत्याजगे पक्षिसङ्घैः।।२३।।
(आ० १७/१६६)

दर्पोत्सेकात् सह–परिजनां राधिकां जेतुकामे कृष्णे पूर्वं जितवति समं कन्दुकैरालिवृन्दम्।
तस्याः कोपभृकुटि–कुटिलैर्निर्जितेऽस्मिन् कटाक्षै रेणुर्ही ही जितमिति मुहुस्तद्गणाः पक्षिसंघाः।।२४।।
(आ० १७/१६७)

आचित्वानां सुरभिसुरसं केशरं भृंगवाधा–वित्रस्ताक्षीं चकित चकितां पाणिपद्मं धुनानाम्।
पुन्नागं यद्धरसि तद्वहो योग्यमेतत्तवेति स्मायं नमितवदनां स्मापयामास राधाम्।।२५।।
(आ० १७/१६६)

---

(२२) तदनन्तर श्रीकृष्ण व्रजसुन्दरी के मध्य निष्पाप अर्थात् विशुद्ध वनविहार करते वे कहने लगे। उस समय मदमत्त कोकिला एवं भ्रमरगण मुक्त कण्ठ से ध्वनि करने लगे और भ्रमरगण सुमधुर झंकार करने लगे। इससे चारों दिशाएं माधुर्य से परिपूर्ण हो उठीं और हृदय में श्रीकृष्ण के प्रेम का बहन करने वाली गोपिकागणों के यूथ के यूथ आकुलित हो उठे, तब सुवर्णांगी बृजांगनाओं ने पुनांग के पुष्पों से, भौंरो के घिरे हुए होने पर भी, शुभग पराग राशि, जो चन्द्रिका को भी म्लान कर रही थी, चयन करके, असमय में प्राप्त कन्दर्प युद्ध के झंकार क्षुमित होती हुई चूड़ियों की ध्वनि करते हुए धूलि राशि के समान उस पराग से प्राणनाथ को आच्छादित कर दिया।

(२३) नाना प्रकार के पुष्पों को स्वयं चयन करके उनसे कन्दुकों का निर्माण करके श्रीकृष्ण ने कन्दुक समूह द्वारा गोप सुन्दरियों को आघात करने लगे और वे भी उसी प्रकार कन्दुकों का निर्माण करके उनको चारों ओर से आघात करने लगीं। इस प्रकार चारों ओर से आघात को प्राप्त करके भी ब्रजराज नन्दन तनिक भी क्षुमित नहीं हुए और इस प्रकार उन्होंने यूथेश्वरि गणों के यूथ पर विजय प्राप्त की तब श्रीकृष्ण के पक्ष पाती शुकादि पक्षीगण जय जय जय गान करने लगे।

(२४) श्रीकृष्ण प्रथम कन्दुक समूह द्वारा एक साथ ब्रजगोपियों परविजय प्राप्त करने के गर्व से गर्वित होकर अब पुनः श्रीराधा को जय करने की इच्छा करने लगे, लेकिन वे उनकी कोपजनित भृकुटी तथा कुटिल कटाक्ष द्वारा परास्त हो गये तब श्रीराधा के पक्ष की सारिका आदि पक्षी राधारानी की जय देती हुई पुनः पुनः शब्द करने लगीं।

(२५) इधर श्रीराधिका सुगन्धित एवं रसयुक्त पुनांग पुष्प चयन करने लगी तो भ्रमर आकर बारम्बार उन्हें बाधा देने लगे जिससे वे वित्रस्त एवं चकित होकर अपने कर कमल को कम्पित करते हुए श्रीकृष्ण की ओर देखने लगीं। तब श्रीकृष्ण कहने लगे–"प्रिये तुम जो यह पुन्नाग पुष्प (श्लेष अर्थ में पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्ण) को हरण कर रही हो यह तुम्हारे योग्य ही है।" ऐसा कहकर मृदु हास्य करते–करते उन्होंने लज्जा से झुके वदन वाली श्रीराधा को भीमृदुहास्यान्विता किया।

पादाग्रेण क्षितितलमवष्टभ्य दोर्वल्लिमुच्चैरुन्नीयैकं कुसुममतुलं दूरतो हर्त्तुमिच्छुः।
नीवी–स्रंसे चकित–चकिता पृष्ठभागत्य धृत्वा दोर्भ्यामुत्थापयति दयिते तत्त्रपे तत्र राधा।।२६।।

काचित् कैतवतो रजः कुसुमजं लग्नं ममाक्ष्णोरिति त्रस्ता पाणिसरोरुहेण वलय–क्वाणेन हाहा कृता।
मार्जन्ती त्वरितं समेत्य दयितेनालोकयामीत्यलं निर्भाष्यानन–पद्ममारुतमिषादक्ष्णोश्चिरं चुम्बिता।।२७।।

(आ० १७/२०३)

हन्ताप्राप्ये कुसुमनिकरे पाणिमुल्लास्य हर्त्तुं यां यामेषा स्फुटविटपिणां हन्त नासीत् समर्था।
तस्याः सातिप्रणयभरतो हस्तशाखैव तेषा मालीभावादिव विनमिता पाणिलग्ना वभूव।।२८।।

(आ० १७/२०५)

मन्दारैर्हरिचन्दनैरगुरुभिः सन्तानकैश्चम्पकैः पुन्नागै र्बकुलैर्वकैः कुरुबकैः कंकेल्लिभिः केतकैः।
यूथीजात्यतिमुक्तपाटलिजवा–शेफालिकावल्लिभिर्मल्लीभिर्मुचुकुन्द–कुन्दकरुणैः सत्स्वर्ण यूथ्यादिभिः।।२९।।

(कृष्णा० ३/४३)

---

(२६) श्रीराधारानी ने चरणों के अग्रभाग से भूमि का आश्रय करके (पंजों से उठकर) अपनी बाहुलता ऊँची करके एक अनुपम कुसुम को दूर से उतारने की इच्छा की। इस समय उनकी नीवी बन्धन शिथिल हो जाने से वे चकित हो उठी। तब श्रीकृष्ण ने पीछे से आकर दोनों भुजाओं द्वारा उनको धारण करके ऊँचा उठा दिया लेकिन इससे श्रीराधा अत्यन्त लज्जा का अनुभव करने लगी।

(२७) कोई ब्रजललना कपटता पूर्वक अपनी बाहुओं को ऊपर उठाकर "ओहो मेरे नेत्रों में पुष्प रेणु पड़ गयी" ऐसा कहकर भीत होती हुई चूड़ियों की झंकार करती हुई अपने कर कमल से नेत्रों को मार्जित करने लगी तब प्रियतम श्रीकृष्ण हा हा कार करते हुए शीघ्रता से आकर "देखू देखू" ऐसा कहते हुए उसमें फुंकार देते हुए छल से उनके नेत्रयुगल का चुम्बन करने लगे।

(२८) इधर श्रीराधिका कुसुम चयन करती हुई जब दूरडाल के कुसुम हाथों में प्राप्त नहीं कर सकीं तब जिस–जिस शाखा को हाथों से नीचा करने में असमर्थ होतीं वही सब शाखाएं सखीभाव को धारण करके अत्यन्त प्रेम से नीचे झुकती हुई उनके हाथों में आ गयी।

(२९–३१) **वन शोभा वर्णन :–** मन्दार, हरिचन्दन, अगरु, सन्तान, चम्पक, पुन्नाग, बकुल, बक, कुरबक, अशोक, केतकी, यूथी, जाती, माधवी, गुलाब, जवा, शेफालिका (हार श्रृंगार) मल्ली (मोतिया) मुकुकन्द, कुन्द, नवमल्लिका, स्वर्ण जूही, आदि फूलों के वृक्ष लता, सुपारी, दाड़िम, नारियल, कटहल, केला, आम्रातक, नारंगी, रुचक, महुआ, शमिका, कक्कोल, कोविदार, चालता, आंवला, लवंग, लवली, उत्तम आदि जम्बीर समूह, सल्लकी करुणालेव, अम्लान एवं कुब्जक आदि फलयुक्त वृक्ष जो कि अप्राकृत होते हुए भी लोक प्रसिद्ध फूलों वाले फलवृक्ष (वानस्पत्य) और फूलों के बिना फलवान वृक्ष ये सब रत्नबद्ध आलवाल युक्त और नाना प्रकार की लताओं से

पूगैर्दाड़िम नारिकेल–पनसै रम्भाभिराम्रातकैर्नारंगै रुचकैमधूकशमिका–कक्कोल–कुदालकैः।
भव्यैरामलकी–लवंगलवली–सत्कर्मरंगादिभि–र्जम्बीरावलि–सल्लकी–करुणकैरम्लानकुब्जादिभिः।।३०।।
(कृष्णा० ३/४४)

वानस्पत्यवनस्पति–व्यतिकरैरप्राकृतैः प्राकृतैः सर्वै रत्नमयालवाल–वलयैर्नानालतालिंगितैः।
पुण्यारण्यवरेण्यमौलिमणिभिर्धन्यैरथान्यैर्द्रुमैर्जुष्टं तद्वनमाविवेश स समं रामागणैरुत्तमैः।।३१।।
(कृष्णा० ३/४५)

काण्डं मारकतं प्रभूतनिरपाः शाखाः सुवर्णात्मिकाः पत्राली कुरुविन्दकन्दलमयी प्रावालिकाः कोरकाः।
पुष्पाणां निकरः सुहीरकमयो वैदूर्य्यकीया फलश्रेणी यस्य स कोऽपि शाखि–निकरो यत्रातिमात्रोज्जवलः।।३२।।
(कृष्णा० ३/४६)

येषां रत्नमयालवाल–वलय क्रीड़ाद्रिनिर्यत्पयः पूरेषु प्रतिबिम्बतो ह्युभयतो विस्तारवच्छ्रेणयः।
ये वै चित्रपवित्र–पत्रिनिकरे सर्वत्र मैत्रीजुषः कामं कामद्युहोऽखिलाः क्षितिरुहस्त्रैलोक्य–लक्ष्मीजुषः।।३३।।
(कृष्णा० ३/४७)

नानामञ्जुलकुञ्ज–मण्डपकुलैर्नानामणीमन्दिरै–र्नानारत्नमयैर्भुवः परिसरैर्निर्यत्न–रत्नांकुरैः।
क्वापि क्वापि वनस्थली सुललिता कृष्णाभ–मृत्स्नामयी वैचित्री नहि तत्र धातृविहिता नित्यैव सा चिन्मयी।।३४।।
(कृष्णा० ३/४८)

आलिंगित एवं पुण्य भूमि जात वन श्रेणी के मानों शिरोभूषण तथा अन्यान्य भी धन्य वृक्षों की श्रेणी इस वन की शोभा वर्धित कर रही थी जहाँ रमणिों में परम श्रेष्ठा बृजगोपियों के साथ श्रीकृष्ण ने प्रवेश किया।

(३२) इस वनभूमि में कोई वृक्ष नीचे से स्कन्ध (मूलशाखा) मरकतमणिमय, और उससे निकलने वाली छोटी–२ अनेक शाखाएं स्वर्णवर्ण की, पत्ते पद्मरागमणि के मानों अंकुरमय, कलियाँ प्रवालमय, पुष्प समूह सुन्दर हीरकमय (हीरे की भांति) फलराशि वैदूर्यमणि के समान उज्जवल इस प्रकार अनिर्वचनीय शोभा को (ये वृक्ष) धारण कर रहे हैं।

(३३) (और भी एक अत्याश्चर्यमय शोभा इन वृक्षों के) रत्नमय आलवाल समूहों में गिरि गोवर्धन के झरनों से जल आ रहा है जिस जलप्रवाह में ये प्रतिबिम्बित होकर (जल और स्थल में दोनों जगह) सुन्दर रूप से दिखायी दे रहे हैं और इन वृक्षों पर सर्वत्र एवं पवित्र पक्षिसमूह प्रेमसे कोलाहल करते हैं त्रैलोक्य की शोभा से मुक्त यह वृक्षमण्डली सब प्रकार की काम्यवस्तुओं को प्रदान करने में समर्थ हैं।

(३४) कहीं पर नाना प्रकार के कुंजों के मण्डप कहीं नाना प्रकार की मणि मन्दिरों की श्रेणी, कहीं नाना प्रकार के रत्नमय भूमि खण्ड और कहीं रत्नों से जटित न होने पर भी रत्नाकुंरमय भूमि कृष्ण वर्ण की आभा से युक्त प्रशस्त मृतिकामयी वनस्थली अत्यन्त मनोहर दिखायी देती है। अहो ! इस स्थान की विचित्रता तो विधाता द्वारा बनायी हुई नहीं है यह तो नित्य चिन्मयी है।

बद्धा कापि वनस्थली मरकतैर्यस्यां चरन्ति ध्रुवा वाष्पच्छेद्यतृणांकुरभ्रमवशादेन्यो वरेण्योत्सवाः।
सिद्धान्या कुरुविन्द–कन्दलकुलैर्यस्यां हिमस्यागमे वालार्कद्युति तर्कतश्चमरिकाः क्रीड़न्ति कालक्रमे।।३५।।
(कृष्णा० ३/४६)

विस्फार–स्फटिकेन्द्र–सान्द्रसरसा काचिन्निदाधातुराः सेवन्ते घनचन्द्रिकाचयधिया यां सम्बरानां वराः।
काचिन्नीलमणीन्द्रवृन्दघटिता ध्वान्तभ्रमे संगते यामाश्रित्य निदाघदीधितिभिया घूकाः सुखं शेरते।।३६।।
(कृष्णा० ३/५०)

वासन्ती–कलिकालि–मौक्तिकलता मल्लीप्रसूनाञ्चिता कादम्बस्तवक–स्तनाम्बुजमुखी लोध्रावतंसान्विता।
दाम्ना दामनकेन बन्धमधुपश्रेणी सुवेणीप्रिया लक्ष्मीस्तस्य वनस्य कृष्णमभजत यन्नामृतूनां प्रिया।।३७।।
(कृष्णा० ३/५१)

प्रालेयैर्यवसांकुरैर्मधुरसैर्गन्धैः प्रसूनोत्तमैः श्रेण्योर्द्धं गतयालिनां सुमुकुलैश्च्यातैः फलैः पंकत्रिमैः।
पाद्यार्ध्याचमनीय गन्ध–सुमनोधूप–प्रदीपावली–नैवेद्यानि ततान सा वनरुहां कृष्णार्चने मण्डली।।३८।।
(कृष्णा० ३/५२)

---

(३५) कोई वनस्थली मरकत मणि समूह द्वारा जटित है उसमें हरिणी गणों को सुकोमल तृण अंकुरों का भ्रम हो जाता है और वे यहाँ आनन्द पूर्वक विचरण करती है कोई अन्य वनस्थली पद्मरागमणि के अंकुरों से रचित है वहाँ शीतकाल में चमरी मृगीगण सूर्य की किरणों का भ्रम करती हुई सर्वदा विचरण करती हैं।

(३६) कोई वन भूमि श्रेष्ठ–श्रेष्ठ स्फटिकमणि द्वारा जटित महारसमय भूमि प्रतीत होती है। ग्रीष्म ऋतु में सम्वर नामक मृग श्रेष्ठ घनी ज्योत्सना समझकर वहाँ जाकर विचरते हैं। कोई वन प्रदेश इन्द्रलनीमणि द्वारा जटित है जहाँ अंधकार के भ्रम से ग्रीष्म कालीन सूर्य की किरणों से भीत होकर पेचक (उल्लू) सकल इस स्थान का आश्रय लेकर सुख से शयन करते है।

(३७) छः ऋतुओं की प्रियतमा यह वन लक्ष्मी (वन देवी)श्रीकृष्ण को अपना सौन्दर्य दिखाती हुई सेवा कर रही है। इस वनदेवी ने वासन्ती कलिका समूहोंका मानों मोतियों का हार धारण किया हुआ है। ग्रीष्म ऋतु में मल्लिका के कुसुमों से फूलों के हार पहने हुए है। वर्षा ऋतु में कदम्ब के गुच्छों के रूप में स्तनयुगल धारण किये हुए हैं। हेम ऋतु में लोघ्र पुष्पों के कुण्डल धारण किये हैं शीत ऋतु में दमनक की मालाओं से बंधी हुई भ्रमर श्रेणी रुप सुन्दर वेणी धारण किये हुए सबका प्रिय करने वाली (यह वन लक्ष्मी) विराज रहीं है।

(३८) इस वन की वृक्ष श्रेणियां भी श्रीकृष्ण के लिए नाना प्रकार की पूजा की सामग्री जुटा रही है जैसे शिशिर बिन्दु में पाद्य, तृणअंकुरों के रूप में अर्घ्य, मधु के रस से आचमन, सुगन्धि द्वारा गन्ध, उत्तम उत्तम कुसुम समूह भ्रमरों की पंक्ति के ऊपर उड़कर जाना ही मानों धूप, सुन्दर–सुन्दर मुकुल समूह दीप और सुन्दर–सुन्दर सुपक्व फल नैवैद्य के रूप में सेवा कर रहे हैं।

चञ्चद्वात–गुरुपदिष्टनटना भृंगावली–गायनी गीतार्थाभिनयोल्लसद्दलकरा दिव्यांगिकोल्लासिनी।
आपीनस्तवकस्तन प्रकटन–व्रीड़ातिकम्रानतिः प्रोन्मीलत्कुसुमस्मिता हरिपुरोऽनृत्यल्लतानां ततिः।।३९।।
(कृष्णा० ३/५३)

तत्रैका कुसुमस्मितं दलकरेणाच्छादयद्व्रीड़िता हर्षास्त्रं मकरन्दविन्दुभिरुदस्राक्षीत् परानन्दिता।
आरौत्सीदपरा परागपटलीचीनेन पीनस्तन–श्रीभाजस्तवकान् विकीर्य्य मधुपानंगात् स्थिताः काश्चन्।।४०।।
(कृष्णा० ३/५४)

चञ्चत्कोकिल–कूजितेन मरुता लोलैर्दलैः पाणिभिः स्तोकोल्लासि–विकासिपुष्पहसिता व्यक्ताभिराहूतिभिः।
एहयैहाति मनोरथोज्जवलमना निःसाध्वसैवोत्सुका वीक्ष्यैवाध्वयतीव कृष्णमसकृत् काचिल्लताश्रेणिका।।४१।।
(कृष्णा० ३/५५)

दार्वाघाट–विरावशुष्करुदितो भृंगावलीभ्रूभृत–भ्राम्यद् भृकुटिवीक्षिते सति हरौ पुष्पैः सरोषस्मितः।
लोलैः पल्लव–पाणिभिर्ननेत्याक्षेपकारी द्विज–स्वानैः कल्पितभर्त्सनो विरुरुचे कश्चित् स वल्लीब्रजः।।४२।।
(कृष्णा० ३/५६)

---

(३९) श्रीवृन्दावन की लता श्रेणी भी श्रीकृष्ण के सम्मुख नृत्य कर रही हैं। चंचल वायु रूपी गुरु उनको नृत्य शिक्षा का मानों उपदेश कर रहा है। भ्रमरों की श्रेणी गीत गा रही हैं, गीत के अर्थ का अभिनय करने के लिए (हाथ आदि का संचालन करते हृदय के भावों को प्रगट करना) उनके दल रूपी हाथ शोभा विस्तार कर रहे हैं जो कि हिलहिल कर उल्लसित होते हुए मानों भृकुटी विलासद्वारा विभिन्न अंगों द्वारा भाव प्रगट कर रहे हैं और स्थूल फूलों के गुच्छों रूपी स्तनों को प्रगट करने में लज्जायुक्त होती हुई ये लताएं मानों झुक झुक कर अत्यंत रमणीयता का विस्तार करती हुई प्रस्फुटित कुसुमों द्वारा मानों हास्य प्रकाश करती हुई शोभा पा रही है।

(४०) इनमें एक लता तो मानों लज्जित होकर दल रुपी हाथ से कुसुम रुपी हास्य का आच्छादन करने लगी दूसरी आनन्दित होकर मकरन्द बिन्दुओं के छल से हर्ष से अश्रुपात कर रहे हैं और अन्य कोई परागसमूह रूपी वस्त्र द्वारा अपने स्थूल स्तनों के सदृश पुष्प गुच्छों को आच्छादित करने लगी तथा अन्य कोई लता मधुकर श्रेणी को मानों अपने अंग से हटाती हुई सी प्रतीत हो रही थी।

(४१) कोई कोई लता श्रेणी श्रीकृष्ण को देखकर पुनः पुनः मानों पुकार ही रही है। वे चंचल कोकिलाओं की ध्वनि तथा वायु से हिलते हुए पत्रों के रूप में मानों हाथों का संकेत करती हुई स्पष्ट रूप से इधर आओ कहकर पुकारने लगी तथा कुछ उल्लसित और विकसित पुष्पों के रुप हास्य प्रकाशित करती हुई अपने मनोरथ को स्पष्ट रूप से (निःसंकोच भाव से) श्रीकृष्ण के मिलन के लिए उत्कण्ठित हो उठीं।

(४२) श्रीकृष्ण को देखकर कोई कोई लता (कुदृमित भाव) अलंकार का प्रकाश करती हुई मानों शुष्क रोदन सा करती हुई भ्रमरावलि रूप भृकुटी चढ़ाकर पुष्पों के विकास के छल से रोष भरा हास्य प्रगट करने लगी और चंचल पल्लवरूपी हस्त द्वारा "ना, ना, ना" कहकर आक्षेप करती हुई पक्षीगणों की कलकल ध्वनि के रूप में भर्त्सना प्रगट करती हुई शोभा पा रही थी।

इत्थं भावित–भावभावुकवतीर्वल्लीततीर्मानयन् भक्तया पुष्पफलोपचार–चतुरान्भूरुहान्नन्दनयन्।
प्रोन्मीलन्नवशाद्वलां तत इतः श्रीरत्नभूमण्डलीं पद्मभ्यां मेदुरयंश्चचार रसिको वृन्दावनान्तःस्थलीम्।।४३।।

(कृष्णा० ३/५७)

ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः, प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः।
उदारहास–द्विजकुन्ददीधिति–व्यरोचतैणांक इवोडुभिर्वृतः।।४४।।

(भा० १०/२६/४३)

उपगीयमान उद्गायन् वनिताशत–यूथपः।
मालां विभ्रद्वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन् वनम्।।४५।।

(भा० १०/२६/४४)

सुकण्ठीभिः कण्ठीरव–मधुरमध्याभिरभितः कलं गायन्तीभिः सरसमनुगीतामलगुणः।
स्पृशन्नागान्यासां स्तवक कुसुमाद्यर्पणमिषा–दकुण्ठामुत्कण्ठां निभृत–रतयेऽवर्द्धयदयम्।।४६।।

(गोवि० २२/२८)

यद्यज्जगौ चन्द्रलतादिकं हरि–स्तेनैव पश्चात् प्रियया युतं हरिं।
वर्णार्थयोः क्वापि विपर्ययेण ताः कृष्णस्य नाम्नानजगुः क्व चालयः।।४७।।

(गोवि० २२/३१)

---

(४३) इस प्रकार के भावों से विभावित मंगलमयी लताश्रेणी का सत्कार पाते हुए एवं भक्तिभाव से पुष्प फल आदि उपकर्मों द्वारासेवा में कुशल वृक्ष श्रेणी को आनन्द दान करते हुए रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण तृण संकुल रत्नभूमि पर इधर उधर विचरणसे उसे स्निग्ध करते हुए वृन्दावन में विहार कर रहे है।

(४४) उदार शिरोमणि समस्त शोभाओं के सदन अच्युत के उदार हास्य तथा उज्ज्वल दन्तपंक्ति से विकसित होती हुई मानों मल्लिका की प्रभा बाहर शोभित हो रही थी। उनके दर्शनों से और मिलन से गोप बालागण प्रफुल्लवदना हो उठी और उनसे परिवेष्ठित होकर ताराओं से घिरे हुए पूर्ण चन्द्र के समान शोभा पाने लगीं।

(४५) असंख्य रमणीयों के पति भगवान श्रीकृष्ण कभी उच्चस्वर में गान करते, तो कभी गोपांगनाओं का गीत श्रवण करते, वैजयन्तीमाला धारण पूर्वक वन प्रदेश को शोभित करते हुए सहर्ष विहार करने लगे।

(४६) तदनन्तर सिंह के समान क्षीण कटि वाली, सुन्दर कण्ठ वाली, मधु भाषिणी, गोपांगनाओं द्वारा श्रीकृष्ण का विमल गुणनुवाद करते हुए श्रीकृष्ण उनके अंग प्रत्यंग का स्पर्श करते हुए कभी उनके हृदय में एकान्त मिलन जन्य उत्कण्ठा करने लगे।

(४७) किसी समय श्रीकृष्ण वर्ण, शब्द, स्वर, ताल, मान, ग्राम, मूर्च्छना आदि के साथ चन्द्र और लता आदि के विषय में जो जो भान करने लगते थी सखी सकल भी श्रीराधाकृष्ण के सम्बन्ध में कहीं वर्ण और अर्थ को विपरीत करके उसी प्रकार का गान करने लगती थी।

स सुदृशां सुदृशां रुचिकृद्रुचि, विंरहितारहिता निजतारकाः।
सुविदधदविदध् कुमुदावनं, वरमुदे स मुदेति विधुर्हि नः।।४८।।

(गोवि० २२/४५)

इत्थं गायन् मधुरविपिन–श्रीभरालोकतृप्तः कान्तावल्लीरपि विरचयन् स्वाभिमर्द्दन फुल्लाः।
भ्रामं भ्रामं भ्रमरनिकरैः स्वानुगैर्वेष्टितोऽसौ ताभिर्वंशीवटविटपिनः कुट्टिमं प्राप कृष्णः।।४६।।

(गोवि० २२/४६)

तत्रोपविष्टः स ददर्श कृष्णां, स्वदर्शनानन्दविवृद्धतृष्णाम्।
फेनालिहासां खगनादगानां, स्वसंगमायोत्क–हृषीकवर्गाम्।।५०।।

(गोवि० २२/४७)

स्पर्शोत्सवायोच्छलदूर्मिहस्तां, लोलाब्जरक्तोत्पलफुल्लनेत्राम्।
समुच्छलन्नक्रमुखोच्चनासा, मावर्त्तगर्त्तोत्सुक–कर्णपालीम्।।५१।।

(गोवि० २२/४८)

---

(४८) जैसे गोपियों ने कहा विधु अर्थात् जो विशेष प्रकार के दुःखों का खण्डन करके सुखों का विधान करते हैं ऐसे परम मनोहर श्रीकृष्ण सुन्दर नेत्रों वाली ब्रजांगनाओं के नेत्रों को आनन्दित करते हुए, अपनी प्रेयसी वर्ग को विरह शून्य करते हुए, असुर आदि का विनाश करते हुए और समस्त जगत का हर्ष विधान करते हुए, हमारा आनन्द वर्द्धन करने के लिए उदित हुए हैं। (यही समस्त विशेषण चन्द्र के भी हैं।)

वंशी वट में गमन यमुना पुलिन पर रासादि :–

(४६) इस प्रकार श्रीकृष्ण गान करते हुए वन की मधुर शोभा से परितृप्त हुए अपनी प्रेयसी गोपीगण तथा लताओं दोनों को ही अपने करस्पर्श से प्रफुल्लित करते हुए, पीछे–२ चलने वाले भ्रमरों से परिवेष्टित होकर वंशीवट के नीचे वेदी के समीप पहुंच गये।

(५०) वहाँ पर बैठ कर श्रीकृष्ण ने कृष्णा (श्रीयमुना) का अवलोकन किया अहो ! श्रीयमुनाजी की आश्चर्य शोभा कि उस समय श्रीकृष्ण के दर्शनानन्द से उनकी तृष्णा (श्रीकृष्ण प्राप्ति अथवा मिलन की) निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने लगी। वह मानो फेन के रूप में हास्य प्रकट करने लगीं, जलचर पक्षियों के निनाद रूप में गान करने लगीं और श्रीकृष्ण से मिलने के लिये उनकी समस्त इन्द्रियाँ उत्सुक हो उठीं।

(५१) श्रीयमुनाजी के श्रीकृष्णांग स्पर्श करने के लिये तरंग रूपी हाथ उछलने लगे, खिले हुए लालकमल रूपी नेत्र चंचल हो गये, कुम्भीर (जलजन्तु) रूपी नासिका ऊँची उठ गयी और आवर्त्त रूपी कानों के गर्त मानो (श्रीकृष्ण वचनामृत) सुनने के लिये उत्सुक हो उठे।

पुलिनानि समीक्ष्यासौ तत्र रन्तुमना हरिः।
कृष्णापारं गन्तकामः समुत्तस्थौ प्रियागणैः।।५२।।

(गोवि० २२/४६)

अथागतानां स्वजलान्तिकं सा, तेषां पदाब्जेषु तरंगहस्तैः।
समप्य पद्मान्यथ तानि कृष्णा, तैस्तैः स्पृशन्तीव मुहुर्ववन्दे।।५३।।

(गोवि० २२/५०)

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम्।
जुष्टं तत्तरलानन्दि–कुमुदामोदवायुना।।५४।।

(भा० १०/२६/४५)

कह्लारोत्पल–सौरभ–प्रणयिना वातेन सम्मार्जितं कालिन्द्यैव समन्ततः स्वलहरी–हस्तेन–संस्कारितम्।
लिप्तं पूर्णसुधाकरस्य किरणैः कर्पूरधूलिप्रभं प्रेयः प्राप्य ससौरभं तत इतो वभ्राम दामोदरः।।५५।।

(आ० १७/२०७)

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीड़ामनुव्रतैः।
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः।।५६।।

(भा० १०/३३/२)

(५२) तदनन्तर श्रीकृष्ण यमुनापुलिन के दर्शन कर उस मनोरम स्थान पर विहार करने की इच्छा से यमुनाजी के पार जाने की इच्छा से समस्त प्रियावर्ग के साथ उठकर खड़े हो गये।

(५३) तदनन्तर श्रीकृष्ण और उसकी समस्त प्रियवर्ग के जल के समीप आ जाने पर श्रीयमुनाजी ने अपने तरंग रूपी हाथों द्वारा उनके चरणों में कमल समर्पित किये और उन्हीं तरंग रूपी हाथों और कमलों द्वारा ही उनके चरण स्पर्श करके बारम्बार उनकी वन्दना की।

(५४) अब श्रीनन्दन विकसित कमलों की सुगन्ध को लेकर बहने वाली वायु से सुसेवित सुशीतल वालुकामय यमुना पुलिन में गोप बालाओं को लेकर रमण करने लगे।

(५५) कालिन्दी द्वारा नील और लाल कमलों के सौरभ से युक्त वायु द्वारा सम्मार्जित, चारों ओर तरंगों रूपी हाथों द्वारा संस्कारित पूर्णचन्द्र की किरणों द्वारा लेपित कर्पूर की धूलि के समान सुगन्धित एवं उज्ज्वल अत्यन्त मनोहर उस यमुना पुलिन को प्राप्त करके दामोदर अपनी प्रियाओं के साथ इधर–उधर भ्रमण करने लगे।

(५६) इस प्रकार श्रीगोविन्द ने अपने साथ साथ चलने वाली प्रेम से विह्वला एक दूसरे से बद्ध बाहु, स्त्री रत्नों से परिवेष्टित होकर रासक्रीड़ा आरम्भ की। नृत्यगीत और रसों के समूह का नाम ही रास है।

बाहुप्रसार–परिरम्भ करालकोरु–नीवीस्तनालभन–नर्म नखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्बृजसुन्दरीणा–मुत्तम्भयन् रतिपतिं रभयाञ्चकार।।५७।।

(भा० १०/२६/४६)

वल्गाद्वल्मवतः समंसविलसन्मन्दारमालं नदत्काञ्ची–किंकिणि–कंकणादि–विगलत्संव्यानकं भ्राम्यति।
विष्वद्रीचि मरीचिवीचि–निचये जीमूतचक्राकृतौ सर्वाः पुप्लुविरे स्थिरा नवतड़िन्माला इवैणीदृशः।।५८।।

(आ० २०/३३)

एकस्या दक्षिणांसे वरभुजवलयं वाममन्यं परस्यावामांसे न्यस्य गाढं युगपदभिमुखे द्वे समाश्लिष्य कान्ते।
ताभ्यां दत्तप्रवेशस्त्वरितमनुगतः पृष्ठमेकां विमुञ्चन् अन्यां गृह्णन् पुरस्तात् स पुनरूपसरत्येवमेव क्रमेण।।५९।।

(आ० २०/२५)

तस्यैवं भ्रमतो जवेन सुदृशां द्वे द्वे समालिंगतो मध्यं मध्यमनुप्रविश्य वपुषा तेनैव सा मण्डली।
किं ज्योत्स्नातिमिरैः किमु स्थिरतडिन्मेघैरथो चम्पकश्यामाब्जैरुत काञ्चनेन्द्रमणिभिः क्लृप्तामजैषीत् स्रजम्।।६०।।

(आ० २०/३१)

रासलीला :–

(५७) श्रीकृष्ण बाहु प्रसारण, आलिंगन, कर ग्रहण, अलकावलि, उरु, कटिदेश की ग्रन्थि, वक्षस्थल इत्यादि का स्पर्श करते हुए परिहास, नखाग्रपात, विविधक्रीड़ा, कटाक्ष निक्षेप एवं हास्य द्वारा ब्रजसुन्दरियों के हृदय में काम उद्दीपन करते हुए उनको रमण के लिए प्रेरित करने लगे।

(५८) चारों ओर कान्ति की तरंगों को विस्तारित करते हुए मेघपुंज की आकृति के समान श्रीश्यामसुन्दर जब भ्रमण करने लगे तब उनके कानों के कुण्डल हिलने लगे, कन्धे पर मन्दार कुसुमों की माला शोभा पाने लगी, करधनी किंकिणी, कंकण आदि शब्द करने लगे और पीताम्बर कन्धों के ऊपर से नीचे गिरने लगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण के साथ नवीन विद्युत माला की भांति मृगलोचनागण भी उनके साथ–साथ भ्रमण करने लगी।

(५९) श्रीश्यामसुन्दर किसी ब्रजांगना के दांये कन्धे पर अपनी श्रेष्ठ वाम बाहु स्थापित करके और किसी गोपी के बांये कन्धे पर अपनी दांयी भुजा रखकर एक साथ दोनों के सामने दोनों प्रियतमाओं का प्रगाढ़ आलिंगन कर रहे थे। फिर उन दोनों के बीच में से शीघ्रतापूर्वक निकलकर और एक गोपी के पीछे की ओर जाकर फिर उसको छोड़कर आगे जाकर अन्य दूसरी गोपी को ग्रहण करते हुए इसी प्रकार क्रमशः अग्रसर होने लगे।

(६०) इसी प्रकार रासविहारी श्रीकृष्ण दो दो सुलोचनाओं के बीच–बीच में प्रवेश करते हुए और उनका आलिंगन करते हुए जब वेग के साथ भ्रमण करने लगे, तब उनके श्याम अंग से आलिंगित गोपी मण्डली की इस प्रकार शोभा हो रही थी मानों अंधकार पुंज से घिरी हुई ज्योत्सना अथवा मेघपुंज से आच्छन्न स्थिर विद्युत अथवा चम्पक और नील कमलों से गुथी हुई माला या स्वर्ण और इन्द्रनील मणि निर्मित हार, इन सबकी शोभा के भी मानों परास्त ही कर रही है।

ह्रस्वावर्त्ते सरति सरसं राधिकामन्तरस्थां दीर्धावर्त्ते निकटमयते मण्डलीस्थ–प्रियाणाम्।
नुन्नो वेगान्मरकतमयः सूत्रबन्ध–प्रमुक्तो लीलाचक्रीपुटइव हरिर्विभ्रमी वंभ्रमीति।।६१।।

(आ० २०/३४)

वलयानां नुपूराणां किंकिणीनाञ्च योषिताम्।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले।।६२।।

(भा० १०/३३/५)

पादन्यासैर्भुजविधूतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।
स्विद्यन्मुख्यः कवररशनाग्रन्ययः कृष्णवध्वो गामन्त्यस्तं तड़ित इव ता मेघचक्रे विरेजुः।।६३।।

(भा० १०/३३/७)

मूर्ताः संगीतशास्त्रोपनिषद इव ताश्चित्रमेवाविरासन्नासन्ने रासलीलारहसि सहसित–श्रीमुखाम्भोजकोषाः।
वैणिक्यो वैणविक्यः सरसमुदभवन्मौरजिक्या समेता गायन्यस्तालधारिण्यपि करकलितोपांगमौपांगिकी च।।६४।।

(आ० २०/५५)

---

(६१) इसके पश्चात् बाहर और भीतर मानों दो नीलमणि के मण्डल की भांति निर्माण करके चक्रभ्रमी नृत्य आरम्भ हुआ। छोटे आवृत्त में श्रीकृष्ण कनकमणि कर्णिका के समान मध्यस्थिता श्रीराधारानी के निकट आकर गोलाकार रूप से उनकी परिक्रमा करते हुए घूमते थे और बड़े आवृत्त में मण्डली बांधकर खड़ी हुई अन्य प्रियावर्ग के समीप आकर उनके चारों ओर भ्रमण करने लगे। वेग से घूमते हुए सूत्र से न बंधे होने पर भी लीला चक्रीपुट की भांति विलासी श्रीहरि इस प्रकार एक साथ दो नीलमणि मण्डल रचना करके रास करने लगे।

(६२) रासमण्डल में श्रीकृष्ण से युक्त गोपियों के वलय नूपुर कांची, उच्च स्वर से बजने लगी।

(६३) केवल श्रीकृष्ण की उनके साथ मिलकर शोभा हुई हो ऐसा नहीं बल्कि चरणविन्यास, हस्त संचालन, भ्रकुटी विलास युक्त मृदुहास्य, अति क्षीण (मानों भग्न हो जायेगी) कटि देश चंचल कंचुकी, कपोलों पर कुण्डल, स्वेद से भीगे हुए मुखारविन्द, शिथिलित वेणी, कांची तथा श्रीकृष्ण का गुणगान करती हुई ब्रजांगनाओं की शोभा ठीक उसी प्रकार हुई मानों मेघमण्डल से घिरी हुई सौदामिनी हो।

(६४) अति निगूढ़ रासलीला को प्राप्त करके मानों वे मूर्तिमती संगीत शास्त्र और उपनिषद की भांति आश्चर्य से आर्विभूत हुई हों उस समय उनके मुखारविन्द पर हास्य विराजमान था। वीणा धारिणी, वेणु वादिनी, मुरजवादिनी इन सबके साथ गाने वाली, ताल देने वाली और हाथ में उपांग (वाद्ययन्त्र) धारण किये हुए अन्यान्य गोपी आकर उपस्थित हुई।

वाग् गेय–कारकगुणै रुपलक्षितानां संगीततन्त्र–रहसामपि पारगाणाम्।
शुद्वांगशुद्धतर–कर्कशमार्गलास्य–नेत्री व्यरोचत ततिर्वर–नर्त्तकीनाम्।।६५।।
(आ० २०/५६)

गीतं द्वेधा मार्गदेशीयभेदात् त्रिंशच्चत्वारश्च मार्गप्रभेदाः।
तेषां तालाः पञ्च चच्चत्पुटाद्या–श्चत्वारिंशद्द्वौ च देश्यां प्रसिद्धाः।।६६।।
(आ० २०/५७)

थैया तथतथ थैया तथतथ थैया तथत्ति तथ थैया।
थैय तथतथ थैया थग थग थग थगत्ति थदिगणथैः।।
(आ० २०/५८)

ततश्चैनं शब्दं गृहीत्वा–
स्वरं लघुगुरुप्लुतद्रुतविराम–मात्राविधौ सशब्दकमशब्दकं कलितकांसयतालोत्तमम्।
कराब्जमपसव्यसव्यत् उपर्य्यधो निक्षिपन्त्यभाष्टममुपारटत् किमपि तालधारिण्यसौ।।६७।।
(आ० २०/५६)

शब्दास्ते मौरजिक्या मुरजवरमुखे पाणिनोद्घाट्टमाना उपांगिक्याप्युपांगं स्फुरदधरदलं निन्यिरे कम्प्रकण्ठम्।
गायन्यो रागराजीः समयसमुचिता हुँक्रियाभिः कलाभिर्यन्त्रे झंकारयन्त्योऽखलखमिलने दत्तकर्णा विरेजुः।।६८।।
(आ० २०/६०)

---

(६५) इनके साथ ही साथ कुछ ऐसी गोपियां जो वाक्यों को गान के रूप में परिवर्तित कर सकती है और गुणों को प्रगट करती हुई संगीत शास्त्र के रहस्य में (विशारद) पारगामिनी, नृत्य के सभी तालों को जानने वाली, आकर सम्मिलित हो गयी।

(६६) मार्ग और देशीय भेद से गीत दो प्रकार के हैं; मार्ग के चौंतीस प्रकार के भेद जो कि चंचल पुट, चाचपुट आदि पांच प्रकार की ताल एवं देशीय गीत के ४२ प्रकार के भेद प्रसिद्ध हैं।

(६७) तदनन्तर थैया तथ तथ थैया तथ तथ थैया तथन्ति तथ थैया। थैय तथ तथ थैया थग थग थग थगन्ति थदिगण थैः। इन शब्दों का उच्चारण करती हुई ताल धारिणी कांसे की करताल लेकर दांये और बांये ऊपर और नीचे कर कमल को घुमाती अनिर्वचनीय भाव से लघु, गुरु, प्लुत, द्रुत, और विराम' मात्रा की विधि से सशब्द और निःशब्द, षट्ज आदि सप्त स्वरों की भांति इन सब तालों को एक स्वर में मिलाकर फिर इनको अष्टम स्वर में आलाप करने लगी।

(६८) श्रेष्ठ मृदंग पर हाथों से जिन शब्दों को प्रकट करते हुए कोई गोपी बजा रही थी वही शब्द उपांग वादिनी कम्पित कण्ठ से अपने अधरों पर शोभित उपांग में प्रकट करने लगी और गायिकागण हुँक्रिया कला द्वारा समयोचित रागों को यन्त्रों की झंकार के साथ शब्दों को मिलाते हुए दन्त कर्णा (ध्यान से सुनते हुए) होकर गाने लगा।

थै थै थै थै तिगड़ तिगथैथेति पाठानुकृत्या विन्यस्यन्त्यो भुवि पदतलं दोर्लतान्मतंरिक्षे।
वामावर्त्ते सकृदथ सकृद्दक्षिणावर्त्त एवं नृत्यन्त्यस्ताः सरसमधुरं मण्डलस्था विरेजुः।।६६।।
(आ० २०/६७)

वक्त्रे गानं तदभिनयनं पाणिपद्मे पदाब्जे तालो ग्रीवाभुवि विधुवनं दोलनं नेत्रयुग्मे।
वामावामस्खलनवलना तारकायां दृगन्तः कृष्णे प्रेमा मनसि युगपत्तूल्यमासामथासीत्।।७०।।
(आ० २०/६८)

जानूत्क्षेप–भुजावधूनन–पदन्यासैः सगर्भभ्रमैःरत्युल्लासवशाद् द्रुतेऽपि नटने सा सुभ्रवां मण्डली।
अन्तर्वत्ति मुकुन्दकान्तिलहरी–सूत्रेष्विवागुस्फिता नो भुग्ना न वक्रतामुपगता सव्यापसव्यक्रमैः।।७१।।
(आ० २०/६६)

पादन्यासैः सशब्दैर्मृदुमुखर–मणीनूपुरध्वानरम्यै धी धी धी धीतधीधीत्यनुपम–मधुरैस्तालपाठैश्च मिश्रैः।
सव्यासव्यांगदोलैः सवलिकुचपटं मध्यभंगापशंकं धुन्वाना वाहुवल्ली ननृतुरतिमुदावत्तयोरेव तुल्यम्।।७२।।
(आ० २०/७०)

---

(६६) इसके पश्चात् "थै थै थै तिगड़ तिगथै था" इस ताल का अनुकरण करते हुए पृथ्वी पर चरण और शून्य आकाश में बाहुलता को नचाते हुए मण्डलस्थिता वह नृत्य परायणा गोपीगण एक बार बांये और एक बार दांये नृत्य करते करते शोभा पाने लगीं।

(७०) मुख से गान, करकमल से उसका अभिनय, चरण कमलों से ताल, ग्रीवा से वाद्य अथवा गान के अर्थों का आस्वादन सूचक कम्पन, आस्वादन के तारतम्य को प्रकट करने के लिए नेत्र युगलों का दोलन, नेत्र की तारिकाओं का कभी बांये, कभी दांये घुमाकर गति को लाघव और अनुकूल करने का संकेत देने का भाव प्रदर्शन श्रीकृष्ण के प्रति कुटिल कटाक्ष और मन में प्रेम ये सब विषय उनमें एक साथ प्रगट हो रहे थे।

(७१) वह सुन्दरी रमणी मण्डली अतिशय उल्लास के कारण बीच–बीच में घूमकर दोनों घुटनों को ऊपर ले जाती हुई और दोनों भुजाओं को कंपाती हुई चरणों को द्रुतगति से चलाती हुई नृत्य करने लगीं। मध्य में स्थित मुकुन्द की कान्ति तरंग माला रुपी सूत्र से मानों वे बंधी हुई हों जिससे कहीं भी हो दांये या बांये घूमने में उनका क्रम न तो टूटता था और न वक्रता को प्राप्त होता था।

(७२) धी धी धी धी त धी धी इस अनुपम मधुर ताल का उच्चारण करते हुए इसके साथ मृदु मृदु मणिमय नूपुरों की ध्वनि करते हुए रमणीय चरण विन्यास एवं बांये तथा दांये अंगों को नचाते हुए अतिशय कृश मध्यदेश के भंग हो जाने की शंका न करते हुए वह सुलोचना गण अपनी कंचुकी और बाहुओं को कम्पित करते हुए आनन्द पूर्वक नृत्य करने लगीं।

वैणिक्यो वैणविक्यो मृदु मृदु ननृतुः पादविन्यासमात्रैर्गायन्यस्तालधारिण्यपि किमपि तथा गीततालानुकृत्या।
शब्दानुद्घाटयन्त्यो विदधुरथ तथा मौरजिक्योऽपि नृत्यं देहं किं न्वेकसूत्र–ग्रथितमिव दधुस्ताः समं नर्त्तकीभिः।।७३।।
(आ० २०/७१)

वामावर्त्तेन कृष्णो भ्रमति यदि तदा दक्षिणावर्त्तरीत्या तन्वंग्यो मण्डलस्था विदधति नटनं सम्मुखीनाः क्रमेण।
इत्त्थं ताः सोऽपि शश्वत्सरससकुतुकं प्रातिलोम्यानुलोम्य–स्वीकारेणैव नैव भ्रमिनटनकलाकेलि–पारंस्मगाते।।७४।।
(आ० २०/७२)

दीपालोके प्रसरति यथा वामभागे पुरस्ताद्–ध्वान्तस्तोमः सरति सहसा दक्षिणेनैव पश्चात्।
इत्यन्योन्यं प्रकटमुभयोर्व्यत्यये व्यत्ययः स्यात् तासां तस्यापि च तनुमहः पूरयोस्तद्वदासीत्।।७५।।
(आ० २०/७३)

वाद्यादि मण्डलीविलासि–विलासिनीनां नृत्यानुगं च हरिनृत्यसहायमासीत्।
गानं तु भिन्नमभवत् सुदृशो जगुस्तं चन्द्रादिकं स तु जगौ ललितानि चासाम्।।७६।।
(आ० २०/७४)

---

(७३) जैसे जैसे नृत्य हो रहा था वैसे ही नृत्य करने वाली गोपियों के पीछे–पीछे वीणावादिनी और वेणुवादिनी रमणीगण भी अपने चरणों को मृदु मृदु चलाते हुए नृत्य करने लगीं। गान करने वाली और ताल देने वाली भी उनका अनुकरण करती हुई उसी प्रकार अनिर्वचनीय भाव से नृत्य करने लगी। मृदंग बजाने वाली भी उसी प्रकार मृदंग के शब्दों को प्रगट करते करते साथ–साथ नृत्य करने लगी जिसे देखकर प्रतीत होता था कि नृत्य कारिणी गोपियों के साथ ये सब एक ही सूत्र में गुंथी हुई देह को धारण किये हुए हैं।

(७४) श्रीकृष्ण यदि मण्डल के बांये ओर घूमते हैं तो उनके सामने मण्डल में स्थित कृशांगी सुन्दरीगण दांयी ओर घूमकर नृत्य करने लगती हैं एवं यदि श्रीकृष्ण दांयी ओर घूमने लगते है तो वे क्रमशः बांयी ओर घूमकर नृत्य करने लगते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण और रमणीमण्डली दीर्घ काल तक प्रेमपूर्वक और कौतुकवश प्रतिलोम एवं अनुलोम भाव को स्वीकार करके भ्रमी नृत्य कला केलि की सीमा का पार नहीं पा सकीं।

(७५) दीप के आलोक के सामने होने पर उसकी छाया रूपी अन्धकार राशि सहसा जैसे दायी ओर पीछे चली जाती है दोनों के परस्पर एक दूसरे के व्यतिक्रम गति से नृत्य करने पर ब्रजांगना और श्रीकृष्ण की अंग कान्ति का प्रवाह उसी प्रकार विपरीत गति को प्राप्त हुआ।

(७६) मण्डल में स्थित बाद्य आदि श्रीहरि के सहायक होते हुए नृत्य करने वाली गोपियों के अनुगत हुए किन्तु उनके गान परस्पर पृथक थे क्योंकि सुनयना गोपियां श्रीकृष्ण विषयक गान गा रहीं थीं। जबकि श्रीकृष्ण उसी गान के कुछ अक्षरों को परिवर्तित करके और कहीं शब्दों का श्लेषार्थ होने से चन्द्र आदि को उद्देश्य करके और कहीं गोपियों के विविध भावों का वर्णन करते हुए गान कर रहे थे।

तासां तालविमोक्ष–निर्भरहतिक्षोभेण निःसारिणा पादाम्भोरुह–सीधुनैव पुलिनं तत् सिक्तमासीदिव।
यत्तादृश्यतिमात्रचित्रनटनावेगेऽपि नैकं रजोधूतं किं नु रजांसि तान्यपि तदानन्देन जाड्यं ययुः।।७७।।
(आ० २०/७५)

प्रत्येकं सुदृशां कपोल–फलके बिम्बोदगतं नृत्यतः श्रीकृष्णस्य वपुः सनृत्यमपि तद्ब्रूते स्मतं किञ्चन्।
तासामाननपद्मधूननविधि व्याधूतमासां यथा ना ना ना सुरसा तथात्र भवतो नृत्यस्य लक्ष्मीरिति।।७८।।
(आ० २०/७६)

नृत्यन्त्यः कतिचित् सरोरुहदशः प्रारब्धनृत्यान्तरे कृष्णालिंगन–मंगलोत्सव–नवप्रोद्भूतरोमोदगमाः।
जातोत्कण्ठमकुण्ठकण्ठकुहरं प्रोन्नीय रागान्तरं गायन्ति स्म निशम्य यत् प्रमुमुहुः संगीतदेव्योऽपि च।।७९।।
(आ० २०/७७)

असंकीर्णान् जातिश्रुतिगमकवर्गेण सरसान् सगान्धारग्रामान् विशकलित भेदान् स्वरगणान्।
समुन्निये काचित् सममघभिदा तेन च मुहुः पुपूजे सा साध्वित्यनुपममुदामोदितहृदा।।८०।।
(आ० २०/७८)

---

(७७) उनके ताल बजाने के समय जोर से आघात करने के कारण चरण कमलों से निकले हुए प्रस्वेद रूपी मधु द्वारा मानों वह पुलिन सिक्त हो गया। लेकिन यह अत्यन्त आश्चर्य है कि इतना नृत्य होने पर भी एक रजकण भी अपने स्थान से नहीं हिला उससे प्रतीत होता है कि रजकणाएं भी क्या उससमय रास के आनन्द में जड़ता को प्राप्त हो गयीं थीं।

(७८) सुलोचना गणों के प्रत्येक के कपोल में प्रति विम्बित होने वाले नृत्य करते हुए श्रीकृष्ण उनके मुखकमल में अत्यन्त कम्पित होते हुए मानों सामने जो साक्षात् श्रीकृष्ण नृत्य कर रहे है उनसे कुछ इस प्रकार कह रहे हों कि जिस प्रकार इनके नृत्य की शोभा सम्यक् आनन्द दायिनी है उतनी आप के नृत्य की नहीं नहीं नहीं।

(७९) कतिपय कमल लोचनाएं नृत्य करते–करते नृत्य के बीच ही श्रीकृष्ण के आलिंगन रुपी मंगल उत्सव अपने खुले कण्ठ से किसी अन्य राग को प्रगट करती हुई और उसे ऊँचा उठाते हुए गान करने लगीं जिसे सुनकर संगीत देवी भी मोह को प्राप्त हो गयी।

(८०) कोई ब्रजांगना जाति, श्रुति, गमक, वर्गों के साथ अमिश्रित, गान्धार ग्राम के साथ वर्तमान सम्पूर्ण भेद विशिष्ट सरस, स्वर समूह एक साथ उन्नत स्वर से गान करने लगी जिसे सुनकर वे अघनाशन श्रीकृष्ण अनुपम आनन्द से भरकर प्रफुल्लित हृदय से साधु साधु कहते हुए पुनः पुनः प्रशंसा करने लगे।

सगरिमपधनिषु सकला, लंकृतमणिभिः सुमञ्जुलश्रुतिषु।
स्वरसमुदयेषु तासां, धामसु च प्रीतिमाययौ कृष्णाः।।८१।।

(आ० २०/७६)

ता धिक् ता धिगिति निनादयन् मृदंगस्तच्छ्रुत्वा सुरपुर–नर्त्तकीसमाजः।
आश्वासं समलभत स्वकीयनिन्दा वादोऽपि श्रवणरसायनः स तासाम्।।८२।।

वैदग्ध्यैवास्य देव्यां स्वयमिव रचितां सर्वखेदापनुत्त्यै सौहित्योपायसिद्धौषधिमिव सरसां प्रेमपीयूषवर्षैः।
दोर्भ्यामालिङ्गय राधां सतड़िदिव घनो हेमबल्ल्यैव रुद्धस्तापिञ्छः पिञ्छमौलिः सह नटनकलाकौतुकेनाननर्त्त।।८३।।

(आ० २०/८२)

भग्नावस्थित–मन्मथेषु कलिकाकृष्टेर्मणिश्चुम्बको राधा तेन समं ननर्त्त यदिदं तद्वीक्ष्य ताः सुभ्रुवः।
तस्या लास्यकलानुकूल्यकलने जातस्पृहा अप्यमूर्गातुं वादयितुं तथानु नटितुं नैश्वर्व्यमापेदिरे।।८४।।

(आ० २०/८३)

---

(८१) श्रीकृष्णउनके स,ग,रि,म,प,ध,नि अर्थात् षड्ज, गान्धार, ऋषभ, मध्यम, पंचम, धैवत, मिषाद ये सप्त प्रकार के सकलालंकृत मणिसह, सुमंजुल, श्रुति (अर्थात् सकल मधुर ध्वनियों से युक्त अथवा कौशल युक्त) (काव्य के अलंकार विशेष उनके सहित अति रमणीय ३२ प्रकार की। श्रुति विशिष्ट स्वरों से युक्त, ग,रि,म,प,नि अर्थात् गौरव रक्षक लावण्य माधुर्य आदि से सकलांकृत मणि द्वारा सुमञ्जुल श्रुति इस प्रकार कानों को सुन्दर लाने वाले स्वरालापों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये।

(८२) ताधिक, ताधिक अर्थात् उनके लिये धिक्कार है, इस प्रकार कहकर मृदंग निनाद करने लगा, जिसे सुनकर स्वर्ग की नर्तकियाँ भी यह अनुभव करने लगीं कि यह हमारी निन्दा कर रहा है; लेकिन फिर भी वह ध्वनि उनक कानों में रसायन के समान आनन्दप्रद प्रतीत हुई।

(८३) तदनन्तर श्रीकृष्ण के समस्त खेद के दूर करने के लिए मानो विदग्धता रूपी देवी ने स्वयं जिसकी रचना की हो, श्रीकृष्ण को परम सन्तोष प्रदान करने वाली सिद्धौषधि स्वरूपा, श्रीराधिका का अपनी दोनों भुजाओं द्वारा आलिंगन करते हुए मयूरपिच्छधारी श्रीश्यामसुन्दर विद्युतयुक्त नवीन मेघ की भांति या हेमलता से सुशोभित तमाल के समान अति कौतुक के साथ नृत्य करने लगे।

(८४) कन्दर्प के मग्न हुए बाण फलिका (अर्थात् बाण के अग्रवर्ती भाग में लगा हुआ लोहा) को आकर्षित करने के लिए चुम्बक मणि स्वरूपा श्रीराधा, श्रीकृष्ण के साथ जब नृत्य करने लगीं उसे देखकर समस्त ब्रजसुन्दरीगण उनकी नृत्यकला में आनुकूल्य विधान करने की इच्छा करते हुए भी वे गान और वाद्य तथा नृत्य करने में समर्थ नहीं हो सकी।

राधाकृष्णौ स्वरौधं गरिमनिविगमं धैवतांसग्रहाभ्यामारोहेणावरोहेण च गमकमयं रम्यमुल्लासयन्तौ।
तेनातेनेति नानारसमथ नटनं गानमप्यूढरागौ तेनातेनेति लोकं सरभसकुतुकोल्लासमन्योन्यजिष्णु।।८५।।
(आ० २० / ८६)

तालावसान–समये करपद्मकोष न्यासं हरिः प्रियतमोरसि संविधत्ते।
वामेन पाणिसरसीरुह–कोरकेण सापि प्रियस्य विनिरस्यति बाहुदण्डम्।।८६।।
(आ० २० / ८७)

पूर्वं गानाद्यकृत यदहो हन्त! तस्यातिरिक्तं रागं वंश्या स्वयमथ जगौ दुर्गमं गीतविद्भिः।
ग्रामं गान्धारकमुपनयनेष तस्यानुगाने गायन्यस्ताः पुनरनु ययुर्मौरजिकयादियुक्ताः।।८७।।
(आ० २० / ६५)

तन्त्रीकण्ठादि–सर्वस्वरमिलनविधौ चारुसम्पन्नमात्रे पंक्तीभूय स्थितानां कनकदलरुचां गायनीनां पुरस्तात्।
स्थित्वा तालावसाने झटिति झणझणत्कारि–संगीतविद्योद्‌गीर्णं धामेव काचिन्नटनरसकलाचार्यवर्याविरासीत्।।८८।।
(आ० २० / ६६)

---

(८५) श्रीराधाकृण परस्पर–परस्पर से जयशील होते हुए ग रि म नि वि ग म अर्थात् गान्धार ऋषभ, मध्यम और निषाद, अपगम विशिष्ठ धैवत के अंश (अर्थात् सब स्वर जहाँ अनुगामी होकर चलें व्यासादि ऋषिगणों ने प्रयोग द्वारा जिसको स्वयं प्राप्त किया है उस व्यंजक स्वर को अंश कहते हैं) और ग्रह (अर्थात् गीन आदि का जो आग्रह समर्पित किया जाता है उसका नाम ग्रह है) द्वारा आरोह और अवरोह क्रम से गमकमय रमणीय स्वर समूह प्रगट करते हुए नाना रसों के साथ "तेना तेना" इस प्रकार मंगल चूचक आलाप लेते हुए नृत्य करने लगे एवं विविध राग प्रगट करते हुए प्रेमपूर्वक कौतुक तथा उल्लास के साथ जगत के नृत्यगान से अगोचर नृत्य गान का विस्तार करने लगे।

(८६) ताल के समाप्त हो जाने पर श्रीहरि ने प्रियतमा के वक्षस्थल पर अपने कर कमल को विराजित किया। लेकिन श्रीराधारानी ने अपने करकमल कलिकाओं द्वारा उनके बाहुदण्ड को दूर कर दिया।

(८७) अहो श्रीकृष्ण ने पहले जो गान गाया था फिर उन्होंने वंशी द्वारा गान्धार ग्राम को ऊँचा उठाकर गीत वेत्ताओं के लिए अत्यन्त दुर्गम, 'पहले गाये हुए गान से अतिरिक्त राग द्वारा पुनः गान करने लगे और मृदंग वादिनी आदि सखीगन के साथ गायिका सखी भी उनके साथ–साथ वही गान गाने लगी।

(८८) सुन्दर सम्पन्न मात्रा विशिष्ट तन्त्री (वीणा) और कण्ठ आदि के सब स्वरों को मिलाकर, स्वर्ण कमल के दलों की शोभा के समान गोलाकार, श्रेणी रूप से अवस्थिता गायिका गणों के समाने नटन, रसकला में आचार्य श्रेष्ठा श्रीराधिका की कोई एक सखी ताल समाप्ति के समय शीघ्र ही झन झंकार करती हुई मानों संगीत विद्या से निकली हुई कोई मूर्ति उस मण्डल के मध्य में आकर कर्णिका के समान प्रगट हो गयी।

आकुञ्चज्जानुकृत्वा पृथुनि कटि तटे वाममर्द्धेन्दुमन्यद्व्याकोषं पद्मकोशं मृदुललितमथोन्नीत्कुञ्चत्कफोणि।
क्षीणक्षीणावलग्नं ह्रीसतवलि समुच्छूनवक्षोजभारं तस्थौ सव्यापसव्य स्खलदलस–लसत्तारकैदृष्टिपातैः।।८६।।
(आ० २०/६७)

अंग–प्रस्वेदमेद्यज्जतुभिरिव नवैरंगमगं स्पृशाद्भिर्दुःसाधां नृत्यकृद्भिर्विषमगतिभिदा हेलयोल्लासयन्ती।
लीलोत्सर्पापसर्पक्रमविधूत भुजासारणाकुञ्चनाभ्या हस्तैर्हंसास्यमुख्यैरभिनयकुशला मन्द मन्दं ननर्त्त।।६०।।
(आ० २०/६८)

क्षीणक्षीणोदरमतिशयस्फारवक्षोजभारं पार्ष्णिद्वन्द्वोपरि परिलुठद्वेणि शाम्यद्वलीकम्।
पृष्ठे मुग्ना व्यजयत करौ धुन्वती तालमोक्षे स्मारं सज्जीकृतमिव धनुश्चाम्पकं व्युत्क्रमेण।।६१।।
(आ० २०/६६)

सा जानुभ्यां क्षितितलमवष्टभ्य विस्फार्य बाहूवक्त्रामोद–भ्रमदलिकुलं लोलहारावतंसम्।
राजत्तेजः परिधि झणितालंकृति व्याजुघूर्णे वेगक्षिप्ता कुसुमधनुषः काञ्चनी चक्रिकेव।।६२।।
(आ० २०/१००)

---

(८६) तदनन्तर वह सखी अपने विस्तृत नितम्ब देश पर बायां जानु अर्द्ध चन्द्रकार रूप से और दांया जानु खिले हुए कमल कोष के समान कुछ टेढ़ा करके कोमलता से एवं सुचारु भाव से अपनी कोहनी उठाकर खड़ी हो गयी उस समय उसका कटि देश अत्यन्त क्षीणता को प्राप्त हो गया। उदर के ऊपर त्रिवल्ली अदृश्य हो गयी। स्तन भार विशाल हो उठा और वह इधर उधर दृष्टिपात करने लगी जिससे उसके अलसाए नेत्रों के तारे बांये और दांये घूमने लगे।

(६०) अंगों से अत्यधिक निकलते हुए स्वेद से स्निग्ध होते हुए वह नवीन लाख की मूर्ति के समान अपने समस्त अंगों का स्पर्श करती हुई, कुशल नर्तकों के लिए भी दुःसाध्य, विषम, गति के भेदों को सहज ही प्रकाश करते–करते अभिनय में कुशल वह देवी लीलाविलास के साथ उत्सर्पन और ऊपसर्पन क्रम से अपनी भुजाओं को कपाते हुए कभी मोड़ते हुए कभी हंस के मुख जैसा, कभी कर्त्तरी मुख, कभी कमल कोष आदि हस्तकों का (हस्त भंगी का) मन्दमन्द प्रदर्शन करते हुए नृत्य करने लगी।

(६१) उस समय उसका उदर अत्यन्त क्षीण वक्षस्थल अत्यन्त विशाल प्रतीत होने लगा। चरणों की एड़ियों पर वेणी लोटने लगी। पेट की त्रिवल्ली विलुप्त हो गयी ताल फेंकते समय जब वह उल्टी पीछे की ओर टेढ़ी होकर अपने दोनों हाथों को कंपा रही थी तव वह मानों कन्दर्प के सजे हुए चम्पक धनुष को ही परास्त कर रही हो।

(६२) वह सखी अपने जानु युगल से भूमि का अवलम्बन करके भुजाओं को फैलाकर मानों कन्दर्प की जोर से फैंकी हुई कांचनमयी चकई के समान घूमने लगी। घूमते समय उसके मुख की सुगन्ध से भ्रमरगण मुख के चारों ओर घूमने लगे। वक्षस्थल हार और कर्ण कुण्डल हिलने लगे उसके अंगों की गौर कान्ति हारादि की श्वेतमा, बिम्वाधरों की अरुणिमा भ्रमर आदि की श्यामकन्त सब मिलकर विविध रंगों का एक मण्डल सा बन गया और उसके अंगों के अलंकार सब झन झन कर शब्द करने लगे।

पादांगुल्यावलम्या क्षितितलमलघुस्फारवक्षोजजानुः पार्ष्णिद्वन्दोपविष्टा हसितवलि–नमन्नीवि–विस्तीर्णवक्षाः।
अंगुष्ठो बद्धमुष्ट्योः कुचभुवि करयोर्न्यस्य तालानुकृत्याऽलंकारान् कूजयन्तीं गदति तथ तथै थै तथै थै तिथेति।।६३।।
(आ० २०/१०१)

युक्तानां कण्ठतन्त्रीचयशुषिरघनानद्धवाद्यैकतायां पश्चात् सख्यं सराजद्भुजलतमदती चारुताम्बूलवीटीम्।
भ्रश्यन्मञ्जीरबन्धे प्रणयि–परिजनोपान्तपादा समन्ता–दञ्चल्या वीज्यमाना स्वसितचलकुचा सा विशश्राम रामा।।६४।।
(आ० २०/१०२)

काचित् – तिर्य्यक्कृत्योन्नमितनमित–स्फारवक्षोरुहस्फिग् झंकुर्वद्भिः कनकवलयैर्धुन्वती पाणिपद्मे।
तत्ता तत्थै तिकिड़ितिकिथै–तालमुत्थापयन्ती पर्य्यायेणोत् क्षिपति सुदती जानुनी दोर्लते च।।६५।।
(आ० २०/१०)

उर्ध्वोवभ्रमिभिरुपर्य्युपर्य्युदीर्णे–गौरिम्णां परिधिभिरुल्ललास गौरीगायन्यादिक–नलिनीवनादिवोच्चैर्वात्याभिः किमपि धूता परागराजी।।६६।। (आ० २०/१०६)

---

(६३) इसके पश्चात् उसने अपने चरणों की उंगलियों द्वारा धरती का अवलम्बन करके धीरे–२ अपने वक्षस्थल और जानुयुगल को कुछ चौड़ाती हुई दोनों एड़ियों के ऊपर बैठ गयी उस समय उसके उदर की त्रिवल्ली लुप्त हो गयी। नीवी शिथिल होकर नीची हो गयी और वक्षस्थल विस्तीर्ण हो गया। इस प्रकार वह दोनों हाथों की मुट्ठी बांधकर दोनों अंगूठे वक्षस्थल के आगे रखकर ताल के अनुरुप समस्त अलंकारों को झनझनाती हुई "तथ तथै तथै थै तथै थै तिथ" इस प्रकार आलाप करने लगी।

(६४) तदनन्तर कंठस्वर, वीणा, वंशी, कास, करताल, मृदंग आदि वाद्यों को एक ताल में मिलाकर बजाने और गाने वाली सखियों के पास आकर वह सखी अपनी किसी एक सखी के कन्धे पर भुजलता स्थापित करके सुन्दर ताम्बूल बीरी भक्षण करते–करते विश्राम करने लगी। तब उसकी प्रिय सेविकाओं ने उनके चरणों से खुले हुए नुपूर बांध दिये और उनके समीप खड़ी होकर उन्हें अपने वस्त्रांचल से हवा करने लगी। उस समय जोर से श्वांस चलने के कारण उसकी कंचुलिका कांप रही थी।

(६५) तत्पश्चात् कोई सुदन्ती रमणी विशाल वक्षस्थल द्वय आरोहण मार्ग से कुछ टेढ़ा और ऊँचे उठाते हुए अवरोहण मार्ग से टेढ़ा करके नीचे की ओर झुकाते हुए अपनी स्वर्ण चूड़ियों की झंकार करते हुए करकमलों को कम्पित करते हुए "तत्रा तथै तिकिड़ि तिकथै" इस प्रकार ताल उठाते हुए उसके पीछे अपने जानुयुगल और बाहुलता ऊपर उठाती हुई नृत्य करने लगी।

(६६) उपवेशन से आरम्भ करके अति धीरे–धीरे देह को ऊपर उठाते हुए अर्द्धावस्थित (आधे बैठे हुए) दशा पर्यन्त क्रम से ऊपर–ऊपर घूमते हुए और ऊपर की ओर अपनी गौरकान्ति के मण्डल से वह गोपी इस प्रकार शोभा पाने लगी मानों चारों ओर खड़ी गायिकाओं रूपी कमलिनीवन से प्रबल वायु द्वारा अनिवर्चनीय रूप से निकलते हुए पराग की पंक्ति हो।

तेजोवल्लीमिव तनुलतामन्तरीक्षे धुनाना सेयं नानागतिमतितरां दुष्करां व्याततान्।
नेदं शिक्षाप्रकटनमहो किन्तु लावण्यदेव्याः पादावस्यां भुवि न पततः केवलं हेलयैव।।९७।।
(आ० २०/१०७)

विद्युद्वल्ली यदि चिरतरस्थेयसी निष्पयोदा हस्तप्राप्या मृदुल–मरुता तादृशं धूयमाना।
तालोल्लास–ध्वननमुखरा जायते दैवयोगात् तर्हयेवासौ नटनविदुषी सोपमत्वं विभर्त्ति।।९८।।
(आ० २०/१०८)

नर्त्तित्वैवं लघुलघुपदं दोलयन्ती नितान्तं तालोपान्ते कुचभरधुरा दुर्वहं पूर्वकायम्।
वात्यावर्त्तैरिव कमलिनी हन्त ! हा हन्त ! मध्ये भुग्ना या भूदिति परिजनैः सव्यथ सा शंशके।।९९।।
(आ० २०/१०९)

सह–नर्त्तन–गानतत्परा श्रमजालस्य–सुरम्यविग्रहा।
श्लथमान–कुचांशुका हरेः पृथुमंसं भुजया समग्रहीत्।।१००।। (आ० २०/११२)

काचिद्रास–परिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः।
जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका।।१०१।। (भा० १०/३३/१०)

(९७) यह गोपी गौर कान्ति की लता के समान अपने तनुरुपी लता को अन्तरिक्ष में संचालित करते–करते अत्यन्त दुष्कर नाना प्रकार की गतियों का विस्तार करने लगी। अहो ! इसकी यह शिक्षा कोई सीखी हुई विद्या नहीं है किन्तु इस लावण्यदेवी के दोनों चरण स्वभाव से ही पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते थे।

(९८) यदि मेघ रहित विद्युतलता दीर्घकाल तक स्थिर रहती हुई मानो हस्त प्राप्य होकर मृदुल पवन द्वारा धीरे–धीरे हिल रही हो और दैव योग से वह "तत्ता थैया" इस प्रकार की तालों का उल्लास पूर्वक मुख से उच्चारण कर रही हो तब भले ही उस नृत्य पण्डिता ब्रजललना के साथ उसकी उपमा की जा सकती है।

(९९) इस प्रकार अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक चरण चलाते हुए नृत्य करते–करते ताल को विराम देते समय जब वह गोपी अपने विशाल वक्षस्थल को अपने सुकुमार शरीर के ऊपर झुलाती हुई मानों ऐसी प्रतीत हो रही थी जैसे घूर्णित वायु द्वारा उसके चारों ओर खड़ी सेविकायें मानों व्यथित चित होने लगी।

(१००) नृत्य सहित गान में तत्पर श्रम जनित आलस्य से सुरम्य मूर्ति शिथिल कंचुकी तथा उत्तरीय वसन वाली वह ब्रजसुन्दरी लड़खड़ाते चरणों से अपने निकट स्थित श्रीहरि के विशाल स्कन्ध देश को अपनी भुजा द्वारा धारण करके विश्राम करने लगी।

(१०१) रास के परिश्रम से क्लान्त होकर किसी गोपी की वलय और मल्लिका की माला शिथिल हो गयी और उसने अपनी बाहु लता को गदाधर श्रीकृष्ण के कन्धों पर धारण कर लिया।

तमालस्य स्कन्धे श्लथ–पतितशाखेव पवन–क्लमात् खिन्ना हैमी व्रततिरिव साशोभत भृशम्।
वपुष्मत्या रत्या लसदलसभावोपहतया परिष्वक्तो मूर्त्तः समघटत श्रृंगार इव सः।।१०२।।

(आ० २०/११३)

काचित् कूजितकाञ्ची–किंकिणिरणन्मञ्जीरमान्दोलता हारेण श्रवणोत्पलेन ललिता चीनाञ्चलेनापि च।
कृष्णां से कृतवामबाहुवलया लीलाविलासालसं गायन्ती नटति स्म तामनुनटन् कृष्णस्तदेवाजगौ।।१०३।।

(आ० २०/११४)

कृष्णस्य पीतवसनाञ्चलमम्बुजाक्षी वामेन पद्मललितेन करेण धृत्वा।
शश्वत् प्रसर्पमपसर्पमपीहमाना नृत्यन्त्यहो तमपि नर्त्तयति स्म काचित्।।१०४।।

(आ० २०/११५)

काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः।
उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानञ्च बहवदात्।।१०५।।

(भा० १०/३३/६)

---

(१०२) पवन के चलने से जैसे कोई स्वर्ण लता की शाखा शिथिल होकर तमालवृक्ष की किसी शाखा से लिपट जाय। जिस प्रकार उसकी शोभा होती है, रास परिश्रान्ता यह गोपिका ठीक उसी प्रकार शोभा को प्राप्त हुई अथवा अलस भाव से भरी मूर्तिमती रति का आलिंगन करके साक्षात् मूर्तिमान श्रृंगार रस के समान श्रीकृष्ण इस गोपी के साथ मिलित होते हुए प्रतीत हो रहे थे।

(१०३) कोई गोपी अपनी कटि किंकिणि, हाथों के कंगन और शब्द करते हुए नूपुर, हिलते हुए हार, कर्णकुण्डल एवं अत्यन्त झीने वस्त्रांचल से लालित होती हुई श्रीकृष्ण के कन्धे पर अपनी भुजा रखकर लीला विलासजन्य आलस्य से भरकर गान करते करते मन्द मन्द नृत्य करने लगी। श्रीकृष्ण भी उसके साथ नृत्य करते–करते जो गान वह गा रहे थे उसी गान को वह गाने लगी।

(१०४) कोई कमलनयना गोपी श्रीकृष्ण के पीताम्बर को अपने वाम कर द्वारा धारण करके बहुत समय तक प्रसर्प और अपसर्प (अर्थात् आगे जाना और पीछे आना) गति से स्वयं नृत्य करते–करते श्रीकृष्ण को नृत्य कराने लगी।

(१०५) श्रीकृष्ण जिन स्वरों का जिस प्रकार आलाप कर रहे थे गोपीगण उनके उस गान को उस स्वर में न गाकर अन्य अन्य स्वरों में गाने लगी। जब वे गान का आलाप करने लगी तो श्रीकृष्ण परम सन्तुष्ट साधु–साधु कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे। ललिता सखी उन्हीं स्वरों को ध्रुवताल में गान करने लगी तब नन्द नन्दन श्रीकृष्ण ने उनका अत्यधिक सम्मान किया।

काचित – कृष्ण प्रणीतमुरलीकलानरीत्या हेलावशेन लय–तालसमं नटन्ती।
लीलाकृतं स्खलनमस्य दृशाक्षिपन्ती स्वं तालभंगमथ सम्वरयाम्वभूव।।१०६।।
(आ० २०/११६)

काञ्चिद्वीणां मधुरमृदुलं वादयन्ती सलीलं गायं गायं हरिमतिमुदा सस्मयं नर्त्तयन्तीम्।
नान्यैर्गम्यां गतिमथ चलन् कौतुकादेव वाद्यभ्रंशे सम्भालन–बहुतरव्यग्रचित्तां चकार।।१०७।।
(आ० २०/११७)

श्लिष्यति काञ्चन चुम्बति काञ्चन कस्याश्चनाधरं पिबति।
नृत्यन्नेव हि कृष्णो रमयाञ्चक्रे वधुरखिलाः।।१०८।।
(आ० २०/११८)

आसीन्न सा तत्र ननर्त्त नो या, नृत्यं च ततो यदकृष्णदृष्टम्।
कृष्णस्य दृष्टिश्च न सा न यस्या, मेकैककशः श्लेषण–चुम्बनादि।।१०६।।
(आ० २०/११६)

---

(१०६) कोई ब्रजसुन्दरी श्रीकृष्ण द्वारा स्वरचित मुरली के सुमधुर गान के अनुसार अनायास ही ताल में ताल मिलाकर नृत्य करने लगी। श्रीकृष्ण कौतुक करने के लिए जान बूझकर उसके नृत्य के ताल भंग करने के लिए वंशी में बेसुरा गाने लगे लेकिन उस ब्रजसुन्दरी ने अपने नयनों के इंगित से उनको यह सूचित कर दिया कि तुम भले ही मेरी ताल भंग कर रहे हो यह मैंने जान लिया है लेकिन यह तुम्हारे लिए दुःसाध्य है इस प्रकार सूचित करती हुई उसने अपनी ताल को सम्भाल लिया।

(१०७) तदनन्तर कोई एक सखी लीला विलास के साथ मधुर मृदु मृदु वीणा बजाती हुई आनन्द के साथ मृदु हास्य करते–करते श्रीहरि को भी अपने साथ नृत्य कराने लगी। श्रीहरि पुनः कौतुक वश उसके वीणावाद्य की परीक्षा लेने के लिए कुछ अन्य भाव से दुर्ज्ञेय (जटिल) गति से नृत्य करने लगे और उस गोपी को इस प्रकार का संकेत देने लगे कि मानों उसका वीणा वादन ठीक नहीं हो रहा। अब वह भोली भाली गोपिका इस सोच में पड़ गयी कहीं मेरे वीणा वादन में त्रुटि तो नहीं आ रही।

(१०८) श्रीकृष्ण नृत्य करते–करते किसी गोपी का आलिंगन किसी का चुम्बन, किसी को अधरामृत दान, इस प्रकार वे समस्त बृज वधूओं के साथ रमण कराने लगे।

(१०६) वहाँ पर ऐसी कोई ब्रजरमणी नहीं थी जिसने नृत्य न किया हो, ऐसा कोई नृत्य नहीं था जिसका श्रीकृष्ण ने दर्शन न किया हो, और श्रीकृष्ण की ऐसी कोई दृष्टि नहीं थी जिसके द्वारा उन्होंने उन सब गोपियों का आलिंगन चुम्बन न किया हो।

मुक्तावलीमिव जुगुम्फ ललाटमूले घर्मांकुरान् सहचरीव समस्तमंगम्।
माध्वीक प्रीतिरिव साऽलसयाञ्चकार श्रान्तिः कुरंगकदृस्यां श्रियमापुपोष।।११०।।

(आ० २०/१२०)

दधाना दोर्युग्मं भुजशिरसि पार्श्व विलसतो हरेर्लीलास्यादकृत तनुवल्लीमिव लताम्।
ध्रुवं सौभाग्यानां भरमसहमानेव कतमा क्षणं विश्रामाय व्यधित दयितस्योपरि–वधूः।।१११।।

(आ० २०/१२१)

कपोलयोः कुण्डल–पद्मराग मयूरवबिम्बं बृजराजसूनोः।
स्वचुम्बलग्नाधर–रागबुद्ध्या, स्ववाससा लुम्पति कापि मुग्धा।।११२।।

असव्यं कंसोरर्भुजशिरसि धृत्वा पुलकिनं निज श्रोण्यां सव्यं करमनृजुविष्कम्भितपदा।
दधाना मुर्द्वानं लघुतरतिरःस्त्रंसिनमियं वभौ रासोत्तीर्णा मुहुरलसमूर्तीः शशिमुखी।।११३।।

(उ० ११/२०)

(११०) इसके पश्चात् जैसे कोई सहचरी मोतियों के हार को पिरोती है उसी प्रकार मृगनयना गोपियों के ललाट पर जो परिश्रम के स्वेद बिन्दु झलक रहे थे उन सबको श्रान्ति रूपा सखी ने गूथ लिया तथा जिस प्रकार मधु पान के पश्चात् सभी अंग आलस्योन्माद को प्राप्त हो जाते है तद्वत उनकी शोभा को अत्यधिक पुष्ट कर दिया (अर्थात् वे थकी हुई, पसीने से भरीं, अलसाती हुई और भी अधिक सुन्दर प्रतीत हो रही थीं।)

(१११) इसके पश्चात् कोई एक श्रेष्ठ वधू (श्रीराधा) अपने समीप विराजमान श्रीहरि के कंधे पर अपनी दोनों भुजाएं अर्पण करके और अपने शरीर रूपीलता को (आलस्यवश) कुछ टेड़ा कर लिया उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो अपने सौभाग्य राशि का भार सहन न कर पाने के कारण ही उसने विश्राम करने के लिए श्रीकृष्ण के अंग का आश्रय लिया हो।

(११२) कोई मुग्धा (भोली भाली) सखी बृजराजनन्दन के कपोलों पर पड़ने वाले अपने पद्मरागमणि के कुण्डलों की किरणों की छाया (प्रतिबिम्ब) को अपने चुम्बन द्वारा लगा हुआ अधर राग समझकर, अपने वस्त्रांचल से पौंछने की चेष्टा करने लगी।

(११३) तब रतिमंजरी दूर से अपनी सखी को दिखा रही है – देखो, यह शशि वदना श्रीराधा कंसारि श्रीकृष्ण के कंधे पर अपने पुलकित दांये हाथ को रखकर और बांये हाथ को अपनी कमर पर रखकर, चरणों को कुछ टेड़ा कर खड़ी हुई, सिर को कुछ वक्र करके ऐसी प्रतीत हो रही है मानो रासोत्सव में उत्तीर्ण होकर आलस्य भरी मूर्त्ती होकर विराज रही हो।

शिथिलगतिविलासास्तत्र हल्लीशरंगे हरिभुजपरिघाग्र–न्यस्तहस्तारविन्दाः।
श्रमलुलित–ललाटश्लिष्टलीलालकान्ताः प्रतिपदमनवद्याः सिष्विदुर्वेदिमध्याः।।११४।।
(उ० १३/२०)

एवं तासां श्रमजलकणक्लिन्नकर्णोत्पलानां मान्द्यं याते कुवलयदृशां नृत्यवेगे क्रमेण।
तूष्णीकत्वं पपुरथ मणीकिंकिणी–नूपुराद्या मन्ये तेषामपि समजनि श्रेयसी शान्तिवाधा।।११५।।
(आ० २०/१२६)

उन्मीलत्कलहंस गद्गदरवा कम्पातिविक्षोभतः संकीर्णा पृथुरोमहर्षदगतिर्वाष्पच्छटोद्गारिणी।
जाड्योत्सेक–परिप्लुता कुवलयोल्लासं मुहुर्विभ्रती गोपीनामनुरागिता–सरिदियं रासे वितेने रसम्।।११६।।
(उ० १४/१६०)

कृष्णांगसंगसुखमग्नधियस्तदिच्छास्रोतोनिवेशित–तनूलतिका मृगाक्ष्याः।
नैवाम्बराणि कुचकञ्चुलिकाश्च केश पाशांश्च हन्त विविदुः स्खलितानि तानि।।११७।।
(आ० २०/१३०)

---

(११४) देखो सखि ! आज हल्लीशरंग नृत्य में क्षीणांगी गोपिकाओं के आनंद के कारण गतिविलास स्खलित हो जाने से, परिश्रम के कारण उनके ललाट पर पसीने के ऊपर उनकी छोटी–२ अलकावली आकर चिपक गयी।

(११५) इस प्रकार उन कमललोचना बृजांगनाओं के कानों के कुण्डल भी पसीने से भीग गये है और धीरे–२ उनके नृत्य की गति धीमी पड़ जाने से उनकी कटिकिंकणी और नूपुरों की ध्वनि भी मन्दी हो गयी ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उनको भी थकावट के कारण पीड़ा होने लगी हो।

(११६) इस समय रास का दर्शन करने वाली विमानों पर स्थित देवीगण कहने लगीं– देखो सखि ! पृथ्वी मंडल पर रासोत्सव के रूप में मानो गोपीगणों की अनुराग रूपी नदी ही वह चली हो। इस नदी में गोपियों के गद्गद् वचन ही कलहंसों की ध्वनि है, उनके अतिशय कम्प से क्षुमित होती हुई यह कुछ संकीर्ण हो रही है, उनके रोमांच ही इसके वाष्प की छटा है तथा स्वेद रूपी जल से तथा कुवलयरूपी उल्लास की तरंगों से यह परिपूर्ण होकर शोभा का विस्तार कर रही है।

(११७) तदनन्तर कृष्णांगसंगसुख में निमग्नचित्रा, मृगनयना गोपीगण, प्रियतम की इच्छा रूपी स्रोत में अपनी शरीर रूपी लतिका को डुबाकर यह भी न जान सकीं कि उनके केशपाश खुलकर बिखर गये हैं तथा चोली एवं अन्यान्य वस्त्रादि स्खलित हो गये हैं।

श्रान्तानां रमणकलाभिरंगनानां स्वेदाम्भः स्मित–सुभगान्मुखेन्दुबिम्बात्।
प्रेमार्द्रः करकमलेन कोमलेन प्रत्येकं हरिरपसारयाञ्चकार।।११८।।

(आ० २०/१३३)

स्पर्शेन पाणिकमलस्य पुनः प्रकामं स्विद्यत्सु वक्त्रकमलेषु मृगेक्षणानाम्।
स्वेदापनोदकुशलो यदि नैष आसीत्ता एव चेलशकलैर्ममृजुर्मुरवानि।।११९।।

(आ० २०/१३४)

लावण्यसार सरसानि विलासलास्य–वैदग्ध्यमुग्ध–मधुराणितदीहितानि।
कारुण्यमात्रपिशुनानि जगुः सुगीत–बन्धेन ता निजनिज–प्रतिभाकृतेन।।१२०।।

(आ० २०/१३५)

काचितदा वीजयति स्म भूषा, वात्यासमस्यत्यपरा लिलेप।
श्रीखण्डकर्पूररसैस्तदंगा, न्येकास्ययोरर्पयति स्म वीटीम्।।१२१।। (कृ० भा० १६/८०)

अथान्यपुलिनान्तरे रासविलासीविशेषमाह :–
वितस्तिमात्रोच्चनिखात–शंकुग–त्रिनेमिचक्रोपरि राधया सह।
स्थितः स मध्येऽन्यसखीगणैः क्रमाद्वहिश्चकाराथ सुमण्डलत्रयीम्।।१२२।।

(गोवि० २२/५७)

रास के परिश्रम की शान्ति और पुनः हल्लीशक नृत्यादि :–

(११८) श्रीकृष्ण ने रास में नृत्यादि परिश्रम से श्रान्त गोपिकाओं के प्रत्येक के मृदुहास्यशोभित मुखचन्द्र बिम्ब से स्वेद जल को स्वयं प्रेमोद्रहृदय से अपने कोमल करकमल द्वारा अपसारित कर दिया (पौंछ दिया)।

(११९) लेकिन श्रीकृष्ण के करकमल के स्पर्श से उन मृगलोचनाओं का मुखकमल और भी अधिक स्वेदयुक्त हो गया। श्रीकृष्ण जब उसको दूर करने में समर्थ नहीं हुए तब उन्होंने स्वयं ही वस्त्र खण्ड (रूमाल) से अपने मुख पौंछ लिये।

(१२०) अब वे बृजगोपीजन, लावण्यसार से सरस विलासलास्य, (ऐसा नृत्य विलास जो लावण्य के सार से अत्यधिक मनोहर हो) वैदग्ध्य के कारण (रस चातुर्य) मुग्ध करने वाला एवं मधुर, इस प्रकार की चेष्टाओं से युक्त एवं करुणा मात्र से भरी हुई श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं को अपनी–२ बुद्धि की प्रतिभा से बनाये गये सुन्दर गीतों के रूप में गान करने लगी।

(१२१) अब श्रीयमुनाजी के किसी अन्य पुलिन पर विशेष प्रकार का रास विलास वर्णन करते हुए कह रहे हैं– पृथ्वी से आधा हाथ ऊँचा (वितस्ति) और पृथ्वी पर गढ़ी हुई कीली के ऊपर स्थित यह चक्र, जिस पर तीन नेमि अर्थात् (मण्डल)।

(१२२) इस चक्र के ऊपर मध्य में श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण ने आरोहण किया और अन्यान्य सखी गण बाहर तीन मण्डली में बद्ध होकर विराजमान हो गयी।

आवृत्य पूर्णं रसधारया हरिं, राधोपगूढं किल मण्डलत्रयी।
सुवर्णवल्ल्याञ्चि–तमालशाखिनं, स्वर्णालवालालिरिवावभावसौ।।१२३।।

(गोवि० २२/५८)

आदिश्य हल्लीशक–केलिरंगे, राधामुकुन्दौ ललितादिकालीः।
तत्रांस–विन्यस्तभुजौ मिथस्ता, वनृत्यतां लास्यविदां वरिष्ठौ।।१२४।।

(गोवि० २२/५६)

नृत्यन्नितम्बिनीनां तद्वैदग्ध्यपदचालनैः।
कुलालचक्रवच्चक्रं भ्रमदासीत्तयोरपि।।१२५।।

(गोवि० २२/६०)

लघुभ्रमच्चक्रगतेः समा तासां गतिः क्वचित्।
क्वचिन्मन्दो क्वचिच्छीघ्रा विविधासीत् प्रिया हरेः।।१२६।।

(गोवि० २२/६२)

विधाय राधां ललिता–विशाखयोर्मध्ये तदंसार्पितबाहुरच्युतः।
गायन स गायद्यिरलं कदाप्यसौ वभ्राम नृत्यन् सह नर्त्तकीगणैः।।१२७।।

(गोवि० २२/६१)

---

(१२३) अहो ! यह गोपियों की तीन मण्डली, श्रीराधारानी द्वारा आलिंगित अतः रसधारा से परिप्लुत श्रीहरि को बीच में घेरकर इस प्रकार शोभा पा रहीं थी मानो मध्य में कोई स्वर्णलता से लिपटा हुआ तमाल वृक्ष हो और चारों ओर उसकी स्वर्ण आलवालश्रेणी शोभा पा रही हो।

(१२४) अब नृत्य जानने वालों में सर्वश्रेष्ठ विज्ञतम श्रीराधाकृष्ण ने ललितादि सखीवृन्द को हल्लीशक (मण्डलीनृत्य) करने की आज्ञा दी और परस्पर स्वयं एक दूसरे के कन्धे पर हाथ रखकर नृत्य करने लगे।

(१२५) नृत्य कारिणी, नितम्बिनि (वृहत नितम्ब की शोभा धारण करने वाली) उन बृजांगनाओं के विशेष रसचातुर्य के कारण चरण चलाने से रास चक्र, कुलालचक्र (कुम्हार के चाक) की तरह भ्रमण करने लगा।

(१२६) इस प्रकार चक्र कभी लघु (धीरे) गति से चलता तो कभी शीघ्र गति से उसी के अनुसार ही गोपियों के नृत्य की चाल भी मन्द एवं शीघ्र होती। इस प्रकार श्रीहरि को प्रिय लगने वाली विविध गतियों से चक्र भ्रमण करता।

(१२७) कभी श्रीकृष्ण, ललिता तथा विशाखा सखी के मध्य में श्रीराधारानी को रखकर अथवा ललिता विशाखा के कंधों पर अपनी भुजलता अर्पित करते हुए, अन्यान्य सखीवृन्द नृत्य करने लगीं और गान करने लगीं उनके साथ गान करते हुए भ्रमण करने लगे।

तासां द्वयोर्द्वयोर्मध्ये तदंसन्यस्तदोः स्फुरन्।
सचलत्स्वर्णवल्लीनां नृत्यत्तापिञ्छवद्वभौ।।१२८।। (गोवि० २२/६३)

अद्भुतं मत्वा काचित् काञ्चित् प्रत्याह :-
हरिर्नवघनाकृतिः प्रतिवधूद्वयं मध्यतस्तदंसविलसदभुजो भ्रमति चित्रमेकोऽप्यसौ।
वधूश्च तडिदुज्जवला प्रतिहरिद्वयं मध्यतः सखीकृत-कराम्बुजा नटति पश्य रासोत्सवे।।१२९।।
(उ० १५/२३२)

सोऽलातचक्रवत् क्वापि लघुगत्याभ्रमत्तथा।
हित्वा मां क्वाप्यसौ नागादिति ता मेनिरे यथा।।१३०।।
(गोवि० २२/६४)

विलस्येत्थं हरिस्ताभिश्चक्रभ्रमण-नर्त्तनैः।
रासलीलाविशेषाय चक्रादवरुरोह सः।।१३१।। (गोवि० २२/६५)

स्वलहरि-मृदुहस्तैः संस्कृतं कृष्ण आल्या कुमुद-सुरभिवातैर्मार्जितं स्फारमग्राम।
शशिकिरणसुधाभिः सिक्तलिप्तं स ताभिः पुलिनवरमनंगोल्लासरंगाख्यमायात्।।१३२।।
(गोवि० २२/६६)

---

(१२८) फिर उन समस्त गोपियों के मध्य श्रीकृष्ण प्रवेश कर गये और उनके स्कन्धदेश पर अपनी भुजा रखकर वह इस प्रकार शोभा पाने लगे मानो चलायमान स्वर्णलताओं के बीच कोई नृत्य करता हुआ तमाल तरु हो।

(१२९) इस अद्भुत नृत्य को देखकर एक सखी दूसरी को कहने लगी- नवघन की आकृति वाले श्रीकृष्ण एक होकर भी प्रति दो वधुओं के बीच में रहकर उनके कंधों पर हाथ रखे हुए अत्यंत अद्भुत रूप से भ्रमण कर रहे हैं और विद्युत के समान उज्जवल वधू भी दो दो श्रीकृष्ण के मध्य रहकर सखी द्वारा परस्पर हाथ पकड़े हुए रासोत्सव में कैसा सुन्दर नृत्य कर रहीं हैं।

(१३०) कभी अलातचक्र की भांति (लकड़ी के ऊपरी भाग में आग जलाकर उसको जोर से गोलाकार घुमाने से जैसे एक अग्नि का गोल मण्डलाकार स्वरूप दिखायी देता है।) श्रीकृष्ण गोपीजन के मध्य द्रुतगति से भ्रमण करने लगे जिससे प्रत्येक गोपी ऐसा समझने लगी कि श्रीकृष्ण मेरे ही समीप है अन्य कहीं नहीं गये।

(१३१) इस प्रकार चक्रभ्रमण नृत्य करते-करते उनके साथ विलास करते हुए, विशेष प्रकार की रासलीला करने के लिए चक्र से नीचे उतर आये।

(१३२) तदनन्तर वे 'अनंगरंगोल्लास' नामक अग्रवर्ती श्रेष्ठ पुलिन पर समस्त सखीगणो को ले गये। यह पुलिन श्रीयमुना सखी द्वारा अपनी तरंग रूपी कोमल हाथों एवं कुमुद कुसुमों की सुगन्धित वायु द्वारा मार्जित सुविस्तृत चन्द्र की किरण रूपी सुधा से सिक्त एवं लिप्त (धोया एवं लेप किया गया) होकर अत्यंत उज्जवल प्रतीत हो रहा था।

परिभ्रमत्तल्ललनालि मण्डलं वभौ यथा कामकुलालभूपतेः।
रासादि–लीलाख्यघटालि–निर्मितौ सुवर्णचक्रं हरिदण्ड–चालितम्।।१३३।।
(गोवि० २२/७१)

तन्मण्डलं भाति विलास–सागरे रोद्धुं मनोमीनमिहैव किं हरेः।
कन्दर्प–कैवर्त्तवर–प्रसारितं हैमं महाजालमुरोज–तुम्बिकम्।।१३४।।
(गोवि० २२/७२)

भुजशिरसि विराजद्दोर्युगं स्वप्रियाल्याः प्रचलदजयदेतन्मण्डलं कृष्णमूर्त्तेः।
जलद–शकलजालं मध्यमध्यातिराजत्–स्थिरतड़िदुपगूढं संभ्रमच्चक्रवातैः।।१३५।।
(गोवि० २२/७४)

हरि–हरिदयितानां वंशिका–कण्ठगानै–र्मिलितवलयकाञ्चीनूपुराणां स्वनौघः।
नटनगति–विराजत् पादतालानुगामी निजवरमधुरिम्णा व्यानशेऽसौ जगन्ति।।१३६।।
(गोवि० २२/७६)

रतिलीलं त्रिभंगीञ्च चर्चरीं वीरविक्रमम्।
इत्यादीन्नर्त्तने तालान् दधुः कृष्णोऽस्य च प्रियाः।।१३७।। (गोवि० २२/१०१)

(१३३) जिस प्रकार कुम्हार घट निर्माण करते समय चक्र (चाक) को अपने हाथ द्वारा संचालित करके घुमाने लगता है उसी प्रकार कंदर्प रूपी कुम्हार द्वारा रासलीला रूपी घट को बनाने के लिए श्रीकृष्ण रूपी दण्ड द्वारा चलाया गया, परिभ्रमण कारिणी बृजललनाश्रेणी रूपी सुवर्ण चक्र शोभा पाने लगा।

(१३४) कैवर्त्त (मछुआ, मछली पकड़ने वाला) जैसे मछलियों को पकड़ने के लिये नदी आदि में जाल का विस्तार करता है और उस जाल के ऊपर कुछ अलाबू (फल) बांधकर उसे जल में दूर बहा देता है उसी प्रकार इस विलास सागर के मध्य में श्रीहरि के मानसमत्स्य (मन रूपी मछली) को पकड़ने के लिये कामदेवरूपी कैवर्त्त द्वारा फैलाया हुआ, बृजांगनाओं रूपी स्वर्ण सूत्र द्वारा बुना हुआ उनके वक्षोजरूपी तुम्बफलयुक्त यह जाल शोभा पाने लगा।

(१३५) रासचक्र में घूमते हुए श्रीकृष्ण की मूर्ति जिनके मध्य–मध्य में कंधों पर हाथ रखे हुए प्रियतमाओं के वृन्द अपनी अलौकिक शोभा द्वारा स्थिर विद्युत जो कि चक्रवायु द्वारा चालित कीगयी हो उसके द्वारा आलिंगन किये गये मेघखण्ड की शोभा को भी परास्त कर रहे थे।

(१३६) श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि तथा प्रियागणों के कण्ठ के गान की ध्वनि, इन दोनों के साथ मिलकर वलय, करधनी, नूपुर आदि की ध्वनि, नृत्य की गति तथा मनोहर चरणों की ताल सब एक साथ मिलकर अपने माधुर्य से समस्त जगत को व्याप्त करने लगे।

(१३७) नृत्य करते समय श्रीकृष्ण एवं उनकी प्रेयसीवर्ग, रतिशील, त्रिभंगी चर्चरी, वीरविक्रम इत्यादि तालों को बजा रहे थे।

अथ प्रबन्ध–गानं स नानातालैः पृथग् विधम्।
कर्त्तुमारभतैताभिर्विदग्धाभिः सनर्त्तनम्।।१३८।।

(गोवि० २३/१)

श्रीराधया नृत्यति कृष्णचन्द्रे गायन्त्य आसन् ललितादयस्तदा।
चित्रादयोऽन्याः किल तालधारिका वृन्दादयः सभयतया व्यवस्थिताः।।१३९।।

(गोवि० २३/२)

कृष्ण नृत्यत्येकले राधिकाद्या गायन्ति स्माश्चर्यतालै दुंरूहैः।
तस्मिन् सभ्ये राधिकाद्याः क्रमेणाश्चर्यं नृत्यं सांगहारं व्यधुस्ताः।।१४०।।

(गोवि० २३/३)

रंगे क्रमाच्छ्रेणितया स्थिताना, मन्तःपटत्वं नटतां गतानाम्।
वीणादिवाद्यावलि–धारिकानां, नाना प्रबन्धादिक–गायिकानाम्।।१४१।।

(गोवि० २३/४)

तत–घन–शुषिराद्यानद्ध–कण्ठस्वरौघे मृदुविविध–गतित्वेऽप्यैक्यमाप्तेऽंगनानाम्।
तदनुगपदतालैर्भ्रूकरांगाक्षिचालै–र्ननृतुरिह सकृष्णास्ताः प्रविश्य क्रमेण।।१४२।।

(युग्मकम्) (गोवि० २३/५)

---

(१३८) तदनन्तर श्रीकृष्ण ने सुरसिका बृजांगनाओं के साथ नाना प्रकार ताल बजाकर भिन्न–२ प्रकार के प्रबन्ध गान के साथ नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया।

(१३९) श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण ने जब नृत्य करना प्रारम्भ किया तो ललिता आदि सखीवृन्द गान करने लगीं एवं चित्रादि सखीगण गान की ताल प्रदान करने लगीं तथा वृन्दा आदि सखीसकल सम्यरूप (उचित अनुचित का विचार करने वाली) में अवस्थित हो गयीं।

(१४०) श्रीकृष्ण जब अकेले नृत्य कर रहे थे तो श्रीराधिका आदि सखीगण अत्यंत जटिल आश्चर्य ताल में गान करने लगीं और जब श्रीकृष्ण सम्य स्वरूप बनकर खड़े हो गये तो श्रीराधिका आदि सुन्दरीगण क्रमशः आश्चर्यरूप से अपने अंगों को चलाती हुई नृत्य कर रही थीं।

(१४१) रंगमंच पर बृजांगनागण क्रमशः श्रेणी बांधकर खड़ी हो गयी। चारों दिशाएं मानो अंतःपट तुल्य प्रतीत होने लगी और वे बस वीणा आदि वाद्ययंत्र को धारण करके विविध प्रबन्ध गान करने लगीं।

(१४२) इस समय उनकी वीणाध्वनि, कांस्यध्वनि, वंशीध्वनि, मुरजध्वनि, और कण्ठ की ध्वनि आदि सभी का स्वर मृदु होने पर भी सब एक्य रूप प्राप्त कर रही थी। श्रीकृष्ण के साथ रंगमंच पर प्रवेश कर गोपिकाएं उसी ध्वनि के अनुरूप अपने चरणों की ताल भ्रूक्षेप, अंग तथा नेत्रादिचालन करती हुई यथाक्रम नृत्य करने लगीं।

कृष्णः श्रीमान् मुहुरिह समागत्य तासां स मध्यान्नानातालक्रमवशतया चालयन् श्रीपदाब्जे।
धुन्वन् पाणीं नटति निगदन्नित्थमानन्दयंस्तास्तत्ता तत्थै दृगिति दृगिथै दृक् तथै हक् तथै था।।१४३।।
(गोवि० २३/६)

थो दिक् दां दां किट किट कणझें थोक्कु थो दिक्कु आरे।
झें द्रां झें द्रां किटिकिटि किटिधां झेंकु झें झेकु झें झेम्।
थो दिक् दां दां दृमि दृमि दृमि धां कांक्कु झें कांक्कु झें द्रा
मागत्यैवं नटति स हरिश्चारुपाठप्रबन्धम्।।१४४।।
(गोवि० २३/७)

कूजत काञ्चीकटकविरणन्नूपुरध्वानरम्यं पाणिद्वन्दं मुहुरिह नदत्कंकणं चालयन्ती।
राधा कृष्णद्युतिघनचये चञ्चलेव–स्फुरन्ती नृत्यन्तीथ्थ गदति तथथै थै तथै थै तथै था।।१४५।।
(गोवि० २३/८)

धां धां हक् हक् चङ चङ च निड़ंग णं निद्रांणं न्रिदां नां तुत्तुक् तुं तुं गुड्ड गुड्ड गुड्ड धां द्रां गुड्ड द्रां गुड्ड द्रां।
धेक् धेक् धो धो किरिटि किरिटि द्रां द्रां दृमि द्रां दृमि द्रा मागत्यैवं मुहुरिह मुदा श्रीमदीशा ननर्त्त।।१४६।।
(गोवि० २३/९)

---

(१४३) परम मनोहर श्रीकृष्ण पुनः पुनः उन सब के मध्य में से आकर नाना प्रकार की तालों में क्रमभंगि अनुसार सुन्दर चरण कमल और हाथों को चलाते हुए 'ता तत्ता, तथै, दृगिति, दृगिथै, हक् तथै हक् तथै था' इस प्रकार उच्चारण करते हुए सखीवर्ग को आनन्दित करते हुए नृत्य आरम्भ करने लगे।

(१४४) 'थो दिक् दां दां किट् किट् कण में थोक्क् थो दिक्कू आरे, फें द्रां झें द्रां किटि किटि किटि धां फेंकू फें फेंकू फें फें। थो दिक् दां दां दृमि दृमि दृमि धां कांकू फें कांकू फें द्राम" इस प्रकार के स्वरों का उच्चारण करते हुए श्रीकृष्ण ने सहसा आकर सुचारु रूप से प्रबन्ध गान करते हुए नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया।

(१४५) श्रीकृष्ण अंग द्युतिरूप मेघमण्डल में चंचल सौदामिनी की भांति श्रीराधा नृत्य करते करते "तथ थै, थै तथै, थै तथै, था" इस प्रकार के स्वरों का आलाप लेने लगीं। उस समय उनकी करधनी (कांची) कटक (चरणों में बनने वाले कंकण के आकार का अलंकार) और नूपुरों की रमणीय ध्वनि से युक्त कंकण ध्वनि करते हुए एक स्वर में बज रहे थे और वे दोनों हस्त संचालन करती हुई नृत्य कर रही थीं।

(१४६) "धां धां हक् हक् चङ चङ निङां णं निङां नं निङां नां, तुत्तुक् तुं तुं गुड्ड गुड्ड गुड्ड धां द्रां गुड्ड द्रां गुड्ड द्रां। धेक् धेक् धो धो किरिटि किरिटि द्रां द्रां दृमि द्रां हमि द्रां।" इस प्रकार उच्चारण करते–२ प्राणेश्वरि श्रीराधा आकर प्रसन्नता पूर्वक नृत्य करने लगीं।

झं झं कुर्वत्कनकवलये धुन्वती पाणिपद्मे तासां मध्यात् सपदि ललिताऽप्यागता कृष्णकान्त्या।
श्यामे रंगे तड़िदिव घने नृत्यतीत्थं वदन्ती थै थै थो थो तिगढ तिगढ थो थो तथै थो तथै ता।।१४७।।

(गोवि० २३/१०)

दृमि दृमि दृमि धो धो धो मृदंगादिवाद्यैः कण कण कण वीणाशब्दमिश्रैर्विशाखा।
नटति झणन झं झत्कार्यलंकारजाला दृगिति दृगिति दृक् थै थो तथो थो ब्रुवाणा।।१४८।।

(गोवि० २३/११)

आ आ ऐ आति आ आति अई अति अ आ आति आ आति आ आ
आ आ ज्योत्स्नाज्जवलांग नटदिव पुलिनं राधिके पश्य आरे।
आ आ आ आति आ आ नटति च विपिनं मन्दवातेरितं आ
आ आ आ एति कृष्णः पुनरिह निगदन् सालसागं ननर्त्त।।१४६।।

(गोवि० २३/२५)

आविष्टानां गाननृत्येऽंगनानां तत्तद्गत्यात्युच्छ्वसदगाढ़बन्धम्।
नीवी–वेणी–कञ्चुकादि स्वयं तत्, कृष्णः क्षिप्रं नृत्यमध्ये बबन्ध।।१५०।।

(गोवि० २३/१६)

---

(१४७) तत्पश्चात् श्रीललितजी भी उनके बीच में से आकर अपने स्वर्ण कंकणों की झंकार से युक्त हस्तकमलों को चलाती हुई कृष्णकान्ति द्वारा श्यामवर्ण की रंगभूमि पर "थै थै थो थो तिगढ तिगढ थो थो तथै थो तथै ता इस प्रकार स्वरों का आलाप लेती हुई नृत्य करने लगीं।

(१४८) इस प्रकार कण, कण, कण वीणा के शब्दों के साथ मिलाकर 'दृमि दृमि दृमि धो धो धो मृदंग के शब्दों के साथ "झणन झं झत्" अलंकारों की झंकार करती हुई "दृगिति दृगिति दक् थै थो तथो थो" इस प्रकार स्वरों का आलाप लेकर श्रीविशाखा भी नृत्य करने लगीं।

(१४६) सखीगण के इस प्रकार नृत्य करने पर पुनः श्रीकृष्ण अत्यंत उल्लसित होकर "आ आ ऐ आति आ आति अइ अति अ आ अति आ आति आ आ आ आ" हे राधे ! देखो ज्योत्सना से उज्जवलित हो मानो पुलिन नृत्य कर रहा हो। पुनः "आ आ आ आति आ आ" इस प्रकार कहते हुए वन भी मानो मन्द वायु से संचालित होकर नृत्य कर रहा है। पुनः "आ आ आ आ ऐति" इस प्रकार आलाप लेते हुए अलसाए हुए से नृत्य करने लगे।

(१५०) गीत वाद्य के साथ नृत्य उत्सव में बृजांगना सकल के आविष्ट हो जाने से उनकी तीव्र गति के अनुसार दृढ़तापूर्वक बंधी नीवी, वेणी और कंचुकी शिथिल हो गयी, श्रीकृष्ण ने स्व्यं अत्यंत शीघ्रतापूर्वक नृत्य के बीच ही उसे बांध दिया।

आस्ये गीतिस्तदभिनयनं श्रीकरे श्रीपदाब्जे तालो ग्रीवाकटिषु धुवनं नेत्रयोर्दोलनञ्च।
सव्यासव्यागमनगमनं तारकायां कटाक्षः कृष्णस्याब्जे मनसिजसुखं वल्लवीनां तदासीत्।।१५१।।
(गोवि० २३/२४)

अत्यद्भुतं दृष्ट्वा काचित् काञ्चित् प्रत्याह :–
प्रथममुरलिरन्ध्रे रञ्जिताकुञ्चितबिम्बा–धरमिह सखि ! राधां भाति गायन् मुरारिः।
धरमिह सखि ! राधां भाति गायन् मुरारिः
इतर–विवरचञ्चच्चारु मृद्वंगुलीनां नखमणिरुचिवीचिर्मुद्रिकालिच्छटाभिः।।१५२।
(सं० १८)

मग्ना शुभ्रे दशनकिरणे स्फाटिकीव स्फुरन्ती लग्ना शोणे करसरसिजे पद्मरागीव गौरि।
गण्डोपान्ते कुवलयरुचा वैन्द्रनीलीव जाता सूते रत्नत्रयधियमसौ पश्य कृष्णस्य वंशी।।१५३।।
(उ० १०/३४)

तालावसाने हरिरात्मपाणि, न्यासं प्रियावक्षसि संविधत्त।
प्रियापि सव्येन करेण तुष्टा, निरस्यतीशस्य करं रुषेव।।१५४।। (गोवि० २३/३०)

---

(१५१) नृत्य करते हुए बृजांगनाओं द्वारा गाये हुए गान, हाथों के अभिनय, चरणों से ताल देना, ग्रीवा एवं कटि का नचाना, नेत्रों द्वारा संकेत एवं इतस्ततः संचालन, नेत्रों के तारों का दांये बांये घुमाना, श्रीकृष्ण के मुखकमल के प्रति कटाक्षपात इन समस्त क्रियाओं ने गोपियों के हृदय में कंदर्पजन्य सुख को उत्पन्न किया।

(१५२) इस अत्यंत अद्भुत नृत्य विलास के दर्शन कर कोई सखी दूसरी सखी को कहने लगी– देखो सखि! मुरली के प्रथम छिद्र पर अपने बिम्बा धरो को कुछ संकुचित (मोढ़कर) कर स्थापित करके और अन्यान्य छिद्रों पर पुनः २ सुन्दर कोमल उंगलियों को घुमाते हुए नखमणि समूह की कान्ति एवं मुद्रिका के रत्नों की किरणमाला को झिलमिलाते हुए श्रीकृष्ण राधानाम का गान करते हुए कितने सुंदर प्रतीत हो रहे हैं।

(१५३–१५४) विशाखाजी श्रीराधारानी को दिखा रहीं है– देखो सखि ! यह श्रीकृष्ण की वंशी उनके दांतों की ज्योत्सना पड़ने से स्फटिक मणि निर्मित प्रतीत होती है और उनके लाल करतलों से संलग्न होकर पद्मरागमणि तुल्य शोभा धारण कर रही है एवं नीलकमल की कान्ति तुल्य कपोलों के निकट इन्द्रनीलमणि की प्रभा का विस्तार कर रही है। अतएव हे सुन्दरि ! आश्चर्य है देखो, एक वस्तु तीन रत्नों के भ्रम को जन्म देरही है (अर्थात् बुद्धि को भ्रमित कर रही है) ताल की समाप्ति पर श्रीकृष्ण ने अपने हस्तकमल को श्रीप्रियाजी के वक्षस्थल पर स्थापित किया इससे प्रियाजी (अंतः में) परमतुष्ट होती हुई भी, बांये हाथ से प्रियतम के हाथ को दूर करने लगीं।

जानुभ्यां क्षितिमालम्ब्य प्रसार्यैका ततौ भुजौ।
जुघूर्णे काञ्चनी वेगक्षिप्तेव स्मरचक्रिका।।१५५।। (गोवि० २३/३१)

लीलोत्सपयिसर्पाभ्यां दोःप्रसार–निकुञ्चनैः।
अंगान्यगैः स्पृशन्त्यन्या नृतिष्चक्रेऽन्यदुष्कराम्।।१५६।। (गोवि० २३/३२)

स्पृष्ट्वा करैकेन भुवं क्वचित् परा, देहं परावृत्य मुहुर्मुहुर्दिवि।
पतन्त्यनृत्यद् भुवि सा कदाप्यसौ, विना तदालम्बनमम्बेर परम्।।१५७।। (गोवि० २३/३३)

शिथिलवसनकेशाः श्वासवेल्लटकुचाग्राः श्रमजलयुतभालाः सालसांग्यः क्रियासु।
क्लमजनितरुचापि प्रेष्ठनेत्रातितुष्टिं पुपुषुरधिकमेता रासनृत्यावसाने।।१५८।। (गोवि० २३/४१)

इत्थं समाप्य विविधांगमनन्य सिद्धं ताभिः समं सरसरासविलासनृत्यम्।
प्रोद्यत्स्मरं पुनरमुं रतिकेलिनृत्यं कर्त्तुं समुत्कमनसं हि विविध वृन्दा।।१५९।। (गोवि० २३/४८)

हिमवालुक–वालुकेऽमले, पुलिने सह राधयाच्युतम्।
विनिवेश्य तयोः पुरः सखी, निचयं सगणा न्यवीविशत्।।१६०।।(युग्मकम्) (गोवि० २३/४६)

(१५५) कोई एक गोपी अपने दोनों घुटने भूमि पर लगाकर अपनी सुविस्तृत भुजाओं को फैलाकर जोर से चलाकर फैंकी गयी सोने की कामचकइ की भांति घूमने लगी।

(१५६) अन्य कोई बृजांगना लीलावश उत्सर्पण एवं अपसर्पण (उत्थान एवं पलायन) भुजाओं को मोड़करसंकुचित कर लेना, कभी प्रसारित करना, एक–२ अंग द्वारा एक २ अंग का स्पर्श करती हुई अत्यंत दुष्कर नृत्य करने लगी।

(१५७) कोई बृजसुन्दरी एक हाथ से भूमि का स्पर्श करती हुई अपनी देह को आकाश में पुनः घुमाकर फिर पृथ्वी पर गिरती सी हुई नृत्य करने लगी और कभी भूमि का सहारा न लेकर ही शून्य में ही नृत्य करने लगी।

(१५८) रासनृत्य के अवसान पर उन गोपीजनों के वसन, केश, शिथिल हो गये, निश्वासवायु तीव्र चलने से वक्षस्थल कांपने लगा, और ललाट स्वेद जल से भीग गया। अब वे अन्य कुछ करने में अलसाई सी हो गयीं। वे रास के परिश्रम से श्रान्तक्लान्त होकर भी श्रीकृष्ण के नेत्रों को परम आनंद प्रदान कर रहीं थीं।

(१५९–१६०) इस प्रकार वृन्दा देवी ने बृजांगनाओं का श्रीकृष्ण के साथ विविध प्रकार का सरस एवं अनन्यसिद्ध (जिसे और कोई नहीं कर सकता) रासविलास सम्पन्न कराया। अब पुनः विशेष भाव से कामोद्दीपक रतिकेलिनृत्य कराने के लिये श्रीकृष्ण को उत्सुकचित्त देखकर, कर्पूर के समान सुविमल बालुकामय यमुनापुलिन पर श्रीराधा सहित श्रीकृष्ण को विराजमान करा, उनके सामने समस्त सखी परिकर को विराजमान करा दिया।

कर्पूराभे किरणसुधया प्रोक्षिते शीतधाम्नः प्रत्यामृष्टे कमलकुमुदामोदिना मारुतेन।
प्रादुर्भूतः स खलु शुशुभे सैकते भानुपुत्र्याः प्रत्यासन्ने सुरतसमेर वीरपान प्रमोदः।।१६१।।

(आ० २०/१३७)

तस्मिन्नानामधुरिम–धुरा धुर्य्यवैदूर्य्यवेद्यां कृत्वा चीनाम्बर–विरचनां चन्द्रिकावृन्दहृद्याम्।
तस्यां न्यस्य स्फटिकचषकस्तोममस्तोकमूल्यं कर्त्तुं वृन्दारभत रभसात् पानलीलानुकूल्यम्।।१६२।।

(कृष्णा० ६/३८)

तत्रानिन्ये स्फटिक–घटितं मेध्यमाध्वीक–कुम्भं गन्धेनान्धीकृत–मधुकरं सोपदंशोपलम्भम्।
कामक्रीड़ानिधिघटमिवापीनचीनेन गूढ़ं ग्रीवादेशे सुरभिकुसुमोद्दामदामोपगूढम्।।१६३।।

(कृष्णा० ६/३९)

तत्रागत्य प्रमुदित–वधूमण्डलीमध्यवर्त्ती दृष्ट्वा वृन्दाकृतविरचनाः कल्पित्–स्वान्तपूर्त्तीः।
श्रीराधाया करसरसिजं पाणिनाधृत्य धृत्या मध्येऽवात्सीत् सह मणिशिलामूर्ध्नि तत्रैकमत्या।।१६४।।

(कृष्णा० ६/४०)

---

(१६१) मधुपोनोत्सव :– सुधाकर की किरणों द्वारा सिक्त, (सींचा गया) कमल एवं कुमुद के पुष्पों की सुगन्ध को वहन करने वाली वायु द्वारा परिमार्जित, कर्पूर की धूलि सदृश शुभ्र एवं सुनिर्मल श्रीयमुनाजी का बालुकामय पुलिन क्या सुन्दर प्रतीत हो रहा था मानो सुरतसमर से पूर्व वीरपानजनित (माध्वीक पान) आनंद ही मानो मूर्तीमान होकर प्रकट हो गया हो।

(१६२) वृन्दादेवी ने उस स्थान पर नाना प्रकार के माधुर्य से परिपूर्ण वैदूर्यमणि जटित वेदी जिस पर चाँदनी जैसा उज्जवल पतला वस्त्र बिछा था, उसपर बहुमूल्य स्फटिक मणिमय पानपात्रों (मधु पीने के प्याले जैसे पात्र) को रख दिया और आनन्द से मधुपान की समस्त सामिग्री प्रस्तुत करने लगी।

(१६३) उन्होंने स्फटिक मणिमय पवित्र मधुपूर्ण कुम्भ (घड़ा या कलश) वहाँ लाकर प्रस्तुत किया, जिसकी सुगन्ध से भ्रमर श्रेणी अन्धी (पागल या मत्त) हो रही थी। उसके साथ २ उपदंश (चाट आदि) भी लाकर सजा दी। यह मधु का कलश सूक्ष्म पतले वस्त्र से आवृत था और उसके मुख पर सुगन्धित फूलों की बड़ी २ मालाए लपेटी हुई थीं। देखने से ही इतना मादक प्रतीत होता था मानो कामक्रीड़ा की निधि रूपी घट ही होगा।

(१६४) श्रीकृष्ण ने इस स्थल पर आकर परमानन्दिता वधूमण्डली के मध्य विराजकर अपने मनोभीष्ट सूचक वृन्दादेवीकृत साजसज्जा को देखा एवं सबकी अनुमती से धैर्यपूर्वक श्रीराधारानी का करकमल अपने हाथ में धारण करके मणिमय शिला के ऊपर उनके साथ बैठ गये।

पर्य्यन्ते चोपविशति वधूमण्डले तस्य वाचा पंक्तीभूय प्रसृमरतेणांगभासा समीचा।
मूर्तीभूता इव वलयिताश्चन्द्रिकाश्चन्द्रिकाणां मध्ये मेध्या अथ विललसुर्मूत्तयः सुन्दरीणाम्।।१६५।।
(कृष्णा० ६/४१)

उद्यद्विद्युल्लतिक इव स स्निग्धधाराधरेन्द्र–श्चन्द्रज्योत्स्नावलयवलितोऽभ्राजतानन्दसान्द्रः।
राधासंगी प्रियसहचरी–मण्डलान्तः प्रसंगी पानक्रीड़ात्सव–नवनवोत्साह–निर्वाहरंगी।।१६६।।
(कृष्णा० ६/४२)

व्रीड़ौत्सुक्य–स्मृति–मति–धृति–क्षान्तिहर्षाभ्यसूया–शंका–त्रास–श्रममदमुखाः प्राभ्वन्नानुमेयाः।
ऐकैकस्याः परिजनधुरां धारयन्तोऽस्वभावा लब्ध्वा लब्ध्वा समयमुचितं सेवितुं सर्वभावाः।।१६७।।
(कृष्णा० ६/४३)

पानास्थानीमनु सहचरीषूपविष्टासु तासु श्रीमच्चैकासनमनु सतोः प्रेयसोरग्रगासु।
नानापुष्पैः स्वयमनुपमैर्गुम्फिता भृंगलोला वृन्दा नन्दादनुजनमनु ग्रीवमाधत्त मालाः।।१६८।।
(कृष्णा० ६/४४)

---

(१६५) श्रीकृष्ण के अनुरोध से गोपीगण पंक्ति बनाकर चारों ओर अपनी अंगकान्ति का विस्तार करती हुई (दिशाओं को प्रकाशित करती हुई) किनारों पर बैठ गयीं। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों चाँदनी रात्रि में चाँदनी ही साक्षात् सुन्दरीगण के मध्य २ में सुन्दरमूर्ति धारण करके वलयाकार होकर विराज गयीं हों।

(१६६) श्रीराधारानी के साथ एवं प्रियसहचरीमण्डली के मध्य विराजित आनन्दघन श्रीकृष्ण चन्द्र ज्योत्सनाजाला से परिवेष्टित नव विद्युत लता से जड़ित स्निग्ध, श्यामल, मेघश्रेष्ठ के समान प्रकाश पा रहे थे। अहो ! आज वे मधुपान क्रीड़ा उत्सव के नव नव उत्साह का अतिशय रूप से आनन्द विस्तार कर रहे थे।

(१६७) लज्जा, उत्कण्ठा, स्मृति, मति, धृति, क्षान्ति (अक्षुब्धता) हर्ष, अभ्यसूया, शंका, त्रास, श्रम एवं मद, उल्लास प्रमुख व्यभिचारीभाव समूह ठीक समय पर युगलकिशोर की सेवा करने के लिए प्रत्येक अपने पूरे परिकर के साथ मानो उपस्थित हो गया हो।

(१६८) प्रिया प्रियतम दोनों के अति सुन्दर एक उच्च आसन पर विराज जाने पर उनके सामने मधुपान गोष्ठी के रूप में समस्त सखीगण भी विराज गयीं। तब वृन्दाजी ने आनन्दित मन से नाना प्रकार के अनुपम पुष्पों की राशि से जो मालाएं स्वयं बना कर रखीं थी वे युगलकिशोर प्रत्येक सखी के गले में पहना दीं। इन मालाओं की सुगन्ध से भ्रमरगण अतिशय चंचल हो उठे।

लोलाः कालागुरुजनिजुषो धूपधूमस्य धाराः सारादारादरचयदनुक्षुण्ण–कर्पूरपूराः।
तन्निर्दिष्टाः कुसुममकिरन् क्ष्मारुहः यावनस्य प्रारम्भेऽस्मिन् स्फुरति मधुनः पानलीलोत्सवस्य।।१६९।।
(कृष्णा० ६/४५)

मल्लीपुष्पेष्वनुसृणिमुखैश्चञ्चलेश्चञ्चरीकैः शंखाभं भं भमिति निनदा दध्मिरे निर्व्यलीकैः।
लास्यं तेन पवनगुरुणा शैशवं शिक्षिताभिः स्थाने स्थाने कुसुमलतिकामण्डली नर्त्तकीभिः।।१७०।।
(कृष्णा० ६/४६)

माध्वीकेन स्फटिकचषकश्रोणिमापूरयन्त्या ज्योत्स्नाजाले मिलितवपुषं तामथालक्षयन्त्याः।
वृन्दादेव्याः किमिह चषकान् किं नु शून्यान् पिपर्मीत्यासीत्तस्याः क्षणमिव तदा चित्तवृत्तौ महोर्मी।।१७१।।
(कृष्णा० ६/४७)

दिव्ये नव्ये स्फटिके पुटिक–मेध्यमाध्वीकपूर्णे चारु न्यस्योत्पलमुपरितः प्रस्फुरद्भृंगघूर्णे।
वामेन श्रीकरजलरुहा धुन्वती भृंगमन्ये नाग्रे राधा–बृजपसुतयोरग्रतः सोपनिन्ये।।१७२।।
(कृष्णा० ६/४८)

---

(१६९) और भी वृन्दा देवी ने उनके कुछ निकट (थोड़ी २ दूर पर) चूर्ण कर्पूर राशि से मिली हुई काले अगरु से उत्पन्न धूप को जला दिया। उसका धुंआ चंचल धारा के समान उड़ने लगा। अब इस परमपवित्र मधुपान लीलोत्सव के आरम्भ होने पर वृन्दाजी की आज्ञा पाकर वृक्षगण कुसुम वर्षा करने लगे।

(१७०) चंचल मधुकर अंकुश के समान तीक्ष्ण मुख द्वारा मल्लिका के फूलों का छेदन कर (उसके मधुपान से उन्मत्त हो) निर्बाध रूप से शंख की तरह भं, भं, शब्द करने लगे और शैशव काल से पवन रूपी गुरु द्वारा शिक्षिता फूलों की लता रूपी नर्त्तकी गणों द्वारा स्थान २ पर नृत्य होने लगा।

(१७१) स्फटिक मणि रचित चषकों (प्यालों) को जब वृन्दा देवी उनको मधु द्वारा भरने लगीं तो चाँदनी की उज्जवलता में वे इस प्रकार (सफेद होने के कारण) मिल गये कि वृन्दा देवी की चित्तवृत्ती क्षणकाल के लिए इस प्रक़ार भ्रमित हो गयी अर्थात् वे सोचने लगीं कि मैं प्यालों को भर रही हूँ अथवा शून्य स्थान पर ही मधु डाल रही हूँ यह कुछ समझ में नहीं आ रहा।

(१७२) अब दो नवीन दिव्य स्फटिक के प्यालों में वृन्दा देवी ने पवित्र मधु भरा। जब उनके ऊपर भ्रमरगणों ने घूमना प्रारम्भ किया तो यह देखकर उन्होंने बांये हाथ में एक नीलकमल लेकर उसे प्यालों पर अच्छी प्रकार घुमा २ कर मधुकर उड़ाने (हटाने) लगीं और दांये हाथ से श्रीराध ाकृष्ण के सम्मुख वे दोनों चषक लाकरराव दिये।

प्रतिचषकं प्रतिबिम्बित–शशिबिम्बं विलसदुत्पलामोदम्।
उपरिभ्रमदलि–ललितं, पुरतस्तासां रराज माध्वीकम्।।१७३।। (आ० २०/१६०)

आदौ पाने नयनयुगयोः शोणिमानं द्वितीये वाग्वैवश्यं व्यधिकरणतां हासभीत्योस्तृतीये।
द्रष्टुं पश्चाद्विहसितुमपि प्राणनाथं तथान्याः पानक्रीड़ापरिषदि दधे पातुमिच्छां न काचित्।।१७४।।
(आ० २०/१६१)

आतन्वाने अमृत–मधुनोव्यत्ययेनैव मैत्रीं चन्द्राम्भोजे इव वदनयोर्मण्डले कारयन्तौ।
अन्योन्यश्रीवदनचषकोपात्तमन्योन्यदत्तं राधाकृष्णौ सममपिबतां साधरौष्ठोपदंशम्।।१७५।।
(आ० २०/१६२)

आलीन्दुर्मे पिवति मधु किं पीयतामालि सार्द्धं स्तेनोऽयं यत्तव मुखरुचां कण्ठलग्नेन भाव्यम्।
दन्तच्छेद्योऽमृतमयतया सत्यमस्यावशिष्टं नो पास्यामीत्यथ मधुमती पाणिना मध्वपास्थत्।।१७६।।
(आ० २०/१६४)

---

(१७३) तब वृन्दा देवी ने उन सब गोपिकाओं में प्रत्येक के सम्मुख प्रत्येक चषक जिसमें (सबमें अलग २) चन्द्रमण्डल प्रतिबिम्बित हो रहा था और कमलों की सुगन्ध आ रही थी, भ्रमरगण जिन पर उड़ २ कर मंडरा रहे थे इस प्रकार का सुन्दर मधु प्रस्तुत कर दिया।

(१७४) प्रथम मधुपान से नेत्रों में लालिमा, द्वितीय बार पान से वाणी का लड़खड़ाना, तृतीय बार पान से हास्य और भीति में व्यधिकरण (अर्थात् हँसने योग्य वस्तु या बात से भय और भय उत्पन्न करने वाले प्रसंग में हास्य) की दशा को देखने के सुख को अधिक मानते हुए कोई भी प्रथम मधु पीने की इच्छा नहीं कर रही थी, जिससे वह अन्यान्य सखीगण तथा श्यामसुन्दर की परिहास्यास्यद दशा का दर्शन भी कर सकेंगी और व्यजन आदि सेवा भी कर सकेंगी।

(१७५) श्रीराधा का मुखचन्द्र और श्रीकृष्ण का मुख कमल अतएव जब दोनों एक दूसरे का अधरपान करने लगे तो चन्द्र का अमृत कमल में और कमल का मधु चन्द्र में प्रवेश करने लगा अतः चन्द्र मधु युक्त और कमल अमृत युक्त हो गया इस भाव को इस श्लोक में प्रकट कर रहे हैं। श्रीराधाकृष्ण चन्द्र और कमल के समान एक दूसरे के मुख का अमृत और मधु एक दूसरे को पान कराने लगे तो कमल का मधु चन्द्र में और चन्द्र का अमृत कमल में प्रवेश करने लगा तो दोनों ने मित्रता कर ली और वे अपने वदन रूपी प्याले में रखा हुआ अधर मधु और अधरोष्ठ रूपी उपदंश (मधुपान के बाद चार सदृश भोजन पदार्थ) एक दूसरे को पिलाने लगे।

(१७६) मधुपान करके कोई सखी अन्य सखी से (जिसने मधुपान नहीं किया है) कहने लगी– "सखि ! चन्द्र क्या मेरा मधु पी रहा है ?" सखि ने उत्तर दिया "सखि चन्द्र यदि तुम्हार मधुपान कर रहा है तो तुम चन्द्र के साथ ही मधुपान कर डालो क्योंकि वह तुम्हारी वदन कान्ति का चोर है।" प्रथम सखी कहने लगी, "तब तो वह चन्द्र मेरे कण्ठ में चला जावेगा।" द्वितीय सखी ने कहा, "चन्द्र अमृतमय है पर तुम्हारे दांतों से तो वह छिन्न भिन्न हो जावेगा। प्रथम सखी ने कहा, "मैं तो उस चन्द्र का झूठा मधु पान नहीं करूंगी।" इस प्रकार कहते हुए मधुमती सखी ने अपने हाथ से मधु का प्याला रख दिया।

दीव्यतेजःपरिधि परवेवेष्टि यावत् सखीनां प्रत्येकं सा मधु सुमधुर पानलीलोन्मुखीनाम्।
तावत्तावप्युभयमधुनोऽन्योन्यमुत्सारयन्तौ भृंगानास्तामुपरिपतितांस्तां प्रतीक्षां वहन्तौ।।१७७।।

(कृष्णा० ६/४६)

निष्पन्नेऽस्मिन् मधुविभजने भाजनैस्तैरमन्दे श्रीकृष्णः स्वं समधुचषकं राधिकास्यार विन्दे।
पीत्वा देहि त्वमिति निगदन् सूपनिन्येऽपवेश्यात् साप्याघ्राय नतमुखमदात् कामतन्त्रोपदेशात्।।१७८।।

(कृष्णा० ६/५०)

तन्माध्वीकं कमलवदना–वक्त्रगन्धोपलम्भा–दात्मामोदादपि सुमधुरं वल्लभो विप्रलम्भात्।
पीत्वा पीत्वानुभवति चिरेणानुभूयानुभूय स्मित्वा स्मित्वा पिबति महता कौतुकेनैव भूयः।।१७९।।

(कृष्णा० ६/५१)

सा सव्रीड़स्मितमवनताऽधीतसत्प्रेमतन्त्रा कान्तोच्छिष्टं मधु सुमधुरं पातुकामा स्वतन्त्रा।
नैच्छत् पातुं स्वमधु यदि सा तद्विदित्वाघहन्ता स्मित्वा प्रदादथ पिब पिबेत्यादरोणानुमन्ता।।१८०।।

(कृष्णा० ६/५२)

---

(१७७) मधुपान के लिए जब दिव्यतेजमय मण्डल में स्थित समस्त सखीगण प्रस्तुत हो गयीं और वृन्दाजी उन सब को परिवेषण करने लगीं तब तक युगलकिशोर वृन्दा के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए दोनों ही अपने मधु के ऊपर उड़ने वाले भ्रमरों को भगाने लगे।

(१७८) इस प्रकार जब सब परिकर को मधु का वितरण हो गया, श्रीकृष्ण ने अपने मधु के चषक को श्रीराधारानी के मखु पद्म के निकट ले जाकर 'तुम पीकर मुझे प्रदान करो'' इस प्रकार कहने लगे। तब श्रीराधारानी ने (श्रीकृष्ण के प्रेम का आग्रह स्वीकार कर) उस मधु चषक को ग्रहण करते हुए पिया नहीं केवल मुख के पास ले जाकर उसको कुछ सूंघ कर नतमुखी होती हुई (संकोचवश) मानो कामतन्त्र का उपदेश करती हुई पुनः उस चषक को प्रियतम के करकमल में प्रदान कर दिया।

(१७९) कमलमुखी श्रीराधा के मुख की सुगन्ध प्राप्त होने के कारण एवं अपनी सुगन्ध से भी अति सुमधुर यह जो मधुचषक था उसे श्रीकृष्ण कुछ क्षण रुक रुक कर बार २ पान करने लगे और पान करते २ उसके स्वाद और सुगन्ध का अनुभव कर रहे थे और कुछ देर तक अनुभव करके फिर हँसते हुए पुनः कौतुक सा करते हुए उसे पान करने लगे।

(१८०) श्रीराधारानी मानो उत्तम प्रेमशास्त्र का पाठ करके, कुछ हास्य और लज्जा के कारण नतमुखी होकर, प्रियतम के मुखोच्छिष्ट सुमधुर मधु को पान करने की इच्छा करने लगीं। अपने मधु चषक को स्वतन्त्र रूप से पीने की इच्छा नहीं हुई। अघनाशन श्रीकृष्ण ने उनके मन का यह भाव जानकर मृदु मधुर हास्य करते हुए आदर पूर्वक अनुमति प्रदान करते हुए अर्थात् 'पियो पियो' कहते हुए उनको अपना अधरामृत प्रदान किया।

तत् पीत्वा सा स्वमथ मधुनः पात्रमादाय पाणि श्रीपर्णेनापिबदथ समाकृष्य तद्वेणुपाणिः।
स्मित्वा स्मित्वा कलयति सखीमण्डले तत्र पिप्ये नैतच्चित्रं भवति सुहृदां सौहृदस्याभिरूप्ये।।१८१।।

(कृष्णा० ६/५३)

भूयो वृन्दा चषकपरं सीधुना पूरयित्वा श्रीदम्पत्योर्न्यधित पुरतः स्वं मनो मोदयित्वा।
आपीयान्यत्तदथ ददतुस्तौ सखीभ्योऽल्पमल्पं तास्तत् पीत्वा स्वमपि च पपुः सीधुपीयूषकल्पमा।।१८२।।

(कृष्णा० ६/५४)

एवं वृत्ते कुवलयदृशां प्रेयसश्चादिपाने काचित् काचिद्विकृतिरुदगादन्तरे स्निह्यमाने।
सा मर्य्यादा–विघटनपटुर्नासहन्तानुमेया शोणीभावं ब्रजति नयने दृश्यमानाभ्युपाया।।१८३।।

(कृष्णा० ६/५५)

काचित्तत्र प्रथमचषकेनैव निर्व्यूढ़कामा नैच्छत् पातुं पुनरविरतं प्रार्थ्यमानाऽपि वामा।
दृष्टुं तासां मदविलसितं बल्लभस्यापि विज्ञा लोभाच्छा भातिशयविषया सादिदृक्षा मनोज्ञा।।१८४।।

(कृष्णा० ६/५६)

---

(१८१) श्रीराधारानी उसका पान कर पुनः अपने चषक को करकमल मे ग्रहण कर पीने लगीं, मुरलीधर श्रीकृष्ण ने उनके हाथ से वह चषक छीन लिया और स्वयं उसे पीने लगे। सखीगण सब यह लीला हंसते २ देख रहीं थीं। अहो ! सुहृदगणों (प्रेमीजनों) के प्रेम की सुन्दरता (प्रेम की अधिकता होने से उसका माधुर्य पराकाष्ठा को प्राप्त कर लेता है) इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

(१८२) तब वृन्दा देवी ने और एक चषक मधु से पूर्ण किया और अपने मन में परमानंदिता होते हुए युगल किशोर के सन्मुख रख दिया। उन्होंने इस मधु में से थोड़ा सा पान कर सखीगणों को दे दिया और फिर सखीगणों ने उस प्रिया प्रियतम के अधरामृत मधु को थोड़ा २ लेकर पुनः अपने २ अमृत के समान मधु का पान करने लगीं।

(१८३) श्रीराधाकृष्ण एवं गोपीगणों के प्रथम बार ही थोड़ा सा मधुपान करने पर उनके अन्तःकरण स्निग्ध हो गये और कुछ २ विकार प्रकाश पाने लगे। अहो ! धीरे २ ये विकार सकल अपनी मर्यादा का लोप करके नेत्रों की लालिमा के साथ २ यथोचित समस्त अनुभवों को प्रकट करते हुए उपस्थित हो गये।

(१८४) किसी सखी ने प्रथम चषक का पान करके ही अपनी वासना शान्त कर ली और पुनः २ प्रार्थना करने पर भी (और पियो) और पान करने की इच्छा नहीं की, कारण कि वह सखीगणों की तथा प्रिया प्रियतम की मधुपान जनित उन्मत्तदशा (उत्कृष्ट विहार) एवं अतिशय शोभापूर्ण दशा का दर्शन करने की विशेष इच्छा रखती थी। इस विषय में यह चतुर थी।

अस्थाने ही रुदितमपदं हेतुहीनो विवाद–स्त्रासो निष्कारण उपगतो निर्निदानो विषादः।
व्याहारोऽप्यन्वयविरहितो दृष्टिरुदेश्यशून्या तासामासीद् विसरकविधौ रीतिरेषैव धन्या।।१८५।।
(कृष्णा० ६/५७)

वाचां वर्णस्खलनवलने चेतसामस्थिरत्वं मन्दाक्षाणां समयसरणं वर्ष्मणां कम्पवत्त्वम्।
बुद्धिनां च भ्रमणमसकृद्धासरोष–प्रतोषा जाड्यं मौनं विसरक–विधौ रेजिरेऽमी विशेषाः।।१८६।।
(कृष्णा० ६/५८)

ज्योत्स्नालीनं स्फटिकचषकं काप्यनालोकयन्ती किं मे दत्तं न मधु पुरतो वृन्दयेत्यामनन्ती।
जातक्रोध–स्मयविहसितास्थैर्यनिर्वेदशंकं तस्थौ काचिन्न पिबति मधु प्रोल्लसन्मानपंकम्।।१८७।।
(कृष्णा० ६/५९)

आल्यः पेयं मधु कथमिदं चन्द्रमाः संप्रविष्टः कण्ठे लग्नोऽप्यहह भविता चर्व्यते चेत् स दुष्टः।
किञ्चोदञ्चन्मल–परिमलात् प्रस्तुतातत्कलंका–संगादस्मिन् मम सुमहती जायते दोषशंका।।१८८।।
(कृष्णा० ६/६०)

---

(१८५) बिना कारण के लज्जा बिना प्रयोजन के रोदन हेतु शून्य विवाद, निष्कारण भय, निष्प्रयोजन विषाद, संगति शून्य वाक्यों का प्रयोग उद्देश्य रहित दृष्टि आदि क्रियायें होने लगी। अहो ! मधुपान क्रीड़ा में गोपियों की इस प्रकार नाना प्रकार की धन्य रीति दिखाई देने लगी।

(१८६) गोपियों के वाक्यों में वर्णच्युति, वाक्रोध, चित्त की अस्थिरता, आलस्य, बीच बीच में नेत्रों का प्रसारण, अंगों का कम्पन, बुद्धि का भ्रम, पुनः पुनः हास्य, क्रोध, सन्तोष, जड़ता, मौन इत्यादि विशेष विशेष भाव समूह प्रकाशित होने लगे।

(१८७) कोई कोई गोपी ज्योत्सना में लीन हुए अपने स्फटिक के मधुपात्र को न देखकर मन ही मन सोचने लगी कि वृन्दाजी ने सम्भवतः मेरे सम्मुख मधुपात्र नहीं रखा ऐसा विचार कर वे क्रोध, गर्व, हास्य, अस्थिरता, ग्लानि और शंका प्रकाश करने लगीं और कोई सखी तो मानवती होकर मधुपान किया ही नहीं।

(१८८) कोई सखी कहने लगी– देखो तो सखी गण ! इस मधु चषक में चन्द्रमा ने प्रवेश कर लिया है अब इस मधु को कैसे पिया जाय ? अहो ! इस दुष्ट को यदि चर्वण कर भी लिया जाय तब भी यह हमारे कण्ठ में लगा रह जायेगा और देखो इस मधु चषक में उसके कलंग का स्पर्श होने से इसमें से दुर्गन्ध आ रही है इसलिए मुझे तो इस मधु को पान करने में दोष की आशंका हो रही है।

माध्वीकानामुपरि परितो विभ्रमद्भृंगमालाच्छायां कल्कावलिमिव घनां वीक्ष्य काश्चिद्विलोलाः।
अंगुल्यग्रैर्ललितलुलितैर्लोड़यित्वा पटान्ते पूतं कृत्वा पुनरथ पपुः पानमोदे नितान्ते।।१८६।।
(कृष्णा० ६/६१)

हा कष्टं द्यौः पपपतति घूघूर्णते भूमिमीमिः सख्यो मामाधधरत भो हन्त पथापतामि।
इत्थं पानातिशयवशतः काचिदालिंगय काञ्चित् स्थित्वा मन्दं न्यगददगदा जीवितास्मीति किञ्चत्।।१९०।।
(कृष्णा० ६/६२)

विच्छेदे प्रागभवदुभयोर्यत्तु तादात्म्यमेकं तत् संस्कारे मधुमदविधावुत्थिते सातिरेकम्।
कृष्णो राधायित इव भवन् हन्त! कृष्णायितासौ स्यातां नाम्नोर्विनिमयमयामन्त्रणे मन्दहासौ।।१९१।।
(कृष्णा० ६/६३)

राधे कृष्ण त्वमयि मम किं किंकरी नैव नैव प्राणस्त्वं मे न भवति वपुस्त्वां विना स्थातुमेव।
इत्थं प्राक् संस्कृतिमतिरतेर्वैपरीत्ये स्वनाम–व्यत्यासेनोभयरसकथा मञ्जुलत्वं जगाम्।।१९२।।
(कृष्णा० ६/६४)

(१८६–१९०) कोई कोई चंचला सखी मधु के ऊपर चारों ओर मंडराती हुई भ्रमर पंक्ति को देखकर उसे मधु का मैला अंश समझकर अपनी उंगली के अग्रभाग को कुछ टेढ़ा करके उसे हटाती हुईं और पुनः वस्त्र द्वारा उसे छानकर पीने लगीं और मधु के आनन्द में विभोर होकर पुनः पुनः उसका पान करने लगीं और कहने लगीं – अरे बड़े दुख की बात है देखो आकाश 'गि' 'गि' गिर रहा है 'भू' भूमि 'घू' 'घू' घूम रही है। हे सखीगन ! मुझे प प पकड़ो। अरे देखो ! मैं तो 'गि' 'गि' गिर रही हूँ। इस प्रकार अतिशय पान के कारण कोई सखी दूसरी किसी सखी का आलिंगन करके मृदु मन्द स्वर में कहने लगी – "सखी ! मैं कुछ समय निरोग होकर बच सकूंगी।"

(१९१) पूर्व में विरह के समय राधाकृष्ण दोनों जिस प्रकार एक आत्मा (तादात्मय) को प्राप्त हो गये थे उसी प्रकार की तन्मयता इस समय मधुपान लीला में भी हो जाने के कारण वही संस्कार इस समय भी अतिशय रूप में प्रकाश पाने लगा। श्रीकृष्ण राधामय और राधाकृष्णमयी हो गये अतः एक दूसरे को अपना ही नाम पुकारते हुए मृदु मधुर हास्य के साथ कहने लगे।

(१९२) तब श्रीराधा श्रीकृष्ण के प्रति कहने लगी– 'हे राधे' ! श्रीकृष्ण उत्तर देने लगे– 'हे कृष्ण' ! श्रीराधा– 'अरे तुम क्या मेरी दासी हो ? नहीं नहीं तुम तो मेरे प्राण हो। तुम्हारे बिना तो मैं इस देह को ही धारण नहीं कर सकता। इस प्रकार जब तक दोनों को अपने स्वरूप का अनुभव नहीं हुआ तब तक दोनों का अतिशय रूप से विपरीत विलास ही चलता रहा और नामों के भी विपरीत भाव से जो रस कथा हुई वह अत्यन्त ही मनोहारी प्रतीत हो रही थी।

कर्णे कर्णे वचनरचनैः कोमलैरर्थशून्यैर्गात्रे गात्रे स्खलनलुठनैर्गाढ़हासेन धन्यैः।
गण्डे गण्डे सरसमधुरैश्चुम्बनैश्चाभिरामाः श्रीदम्पत्योर्नखलु समयास्ते भवन् यातयामाः।।१६३।।
(कृष्णा० ६/६५)

पृष्ठालम्बिन्यनयनपथे कौस्तुभे सा दयातः कृष्णां राधा चकितमवदत् कौस्तुभभस्ते क्व यातः।
तां स प्राह त्वमिममहरः साह नाहं विशाखा सोचे नाहं सुमुखि ललिता साह नाहं सुलेखा।।१६४।।
(कृष्णा० ६/६६)

इत्यन्योन्यं मधुमदमुदा कुर्वतीनां विवादं मध्ये कृष्णं न्यगददपरा प्रोल्लसत्साधु वादम्।
प्रत्यक्षं ते तमहरदियं धूर्त्त! धूर्त्ता विलोला स्वातन्त्र्येणोरसि विलसितुं वैजयन्त्यैव माला।।१६५।।
(कृष्णा० ६/६७)

आं जानीयस्त्वमहर इयं कौस्तुभं हण्त! माले दण्ड्यासि त्वं तमुपहर मे चौरि! वेगादराले!
इत्याक्षिप्तस्रगुपहतितः पृष्ठतोऽसौ ललम्बे कण्ठे दृष्ट्वा तमथ जहसुस्तां समेत्याविलम्बे।।१६६।।
(कृष्णा० ६/६८)

---

(१६३) युगल किशोर एक दूसरे के कान में लगाकर कोमल और अर्थ शून्य वाक्य बोलने लगे। हँसते–हँसते एक दूसरे के शरीर पर लोटपोट होने लगे जिससे उन्हें परस्पर के अंगों का स्वच्छन्द रूप से आलिंगन प्राप्त होने लगा। और वे परस्पर एक दूसरे के रसमय कपोलों पर मधुर चुम्बन करने लगे– इस प्रकार के अत्यन्त रमणीय विलास का कहीं अन्त होता ही नहीं दीख रहा था।

(१६४) श्रीकृष्ण की कौस्तुममणि पीठ के पीछे की ओर चली जाने के कारण दिखायी नहीं दे रही थी। राधारानी कौस्तुम को न देखकर भीत सी होकर पूछने लगीं "अरे! तुम्हारी कौस्तुम कहाँ गयी?" श्रीकृष्ण ने कहा– "तुमने ही उसे चुरा लिया है" श्रीराधारानी ने कहा– "मैंने नहीं विशाखा ने" विशाखा ने कहा– हे सुमुखि! "मैंने नहीं ललिता ने" ललिता ने कहा– मैंने भी नहीं! सुलेखा (इन्दुलेखा) ने ही यह चोरी की होगी।

(१६५) इस प्रकार मधु के मद में भरकर परस्पर विवाद करने लगीं– तब अन्य किसी सखी ने श्रीकृष्ण को साधुवाद देते हुए कहा– हे धूर्त! "ये वैजयन्ती माला ही स्वतन्त्र रूप से तुम्हारे वक्षस्थल पर विलास कर रही है अतः इसी धूर्ता ने चंचल होकर तुम्हारे सामने ही कौस्तुम को चुरा लिया।

(१६६) तब श्रीकृष्ण ने कहा – "अरे हाँ! ठीक समझ में आ गया। हे कुटिल माले! तुमने ही कौस्तुभ की चोरी की है। तुम ही दण्डनीय हो अतएव हे चौरि! शीघ्र ही उसे वापिस करो' ऐसा कहते हुए माला को खींचकर मानो ताड़ना देने लगे तो पीठ की ओर से कौस्तुभ सामने आकर उपस्थित हो गयी। तब कौस्तुभ को कण्ठ में ही देखकर शीघ्रता पूर्वक माला को उठाकर सब हँसने लगी।

गम्भीरेऽस्मिन्ध्मधुमदधुरा–माधुरीणां प्रवाहे तीव्रं स्रोतो यदि मृगदशां मण्डली सा जगाहे।
कश्चिन्मन्दं जगुरथ पराश्चाभिनिन्युस्तदर्थम् सर्वा एव प्रतिविदधिरे पुष्पवाणं कृतार्थम्।।१६७।।

(कृष्णा० ६/६६)

कन्दर्पमाध्वीकमदाकुलांगीं कन्दर्पमाध्वीकमदानुशिष्टे।
राधां समादाय हरौ प्रविष्टे, विन्यस्ततल्पं पुलिनान्तकुञ्जम्।।१६८।।

(गोवि० २३/५२)

कन्दर्पमदवक्ल्व्याद्घूर्णापूर्णेक्षणाः सखीः।
वृन्दाप्यादाय कुञ्जेषु पृथक् पृथगशाययत्।।१६६।।

(युग्मकम्) (गोवि० २३/५३)

मुदुस्पन्दं लीलाकर–किसलयोत्कम्पमुदयत्–प्रसूनेषु–क्रीड़ाविवश मुदितालिब्रजसुखम्।
अमन्दीकुर्वाणं किमपि कलकण्ठध्वनिकलां सिषेवे राधांग हरिरथ वसन्तानिलमिव।।२००।।

(अ० ५/१३)

---

(१६७) तब वे सब मृगनयनागण अगाध मधुमद के अतिशय मधुर प्रवाह के वर्तमान तीव्र स्रोत में अवगाहन करने लगीं। कोई–कोई मृदुमन्द स्वर में ध्रुव, गुर्जरी आदि ताल में गान करने लगीं और अन्य कुछ सखीगण नृत्य आदि द्वारा अभिनय करती हुई गान के अर्थ को प्रकाशित करने लगी। इस प्रकार समस्त ब्रजांगनाएं चुम्बन आलिंगनादि द्वारा कामदेव को अथवा अप्राकृत नवीन मदन श्रीकृष्ण को ही धन्य करने लगीं।

(१६८–१६६) तदनन्तर श्रीकृष्ण कन्दर्प और मधुमद से उन्मत्त होकर कन्दर्प और मधुमद से आकुलित अंगों वाली प्रियतमा श्रीराधा को संग लेकर विचित्र शैय्या से सुशोभित पुलिन पर स्थित कुंज के मध्य में प्रवेश करने लगे तब वृन्दा देवी ने भी कन्दर्प से विह्वल उद्घूर्णता से शिथिल अंगों वाली सम्पूर्ण सखीगण को ले जाकर पृथक–पृथक कुंजों में शयन करा दिया।

युगल विलासादि :–

(२००) श्रीकृष्ण वासन्ती पवन के समान श्रीराधा के अंगों की सेवा करने लगे। वसन्त कालीन वायु जैसे मृदु–मृदु स्पन्दन करते हुए कोमल स्पर्श प्रदान करती है। सेवा के समय श्रीराधिका के अंग भी उसी प्रकार मृदु मृदु स्पदन करने लगे। बसन्त वायु जिस प्रकार लीला करती हुई कलिकाओं को कम्पित करती है श्रीराधा के अंग भी उसी प्रकार श्रीकृष्ण के स्पर्श द्वारा कर किसलय कम्पन करने लगे। बसन्त वायु से जिस प्रकार कुसुम समूह क्रीड़ा करने लगते हैं श्रीराधा के अंग भी उसी प्रकार कुसुमशर की क्रीड़ा विकास से विवश हो उठीं दोनों ही उदिताली ब्रजसुख अर्थात् बसन्त वायु के स्पर्श से भ्रमरगणों को सुख प्राप्त होता है और श्रीराधा की अंग सेवा दर्शन से उनकी सखी समूह को सुख प्राप्त होता है। बसन्त पवन जिस प्रकार सुन्दर ध्वनि करने वाली कोकिलाओं के उत्कर्ष का कारण होती हैं उसी प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा सेवित श्रीराधा के अंग मधुर स्फुटित ध्वनि करते हुए समस्त परिकर को आनन्दित करते हैं।

आकृष्टे रमणेन नीलवसने निर्मोचितैरायते केशौघैर्निरवाहयं सखि ! तनो : साम्मुख्यसंगोपनम्।
जिह्वेमि स्मरणेऽपि तस्य यदियं कृष्णाष्टमी यामिनी वासीत् सुन्दरि ! सम्मुखार्धतिमिरा पश्चार्धचन्द्रप्रभा।।२०१।।
(अ० ५/३६)

बलेन परिरम्भणे नखशिखाभिरुल्लेखन हठादधरखण्डने भुजयुगेन बन्धक्रियाम्।
दूकूलदलने हतिं कुवलयेन कुर्वाणया रतादपि सुखं हरेरधिकमादधे राधया।२०२।।
(उ० १५/२५४)

राधायाः स्तनमण्डले हरिपरिरम्भोपलम्भे ध्रुवं व्याप्य स्वर्णधराधरं जलधरारम्भोऽद्य भूयानभूत्।
स्वस्थानं परिहृत्य कौस्तुभमणिव्याजेन निर्वाणदं स्थातुं सम्प्रति नूनमम्बरमणिस्तत् सन्धिमभ्याविशत्।।२०३।।
(रति० ५/६२)

चञ्चद्बर्ह–कचग्रहादि–सुरतावेशात् प्रियाः चुम्बतः कृष्णस्याजनि दोर्लतावलयिनी वेणीविचूड़ामणिः।
भीतासौ भुजगी भुजंगमभुज पक्ष्मोल्लसद्वायुना मन्ये त्यक्तफणामणिः फणिधिया पाणिं समावेष्टयत्।।२०४।।
(रति० ५/६३)

---

(२०१) श्रीराधारानी मानों किसी सखी से कह रही हैं – हे सखि ! जब ब्रजराज नन्दन ने मेरा वसन आकर्षित किया उस समय मैंने विशाल केशपाश को खोलकर उससे अपने शरीर के आगे के भाग को ढक लिया हे सुन्दरि ! इस घटना का स्मरण करके मैं इस समय अतिशय लज्जा का अनुभव कर रही हूँ क्योंकि उस समय मेरा शरीर सामने का आधा भाग मानों अन्धकारमयी रात्रि के समान और ऊपर का आधा चन्द्रप्रभामयी कृष्णाष्टमी की रात्रि के समान अवस्था को प्राप्त हो रहा था।

(२०२) श्रीकृष्ण के बलपूर्वक आलिंगन करने का यत्न करने पर श्रीराधा नखाघात करने लगी और श्रीकृष्ण के अधर दंशनार्थ हठात् प्रवृत्त होने पर श्रीराधारानी ने उन्हें बाहूद्वय द्वारा बांध लिया। जब श्रीकृष्ण उनका वस्त्र खींचने लगे तब श्रीराधा नीलकमल द्वारा उनको प्रताड़ित करने लगीं। इस प्रकार श्रीराधा 'रति' की अपेक्षा लीला पूर्ण विलासादि क्रियाओं द्वारा श्रीकृष्ण को अतिशय सुख प्रदान करने लगीं।

(२०३) श्रीराधारानी के वक्षोजद्वय का आलिंगन प्राप्त कर श्रीकृष्ण की इस प्रकार शोभा हो रही थी मानो स्वर्णाचल (सुमेरु) किसी सुन्दर काले मेघ की घटा छा गयी हो और सूर्य इस समय अपने स्थान को त्याग कर एकांतवास करने के लिये कौस्तुम मणि के रुप में इस सुमेरु (स्वर्णाचल) और मेघ घटा के मध्य (सन्धि स्थल) प्रवेश गर गया हो।

(२०४) श्रीकृष्ण जब अपने चंचल मयूर चिन्हों पिच्छों के साथ सुरतानन्द में भरकर प्रियतमा श्रीराधारानी के केशों का स्पर्श करते हुए चुम्बन कर रहे थे तब श्रीराधारानी की वेणी, जो कि चूड़ामणि से रहित हो गयी थी श्रीकृष्ण की भुजाओं में वलयाकार होकर उनसे लिपट गयी थी जिसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वेणीरूपा भुजंगी मयूरों के भय से भीता होकर मयूर पिच्छों की वायु से अपने फणों में स्थित मणि का परित्याग करती हुई श्रीकृष्ण के हाथों को सर्प समझकर वेष्टन कर रही हो।

शिलष्ट शिलष्यति गोकुलेन्द्रतनयेनाचुम्बिता चुम्बति स्वच्छन्दं लिखिता नखैर्नखपदैराभूषयत्यंगकम्।
शिक्षित्वा तत एव पुष्पधनुषः संग्रामविद्यामियं तस्य क्षोभकरी यदैष्ट तदियं विद्या गुरुक्षोभिका।।२०५।।

(अ० ५/३७)

शयन–सहचरीणां लोचनैर्रच्यमाना–न्यतिरतिजयलक्ष्मीलक्ष्मभिः पक्ष्मलानि।
रहसि सबहुमानं चुम्ब्यमानानि दृगभ्यां स्वजत इव मृगाक्षी स्वांगकैः स्वांगकानि।।२०६।।

(अ० ४/३)

निमीलन्नेत्रश्रीरचटुलपटीराचलमरुन्निपीत–स्वेदाम्बुस्त्रुटदमलहारोज्जवलकुचा।
निकुञ्जे क्षिप्तांगी शशिकिरणकिर्मीरिततटे किशोरी सा तेने हरिमनसी राधा मनसिजम्।।२०७।।

(उ० ११/१८)

विशेषविहारमुक्त्वाथ सामान्यमाह :–
प्रेमातिशुद्धमपि केवलमेष तासामारञ्जयन्मदनरागरसैरशेषम्।
संप्रार्थितानि निवीड़स्तनपीड़नानि लब्धुं सदन्त–नखलेखन–कौशलानि।।२०८।।

(आ० १७/२११)

---

(२०५) गोकुलराजकुमार जब श्रीराधिका का आलिंगन करते तो वे भी उनका आलिंगन एवं चुम्बन करतीं। जब श्रीकृष्ण अपने नखों द्वारा उन्हें अंकित करते तो वे भी उनके अंग प्रत्यंगों पर नखांकन करने लगीं। श्रीराधा उनके समीप ही यह कन्दर्प विद्या सीख कर और इस समय वे ही मानो क्षोभ को प्राप्त हो रहे है। वस्तुतः यह विद्या गुरु जनों के क्षोभ प्रदान करने वाली ही है।

(२०६) (श्रीराधारानी के अंगों पर जो रति चिन्हों की शोभा है) वह शयन के समय परिचर्या करने वाली किंकरीगणों के नेत्रों द्वारा अर्चना की जाती है (आदर किया जाता है) ये रतिविजयसूचक चिन्ह समूह नेत्रों को अत्यंत सुख देने वाले हैं, श्रीराधारानी भी निर्जन में अपने नेत्रों द्वारा मानो जिनका चुम्बन करती हैं और मृगाक्षी (श्रीराधा) अपने अंग प्रत्यंग द्वारा ही उन समस्त अंगों का (जिनको श्रीकृष्ण के कर कमल का स्पर्श प्राप्त हुआ है) मानों आलिंगन अथवा स्पर्श कर आनंद प्राप्त करतीं हैं।

(२०७) श्रीराधारानी के (श्रीकृष्ण द्वारा आलिंगनादि सुख से) निमीलित हो रहे थे, मन्द–२ मलय वायु ने उनके शरीर के स्वेद बिन्दुओं का मानो एक साथपान कर लिया हो, हार के टूट जाने से वक्षस्थल उज्जवल (प्रकाशित) हो रहा था। इस अवस्था में चन्द्रकिरणों से रंजित कुंजगृह में शिथिलांगी राधा श्रीहरि के चित्त में मनसिज का विस्तार कर रहीं थीं।

(२०८) इस प्रकार विशेष विहार का वर्णन कर अब सामान्य विहार का वर्णन करते हुए कहते हैं– गोपिकागण का प्रेम 'केवल' अर्थात् विशुद्ध (स्वसुख, वासनाशून्य, ऐश्वर्यज्ञानशून्य) होते हुए भी श्रीकृष्ण द्वारा उनसे स्वाभिलाष, आलिंगन, नखांक लेखन, अधर दंशन आदि प्राप्त करने का हेतु, उस विशुद्ध प्रेम को मदनरागरंग से रंजित करना था।

ह्रीप्रवोधनकरः कररोधः कोपकल्पनमशोणकटाक्षम्।
रोदनञ्च विगताश्रु वधूनां, तत्परं प्रियममन्यत कृष्णाः।।२०६।।

(आ० १७/२१४)

भर्त्सनं स्मितसुधाप्लुतवर्णं, पाणिधूननमलक्ष्य निषेधम्।
भ्रूलतासु ऋकुटिः कृतकोपा, सर्वमन्तरनुरागमवादीत्।।२१०।।

(आ० १७/२१५)

द्राधीयसा सुवलितेन सुकोमलेन प्रत्येकमेन तरसा भुजमण्डलेन।
अन्तः प्रवेशयितुकाम इव क्रमेण लीलानिधिः स रमणीगणमालिलिंग।।२११।।

(आ० १७/२६७)

वामेन पाणिकमलेन विधृत्य वेणीमभ्युन्नमय्य चिबुकाग्रमथापरेण।
आलोकयन्मुकुलितेक्षणमास्यमासां माध्वीकमुग्धमधरं धयति स्म कृष्णाः।।२१२।।

(आ० १७/२१८)

वक्षोरुहाम्बुरुहकोरकयुग्ममासा–मासादयन् सनखलेखनलक्ष्मलक्ष्मीम्।
अन्तः समुद्यदनुरागविकार–कण्डु–कण्डुयनादिव पुनः प्रथयाञ्चकार।।२१३।।

(आ० १७/२२०)

---

(२०६) श्रीकृष्ण के इस प्रकार के व्यवहार से ही तो ब्रजवधूगणों में लज्जा के कारण श्रीकृष्ण के कर कमलों का प्रतिरोध करना, अरुणिमा रहित कटाक्ष युक्त कोप प्रकाश करना, अश्रुहीनरोदन, यह सब भाव श्रीकृष्ण को परम आनन्द प्रदान करते हैं।

(२१०) उस समय उनके मृदु हास्य सुधा से पूर्ण अक्षरों से युक्त भर्त्सना वाक्य, निषेध ('ना' 'ना' इत्यादि उक्ति) लक्ष्यहीन कर कम्पन, भौंहों की स्वाभाविक कोपयुक्त भ्रकृटि, यह समस्त उनके अंतर का अनुराग प्रकट कर रहे थे।

(२११) लीलानिधि श्रीबृजेन्द्रनन्दन ने अपनी दीर्घ, सुवलित, सुकोमल भुजाओं द्वारा गोपसुन्दरियों को शीघ्र अपने अन्तर में प्रवेश कराने के लिये ही मानो उनमें से प्रत्येक को क्रमानुसार आलिंगन किया।

(२१२) श्रीकृष्ण के बांये कर कमल द्वारा उनमें से प्रत्येक की वेणी धारण पूर्वक दांये हस्तकमल से चिबुक का अग्रभाग कुछ ऊंचा उठाकर, लज्जा से मुद्रित नयनों वाली गोपसुन्दरी के वदन कमल का अवलोकन करते–२ उसका मधु से भी सुमधुर अधर पान करने लगे।

(२१३) नागरेन्द्र शिरोमणि श्रीश्यामसुन्दर उनके अन्तर में उदित होते हुए अनुराग के विकार रूपी कण्डू (खुजली) को ही मानो कण्डूयन करने के लिये अपनी नख लेखन रूपी लक्ष्मी को उनके वक्षोज रूपी कनककमल कली प्रदान करते हुए पुनः बाहर प्रकट कर दिया (अर्थात् नखों के द्वारा और वे और भी सुन्दरता को प्राप्त हुए)।

आताम्रकम्र–महसा नखलेखलक्ष्मी–लक्ष्मश्रिया शुशुभिरे सुदृशामुरांसि।
अन्तर्गतैरेव चिरादनुरागबीजै–रासादितांकुरदर्शर्वहिरावृतानि।।२१४।।

(आ० १७/२२१)

स्फीतं पाणिसरोरुहेण सुदृशां वक्षोजयोर्मण्डले केशेष्वायत–कुञ्चितेष्वतिघनेसूद्धादर्दघोलम्बितम्।
श्रान्तं श्रोणिभरांगने तत इतो विभ्रान्ति खेदादहो लब्ध्वा नाभिह्रदं सुखेन तिमितं मध्ये समाकुञ्चितम्।।२१५।।

(आ० १७/२२३)

सा वधूततिरनंगसंगरे, गाढ़सौभगरसप्रसंगरे।
आत्रिलोकरमणीमणी श्रिये, हेलनामतिमदेन शिश्रिये।।२१६।।

(आ० १७/२२६)

निर्गतः कुञ्जनिकरात् कृष्णस्ताभिरलक्षितः।
एकः सन् राधिकामागात् स्वदर्शन–मृदुस्मिताम्।।२१७।।

(गोवि० २३/५६)

तत्रागता कुञ्जतेतर्निवीता, दृष्ट्वा निजालीं पुरतो हसन्तीम्।
यत्नावृतस्वांगचयालिपालि–र्नम्राननालोलदृगेतयोचे।।२१८।। (गोवि० २३/५७)

(२१४) ईषत् अरुण वर्ण, कमनीय कान्ति धारण किये नखचिन्ह रूपी लक्ष्मी की शोभा बाहर ढके हुए होने पर भी उन सुलोचनाओं के वक्षस्थल अंकुरदशा को प्राप्त हो रहे थे अर्थात् दीर्घकाल के अनुराग बीज मानों फूट उठे हो।

(२१५) श्रीकृष्ण के करकमल जब सुनयना बृजांगना के स्तनयुगल पर विहार करने लगे तो उनके अति घने, लम्बे २, घुंघराले केशपाश ऊपर सिर से लेकर नितम्ब प्रदेश तक लम्बित होते हुए जंघा रूपी अंगन में इधर उध्र भ्रमणवश मानो खिन्न होकर श्रान्त हो गये फिर नाभि रूपी सरोवर को प्राप्त कर सुख से निश्चल हो, अतिकृश मध्य देश में संकुचित होकर पड़ रहे।

(२१६) तत्पश्चात् प्रगाढ़ सौभाग्य रस को प्राप्त कराने वाले अनंगरंग युद्ध में तो वे बृजवधू वृन्द त्रिलोक पर्यन्त समस्त रमणीवृन्द के सौभाग्य के अतिक्रमण करने वाली सम्पत्ति को प्राप्त कर अत्यंत गौरव से भरकर मानो उन सब की अवज्ञा करने लगीं।

(२१७) तदनन्तर श्रीकृष्ण एकांकी सखीवृन्द के अलक्षित (अर्थात् सब सखीगण यह नहीं जान पायीं) समस्त कुंजों से बाहर आकर एक मूर्ती होकर, उनके दर्शन पाकर मधुर हास्य करती हुई श्रीराधारानी के पास आ गये।

(२१८) सखीगणों ने अपन शरीर को यत्नपूर्वक आच्छादित किया और सखी अपनी २ कुंज के बाहर आ गयीं और सामने देखने लगीं। उनकी प्रिय सखी श्रीराधा उनको देख परिहास करने को प्रस्तुत है अतएव वे लज्जा से नतमुखी होकर चंचल नेत्रों से उन्हें देखने लगीं।

यो नायकः सोऽत्र सवृन्दया मया रंगे स्थितः क्वापि गतो नहि क्षणम्।
नानर्त्तयद्वो रतिनर्त्तनेऽसकौ दशेहशी वो वपुषः कुतोऽभवत्।।२१६।।

(गोवि० २३/५८)

हरिर्हसन्नाह निकुञ्जरंगे, नट्यस्विमा मूर्त्तिमतोज्ज्वलेन।
रत्याख्य–नृत्ये रस–नायकेन, संनर्त्तिता यत् स्फुटतत्तदंकाः।।२२०।।

(गोवि० २३/५६)

कृष्णे स्वसख्यां प्रणयोद्गतेर्ष्यास्ता उचुरस्मिन् रतिनृत्य एषा।
त्वां नर्त्तयन्ती सततं गुरुस्ते कर्त्तुं त्वया वाञ्छति नः प्रशिष्याः।।२२१।।

(गोवि० २३/६०)

निजेच्छा यात्र गुरुपसन्तिः स्याच्छिष्यता शास्त्रमता तयैव।
बलात्कृता नैव ततो न शिष्या वयं गुरुस्त्वं विफलः श्रमोवाम्।।२२२।।

(गोवि० २३/६१)

जानासि नो नो नकुलांगनानां वृत्तिं विशुद्धां सखि ! भोगिनि त्वम्।
तथापि सम्पादयितुं स्वसाम्यं किं खिद्यसे प्रेर्य्य वृथा भुजंगम्।।२२३।। (गोवि० २३/६२)

---

(२१६) श्रीराधा हँसते हुए सखीगणों को कहने लगीं– प्रियतम श्रीकृष्ण तो इस रंगस्थल पर वृन्दा और मेरे साथ यहीं पर अवस्थित हैं, क्षणकाल भी बाहर नहीं गये और उन्होंने तुम सब को रतिनृत्य तो करया नहीं फिर तुम्हारे शरीर की इस प्रकार की दशा कैसे हो गयी।

(२२०) इस बात को सुनकर श्रीकृष्ण हँसते २ कहने लगे– जो मूर्तीमान रस नायक है (श्रृंगार रस अथवा मैं स्वयं) उसी ने इस कुंज रूप रंगस्थल पर इन सब नर्त्तकियों को रति नामक नृत्य में अच्छी प्रकार नचाया है इसीलिए इन सबके अंगों में वे नृत्यचिन्ह प्रकाश पा रहे हैं।

(२२१) यह सुनकर वे सखीगण श्रीकृष्ण और अपनी सखी श्रीराधा के प्रति ईर्ष्या (प्रणयकोप) प्रकाश करते हुए कहने लगीं– हे कृष्ण ! हमारी यह सखी श्रीराधा सदा ही तुमको रतिनृत्य कराती है इस विषय में तो ये तुम्हारी नृत्य गुरु है और अब हमको भी तुम्हारे द्वारा अपनी अनुशिष्या (अर्थात् शिष्य की शिष्या अथवा प्रशिष्या) बनाना चाहतीं हैं।

(२२२) देखो शिष्य की स्वेच्छापूर्वक जो गुरुपसन्ति (गुरु रूप में किसी को स्वीकार करना) उसी को शास्त्र के मत में शिष्यता कहते हैं लेकिन तुम तो उसे बलपूर्वक बनाना चाहते हो अतएव न तो हम तुम्हारी शिष्या ही है और न तुम गुरु ही हो। इस विषय में तुम दोनों का परिश्रम व्यर्थ ही है।

(२२३) पुनः सखीगण राधारानी के प्रति (अपना विशुद्ध प्रेम दर्शाते हुए मानो उनको उलाहना सा देती हुई कहने लगीं– हे सखि ! हे भोगिनि (सर्पिणी) हम तो नकुलांगना हैं। हमारी तो जो विशुद्ध बुद्धि है उसे तुम जानती नहीं हो ? फिर अपनी समता विधान करने के लिए अपने पति भुजंग (सर्प का लम्पट श्रीकृष्ण) को प्रेरित कर व्यर्थ में ही क्यों खिन्न होती हो ?)

इत्थं विधाय पुरुनर्म–विहार–नृत्यं ताभिः समं मदकरीव करेणुभिः सः।
तत्तच्छ्रमापनयनाय कलिन्दपुत्र्यां कर्तुं समारभत वारि–विहार–नृत्यम्।।२२४।।
(गोवि० २३/६३)

वक्त्रैः स्वर्णसरोजमण्डलमयं नीरोपरिष्टान्नभो वक्षोजैर्मद–चक्रवाकमिथुनश्रेणीजुषो वीचयः।
दोर्भिश्चारुमृणालवल्लिवलिता आपस्तादासन् वधू वृन्दे गच्छति चित्रभानुदुहितुस्तत्कुक्षिदघ्नं पयः।।२२५।।
(आ० २०/१३६)

लब्ध्वा तासां तनुपरिमलान् पद्मिनीः प्रोझय भृंगै–रभ्युद्यातैस्तरणितनयैवादरादुजजगाम्।
हंसैस्तल्योड्ऽयन–चपलैश्चामरत्वं प्रयातैः श्रान्ताः सर्वा प्रणयरभसाद्वीजयामास सैव।।२२६।।
(आ० २०/१४०)

भृंगैस्तासामुपरि परितो मण्डलीभूय सद्भिस्तत्पर्यन्तेष्वपि दिविषदां पुष्पवर्षे पतद्भिः।
नीलं वातवधूतमभितः सारिमुक्तावलीकं शोभाहेतोरतनुत किमु व्योम–लक्ष्मीर्वितानम्।।२२७।।
(आ० २०/१४१)

जल विहार :–

(२२४) इस प्रकार जैसे हस्ती अपनी समस्त हस्तिनिवृन्द के साथ नर्मविहारनृत्य पूर्वक नदी में अवतरण कर विहार करता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीराधा तथा सखीवृन्द के साथ सम्यक नर्म विहार नृत्य करके और फिर उस नृत्य के परिश्रम को दूर करने के लिए कलिन्दि कन्या श्रीयमुना में जाकर जलविहारनृत्य करना प्रारम्भ कर दिया।

(२२५) बृजवधूवृन्द विचित्र (शोभायुक्त) श्रीयमुनाजी के कुक्षिपर्यन्त जल में जाकर जब खड़ी हो गयीं तो जल के ऊपर तरंग माला उनके वक्षोजसकल के कारण चक्रवाकमिथुन श्रेणी के समान प्रतीत होने लगी एवं जल राशि उनकी भुजाओं के हिलने से मानो मृणाललताओं से युक्त दिखायी देने लगीं।

(२२६) उनके श्रीअंग की सुगन्धि को प्राप्त कर भ्रमरगण पद्मिनि समूह का परित्याग कर उनके ऊपर आकर मंडराने लगे, मानो श्रीयमुनाजी ही आदरपूर्वक उनका अभ्युत्थान कर रही हो और जो पंक्तिबद्ध चपल हंसों के समूह उड़ रहे थे उनके द्वारा मानो वे (श्रीयमुना) प्रेम से भरकर उन बृजवधुओं की थकावट को दूर करने के लिये व्यजन कर रहीं हों।

(२२७) उन बृज रमणियों के ऊपर भ्रमरगण चारों ओर से आकर श्रेणीबद्ध हो कर घूमने लगे और देवतागणों द्वारा की गयी पुष्प वृष्टि भी वहीं तक (भ्रमरों तक) पड़ रही थी जिससे प्रतीत हो रहा था मानो आकाश लक्ष्मी ने ही शोभा के लिए, वायु द्वारा चारों ओर लहराता हुआ, मोतियों की झालर से युक्त चन्द्रातप (चँदोवा) लगा दिया हो।

अन्योन्यात्तैः करसरसिजैस्ताड़यन्तीषु तोयं मध्ये कृत्वा दयितमभितो मण्डलत्वं गतासु।
तासूद्भूतास्तरणिदुहितू रोमहर्षा इव श्रीकृष्णास्योरः परिसरमयुः स्तोकतुंगास्तरंगाः।।२२८।।
(आ० २०/१४२)

अन्योन्यग्रथितांगुली–कलिकयो– कृत्वाम्बु पाण्योः समापीड्योच्चैर्जलयन्त्रवत् करभयाः प्रान्तेन निक्षिप्यता।
धाराभिर्मुहुरायताभिरवलावृन्देन सिक्तो हरिर्मन्ये मन्मथ–वारुणास्त्रमहसा मूर्त्तेन विद्धो वभौ।।२२६।।
(आ० २०/१४३)

निःसंहारं तदिदमतर्नोवारुणास्त्रं विदित्वा शक्तोऽप्यस्य प्रतिकृतिविधौ लीलया वारिमग्नः।
नीवीदाम्नां हरणकुतुकी–तद्धतिव्यग्रहस्तं भग्नाः सर्वां पुनरतितरामेक एवासिषेच।।२३०।।
(आ० २०/१४४)

प्रत्येक ताः सपदि पयसो द्वन्द्वयुद्धेन जित्वा कृष्णेनास्मिन् पणितमखिलं हारमाकृष्य नीतम्।
पृष्ठं याता लघुलघुतरां पीड़यित्वास्य बाहू राधा सर्वं यदि हृतवती तामधावत्तदासौ।।२३१।।
(आ० २०/१४५)

---

(२२८) अब उन बृजसुन्दरियों ने प्रियतम श्रीकृष्ण को मध्य में रखकर चारों ओर मण्डलाकार बना लिया और वे परस्पर मिलकर करकमलों द्वारा जल पर आघात करने लगीं उससे कालिन्दी के जल में जो ऊँची २ तरंगे उठ रही थी उससे मानो वे रोमांचित होती हुई प्रियतम श्रीकृष्ण के वक्षस्थल का स्पर्श कर रही थी।

(२२६) अबलावृन्द (बृजसुन्दरियों) ने अपने दोनों हाथों की उंगली रूपी कलिकाओं को एक दूसरे में ग्रथित (पिरोकर) कर सम्पुट सा बना लिया और फिर उसमें जलभर कर उसे जोर से दबाकर पिचकारी की तरह बना (मणिबन्ध और कनिष्ठा उंगली तक हाथ का बाहरी भाग) उससे पुनः २ जलधारा छोड़ती हुई श्रीहरि को भिगाने लगीं। श्रीकृष्ण उस समय कन्दर्प के वारुणास्त्र तेज द्वारा विद्ध होते हुए शोभा पा रहे थे।

(२३०) तदनन्तर, गोपिकागणों द्वारा छोड़ी गयी उस वारिधारा को मदन का संहार रहित वारुणास्त्र ज्ञानकर उसका प्रतीकार करने में समर्थ होते हुए भी, लीलावश जल में डूबकर उनके नीवीबन्धन रज्जू को कौतुहलाक्रान्त होकर हरण करने लगे। तब वे गोपिकागण अपने २ नीवीबन्धनरज्जू को धारण कर व्यग्रहस्ता होकर पलायन करने लगीं, श्रीकृष्ण अकेले ही सबके ऊपर अतिशय रूप से जल छिड़कने लगे।

(२३१) अब श्रीकृष्ण ने उनमें से प्रत्येक को शीघ्र ही जल छिड़कने के द्वंदयुद्ध में परास्त करके उनसे जा`दाव में हार लगाये हुए थे वे सब छीनकर उनसे ले लिये और उनको अपनी बगल में दबा लिया तब श्रीराधारानी ने अतिशीघ्र ही उनके पीछे जाकर अपनी कोमल उंगलियों से उनकी बाहुओं को दबाते हुए उनकी बगल को खोलकर सब हार छीन लिये तब श्रीकृष्ण उनके पीछे दौड़ने लगे।

राधादेव्या चपलशफरीघटनाशंकिताक्ष्या कण्ठग्राहं भयचकितया गाढमाश्लिष्यमाणः।
प्रत्याश्लिष्यन्ननुपधि मुहुः श्लाघमानः शफर्य्यास्तत्सौहृद्यं हरिरतितरां सिष्मिये मोदमानः।।२३२।।
(आ० २०/१४७)

आचिन्वानां कमलममलं क्वापि गाधेऽपि नीरे गम्भीरत्वाभिनयचकितां शंकया पंकिलाक्षीम्।
दोर्भ्यां वक्षोभुवि सुनिवड़ापीड़मुत्थाप्यमानां कान्तेनैनां सरसकुतुकं ताः समीक्षाम्बभूवुः।।२३३।।
(आ० २०/१४६)

पद्मैः पद्मैः स्वयमवचितैस्तन्मृणालैर्मृणालै–र्लीलायुद्धं यदजनि मिथस्तत्र योषिन्मणीनाम्।
तासां तस्मिन्नजनि कुतुकं पश्यतस्तत् प्रमोदात् कृष्णस्यैव प्रहरणवशेनवै रुग्नं मनोऽभूत्।।२३४।।
(आ० २०/१४८)

निर्लेपः कुचमण्डलो मृगदशां हारावली निर्गुणा नेत्राम्भोरुहमञ्जनेन रहितं नीरागमोष्ठाधरम्।
निर्ग्रन्थिर्मणिमेखला कचततिर्मोक्षं ता काचन श्रीरासीद्द्विगुनैव सा घनरसे मग्नस्य योग्यं हि तत्।।२३५।।
(आ० २०/१५०)

---

(२३२) देवी (लीलामयी) श्रीराधिका ने चंचल मछली के फरफर कर शब्द करने से शंकित तथा भय विह्वल होकर श्रीकृष्ण का कण्ठ धारण करती हुईं उनको प्रगाढ़ रूप से आलिंगन कर लिया और श्रीहरि ने भी उनको अपने आलिंगन में लेते हुए मछली के सौहार्द (उपकार) की पुनः २ निष्कपट भाव से प्रशंसा करते हुए, अतिशय आनन्दित होते हुए मृदु हास्य करने लगे।

(२३३) तदनन्तर श्रीराधिका एक सुन्दर कमल का चयन करने के लिये जल में जहाँ थोड़ा सा जल था वहाँ अगाध जल का अभिनय करते हुए (अर्थात् आगे तो जल बहुत गहरा है, मैं यहाँ से आगे कैसे जा सकती हूँ) इस प्रकार अपनी अंगचेष्टा द्वारा अगाध जल का चकित होकर अभिनय करती हुई, और श्रीकृष्ण उनको बचाने के लिये दौड़कर आ रहे हैं, यह देख व्याकुलित एवं शंकित सी हो रही थी। श्रीकृष्ण पीछे से अपनी भुजाओं द्वारा उनके वक्षोज युगल का स्पर्श करते हुए उनको मानो ऊपर उठाने लगे तब सभी गोपसुन्दरी गण श्रीराधा के प्रति परिहास युक्त कौतुक भाव से देखने लगीं।

(२३४) तत्पश्चात् कहीं २ स्वयं कमलों का चयन कर कमल से कमल और मृणाल से मृणाल द्वारा उन रमणी शिरोमणिगणों का परस्पर में ही कौतुकवश लीलायुद्ध होने लगा (अर्थात् कौतुक या हँसी का खेल, इसके अतिरिक्त इस युद्ध का और कोई कारण नहीं था) किंतु उसका दर्शन कर परमानंदित होते हुए श्रीकृष्ण ही स्वयं कामपीड़ित (प्रेम से द्रवीभूत) होने लगे।

(२३५) इधर जलक्रीड़ा से मृगलोचनागणों का वक्षस्थल अनुलेपन विहीन, (केशर चन्दन आदि जल से धुल गया) हारावली गुणशून्य (हार टूट गये) नयन अंजनरहित, ओष्ठाधर रागहीन (लालिमा रहित) मणि मेखला गुणरहित (टूट गयी) और केशपाश मुक्त (खुल गये) हो तब उनकी अनिर्वचनीय शोभा और दुगनी हो गयी। वस्तुतः धन रस (श्रृंगार रस) में डूब कर इस प्रकार की दशा का होना योग्य (उचित) ही है।

कृष्णे कर्षति कोकयुग्मकमियं दोर्भ्यां व्यधात् स्वस्तिकं कण्ठे चारुमृणालमर्पयति सा बाहू दधे कुञ्चितौ।
पद्मं जिघ्रति पाणिनास्यमवृणोदित्त्थं जले खेलतोरस्पर्शा सुरतिस्तयोः प्रियसखीवृन्दस्य रम्याभवत्।।२३६।।

(अ० ५/१७)

जलावगाहे च्युतमेखलायाः शैवालवल्लैव वभौ नितम्बः।
अकैतवं रूपमहेतुहार्दं, सर्वास्ववस्थासु सदैकरूपम्।।२३७।।

(अ० ५/५०)

काचित् सख्याधिकस्नेहा तत्खेदं दृष्ट्वा तां प्रत्याह–
अलमलमभिलाषेणामुना वारिखेला कुतुकिनि कमलानामाहृतेः कौतुकस्य।
कलय कलितमंगं कण्टकैर्नाललग्नैः शिव शिव परिदष्टं षट्पदेनाधरोष्ठम्।।२३८।।

(आ० ८/४५)

व्यात्युक्षीयुधि राधया घनरसैः पर्य्युक्ष्यमाणस्यते माल्यं भंगमवाप वीर तिलकोयातः किलादृश्यताम्।
वक्त्रेन्दौ प्रतिमाच्छलेन शरणं लब्धः सखीं कौस्तुभ–स्तन्मा भूश्चकितो विमुक्तचिकुरं नार्दत्यसो त्वद्विधम्।।२३६।।

(उ० १०/२३४)

---

(२३६) जब श्रीकृष्ण चक्रवाकयुगल का आकर्षण करते हैं तो श्रीराधिका अपने दोनों हाथों से स्वस्तिक रचना करने लगीं और जब श्रीकृष्ण सुकोमल मृणाल को फैंकते है तो श्रीराधा अपनी दोनों भुजाओं को कुछ टेढ़ा करती हैं। (जब श्रीकृष्ण कमल का फूल लेकर सूंघने लगे तो श्रीराधिका अपने हस्तकमल द्वारा अपना मुखमण्डल ढकने लगती है इस प्रकार जल के मध्य में क्रीड़ापरायण उन दोनों की स्पर्शादि रहित यह सुरतक्रीड़ा प्रिय सखीवृन्द को अतिशय रूप से मनोहर प्रतीत हो रही थी।)

(२३७) जल में अवगाहन करते समय श्रीराधिका की मेखला टूट गयी तो शैवाल लता से ही वेष्टित होकर उनका नितम्बदेश शोभा पाने लगा। वस्तुतः अकृत्रिम रूप और कारण रहित प्रीति सभी अवस्थाओं में एक सी शोभा को प्राप्त होती है (अर्थात् सदा ही सुन्दर एवं स्थिर होती है)।

(२३८) श्रीराधिका के प्रति अधिक स्नेह रखने वाली कोई सखी उनसे कहने लगी– अरी सलिल क्रीड़ा कौतुकिनि (कौतुकवश जल विहार करने वाली) तुम अब और कमलों के काँटों से बिंध गये है और अधरोष्ठ मत्तमधुकरों द्वारा परिदष्ट (काट लिये गये हैं) हो रहे हैं।

(२३६) इधर विशाखा (परिहास करती हुई) श्रीकृष्ण से कहने लगीं– हे वीर ! जल केलियुद्ध में श्रीराधा द्वारा जल छिरके जाने से तुम्हारे गले से माला टूट गयी है, ललाट पर तिलक भी दिखायी नहीं पड़ रहा है, कौस्तुम ने प्रतिबिम्ब के छल से वदनचन्द्र की शरण ले ली है (अर्थात् मणि घुल २ कर इतनी स्वच्छ होकर चमक रही है कि उसका प्रतिबिम्ब मुखचन्द्र में पड़ रहा है) तुम्हारे केशपाश खुल गये हैं अतः सब चकित (दुःखित) मत होओ तुम्हारे जैसे (हार कर परेशान हुए) जन को अब हमारी सखी और ज्यादा दुःख नहीं देंगीं।

पद्मैः केशाभरणममलैरुत्पलैः कर्णभूषा हारं कृत्वा विस–लतिकया मेखलां शैवलेन।
क्रीड़ोपान्ते मणिमयशिरोभूषणादीनि तानि प्रेम्णा नार्य्यो दिनमणिभुवे प्रीतिदेयानि चक्रुः।।२४०।।
(आ० २०/१५०)

उल्लास्य वामकर–वारिरुहेण वारि झंकारि–कंकणकलेन च दक्षिणेन।
संताड्य चारु जलमण्डुकवाद्यलीलामातेनुरुत्सव–समाप्तिफलामिवैताः।।२४१।।
(आ० २०/१५२)

स्नानोर्त्तीणाः कनक–नलिनिस्पर्द्धिभासो नितम्बं क्रान्त्वा स्रस्तैरविरतपयोबिन्दु–निःस्यन्दभाग्भिः।
रेजुः केशैरथ हठहृतैरश्रु–मुञ्चद्भिरुच्चै–र्ध्वान्तैः पृष्ठानुसरणपरैरंशुमाला इवेन्दोः।।२४२।।
(आ० २०/१५३)

आलेपनालंकरणैरमूषा–मनावृता वारिविहार धौता।
क्लिन्नाम्बरोद्यत्सहजांगशोभा लोभाय कृष्णस्य दृशोस्तदासीत्।।२४३।।
(आ० २३/७२)

---

(२४०) इसके पश्चात् गोपनारीगण सुन्दर कमलों द्वारा अपने केशों के आभरण, निर्मल नीलकमल द्वारा कर्णभूषण, मृणाल लतिका द्वारा हार एवं शैवाल द्वारा कटि की मेखला बनाकर जलक्रीड़ा करने लगीं और पुनः क्रीड़ा की समाप्ति पर अपने मणिमय शिरोभूषण तथा अन्य अलंकारों को प्रेम सहित श्रीयमुनाजी को दान (प्रेमोपहार) कर दिया।

(२४१) तत्पश्चात् बृजसुन्दरी वृन्द ने कंकण की मधुर झंकार करते हुए अपने बांये करकमल से जल उठाकर दांये हाथ से उसको संताड़नपूर्वक (जोर से बजाते हुए) मानो उत्सव की समाप्ति फल के सदृश सुन्दर जलमण्डूकवाद्य लीला का विस्तार करने लगीं।

(२४२) तदनन्तर स्वर्णकमलिनी से भी अधिक सुन्दर कान्ति वाली गोपांगना वृन्द अपने अंगों का तैल उबटन पूर्वक मार्जित कर स्नानोपरांत जल से ऊपर उठकर आयीं। उनके नितम्ब तक फैले हुए केशकलापों से बिन्दु २ जल टपक रहा था उस समय उनकी इस प्रकार शोभा हो रही थी मानो चाँद की किरण माला के पीछे हठ पूर्वक अनुसरण करती हुई अंधकार राशि अश्रुविमोचन कर रही हो।

(२४३) इस प्रकार जलक्रीड़ा में अत्यंत आसक्त गोपिकागणों के जल से भीगे हुए वस्त्रों में से निकलती हुई अंगों की शोभा, जोकि आलेपन एवं आभूषणों से रहित, जल से धुले हुए होने के कारण श्रीकृष्ण के नेत्रों को अतिशय सुख देने वाली हो रही थी।

तासां वक्षश्चन्दनैः श्वेततोया कृष्णा साम्यं गंगयासौ गतापि।
शौरेस्ततत्केलिसौभाग्यलाभात्ताभिः शश्वत् सुष्ठु सा तामजैषीत्।।२४४।।

(गोवि० २३/७३)

इत्त्थं विधायाम्बुविहारनृत्यं, कान्तः सकान्तानिचयस्तटाप्तः।
सखीकुलैर्मार्जितकेश्वर्ष्मा, दधार प्रत्युद्गमनीयवस्त्रम्।।२४५।।

(गोवि० २३/७४)

वृन्दा ताभि समं कृष्णमानीय स्वर्णमण्डपम्।
तत्पूर्वकुट्टिमे पुष्पस्तरणे तं न्यवीविशत्।।२४६।।

(गोवि० २३/७५)

ततः सवृन्दोपनिनाय वृन्दा, कल्पागवल्ली–फलसम्पुटांस्तान्।
पूर्णान् विचित्राम्बर–भूषणानु, लेपाञ्जनैर्नागजवर्णकैश्च।।२४७।।

(गोवि० २३/७६)

तत्तन्नामांकितानालीततिरादाय पेटकान्।
कृष्णं राधां सखीश्चामूः पृथक् पृथगभूषयत्।।२४८।। (गोवि० २३/७७)

---

(२४४) गोपीजनों के वक्षस्थल के चन्दन से कालिन्दी का जल श्वेतवर्ण का हो गया और श्रीयमुना, गंगा से समता प्राप्त करने पर भी गोपीजनों के साथ श्रीकृष्ण की जलकेलिरूप सौभाग्य को प्राप्त कर मानो गंगा को सम्यक रूप से परास्त कर रही थी।

वेश रचना आदि भोजन एवं शयन लीला :–

(२४५) श्रीकृष्ण ने इस प्रकार जलविहार एवं जलनृत्य को समाप्त किया और अपनी प्रियागणों के साथ यमुनाजी की तटवर्ती भूमि पर आ गये। सखीगणों ने उनके केशों को मार्जनी द्वारा (कंघी) सुलझाकर बनया और अंग प्रत्यंग का अच्छी प्रकार मार्जन कर उनको धुले हुए दो वस्त्र (उत्तरीय एवं परिधेय) पहनाये तथा सभी ने धौतवस्त्र पहन लिये।

(२४६) तत्पश्चात् वृन्दा देवी सभी को (गोपियों सहित श्रीकृष्ण को) सुवर्ण मण्डप पर ले गयीं उसके पूर्ववर्ती वेदिका पर सबको बैठा दिया।

(२४७) अब श्रीवृन्दादेवी ने सखीगण के साथ मिलकर उन सबको विचित्र वस्त्र, आभूषण, अनुलेपन, सिन्दूर, अंजन तथा अन्यान्य साजसज्जा के उपकरणों से परिपूर्ण सम्पुट जैसे कल्पवृक्षों एवं लताओं के फल, उपहार स्वरूप में लाकर सामने रख दिये।

(२४८) अब सेवापरायणा सखीगण उन सब फलों को (जो पिटारी के समान थे) जिन पर श्रीकृष्ण एवं गोपीगणों का नाम अंकित था और उनके बीच जो द्रव्य एवं वेष सज्जादि का सामान रक्खा था उसे निकाल २ कर श्रीकृष्ण, श्रीराधा तथा उनकी सखियों का श्रृंगार करने लगीं।

हरिरुज्जवल रसमूर्त्ती, रति परिणतिमूर्त्तयो हि राधाद्याः।
विधुरयमस्य कलास्ता, एकात्मनोऽपि तत्पृथग्देहाः।।२४६।।

(गोवि० २३/७८)

मिथः स्नेहाभ्यंगरभ्याः सख्योद्वर्त्तन–सुप्रभाः।
तारुण्यामृत–सुस्नाता लावण्यवसनोज्जवलाः।।२५०।।

(गोवि० २३/७६)

मिथः सौभाग्यतिलकाः, सौन्दर्यस्थासकाञ्चिताः।
अष्टाभिश्चित्रिताङ्ग्यश्च, स्तम्भाद्यैर्भवावर्णकैः।।२५१।।

(गोवि० २३/८०)

किलकिञ्चितविव्वोकाद्युन्मादोत्सुकतादिभिः।
नानाभावैरलंकारैः सुष्ठवलंकृतमूर्त्तयः।।२५२।।

(गोवि० २३/८१)

सप्रियास्ताः प्रिया यद्यप्यन्तरित्त्थं विभूषिताः।
प्रियालिभिर्वहिरपि भूषिता भूषणैर्वभूः।।२५३।।

(गोवि० २३/८२)

---

(२४६) श्रीकृष्ण उज्जवल रस अर्थात् श्रृंगार रस की मूर्ती स्वरूप और श्रीराधा (श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति) रति की परिणति स्वरूपिणि, एवं श्रीकृष्ण चन्द्र स्वरूप और श्रीराधा उनकी कला स्वरूपा, दोनों एकात्मा होते हुए भी पृथक् २ देह को धारण कर लीला कर रहे हैं।

(२५०) श्रीराधा तथा अन्य सब सखीवृन्द, श्रीकृष्ण के साथ मिलकर परस्पर की प्रीतिरूपी स्नेह (तेल) से रमणीय अंगों को धारण करती हुई, सख्यभाव रूपी उद्धर्त्तन (उबटन) से सुन्दर कान्तियुक्त होकर, यौवन रूपी अमृत (जल) से सुन्दर स्नान कर, लावण्य रूपी वस्त्रों को पहनकर अत्यंत उज्जवल अंगों से शोभा पाने लगीं।

(२५१) एवं वे परस्पर के सौभाग्य रूपी तिलक से सुशोभिता, सौन्दर्यरूपी सुगन्धी पदार्थों से चर्चिता, स्तम्भ, स्वेद आदि अष्ट प्रकार के सात्विक भावों से विचित्रांगी होकर विराज रहीं थीं।

(२५२) किलकिंचित, विव्वोक, उन्माद, औत्सुक्य आदि नाना प्रकार के व्यभिभारी भावों से एवं अंगज, स्वभावज विविध अलंकारों से अलंकृत हो रही थीं।

(२५३) समस्त प्रियागण, प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ यद्यपि इस प्रकार अंतःकरण में उठने वाले नाना भावालंकारों से विभूषित हो रही थीं, फिर भी बाहर से सखीगण उनको नाना भूषणों से सुसज्जित कर रहीं थी जिससे उनकी दुगुनी शोभा प्रकाशित हो रही थी।

अनंगगुटिकां सीधुविलासं दुग्धलडडुकम्।
आनीतं रूपमन्जर्य्या यद्यानि वृन्दया वनात्।।२५४।।

(गोवि० २३/८३)

फलानि रसरूपाणि मधुतुल्यरसानि च।
तान्यत्त्वाचम्य ताभिः स विवेश केलिमन्दिरम्।।२५५।।

(गोवि० २३/८४)

तस्मिन्मुक्तचतुर्द्वारि यमुनानिलशीतले।
कोटिसूर्य्यांशुसद्रत्नचयांशु–परमोज्जवले।।२५६।।

(गोवि० २३/८५)

मनोजकेलिनिलयेऽगुरुधूमातिसौरभे।
विन्यस्तरत्नपर्य्यंके हंसतूलिकयान्विते।।२५७।।

(गोवि० २३/८६)

सूक्ष्माम्बरवृता वृन्तसत्पुष्पस्तरणोपरि।
नानोपधानचित्रान्ते कृष्णाः सुष्वाप कान्तया।।२५८।। (गोवि० २३/८७)

पल्यंकपार्श्वस्थित खट्टिकायुगे सुखं निविष्टे ललिताविशाखिके।
कृष्णास्यताम्बूल–सुचर्व्वितानने ताम्बूलमास्वादयतां निजेश्वरो।।२५६।।

(गोवि० २३/८८)

(२५४–२५५) अब श्रीरूप मंजरी जी ने प्रिया प्रियतम तथा सखीवृन्द के समक्ष भोजनार्थ अनंगगुटिका, सीधुविलास, दूध, लड्डू आदि ले आयीं एवं श्रीवृन्दा देवी भी वनों से मधुर, रसाल, सुगन्धिपूर्ण फल ले आयीं जिनका सबने भोजन किया और आचमन कर केलि मन्दिर में प्रवेश किया।

(२५६–२५८) तत्पश्चात् जिसके चारों द्वार खुले हैं, और श्रीयमुनाजी की वायु से सुशीतल एवं कोटि सूर्य की किरणों के सदृश जो उज्जवल रत्नों की किरणों से प्रकाशमान, अगरु एवं धूप के धुंए से सुगन्धित, ऐसे कन्दर्प केलिमन्दिर में जहाँ रत्नपलंग जिस पर हंस के समान शुभ्र कोमल रुइ से भरे सूक्ष वस्त्रावृत तकिये प्रान्तदेश में (किनारों पर) सुशोभित हैं और सुन्दर फूलों की (जो वृन्तहीन अर्थात् बीच का कठिन भाग निकालकर केवल पंखुड़ी) शैय्या, जिस पर शुभ्र सुकोमल वस्त्र बिछा है (उस पर) प्रिया प्रियतम दोनों ने जाकर शयन किया।

(२५६) उस पलंग के दोनों ओर दो छोटी चौकियों पर ललिता विशाखा सुखपूर्वक विराजमान है और वे श्रीकृष्ण के सम्यक रूप से आस्वादन किये गये ताम्बूल को ग्रहण कर (स्वयं प्रसादी लिया) और पुनः अपने प्राणेश्वर युगल को ताम्बूल आस्वादन कराने लगीं।

श्रीरूपरतिमञ्जर्यो पादसम्वाहनंतयोः।
चक्रतुश्चापरा धन्या व्यजनैस्तावबीजयन्।।२६०।। (गोवि० २३/८६)

क्षणं तौ परिचर्येत्थं निर्गताः केलिमन्दिरात्।
सख्यस्ताः सुषुपुः स्वे स्वे कल्पवृक्ष–लतालये।।२६१।। (गोवि० २३/६०)

उर्वोः स्वयोः कनकपीठयोः क्रमान्निधाय पादाम्बुरुहे निजेशयोः।
द्वे दासिके तच्छयनान्त–संगते दृग्–बिन्दुभिः पाद्यमिवोपजह्रतुः।।२६२।।
(कृ० भा० २०/११)

उद्भिन्तरोमांकुरपालिरेव प्रापार्घ्यतां किन्तु तयापि शंकाम्।
तन्मार्दवालोचनया दधत्यौ, पाण्यम्बुजैराचयतामिवैते।।२६३।। (कृ० भा० २०/१२)

गन्धन्तु कस्तूर्यमृतांशु–पंकै, र्वक्षःस्थलस्थैरुपकल्प्य सद्यः।
निःश्वासधूपन्नखरत्नदीपै, रालोकमाल्यैर्धिनुतः स्म नीत्या।।२६४।।
(कृ० भा० २०/१३)

नैवेद्यतायां करकावुरोजौ, संस्पर्शनेनाभिमतौ विधाय।
प्राणप्रदीपैः स्मितचन्द्रमिश्रै, र्निमल्छनं प्रेमभराद्वधत्ताम्।।२६५।। (कृ० भा० २०/१४)

मंजरीगण की सेवा :–

(२६०–२६१) उस समय श्रीरूप मंजरी एवं श्रीरतिमंजरी दोनों श्रीराधाकृष्ण के चरण सम्वाहन करने लगीं एवं अन्यान्य धन्यतमासखीवृन्द चंवर व्यजन करने लगीं। इस प्रकार सखीवृन्द ने कुछ समय तक (अल्प समय) श्रीराधाकृष्ण की सेवा सम्पादन कर विलास मन्दिर से बाहर आकर अपने २ कल्पतरुलतानिर्मितगृहों में जाकर शयन किया।

(२६२–२६३) श्रीराधाकृष्ण के शयन करने पर दो किंकरी उनकी शैय्या के किनारे बैठकर अपने उरुयुगल रूपी कनकपीठ पर अपनी प्राणेश्वरि एवं प्राणेश्वर के चरण रूपी देवता को बैठाकर पूजा करने लगीं, अर्थात् जिस प्रकार पूजनगण पूजा करते समय अपने देवता को सिंहासन पर बैठाकर पाद्य आदि द्वारा पूजा करते हैं उसी प्रकार इन दोनों दासियों ने अपने उरु युगल रूपी कनकपीठपर युगलचरणरूपी अभीष्ट देवता को विराजमान कर प्रथम अपने नयन जल बिन्दु (अश्रु) रूप पाद्य अर्पित किया और अपने रोमांचश्रेणी रूप अर्घ्य प्रदान किया और फिर हस्तकमल द्वारा अर्चना करने लगीं इस पर भी उनके चरणकमलों की कोमलता का विचार कर (कहीं कष्ट न हो रहा हो) शंका होने लगी और उन्होंने धीरे–२ अपने नेत्रों से स्पर्श करा लिया।

(२६४–२६५) इसके पश्चात् उन्होंने गन्ध (चन्दन केशर आदि) अर्पण किया। (यद्यपि पुष्प से पहले गन्ध देना चाहिए किन्तु प्रेम सेवा में इस प्रकार विपरीतक्रम हो जाता है) अतः जो चन्दन कर्पूर युक्त कस्तूरी का लेप उनके वक्षस्थल पर लगा था, वही मानो गन्ध अर्पण किया और अपने निश्वासरूपी धूप, नखरत्नरूपी दीप दान कर पुनः उरोजरूपी दाड़िमयुगल को नैवेद्य रूप में कल्पना कर, मृदुस्मितरूपी कर्पूर सहित प्राणों के प्रदीप से प्रेमसहित आरती उतारी।

हिरण्यरम्भोपरिवर्त्तिपल्लवे, ष्वासज्य रक्तोत्पलकोरकोत्तमाः।
भृंगालिझंकारभृतोऽनटन्नहो, तत्पादसम्वाहनदम्भतोऽसकृत्।।२६६।।

(कृ० भा० २०/१५)

तौ वीजयन्त्यो वलयानि झंकृति–स्तुतैः प्रसूनव्यजनैः परा वभूः।
मूर्त्तैर्यशोभिः कविवृन्दवर्णितैः किं स्वैर धिन्वन्नाधिपौ नटीकृतैः।।२६७।।

(कृ० भा० २०/१६)

सुवर्णवर्णाः क्रमुकेन्दुजाती–लवंगचूर्णाद्युचितांशभाजः।
ताम्बूलवीटीरपटे न्यधत्तां, तदास्ययोः पार्श्वगते कराभ्याम्।।२६८।।

(कृ० भा० २०/१७)

यौ पूर्णचन्द्रावुदितौ निरंकौ तदंशुपीयूष रसाभिषिक्ते।
स्वपल्लवाभ्यां कलिके गृहीत्वा गांगेयवल्ल्यौ मुहुरीजतुः किम् ?

(कृ० भा० २०/१८)

कान्ते ! दिशैताः शयनाय गन्तुं, घूर्णदृशः संप्रति स्विन्नगात्रीः।
श्रान्तिः पदोस्ते न शमं ययौ चे, त्तदर्थमेतावहमेव धास्ये।।२७०।। (कृ० भा० २०/१९)

(२६६–२६७) अब ये किंकरीद्वय श्रीराधाकृष्ण की चरणसम्वाहन सेवा करने लगी– उनके उरुदेश मानो स्वर्णकदली के ऊपर चरणयुगल रूपी पल्लवयुगल रखे हुए थे और वे चरण दबाने के लिए अपने हाथ की मुट्ठी बनाकर मानो लालकमल की कली में चरण को रख कभी ऊपर कभी नीचे बार–२ घुमा घुमाकर नचाती हुई दबाने लगीं और उस समय उसकी कलाइ पर जो चूड़ी थी वे भ्रमर श्रेणी की भांति झंकार करने लगीं। और दो किंकरी भी अपनी चूड़ियों की झंकार करती हुई फूकों के पंखे हाथ में लेकर धीरे–२ व्यजन करने लगीं। देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि ये कविवृन्द द्वारा वर्णित युगल यश को ही मूर्तीमान कर नचाते हुए अपने प्राणाधीश एवं प्राणेश्वरि को सुखी कर रहीं हैं।

(२६८–२६९) श्रीराधाकृष्ण के दोनों पार्श्व में (ओर) दो किंकरी, सुपारी, कर्पूर, जायफल, लवंगचूर्ण, आदि द्वारा निर्मित स्वर्णवर्ण की पान की बीड़ी उनके मुखारविन्द में अर्पण कर रहीं थीं जिसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था – निकुंजमन्दिर में कुसुम शैय्या के ऊपर अकलंक पूर्णचन्द्र युगल उदय हुए है उनकी अमृतमयी किरणों से अभिषिक्त दो स्वर्णलता मानो अपने–२ पल्लवों (हाथों) द्वारा अर्चना कर रहीं हैं।

(२७०) तदनन्तर रसिक नागरवर श्रीकृष्ण चन्द्र प्रियाजी के साथ लीलाविशेष की अभिलाषा करते हुए कहने लगे– हे प्रिये ! हे कान्ते ! तुम्हारी ये किंकरीगण नृत्यादि करके अत्यंत परिश्रान्त हो चुकी हैं। आलस्य से इनके नेत्र घूम रहे हैं अतएव शयन करने की इनको आज्ञा प्रदान करो। यदि तुम्हारे चरणयुगलों की थकावट दूर नहीं हुई है तो मैं स्वयं तुम्हारी चरण सेवा कर दूंगा।

इत्युक्तिमात्रेण समीहितस्यै, वार्थस्य सिद्धिं किल ता विदुष्यः।
संपूज्य देवाविव पूजयित्र्य, स्तन्मन्दिराल्लब्धवरा निरीयुः।।२७१।।

(कृ० भा० २०/२०)

निष्णात एवातनुतीर्थसारे, रोमाञ्चपूर्णः स्फुरितोज्जवलांगः।
स्मृत्युद्‌मबाशेष विशेषधर्म्मा, नुष्ठानदक्षो रभसं स भेजे।।२७२।।

(कृ० भा० २०/२१)

प्रारम्भ एवाघभिदस्तदास्या, मृतं त्रिराचम्य त एव यासीत्।
श्रद्धा तयैवाशु विधिर्वभूवा, नंगोऽपि सांगो निरपायमिष्टः।।२७३।।

(कृ० भा० २०/२२)

नानोपचारान् कलयन् मुदाशा, बन्धं वितन्वन्नपसार्य विघ्नान्।
स शातकुम्भातनुरत्नकुम्भे, कृत्वा करन्यासमुपात्तकान्तौ।।२७४।। (कृ० भा० २०/२३)

विद्युद्‌घनाचिक्रमिषां यदोपरि स्माराद्दधानाववलेऽवलेपतः।
तदा तु जालानि सखीदृशां वलाज्जालावलीं हर्षजलैः प्लुतां व्यधुः।।२७५।।

(कृ० भा० २०/४५)

---

(२७१) किंकरीगण श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनते ही "हमारी अभिलाषा पूर्ति की सिद्धि का समय उपस्थित हो गया है" यह जानकर, देवता की पूजा कर पुजारिन जैसे देवमन्दिर से बाहर आ जाती हैं उसी प्रकार निकुंजमन्दिर से मानो वर प्राप्त कर वे बाहर आ गयीं।

(२७२) तदनन्तर श्रीकृष्ण अतनु अर्थात् कन्दर्प तीर्थसार में निष्णात अर्थात् सम्यक स्नान कर, स्नाननिमित्त रोमांच से पूर्ण कलेवर होकर एवं मार्ज्जन आदि द्वारा उज्ज्वलित अंगों से युक्त होकर, स्मृति से जात अशेष विशेष धर्मानुष्ठान में दक्ष अतिशय हर्ष को प्राप्त हुए।

(२७३) स्नानोपरांत कर्म के प्रारम्भ में तीन बार (अधरामृत) का आचमन कर अधमर्दन श्रीकृष्ण के कर्म श्रद्धापूर्वक अभिलषित विधिपूर्वक अनंग (अर्थात् अंगहीन) होते हुए भी निर्विघ्न रूप से सांग अर्थात् साकार हो गये।

(२७४) कर्म के आरम्भ में उन्होंने यज्ञेश्वर की पूजा प्रारम्भ की और पूजा के पूर्व नाना उपचारों का संग्रह कर चुटकी द्वारा दशों दिशाओं को बन्धनकर विघ्नों को दूर किया और फिर स्वर्ण निर्मित महान शोभायुक्त महारत्नमय कुम्भ पर करन्यास कर देवता का पूजन करने लगे।

(२७५) श्रीराधाकृष्ण की रतिक्रीड़ा का दर्शनकर एक किंकरी अन्य किंकरी के प्रति कहने लगी– हे सखिगण ! देखो देखो मदन सम्बन्धी अहंकार के कारण आक्रमण करने की इच्छा से सौदामिनि नवनीरद के ऊपर बालप्रकाश कर रही है।" यह लीला दर्शन कर उनके नेत्रों से आनंद के अश्रु बह चले जिनसे गवाक्ष (झरोखे) भीग गये।

वहिस्तु यन्त्रव्यजनेन दास्य, स्तौ बीजयाञ्चक्रुरजस्रमस्रैः।
प्लुतेक्षणाश्चक्रुधुरप्रमेय, प्रेम्णे, तदात्वानवलोकदीनाः।।२७६।। (कृ० भा० २०/४६)

प्रफुल्लनीलाम्बुजसीधु चन्द्रः, कामं पपावित्यसहिष्णु सद्यः।
तत्रत्यमिन्दिन्दिरयोयुगं किं, बलात्तदीयामृतमप्यधासीत्।।२७७।।
(कृ० भा० २०/४७)

अभ्रान्तरुद्यच्चल, सूर्यमण्डले, ननर्त्त मुक्तावलिरात्तसम्मदा।
हंसावधूताः कनकावलीं श्रिता, वाद्यं विचित्रं रभसादवीवदन्।।२७८।।
(कृ० भा० २०/४८)

तत्रागतश्रीमधुसूदनोद्यद् गानं श्रुतिप्रेष्ठमभूदपूर्वम्।
येनैव सभ्या रसिकांगवल्ली द्रौत्यं दधे स्वेदमिषात् सवेपम्।।२७९।।
(कृ० भा० २०/४९)

वालास्तु कौटिल्पभृतोऽतिलौल्या–दितस्ततः संसरणं भजन्तः।
श्रुति प्रसक्ताः प्रतिकर्मभाता–स्तस्थुर्मदादैन्दव मण्डलान्तः।।२८०।। (कृ० भा० २०/५०)

(२७६) उस समय बाहर में स्थित दासीगण यन्त्रव्यजन (बाहर से खींचने वाला पंखा) करने लगी एवं उनके नेत्रों से अश्रुधारा अजस्र रूप से बहने लगी जिसके कारण दर्शन में बाधा पड़ने लगी इसी कारण वे अमृत अपने अपरिमित प्रेम के ऊपर ही क्रोध करने लगीं, अर्थात् यह प्रेम ही इस समय हमारे मधुरलीला दर्शन में बाधक हो रहा है अतः इस समय इसका होना हमारे पक्ष में दुःखदायक ही है ऐसा परस्पर कहने लगीं

(२७७) चन्द्रमा नीलकमल के मधुररस का पान करने लगा यह देखकर भ्रमर युगल को ईर्ष्या होने लगी, वे सोचने लगे यह तो हमारा पेय है अतः वे भ्रमर चन्द्र का अमृत बलपूर्वक पान करने लगे। अर्थात् श्रीकृष्ण के मुख रूपी प्रफुल्लित नीलकमल का मधु (अधरामृत) श्रीराधिका का मुख रूपी चन्द्र पान करने लगा तो यह न सहन कर पाने के कारण श्रीकृष्ण के नेत्र रूपी भ्रमरयुगल श्रीराधा के मुखचन्द्र की कान्ति रूपी अमृत का पान करने लगे।

(२७८–२७९) मेघ के ऊपर उदित चंचल सूर्यमण्डल के मध्य मोक्षप्राप्ति के निमित्त आनन्द के कारण मुक्तावली (मुक्तगण, दूसरे अर्थ में मोती की माला) नृत्य करने लगीं और कनकावली अर्थात् कंचन की भूमि पर स्थित हंस रूपी अवधूतगण हर्षपूर्वक वाद्य बजाने लगे। उस स्थान पर श्रीमधुसूदन के आगमन पर श्रुतिप्रिय गान होने लगा जिस गान के द्वारा शुक, नारद जैसे रसिकों की अंगलता सात्विक विकारों के कारण द्रवीभूत होकर कांपने लगी।

(२८०) महाकुटिल बाल (अज्ञ, मूर्ख) विषय भोगनिमित्त अत्यंत चंचल हुए इधर उधर बिखर गये और जो श्रुति सम्मत कर्ममार्ग में प्रसक्त, प्रति कर्म में ख्यात थे वे चन्द्रमण्डल में अवस्थान करने लगे।

अवार्यमाणामृतपानदृप्तयोः, विंखण्डित–स्थासक–नव्यवर्मणोः।
प्रयुक्त–चञ्चुदभुजनागपाशयो, यूंनोर्जिगीषा समवर्द्धतर्द्धिभिः।।२८१।।

(कृ० भा० २०/५१)

ताभ्यान्तु सन्धौ विहिते तदा तयोः प्रेम्णा प्रियायाः स्वकराम्बुजन्मना।
उत्त्थाय चक्रे श्रमतोय मार्जनं कैश्यालकाल्यम्बर–संवृतिञ्च सः।।२८२।।

(गोवि० १५/२५)

त्वं गोविन्द ! मयासि किं नु कबरीबन्धार्थमभ्यर्थितः क्लेशेनालमबद्ध एव चिकुरस्तोमो मुदं दोग्धि मे।
वक्त्रस्यापि न मार्जनं कुरु घनं धर्माम्बु मे रोचते नैवोत्तंसय मालतीर्मम शिरः खेदं भरेणाप्स्यति।।२८३।।

(उ० ११/४७)

इति तद्वाक्सुधां पीत्वात्याग्रहं स हरिर्यदा।
कृतवास्तु तदा राधा वेशायानुमतिं ददौ।।२८४।।

---

(२८१) जो अवार्यमान (निर्बाध) अमृतपान कर दर्पयुक्त हो गये थे और जिनका चन्दन द्वारा चर्चित कवच टूट चुका था और जो परस्पर की भुजा रूपी नागपाश में बंध गये थे ऐसे उन नवतरुण एवं नव्यतरुणी युगल की प्रतिक्षण नवनवायमान सम्भोगेच्छा सम्पत्ति द्वारा जिगीषा (परस्पर पर विजयपाने की इच्छा) बढ़ने लगी।

(२८२) तत्पश्चात् श्रीकृष्ण द्वारा प्रियतमा के अंग प्रत्यंग को स्पर्श तथा दर्शन की इच्छा रूपी सखी एवं श्रीराधा की ग्लानि रूपी तनु सेविका इन दोनों द्वारा उनमें मानो सन्धि हो गयी और ऐसा ही कराने के लिए श्रीराधारानी में ग्लानि उत्पन्न हुई, तब श्रीकृष्ण ने उठकर प्रेम से अपने करकमल से प्रियाजी का श्रमजल (पसीना) मार्जित किया और उनके केशपाश, अलकावली और वस्त्रादि को यथास्थान संभाल दिया।

(२८३) तदनन्तर श्रीकृष्ण जब श्रीराधा की वेश रचना (श्रृंगार) करने के लिए प्रस्तुत हुए तो मानिनि श्रीराधा कहने लगी– "गोविन्द ! मैंने तो आपसे प्रार्थना नहीं की फिर तुम मेरे केशों का बन्धन (वेणी गूंथना) क्यों कर रहे हो, मुझे अधिक दुःखी मत करो। यह खुले केश ही मुझे अच्छे लग रहे हैं और मेरे मुख का भी मार्जन मत करो, यह घर्माम्बु (पसीने के बिंदु) ही मुझे रुचिकर हैं, मालती की माला से भी मुझे विभूषित मत करो इसके भार से मेरा सिर दुःखने लगेगा।

(२८४) इस प्रकार श्रीराधारानी के वचन रूपी अमृत का पान कर श्रीहरि जब उनकी वेषभूषा के लिए अतिशय आग्रह करने लगे तब श्रीप्रियाजी ने उन्हें श्रृंगार करने की अनुमति प्रदान कर दी।

रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयोर्घटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कबरीभरम्।
कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपूराविति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत्।।२८५।।
(गीत० १२/२५)

चित्रं चिरस्पर्शसुखाय चूचुके कुर्वन्तमक्षिप्तमियं चलेक्षणा।
स्विन्नांगुलीकं पुलकाञ्चित श्रिया सव्येन चिक्षेप कुचेन केशवम्।।२८६।।
(उ० १४/१०६)

मुदा कुर्वन् पत्रांकुरमनुपमं पीनकुचयोः श्रुतिद्वन्दे गन्धाहृत–मधुपमिन्दीवरयुगम्।
सखेलं धम्मिलोपरि च कमलं कोमलमसौ निराबाधां राधां रमयति चिरं केशिदमनः।।२८७।।
(उ० ८/६२)

नीतं ते पुनरुक्ततां भ्रमरकैः कस्तूरिकापत्रकं नेत्राभ्यां विफलीकृतं कुवलयद्वन्द्वंच कर्णार्पितम्।
हारश्च स्मितकान्तिभंगिभिरलं पिष्टानुपेषीकृतः किं राधे! तव मण्डनेन नितरामंगैररसि द्योतिता।।२८८।।
(वि० ७/४८)

---

(२८५) श्रीराधारानी कहने लगी–"मेरे वक्षोजद्वय पर पत्र रचना करो, गण्ड स्थल पर चित्र बना दो, जघन स्थल पर मेखला पहना दो और वेणी में फूलों की माला सजा दो, हाथों में चूड़ी और चरणों में नूपुर धारण करा दो" यह वचन सुनकर वनमाली अतिशय प्रसन्न हो ठीक उसी प्रकार करने लगे।

(२८६) इस शोभा का दर्शनकर श्रीरूपमंजरी श्रीरतिमंजरी के प्रति कहने लगीं– 'हे सखि चिरकाल तक सुखस्पर्श के कारण विलम्ब करते हुए श्रीकृष्ण, श्रीराधा के वक्षोजाग्रभाग पर लतापत्र निर्माण कर रहे थे, किंतु ऐसा करते हुए उनके हस्तकमलों कं उंगली से स्वेद (सात्विक भाव के कारण) निकलने लगा, जिसे देखकर चंचलेक्षणा श्रीराधा ने अपने पुलकान्वित वाम वक्षोज प्रहार द्वारा उन्हें दूर हटा दिया।

(२८७) और भी देखो सखि! आज केशिमथन श्रीराधा के प्रेमाधीन होकर उनके पीन पयोधरयुगल पर अनुपम पत्रावली रचना कर रहे हैं, कानों में नीलकमल युगल पहना रहे है जिसकी सुगन्ध से पुंज २ मधुकर वृन्द धावित हो रहे हैं और शिर के अग्रभाग में कोमल कमल सजाकर कौतुकी श्रीहरि निर्बाध रूप से आज राधारानी के साथ रमण कर रहे हैं।

(२८८) श्रृंगार करते हुए श्रीकृष्ण, राधारानी के प्रति कहने लगे, प्रिये! तुम्हारे ललाट पर जो छोटी–२ घुंघराली अलक पड़ रहीं हैं इनके द्वारा तुम्हारा कस्तूरी का तिलक पुनरुक्तिता को प्राप्त हो रहा है अर्थात् जैसे कुछ अशुद्ध लिखा जाय तो पण्डितजन उसे गोलाकार बना देते हैं उसी प्रकार अलकों ने तिलक को गोलाकार बना दिया गया है अर्थात् वह व्यर्थ है और कानों में जो नीलकमल हैं उनको आपके नेत्रकमलों ने विफल कर दी है, अतएव हे राधे! आपको आभूषण पहनाने की कोई आवश्यकता नहीं है आपके समस्त अंगों द्वारा ही आपकी शोभा का विस्तार हो रहा है।

सदा न त्याज्यञ्चेदलिकतिलकं गर्भकमुत स्खलेन्नो नैरस्यान्मलयज–विलेपः सशशिकः।
स्थिरः कण्ठे हारः कृपणजनराश्च स्थिरतरः न वा तीरे त्याज्यामदनतटिनी नौरपि न वा।।२८६।।

चकोरं चन्द्रो न त्यजतु यदि मेघो न करकाशनीः प्राणाघातौ किरतु वत चेच्चातकमुखे।
तदैतान् ब्रूयासते विधुमुखि ! तुलायां समतया हरिः श्लाघित्वेत्थं वृषरविसुतां तां रमयति।।२९०।।
(युग्मकम्)

स्वाधीनभर्तृकावस्थां प्रापय्य राधिकां तया।
सहाययौ बहिः कृष्णः स्मयन् पूर्णमनोरथः।।२९१।।

(गोवि० २३/५४)

तयेरितः स कुञ्जेषु प्रविश्य युगपत् पृथक्।
स्वाधीनभर्त्तुकावस्थां प्रापयामास ताः सखीः।।२९२।।

(गोवि० २३/५५)

निर्गतः कुञ्जनिकरात् कृष्णस्ताभिरलक्षितः।
एकः सन् राधिकामागत् स्वदर्शन मृदुस्मिताम्।।२९३।। (गोवि० २३/५६)

(२९०) "यदि ललाट का तिलक और वेणी में बंधी माला सदा त्याज्य न हो, यदि कर्पूर चन्दन का लेपन नीरसता के कारण स्खलित न हो, यदि कर्पूर जन का धन सदा स्थिर हो अथवा यदि मदन तटिनि की नवीन नौका तीर पर ही न त्याज्य हो, मेघ यदि चातक के मुख में प्राण घातक वज्र न डाले, तब भले ही हे चन्द्रवदने ! तुम्हारे साथ इन सब वस्तुओं की तुलना दी जा सकती है" इस प्रकार के वचनों द्वारा श्रीहरि, श्रीवृषभानुनन्दिनी की रूपमाधुरी की प्रशंसा करते हुए उनका सुख विधान करते २ उनके साथ क्रीड़ा करने लगे।

(२९१) इस प्रकार श्रीकृष्ण, श्रीराधा के स्वाधीन भर्तृका अवस्था प्राप्त करा, विलास के अन्त में उनके ही आदेश द्वारा उनकी वेशभूषा कर, पूर्ण मनोरथ होकर, हँसते हुए कुंज से बाहर आ गये।

(२९२) तत्पश्चात् श्रीराधारानी द्वारा प्रेरित होकर श्रीकृष्ण ने सखीवृन्द की कुंजों में प्रवेश कर पृथक २ रूप से पूर्ववत् (श्रीराधारानी के साथ जिस प्रकार रमण किया) उन सबको भी स्वाधीन भर्तृका अवस्था को प्राप्त कराया।

(२९३) इसके पश्चात् श्रीकृष्ण अकेले ही समस्त कुंजों से बाहर आये लेकिन सखीवृद को यह रहस्य ज्ञात नहीं हुआ। श्रीकृष्ण अपने दर्शन से मधुर २ हास्य करती हुई श्रीराधा के समीप आ गये।

स्वबाहु–सन्दानितकण्ठया तया संविश्य पर्यंकवरे हरौ स्थिते।
तत्पादसम्वाहनशर्म–कर्मणां तत् किंकरीणां समपूरि वाञ्छितम्।।२६४।।
(कृ० भा० २०/१०)

पाययति पिबति चास्यं प्रेयसि ललिते ! क्व त्वमसीति।
सान्द्रानन्द–विनिद्रित–राधं स्वप्नायितं जयति।।२६५।। (अ० ५/१४)

अर्धाकुट्टम्लितानिमेषनयनं निष्पन्दतारं कियद्–दीर्घश्वासमलक्ष्यकण्ठनिनदं सानन्दतन्द्रायिता।
कृष्णो पाययति स्वकीयमधरं प्रागेव पीताधरे किञ्चित्त्वं ललिते पिबेति किमपि स्वप्नायते राधिका।।२६६।।
(अ० ५/१४)

श्रीरूपमञ्जरीमुख्याः सेवापरसखीजनाः।
तल्लीलामन्दिरबहिः कुट्टिमे शिश्यिरे सुखम्।।२६७।। (गोवि० २३/६१)

अलिन्दे कालिन्दीकमल–सुरभौ कुञ्जवसतेर्वसन्तीं वासन्ती–नवपरिमलोद्गारि–चिकुराम्।
त्वदुत्संगे निद्रासुखमुकुलिताक्षीं पुनरिमां कदाहं सेविष्ये किशलय–कलाप–व्यजनिनी।।२६८।।
(ल० ६/४०)

इति श्रीश्री भावनासार–संग्रहे नक्तलीलामृतास्वादनम् नाम अष्टम संग्रहः।।८।।

(२६४) तब अपनी वामबाहू प्रियाजी के गले में डालकर पलंग के ऊपर श्रीकृष्ण ने शयन किया और वे किंकरी गण जो "कब प्रियाप्रियतम शयन करेंगीं" निरन्तर यह अभिलाषा करती रहतीं हैं उनका मनोरथ पूर्ण हुआ।

(२६५) प्रगाढ़ आनन्द में भरकर निद्रिता श्रीराधिका के उस स्वप्नदर्शन की जय हो। जिस अवस्था में वे कह उठती है, "अरी ललिते ! प्रियतम मुझे अपने मुखचन्द्र का अमृत पान करा रहे हैं स्वयं भी अधर कमलों का पान कर रहे हैं इस समय तुम कहाँ हो ?

(२६६) प्रथम जब श्रीकृष्ण ने श्रीराधारानी का अधरामृत पान किया और जब वे अपना अधरामृत उनको पान कराने लगे तब उनको (श्रीराधा के) आनंद तन्द्रा का आवेश हुआ नेत्र कुछ आधे २ खुल गये, फिर नेत्रों की पलकें स्थिर हो गयीं तारे निष्पन्द हो गये कुछ दीर्घश्वास चलने लगी, कण्ठ का स्वर अस्पष्ट हो गया इस अवस्था में वे स्वप्न देखती हुईं पुकार उठीं– "अयि ललिते ! तुम भी थोड़ा सा (श्रीकृष्ण का अधर मधु) पान करो"

(२६७) तब श्रीरूप मंजरी आदि सेवापरायणा सखी सकल उस लीलाकुंज से बाहर वेदिका (अथवा बरामदे) पर जाकर शयन किया।

(२६८) हे नाथ श्यामसुन्दर ! जहाँ पर श्रीकालिन्दी में उत्पन्न कमलकुसुमों की सुगन्धि प्रवाहित हो रही है, ऐसे कुंज के गृह अंगण आपके क्रोड़देश में वासन्ती पुष्पों की सौरभ जैसे आमोदित केशों वाली, निमीलिताक्षी (श्रीराधारानी की) मैं कब पत्रों के व्यजन (कोमल पत्तों का पंखा) द्वारा सेवा करूंगी ?

इति श्रीश्री भावना सार–संग्रह की नक्त (रात्रि) कालीन लीलामृता स्वादन नाम अष्टम संग्रह

❖ श्री श्री गौरांग विधुर्जयति ❖

श्रीश्री भावना सार संग्रहः

अष्टम् संग्रहः

उपसंहार

नित्यानन्द–सनातनामलनवद्वीपाभिराम प्रभो भक्तोद्दाम विशालकीर्तनपराद्वैतामितानन्दद।
राधाभाव–विभावितान्तरतनो श्रीरूप–चिन्तामणे लक्ष्मीप्राण गदाधरप्रिय हरे विश्वम्भर त्राहि नः।।१।।
(मधु ५/१८)

यत्पादपंकजरजः शिरसा प्रणम्य धन्या भवन्ति नितरां वहवो जगत्याम्।
श्रीमत्सनातनतनुः सदयार्द्रचित्तो मन्दस्य मेऽप्यनुदिनं शरणं स एव।।२।।

श्रीरूपसंघ्रिपदं प्रणतमतिरहं नौमि भूमौ निपत्य श्रीराधाकृष्णलीलामृत–सलिलनिधौ मज्जिता येन लोकाः।
श्रीमच्चैतन्यचन्द्रोऽप्यतिशयकृपया यत्र शक्तिं प्रकाश्य श्रीमद्वृन्दावनीयं मधुररतिरसं दर्शयामास सर्वान्।।३।।

---

(१) हे गदाधरप्रिय, लक्ष्मीदेवी के प्राणस्वरूप विश्वम्भर हरे ! आप हमारी रक्षा करो। आप नित्य आनन्दमय हो अथवा आप नित्यानन्द प्रभु, सनातन गोस्वामी, एवं विमल (माया दोष रहित) नवद्वीपवासी जनों के सुन्दर प्रभु हो। आप भक्तवृन्द के साथ उद्दाम महासंकीर्तन परायण हो। आप अद्वितीय (अखण्ड) अपरिमित आनन्द प्रदान करने वाले हो अथवा श्रीअद्वैताचार्य प्रभु को असीम आनन्द प्रदान करने वाले हो। आपका अन्तर और बाहर शरीर श्रीराधा भाव से विभावित है। आपका सर्व शोभा से युक्त रूप जीवमात्र के प्रति चिन्तामणि स्वरूप है अर्थात् वांछित फल को प्रदान करने वाला है अथवा आप श्रीरूप गोस्वामी के लिए चिन्तामणि स्वरूप है।

(२) जिनकी चरणपंकज की रेणु को मस्तक द्वारा प्रणाम कर इस जगत के बहुत से व्यक्ति अतिशय रूप से धन्य हो जाते है। अपने जनों के प्रति दयार्द्रचित्त वे श्रीमान् (प्रेम सम्पत्ति से धनी) श्रीसनातन विग्रह अर्थात् सनातन गोस्वामी मुझ जैसे मन्दमति की एकमात्र शरण (आश्रय) हैं।

(३) जिन्होंने श्रीराधाकृष्णलीलामृत सागर में समस्त लोकों को डुबा दिया श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने अतिशय कृपा करके जिनके हृदय में अपनी शक्ति को प्रकाशित किया जिससे उन्होंने सबको श्रीवृन्दावन की मधुररस की लीला का परिचय कराया। मैं अति नम्रचित्त से भूमि पर निपतित होकर उन श्रीरूप गोस्वामी के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ।

श्रीचैतन्यकृपासुधाब्धिलहरीसिक्तं गभीरं गुणैः श्रीरूप–प्रणयप्रमोद्–सरसीभृंगादृत–स्वान्तकम्।
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरी–गिरिभृतोर्लीलामृतास्वादकम् तं श्रीमद्रधुनाथभट्टमनिशं वन्दे प्रमोदान्वितम्।।४।।

श्रीमद्गोपालभट्टः प्रभुवर करुणासागरो दीनबन्धू–स्तस्य श्रीपादपद्मं नतजन–शरणं सर्वदाहं नमामि।
श्रीमच्चैतन्यदेवः परमसदयधीः सान्द्रकारुण्ययुक्तः श्रीराधाकृष्ण–पादाम्बुज–परिचरणं शिक्षयामास यस्मै।।५।।

श्रीचैतन्यकृपा–सुधामयनदीवीचीभिरासिञ्चित श्रीमद्रूप–सनातनप्रियतमः श्रीजीव वात्सल्यवान्।
श्रीराधा सरसीतटे विनिवसन्नामामृतानन्दितो यस्तं श्रीरघुनाथदासमनिशं वन्दे कृपासागरम्।।६।।

श्रीमज्जीवः सदयहृदयो लोकदुर्गम्यभावो भक्तेस्तत्त्वं परममतुलं सर्वशास्त्रे निगूढ़म्।
कृष्णास्यापि प्रचुरचरितं यश्चकार प्रकाशं तस्य श्रीमच्चरणयुगलं नौमि नित्यं प्रपन्नः।।७।।

यः कृष्णचैतन्यकृपैकवित्त–स्तत्प्रेमहेमाभरणाढ्यचित्तः।
निपत्य भूमौ सततं नमाम–स्तं लोकनाथं प्रभुमाश्रयामः।।८।।

---

(४) मैं परमानन्दित मन से श्रीमद्रघुनाथ भट्ट गोस्वामीजी की वन्दना करता हूँ जो श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपासुधासमुद्र की तरंगों से स्नात (भीगे हुए) सब गुणों में गम्भीर (गुणगान) जिनका चित्त रूपी कमल, श्रीरूप गोस्वामी के प्रेमानन्द सरोवर के भ्रमरों से अत्यंत प्रीति करता है एवं जो श्रीराधा गिरिधारी की लीला के आस्वादन में डूबे रहते हैं।

(५) परम–सदयन्हृदय श्रीचैतन्य देव ने अत्यंत करुणाकर जिनको श्रीराधाकृष्ण के पादपद्म की सेवा की शिक्षा दी। प्रणत जनों के आश्रय उन श्रीगोपालभट्ट प्रभु के पाद्पद्मों की मैं सदा वन्दना करता हूँ। वे असीम करुणा के सागर एवं दीनजनों के बन्धु हैं।

(६) जो श्रीचैतन्यमहाप्रभु की कृपासुधामय नदी की तरंगों से सम्यक सिंचित और जो श्रीरूप सनातन गोस्वमी के प्रियतम है और श्रीजीव गोस्वामी जिनके प्रति परमवात्सल्य रखते हैं, जो श्रीराधाकुण्ड तट पर निवास कर निरंतर नामामृत पान से आनंदित रहते हैं, उन कृपा के सागर श्रीरघुनाथदास गोस्वामीजी की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

(७) श्रीमान् जीवगोस्वामी दयाद्रचित्त एवं जिनके भाव समस्त लोकों के लिए दुर्गम्य हैं जिनके द्वारा सब शास्त्रों के निगूढ़ परम अतुलनीय भक्ति तत्व (षडसन्दर्भ) एवं श्रीकृष्ण की अद्भुत चरित्र (गोपालचम्पू) प्रकाशित किये गये हैं। मैं नित्य शरणागत होकर उनके चरण युगल की वन्दना करता हूँ।

(८) श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की कृपा ही जिनकी एकमात्र सम्पत्ति और जिनके प्रेम रूप स्वर्ण भूषण द्वारा जिनका चित्त विभूषित है, उन लोकनाथ प्रभु को मैं सतत भूमि पर गिर कर प्रणाम करता हूँ एवं आश्रय करता हूँ।

यः श्रीमत्कृष्णदासः कविनृपतिवरः स्निग्धमुग्धस्वरूपः श्रीमच्चैतन्यचन्द्रस्य चरितरचनाभूरिकीर्तिजगत्याम्।
श्रीमद्वृन्दावने श्रीवृषरवितनया–कृष्णभावाब्धिमग्नो वन्दे तत्पादयुग्मं सकलकुशलदं नित्यमानन्दयुक्तम्।।६।।

आचार्यः श्रीनिवासः प्रभुरतिरुचिरस्तप्तकार्तस्वराभः श्रीराधाकृष्ण नामामृतमयजलधेरुर्मिणाकृष्ट जिह्वा।
यः श्रीवृन्दावनीयं मधुररतिरसं दर्शयामास लोकास्तस्य श्रीमत्पदाब्जं मम कृपणमतेर्जीवनं तच्च नौमि।।१०।।

श्रीकृष्णनामामृतवर्षिवक्त्र–चन्द्रप्रभाध्वस्त–तमोभराय।
गौरांगदेवानुचराय तस्मै नमोः नमः श्रील–नरोत्तमाय।।११।।

श्यामानन्दमहं वन्दे प्रेमानन्द परिप्लुतम्।
यस्मै श्रीराधिका स्वीयां तुलाकोटिं ददौ मुदा।।१२

चैतन्य चन्द्रस्य पदारविन्द, माध्वीकमत्तान् खलु सर्वभक्तान्।
निपत्य भूमौ तु सकाकु नित्यं नमामि दन्तैस्तृणमाददानः।।१३।।

---

(६) स्निग्ध एवं मुग्ध अर्थात् मनोहर स्वरूप वाले जो श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी है, जिन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत जैसे अपूर्व ग्रंथ की रचना कर जगत में विशाल कीर्ति प्राप्त की है और जो वृन्दावन में श्रीवृषभानुनन्दिनी एवं श्रीनन्दनन्दन के भाव सागर में निमग्न हैं जो सकल मंगलों को प्रदान करने वाले हैं, कवियों में श्रेष्ठ नृपति तुल्य उन श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी के चरण युगल की मैं नित्य आनंद के साथ वन्दना करता हूँ।

(१०) श्री श्रीनिवासाचार्यप्रभु जो अत्यंत सुन्दर एवं तप्तसुवर्ण जैसी कान्ति से युक्त, जिनकी वाणी निरन्तर श्रीराधाकृष्ण के अमृतमय सागर की तरंगों का आस्वादन करती रहती है और जिन्होंने समस्त जगत को वृन्दावन के मधुररस से परिचित कराया, अति दीनहीन मेरे तो वे जीवन स्वरूप हैं। उनके श्रीकृष्ण नामामृत वर्णनकारी मुखचन्द्र की प्रभा द्वारा सबके अज्ञानरूपी अंधकारराशि को ध्वंस करते रहते हैं, श्रीगौरांग महाप्रभु के अनुगत उन श्रील नरोत्तम ठाकुर को मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।

(११) जो श्रीकृष्ण नामामृत वर्णनकारी मुखचन्द्र की प्रभा द्वारा सबके अज्ञानरूपी अंधकारराशि को ध्वंस करते रहते हैं, श्रीगौरांग महाप्रभु के अनुगत उन श्रील नरोत्तम ठाकुर को मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।

(१२) श्रीराधारानी ने जिनको आनंद पूर्वक अथवा नूपुर (अथवा नूपुर के चिन्ह से अंकित तिलक) प्रदान किया, प्रेमानन्द से ओतप्रोत उन श्रीश्यामानन्द प्रभु की मैं पुनः पुनः वन्दना करता हूँ।

(१३) दाँतों में तृण दबाकर भूमि पर निपतित होकर दैन्य के साथ श्रीचैतन्य चन्द्र के चरणकमल मधु से मत्त समस्त भक्तवृन्द को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

संसार दावानल—लीढ़लोक, त्राणाय कारुण्य घनाघनत्वम्।
प्राप्तस्य कल्याणगुणार्णवस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।१४।। (लह० १/१)

तस्य श्रीगुरुपादपद्मधुनः केन स्तवे प्राभवं यत् पीतं सहसैव हन्त ! मलिनं मच्चित्तमत्तालिनम्।
संसारोग्रमतंगजांगमदिरा विस्मार्य्य वृन्दावने राधामाधव—केलिकल्पलतिकावासे सदावीवसत्।।१५।।
(कृ० भा० २०/उप० २)

श्रीगोविन्द—पदारविन्द—मधुपानन्याभिलाषोग्मितान् पूर्णप्रेमरसोत्सनोज्जवल—मनोवृत्ति—प्रसन्ननान्।
शश्वत्कृष्णकथा—महामृतपयोराशौ मुदा खेलतो वन्दे भागवतानिमाननुलवं मूर्घ्ना निपत्य क्षितौ।।१६।।

दशमो गीतगोविन्दा रसामृतोज्जवलौ तथा।
वृन्दाविपिन—गोपालचम्प्वौ राधासुधानिधिः।।१७।।

विदग्ध—ललिताद्यौ च माधवौ क्रमदीपिका।
पद्मावली च संगीतमाधवः स्तवमालिका।।१८।।

चैतन्य चरितं काव्यं श्रीचन्द्रोदयनाटकम्।
चन्द्रामृतल्च गोविन्दलीलामृतं स्तवावली।।१९।।

---

(१४) संसार रूपी दावानल से ग्रस्त जीवों के त्राणार्थ जो करुणा रूपी जल की वर्षा करने वाले मेघ के समान हैं ऐसे कल्याणकारी गुणों के समुद्र श्रीगुरुदेव के चरण कमलों की मैं नित्य वन्दना करता हूँ।

(१५) उन श्रीगुरुपादपद्म के मकरन्दवैभव की मैं किस प्रकार स्तुति करुं क्योंकि मेरे चित्त रूपी अति मलिन मत्त भ्रमर ने जिसका सहसा पान तो इस मकरन्द ने उसको संसाररूपी भयंकर मतंगज की मदिरा विस्मृत करा कर श्रीवृन्दावन में श्रीराधामाधव की कैलिकल्पलतामन्दिर सदा सर्वदा वास करा दिया।

(१६) अन्य अभिलाषाओं से वर्जित (रहित) पूर्ण प्रेम रसोत्सव के कारण उज्जवल मनोवृत्ति अतः प्रसन्न चित्त, श्रीकृष्ण कथामृत महासागर में आनन्दपूर्वक क्रीड़ापरायण, श्रीगोविन्दपदारविन्द के मधुपस्वरूप, उन भक्तवृन्दों की मैं प्रतिक्षण भूमि पर निपतित होकर अपने मस्तकद्वारा वन्दना करता हूँ।

(१७—१८) दशम, अर्थात् (श्रीमद्भागवत का दशम स्कन्ध) गीत गोविन्द, भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्जवल नीलमणि, वृन्दाविपिनचम्पू अर्थात् आनन्दवृन्दाबनचम्पू, राधारससुधा निधि, बिदग्धमाधव, ललितमाधव, क्रमदीपिका, पद्यावली, संगीतमाधव, स्तवमाला।

(१९) श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक, श्रीचैतन्य चन्द्रामृत, श्रीगोविन्दलीलामृत, स्तवावली।

दानकेलि कौमुदी च श्रीकृष्णाह्निक कौमुदी।
अलंकारकौस्तुभश्च वृहदभागवतामृतम्।।२०।।

नाटकान्तं जगन्नाथबल्लभं भावनामृतम्।
कृष्णकर्णामृतं वृन्दानिष्कुटशतकं तथा।।२१।।

स्तवामृतलहर्याख्यं श्रीरसामृतशेषकम्।
मधुकेलिबल्लरी च गोविन्दरतिमञ्जरी।।२२।।

दानचिन्तामणिश्चैषां पद्मानि तु स्वतुष्टये।
संग्रहीतानि चारुणि विज्ञेयनि मनीषिभिः।।२३।।

रचितः कृष्णदासेन श्रीगोवर्धन–वासिना।
केनचिदतिमुग्धेन भावनासार–संग्रहः।।२४।।

वसुऋषि–सिन्धुरेन्दु–संख्ये गोवर्धनान्तरे।
फाल्गुने सितपञ्चम्यां ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः।।२५।।

इति श्रीपरम करुणार्णव–श्रील नरोत्तमदास–नामधेय ठाकुरमहाशय–भृत्यभृत्यानुभृत्य–कृष्णदासेन श्रीगोवर्धन–वासिना रचितः श्रीश्री भावनासार संग्रहः

---

(२०) दानकेलिकौमुदी, श्रीकृष्णाह्निककौमुदी, अलंकारकौस्तुम, वृहदभागवतामृत।

(२१) जगन्नाथबल्लभनाटक, श्रीकृष्णभावनामृत, श्रीकृष्ण कर्णामृत, तथा वृन्दावनशतक।

(२२) स्तवामृतलहरी, श्रीरसामृतशेष, अर्थात् भक्तिरसामृत शेष, मधुकेलिबल्ली, गोबिन्दरतिमंजरी।

(२३) दानचिन्तामणि अर्थात् दानकेलिचिन्तामणि, इन सब ग्रंथें के मनोरम पद्मों (श्लोकों को मैंने अपने मन की संतुष्टि) (स्वान्तःसुखाय) के लिये संग्रह कर इस ग्रंथ में पिरोया है। मनीषिगण इसको जानें (आस्वादन करें)।

(२४) श्रीगोवर्धन निवासी कृष्णदास नामक अतिमुग्ध (मूढ़ दैन्य के कारण, वस्तुतः अति सुन्दर बुद्धि वाले) किसी एक व्यक्ति द्वारा इस "श्रीभावनासार संग्रह" की रचना की गयी।

(२५) वसु (८) ऋषि (७) सिन्धुर (हस्ती ८) इन्दु (चन्द्र १) अर्थात् १८७८ संवत् में फाल्गुन के महीने शुक्ला पंचमी को इस ग्रंथ की रचना कर इसे पूर्ण किया गया।

इति श्रीपरम करुणासागर श्रील नरोत्तमदास नामक श्रीठाकुर महाशय के दास दासानुदास कृष्णदास श्रीगोवर्धनवासी द्वारा रचित श्रीश्रीभावनासार संग्रह

❖

ब्रजमंडल के प्रमुख चार सिद्ध महात्माओं के जीवन चरित्र का संक्षिप्त वर्णन

प्रथम : कामवन निवासी सिद्ध श्रीजयकृष्णदास बाबा जी महाराज

श्रीकामवन निवासी श्री सिद्ध जयकृष्णदास बाबा जी महाराज की जय हो। जिनके गुणों का कुछ वर्णन मैं अति दीनहीन पामर मूढमती होकर भी कर रहा हूँ।

अपने अत्यंत अनुराग से भरकर गंगा माता के वंशधर श्रीगोस्वामी प्रभुपाद के चरणों में आत्मसमर्पण किया। और उन्होंने भी कृपा से भरकर श्रीकृष्ण मंत्र की दीक्षा प्रदान करके अपनी शक्ति का संचार आपके भीतर कर दिया। उन श्रीगुरुदेव की कृपा पाकर आप अनुराग हृदय में भरकर श्रीधाम वृन्दावन आकर वास करने लगे जहाँ श्रीराधागोविन्द जी के दर्शन कर प्रेम से विभोर होकर अश्रु पूर्ण नेत्रों से उनकी अनेक प्रकार से स्तुति वन्दना की। वृन्दावन में कुछ दिन प्रेम से वास कर समस्त लीलास्थानों का दर्शन किया। पुनः द्वादश वनों में भ्रमण कर गोवर्धन के दर्शन कर श्रीराधाकुण्ड में आये। श्रीवैष्णव दास जी महाराज जिन्हानें कल्पतरु ग्रंथ में पदों (भजन) की रचना की उनके चरणों में आत्म समर्पण किया और उन्होंने श्री कृपावान होकर इनको वेष (बाबाजी भेष) प्रदान कर इनका जयकृष्णदास नाम रखा। उनकी कृपा आज्ञा पाकर आप श्रीकामवन में वासकर भजन करने लगे और यहाँ श्री वृन्दादेवी श्रीराधागोविन्द जी के दर्शन कर प्रेम से व्याकुल हो जाते। बिजलीवास नामक परम एकान्त स्थान में रहकर नाम संकीर्तन किया करते थे। दिन रात प्रिया–प्रियतम के प्रेम में व्याकुल होकर विभोर हुए रहते थे। इनको सभी 'सिद्धबाबा' कहकर पुकारने लगे। श्री 'वैष्णवदास' जी महाराज के अप्रकट होने की सूचना पाकर वे अत्यंत विरह ज्वर से हृदय में पीड़ित हो उठे। कुछ समय पश्चात श्रीनित्यानंद प्रभु के वंशधर श्रीनवकिशोर प्रभुपाद श्रीवृन्दावन दर्शनार्थ आये उनके साथ उनके श्री राधामदनमोहन ठाकुर थे। प्रभुपाद ने सिद्धबाबा की कुटिया में ठाकुर विराजमान करा दिये। कुछ दिन बाद स्वप्न में श्री मदनमोहन ठाकुर ने श्रीनवकिशोर जी से कहा, 'मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा, मैं तो सिद्ध बाबा के साथ ही रहूँगा।" इतना कहकर अन्तर्धान हो गये। स्वप्नादेश को मानकर प्रभुपाद ने ठाकुर वहाँ पर ही विराजमान कर दिये और आप लौट गये। इधर श्री सिद्ध बाबा ठाकुर श्रीमदनमोहन जी की अत्यंत प्रेमपूर्वक सेवा पूजा करने लगे। युगलकिशोर की रूपमाधुरी का दर्शन कर उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहते रहते थे और वे सदा श्रीकृष्ण संकीर्तन करके सबको प्रेम में सराबोर करते रहते थे। जब वे प्रेम के आवेश में आकर हुंकार करते थे तो ऐसा लगता था कि कुटिया की छत गिर जाएगी। कुछ दिनों पश्चात उनके समीप एक छोटी अवस्था का अनुरागी भक्त आया, उसके अनुराग को देखकर सिद्ध बाबा के मन में उसे रागानुगा भक्ति (प्रेम भक्ति) की शिक्षा देने का विचार हुआ। जब उन्होंने उस युवक से श्रीगुरु प्रणाली के विषय में पूछा तो उसने कहा, इस विषय में तो मैं कुछ भी नहीं जानता। श्री सिद्धबाबा ने उसे गुरु प्रणाली लाने के लिये

पुनः बंगाल जाने के लिये कहा तो उस भक्त के मन में धाम छोड़कर जाने का अत्यंत दुःख हुआ और वह श्री वृन्दा देवी जी के पास जाकर बहुत रो रो कर प्रार्थना करने लगा कि मेरा गाड़ी में बैठने से पहले ही शरीरांत हो जाय। श्री वृन्दा महारानी ने उसकी दुःखभरी पुकार सुन ली। जब वह भक्त स्टेशन पर गया उसकी गाड़ी छूट गयी और वह पुनः कामवन लौट आया। इधर श्री वृन्दा देवी ने स्वप्न में श्रीसिद्धबाबा से कहा 'कि उसकी गुरु प्रणाली ठाकुरजी के सिंहासन के नीचे रखी है' जब सिद्धबाबा को वहाँ से गुरु प्रणाली मिल गयी तो वह उस भक्त की चिंता करने लगे कि इतने में ही भयभीत सा होता हुआ वह उनके समीप आ गया। उसका आलिंगन कर उसे आश्वासन देते हुए सिद्ध बाबा ने उसे सब वृतांत सुनाया और दोनों भोजन कर वृन्दा महारानी की कृपा का चिंतन करते हुए प्रेम में विह्वल हो गये। ऐसे ही वृन्दादेवी के कृपा भाजन श्री सिद्धबाबा की जय हो। तब श्री सिद्धबाबा वृन्दादेवी की आज्ञा से बिमला कुण्ड पर जाकर रहने लगे। बृजवासी जनों ने मिलकर उनको कुटिया बनवा दी। यहाँ पर श्री सिद्धबाबा भजन करने लगे।

एक दिन मध्याह्न लीला का आवेश पूर्वक स्मरण कर रहे थे तो क्या देखते है कुण्ड के तीर पर चारों ओर असंख्य गउऐं एवं गोपबालकों ने कुटी को घेर रक्खा है। द्वार पर आकर बालक उच्च स्वर से कहने लगे अरे बाबा हम सब प्यासे है हमें जल पिलाओ। यह सुनकर सिद्धबाबा बाहर आये तो उन्होंने उनको निर्दय कसाई कह कर गाली दी, जैसे ही सिद्ध बाबा हाथ में लाठी लेकर क्रोध करने लगे तो देखते हैं कि गोपबालकों की तथा गउओं की अपूर्व माधुरी छटा ! वे पूछने लगे तुम कौन हो? कहाँ रहते हो? एक बालक कहने लगा हम नंदग्राम में रहते है, मेरा नाम कन्हैया है और यह दाऊजी है। बाबा ने बड़े प्यार से जल पिलाया और वे प्रसन्न होकर चले गये। बाद में सिद्धबाबा मन में विचार करने लगे ये कभी भी मनुष्य बालक नहीं हो सकते फिर बाहर आकर देखा तो वहाँ कुछ भी नहीं था। अब वे समझ गये कि यह तो श्रीकृष्ण की लीला है और अत्यंत दुःख से मूर्च्छित होकर व्याकुल हो गये। तब श्रीकृष्ण ने उन्हें स्वप्न में कहा– बाबा दुःखी मत होओ कल मैं तुम्हारे पास आऊँगा। यह सुन श्रीसिद्धबाबा स्थिर (शांत) हो गये। दूसरे दिन एक वृद्धा गोपाल मूर्ति लेकर आयी और अति आनंदित होकर सिद्ध बाबा से कहने लगी– 'बाबा अब मेरे से गोपाल जी की सेवा नहीं होती आप इनको ले लो और सेवा करो।' सिद्ध बाबा कहने लगे मेरे पास तो गोपाल की सेवा सामग्री नहीं है मैं कैसे सेवा करूँगा। वृद्धा कहने लगी– 'सेवा की सब वस्तुएं मैं भेज दूंगी तुम आनंद से सेवा करो।' ऐसा कहकर गोपालजी को वह वृद्धा छोड़ आयी और सिद्ध बाबा गोपालजी की रूपमाधुरी देखकर प्रेम से अधीर हो गये। पुनः रात्रि को श्रीसिद्धबाबा ने स्वप्न में देखा कि वृन्दादेवी ही वृद्धा के रूप में आकर मुझे गोपाल दे गयी हैं। अब उन्होंने मदनमोहन ठाकुर के पास श्रीगोपालजी को विराजमान कर दिया और मदनगोपाल जी का मन्दिर इस नाम से प्रसिद्ध हो गया। चैत्र मास शुक्ल पक्ष श्री एकादशी के दिन रात्रि के समय श्रीसिद्धबाबा अपने सिद्ध स्वरूप (गोपी भाव) के आवेश में अनेक प्रकार की बातें कहने लगे और उसी स्वरूप के आवेश में द्वादशी प्रभात के समय वे नित्यलीला में प्रवेश कर गये। उनके विरह में सभी सेवक परिकर हाहाकर कर व्याकुल हो गये।

द्वितीय : श्रीगोवर्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाजी महाराज

परम करुणामय सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाजी महाराज की जय हो। आप को श्रीगोवर्धन वासी सिद्ध बाबा कहा जाता है। आपके गुणों का वर्णन करने की मन में बड़ी उत्कंठा बनी हुई है। आप कृपाकर अपने गुणों की स्फूर्ति आप ही हमारे हृदय में करा दें। आप अपनी बाल्यावस्था से ही बड़े वैरागी स्वभाव के थे। किसी भी कार्य में आपकी रुचि नहीं होती थी अतएव हृदय में अनुराग भरकर आप श्रीबृजमंडल के लिये पैदल ही चल पड़े। श्रीवृन्दावन आकर स्वतः ही मंदिर द्वार पर पहुचं, श्रीराधागोविन्दजी के दर्शन कर प्रेम से अश्रु छलछल करने लगे और प्रेम से विह्वल होकर सभी स्थानों के दर्शन करते हुए श्रीब्रह्मकुण्ड पर आ गये। यहाँ श्री पदों की रचना करने वाले श्रीवैष्णवदासजी बाबा महाराज के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। उन्होंने भी कृपा करके अपनी शक्ति का संचार कर श्रीकृष्णमंत्र की दीक्षा आपको दी फिर वात्सल्य स्नेह से भरकर इनको वैष्णव वेष प्रदान कर इनका कृष्णदास नाम रख दिया। इनको **सब** भक्ति सिद्धांत सिखाकर इनकी सब प्रकार की मनोभिलाषा पूर्ण कर दी। तब इन्होंने भी श्रीगुरुदेव की अत्यंत अनुराग पूर्वक आत्मा सम जान कर (गुरुदेव को आत्मा समान प्रिय जानकर) सेवा की। उनकी सेवा से परम संतुष्ट होकर श्रीगुरुदेव ने उन्हें रागानुगा भजन पद्धति की शिक्षा दी। आप आनंदित मन से कुछ समय पर्यन्त वहाँ ही निवास कर गुरुदेव की सेवा करते रहे और फिर कुछ दिनों पश्चात् श्रीगुरुदेव अप्रकट हो गये। उनके विरह में अत्यंत दुःखी और व्याकुल होकर बाबा कुछ दिन वहीं पर रहे। फिर जयपुर चले गये जहाँ श्रीगोविन्द जी के दर्शन किये। कुछ समय वहाँ पर वास कर श्रीगोविन्दजी की सेवा करने लगे वहीं पर इनको मन में कुछ उद्वेग हुआ जिससे वहाँ से ये श्रीकामवन सिद्ध श्रीजयकृष्णदास बाबाजी महाराज के पास आये और उनको अपने मन की उद्विग्न दशा सुनाई। अत्यंत व्याकुल हृदय से दैन्यता पूर्वक श्रीसिद्धबाबा के चरणों की शरण ली। उन्होंने भी बड़े स्नेह से भरकर उनको आश्वासन देते हुए अनेक प्रकार से उन्हें उपदेश दिये। शास्त्रों के सिद्धांतानुसार यत्नपूर्वक सब तत्व समझाकर उनके मन के दुःख को शांत किया। अपनी कृपाशक्ति का संचार करते हुए उनको परम आनंदित कर प्रेमोल्लास से परिपूर्ण कर दिया।

इस प्रकार परम वैराग्य में अग्रगण्य श्रीकृष्णदास बाबा जी महाराज अपने असीम अपार गुणों द्वारा सभी लोगों को धन्यधन्य करने लगे। श्रीगुरुदेव की कृपा आज्ञा पाकर श्रीनंदग्राम में जाकर दुमन वन में वास करने लगे। अत्यन्त अनुराग में भरकर श्रीकृष्णनाम का संकीर्तन करते हुए प्रेम में विभोर होकर रहते थे। अत्यन्त कठोर वैराग्य के कारण उनकी दृष्टि शक्ति जाती रही और वे 'हा करुणामयी राधे कह कह कर पुकारने लगे। करुणामयी ने इस दशा को देखकर करुणाकर श्रीललितादेवी को नेत्राञ्जन देकर शीघ्र ही उनके समीप भेजा। परम चतुरा श्रीललिताजी बालिका का वेष बनाकर अञ्जन लगाने को आ गयीं। अञ्जन के लगाते ही जब बाबा के नेत्र खुले तो वे अन्तर्धान हो गयीं। बाबा हा राधे कहते हुए प्रेमावेश में मूर्च्छित होकर गिर गये। श्रीवृषभानुनन्दिनी ने यह देख पुनः करुणा कर दर्शन देकर कहा — 'अब तुम गोवर्धन जाकर रहो' पुनः चेतन होकर बाबा श्रीकिशोरीजी की आज्ञा का पालन करने के लिये

गोवर्धन आ गये और मानसीगंगा के तट पर श्रीनाम संकीर्तन करते हुए लीला चिंतन करने लगे। उनके प्रेम के आवेश को देखकर सभी आश्चर्यचकित हो जाते थे और सब उनको सिद्ध बाबा के नाम से पुकारने लगे। गुरुदेव ने भी गोवर्धन आकर पुनः स्नेहपूर्वक उन पर परम प्रसन्न होकर अतिशय कृपा की।

एक दिन जब में प्रेमावेश में स्मरण कर रहे थे तो श्रीमानसी गंगा के तीर पर बैठे एक अत्यत मनोहारिणि लीला का दर्शन करने लगे– गंगा जी में श्रीप्रिया प्रियतम सखीजनों के संग नौका विहार कर रहे हैं इसी समय अकस्मात श्रीप्रियाजी के कान का कुण्डल जल में गिर पड़ा– यह देखते ही वे जल में कूद पड़े और कुण्डल को खोज कर ले आये। कुण्डल को लाकर श्रीवृषभानुपुर (बरसाने) जाकर श्रीजी को पहना दिया। इधर सब उनको खोजने लगे– मानसी गंगा के जल में भी जब वे नहीं मिले तो सब दुःखी हो गये। बाबा सात दिन बाद जल से बाहर निकल कर आये सब बड़े आश्चर्य में पड़े गये। श्री सिद्धबाबा के सशरीर लीला दर्शन की वार्ता सबको ज्ञात हो गयी।

पुनः कुछ समय पश्चात् श्रीसिद्धबाबा ने सभी भक्ति ग्रंथों का मंथन कर श्री 'भावनासार' ग्रंथ की रचना की। 'प्रार्थनामृत' 'साधनामृत' अद्भुत ग्रंथों की भी रचना की। जिनको पढ़ने एवं सुनने से भक्तवृन्द धन्य धन्य हो जाते हैं। जिनकी लेश मात्र करुणा से भी प्रेमानन्द में निमग्न हो जाते हैं ऐसे श्री सिद्धबाबा हमारे ऊपर अपनी कृपा दृष्टि कर हमें भी धन्य धन्य करें।

तृतीय : श्रीसूर्यकुण्ड निवासी सिद्ध श्रीमधुसूदनदास बाबा जी महाराज

समस्त गुणों के सागर मधुसूदनदास बाबा जी महाराज की जय हो जिनकी सिद्धबाबा के नाम से ब्रजमण्डल में ख्याति हुए। ब्राह्मणकुल में जन्म लेकर भी अपने समस्त लोकधर्मों का त्यागकर जिन्होंने वैष्णवधर्म को अपनाने में ही रुचि ली; कुमार अवस्था से ही अत्यंत वैराग्य पूर्वक श्रीकृष्णानुराग पूर्ण हृदय से कुछ दिन घर में निवास कर चुपचाप वृन्दावन के लिए भागकर आ गये। श्रीराधागोविन्दजी के दर्शन कर प्रेम से विभोर होकर अश्रु बहाते रहते थे। अत्यंत अनुराग के साथ समस्त लीला स्थलियों का दर्शन कर केशीघाट पर आये। श्रीयमुना तीर पर बैठकर मन में दीक्षामंत्र लेने का विचार करने लगे। एक श्रेष्ठ महापुरुष जो श्रीगंगा माता के वंशधर थे उसी समय वहाँ आये और कृपा कर उन्होंने दशाक्षर मंत्र अर्थ सहित उनको प्रदान किया। उस श्रीकृष्ण के मंत्र को पाकर अत्यंत प्रेमाविष्ट होकर मूर्च्छित हो गये। इध र गोस्वामी जी भी उनको मंत्र प्रदान कर अन्तर्धान हो गये। बाबा ने उठकर चेतना पाकर देखा गुरुदेव को न पाकर बड़े दुःखी हुए। बहुत समय पश्चात् कुछ मन में धीरज धारण कर मंत्र को अर्थ सहित जप करने लगे। कुछ दिनों के पश्चात् गोवर्धन आकर सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबजी महाराज से मिले और अपनी मंत्र दीक्षा की सब बात बताई तथा भजन पद्धति की शिक्षा देने का निवेदन किया। श्रीसिद्धबाबा बोले– 'गुरु प्रणाली के बिना भजन सिखाने में हम असमर्थ है तुम श्रीकामवन में जाओ वहाँ श्रीसिद्धबाबा के पास जाकर इस सम्बन्ध में प्रार्थना करो। वे सर्वज्ञ है, सबके दुःख दूर करने वाले हैं और तुम्हारी सब अभिलाषा पूरन करेंगें।'' उनकी यह बात सुनकर कामवन श्रीसिद्धबाबा के समीप गये और उनको सब वृतांत

सुनाया। श्रीसिद्धबाबा ने जान लिया कि अब आगे श्रीजी की क्या लीला होने वाली है अतएव वे मन में विचार कर बोले– न तो तुम अपने गुरुदेव का नाम जानते हो न कौन से परिवार के हैं यह मालूम है? तुम भजन कैसे करोगे। यह सब जाने बिना रागानुगा भजन के अधिकारी नहीं बन सकते हो। जाओ, तुम नाम संकीर्तन करो। इस प्रकार सिद्धबाबा की वाणी सुनकर मन में अत्यंत दुःखी होकर रोते–२ चले आये। यदि भजन ही नहीं होगा तो इस देह का क्या प्रयोजन है अतएव उन्होंने अपने शरीर को त्यागने का निश्चय कर लिया। श्रीराधाकुंड तीर पर जाकर, अपने गले में शिला बाँध दी और रात्रि के समय श्रीकुण्ड में कूद पड़े। श्रीकुण्ड के भीतर ही शिला गले से खुल गयी और एक दिव्य तालपत्र लेकर तीर पर आ गये।

वह तालपत्र मानो पद्मराग मणि के समान उज्ज्वल था और उस पर गुरु प्रणाली लिखी हुई थी। कितनी सुन्दर लेखनी मानो मोतियों के समान अक्षर थे। बाबा को जैसे किसी ने हाथ से उठाकर तीर पर खड़ा कर दिया। उस तालपत्र को लेकर अत्यंत हर्षित होकर वे शीघ्र ही श्रीगोवर्धन सिद्धबाबा के पास आ गये। सिद्ध बाबा उसे देखकर अत्यंत प्रेमाविष्ट हो गये उनका आलिंगन कर उन्हें कामवन पुनः सिद्ध श्रीजयकृष्णदास बाबा महाराज के पास भेज दिया। सिद्धबाबा उसे देखकर अत्यंत प्रेमोल्लास से भरकर कहने लगे अब इस प्रणाली को अत्यंत यत्नपूर्वक गोपन करके रक्खो और बाबा ने भी उनके चरणों में आनंदपूर्वक आत्मसमर्पण कर दिया। सिद्धबाबा ने कृपाकर उनको वैष्णव वेष प्रदान किया और उनका मधुसूदनदास नाम रख दिया। श्रीगुरु प्रणाली अनुसार भजन पद्धति का उपदेश कर श्रीकुण्डतीर पर भजन करने को कहा। अब बाबा उनका कृपा आदेश पाकर श्रीगोवर्धन आकर पुनः श्रीसिद्धबाबा से मिले। सिद्धबाबा ने अत्यंत प्रसन्न होकर उनको गले से लगा लिया। इनका भी आदेश लेकर श्रीराधाकुण्ड तीर पर आकर प्रेमानन्द में विभोर होकर उनको गले से लगा लिया। इनका भी आदेश लेकर श्रीराधाकुण्ड तीर पर आकर प्रेमानन्द में विभोर होकर भजन करने लगे और संसार के विषय रस को एकदम भूल गये।

सिद्ध श्रीमधुसूदनदास बाबाजी महाराज की जय हो जो श्रीराधाकुण्डतीर पर वास करके 'हा राधे प्राणेश्वरि' कह कह कर दिन रात रोते थे। उस क्रंदन को सुनकर प्यारी जू क्या रह सकती थी ? उन्होंने प्रसन्न होकर उनको आकर दर्शन दिया और आदेश किया कि अब तुम श्रीसूर्यकुण्ड जाकर भजन करो और श्रीगुरुदत्त मंत्र दीक्षा किसी को मत देना' मेरी दी हुई वस्तु को गोपन करके रखना। श्रीजी की आज्ञा को पाकर वे सूर्यकुण्ड चले गए और वहाँ हा करुणामयी राधे कह कह कर रोने लगे जिसे सुनकर पाषाण काष्ठ विदीर्ण होने लगता था। 'हा करुणामयि राधे' इस करुण पुकार को सुनकर स्वप्न में श्रीराधारानी ने आकर आश्वासन दिया और कहा कि 'इस सूर्यकुण्ड के कण्ठ पर्यन्त जल में एक शिला है जिस पर मेरी चन्द्रिका और अंगद आदि आभूषणों के चिह्न बने हुए है नित्य मैं इस कुण्ड में स्नान करने के समय उनको उतार कर वहाँ रख देती हूँ उस शिला को तुम ले आओ और उसका पूजन करो उसी से मेरा पूजन होगा।' स्वप्न की इस वाणी को सुदृढ़ विश्वास के साथ मानकर जल में से उस शिला को उठाकर ले आये और उसका पूजन करने लगे। फाल्गुन की शुक्ला नवमी को होली की लीला का स्मरण करते हुए आवेश से उस लीला के चिह्न (रंग आदि के) उनके शरीर पर बाहर दिखाई पड़ने लगे।

एक दिन रोते–२ स्वामिनी जी के विरह में किसी वनप्रदेश में जाकर वहाँ 'हा राधे प्राणेश्वरि' कह कह कर जोर जोर से पुकारने लगे। इधर सब सेवक वृन्द उनको खोजने लगे लेकिन बाबा कहीं न मिले। उन्होंने तीन दिन से अन्न जल त्याग रखा था। प्रियाजी ने यह जानकर बालिका के वेष में वहाँ आकर बड़ी चतुराई से उनको भोजन करा दिया। सिद्धबाबा ने बाद में ग्राम में जाकर खोजा तो वह बालिका कहीं नहीं मिली और वे समझ गये कि यह बालिका के वेश में स्वयं श्रीजी ही आयी थीं।

एक दिन प्रातःकाल एक बाबा जी उनके पास आया और उनसे योगपीठ समझने के लिये प्रार्थना की। सिद्धबाबा उसे योगपीठ समझाने लगे और उसी में अन्तर्दशा में अविष्ट हो गये। उनको बाहर की दशा में लाने की सभी ने चेष्टा की। वैष्णव जनों ने नाम संकीर्तन किया। अगहन की शुक्ला अष्टमी के दिन सायंकाल के समय वे सिद्धदेह से स्वामिनी जी की सेवा में प्रविष्ट हो गये। सभी उनके विरह में व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगे। ऐसे महात्माओं की कृपा कणिका की हम भी प्रार्थना करते हैं।

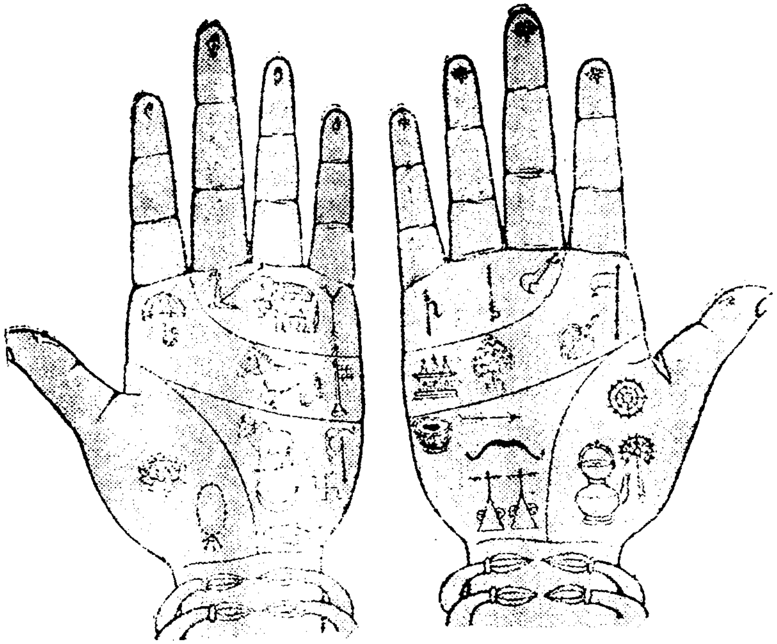
चतुर्थ : श्री रणवारी निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाजी महाराज

सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाजी महाराज की जय हो जिन्होंने छाता के समीप रणवारी नामक लीलास्थली में निवास कर भजन किया इसी कारण उनको रणवारी वाले सिद्ध बाबा कहा जाता है। मैं अत्यंत मूढ अल्पबुद्धि जन आपके गुणों का गान करने का साहस कर रहा हूँ। आप कृपाकर मेरे हृदय में अपने चरित्र को जागृत कर दीजिए। श्रीगौड़ मण्डल भूमि में श्रीगोकुलचन्द्र ब्राह्मण के घर में आपका जन्म हुआ। माता पिता ने बालक का अलौकिक रूप देखकर उसका कृष्ण प्रसाद नाम रख दिया। आपने कुछ दिन विद्यालय में अध्ययन किया परन्तु घर का कोई कामकाज आपको अच्छा नहीं लगता था। तब आपने नित्यानंद परिवार के श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्मण श्रेष्ठ से श्रीकृष्णमंत्र की दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर आप अत्यंत आनंदित होकर 'श्रीकृष्णराय' विग्रह की सेवा करने लगे। कुछ दिन पश्चात् अत्यंत अनुराग से भरकर श्रीवृन्दावन धाम में आ गये। श्रीयमुनाजी में स्नानकर श्रीराधागोविन्दजी का दर्शन कर प्रेम में विभोर हो गये। फिर अत्यंत आनंद पूर्वक सब मंदिरों एवं लीला स्थलियों का दर्शन किया। श्रीमदनमोहन लाल का दर्शन और उनका रूप माधुर्य निहार कर अत्यंत प्रेम में व्याकुल हो गये। उस मन्दिर के महन्त महाराज दीनकृष्णदास जी थे जो बड़े ही भक्तिभाव वाले थे। उनके दर्शन कर अत्यंत भक्तिभाव से दैन्यपूर्वक उनके चरणों की शरण ग्रहण की और उन्होंने भी कृपा करके आपको वैष्णव वेष प्रदान किया और आपका नाम कृष्णदास रख दिया। फिर आपने भी ठाकुर श्रीमदनमोहनजी की कुछ दिन पर्यन्त सेवा पूजा की। फिर कुछ दिनों पश्चात् श्रीगुरुदेव की आज्ञा पाकर बृजमण्डल के दर्शन करने के लिये गये। यहाँ जब रणवारी ग्राम में आप आये तो बड़ा आनन्द का अनुभव हुआ और आप एक स्थान पर बैठकर श्रीकृष्णनाम का कीर्तन करने लगे। उनका कीर्तन में प्रेम देखकर बृजवासी बड़े प्रसन्न हुए और वे सब उनको सिद्धबाबा कहकर बुलाने लगे।

सिद्ध श्री कृष्णदास बाबाजी महाराज अब रणवारी में ही रहकर दिन रात कीर्तन करने लगे। इस प्रकार रणवारी में कुछ दिन वास कर गोवर्धन श्रीसिद्ध कृष्णदास बाबा के पास आये। सिद्ध बाबा ने उनका

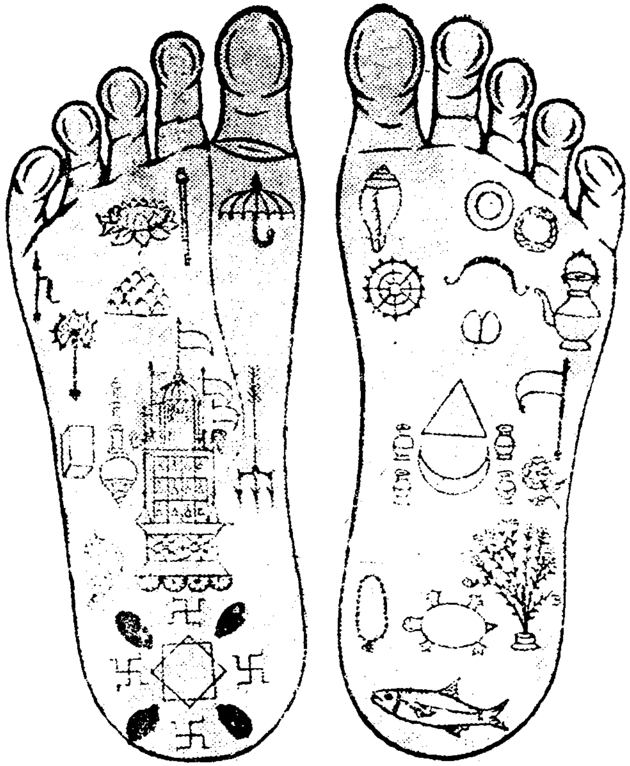
प्रेम से आलिंगन किया। दोनों बाबा श्रीकृष्ण लीलाओं का गान कर प्रेमानन्द में विभोर हो गये। इस प्रकार वे रणवारी एवं गोवर्धन में बीच २ में आना जाना करते रहते थे। पन्द्रह वर्ष तक बृज में भजन कर उनके हृदय में चारों धाम दर्शन की अभिलाषा जगी। उनकी यह इच्छा जानकर श्री प्रियाजी ने रात्रि में उन्हें स्वप्न दिया 'कृष्णदास तुम श्रीवृन्दावन आ गये हो अब मेरे चरणों को छोड़कर अन्यत्र कहीं जाने की इच्छा मत करो तुम्हारी सब कामना यहीं पूरी हो जावेंगी। लेकिन बाबा ने स्वप्नादेश को अपने मन की एक कल्पना मात्र जानकर, अवहेलना कर चारों धाम के लिये चल पड़े, और जब श्रीद्वारकापुरी में पहुँचे तो वहाँ पर तप्तमुद्रा (शंख, चक्र आदि के चिह्न तपाकर धातु को भुजा पर लगा देने से वे अंकित हो जाते हैं) धारण कर ली। फिर और कहीं जाने का मन नहीं किया तो वहाँ से श्रीवृन्दावन लौट आये। जब आकर रणवारी में अपनी कुटिया में शयन किया पुनः श्रीप्रियाजी ने स्वप्न में कहा, 'कृष्णदास अब तो तुम सत्यभामा की दसी बनकर आये हो तुम्हारा अब यहाँ क्या काम है?'' इस वाणी को सत्य मानकर वे चिन्ता में पड़ गये और अब मुझे क्या करना चाहिए इस का निर्णय करने के लिये गोवर्धन श्रीसिद्धबाबा के पास आये। सिद्धबाबा ने आलिंगन कर कुशल पूछी– तब उन्होंने द्वारका जाने एवं तप्तमुद्रा धारण करने की सब बात बताई। श्रीसिद्धबाबा सुनकर लम्बी सांस छोड़ते हुए कहने लगे तुम तो राजरानी की दासी बन आये हो मैं तो एक ग्वालिनी हूँ अब आपके स्पर्श के योग्य नहीं हूँ। यह बात सुनकर उन्होंने सिद्धबाबा को प्रणाम कर और कुछ न कहकर अनपी भजनकुटी रणवारी में आ गये। मन में अत्यंत दुःखी होकर अन्न जल त्याग दिया। 'हा स्वामिनी' 'राधे' पुकारते हुए श्रीप्रियाजी के विरह में उनका शरीर जलने लगा। पैर के अंगूठे में अग्नि निकली और धीरे–२ सारे शरीर को जलाने लगी। सिद्ध श्रीजगन्नाथ दास बाबा उस समय वहाँ आये और उनके मुख से निकला 'ओह विरह अग्नि' कहकर पुकार उठे। सब बृजवासी जन भी वहाँ आये और उस समय जलते हुए बाबा ने उन्हें वरदान दिया 'तुम लोगों को कभी अन्न का कष्ट नहीं होगा'। विरह की अग्नि जलते–२ कण्ठ तक आ पहुँची फिर भी बाबा उच्च स्वर से श्रीकृष्णनाम कर रहे थे। जगन्नाथ बाबा ने रूई की बत्ती बनाकर मस्तक पर रखी तो वह स्वयं ही जल उठी। सारा अंग भस्मसात हो गया। सब बृजवासी हाहाकार करने लगे। पौष मास के कृष्णपक्ष की अमावस्या के दिन बाबा श्रीराधाकृष्ण की लीला में प्रविष्ट हो गये। उनके विरह में सभी वैष्णव जन विरहसागर में डूब गये। श्रीसिद्धबाबा की कृपा कणिका की हम भी आशा करते हैं।

❖



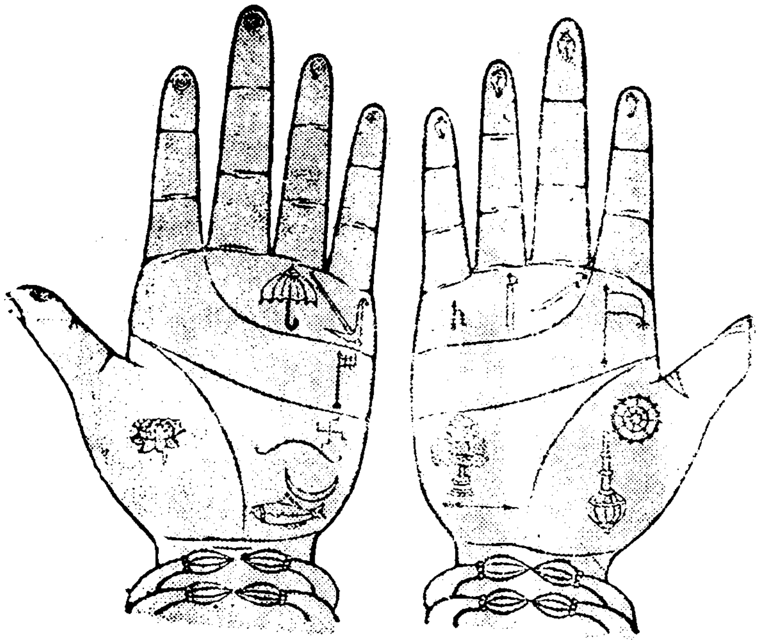
শ্রীগৌরাঙ্গমহাপ্রভুর শ্রীকর চিহ্ন।

श्री गौराङ्ग महाप्रभु के श्री कर चिह्न



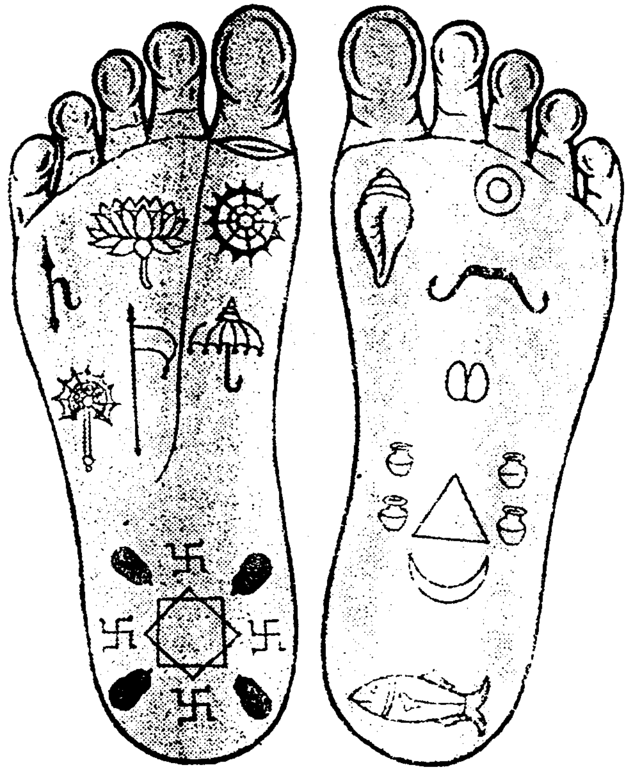
শ্রীগৌরাঙ্গমহাপ্রভুর শ্রীচরণ চিহ্ন

श्री गौराङ्ग महाप्रभु के श्री चरण चिह्न



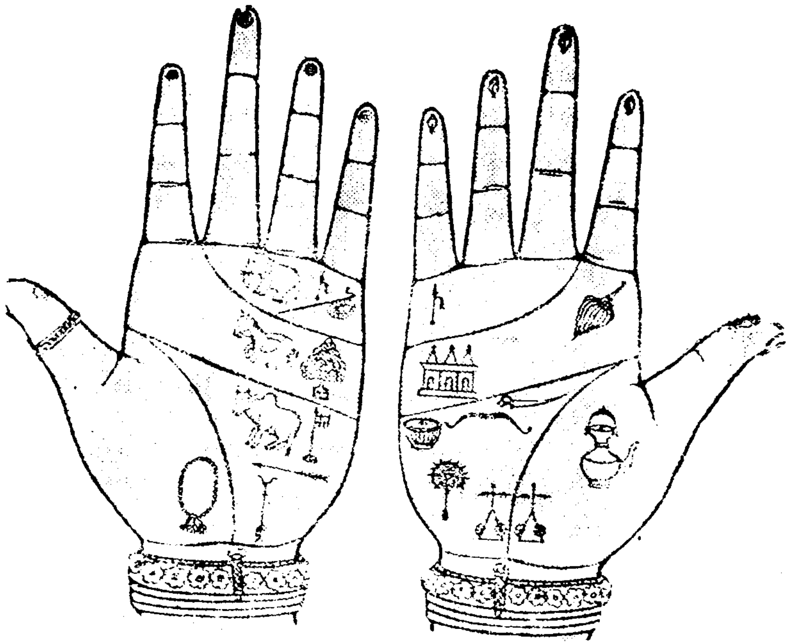
শ্রীকৃষ্ণচন্দ্রের শ্রীকরচিহ্ন ।

श्री कृष्ण चन्द्र के श्री कर चिह्न



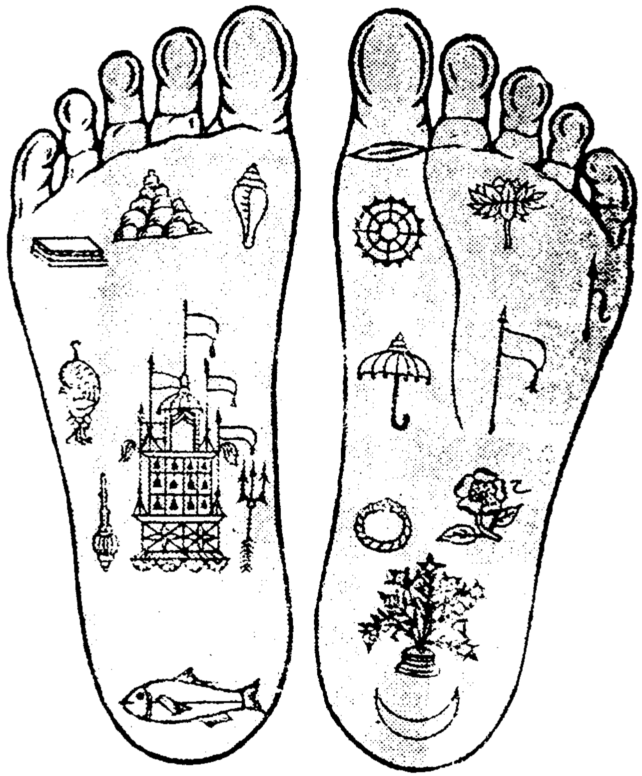
শ্রীকৃষ্ণচন্দ্রের শ্রীচরণচিহ্ন ।

श्री कृष्ण चन्द्र के श्री चरण चिह्न



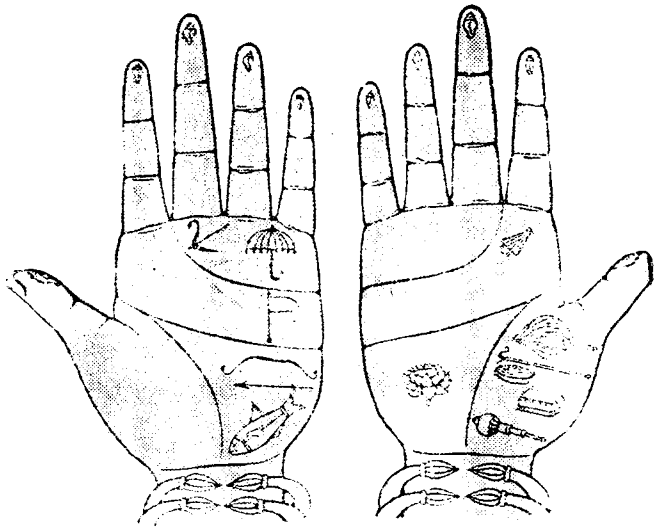
শ্রীরাধারাণীর শ্রীকর চিহ্ন।

श्री राधा रानी के श्री कर चिह्न



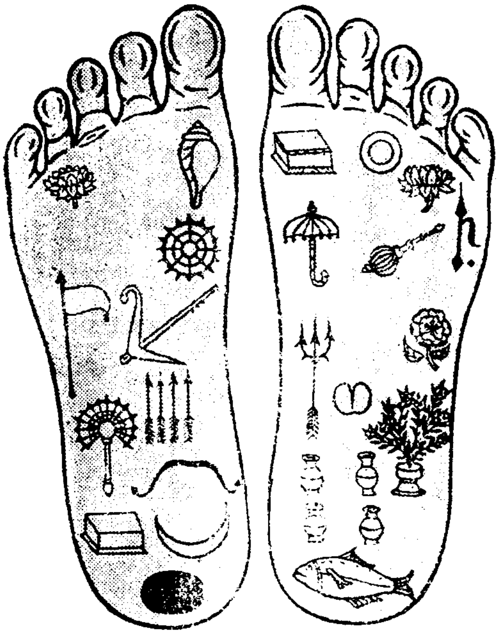
শ্রীরাধারাণীর শ্রীচরণচিহ্ন।

श्री राधा रानी के श्री चरण चिह्न



শ্রীনিত্যানন্দপ্রভুর শ্রীকরচিহ্ন।

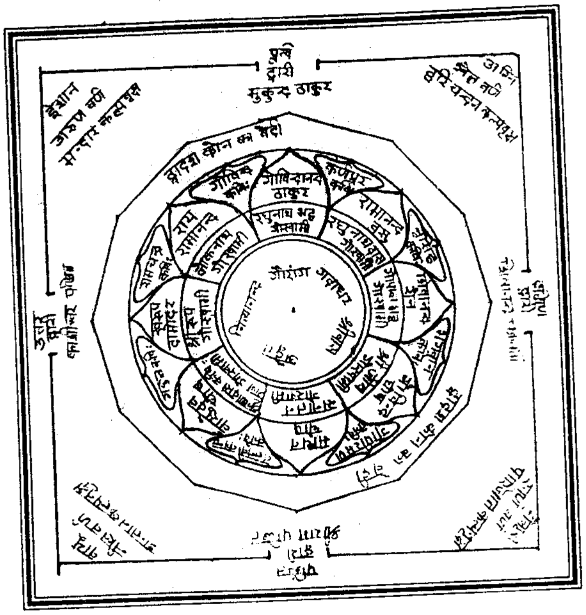
श्री नित्यानन्द प्रभु के श्री कर चिह्न



শ্রীনিত্যানন্দপ্রভুর শ্রীচরণচিহ্ন।

श्री नित्यानन्द प्रभु के श्री चरण चिह्न

श्रीश्री नवद्वीप योगपीठ



श्रीश्री वृन्दावन योगपीठ

